भूमिका ।

सब से पूर्व यह लिखना अनुचित न होगा कि यदि टीकाकर्ता महोदय इस पुस्तक की भूमिका स्वयं लिखते तो बहुत लाभदायक होती क्योंकि अपनी टीका में उन्होंने जो विशेषता की है उसे वे ही अच्छीप्रकार बता सकते हैं। परन्तु ऐसा न करके टीकाकर्ता तथा प्रकाशक महोदयों ने मुझे ही भूमिका लिखने के लिये अनुरोध किया। उनके आदेश का पालन करते हुए मैंने कुछ संक्षेपतः लिख दिया है।

आयुर्वैदिक चिकित्सा के प्रधानतः तीन विभाग हैं। १—दैवी चिकित्सा २—मानुषी चिकित्सा। ३—आसुरी चिकित्सा। जिन में दैवी चिकित्सा को रसचिकित्सा भी कहते हैं। इस ही चिकित्सा को आयुर्वेद में प्रधानता दी गई है। अतएव कहा भी है:—

आसुरी मानुषी दैवी चिकित्सा त्रिविधा मता।
शस्त्रैः कषायैर्लोहाद्यैः क्रमेणान्त्याः सुपूजिताः॥

इस की उत्तमता में मुख्य कारण ये हैं कि:—

अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गतः।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिको रसः॥

अर्थात् रसचिकित्सा में कही गई औषधों के थोड़ी मात्रा में ही उपयोगी होने से, बुरा स्वाद न होने के कारण अरुचि न होने से तथा शीघ्र ही आरोग्यदायिनी होने से यह चिकित्सा वनौषधिचिकित्सा से उत्तम है।

इसी रसचिकित्सा का प्रतिपादक यह रसेन्द्रसारसंग्रह-नामक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में अन्य प्राचीन सिद्धाचार्य तथा रसशास्त्रवेत्ताओं के उत्तमोत्तम ग्रन्थों से चिकित्सा-सम्बन्धी योग तथा रस, महारस, उपरस, धातु एवं रत्नों आदि के शोधन तथा मारण विधि का संग्रह किया गया है। आजकल सम्पूर्ण आयुर्वैदिक शिक्षणालयों के पाठ्यक्रमों में इस का समावेश है। इसी से इस संग्रह तथा संग्रहकर्त्ता की महत्ता का बोध होता है।

इस प्रामाणिक ग्रन्थ के संग्रहकर्त्ता श्री गोपालकृष्ण भट्ट हैं। ऐतिहासिक विद्वानों के मतानुसार यह ग्रन्थ तेरहवीं शताब्दि में बनाया गया प्रतीत होता है। इस ग्रन्थ में अध्याय अथवा अधिकारों के अनुसार निम्नप्रकार से विषय को विभक्त किया गया है:—

प्रथम अध्याय में—पारद, महारस, उपरस, धातु, उपधातु, रत्न, विष तथा उपविष आदि का शोधन एवं मारण का वर्णन है। द्वितीय अध्याय में:—विरेचक योगों का वर्णन है। इस से आगे क्रमशः एक २ अधिकार में ज्वर, ज्वरातीसार, अतीसार, ग्रहणी, अर्श, अजीर्ण, कृमिरोग, पाण्डु, रक्तपित्त, यक्ष्मा, कास, हिक्का, श्वास, स्वरभेद, अरोचक, छर्दि, तृष्णा, मूर्च्छा, मदात्यय, दाह, उन्माद, अपस्मार, वातरोग, कफरोग, पित्तरोग, वातरक्त, ऊरुस्तम्भ, आमवात, शूल, उदावर्त-आनाह, गुल्म, हृद्रोग मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी, प्रमेह, सोमरोग, स्थौल्य, उदररोग, प्लीहा, शोथ, अर्बुद, श्लीपद, भगन्दर, उपदंश, कुष्ठ, शीतपित्त–उदर्द–कोठ, अम्लपित्त, विसर्प–विस्फोट, मसूरिका, क्षुद्ररोग, मुखरोग, कर्णरोग, नासारोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, प्रदर, योनिव्यापत्, सूतिकारोग, बालरोग, तथा विषरोग की चिकित्सा एवं अन्त में रसायन तथा वाजीकरण योगों का विधान है।

संग्रहकर्त्ता ने इस में जिन योगों का संग्रह किया है प्रायः वे सब सहस्रशः अनुभूत ही हैं।

इस के अतिरिक्त केवल हिन्दी जानने वालों के लिये इस ग्रन्थ को उपयोगी बनाने के लिये पंजाबसंस्कृतपुस्तकालयाध्यक्ष श्रीयुत मोतीलाल बनारसीदास जी ने पं० विद्याधर जी विद्यालंकार को इसकी टीका बनाने के लिये कहा। जिसे उन्होंने स्वीकार किया और इस की हिन्दी टीका रची।

आज तक जो हिन्दीटीकायें उपलब्ध होती है प्रायः उन में अशुद्धियों की बहुलता है। इस टीका में टीकाकार ने उन से यथासम्भव बचने का प्रयत्न किया है। जो संस्कृत से अनभिज्ञ हैं, उन वैद्यों के लिये तथा विद्यार्थियों के लिये यह टीका अत्यन्त ही उपयुक्त हुई है। इस टीका के सहारे औषधनिर्माण आदि कार्य सुचारु-रूप से कर सकते हैं॥

लाहौर।
२६-२-१९२७

नरेन्द्रनाथ मित्र

वक्तव्य ।

यह रसेन्द्रसारसंग्रह ग्रन्थ पंजाब के सुप्रसिद्ध रसवैद्य श्रीमान् कविराज नरेन्द्रनाथ जी मित्र, संस्थापक-मित्र औषधालय, लाहौर की प्रेरणा से मुझे अनुवाद करना पड़ा है। उनको दिखाकर संशोधन भी करा दिया है। फिर भी न जानें कितनी त्रुटियां रह गई हों। विज्ञ पाठक आशा है उन्हें शोधन कर के क्षमा करेंगे।

विशेषतायें ।

इस ग्रन्थ में आजकल की शक्ति के अनुसार रसों की मात्रायें लिख दी गई हैं। विशेष २ स्थानों पर लम्बे नोट दिये हैं। कुछ गुप्त रहस्य भी खोले गये हैं। भाषा सब के समझने योग्य बनाने का यत्न किया है। अन्त में परिशिष्ट भी लगा दिया गया है। जिस में कई नवीन रोगों की चिकित्सा तथा अन्यान्य उपयोगी प्रयोग लिखे गये हैं। मानपरिभाषा भी दी है। साथ ही दुर्लभ यन्त्रों के चित्र और उन के साथ विवरण देकर इस ग्रन्थ की उपयोगिता को अधिक बढ़ा दिया गया है। ला० मोतीलाल बनारसी दास जी संस्कृतपुस्तकालयाध्यक्ष लाहौर की कृपा से ही यह सर्वाङ्गसुन्दर संस्करण निकल रहा है।

आशा है पाठकगण इस में से गुण ग्रहण करके लाभ उठायेंगे और अवगुणों से मुझे सूचित करने की कृपा करेंगे।

"सन्त हंस गुण गहहिं पय,
परिहरि वारि विकार।"

निवेदकः—
विद्याधर विद्यालङ्कार।

सोलन
२७—२—२७.

दूसरी वार का वक्तव्य।

परमात्मा की अनन्त कृपा से रसेन्द्रसारसंग्रह का प्रथम संस्करण समा हो गया है। अब दूसरा संस्करण श्रीमान् मोतीलाल बनारसीदास छपवाने लगे हैं। इस बार मैंने यत्न किया है कि कोई भी कमी इस में रहे। इसलिये एक २ अक्षर दूसरी बार ध्यान से पढ़कर तथा उचि परिवर्त्तन करके इसे फिर संशोधन कर दिया है। कोर्सबुक होने के कार इस में सभी खूबियां एकत्र करके छपवाने का यत्न किया है। आशा पाठक पूरा २ लाभ उठावेंगे। और प्रकाशक महोदयों के इस सर्वांगसुन्द संस्करण छपवाने के परिश्रम का पूरा २ आदर करेंगे।

रावलपिण्डी
१४—८—३१

निवेदक—
विद्याधर विद्यालङ्कार

तृतीय संस्करण का वक्तव्य।

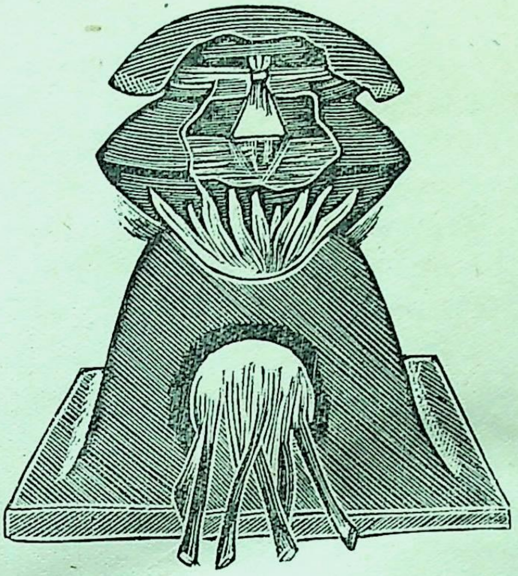
रसेन्द्रसारसंग्रह की सरला नामक हिन्दी टीका का द्वितीय संस्करण भ समाप्त है। इस टीका के प्रति वैद्यों और आयुर्वेद के विद्यार्थियों का समादर देख कर अन्य स्थानों से भी इसकी संस्कृत वा हिन्दी टीकायें प्रकाशित हुई हैं कुछ एक स्थलों पर थोड़ीसी भिन्नता और भाषापरिवर्तन के अतिरिक्त उनमें कोई विशेष नवीनता नहीं आयी। यह संस्करण आप लोगों के सामने सर्वथा नये रूप में पेश है। जहां तक मुझसे बन पड़ा है विशषवचन देकर रहस्यों के खोलने का प्रयत्न किया है। जहां २ आजकल के लोगों के लिये उपयोगी मात्रा नहीं दी गई थीं दे दी गई हैं। किस योग को किन अवस्थाओं में प्रयोग करन चाहिये—इस उलझन को भी सुलझाने का बहुत स्थलों पर भरसक प्रयत्न किया है। मूल में भी जहां जहां अपपाठ प्रतीत हुआ वहां वहां तन्त्रान्तरों की सहायता और कुछ अपनी क्षुद्रबुद्धि से परिवर्तन कर डाला है। आशा है कि यह संस्करण पूरा नहीं तो कुछ अवश्य ही मार्गदर्शक होगा।

अन्त में मेरी वा मुद्रण आदि की असावधानी से रह गई त्रुटियों को उदार-जन अवश्य क्षमा करें यही नम्र निवेदन है।

लाहौर
२१—११—३८

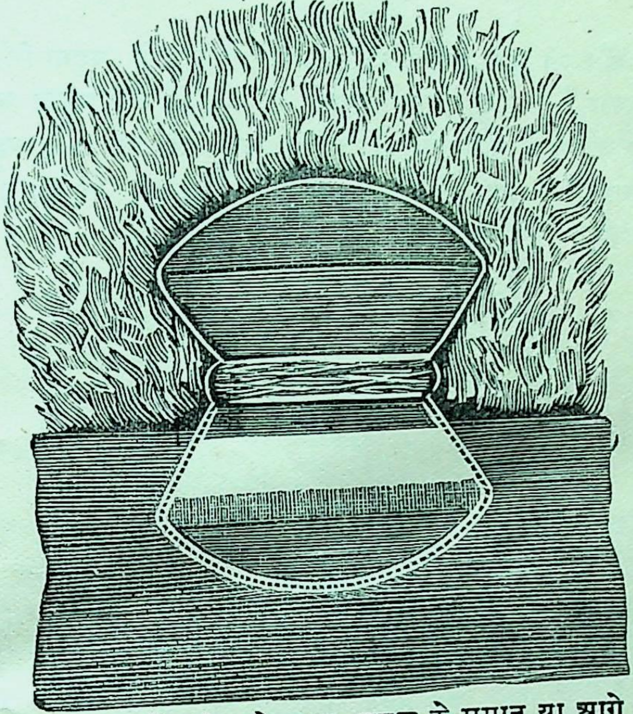
जयदेव विद्यालङ्कार
आयुर्वेदाचार्य

दोलायन्त्र।



एक हांडी में द्रव (रस क्वाथ कांजी आदि) आधातक भर दे। उस हांडी के किनारों में दो आमने सामने छेद कर दे। उन छेदों में एक लकड़ी सीधी डाल दे। फिर स्वेद्य द्रव्य को एक कपड़े की पोटली में बांध कर उस लकड़ी के मध्य में टांग देवे। आवश्यकता होने पर पारा आदि के स्वेदन के लिये पोटली में भोजपत्र आदि भी रखा जा सकता है। वह पोटली नीचे पड़े हांडी के द्रवभाग में लटकती रहे। पेंदे से न छूए। पोटली के जितने भाग में स्वेद्य औषध है उतना भाग द्रव में अवश्य डूबा रहे। स्वेदन की उत्तमता के लिये हांडी के मुख को मृत्खर्पर से ढांप सकते हैं। सन्धि को बन्द न करें, नहीं तो हांडी के फूट जाने का डर होगा। अब इस हांडी के नीचे आग देवे। इसप्रकार से पारा आदि स्वेद्य द्रव्यों का स्वेदन इस यन्त्र से किया जाता है। यतः इस में स्वेद्य द्रव्य की पोटली दोला अर्थात् झूले के समान लटकती रहती है, इसलिये इसे दोलायन्त्र कहते हैं।

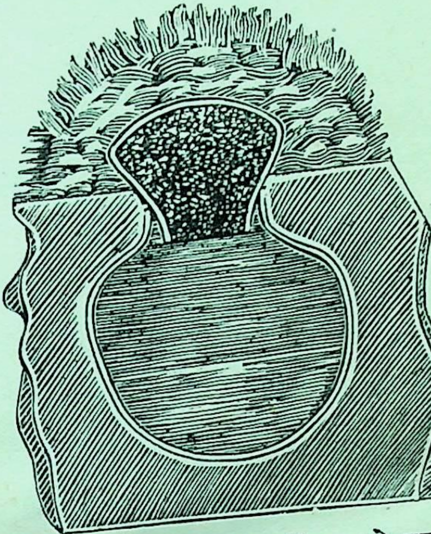
भूधरयन्त्र ।



दो हांडियों के मुँह को जोड़ कर डमरू के समान या आगे कहे अधः-पातन यन्त्र के समान बना ले। एक हांडी जितना गहरा गढ़ा खोद कर इसे रख दे। नीचे की हांडी गढ़े में रहेगी। गढ़े के शेष भाग को मिट्टी से भर दे। यह यन्त्र पारे के अधःपातनार्थ प्रायः प्रयुक्त होता है। दोनों हांडियों में से जिसे ऊपर की ओर रखना हो उस के अन्दर की ओर पैंदे में पारे की पिष्टी का लेप पहले ही लगा रखे और नीचे की हांडी में ठण्डा पानी भरा रहे। ऊपर की हांडी के चारों ओर उपले रख आग लगा देवे। पारा ऊपर की हांडी से नीचे की हांडी में गिर जायगा। पारे का अधःपातन पृथिवी के अन्दर रखी हांडी में होने से यह भूधरयन्त्र कहाता है। इसे अधःपातनयन्त्र भी कह सकते हैं।

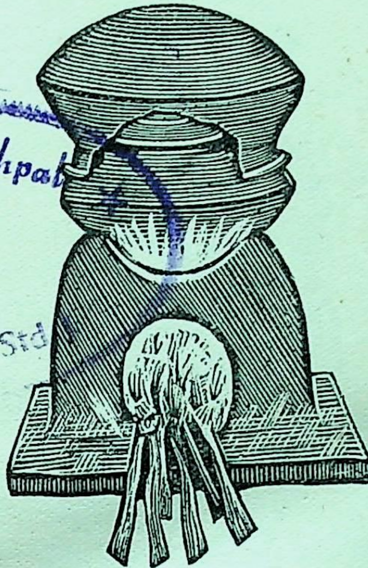
एक और भी भूधरयन्त्र है जिसका रसों के पाक में बहुधा निर्देश है वह इसप्रकार है—भूमि में एक गढ़ा खोदें उसमें दो तीन अङ्गुल बालू भ कर पाक्य औषध से युक्त मूषा को रख दें। चारों ओर भी दो २ अङ्गुल बाल आजानी चाहिये। ऊपर भी दो अंगुल बालू आजाय। इस पर उपले रख आग लगा दें।

अधःपातनयन्त्र



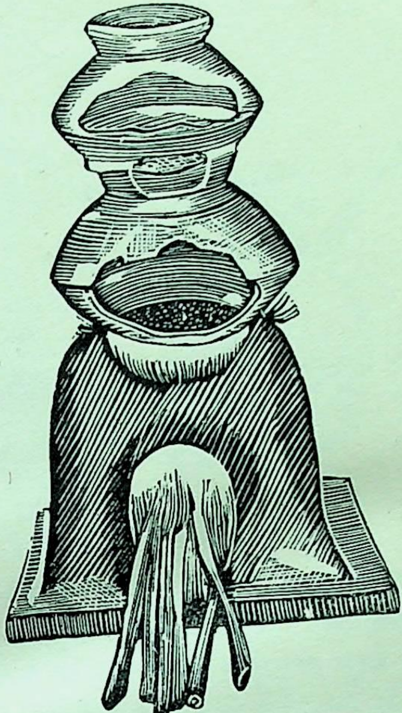
एक हांडी में पारे की पिष्टी को लीप दें। उसे उलटा मुख कर के उस के मुख को एक बड़े मुखवाले मिट्टी के घड़े में प्रविष्ट कर दें। घड़े में ठण्डा पानी भरा हो। पूर्वोक्त पातनायन्त्र में कहे द्रव्यों से सन्धिबन्धन कर दें। नीचे के घड़े को एक गढ़े में जिस में नीचे कीचड़ वा गारा हो रख दे। गढ़े में घड़े के चारों ओर भी कीचड़ वा गारा डाल देना चाहिये। इससे घड़ा ठण्डा रहेगा। ऊपर की हांडी के चारों ओर जंगली उपले रख कर आग दे। पारा ऊपर के पात्र से नीचे के घड़े में आजायगा। इस यन्त्र का नाम अधःपातन यन्त्र है॥

पातना यन्त्र



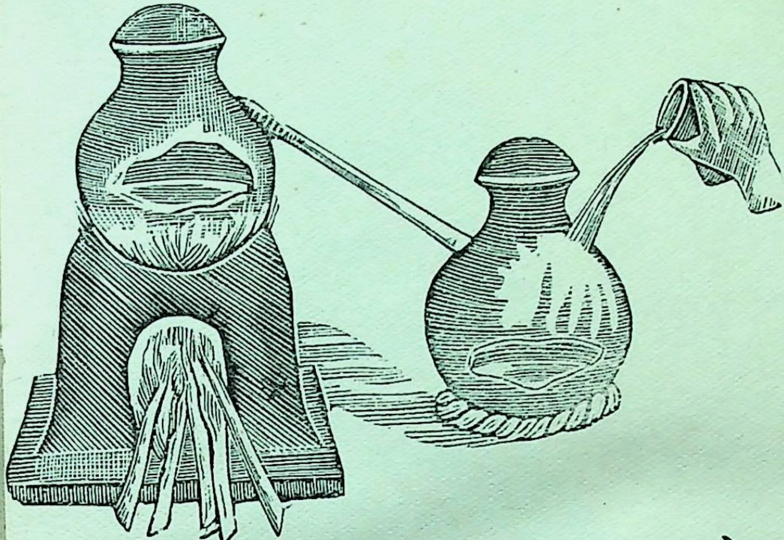
एक हांडी, जिसके पैंदे का व्यास १६ अंगुल हो, को उलटा कर उस की पीठ पर जलमृत्स्ना से जलाधार बनावे। जलाधार की लम्बाई १० अंगुल, चौड़ाई ८ अंगुल और ऊंचाई ४ अंगुल होनी चाहिये। पश्चात् एक दूसरी हांडी, जिस का मुख पहली हांडी से कुछ कम चौड़ा हो और ऊपर की हांडी के मुंह में जा सके, ले। इस हांडी को नीचे रख कर उस में पारे की पिष्टी डालें। तदनन्तर जलाधार-युक्त हांडी को औंधामुंह कर पारायुक्त हांडी के मुख को उस हांडी के मुख में प्रविष्ट कर दें। सन्धि पर भैंस का दूध, चूना, मण्डूर, फाणित (सीरा); इन्हें मिला लेप करें। लेप को शुष्क कर लें। यन्त्र को चूल्हे पर चढ़ा जलाधार में शीतल जल डाल दें। यह पातनायन्त्र है। इससे पारे का ऊर्ध्वपातन किया जाता है। पारा जलाधारयुक्त हांडी के अन्दर जा लगता है। जलाधार में यदि एक नाली लगायी हो तो जल के गरम होने पर उसके निकालने में सुगमता होगी। जल के गरम होने पर उसे निकाल शीतल जल भरना आवश्यक है। चित्र में जलाधार नहीं दिखाया गया।

विद्याधर (ऊर्ध्वपातन) यन्त्र।



एक हांडी में पारा डालकर नीचे रखे। उस के मुख पर एक दूसरी हांडी ऊपर को मुंह करके रख दे। नीचे की हांडी के मुंह पर ऊपर की हांडी का तला जहां लगा हुआ हो उस स्थान की सन्धि को मिट्टी से बन्द कर दे। ऊपर की हांडी में जल भर दे। नीचे आग जलावे। पारा उड़कर ऊपर की हांडी के नीचे की ओर पैंदे में लग जावेगा। स्वाङ्गशीतल होने पर सन्धि को आराम से खोल पारे को संभाल कर एकत्रित कर ले। ऊपर की हांडी का पानी गरम हो जाये तो उसे बदल कर ठण्डा जल भर देना चाहिये। इस से पारा ऊपर उड़ाया जाता है इस कारण इसे ऊर्ध्वपातन यन्त्र वा विद्याधर यन्त्र भी कहते हैं। विद्याधर एक प्रकार की देवयोनि है जो आकाशचारी मानी जाती है। इस यन्त्र में पारद के ऊपर को उड़ने से विद्याधरयन्त्र नाम दिया है। ८

तिर्य्यक्पातन यन्त्र ।



दो घड़े ले । एक घड़े में पारा डाल चूल्हे पर रख दे । उस के गलदेश के नीचे छिद्र कर एक सीधी लम्बी बांस आदि की नलकी तिरछी नीचे को झुकी हुई जोड़ दे । उस नलकी का दूसरा सिरा नीचे रखे दूसरे पानी से भरे हुए घड़े में जोड़ दे । दोनों घड़ों में उस नाली के संधिस्थान को भलीप्रकार कपड़-मिट्टी से अथवा आगे पातनायन्त्र में कहे जाने वाले भैंस का दूध, चूना, मण्डूर, और सीरा से बंद कर दे । दोनों घड़ों के मुहों को भी छोटे शरावों से ढक कर उनकी सन्धि भी बन्द कर दे। यह तिर्यक्पातन यन्त्र तय्यार हुआ । पारे वाले घड़े के नीचे तीव्र ज्वाला देवे । पारा उड़ कर पानी वाले घड़े में आ जायगा । इस यन्त्र द्वारा पारे को तिरछा गिराने से तिर्य्यक् पातन यन्त्र कहा जाता है । जलयुक्त घड़े को शीतल रखने के लिये उसपर बाहिर से भी शीतल जल डालते रहना चाहिये । नलिका पर भी विशेषतः जब वह किसी धातु की हो शीतल रखने के लिये वस्त्र लपेट कर शीतल जल की धारा गिराते रहना चाहिये ।

भैंस का दूध मण्डूर चूना और सीरा इन्हें एकत्र मिला लेप करने से पारा उड़ कर बाहिर नहीं जासकता । ६

स्वेदन (कन्दुक) यन्त्र ।



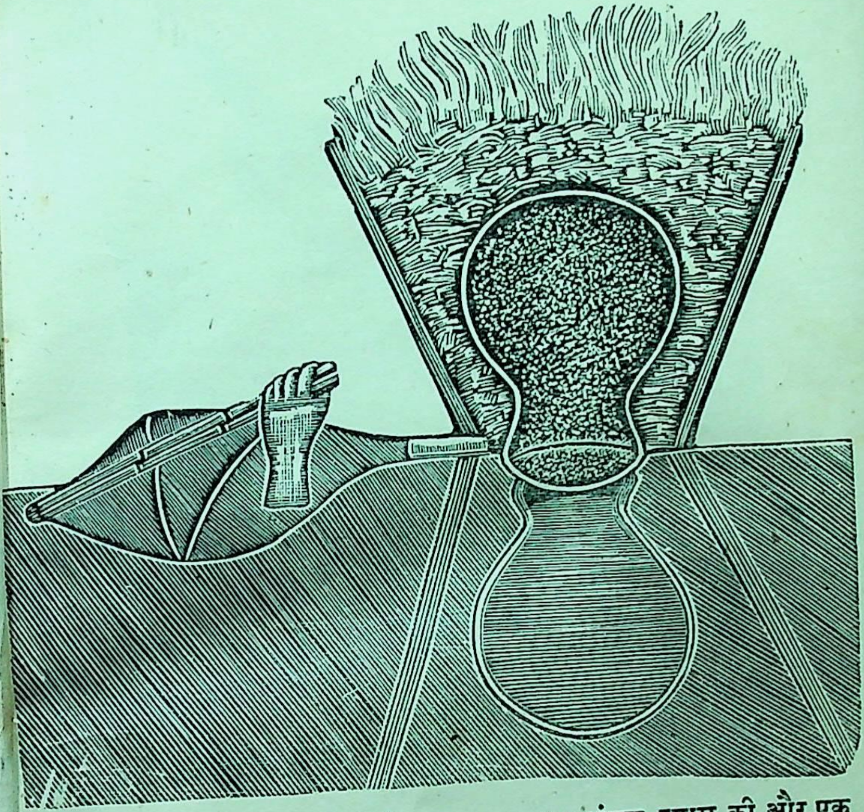
एक सुदृढ़ हांडी में जल भर ले । उस के मुंह पर एक स्वच्छ वस्त्र बांध दे । उस कपड़े पर स्वेदन करने योग्य पदार्थ रख दे । हांडी के मुख पर एक दूसरी हांडी औंधामुंह रख दे । नीचे आग जलावे । इसप्रकार द्रव्यों का स्वेदन इस यन्त्र से किया जाता है, इसलिये इसे स्वेदनयन्त्र कहते हैं । इसका नाम कन्दुकयन्त्र भी है ।

धूपयन्त्र।



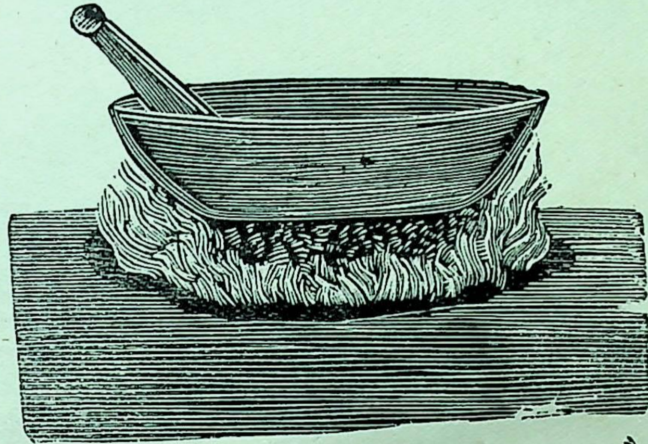
एक लोहे का पात्र आठ अंगुल ऊंचा आठ अंगुल चौड़ा बनावे। उसमें गन्धक हड़ताल मनशिल की कज्जली वा सीसाभस्म जिससे धूंआ देना हो रख दे। उस पात्र में कण्ठ के दो अंगुल नीचे निर्मित आधार पर पतली-पतली लोहे की शलाकायें (वा लोहे की पतली जाली) लगा दे। उन शलाकाओं (या जाली) पर सोने के पत्र रख दे। इस लौहपात्र के ऊपर दूसरा पात्र उलटा मुख रख कर मिट्टी से सन्धि बन्द कर दे। यन्त्र के नीचे अग्नि जलावे। इसप्रकार सोने के पत्र भस्म होजाते हैं। जिन्हें पारद शीघ्र ही खा लेता है और वे पत्र उसी में द्रवरूप हो जाते हैं। तारकर्म में चांदी के पत्रों को सीसाभस्म के स्थान पर वङ्गभस्म से धूपन कर सकते हैं। अन्य यथायोग्य उपरसों से भी धूपन किया जा सकता है। जारणार्थ द्रव्य को तय्यार करने में इस धूपयन्त्र का प्रयोग होता है।

कोष्ठिक यन्त्र ।



धातुओं के सत्त्वपातन के लिये सामान्यतः १६ अंगुल व्यास की और एक हाथ भर ऊंची जो भट्टी बनाई जाती है उसे कोष्ठिक यन्त्र कहते हैं। इस में नीचे से धौंकनी द्वारा हवा देने के लिये एक छिद्र भी होता है । भट्टी में कोइले डाले जाते हैं । कोइलों के मध्य देश में मूषा रखी जाती है । धौंकनी से धौंककर मात्रा में आग को तीव्र किया जाता है ।

तप्तखल्ल यन्त्र



एक गर्त्त में, जो प्रायः खरल के आकार का बनाया जाता है, बकरी की मींगनें, तुष अर्थात् धान के छिलके और अग्नि; इन तीनों को डाल देते हैं और उस पर लोहे के खरल को रख दिया जाता है। खरल के गर्म हो जाने के कारण तप्तखल्ल कहते हैं। इस में पारद आदि का मर्दन द्वारा शोधन किया जाता है।

अथ रसेन्द्रसारसंग्रहस्य विषयानुक्रमणी

इति विषयानुक्रमणिका ।

रसेन्द्रसारसंग्रहः ।

प्रथमोऽध्यायः ।

रसेन्द्रमिव निःशेष–जराव्याधिविनाशनम् ।
प्रणमामि गुरुं भक्त्या शङ्करं योगसाधनम् ॥ १ ॥

मङ्गलाचरण—जो शङ्कर (महादेव, परमात्मा) पारद के सदृश ही स… …ा और रोगों के नाशक हैं, जो योग से (चित्त की वृत्तियों के रोकने से) …द्ध होते हैं–प्राप्त होते हैं और जो सब के गुरु हैं—उन्हें भक्ति से प्रण… …रता हूं। 'रसो वै सः' इत्यादि श्रुतियों से परमात्मा का नाम भी रस है… …रा भी जरा (बुढ़ापा) और रोगों का नाशक है, गुरु है–भारी है… …ङ्कर है–कल्याणकारक है, दुःख की शान्ति का कारण है, योगसाधन है-… …पाय से सिद्ध होता है वा भेषज एवं प्रयोगों को सिद्ध करने वाला है… …ह की स्थिरता का साधन है। पारद के उचित प्रयोग से देह की स्थिर… …ोती है, भगवद्गोविन्दपाद ने कहा भी है—

'एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते' ॥ १ ॥

नत्वा गुरुपदद्वन्द्वं दृष्ट्वा तन्त्राण्यनेकशः ।
श्रील–गोपालकृष्णेन क्रियते रससंग्रहः ॥ २ ॥

…स्य रोगस्य यो योगस्तेनैव सह दापयेत् ।
…रसेन्द्रो हरते रोगान् नरकुञ्जरवाजिनाम् ॥

गुरुदेव के दोनों चरणों पर नमस्कार करके तथा अनेक शास्त्रों को देखकर श्रीगोपालकृष्ण इस रससंग्रह (संग्रहात्मक रसग्रन्थ) को करता हूं ॥ २ ॥

सिद्धयोगाश्च ये केचित् कृतिसाध्या भवन्ति हि ।
एकीकृत्य तु ते सर्वे लिख्यन्ते यत्नतो मया ॥ ३ ॥

जो २ भी सिद्धि देने वाले व्यवहारोपयोगी योग हैं, और जो कृतिसाध्य —बनाये जा सकते हैं, वे सब यत्न से इकट्ठे करके यहां लिख दिये हैं ॥ ३ ॥

तत्र रस-प्राधान्यमाह—

अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गतः ।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिको रसः ॥ ४ ॥

सब औषधों से पारा वा रसतन्त्रोक्त औषधें ही अधिक गुणदायक हैं। योंकि इनका थोड़ी मात्रा में ही उपयोग होता है। इनके सेवन करने वाले ा अरुचि भी नहीं होती, जैसे इतर औषधों में हो जाती है, इसके साथ ा ये शीघ्र आरोग्य प्रदान भी करती हैं ॥ ४ ॥

साध्येषु भेषजं सर्वमीरितं तत्त्ववेदिना ।
असाध्येष्वपि दातव्यो रसोऽतः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ५ ॥

साध्य रोगों में ही इतर सब औषधों का विधान है। परन्तु तत्वज्ञानी साध्य रोगों में भी पारद वा रसौषध दे सकते हैं। इसलिये भी पारा वा ौषधें श्रेष्ठ कही जाती हैं ॥ ५ ॥

हतो हन्ति जराव्याधिं मूर्च्छितो व्याधिघातकः ।
बद्धः खेचरतां धत्ते कोऽन्यः सूतात् कृपाकरः[1] ॥ ६ ॥

भस्म किया हुआ पारा सेवन करने से जराव्याधि को अर्थात् बुढ़ापारूप ग को अथवा जिसप्रकार बुढ़ापे में वलीपलित आदि हो जाते हैं उसीप्रकार काल में वलीपलित आदि हो जाने को अथवा बुढ़ापा और रोग को दूर रता है, मूर्च्छित पारे का सेवन रोगों को हटाता है, बांधा हुआ पारा आकाश भ्रमण करा सकता है। ऐसे पारे से बढ़कर और कौन कृपालु है।

---

१ 'क्रियाकरः' इति क्वचित्पाठः ।

विशेषवचन—तन्त्रान्तरों में 'जराव्याधिं' के स्थान पर 'जरामृत्युं' पाठ मिलता है । रसहृदयतन्त्र में भी कहा है—'अमरीकरोति सुमृतः' ॥ ६ ॥

अथ रसपर्य्यायमाह—

रसेन्द्रः पारदः सूतः सूतराजश्च सूतकः ।
शिवतेजो रसः सप्त नामान्येवं रसस्य तु ॥ ७ ॥

पारे के (संस्कृत में) सात नाम हैं—रसेन्द्र, पारद, सूत, सूतराज, सूतक, शिवतेज और रस ॥ ७ ॥

मतान्तरम्—

शिवबीजं रसः सूतः पारदश्च रसेन्द्रकः ।
एतानि रसनामानि तथाऽन्यानि यथा शिवे ॥ ८ ॥

शिवबीज, रस, सूत, पारद, रसेन्द्रक; ये नाम पारे के हैं, तथा जितने नाम शिव के हैं वे सब पारे के भी वाचक हैं ॥ ८ ॥

अथ रसलक्षणम्—

अन्तः सुनीलो बहिरुज्ज्वलो यो मध्याह्नसूर्यप्रतिमप्रकाशः ।
शस्तोऽथ धूम्रः परिपाण्डुरश्च चित्रो न योज्यो रसकर्मसिद्धौ ॥९॥

जो अन्दर से सुन्दर नीली आभा वाला और बाहर से उज्ज्वल हो, दोपहर के सूर्य के समान दीप्तियुक्त हो, वह पारा रसकर्म की सिद्धि में उत्तम माना गया है परन्तु जो पारा धुंआ के से रंग वाला वा सर्वतः पीलापन लिये श्वेत रंग का वा चितकबरे रंग का हो उसे रसकर्म में कभी न लेना चाहिये ॥ ९ ॥

अथ रसदोषानाह—

नागो वङ्गो मलो वह्निश्चाञ्चल्यञ्च विषं गिरिः ।
असह्याग्निर्महादोषा निसर्गात्पारदे स्थिताः ॥ १० ॥

नाग अर्थात् सीसा, वंग अर्थात् रांगा, मल, अग्निगुण, चञ्चलता, विष, गिरि, असह्याग्नि अर्थात् अग्नि न सह सकना, ये आठ महादोष पारे में स्वाभाविक होते हैं ॥ १० ॥

---

१ 'निसर्गाः पारदे' पा० ।

सम्बन्धयुक्तं व्यपदेशं समुचितं मन्यमानः **श्रीमूलमिति** संज्ञां श्रियः सम्पदो मूलं व्याख्येयग्रन्थद्वारेणेत्यनुगतार्थामकार्षम् । अस्मन्महाराजो हि मूलनक्षत्रयुक्तकालजातत्वात् श्रीमूलाख्यया लोके प्रख्यायते । तेनानेन व्याख्यानेन समुपेतं कृत्वार्थशास्त्रमिदमिदानीं मुद्रयितुमुपक्रान्तम् ।

६. नवगतविशेषः । अस्य तु संशोधितस्य स्वरूपं संस्कारविशेषपरिग्रहात् प्रत्यग्रतामिव प्रतिपन्नम् । अत्र हि उपलब्धान् मूलादर्शान् व्याख्यांशान् भाषाटीकां चानुरुध्य पाठाः परीक्षिताः; मैसूरपुस्तकानुपलब्धा बहवः साधुपाठाः संयोजिताः, तद्दृष्टा अपपाठा निरस्ताः, अन्यच्च तद्दृष्टमसौष्ठवं परिहृतम् । अर्थवन्त आदर्शोपलब्धाः पाठभेदा व्याख्यायामुपादाय प्रदर्शिताः । एवञ्जातीयं सौष्ठवं मूलव्याख्ययोः परिशीलने सुबोधमिति न विविच्यते ।

७. सम्पुटविभागाः । अस्य विपुलत्वात् त्रिभिः सम्पुटैः प्रकाशनमुचितमिति प्रथमोऽयं संपुट आदौ प्रकाश्यते । द्वितीयतृतीयौ च सम्पुटौ क्रमेण प्राकाश्यमचिराद् गमिष्यतः ।

पञ्चदशाधिकरण्यात्मकस्यार्थशास्त्रस्याद्यमधिकरणद्वयं प्रथमसम्पुटेऽस्मिन् निवेशितम् । ततः षडधिकरणी द्वितीयसम्पुटे, ततः सप्ताधिकरणी तृतीयसम्पुटे च निवेशयिष्यते । तत्र प्रथमं **वैनयिकाधिकरणम्** एकविंशत्यध्यायात्मकं, **द्वितीयमध्यक्षप्रचाराधिकरणं** षट्त्रिंशदध्यायात्मकम् । तद्गताश्च विषयाः प्रमेयानुक्रमण्यां समुद्दिष्टाः ।

८. कौटल्यादिसंज्ञाः । अस्य शास्त्रस्य प्रणेता तत्रभवान् आचार्यः **कौटल्यश्चाणक्यो विष्णुगुप्त** इति त्रिधा संज्ञायते । **कुटलो** नाम गोत्रप्रवर्तकर्षिः तस्य गोत्रापत्यं **कौटल्य** इति संज्ञा गोत्रनिबन्धना, **चणको** देशविशेषस्तत्सम्बन्धाच्चाणक्य इति देशनिबन्धना, विष्णुना गुप्तो रक्षित इत्यर्थिका विष्णुभक्तेन पित्रा नामकरणसंस्कारकाले कृता **विष्णुगुप्त** इत्येषा सांस्कारिकी संज्ञा । अत एवाह कामन्दकीयनीतिसारजयमङ्गला — "विष्णुगुप्तायेति सांस्कारिकी संज्ञा, चाणक्यः कौटल्य इति द्वे जन्मभूमिगोत्रनिबन्धने" इति । कौटिल्य इतीकारमध्योऽपपाठः, तस्य वा प्यञ्प्रकृतेः कुटिलशब्दस्य वा गोत्रर्षिवाचकत्वोभयार्थतायाः अभिधानग्रन्थे क्वचिदप्यदर्शनात्, निरिकारस्य तु कुटलशब्दस्य गोत्रप्रवर्तकऋषिवाचकत्वस्य दर्शनात् । तथाच **नानार्थार्णवसंक्षेपे केशवस्वाम्याह** —

"अथ स्यात् कुटलो गोत्रकृत्यृषौ पुंसि नप् पुनः।
विद्यादाभरणेऽथ त्रिः कुटिलं कुञ्चिते भवेत्॥
तगरे तु क्ली तगरपादिकायां स्त्रियामिति।" इति।

अतः कुटलशब्दप्रकृतिकयञ्प्रत्ययान्त एवायं कौटल्यशब्द इति निर्णयः। अत एव सर्वेषु मूलादर्शेषु उपलब्धव्याख्यानांशेषु भाषाटीकायां च कौटल्य इत्येव निरिकाराः पाठा ऐकरूप्येण दृश्यन्ते, न तु कौटिल्य इतीकारमध्यः पाठः क्वचिदपि। स पुनरपपाठोऽन्धपरम्पराप्राप्तोऽस्यापि ग्रन्थसम्पुटस्य चत्वारिंशत्तमान्तेषु पत्रपृष्ठेष्वनवधानादापतितः। तत उपरिष्टात् तु साधुपाठ एव निवेशितः।

९. कौटल्यस्य कालः।

आचार्यचाणक्यो मगधेषु कुसुमपुरे स्वपरिभवामर्षी तदीश्वरान् नन्दानुन्मूल्य तदीये सिंहासने चन्द्रगुप्तमभिषिषेचेति हि प्रतीतमैतिह्यम्। तस्य चन्द्रगुप्तसमकालिकस्य जीवितसमयश्च क्रैस्तप्राचीना चतुर्थशताब्दी पुरावृत्तचिन्तकैरभ्यूहितः सुप्रसिद्धः। स्मरन्ति च ततोऽर्वाचीनाः कामन्दकादयस्तं च तदीयमर्थशास्त्रं च। किन्तु **विश्वरूपाचार्यः** श्रीशङ्करभगवत्पादशिष्यात् सुरेश्वराचार्यादनतिरिक्तः स्वप्रणीतायां याज्ञवल्क्यस्मृतिव्याख्यायां **बालक्रीडायाम्** (अनन्तशयनसंस्कृतग्रन्थावलिप्रकाशितायाम्) अर्थशास्त्रस्मरणप्रसङ्गे **कौटल्यं कौटलीयं** वा न स्मृतवान्। तावता **कौटलीयं** तत्पूर्वकालिकं न भवतीति वा तस्याविदितमिति वा न शक्यं शङ्कितुं, यस्माद् विदितस्यापि तस्यास्मरणे न्यायोऽस्माभिस्तदुपोद्घाते प्रदर्शितः। यथा—

'"अयं विशेष एको **बालक्रीडायाम**भिलक्ष्यते तज्जरत्तमत्वप्रत्यायकः तदीयजरत्तमग्रन्थैकभक्तत्वप्रत्यायकश्च, यत् क्रैस्तोत्तरकालभवः कश्चिद् ग्रन्थो ग्रन्थकारो वा नात्र स्मृतः, किन्तु क्रैस्तपूर्वकालभवा आम्नायाः स्मृतयः स्मर्तारस्तत्कल्पाश्चेत्येत एव नियमेन स्मृताः। तत्राप्यर्थशास्त्रस्मरणप्रसङ्गे **कौटलीयार्थशास्त्रं** नोदाहृतम्, अपितु कौटल्यस्याप्युपजीव्यं **बार्हस्पत्यं वैशालाक्षं** चार्थशास्त्रमिहोदाहृतम् —

"यथाह बृहस्पतिः — 'स्वधर्मविदनुरक्तः शुचिरनुद्धत उद्युक्तो देशकालविन्नीतिनिगमेतिहासकुशलोऽव्यसनी मृदुरर्थशास्त्रकृतयोग्यो हस्त्यश्वपुरुषाचाराहोरात्रयामनिर्गमविनिश्चितमतिश्च स्वपरबलबलाबलज्ञो बलाधिकृतः सेनापतिः स्यात्। कुलाढ्य उद्युक्तो मृदुरुदात्तः, समरचित्तः शूरोऽनुरक्तोऽभेद्यः

अथ (अघोर) रक्षामन्त्रः—

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोराघोरतरेभ्यश्च ।
सर्वतः सर्व सर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपिभ्यः ॥ २० ॥

'अघोरभ्योऽथ घोरेभ्यः घोराघोरतरेभ्यश्च सर्वतः सर्व सर्वेभ्यः नमस्ते रुद्ररूपिभ्यः' इस मन्त्र का जप तथा चिन्तन कर पारा शोधे। यह रक्षामन्त्र है ॥ २० ॥

अथ रसनिगडः—

स्नुह्यर्कसम्भवं क्षीरं ब्रह्मबीजञ्च गुग्गुलुः ।
सैन्धवं द्विगुणं मर्द्यं निगडोऽयं महोत्तमः ॥ २१ ॥

थोहर का दूध, आक (मदार) का दूध, ढाक के बीज, गूगल, सेंधानमक सब दो २ तोला हो तो पारा ४ तोला हो । इन्हें मिलाकर घोटने से उत्तम रूप में पारे का निगड़ होजाता है—पारा बंधा रहता है ॥ २१ ॥

अथ साधारणशुद्धिः—

षोडशांशैर्भिषक् चूर्णैरेकत्र मर्दयेद्रसम् ।
प्रत्येकं प्रत्यहं दत्त्वा सप्तवारं विमर्दयेत् ॥ २२ ॥

पारा १ भाग, पारे के शोधक द्रव्य का चूर्ण सोलहवां भाग, दोनों को एकत्र मर्दन करे। प्रतिदिन एक द्रव्य का चूर्ण डालकर खूब मर्दन करना चाहिये । इस प्रकार सात बार करे । शोधक वर्ग के प्रत्येक द्रव्य से इसीप्रकार किया जाता है । इससे पारा शुद्ध होजाता है ॥ २२ ॥

विशेषशुद्धिमाह—

सोर्णानिशेष्टकाधूम-जम्बीराम्बुभिरादिनम् ।
मर्दितः काञ्जिकैर्धौतो नागदोषं रसस्त्यजेत् ॥ २३ ॥

ऊन (जली हुई ली जाती है), हल्दी, ईंट का चूर्ण, रसोई घर का धुंआ, जम्बीरी नींबू का रस; इनसे पारे को मिलाकर दिनभर मर्दन करके काञ्जी से धो दे । इसप्रकार से पारे का नागदोष छूट जाता है ।

विशेषवचन—पूर्वोक्त सामान्य नियम के अनुसार चूर्ण पारद से सोलहवां भाग होना चाहिये । प्रतिदिन अच्छीप्रकार मर्दन करके कांजी से धो डालना चाहिये । प्रत्येक द्रव्य से इस प्रकार सात २ बार किया जाता है ॥ २३ ॥

विशालाङ्कोठचूर्णेन वङ्गदोषं विमुञ्चति ।
राजवृक्षो मलं हन्ति चित्रको वह्निदूषणम् ॥ २४ ॥

इन्द्रायन और अङ्कोठ के (प्रत्येक के षोडशांश) चूर्ण से पारा घोटें तो वंगदोष छूट जाता है । अमलतास के मूल के चूर्ण (षोडशांश) से पारा मर्दन करें तो मलदोष नाश होता है । चीते के चूर्ण (षोडशांश) से घोटें तो पारे का वन्हिदोष दूर होता है ॥ २४ ॥

चाञ्चल्यं कृष्णधुस्तूरं त्रिफला विषनाशिनी ।
कटुत्रयं गिरिं हन्ति असह्याग्निं त्रिकण्टकः ॥ २५ ॥

काले धतूरे के रस से घोटें तो पारे का चाञ्चल्यदोष दूर होता है । त्रिफला अर्थात् हरड़, बहेड़ा, आंवला–इनके चूर्ण से घोटें तो पारे का विष दूर होता है । त्रिकुटा अर्थात् सोंठ मिर्च और पीपल के चूर्ण से घोटें तो पारे का गिरिदोष दूर होता है । गोखरू के चूर्ण से पारा घोटें तो पारे का असह्याग्निदोष दूर होता है ।

विशेषवचन—शोधक चूर्ण पारद से सोलहवां भाग लिया जाता है ॥२५॥

प्रतिदोषं कलांशेन तत्तच्चूर्णं सकन्यकम् ।
उद्धृत्योष्णारनालेन मृत्पात्रे क्षालयेत् सुधीः ।
एवं संशोधितः सूतः सप्तकञ्चुकवर्जितः ॥ २६ ॥

प्रत्येक दोषको दूर करने के लिए पारा एक भाग हो तो औषधों के चूर्ण सोलहवां भाग होने चाहियें, उसमें घीकुमार का रस डालकर घोटा जाता है । दिनभर मर्दन करने के पश्चात् मिट्टी के पात्र में पारे को डालकर गरम

---

१ रसेन्द्रचिन्तामणि में कहा भी है–राजवृक्षोत्थमूलस्य चूर्णेन सह कन्यया । मलदोषापनुत्त्यर्थं मर्दनोत्थापने शुभे ॥

कांजी से धो डालें । कम से कम तीन वार वा सात वार ऐसे ही करना चाहिए । इस प्रकार से शुद्ध किया हुआ पारा सातों कञ्चुकों से रहित हो जाता है ।

विशेषवचन—यहां पर यह बता देना आवश्यक है कि जहां मर्दन में द्रव कहा गया है वहां कुमारीरस देने की आवश्यकता नहीं । जैसे हमने व्याख्या में बताया है कि चञ्चलता को दूर करने के लिये काले धतूरे के रस से पारद को मर्दन करें । वहां घीकुमार का रस नहीं डाला जायगा । जहां केवल चूर्णों से घोटने को कहा है वहां घीकुमार का रस डाला जाता है। यहां पर कञ्चुकों का परिगणन नहीं किया गया । हम रसरत्नसमुच्चय से उन सात कञ्चुकों के नाम देते हैं । यथा– १ पर्पटी, २ पाटनी, ३ भेदी, ४ द्रावी, ५ मलकरी ६ अन्धकारी ७ ध्वांत्ती । पारद को आवृत कर लेने के कारण ही इनकी संज्ञा कञ्चुक है । ये कञ्चुक भूमि पर्वत जल तथा नाग वङ्ग आदि धातुओं के कारण बन जाते हैं । जहां उक्त शोधनप्रकार से उक्त आठ दोष नष्ट होते हैं वहां औपाधिकदोष सात कञ्चुक भी हट जाते हैं ॥ २६ ॥

श्रीखण्डं देवकाष्ठञ्च काकजङ्घाजयाद्रवैः ।
कर्कोटीमूषलीकन्या-द्रवं दत्त्वा विमर्दयेत् ।
दिनैकं पातयेत् पश्चात्[1] तं शुद्धं विनियोजयेत् ॥ २७ ॥

श्वेतचन्दन का चूर्ण, देवदारु का चूर्ण, काकजङ्घा का रस, जयन्ती का रस, बांझककोड़ा का रस, मूसली का रस, घीकुमार का रस; इन्हें पारे में डालकर घोटें । पश्चात् ऊर्ध्वपातनयंत्र से ऊर्ध्वपातन करें । इसप्रकार से शुद्ध हुए पारे को प्रयुक्त करें ।

विशेषवचन—इसमें काकजङ्घा के स्थान पर काकतुण्डी और कर्कोटी के स्थान पर कर्कटी पाठान्तर मिलता है ॥ २७ ॥

कुमार्य्या च निशाचूर्णैर्दिनं सूतं विमर्दयेत् ।
पातयेत् पातनायन्त्रे सम्यक् शुद्धो भवेद्रसः ॥ २८ ॥

१ 'पश्चात्सूतं' पा० ।

घीकुमार का रस और हल्दी का चूर्ण इन दोनों से पारे को एक दिन मर्दन करे फिर पातना यंत्र से पारे का पातन करे तो पारा ठीक शुद्ध हो जाता है ॥ २८ ॥

मतान्तरम्--

रसस्य द्वादशांशेन गन्धं दत्त्वा विमर्दयेत् ।
जम्बीरोत्थैर्द्रवैर्यामं पाच्यं पातनयन्त्रके ।
पुनर्मर्द्यं पुनः पाच्यं सप्तवारं विशुद्धये ॥ २९ ॥

पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक बारहवां भाग देकर मर्दन करें, पुनः जम्बीरी नीबू के रस से घोटें। पश्चात् ऊर्ध्वपातन यन्त्र से एक पहर की आंच देकर ऊर्ध्वपातन करें। फिर ऊपर के पात्र से पारे को निकाल कर पूर्ववत् पारद से बारहवां भाग गन्धक मिला जम्बीरी नीबू के रस से घोट ऊर्ध्वपातनयन्त्र से एक पहर तक आग पर पकावे। इस प्रकार सात बार मर्दन और सात बार ऊर्ध्वपातन करने से पारा शुद्ध हो जाता है ॥ २९ ॥

विशेष वचन--एक प्रहर में ऊर्ध्वपातन के लिये पारद का प्रमाण एक पल (८ तोले) होना चाहिये। अथवा नींबू के रस से एक प्रहर घोटें; यह अर्थ करना चाहिये।

मतान्तरम्—

जयन्त्या वर्द्धमानस्य चार्द्रकस्य रसेन च ।
वायस्याश्चानुपूर्व्यैवं मर्दनं रसशोधनम् ॥ ३० ॥
एषां प्रत्येकशस्तावत् मर्दयेत् स्वरसेन च ।
यावच्च शुष्कतां याति सप्तवारं विचक्षणः ॥ ३१ ॥
उद्धृत्योष्णारनालेन मृद्भाण्डे क्षालयेत् सुधीः ।
सर्वदोषविनिर्मुक्तः सप्तकञ्चुकवर्जितः ।
जायते शुद्धसूतोऽयं युज्यते सर्वकर्मसु ॥ ३२ ॥

पहले जयन्ती के पत्तों के रस से, फिर एरण्ड के पत्तों के रस से, पुनः अदरक के रस से, पश्चात् मकोय के स्वरस से क्रमशः मर्दन करने से पारा शुद्ध

हो जाता है। पारे को पूर्वोक्त द्रव्यों में से प्रत्येक के स्वरस से तब तक घोटे जब तक कि स्वरस सूख जाय। इस प्रकार सात बार एक २ के रस से घोटना चाहिये। पश्चात् प्रति बार इस पारे को मिट्टी के पात्र में डाल कर गरम कांजी से धोवे। इस प्रकार वह सब दोषों से रहित होकर और सात कञ्चुकों से छूटकर शुद्ध हो जाता है। इसे सब कर्म्मों में प्रयुक्त कर सकते हैं ॥२०-३२॥

मतान्तरम्—

निशेष्टकाधूमरजोऽम्लपिष्टो विकञ्चुकः स्याद्धि ततश्च सोर्णः।
वरारनालानलकन्यकाभिः सत्र्यूषणाभिर्मृदितस्तु सूतः ॥ ३३ ॥

हल्दी का चूर्ण, ईंट का चूर्ण, रसोई का धुंआं तथा नींबू आदि के किसी अम्लरस से मर्दन करने के पश्चात् ऊन, त्रिफला का चूर्ण, कांजी, चीता का चूर्ण घीकुमार का रस, त्रिकुटा का चूर्ण; इन सब द्रव्यों से पारे को मर्दन करे तो पारा शुद्ध तथा कञ्चुक-रहित हो जाता है ॥ ३३ ॥

मतान्तरम्—

दिनैकं मर्दयेत् सूतं कुमारीसम्भवैर्द्रवैः।
तथा चित्रकजैः क्वाथैर्मर्दयेदेकवासरम्।
काकमाचीरसैः सार्द्धं दिनमेकन्तु मर्दयेत् ॥ ३४ ॥

पारे को एक दिन घीकुमारी के रस से घोटे, एक दिन चीते के क्वाथ से घोटे, एक दिन मकोय के स्वरस से घोटे। इस से पारा शुद्ध हो जाता है ॥३४॥

मतान्तरम्—

रसोनस्वरसैः सूतो नागवल्लीदलोत्थितैः।
त्रिफलायास्तथा क्वाथै रसो मर्द्यः प्रयत्नतः ॥ ३५ ॥
ततस्तेभ्यः पृथक् कृत्वा सूतं प्रक्षाल्य काञ्जिकैः।
सर्वदोषविनिर्मुक्तं योजयेत् रसकर्मसु ॥ ३६ ॥

पारे को लहसन के रस से, पान के स्वरस से और फिर त्रिफला के क्वाथ से यत्नपूर्वक घोटे। प्रत्येक द्रव से मर्दन के पश्चात् कांजी (उष्ण) से धोकर

उस पारे को पृथक् करे । इस प्रकार सब दोषों से छूटकर पारा शुद्ध हो जात है । इसे रसकर्म में प्रयुक्त करे ॥ ३५–३६ ॥

अथोदूर्ध्वपातनम्-- ऊर्ध्व पातन

भागास्त्रयो रसस्यार्क-भागमेकं विमर्दयेत् ।
जम्बीरद्रवयोगेण यावदायाति पिण्डताम् ॥ ३७ ॥
तत्पिण्डं तलभाण्डस्थमूदूर्ध्वभाण्डे जलं क्षिपेत् ।
कृत्वाऽऽलवालकं वाऽपि ततः सूतं समुद्धरेत् ।
ऊदूर्ध्वपातनमित्युक्तं भिषग्भिः सूतशोधने ॥ ३८ ॥

पारा तीन भाग, शुद्ध ताम्रचूर्ण एक भाग, दोनों को घोटे । फिर जम्बीर रस डालकर मर्दन करे । जब पिण्ड बन जाय तब उसे नीचे के भाण्डे में रखे और ऊपर एक ऊर्ध्वमुख भाण्ड रखकर दोनों भाण्डों की सन्धि करदे । अग्नि देने के समय ऊपर के भाण्डे में जल भर देना चाहिये । जल को उष्ण होने पर बदलते रहें । यदि उस भाण्ड में नाली लगी हो तो उसका मुख खोल कर गरम जल निकाला जा सकता है । इसे विद्याधर यन्त्र कहते हैं । इसमें पारा ऊपर के भाण्डे के पैंदे में बाहिर की ओर लगता है । अथवा यदि दोनों मिट्टी के भाण्डों को डमरूयन्त्र के सदृश बन्द किया जाय तो भी ऊर्ध्व-पातन होता है । इसमें नीचे के पात्र–जिसमें रसपिण्ड डाला गया है–के मुख से ऊर्ध्वभाण्ड का मुख जोड़ा जाता है । फिर ऊपर के भाण्डे की पीठ पर चारों ओर मिट्टी की छोटी सी दीवार बनाकर उसके अन्दर जल भर दिया जाता है (कई इसप्रकार का आलवाल वा जलसञ्चय के लिये दीवार न बनाकर ऊपर के भाण्डे की पीठ पर ठण्डे जल से भीगा कपड़ा बदलते रहते हैं)। नीचे आग दें। पश्चात् ऊपर के भाण्डे के अन्दर लगे हुए पारे को निकाल लें। यह ऊर्ध्वपातनविधि पारद को शुद्ध करने के लिये वैद्यों ने निश्चित की है ।

विशेषवचन--अथवा पातनायन्त्र जिसका विधान चित्रों में है उसके द्वारा भी ऊर्ध्वपातन होता है ॥ ३७–३८ ॥

अथाधःपातनम्— अधः पातन

नवनीताह्वयं गन्धं घृष्ट्वा जम्भाम्भसा दिनम् ।

वानरीशिग्रुशिखिभिः सैन्धवासुरिसंयुतैः ॥ ३९ ॥
नष्टपिष्टं रसं कृत्वा लेपयेदूर्ध्वभाण्डके ।
ऊर्ध्वभाण्डोदरं लिप्त्वाऽधोभाण्डं जलसंयुतम् ॥ ४० ॥
सन्धिलेपं द्वयोः कृत्वा तद् यन्त्रं भुवि पूरयेत् ।
उपरिष्टात् पुटे दत्ते जले पतति पारदः ।
अधःपातनमित्युक्तं सिद्धाद्यैः सूतकर्मणि ॥ ४१ ॥

आमलासार गन्धक को जम्बीरी नीबू के रस से एक दिन मर्दन करे । यह गन्धक, कौंच, सहिजन (सुहांजना) की जड़, चित्रकमूल, सेंधानमक तथा राई; इन सब को लेकर और पीसकर, पारे के साथ मिला मर्दन करे । जब पारा नष्टपिष्ट हो जाय तब इसे ऊपर के पात्र के अन्दर लीप देवे, तथा नीचे के पात्र में जल भर देवे । दोनों पात्रों के मुख की सन्धि पर लेप करके नीचे के पात्र को तथा ऊपर के पात्र को सन्धि से पर्याप्त ऊपर तक भूमि में गाड़ दे । ऊपर के पात्र के चारों ओर उपले लगाकर पुट दे । पारा निकल कर जल में जा गिरता है । रसकर्म में सिद्ध वैद्यों ने इस विधि से पारे का अधः-पातन करने को कहा है ।

विशेषवचन—पूर्व शोधनप्रकरण में 'रसस्य द्वादशांशेन गन्धं दत्त्वा विमर्दयेत्' इत्यादि द्वारा पातनार्थ गन्धक का पारे से बारहवां भाग होना बताया जा चुका है। कई पारद से चौथाई गन्धक लेते हैं। कौंच आदि को पारद के समान लेना चाहिये । रसेन्द्रचिन्तामणि में तो जहां से यह पाठ ग्रन्थकर्ता ने उद्धृत किया प्रतीत होता है 'नवनीताभ्रकं सूतं पिष्ट्वा' ऐसा पाठ है । नवनी-ताभ्रक से श्लक्ष्णपिष्ट अभ्र वा धान्याभ्र का ग्रहण प्रतीत होता है। तब अभ्रकचूर्ण और पारद को समभाग में लेकर और कौंच आदि का चूर्ण अभ्रक के समान मिलाकर जम्बीर के रस से मर्दन कर नष्टपिष्ट किया जायगा। अभ्रक के साथ पारे

---

१ 'लवणासुरि' पा० । २ 'ज्ञात्वा' पा० ।
३ 'त्वधोगं जलसंभृतम्' पा० । ४ 'पात्रं' पा० ।

को नष्टपिष्ट करके तिर्यक्पातन करने का अन्यत्र भी विधान मिलता है। यथा रसपद्धति में—

'कृत्वा वक्रमुखौ घटावथ नभोहैयङ्गवीनस्थितं
त्वन्यस्मिन् रसमन्यतश्च सलिलं प्रक्षिप्य चुल्ह्यां न्यसेत्।'

यहां 'नभोहैयङ्गवीन' से नवनीताभ्रक का ही ग्रहण है। यद्यपि कई नभोहैयङ्गवीन से अभ्रकद्रुति लेते हैं परन्तु वह ठीक नहीं। अभिप्राय यह है कि तिर्यक्पातन में एक घड़े में अभ्रक के श्लक्ष्णचूर्ण के साथ पारद को नष्टपिष्ट करके डाला जाता है। इसी अभिप्राय से रसरत्नसमुच्चय में भी—

'श्लक्ष्णीकृतमभ्रदलं रसेन्द्रयुक्तं तथारनालेन।
खल्वे दत्त्वा मृदितं यावन्नष्टपिष्टतामेति ॥'

इन शब्दों से कहा है। रसरत्नाकर में भी—

'धान्याभ्रकं रसं तुल्यं मर्दयेदारनालकैः।
नष्टपिष्टं तु तत्पात्यं तिर्यग्यन्त्रे दृढाग्निना ॥'

यह कहा गया है।

पारद को किसी द्रव्य के साथ इतना घोटना कि वह उसमें सूक्ष्मतया मिल जाय और उसकी चमक दिखाई न दे—नष्टपिष्ट कहाता है ॥ ३९–४१ ॥

अथ तिर्यक्पातनम्—— तिर्यक्पातन

घटे रसं विनिक्षिप्य सजलं घटमन्यकम्।
तिर्यङ्मुखं द्वयोः कृत्वा तन्मुखं रोधयेत् सुधीः ॥ ४२ ॥
रसाधो ज्वालयेदग्निं यावत् सूतो जलं विशेत्।
तिर्यक्पातनमित्युक्तं सिद्धैर्नागार्जुनादिभिः ॥ ४३ ॥

एक घड़े में पारा डालकर दूसरे घड़े में जल भरकर दोनों घड़ों के मुखों को तिरछा करके परस्पर जोड़ देवे और अच्छीप्रकार सन्धिबन्ध कर दे। पश्चात् जिस घड़े में पारा डाला है उसके नीचे तबतक अग्नि जलावे जबतक सारा पारा उड़कर जल के पात्र में चला जावे। अनन्तर उसे निकाल लेवे। इसे नागार्जुन आदि सिद्ध वैद्यों ने तिर्यक्पातन कहा है।

विशेषवचन—दूसरा तिर्यक्पातनयन्त्र का विधान चित्रों में दिया गया है। उसके द्वारा भी पारद का तिर्यक्पातन किया जा सकता है ॥ ४२–४३ ॥

अथ बोधनम्—

एवं कदर्थितः सूतः षण्डत्वमधिगच्छति ।
तन्मुक्तयेऽस्य क्रियते बोधनं कथ्यते हि तत् ॥ ४४ ॥

इन मर्दन पातन आदि से यद्यपि नाग वङ्ग आदि के दोष तो हट जाते हैं परन्तु पारा स्वयं कुछ हीनवीर्य हो जाता है । इस दोष को दूर करने के लिये पारे का बोधन संस्कार किया जाता है ।

विशेषवचन—इस संस्कार को अन्यत्र निरोधन नाम से भी आचार्यों ने कहा है ॥ ४४ ॥

विश्वामित्रकपाले वा काचकूप्यामथापि वा ।
सूते जलं विनिक्षिप्य तत्र तन्मज्जनावधि ॥ ४५ ॥
पूरयेत् त्रिदिनं भूम्यां गजहस्तप्रमाणतः ।
अनेन सूतराजोऽयं षण्डभावं विमुञ्चति ॥ ४६ ॥

नारियल की नरेली या काचकूपी में पारा रखकर उसमें इतना जल डाले कि पारा डूब जाय । इस पात्र को फिर भूमि में तीस अंगुल नीचे गाड़ देवे, तीन दिन तक ऐसा ही रखे । इससे पारा नपुंसकत्व को छोड़ देता है ।

विशेषवचन—'सूते जलं विनिक्षिप्य' यह पाठ वस्तुतः ठीक नहीं। रसेन्द्र-चिन्तामणि से ही यह पाठ उद्धृत प्रतीत होता है । वहां 'सृष्ट्यम्बुजं विनिक्षिप्य' ऐसा पाठ है और वही ठीक है । रसहृदयतन्त्र में भी कहा है—

'मर्दनमूर्च्छनपातैः कदर्थितो भवति मन्दवीर्यत्वात् ।
सृष्ट्यम्बुजैर्निरोधाल्लब्धाप्यायो न षण्ढः स्यात् ॥'

परन्तु सृष्ट्यम्बुज का क्या अभिप्राय है इसमें मतभेद है । कई तो 'सृष्ट्यम्बुज' से केवलमात्र सैन्धव का ग्रहण करते हैं और कई शक्त्यवतार में कहे गये—

'गोजाविनरनारीणां मूत्रं शुक्रं च शोणितम् ।
सृष्टिरेषा समाख्याता षण्ढदोषविनाशिनी ॥'

इस वचन से मूत्र शुक्र और रज; इन तीन का सृष्टि से ग्रहण करते हैं

और अम्बुज से लवण लेते हैं । रसावतार में कहे गये—

'स्त्रीपुंसोः शुक्रयुगलमप्रसूतारजस्तथा ।
एतत्सृष्टित्रयं प्रोक्तं गुह्यमेतद्वरानने ॥'

इसके वचन अनुसार 'सृष्टि' से स्त्री और पुरुष दोनों के शुक्र और अप्रसूता स्त्री का रज लिया जाना चाहिये । परन्तु अधिकतर वैद्य 'सृष्ट्यम्बुज' से लवण का ही ग्रहण करते हैं और पारद को वहां डुबोने के लिये जल भी साथ डालते हैं । अन्यत्र कहा भी है—

'जलसैन्धवयुक्तस्य रसस्य दिवसत्रयम् ।
स्थितिराप्यायनी कुम्भे यासौ रोधनमुच्यते ॥'

केवल लवण से भी बोधन संस्कार का विधान मिलता है । यथा—

अथवा कूपिकामध्ये सूतं सैन्धवसंयुतम् ।
भूगर्भे च ततः स्थाप्यं एकविंशद्दिनावधि ।
अयं निरोधको नाम्ना महासुखकरो रसे ॥' ४५–४६ ॥

अथ हिङ्गुलाकृष्टो रसः—

अथवा हिङ्गुलात् सूतं ग्राहयेत् तन्निगद्यते ।
जम्बीरनिम्बुनीरेण मर्दितो हिङ्गुलो दिनम् ॥ ४७ ॥
ऊर्द्ध्वपातनयन्त्रेण ग्राह्यः स्यान्निर्मलो रसः ।
कञ्चुकैर्नागवङ्गाद्यैर्निर्मुक्तो रसकर्म्माणि ।
विना कर्माष्टकेनैव सूतोऽयं सर्वकर्म्मकृत् ॥ ४८ ॥

अथवा हिंगुल (शिंगरफ़) से पारा निकाले । उसकी विधि यों है कि हिंगुल को जम्बीरी या कागज़ी नीबू के रस से दिनभर मर्दन करे । फिर नीचे के पात्र में इस हिंगुल को रख ऊर्ध्वपातनयन्त्र की विधि से आग देकर ऊपर के पात्र में लगे हुए निर्मल पारे को निकाल ले । इसप्रकार से शुद्ध पारा नाग वंग आदि दोषों तथा सात कन्चुकों से रहित हो जाता है । अष्टकर्म करने के बिना भी यह पारा रसकर्मों में सब कर्मों के योग्य होता है ।

विशेषवचन—ऊर्ध्वपातनयन्त्र द्वारा पारद को ले लेने के पश्चात् उसे

त्रिगुण वा चतुर्गुण वस्त्र से छान लेना चाहिये और उष्ण कांजिक से धो डालना चाहिये । अथवा किसी अम्ल वा नमक के साथ दो दिन घोट कर जल से धो डाले और फिर वस्त्र से छान ले ॥ ४७—४८ ॥

अष्टकर्म यथा—

स्वेदनं मर्दनञ्चैव मूर्च्छनोत्थापने तथा ।
पातनं बोधनं चैव नियामनमतः परम् ॥४९॥
दीपनञ्चेति संस्काराः सूतस्याष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥ ५० ॥

स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्थापन, पातन, बोधन, नियामन, दीपन; ये आठ संस्कार पारे के होते हैं ।

विशेषवचन—क्षार अम्ल वा किसी अन्य औषध से दोलायन्त्र द्वारा पाचन करना स्वेदन कहाता है । स्वेदन से पारे के मल शिथिल हो जाते हैं। शास्त्र में कही भिन्न २ औषधों वा कांजी आदि अम्लों के साथ खरल में पारे को घोटना मर्दन कहाता है । मर्दन संस्कार से अधिकतर पारे के बाह्य मल नष्ट होते हैं । मर्दनार्थ कही गयी ही औषधों से घोटते घोटते पारे को नष्टपिष्ट कर देना मूर्च्छन कहाता है । इससे जल आदि से उत्पन्न कञ्चुक नष्ट होते है । स्वेद वा आतप (धूप) आदि द्वारा पुनः पारद को अपने स्वरूप में ले आना उत्थापन कहाता है । इससे मूर्च्छन से उत्पन्न उपद्रव (पारद का स्वरूपनाश) हट जाता है । उक्त औषधों के साथ पारद को मर्दन करके पातनायन्त्रों में डाल अग्नि की सहायता से ऊपर नीचे वा तिर्यक् निकालना पातन कहाता है । पातन संस्कार से नाग और वङ्ग के सम्पर्क से उत्पन्न कञ्चुक हट जाते हैं । बोधन संस्कार का लक्षण पूर्व कहा ही जा चुका है । मर्दन मूर्च्छन पातन आदि से उत्पन्न पारद के षाण्ढ्य दोष को हटाने के लिये ही यह संस्कार होता है । बोधन संस्कार द्वारा जब पारद पुनः वीर्यवान हो जाता है तब उसकी चपलता के नाश के लिये विशेष द्रव्यों के साथ स्वेद दिया जाता है । उसे नियमन संस्कार कहते हैं । पश्चात् पारद में स्वर्ण अभ्र आदि का ग्रास देना होता है । पारद उस ग्रास को खाले अर्थात् उसके अन्दर वह ग्रास पूर्णरूप से मिलजाय इसके लिये संस्कार

विशेष की आवश्यकता होती है । इस प्रयोजन की पूर्ति के लिये विशेष द्रव्यों वा अम्लों के साथ पूर्व पारद का स्वेदन किया जाता है । इसे ही दीपन संस्कार कहते हैं । यद्यपि संस्कार अठारह होते हैं परन्तु उनमें से ये आठ ही संस्कार मुख्यतम हैं । शेष संस्कार प्रायः धातुवाद में आवश्यक होते हैं अतः उनका यहां वर्णन उचित नहीं समझा गया ॥ ४९—५० ॥

मतान्तरम्—

दरदं तण्डुलस्थूलं कृत्वा मृत्पात्रके त्रिदिनम् ।
भाव्यं जम्बीररसैश्चाङ्गेर्य्या वा रसैर्बहुधा ॥ ५१ ॥
ततश्च जम्बीरवारिणा चाङ्गेर्य्या रसेन परिप्लुतम् ।
कृत्वा स्थालीमध्ये निधाय तदुपरि कठिनीघृष्टम् ॥ ५२ ॥
उत्तानं चारु शरावं तत्र त्रिंशद्वारं जलं देयम् ।
उष्णं हेयं तथैव तदूर्ध्वपातनेन निर्म्मलः शिवजः ॥५३॥

हिंगुल के चावलों के समान कण बना के अर्थात् जौकुट करके उसको मिट्टी के पात्र में तीन दिन तक जम्बीरी नीबू के रस या चाङ्गेरी के रस से भली प्रकार भावनायें दे । तदनन्तर यदि जम्बीरी के रस से भावनायें दी हों तो जम्बीरी नीबू के रस और यदि चाङ्गेरी के रस से भावनायें दी हों तो चाङ्गेरी के रस से उसे अच्छी प्रकार गीला करके हांडी के मध्य में रखे और उस हांडी के ऊपर खड़िया मिट्टी से लिपा हुआ (बाहर से कम से कम उतना स्थान जो हांडी के बीच में रहना है) एक शराव ऊपर को मुंह करके रखे । शराव का पेंदा हांडी के मुख को ढक ले । दोनों का सन्धिबन्धन कपड़ामिट्टी से कर दे । नीचे अग्नि दे । ऊपर के शराव में जल भर दे । जब जल गर्म हो जाय तो उसे निकाल कर शीतल जल डाल दे । इसप्रकार तीस वार (वस्तुतः वार-नियम यन्त्र तथा हिंगुल आदि के परिमाण पर निर्भर करता है) ठण्डा जल ऊपर के शराव में डाले । इसप्रकार ऊर्ध्वपातन करने से ऊपर के शराव के पैंदे में बाहिर की ओर खड़िया से मिला हुआ शुद्ध पारा मिलेगा (उसे वस्त्र में से छानकर उष्ण

काञ्जी से बार बार धोकर पारा पृथक् करले) ॥ ५१–५३ ॥

मतान्तरम्—

पारिभद्ररसैः पेष्यं हिङ्गुलं याममात्रकम् ।
जम्बीराणां रसैर्वाऽथ पचेत् पातनयन्त्रके ॥ ५४ ॥
तं सूतं योजयेद् योगे सप्तकञ्चुकवर्जितम् ।
संशुद्धिमन्तरेणापि शुद्धोऽयं रसकर्म्मणि ॥ ५५ ॥

हिंगुल को फरहद के रस से अथवा जम्बीरी नींबू के रस से एक पहर पीसे। फिर पातनयन्त्र में पकावे । ऊपर के पात्र में शुद्ध पारा मिलेगा। यह पारा सातों कञ्चुकों से रहित होगा। यह बिना अन्य संस्कारों के भी रसकर्म में शुद्ध माना गया है।

विशेषवचन—कई पारिभद्र से नीम लेते हैं। शार्ङ्गधर में नीम के पत्र के रस से मर्दन कर ऊर्ध्वपातन का विधान भी है ॥ ५४–५५ ॥

अथ मूर्च्छनम्—

गन्धकेन रसं प्राज्ञः सुदृढं मर्दयेद् भिषक् ।
कज्जलाभो यदा सूतो विहाय घनचापलम् ॥ ५६ ॥
दृश्यतेऽसौ तदा ज्ञेयो मूर्च्छितो रसकोविदैः ।
असौ रोगचयं हन्यादनुपानस्य योगतः ॥ ५७ ॥

शुद्ध हुए पारद को शुद्ध आंवलासार गन्धक के साथ खूब मर्दन करे। इससे पारा अपनी घनता और चपलता को छोड़कर कज्जल के समान काला चूर्ण हो जायगा। इसे रसशास्त्र के ज्ञाता मूर्च्छित पारद कहते हैं। कज्जली या मूर्च्छित पारा पृथक् २ अनुपानों से रोगसमूह को नाश करने वाला होता है ॥ ५६—५७ ॥

अथ मारणम्—

द्विपलं शुद्धसूतस्य सूतार्द्धं गन्धकं तथा ।
कन्यानीरेण सम्मर्द्य दिनमेकं निरन्तरम् ।

रुद्ध्वा तद्भूधरे यन्त्रे दिनैकं मारयेत् पुटे ।। ५८ ।।

शुद्ध पारा दो पल, शुद्ध गन्धक पारद से आधी अर्थात् १ पल, दोनों की कज्जली बना कर घीकुमार के रस से एक दिन निरन्तर मर्दन करके सम्पुट में बन्द करे और सूख जाने पर भूधरयन्त्र में दिन भर की पुट देकर मारण करे।

विशेष वचन—वस्तुतः इस विधि से पारद मरता नहीं । मूर्च्छितावस्था में ही रहता है। हां यदि मारक वर्ग की औषधियों के रस से भावनायें दे दी जांय तो कथञ्चित् मर सकता है।

इसमें कहा गया भूधरयन्त्र वह नहीं है जिसे चित्रों में दिखाया गया है। इस भूधरयन्त्र का बिधान इस प्रकार है कि भूमि में एक गढ़ा खोदें और उसमें दो या तीन अंगुल की तह में बालुका बिछा दें। उस पर मूषा या सम्पुट रख कर चारों ओर दो दो या तीन तीन अंगुल बालुका भर दें। इसी प्रकार मूषा के ऊपर भी कम से कम दो या तीन अंगुल बालुका आजानी चाहिये। अब ऊपर जंगली उपले रख कर आग लगा दी जाती है। रस-रहस्य में भी ऐसी भस्म का विधान है—

सूतं गन्धकसंयुक्तं कुमारीरसमर्दितम् ।
कृष्णवर्णं भवेद्भस्म देवानामपि दुर्लभम् ॥

आधुनिक मात्रा १ रत्ती से ३ रत्ती तक है ॥ ५८ ॥

मतान्तरम्—

भुजङ्गवल्लीनीरेण मर्दयेत् पारदं दृढम् ।
कर्कोटीकन्दमृण्मूषासम्पुटस्थं¹ पुटेद्गजे ।
भस्म तद्योगवाहि स्यात् सर्वकर्मसु योजयेत् ।। ५९ ।।

शुद्ध पारे को पान के पत्तों के रस से भली प्रकार मर्दन करे और बांझ-ककोड़े के कन्द में छिद्र कर उस में इस पारे को भरे। फिर शरावसम्पुट में उस को रखकर गजपुट में भस्म करे । इसप्रकार से पारे की भस्म हो जाती है। यह भस्म योगवाही है। इसे सब कार्यों में प्रयुक्त कर सकते हैं।

---

१ 'कर्कटीकन्दमूषायां सम्पुटस्थं' इति पाठः प्रचरति ।

विशेषवचन—अथवा बांझककोड़े के कन्द को कूट कर कल्क बनायें और उस कल्क की मूषा में पारे को बन्द करें। पारदभस्म की मात्रा—१ रत्ती।

योगवाही उसको कहते हैं जिसे जिस योग के साथ मिलाया जाय उसके गुणों को ही करने लगे। इस प्रकार उस योग की शक्ति बढ़ जाती है ॥ ५९ ॥

मतान्तरम्—

श्वेताङ्कोठजटानीरैर्मर्द्यः सूतो दिनत्रयम्।
पुटेत्तु चान्धमूषायां सूतो भस्मत्वमाप्नुयात् ॥ ६० ॥

श्वेत अङ्कोल की जड़ के रस से शुद्ध पारे को तीन दिन मर्दन करे। फिर अन्धमूषा में भरकर पुट दे तो पारा भस्म हो जाता है।

विशेषवचन—अन्धमूषा गोस्तनी मूषा का दूसरा नाम है। रसार्णव में अन्धमूषा का लक्षण इस प्रकार है—

'अन्धमूषा तु कर्तव्या गोस्तनाकारसन्निभा।
पिधानकसमायुक्ता किञ्चिदुन्नतमस्तका ॥'

यहां पर यद्यपि गन्धक का डालना नहीं कहा तो भी पारद के समान गन्धक डाली जाती है और पुट भूधरयन्त्र में दी जाती है। रसरत्नसमुच्चय में तो स्पष्ट कहा है—

'अङ्कोलस्य शिफावारिपिष्टं खल्वे विमर्दयेत्।
सूतं गन्धकसंयुक्तं दिनान्ते तं निरोधयेत् ॥
पुटयेद् भूधरे यन्त्रे रात्र्यैकेन मृतो भवेत् ॥'

अथवा 'पुटेत्तु चान्धमूषायां' पाठ में 'तु' और 'च' दोनों का पढ़ना कोई अच्छा नहीं, अतः कई 'पुटेत्तु गन्धमूषायां' ऐसा पाठ चाहते हैं। तब अङ्कोल की जड़ के रस से पारे का मर्दन करके गन्धकनिर्मित मूषा में उस पारे को डाल कर मूषा को शरावसम्पुट में बन्द कर पुट देनी होगी। मात्रा—१ रत्ती ॥ ६० ॥

देवदाली हंसपदी यमचिञ्चा पुनर्नवा।
एभिः सूतो विघृष्टव्यो पुटनात् म्रियते ध्रुवम् ॥ ६१ ॥

[इति भस्म]

देवदाली, (बंदालडोडा), हंसराज, यमचिञ्चा (कच्ची इमली) और पुन-

नेवा; इन सब के साथ पारे को मर्दन करके पुट दें तो भी पारा अवश्य मर जाता है।

विशेषवचन—यहां पर भी पारद के समान गन्धक डालकर कज्जली करनी चाहिये। 'यमचिञ्चा' के स्थान पर 'यवतिक्ता' पाठ भी मिलता है॥ ६०-६१॥

(यह पारे की भस्म हुई)

अथ रससिन्दूरम्—

भागो रसस्य त्रय एव भागा गन्धस्य माषः पवनाशनस्य।
सम्मर्द्य गाढं सकलं सुभाण्डे तां कज्जलीं काचघटे निदध्यात्॥६२॥
संरुध्य[1] मृत्कर्पटकैर्घटीं तां मुखे सुचूर्णां खटिकाञ्च[2] दत्वा।
क्रमाग्निना त्रीणि दिनानि पक्त्वा[3] तां वालुकायन्त्रगतां ततः स्यात्॥
बन्धूकपुष्पारुणमीशजस्य भस्म प्रयोज्यं सकलामयेषु।
निजानुपानैर्मरणं जराञ्च हन्त्यस्य वल्लः क्रमसेवनेन॥ ६४॥

शुद्ध पारा १ पल अर्थात् ८ तोला, शुद्ध गन्धक २४ तोला, सीसकभस्म १ मासा (१२ रत्ती) सब को घोटे। कज्जल समान हो जाने पर उसको एक काचकूपी भर दे। उस काचकूपी पर भलीप्रकार कपड़मिट्टी करे और उसके मुंह पर खड़िया मिट्टी का डाट लगा कर चूर्णित खड़िया मिट्टी के लेप से दृढ़ बंद कर दे। पश्चात् वालुकायन्त्र में कूपी को रखे और नीचे से क्रमशः मन्द, मध्यम और तीक्ष्ण आंच देकर उसको तीन दिन तक पकावे। स्वांगशीतल होने पर शीशी को तोड़कर पारे की भस्म निकाले। यह भस्म दोपहरिया के फूल के समान लाल रंग की होगी। इसको सब रोगों में अपने अपने अनुपान के साथ प्रयुक्त करे। इस भस्म को डेढ रत्ती मात्रा में यथाविधि सेवन करने से मृत्यु और बुढ़ापा भी नष्ट होता है।

विशेषवचन—कई यहां सीसकभस्म नहीं डालते, वे खरल में शुद्ध पारे

---

१ 'संवेष्ट्य' पा०। २ 'सचूर्णां गुटिकाञ्च' पा०।
३ 'पच्यात्तां' पा०।

को डाल ऊपर से पिघला हुआ विशुद्ध सीसा डाल देते हैं और शीघ्रता से मिला घोट देते हैं। इससे सीसक बिना कष्ट के पारे के साथ मिल जाता है और पश्चात् गन्धक देकर कज्जली कर लेते हैं।

काचकूपी में यह रससिन्दूर शीशी के गले और स्कन्ध देश में लगा हुआ प्राप्त होता है। रससिन्दूर को मूल में भस्म नाम से कहा है, वस्तुतः यह भस्म नहीं। इसे मूर्च्छित पारद कह सकते हैं। सिन्दूर के सदृश वर्ण होने से इसका नाम रससिन्दूर प्रसिद्ध है। यहां वालुकायन्त्र द्वारा अन्तर्धूम मूर्च्छना करनी है। अन्तर्धूम मूर्च्छन में काचकूपी का मुख पाक करने से पूर्व ही बन्द कर देना होता है। मुखबन्धन इतना दृढ़ होना चाहिये कि गन्धक-धूम बाहिर न निकले। इसमें कूपी के मुख पर भी पांच छह अङ्गुल वालुका आजानी चाहिये। अन्तर्धूम पाक अति सावधानी से उचित वालुकायन्त्र में करना चाहिये। रससिन्दूर की आधुनिक मात्रा जो वृद्धवैद्य व्यवहार में लाते हैं १ रत्ती है॥ ६२–६४॥

मतान्तरम्—

पलमात्रं रसं शुद्धं तावन्मात्रन्तु गन्धकम्।
विधिवत् कज्जलीं कृत्वा न्यग्रोधाङ्कुरवारिभिः॥ ६५॥
भावनात्रितयं दत्त्वा स्थालीमध्ये निधापयेत्।
विरच्य कवचीयन्त्रं वालुकाभिः प्रपूरयेत्॥ ६६॥
दद्यात् तदनु मन्दाग्निं भिषग् यामचतुष्टयम्।
जायते रससिन्दूरं तरुणादित्यसन्निभम्।
अनुपानविशेषेण करोति विविधान् गुणान्॥ ६७॥

शुद्ध पारा १ पल, शुद्ध गन्धक १ पल दोनों की कज्जली बनाकर बड़ के अंकुरों के स्वरस से तीन भावनायें दे। फिर एक काचकूपी में भरे। इस काचकूपी पर पूर्व ही कपड़मिट्टी कर रखनी चाहिये। इस कवचीयन्त्र को एक बड़े पात्र में रख चारों ओर से बालु से भर दे। नीचे ४ पहर तक मन्द अग्नि दे। इस से तरुण सूर्य (उदीयमान सूर्य) के समान लाल रंग का रससिन्दूर

बनता है । इसे विशेष २ अनुपानों से दें तो विविध गुण करता है ।

विशेषवचन--ये बाहिर्धूम पाक की विधि है । इसमें काचकूपी का मुख पहिले नहीं बन्द किया जाता । जब गन्धक-धूम निकलना बन्द हो जाता है तब खड़िया मिट्टी के डाट से मुख बन्द कर दिया जाता है और सन्धि-लेप करके २ पहर तक पकाते हैं । इस प्रकार यह पाक लगभग १२ घण्टे में हो जाता है । छह या सात घण्टे धूम के निकलने में लगते हैं और पश्चात् पांच या छह घण्टे मुख बन्द करके पाक होता है । बहिर्धूमार्थ बालुकायन्त्र में काचकूपी के कण्ठ तक बालुका भरी जानी चाहिये । मुख खुला रहता है । इस विधि में काचकूपी का गला खुला और कम ऊंचा होना अच्छा है ॥ ६५-६७ ॥

मतान्तरम्--

पृथक् समं समं कृत्वा पारदं गन्धकं तथा ।
नरसारं धूमसारं स्फटिकं याममात्रकम् ॥ ६८ ॥
निम्बूरसेन सम्मर्द्य काचकूप्यां निवेशयेत् ।
मुखे पाषाणखटिकां दत्त्वा मुद्रां प्रलेपयेत् ॥ ६९ ॥
सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैः पृथक् संशोष्य वेष्टयेत् ।
सच्छिद्रायां मृदः स्थाल्यां कूपिकां तां निवेशयेत् ॥ ७० ॥
पूरयेत् सिकतापूरैः आगलं मतिमान् भिषक् ।
निवेश्य चुल्ल्यां दहनं मन्दं मध्यं खरं क्रमात् ॥ ७१ ॥
प्रज्ज्वाल्य द्वादशं यामं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
स्फोटयित्वा तु मुक्ताभमूर्द्ध्वलग्नं बालिं त्यजेत् ।
अधःस्थं रससिन्दूरं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ७२ ॥

शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, नवसादर १ भाग, रसोई घर का धुंआं १ भाग, फिटकरी १ भाग । पहले पारे गन्धक की कज्जली करे । फिर शेष द्रव्य मिलाकर भलीप्रकार मर्दन करे । अनन्तर नीबू का रस डालकर

१ पहर मर्दन करे। पश्चात् इसे एक काचकूपी में भर दे और कूपी के मुख पर खड़िया का डाट लगाकर सन्धिस्थान बन्द कर दे। इस कूपी पर सात बार कपड़मिट्टी करके धूप में सुखा लेवे। फिर मध्य में छिद्र (अङ्गुष्ठप्रमाण) वाली मिट्टी की हांडी में इस कूपी को रख दे और हांडी में इतना रेता भरे कि काचकूपी के गले तक आ जाय। अब इस हांडी को चूल्हे पर रखकर, मन्द, मध्य और तीव्र आंच क्रमशः देवे। इस प्रकार १२ पहर आंच देकर स्वाङ्गशीतल होने पर कूपी को बाहर निकाले। इस कूपी को तोड़े और कूपी के गले में लगी हुई श्वेत वर्ण की गन्धक को फेंक देवे। गन्धक से नीचे कूपी के स्कन्ध देश में रससिन्दूर लगता है उसे लेकर सब रोगों में प्रयुक्त करे।

विशेषवचन--यहां जो गन्धक लगी होती है वह नौशादर आदि के धूम्र के मिले होने से वर्ण में श्वेत होती है। अथवा 'मुक्ताभ' का अर्थ—छोड़ दी है अपनी आभा जिसने—यह भी हो सकता है। रससिन्दूर की पूर्णमात्रा १ रत्ती है ॥ ६८–७२ ॥

अथ रसकर्पूरम्—

टङ्कणं मधु लाक्षा च ऊर्णा गुञ्जायुतो रसः ।
मर्दितो भृङ्गजद्रावैः दिनैकं चान्धयेत् पुनः ।
ध्मातो भस्मत्वमाप्नोति शुद्धकर्पूरसन्निभम् ।। ७३ ।।

सुहागा, शहद, कच्ची लाख, ऊन, रत्तियां प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग ले, पारा १ भाग ले। सब को पीस भांगरे के रस में एक दिन मर्दन करे, फिर अन्धमूषा में बन्दकर धौंकनी से धमावे तो पारा भस्म हो जाता है और शुद्ध कपूर के समान पारदभस्म मिलता है। अतएव ही इसका नाम रसकपूर है ॥ ७३ ॥

मतान्तरम्—

पिष्टं पांशुपटुप्रगाढममलं वज्र्यम्बुना नैकशः
सूतं धातुगतं खटीकवलितं तत्सम्पुटे रोधयेत् ।।

---

१ चालयेदित्यपपाठः। 'ध्मापयेत्' पा०।

अन्तःस्थं लवणस्य तस्य च तले प्रज्वाल्य वह्निं दृढं।
घस्रं ग्राह्यमथेन्दुकुन्दधवलं भस्मोपरिस्थं शनैः ॥ ७४ ॥
तद्वल्लद्वितयं लवङ्गसहितं प्रातः प्रभुक्तं नृणा-
मूर्द्ध्वं रेचयति द्वियाममसकृत् पेयं जलं शीतलम्।
एतद्धन्ति च वत्सराधिकविषं षाण्मासिकं मासिकं
शैलोत्थं गरलं मृगेन्द्रकुटिलोद्भूतञ्च तात्कालिकम् ॥७५॥

(रसकर्पूरमिति रसमञ्जरीकारः श्वेतभस्मेति चन्द्रिकाकारः)

शुद्ध कासीस और सैन्धवलवण को शुद्ध पारे से मिलाकर पीसे, फिर डण्डा थोहर अर्थात् सेहुण्ड के दूध से अनेक बार घोटे। फिर इसे एक लोहे के कटोरे के सम्पुट में बन्द करके खड़ियामिट्टी से सन्धिलेप कर दे। एक हांडी में कुछ नमक डाल इस सम्पुट को रख हांडी के अवशिष्ट भाग को नमक से भर दे। अब इसके नीचे एक दिन तक तीव्र आग देवे। स्वांगशीतल होने पर खोलें। ऊपर के कटोरे में लगी हुई चन्द्रमा और कुन्द के फूल के समान श्वेत रंग की भस्म मिलेगी। इसे ही रसकर्पूर कहते हैं। इस भस्म को दो वल्ल भर अर्थात् तीन रत्ती लेकर लौंग के चूर्ण के साथ प्रातःकाल खाने से ६ घंटे के पीछे दस्त आने आरम्भ हो जाते हैं। इसके सेवन के पीछे कई बार शीतल जल पीना चाहिये। इस रस के खाने से एक वर्ष से पुराना विष, वर्ष भर का विष, ६ मास तक का विष तथा एक मास तक का विष दूर होता है। पार्वतीय अथवा खनिज विष को भी यह नष्ट करता है। सिंह की दाढ़ के विष अर्थात् शेर के काटने से (तथा शेर की मूंछों के बालों के खाने से) उत्पन्न विष में यदि तत्काल ही इसका प्रयोग किया जाय तो उसे भी यह रसकपूर नष्ट करता है। (इस का नाम रसमञ्जरीकार रसकर्पूर कहते हैं चन्द्रिकाकार इसे पारे की श्वेतभस्म कहते हैं। डाक्टर इसे कैलोमल कहते हैं। विरेचनार्थ आधुनिक मात्रा दो अथवा ढाई रत्ति की है)।

विशेषवचन--यह स्मरण रखना चाहिये कि रसकर्पूर नाम से जो योग आयुर्वेद में मिलते हैं वे रासायनिक दृष्टि से एक नहीं है। अभिप्राय इतना

ही है कि उन उन विधियों से पारदभस्म कर्पूरवत् श्वेतवर्ण की होती है। अतः अन्धाधुन्ध एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग कदापि न होना चाहिये ॥ ७४—७५ ॥

सर्वाङ्गसुन्दरो रसः—

मर्दयेत् रसगन्धौ च हस्तिशुण्डीद्रवैर्दृढम् ।
भूधात्रिकारसैश्चापि पर्य्यन्तं दिनसप्ततः ॥ ७६ ॥
विघृष्य वालुकायन्त्रे मूषायां सन्निवेशयेत् ।
दिनमेकं दहेदग्नौ मन्दं मन्दं निशावधि ॥ ७७ ॥
एवं निष्पाद्यते पीतः शीतः सूतस्तु गृह्यते ।
पर्णखण्डेन तद्गुञ्जां भक्षयेत् सततं हिताम् ॥ ७८ ॥
क्षुद्बोधं कुरुतेऽपूर्व्वमुदराणि विनाशयेत् ।
ज्वराणां नाशनः श्रेष्ठस्तद्वत् श्रीसुखकारकः ॥ ७९ ॥
हृदयोत्साहजननः सुरूपतनयप्रदः ।
बलप्रदः सदा देहे जरानाशनतत्परः ॥ ८० ॥
अङ्गभङ्गादिकं दोषं सर्वं नाशयति क्षणात् ।
एतस्मान्नापरः सूतो रसात् सर्व्वाङ्गसुन्दरात् ॥ ८१ ॥

(पीतभस्मेति चन्द्रिकाकारः)

शुद्ध पारा तथा शुद्ध गन्धक समभाग (एक २ पल) ले। इनकी कज्जली बना कर हाथीसुंडी के रस से सात दिन तक मर्दन करे, फिर भूम्यामलकी (भुंई आंवला) के रस से सात दिन तक मर्दन करे। इसे मूषा में डालकर वालुकायन्त्र में एक दिन भर रात्रिपर्यन्त अर्थात् ४ प्रहर मन्द मन्द अग्नि से पाक करे। स्वांगशीतल होने पर पारे की पीले रंग की भस्म मिलेगी। इसको एक रत्ती भर ले पान के अन्दर रखकर खावे तो परम हितकारी है। यह खूब भूख लगाती

१ 'रसैर्वापि' पा०। २ 'जराणां' पा०।

है, उदररोगों का नाश करती है, ज्वरों को दूर करती है, लावण्य (कान्ति) और सुख (आरोग्य) देती है, हृदय में उत्साह भरती है, सुन्दर रूप वाला पुत्र देती है, सदा देह में बल भरती है तथा बुढ़ापे को दूर रखती है। अङ्गभङ्गादि सब दोषों का क्षण भर में (शीघ्र) नाश करती है। इस सर्वाङ्ग-सुन्दर रस से बढ़कर और कोई पारदभस्म नहीं। (इसका नाम चन्द्रिकाकार "पीतभस्म" कहते हैं) ॥ ७६–८१ ॥

अथ कृष्णभस्म–

धान्याभ्रकं रसं तुल्यं मर्दयेत्[1] मारकद्रवैः ।
दिनैकं तेन कल्केन वस्त्रं लिप्त्वा तु वर्त्तिकाम् ॥ ८२ ॥
विलिप्य तैलैर्वार्त्तिं तामेरण्डोत्थैः पुनः पुनः ।
तदाज्यं[2]भाण्डे प्रज्वाल्य गृह्णीयात् पतितञ्च यत् ॥ ८३ ॥
कृष्णभस्म भवेत् तच्च पुनर्मर्द्य[6] नियामकैः[3] ।
दिनैकं पाचयेत्[4] यन्त्रे कन्दुकाख्ये न संशयः[5] ॥
मृतः सूतो भवेत् सद्यः तत्तद्रोगेषु[7] योजयेत् ॥ ८४ ॥

शुद्ध धान्याभ्रक और शुद्ध पारे को समभाग में लेकर मारक द्रवों से एक २ दिन मर्दन करे (और नष्टपिष्ट कर ले)। फिर इस कल्क को कपड़े पर लीपकर उसकी बत्ती बनावे। बत्तीको एरण्ड के तेल से पुनः पुनः लीप कर जलावें। उस जलती हुई बत्ती से जो बूंदें नीचे रखे घृतभावित पात्र में गिरें उन्हें एकत्रित कर ले। वह पारे की कृष्णभस्म होगी। उसे फिर नियामकवर्ग की औषधियों से एक २ दिन मर्दन करके कन्दुक

---

१ मारयेदित्यपपाठः ।
२ 'प्रज्वाल्य तद्धृतं भाण्डे ग्राहयेत्पातितामधः' इति रसरत्नाकरे पाठः ।
३ 'त्रियामकैः' रसरत्नाकरपाठः ।
४ 'पातयेदित्यपपाठः ।
५ 'दिनैकं तत्पचेद्यन्त्रे कच्छपाख्ये न संशयः' इति रसरत्नाकरे पाठः ।
६ 'तच्च' पा० । ७ 'तत्तद्योगेषु' पा० ।

यन्त्र में पकावे । इसप्रकार से पारे की भस्म हो जाती है इसमें कुछ संशय नहीं है । इसे भिन्न २ रोगों में प्रयुक्त करे ।

विशेषवचन—कुण्डकयन्त्र का नाम ही अपभ्रंश से कन्दुकयन्त्र हो गया है । इस में एक हाण्डी में स्वेदनार्थ उपयोगी द्रव डाल दिया जाता है और उसके मुख पर कपड़ा बांध देते हैं । कपड़े पर स्वेद्य द्रव्य रख देते हैं और एक शराव से मुंह बन्द कर देते हैं । नीचे मन्द आंच दी जाती है । यहां पर स्वेदनार्थ नियामक औषधियों का ही रस दिया जाता है । नियामन वा मारण के लिये द्रव्य अठारह से कम न होने चाहियें । यद्यपि मारणवर्ग की ओषधियों में गन्धक के विना भी पारे को मारने की शक्ति[1] है तो भी इस विधि में यदि अनुक्त गन्धक भी डाली जाय तो उत्तम हो । गन्धक पारद के समान वा पारद से कम से कम आधी होनी चाहिये । 'नियामकैः' के स्थान पर 'त्रियामकैः' तथा 'कन्दुकाख्ये' के स्थान पर 'कच्छपाख्ये' ऐसा पाठ है । तब अभिप्राय यह होगा कि पुनः मारक द्रव्यों से तीन २ पहर मर्दन करके ओषध को सुखावे और कच्छपयन्त्र में एक दिन पाक करे । इससे अवशिष्ट अनुपयोगी गन्धक जीर्ण होजायगी । मात्रा १ रत्ती ॥ ८२—८४ ॥

श्वेतं पीतं तथा रक्तं कृष्णञ्चेति चतुर्विधम् ।
लक्षणं भस्मसूतानां श्रेष्ठं स्यादुत्तरोत्तरम् ॥ ८५ ॥

श्वेत, पीली, लाल तथा काली इन चार वर्णों की पारे की भस्में होती हैं । इनमें पहली से पिछली २ अधिक श्रेष्ठ होती है ॥ ८५ ॥

अथ वज्रमूषाकरणम्—

द्वौ भागौ तुषदग्धस्य चैका वल्मीकमृत्तिका ।
लौहकिट्टस्य भागैकं श्वेतपाषाणभागिकम् ॥ ८६ ॥

---

१ रसेन्द्रचिन्तामणि में कहा है—

ओषधीर्याः समस्ता वा व्यस्ता वाष्टादशोत्तराः ।
योजिताः घ्नन्ति देवेशि सूतं गन्धं विनापि ताः ॥

कई 'गन्धं विनापि ताः' के स्थान पर 'गन्धविलेपितम्' ऐसा पाठान्तर पढ़ते हैं ॥

नरकेशसमं किञ्चित् छागीक्षीरेण पेषयेत् ।
याममात्रं[1] दृढं मर्द्यं तेन मूषां[2] प्रकल्पयेत् ॥ ८७ ॥
शोषयित्वा[3] रसं क्षिप्त्वा तत्कल्कैः सन्निरोधयेत्[4] ।
वज्रमूषेयमाख्याता[5] सम्यक् पारदसाधिका[6] ॥ ८८ ॥

जले हुए तुष दो भाग, बमीठे की मिट्टी १ भाग, लोहे का मैल १ भाग, संगमरमर (दग्ध) १ भाग, पुरुष के बाल १ भाग; सब को बकरी के दूध में एक पहर तक दृढ़ता से पीसकर मूषा बना ले। इसको सुखाकर इस में पारा भर दे और इसी मूषाकल्क से उस मूषा को बन्द कर देवे। यह वज्रमूषा कहाती है। इस में पारा भली प्रकार सिद्ध हो जाता है।

विशेषवचन—कई श्वेतपाषाण से खड़िया मिट्टी का ग्रहण करते हैं ॥८६-८८॥

अथ नियामकगणः—

सर्पाक्षी वन्ध्यकर्कोटी[7] कञ्चुकी यमचिञ्चिका[8] ।
शतावरी शङ्खपुष्पी[9] शरपुङ्खा पुनर्नवा ॥ ८९ ॥
मण्डूकपर्णी मत्स्याक्षी ब्रह्मदण्डी शिखण्डिनी ।
अनन्ता काकजङ्घा च काकमाची च पोतिका[10] ॥ ९० ॥
विष्णुक्रान्ता सहचरा सहदेवी महाबला ।
बला नागबला मूर्वा चक्रमर्दकरञ्जकौ[11] ।
पाठा तामलकी[12] नीली जालिनी[13] पद्मचारिणी ॥ ९१ ॥

---

१ यामद्वयमित्यन्यत्र पाठः । २ 'मूषान्धसम्पुटात्' पा० ।
३ 'शोषयित्वाऽथ संलिप्त्वा' र० र० पाठः । ४ 'संनिरुध्य च' पा० ।
५ 'वज्रमूषा समाख्याता' पा० । ६ 'पारदमारिका' र० र० पाठः ।
७ 'वह्निकर्कोटी' पा० । 'वन्ध्यकर्कोटी' इति वा पाठः साधुः । ८ 'जलचिञ्चिका' पा० ।
९ 'भृङ्गराजः' इत्यन्यत्र । १० 'कपोतिका' पा० ।
११ 'चक्रमर्दः कुरङ्गिणी' पा० । १२ 'चामलकी' पा० ।
१३ 'ज्वालिनी' पा० ।

घण्टा विघण्टा गोजिह्वा कोकिलाक्षो घनध्वनिः ।
आखुपर्णी क्षीरिणी च त्रिपुटी मेषशृङ्गिका ॥ ९२ ॥
कृष्णवर्णा च तुलसी सिंही च गिरिकर्णिका ।
एता नियामकौषध्यः पुष्पमूलदलान्विताः ॥ ९३ ॥

गन्धनाकुली, जंगली ककोड़ा, कन्चुकी (क्षीरीश वृक्ष अथवा चना—नियमनसंस्कार में चणकक्षार का प्रयोग मिलता है), कच्ची इमली, शतावरी, शंखपुष्पी (संखाहुली), शरपुंखा (सरफोंका), पुनर्नवा, मण्डूकपर्णी, मछेछी, ब्रह्मदण्डी, रत्ती, अनन्ता (अनन्तमूल वा दुरालभा), काकजंघा, मकोय, पोईशाक, विष्णुक्रान्ता, झिण्टी, सहदेवी, महाबला, बला, नागबला, मूर्वा, पंवाड, करञ्ज, पाठा, भूमी आमला, नील, कडवी तोरी, भारंगी, घण्टा (धतूरा वा अतिबला), गुलच्छकन्द, गोजिह्वा (गावज़बां), तालमखाना, मोथा, मूषकपर्णी, दूधी वा खिरनी, एरण्ड, मेढ़ासिंगी, काली तुलसी, बड़ी कटेरी (अथवा सिंहिका नामक ओषधिविशेष), गिरिकर्णी (नीली अपराजिता अथवा अमलतास), ये सब ओषधियां फूल मूल पत्तों सहित ले। ये पारे की नियामक हैं ॥ ८९—९३ ॥

अथ मारकवर्गः—

घनवचाचित्रकगोक्षुराः कटुतुम्बी दन्तिका जातिः ।
सर्पाक्षी शरपुङ्खा कन्या चाण्डालिनीकन्दम् ॥ ९४ ॥
विषमुष्टिवज्रवल्ल्यौ लज्जा लाक्षा च देवदाली च ।
सहदेवी नीपकणा निर्गुण्डी चक्रलाङ्गलिके ॥ ९५ ॥
माणार्कचन्द्ररेखा रविभक्ता काकमाचिका चार्कः ।
विष्णुक्रान्ता वायसतुण्डी वज्री च बला च शुण्ठी च ॥९६॥

१ 'गोजिह्विका त्वजिह्वा च' पा० ।

२ ' त्रिपर्णा च द्विपर्णी चैकपर्णिका' । तित्तिडी क्षीरिणी रास्ना मेषशृङ्गी च कुक्कुटी' ॥ इत्यन्यत्र । ३ 'श्वेता च गिरिकर्णिका' पा० । ४ 'सिंहिका नाम विख्याता श्वेतपुष्पा पयस्विनी । कुलत्थपत्रवत्पत्रा क्षीरकन्दा लता भवेत् ॥'

कोषातकी जयन्ती वाराही हस्तिशुण्डिका रम्भा।
मत्स्याक्षी यमचिञ्चा हरिद्रे द्वे पुनर्नवाद्वितयम् ॥ ९७ ॥
धुस्तूरकाकजङ्घे शतावरी कञ्चुकी च वन्ध्या च।
तिलभेकपर्णिदूर्वा मूर्वा च हरीतकी तुलसी ॥ ९८ ॥
गोकण्टकाखुपर्ण्यौ कर्कटी कन्दवर्गलता च।
मुषली हिङ्गु-गुडूची शिग्रुर्गिरिकर्णिका महाराष्ट्री ॥ ९९ ॥
मार्कव-सैन्धव-सरणी-सोमलताः श्वेतसर्षपोऽसनकः।
हंसपदी व्याघ्रपदी किंशुकभल्लातकेन्द्रवारुणिकाः ॥१००॥
सर्वञ्चाद्वांशं वा अष्टादशाधिकं वाऽपि द्रव्यम्।
रसमारणमूर्च्छादौ युक्तिज्ञैर्विधिवदुपयोज्यम् ॥ १०१ ॥

नागरमोथा, वच, चीता(लाल), गोखरू, कड़वी तुम्बी, दन्ती, चमेली, गन्ध-नाकुली, सरफोंका, घीकुमार, चाण्डालिनीकन्द, कुचला, वज्रवल्ली, लज्जा-वन्ती, लाख, बंदाल, सहदेवी, कदम्ब, पिप्पली, संभालू, चक्र (चक्रमर्द अथवा चक्रिका नामक ओषधिविशेष), कलिहारी, माणकन्द, श्वेत आक (अथवा सूर्य-रेखा नामक औषधिविशेष अथवा अर्कपुष्पी), सोमराजी (कालीजीरी), आदित्य-भक्ता (सूरजमुखी), मकोय, लाल आक, विष्णुक्रान्ता, कौआठोडी, सेहुण्ड, बला, सोंठ, कड़वी तोरी, जयन्ती, वाराहीकन्द, हाथीसुण्डी, केला, मछेछी,

१ 'कर्कटीकन्दपर्णलता' इति वा पाठः।

२ 'चाण्डालीति विनिर्दिष्टा त्रिचतुष्पत्रधारिणी।
सरक्ता क्षीरकन्दा च तया सूतो निबध्यते ॥'

३ कोरण्टपत्रच्छदनोपमानप्रसूनपत्रा च सदुग्धकन्दा।
सा वज्रवल्ली कटुतिक्तसारा वज्राङ्कपत्रा रसबन्धिनी च ॥
इति रसेन्द्रचूडामणौ

४ 'मुसलीकन्दवत्कन्दा तद्दलाकारतद्दला।
सक्षीरा लोमशा प्रोक्ता वाराही रसबन्धिनी ॥'

कच्ची इमली, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, धतूरा, काकजंघा, शतावरी, कञ्चुकी, वन्ध्याकर्कोटी, तिल, मण्डूकपर्णी, दूर्वा, मूर्वा, हरड़, तुलसी, गोखरू, मूषकपर्णी, ककड़ी, कन्दवर्ग की लतायें, मूषली, हींग, गिलोय, साहिजन (सुहांजना), गिरिकर्णी (अपराजिता), जलपिप्पली, भांगरा, सेंधा-नमक, गन्धप्रसारणी, सोमलता, श्वेतसरसों, असन, हंसराज, व्याघ्रपदी[1], केसू, इन्द्रायण; युक्तिज्ञ वैद्यों को चाहिये कि वे इन सब द्रव्यों का या इनमें से आधे या अठारह से अधिक द्रव्यों का पारे के मारण तथा मूर्च्छन आदि में विधि-वत् उपयोग करे ॥ ९४—१०१ ॥

अथ अम्लगणः—

अम्लवेतस–जम्बीर–लुङ्गाम्ल–चणकाम्लकाः ।
नागरङ्गं तिन्तिडी च चिञ्चापत्रं[2] च निम्बुकम् ॥ १०२ ॥
चाङ्गेरी दाडिमश्चैव करमर्दं तथैव च ।
एष चाम्लगणः प्रोक्तो बदराम्लसमायुतः[3] ॥ १०३ ॥

अम्लवेत, जम्बीरी, मातुलुङ्ग (बिजौरा), चणकाम्ल, नारंगी, तिन्तिड़ी (वृक्षाम्ल, विषांबिल), इमली के पत्ते (चकार से फल का भी ग्रहण होता है), नीबू, चांगेरी, खट्टा अनार, करौंदा, खट्टे बेर वा बेर की खटाई; इन सब से अम्लवर्ग होता है।

विशेषवचन–'बदराम्लसमायुतः' के स्थान पर 'वेतसाम्लसमायुतः' यह पाठ प्रचलित है। यदि उसी पाठ के रखने में आग्रह हो तो अम्लवेतस के दोबार पढ़ने का अभिप्राय यही समझा जाना चाहिये कि वह अम्लवर्ग में मुख्यतम है और उसका ग्रहण अवश्य करना चाहिये। अन्यत्र कहा भी है—

'चणकाम्लं च सर्वेषामेकमेव प्रशस्यते ।
अम्लवेतसमेकं वा सर्वेषामुत्तमोत्तमम्' ॥ १०२—१०३ ॥

---

१ 'व्याघ्राङ्घ्रिसमपत्रा या रक्तपुष्पा पयस्विनी ।
व्याघ्रपादीति निर्दिष्टा रसं बध्नाति निश्चितम् ॥'

२ अत्र चिञ्चा धान्याम्बु (काञ्जिकं) निम्बुकम् इति वा पाठः कार्यः ।

३ 'वेतसाम्लसमायुतः' इत्यपपाठः अम्लवेतसस्य पूर्वमेवोक्तत्वात् ।

अथ लवणवर्गः—

लवणानि च कथ्यन्ते सामुद्रं सैन्धवं विडम् ।
सौवर्चलं रोमकञ्च चुल्लिकालवणं तथा ॥ १०४ ॥

सामुद्रलवण, सेंधा, विड, सौंचल, रोमक (सांभर), चुल्लिकालवण (नौसादर); ये लवणवर्ग है ॥ १०४ ॥

अथ मूत्रवर्गः—

मूत्राणि हस्तिकरभमहिषीखरवाजिनाम् ।
गोऽजाऽवीनां स्त्रियाः पुंसां मूत्रवर्ग उदाहृतः ॥ १०५ ॥

हाथी, ऊंट, गधा, घोड़ा; इन सब के पुरुषजाति के मूत्र लें। तथा भैंस, गाय, बकरी, भेड़; इन सब के स्त्रीजाति के मूत्र लें। यह मूत्रवर्ग कहाता है।

विशेषवचन—यद्यपि हस्ति (हाथी) आदि के बीच में ही 'महिषी' को पढ़ा है परन्तु उसके स्त्रीलिङ्ग होने से भैंस (स्त्रीजाति) ही का ग्रहण है। वस्तुतस्तु 'स्त्रियाः' 'पुंसां' ये पद हाथी आदि की पुरुष वा स्त्रीजाति के निर्देश के लिये नहीं है। ये तो नारी और नर के मूत्र लेने के लिये कहे हैं। अन्यत्र कहा भी है—

'नरतुरगकुञ्जरोष्ट्रकखरमहिषकमेषगोजाभिः ।
नार्या च मूत्रदशकं दशभिः स्मृतमोभिरत्र ॥'

इसप्रकार ये दस मूत्र हैं जिनका रसकर्म में प्रयोग है। यदि नर और नारी का मूत्र न लें तो शेष मूत्राष्टक कहाता है। रसार्णव में मूत्रपञ्चक कहा है—

'हस्त्यश्वच्छागनारीणां मूत्रं गव्यं च पञ्चमम्' ॥ १०५ ॥

अथ द्रावकवर्गः—

गुञ्जाटङ्कणमध्वाज्यगुडा द्रावकपञ्चकाः ॥ १०६ ॥

श्वेतरत्ती, सुहागा, शहद, घी, गुड़; ये पांच धातुओं के द्रव करने वाले पञ्चद्रावक कहाते हैं ॥ १०६ ॥

---

१ 'पुष्पं बीजं च योजयेत्' इति तन्त्रान्तरे पाठः ।

अथ पित्तवर्गः—

पित्तं पञ्चविधं मत्स्यगवाश्वरुरुबर्हिजम् ॥ १०७ ॥

मछली (रोहित, रोहू), गाय, घोड़ा, रुरुनामक मृग, मोर; इन पांच के पित्तों से पित्तवर्ग होता है।

विशेषवचन—तन्त्रान्तरों में सूअर, भैंस, बकरा, मछली, मोर; इनके पित्तों से पञ्चपित्त माना है। प्रायः इनका ही रसों में प्रयोग देखा जाता है ॥१०७॥

क्षारवर्गः—

स्वर्जिका टङ्कणश्चैव यवक्षार उदाहृतः ॥ १०८ ॥

सज्जी, सुहागा, यवक्षार—इसे क्षारवर्ग कहते हैं।

विशेषवचन—तिल, अपामार्ग, पलाश, सेहुण्ड, कदली, इमली आदि के क्षार भी रसकर्मों में प्रयुक्त होते हैं, परन्तु प्रधानतम होने से इन तीन का ही यहां परिगणन है ॥ १०८ ॥

अथ रससेवाक्रमफले—

प्रातरेव पुरतो विरेचनं तद्दिनोपवसनं विधाय च ।
तत्परेऽहनि च पथ्यसेवनं तत्परेऽहनि रसेन्द्रसेवनम् ॥१०९॥
बुद्धिः स्मृतिः प्रभा कान्तिः बलश्चैव रसस्तथा ।
वर्द्धन्ते सर्व एवैते रससेवाविधौ नृणाम् ॥ ११० ॥

पारदसेवनविधि—प्रातःकाल पूर्व विरेचन लेवे और उस सारे दिन उपवास रखे। अगले दिन पथ्य सेवन करे। उस से अगले दिन पारद का (भस्म आदिरूप में) सेवन करे। विधिपूर्वक पारा सेवन करने से बुद्धि, स्मृति, प्रभा, कान्ति, बल और रसधातु सभी बढ़ते हैं ॥ १०९–११० ॥

तत्र पथ्यकथनम्—

हितं मुद्गाम्बु[1] दुग्धाज्यं शाल्यन्नञ्च विशेषतः ।
शाकं पौनर्नवं वास्तु[2] मेघनादञ्च यूथिकाम् ॥ १११ ॥

१ 'मुद्गान्नदुग्धाज्यं' इत्यन्यत्र पा० ।
२ 'पौनर्नवं देवि ! मेघनादञ्च वास्तुकम्' इति रसार्णवे पाठः ।

लवणं मागधीं मुस्तं पद्ममूलानि भक्षयेत् ।
अनुपानं तु दातव्यं ज्ञात्वा रोगादिकं तथा ॥ ११२ ॥

पारे के सेवन के साथ मूंग का यूष, दूध, घी, शालिचावल, पुनर्नवा, बथुआ, चौलाई, जुही; इनका शाक तथा सेंधानमक, पिप्पली, मोथा, कमल की जड़; ये सब वस्तु खानी पथ्य हैं। रोग आदि का विचार कर अनुपान देना चाहिये ।

विशेषवचन—जुही का पाठ अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलता ॥१११–११२॥

तत्र अपथ्यकथनम्—

कूष्माण्डं कर्कटीश्चैव कालिङ्गं कारवेल्लकम् ।
कुसुम्भिका च कर्कोटी कलम्बी[3] काकमाचिका ।
ककाराष्टकमेतद्धि वर्जयेत् रसभक्षकः ॥ ११३ ॥

कूष्माण्ड (सफेद पेठा, कूम्हड़ा), कर्कटी (ककड़ी), कालिङ्ग (तरबूज़), कारवेल्ल (करेला), कुसुम्भी, कर्कोटी (ककोड़ा), कलम्बशाक, काकमाची (मकोय); इन आठ ककार–पूर्व वाले द्रव्यों को पारा सेवन के दिनों में न खाना चाहिये । ये अपथ्य हैं ॥ ११३ ॥

(यहां तक पारद का विषय समाप्त हुआ)

अथ उपरसभेदाः—

गन्धको वज्र-वैक्रान्तं वज्राभ्रं तालकं शिला ।
खर्परं शिखितुत्थश्च[4] विमलं हेममाक्षिकम् ॥ ११४ ॥
काशीशं कान्तपाषाणं वराटाञ्जनहिङ्गुलम् ।
गैरिकं[5] शङ्खभूनागं टङ्कणश्च शिलाजतु ।

---

१ 'नागरं' पा० । २ 'भिषक्' पा० ।
३ 'कदली' पा० ।
४ 'शिखितुण्डश्च' पा० ।
५ 'कङ्कुष्ठं' इति रसरत्नाकरे पाठः ।

एते चोपरसाः प्रोक्ताः शोध्या मार्य्या विधानतः ॥११५॥

गन्धक, हीरा, वैक्रान्त, वज्राभ्रक, हड़ताल, मनसिल, खपरिया, नीलाथोथा, रौप्यमाक्षिक, स्वर्णमाक्षिक, कसीस, कान्तपाषाण (चुम्बक पत्थर), कौड़ी, अञ्जन (सुरमा), हिंगुल (शिंगरफ़), गेरू, शङ्ख, भूनाग (केंचुए, केंचुओं के सत्त्वपातन से ताम्र निकलता है), सुहागा, शिलाजीत; ये सब उपरस कहे हैं। इनको विधिपूर्वक शुद्ध करना और मारना चाहिये ॥ ११५ ॥

तत्रादौ गन्धकोत्पत्तिमाह—

श्वेतद्वीपे पुरा देव्याः क्रीडन्त्याः प्रसृतं रजः ।
क्षीरार्णवे तु स्नाताया दुकूलं रजसाऽन्वितम् ।
धौतं तत् सलिले तस्मिन् गन्धको गन्धवत् स्मृतः ॥११६॥

पुराकाल में श्वेतद्वीप में क्रीडा करती हुई देवी पार्वती को रजःस्राव हुआ। तब उसने क्षीरसमुद्र में स्नान किया। उसका वह रजःयुक्त वस्त्र उस जल में धोया गया। वह गन्धवाला रज गन्धक नाम से विख्यात हो गया।

विशेषवचन—विस्तृत कथा इस प्रकार है कि एक समय श्वेतद्वीप में पार्वती गन्धर्वस्त्रियों सिद्धाङ्गनाओं देवाङ्गनाओं और अप्सराओं के साथ खेल रही थी कि उसे मासिकधर्म हुआ, उससे उसका पहिरा वस्त्र लाल हो गया। उसने उस वस्त्र को वहीं उतार क्षीरसमुद्र में स्नान किया और देवाङ्गनाओं से घिरी हुई वह पुनः वापिस चली गई। इतने में लहरों के साथ उसका वह रजोयुक्त वस्त्र समुद्र में बह गया। जब क्षीरसागर का मथन हुआ तब वह रज भी अमृत के साथ बाहिर निकला। उसकी गन्ध से देव और असुर बड़े हर्षित हुए। गन्धयुक्त होने के कारण देवताओं ने उसका नाम गन्धक रखा। इसे आलङ्कारिक कथानक ही जानना चाहिये। इसका निगूढ़ अभिप्राय क्या है, विद्वान् लोग जानें। शायद पारद और गन्धक के संयोग को अत्युत्तम जताने के लिये ही इस कथा की रचना की गई हो। वैसे तो गन्धक पर्वत से निकलती है ॥ ११६ ॥

अथ गन्धकभेदाः—

चतुर्धा गन्धकः प्रोक्तो रक्तः पीतः सितोऽसितः ।

रक्तो हेमक्रियासूक्तः पीतश्वेतौ रसायने ।
व्रणादिलेपने श्वेतः कृष्णः श्रेष्ठः सुदुर्लभः ॥ ११७ ॥

गन्धक चार प्रकार का होता है--लाल पीला श्वेत और काला। लाल गन्धक स्वर्ण बनाने के काम आता है, पीला और श्वेत गन्धक रसायन में प्रयुक्त होता है, श्वेत गन्धक व्रण आदि पर लेप करने के काम आता है। काला गन्धक श्रेष्ठ है, परन्तु वह अति दुर्लभ है ॥ ११७ ॥

अशुद्धगन्धदोषाः—

अशुद्धगन्धः कुरुते तु तापं कुष्ठं भ्रमं पित्तरुजां करोति ।
रूपं बलं वीर्य्यसुखं निहन्ति तस्मात् सुशुद्धो विनियोजनीयः ॥११८॥

अशुद्ध गन्धक का सेवन ताप कुष्ठ भ्रम और पित्त के रोगों को उत्पन्न करता है तथा रूप बल वीर्य और आरोग्य का नाशक है। इसलिये अच्छी-प्रकार शुद्ध कर इसका प्रयोग करना चाहिये ॥ ११८ ॥

गन्धकपर्य्यायाः—

गन्धको गन्धपाषाणः शुकपिच्छः[1] सुगन्धकः ।
सौगन्धिकः शुल्बरिपुः पामारिर्नवनीतकः ॥ ११९ ॥

गन्धक, गन्धपाषाण, शुष्कपिच्छ (तोते की पूंछ के सदृश होने से), सुगन्धक, सौगन्धिक, शुल्बरिपु (ताम्र का शत्रु), पामारि (पामारोगनाशक होने से), नवनीतक; ये नाम गन्धक के हैं ॥ ११९ ॥

अथ गन्धकशुद्धिः—

साज्यं भाण्डे पयः क्षिप्त्वा मुखं वस्त्रेण बन्धयेत् ।
तत्पृष्ठे गन्धकं क्षिप्त्वा शरावेण पिधापयेत् ॥ १२० ॥
भाण्डं निक्षिप्य भूम्यन्तरूर्द्ध्वे देयं पुटं लघु ।
ततः क्षीरे द्रुतं गन्धं शुद्धं योगेषु योजयेत् ॥ १२१ ॥

एक पात्र में घी और दूध मिलाकर डाले मुखपर एक पतला कपड़ा

१ 'शुकपुच्छः' पा० ।

बांधे। उस कपड़े पर गन्धक का चूर्ण रख के उसे एक शराव (अधोमुख) से ढक देवे (और सन्धिबन्धन करे दे)। दूध घी वाले पात्र को भूमि के अन्दर (गढ़े में) रखकर (मिट्टी से चारों ओर गढ़े को भर देने के पश्चात्) ऊपर से (ऊपर के शराव पर) छोटा पुट देवे। पुट से गन्धक पिघल जायगी और कपड़े में से छनकर दूध वाले पात्र में गिरेगी। इस गन्धक को शुद्ध समझ कर योगों में बरतें।

विशेषवचन–दूध घी का पात्र इतना हो जिसके ¾ भाग में गन्धक पिघल कर आजाय। प्रारम्भ में उस पात्र को आधे तक दूध से भर देना चाहिये। घी कम से कम गन्धक से चौथाई हो ॥ १२०—१२१ ॥

मतान्तरम्–

लौहपात्रे विनिक्षिप्य घृतमग्नौ प्रतापयेत्।
तप्ते घृते तत्समानं क्षिपेत् गन्धकजं रजः ॥ १२२ ॥
विद्रुतं गन्धकं दृष्ट्वा दुग्धमध्ये विनिक्षिपेत्।
एवं गन्धकशुद्धिः स्यात् सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ १२३ ॥

एक लोहे के पात्र में घी डालकर आग पर तपावें। पिघल जाने पर उसके समान ही उसमें गन्धक का चूर्ण डालें। गन्धक के पिघलते ही उसे दूध के बीच में डाल दें (दूध खूब गरम होना चाहिये)। पश्चात् उसमें से गन्धक को निकाल कर गरम जल से धो धूप में सुखा कर रखें। यह शुद्ध गन्धक है, इसे सब रोगों में प्रयोग करें।

विशेषवचन—यदि दूध के ठण्डा होने से गन्धक छिद्रमय हो गई हो तो उसे जौकुट करके जल में कुछ देर उबाल लें और पश्चात् धूप में सुखा लें ॥ १२२–१२३ ॥

अथ शुद्धगन्धकगुणाः—

शुद्धगन्धो हरेद्रोगान् कुष्ठमृत्युज्वरादिकान्।
अग्निकारी महानुष्णो वीर्य्यवृद्धिं करोति च ॥ १२४ ॥

शुद्ध गन्धक, कुष्ठ अकालमृत्यु तथा ज्वर आदि रोगों को हरता है,

अग्नि को बढ़ाता है, अत्यन्त गर्म होता है तथा वीर्यवृद्धि करता है ॥ १२४ ॥

अन्यच्च—

गन्धश्चातिरसायनः सुमधुरः पाके कटूष्णान्वितः ।
कण्डूकुष्ठविसर्पदर्पदलनो दीप्तानलः पाचनः ।
आमोन्मन्थनशोधनो विषहरः सूतेन्द्रवीर्यप्रदः ।
गौरीपुष्पभवस्तथा क्रिमिहरः सत्त्वात्मको वीर्यकृत् ॥१२५॥

शुद्ध गन्धक अति रसायन है, रस में मधुर है और पाक में कटु है, उष्ण है । खाज कुष्ठ और विसर्प को दूर करता है । अग्निदीपक और पाचक है । आमरस को पचाता है । मलादि को निकाल कर शुद्ध करने वाला है । विष को हरता है । पारे के लिये वीर्यप्रद है—उसकी रोगनाशिनी शक्ति को बढ़ाता है । क्रिमिनाशक है, सत्त्वरूप है (जैसे अन्य उपरसों का सत्त्वपात किया जाता है वैसे इसका नहीं, यह स्वयं सत्त्व ही है), वीर्य को बढ़ाता है ।

विशेषवचन—यदि तन्त्रान्तर के पाठ के अनुसार 'वीर्यकृत्' के स्थान पर 'सूतजित्' पाठ हो तो पारे को जीतता है—पारे का पक्ष छिन्न करता है उसे बांधता है, और मारता है । शुद्ध गन्धक की मात्रा—१ रत्ती से ८ रत्ती तक ॥ १२५ ॥

अशुद्धवज्रदोषाः—

पार्श्वपीडां पाण्डुरोगं हृल्लासं दाहसन्ततिम् ।
रोगानीकं गुरुत्वञ्च धत्ते वज्रमशोधितम् ॥ १२६ ॥

अशुद्ध वज्र (हीरा) के सेवन से पसलियों में पीड़ा, पाण्डुरोग, जी मचलाना, दाह, अन्य रोगसमूह तथा देह में गुरुता होती है ।

विशेषवचन—जो हीरा स्वच्छ, बिजली के समान चमकीला, स्निग्ध,

---

१ 'गन्धाश्मातिरसायनः' पा० । २ 'कटूष्णो मतः' र० र० स० पाठः ।
३ 'विसर्पदद्रुदमनो' रसेन्द्रचूडामणौ पा० । 'विसर्पदद्रुदलनो' र० र० स० पाठः ।
४ 'आमोन्मोचनशोषणो' र. चू. पाठः ।
५ 'सूताच्च वीर्यप्रदः' इत्यपपाठः । ६ 'स्वर्णाधिकं वीर्यकृत्' पा० ।

सुन्दर, लघु, लेखन, छः कोण वाला, आठ फलक वाला, तीक्ष्ण धार वाला हो वह उत्तम होता है ॥ १२६ ॥

अथ वज्रशोधनम्--

व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं दोलायन्त्रे विपाचितम्[1] ।
सप्ताहं कोद्रवक्काथे कौलत्थे विमलं भवेत् ॥ १२७ ॥

हीरे को कण्टकारी की जड़ के कन्द में रख के कोदों के काथ में वा कुलथी के काथ में सात दिन तक दोलायन्त्र में स्वेदन करे तो हीरा शुद्ध हो जाता है। दोनों काथों में स्वेदन का विधान भी है ॥ १२७ ॥

मतान्तरम्--

व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं मृदालिप्तं पुटे पचेत् ।
अहोरात्रात् समुद्धृत्य हयमूत्रेण सेचयेत् ।
वज्रीक्षीरेण वा सिञ्चेत् कुलिशं विमलं भवेत् ॥ १२८ ॥

कण्टकारी के कन्द में हीरे को बन्द करके कपड़मिट्टी कर गोमयाग्नि से पुटपाक करे। २४ घण्टे के बाद निकाल कर तपे हीरे को घोड़े के मूत्र से अथवा सेहुण्ड (ठण्डा थोहर) के दूध से सिञ्चन करे तो हीरा निर्मल हो जाता है ॥ १२८ ॥

अथ वज्रमारणम्—

त्रिवर्षारूढकार्पासमूलमादाय पेषयेत् ।
त्रिवर्षनागवल्ल्या[2] वा निजद्रावैः प्रपेषयेत् ॥ १२९ ॥
तद्गोलके क्षिपेद्वज्रं रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ।
एवं सप्तपुटेनैव म्रियते कुलिशं ध्रुवम् ॥ १३० ॥

तीन वर्ष की पुरानी उगी हुई कपास की जड़ को पीसे अथवा तीन वर्ष पुरानी उगी हुई पान की जड़ को अपने ही रस से पीसे। उसके पिण्ड के

---

१ दोलायन्त्रे विपाचयेदित्यपपाठः ।
२ 'त्रिवर्षनागवल्ल्यास्तु' पाठः ।

अन्दर हीरे को बन्द कर और शरावसम्पुट में रख सन्धिबन्धन कर के गज-पुट में फूँक देवें। इसप्रकार से सात पुट देने ही से हीरे की भस्म हो जाती है।

विशेषवचन—रसार्णव के अनुसार कपास की जड़ को तण्डुलोदक से पीसना चाहिए ॥ १३० ॥

मतान्तरम्—

कांस्यपात्रे तु भेकस्य मूत्रे वज्रन्तु निक्षिपेत्।
त्रिःसप्तकृत्वः सन्तप्तं वज्रमेवं मृतं भवेत् ॥ १३१ ॥

एक स्वच्छ चमकदार कांसी के पात्र में मेंडक का मूत्र इकट्ठा करे। फिर हीरे को आग में तपा २ कर उस मूत्र में बुझावे। इसप्रकार इक्कीस बार गर्म करके बुझाने से हीरा मर जाता है।

विशेषवचन—यदि एक गहरे चमकदार कांसी के पात्र में मेंडक को पकड़ कर डाल दें तो वह वहां भयभीत हुआ मूत्र कर देता है ॥ १३१ ॥

अथान्यः—

त्रिःसप्तकृत्वः सन्तप्तं खरमूत्रेण सेचयेत्।
मत्कुणैस्तालकं[1] पिष्ट्वा तद्गोले कुलिशं क्षिपेत् ॥ १३२ ॥
प्रध्मातं वाजिमूत्रेण सिक्तं पूर्वक्रमेण तु।
भस्मीभवति तद्वज्रं वज्रवत् कुरुते तनुम् ॥ १३३ ॥

शुद्ध हीरे को आग में सन्तप्त करके इक्कीस वार गधे के मूत्र से सिंचन करे। फिर शुद्ध हड़ताल को खटमलों के साथ पीसकर उसके गोले में हीरे को रखे। उस गोले को मिट्टी से लीपकर वा सम्पुट में बन्द करके अङ्गारों में रख धौंकनी से खूब आंच दे। जब हड़ताल सारी जल जाय और सम्पुट तप कर लाल हो तब उस तप्त हीरे को निकाल घोड़े के मूत्र से सींचे। इसप्रकार २१ बार करे, तो हीरा भस्म हो जाता है। इसके सेवन से शरीर वज्र के समान सुदृढ़ हो जाता है।

---

१ 'मुद्गरैस्तालकं' पा०।

विशेषवचन—हीरकभस्म की आधुनिक मात्रा—$\frac{1}{32}$ रत्ती से $\frac{1}{16}$ रत्ती तक है ॥ १३२—१३३ ॥

अथ शोधितवज्रभस्मगुणाः—

आयुष्यं सौख्यजननं बलरूपप्रदं तथा ।
रोगघ्नं मृत्युहरणं वज्रभस्म भवत्यलम् ॥ १३४ ॥

शुद्ध हीरे की भस्म, आयु बढ़ाने वाली, आरोग्योत्पादक, बल और रूप देने वाली, रोगनाशक तथा अकाल मृत्यु को हरने वाली होती है ॥ १३४ ॥

अथ वैक्रान्तशोधनम्—

वैक्रान्तं वज्रवच्छोध्यं ध्मातं तत् हयमूत्रके ।
सिक्तं[1] तद्भस्म संयोज्यं वज्रस्थाने विचक्षणैः ॥१३५॥

वैक्रान्त को हीरे के समान ही शुद्ध करे। उस को आग में तपा कर घोड़े के मूत्र में सिंचन करे। इस वैक्रान्त की भस्म को हीरे की भस्म के अभाव में विद्वान् लोग प्रयुक्त करें ॥ १३५ ॥

मतान्तरम्—

वैक्रान्तं वज्रवच्छोध्यं मारणञ्चैव तस्य तत् ।
हयमूत्रेण तत् सेच्यं तप्तं तप्तं त्रिसप्तधा ॥ १३६ ॥
ततश्चोत्तरवारुण्याः पञ्चाङ्गगोलके क्षिपेत् ।
रुद्ध्वा मूषापुटे पाच्यं उद्धृत्य गोलके पुनः ॥ १३७ ॥
क्षिप्त्वा रुद्ध्वा पचेदेवं यावत् तत् भस्मतां व्रजेत् ।
भस्मीभूतञ्च वैक्रान्तं वज्रस्थाने नियोजयेत् ॥ १३८ ॥

वैक्रान्त को हीरे के समान ही शुद्ध करना तथा मारना चाहिए। उसे गर्म कर २ के २१ बार घोड़े के मूत्र से सींचें। फिर इन्द्रायण के पञ्चाङ्ग (पत्ते जड़ फूल फल और प्रतान) को पीस गोला बना उसमें उस शुद्ध हुए वैक्रान्त को डालकर एक मूषापुट में बन्द करके पकावे। इसप्रकार बार २ नये

1 'हिमं' पा० ।

इन्द्रायण के पञ्चाङ्ग के गोले में डाल सम्पुट कर पुट देता जाय जबतक उसकी भस्म न हो जाय । इस वैक्रान्तभस्म को हीरे के स्थान में प्रयुक्त करे ।

विशेषवचन--रसेन्द्रचिन्तामणि के अनुसार यहां गजपुट देनी होगी । तन्त्रान्तरों में उक्त पाकप्रक्रिया कम से कम सात बार करने को कही है । वैक्रान्तभस्म की आधुनिक मात्रा १/२४ से १/१० रत्ती तक है ॥ १३६–१३८ ॥

अथाभ्रपर्यायाः--

अभ्रकं गिरिजाबीजममलं गगनाह्वयम् ॥ १३९ ॥

अभ्रक, गिरिजाबीज, अमल, गगन (आकाश और इसके पर्याय); ये सब अभ्रक के वाचक हैं ।

विशेषवचन--अभ्रक की उत्पत्ति पार्वती के वीर्य से मानी है, अतः इसका नाम गिरिजाबीज है ॥ १३९ ॥

अथाभ्रशोधनम्—

तत्र कृष्णाभ्रके वज्रं पीतात्मनि तु ग्राहिकम् ।
सितात्मके तारकं स्याद्भीरुकं रक्तके वरम् ॥ १४० ॥

अभ्रक चार प्रकार के रंगों का होता है । काला पीला श्वेत और लाल । इनमें से काले अभ्रक की जाति में से "वज्र" अच्छा है । पीले अभ्रक की जाति में से "ग्राहिक" अच्छा होता है । श्वेत अभ्रक की जाति में से "तारक" तथा लाल अभ्रक की जाति में से "भीरुक" अच्छा है ॥ १४० ॥

सुप्रशस्तं कठोराङ्गं गुरु कज्जलसन्निभम् ।
यन्न शब्दायते वह्नौ नैवोच्छूनं भवेदपि ।
सदाकरसमुद्भूतं वज्रं तत् प्रथितं घनम् ॥ १४१ ॥

जो अभ्रक कठोर अङ्ग वाला, भारी, कज्जल के समान काला हो और जो आग में रखने पर न तो किसी प्रकार का शब्द करे और न फूले, जो उत्तम खान से निकला हो उसे "वज्र" अभ्रक कहते हैं, वह उत्तम है ॥ १४१ ॥

पिनाकं दर्दुरं नागं वज्रञ्चेति चतुर्विधम् ॥ १४२ ॥

---

१ 'वज्रेति' पा० ।

यह कृष्ण अभ्रक भी चार प्रकार का है। पिनाक दर्दुर नाग और वज्र ॥ १४२ ॥

ध्मातमभ्रं दलचयं पिनाकं विसृजत्यलम् ।
फूत्कारं भुजगः कुर्य्यात् दर्दुरं भेकशब्दवत् ।
चतुर्थश्च वरं ज्ञेयं न वह्नौ विकृतिं व्रजेत् ॥ १४३ ॥

पिनाक को आग में तपाने से (चिट चिट शब्द के साथ) पत्र अलग २ हो जाते हैं। नाग अभ्रक आग में तपाने से सर्पवत् फुंकार छोड़ता है और दर्दुर अभ्रक मेंडक के समान शब्द करता है। चौथे (वज्र) अभ्रक को श्रेष्ठ जाने। वह आग में किसी भी प्रकार के विकार को नहीं प्राप्त होता—वैसा ही रहता है ॥ १४३ ॥

कुष्ठप्रदं पिनाकं स्याद्दर्दुरं मरणप्रदम् ।
नागं देहगतं नित्यं व्याधिं कुर्य्याद् भगन्दरम् ॥ १४४ ॥
रसे रसायने चैव योज्यं वज्राभ्रकं प्रिये ।
तस्माद्वज्राभ्रकं ग्राह्यं व्याधिवार्द्धक्यमृत्युजित् ॥ १४५ ॥

पिनाक अभ्रक की भस्म के सेवन से कुष्ठ और दर्दुर के सेवन से मृत्यु होती है। नागाभ्र के नित्य देह में जाने से अर्थात् सेवन से भगन्दर रोग हो जाता है। इस कारण (हे प्रिये[1]!) रसों में और रसायन कर्म में वज्राभ्रक को प्रयुक्त करना चाहिये। यतः पिनाक आदि अभ्रों के सदृश वज्राभ्र किसी विकार को प्राप्त नहीं होता और कुष्ठ मृत्यु भगन्दर प्रभृति का कारण नहीं होता अतः उसका ही सेवन करना अभीष्ट है। यह रोग बुढ़ापा और अकाल मृत्यु को नहीं होने देता ॥ १४४–१४५ ॥

अशुद्धाभ्रं निहन्त्यायुः वर्द्धयेत् मारुतं कफम् ।
अहतं छेदयेद् गात्रं मन्दाग्निक्रिमिवर्द्धनम्[2] ॥ १४६ ॥

---

१ यतः 'कुष्ठप्रदं' से लेकर 'प्रिये' पर्यन्त मूलश्लोक-पाठ रसार्णव से संगृहीत है अतः वैसा ही यहां भी सम्बोधन पद दिया है। वह तन्त्र भैरवदेवी-सम्वाद रूप में रचा गया है। २ '०क्रिमिदायकम्' पा०।

अशुद्ध अभ्रक की भस्म आयु का नाश करती है, वायु और कफ को बढ़ाती है। शुद्ध भी अभ्रक हो परन्तु कच्चा हो वा ठीक भस्म न किया हो तो गात्रों का छेदन करता है, मन्दाग्नि और क्रिमि उत्पन्न करता है ॥ १४६ ॥

धान्याभ्रमाह—

पादांशशालिसंयुक्तमभ्रकं कम्बलोदरे[1] ।
त्रिरात्रं स्थापयेत् नीरे तत् क्लिन्नं मर्दयेद् दृढम् ॥ १४७ ॥
कम्बलाद्गलितं श्लक्ष्णं वालुकारहितञ्च यत् ।
तद्धान्याभ्रमिति प्रोक्तमभ्रमारणसिद्धये[2] ॥ १४८ ॥

वज्राभ्रक चार भाग, शालिधान्य अर्थात् धान १ भाग, दोनों को एक कम्बल की पोटली में डालकर जल में तीन दिन रात पड़ा रहने दे। जब भीग कर गला हुआ सा हो जाय तब ज़ोर से मर्दन करे। मर्दन से कम्बल में से बारीक अभ्रक के कण बाहर चौड़े पात्र में आजांयगे। बालुका वा छोटी छोटी कंकरी आदि कम्बल में ही रह जायगी। इसप्रकार जल में निकले अभ्र को धान्याभ्र कहते हैं। यही मारने के काम आता है।

विशेषवचन—कई तन्त्रों में जल के स्थान पर कांजी का विधान भी मिलता है ॥ १४७–१४८ ॥

मतान्तरम्—

त्रिफलाक्काथगोमूत्र–क्षीरकाञ्जिकसेचितम् ।
भस्त्राग्नौ सप्तधा व्योम तप्तं तप्तं विशुध्यति ॥ १४९ ॥

अभ्रक को आग पर धौंकनी से तपा २ कर त्रिफला का काढ़ा, गोमूत्र, दूध वा कांजी किसी एक में सात वार सिंचन करने से वह शुद्ध हो जाता है। कहीं कहीं चारों में सात २ वार बुझाने का विधान भी है ॥ १४९ ॥

मतान्तरम्—

अथवा बदरीक्काथे ध्मातमभ्रं विनिक्षिपेत् ।

---

१ '०शालिसंयुक्तमभ्रं बद्ध्वाथ कम्बले' तन्त्रान्तरे पा० ।
२ '०प्रोक्तं सद्भिर्देहस्य सिद्धये,' '०प्रोक्तं भिषग्भिर्देहसिद्धये' पा० ।

मर्दितं पाणिना शुष्कं धान्याभ्रादतिरिच्यते ॥ १५० ॥

अथवा अभ्रक को तपा कर बेरी की छाल के क्वाथ में डाले और हाथों से खूब मसले। सूखने पर यह धान्याभ्रक से भी उत्तम हो जाता है ॥ १५० ॥

मतान्तरम्--

अगस्त्य¹पुष्पतोयेन पिष्टं शूरणकन्दगम्।
गोष्ठभूमिगतं मासं जायते रससन्निभम् ॥ १५१ ॥

(इत्यभ्रशोधनम्)

अभ्रक को अगस्तिया के फूल के रस से निश्चन्द्र घोटकर (वृद्ध वैद्य २१ दिन घोटने को कहते हैं) उस पीठी को नूतन जंगली सूरण (जिमींकन्द) के अन्दर बन्द करके (मिट्टी लीपकर) गोशाला की भूमि के अन्दर (एक हाथ भर गढ़ा खोदकर) एक मास तक गड़ा रहने दे, तो यह शुद्ध होजाता है और पारे वा जल के समान द्रव हो जाता है।

विशेषवचन—यह अभ्रद्रुति का विधान है ॥ १५१ ॥

अथाभ्रमारणम्--

वज्राभ्रकं समादाय निक्षिप्य स्थालिकोदरे।
रम्भादिक्षारतोयेन पचेद् गोमयवह्निना ॥ १५२ ॥
यावत् सिन्दूरसङ्काशं न भवेत् स्थालिकाबहिः।
सेचनीयं ततः क्षीरैस्ततः सूक्ष्मं विचूर्णयेत् ॥ १५३ ॥

शुद्ध वज्राभ्रक को एक हांडी में डालकर "रम्भादिगण" अर्थात् केले आदि क्षारवर्ग के क्षारजल (चतुर्गुण) से उपलों की आग देकर पकावे। जब तक हांडी के बाहर का भाग सिन्दूर के समान लाल रंग का न दिखाई दे तब तक आंच देता जाय। पश्चात् उसे उतार कर तपे हुए को ही दूध से सिक्त करे (अनन्तर जल से धोकर) और सुखाकर सूक्ष्म चूर्ण बना ले। इस से अभ्रक की भस्म हो जाती है ॥ १५२–१५३ ॥

१ 'अगस्त्यपत्रतोयेन' पा०।

मतान्तरम्—

धान्याभ्रकं समादाय मुस्ताक्काथैः पुटत्रयम्[1] ।
तद्वत् पुनर्नवानीरैः कासमर्दरसैस्तथा ॥ १५४ ॥
नागवल्लीरसैः सूर्य्यक्षीरैर्देयं पृथक् पृथक् ।
दिनं दिनं मर्दयित्वा क्वाथैर्वटजटोद्भवैः ॥ १५५ ॥
दत्त्वा पुटत्रयं पश्चात् त्रिःपुटेत् मुषलीजलैः ।
त्रिर्गोक्षुरकषायेण त्रिःपुटेत् वानरीरसैः ॥ १५६ ॥
मोचकन्दरसैः पाच्यं त्रिरात्रं कोकिलाक्षकैः ।
रसै पुटेल्लौध्रकैस्तु क्षीरादेकं पुटेत्पुनः ॥ १५७ ॥
दध्ना घृतेन मधुना स्वच्छया सितया तथा ।
एकमेकं पुटं दद्यादभ्रस्यैवं मृतिर्भवेत् ॥ १५८ ॥
सर्वरोगहरं व्योम जायते योगवाहकम् ।
कामिनीमददर्पघ्नं शस्तं पुंस्त्वोपघातिनाम् ।
वृष्यमायुष्करं शुक्रवृद्धिसन्तानकारकम् ॥ १५९ ॥

धान्याभ्रक को लेकर नागरमोथे के क्राथ से एक दिन घोट कर पुट दे। ऐसे तीन वार पुट दे। इसीप्रकार पुनर्नवा के रस से, कसौंदी के रससे, पान के रस से तथा आक के दूध से एक २ दिन पृथक् २ घोटकर तीन तीन पुटें दें। अनन्तर बड़ की दाढ़ी के क्वाथ से घोटकर तीन पुट देवे। फिर मूषली के रस से तीन पुट देवे। फिर गोखरू के काढ़े से तीन पुट दे। तदनन्तर कौंच के काढ़े से तीन पुट दे। फिर केले के कन्द के रस से तीन वार पुट देवे। फिर तालमखाने के रस से तीन वार पुट देवे। फिर लोध के काढ़े से तीन पुट दे। पुनः गा के दूध में घोटकर एक पुट देवे, फिर दही से एक पुट, घी से एक पुट, शहद से एक पुट तथा स्वच्छ खांड वा मिश्री के साथ घोट कर एक पुट देवे। इसप्रकार से

---

१ दिनत्रयमिति क्वचित्पाठः ।

अभ्रक मर जाता है। यह अभ्रकभस्म सब रोगों को हरने वाली, योगवाही, स्त्रियों के मद को नाश करने वाली (पुंस्त्वशक्ति को बढ़ाकर), नपुंसकों को पुरुषत्व देने वाली, वृष्य, आयुवर्द्धक, वीर्य बढ़ाने वाली तथा सन्तान देने वाली है ॥ १५४–१५९ ॥

अथ मारकवृन्दम्—

तण्डुलीयकबृहती–नागवल्लीतगरपुनर्नवाश्च।
हिलमोचिका मण्डूकपर्णी तिक्ताखुपर्णिका।
मदनार्काद्र्रपालङ्क्यासूतमातृकाभिः सुधीभिरुदितम् ॥ १६० ॥

चौलाई, बड़ी कटेरी, पान, तगर (पिण्ड तगर), पुनर्नवा (विशेषतः श्वेत), हिलमोचिका, मण्डूकपर्णी, कुटकी, मूषापर्णी, मदन (मैनफल), आक (मदार), ताज़ी पालक (अथवा अदरक और पालक,) सूतमातृका (घीक्वार) ये विद्वानों ने अभ्रक का मारकगण कहा है। इन में से पृथक् २ वा सबसे पुटादि देने से अभ्रकमारण होता है॥ १६० ॥

मतान्तरम्—

रम्भाद्भिरभ्रं लवणेन पिष्ट्वा चक्रीकृतं तद्दलमध्यवर्त्ति।
दग्धेन्धनेषु व्यजनानिलेन स्नुह्यर्कमूलाम्बुपुटेन सिद्धम् १६१

अभ्रक में कुछ (¼) सेंधानमक मिला केले की जड़ के रस से पीसें और पीछे टिकियां बनाकर सुखा ले। पश्चात् केले के पत्तों में लपेट कर अङ्गारों पर रखकर पंखे से वायु देता जाय। इसके पीछे थोहर की जड़ के रस और आक की जड़ के रस से घोट पुटें दे तो अभ्रकभस्म सिद्ध होता है।

विशेषवचन—सिद्ध होने के पश्चात् भस्म को जल से धोकर लवणांश

१ 'मदनार्कावपि लघुसुतमातृकाभिः' पा०। अत्र लघुसुतमातृका शतावरी इति केचित्। 'मदनार्काद्र्रपलाशसूतमातृका' इति पाठान्तरं केचिदिच्छन्ति।

२ 'रम्भादिनाभ्रं' इति पा०। ३ 'टङ्कणमध्यवर्ति' पा०।

४ 'स्नुह्यर्कमूलाखुपुटं च सिद्ध्यै' पा०।

को निकाल देना चाहिये। कई 'पुटेन' के स्थान पर 'पुटे च' पाठ स्वीकार करते हैं। तब अभिप्राय तीनों द्रव्यों से पृथक् भस्म की विधि से होगा। अर्थात् एक केले के रस से, दूसरा सेहुण्ड की जड़ के रस से और तीसरा आक की जड़ के रस से। जिसके रस से अभ्रक को पीसेंगे उसी के पत्ते टिक्रियों पर लपेटे जांयगे। पत्तों को टिक्रियों पर स्थिर करने के लिये सूत से बांधा जा सकता है। उन्हें अंगारों पर रख कर पंखे से वायु देना होगा। पुटें तबतक दें जबतक प्रशस्तलक्षण-युक्त भस्म तय्यार न होजाय ॥ १६१ ॥

मतान्तरम्—

धान्याभ्रकस्य भागैकं भागौ द्वौ टङ्कणस्य च।
पिष्ट्वा तदन्धमूषायां रुद्ध्वा तीव्राग्निना पचेत्।
स्वभावशीतलं चूर्णं सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ १६२ ॥

धान्याभ्रक एक भाग, सुहागा दो भाग; दोनों को पीस कर अन्धमूषा में बन्द कर तीव्र अग्नि से पकावे। स्वाङ्गशीतल होने पर चूर्ण को सब योगों में प्रयुक्त करे।

विशेषवचन—रसरत्नाकर रसेन्द्रचिन्तामणि रसकामधेनु आयुर्वेदप्रकाश प्रभृति ग्रन्थों में यही पाठ उपलब्ध होता है। टङ्कण के साथ अभ्रक को मारने के अन्य भी विधान मिलते हैं। परन्तु प्रबल विचार यह है कि यह पाठ अशुद्ध है, क्योंकि इसप्रकार से बनाने पर अभ्रक कांच-सदृश हो जाता है ॥१६२॥

मतान्तरम्—

धान्याभ्रकं दृढं मर्द्यमर्कक्षीरैर्दिनावधि।
वेष्टयेदर्कपत्रेण चक्राकारन्तु कारयेत् ॥ १६३ ॥
कुञ्जराख्ये पुटे दग्ध्वा सप्तवारान् पुनः पुनः।
ततो वटजटाक्काथैस्तद्वद्देयं पुटत्रयम्।
म्रियते नात्र सन्देहः सर्वयोगेषु[1] योजयेत् ॥ १६४ ॥

---

१ 'सर्वरोगेषु' पा०।

धान्याभ्रक को आक (मदार) के दूध से (अभाव में मदार की जड़ के रस से) एक दिन तक दृढ़ता से मर्दन करे और टिकियां बनाकर सुखा ले। पश्चात् आक के पत्तों में लपेट दे। फिर गजपुट में फूंक दे। इसीप्रकार आक के दूध में घोट २ कर सात पुट देवे। अन्त में बड़ की जटा के काढ़े में घोट २ कर तीन पुटें देवे। इससे अभ्रक की भस्म हो जाती है—इस में सन्देह नहीं। इस भस्म को सब योगों में डालें ॥ १६३—१६४ ॥

मतान्तरम्—

दुग्धत्रयं कुमार्यम्बु गङ्गापुत्रं नृमूत्रकम् ।
वटशुङ्गमजारक्तमेभिरभ्रं विमर्दयेत् ॥ १६५ ॥
शतधा पुटितं भस्म जायते पद्मरागवत् ।
निश्चन्द्रकं भवेद् व्योम शुद्धदेहे रसायनम् ॥ १६६ ॥

तीन दूध, घीक्वार का रस, नागरमोथा, पुरुष का मूत्र, बड़ के अंकुर, बकरी का खून; इन सब से अभ्रक को घोटे। घोट २ कर सौ पुटें दे तो पद्मराग के समान लाल रंग की निश्चन्द्र भस्म होती है। वमन विरेचन आदि से शुद्ध देह में निश्चन्द्र अभ्रकभस्म का सेवन रसायन है।

विशेषवचन—तीन दूध से बरगद (बड़), सेहुण्ड (डण्डा थोहर) और मदार (आक) का दूध लिया जाता है। रसकामधेनुकार सेहुण्ड के स्थान पर गूलर का दूध लिखता है। परन्तु सेहुण्ड का दूध ही अधिक व्यवहार में आता है। श्रीगोविन्दपाद ने भी अभ्रमारक औषधवर्ग में पूर्वोक्त तीन दूध ही लिखे हैं और वे ही ठीक हैं।

जीवानन्द कृत टीका में दुग्धत्रय से गौ बकरी और भेड़ का दूध लेने को लिखा है, परन्तु हमें वह ठीक नहीं जंचता।

'गङ्गापुत्रं' के स्थान पर 'गङ्गापत्रं' प्रचलित पाठ है। इससे कई गङ्गापत्री लेते हैं। आयुर्वेदप्रकाश में 'गङ्गापुत्रं' पाठ है और वहां इसका अर्थ नागरमोथा किया है। रसकामधेनु में 'गङ्गापत्यं' पाठ है और वहां नागबला अर्थ किया गया है। नागबला और नागरमोथा अभ्रकभस्म के विधानों में कई जगह पढ़े गये हैं। अतः वही पाठ उचित समझकर मूल को शोध दिया है।

ये सब द्रव्य आठ हैं । सौ पुटें पूरी करने में प्रत्येक से १२ या १३ पुटें देनी चाहियें ॥ १६५—१६६ ॥

निश्चन्द्रमारितं व्योम रूपं वीर्य्यं दृढं तनुम् ।
कुरुते, नाशयेत् मृत्युं जरां रोगकदम्बकम् ॥ १६७ ॥

[इत्यभ्रमारणम्]

निश्चन्द्र अभ्रकभस्म के सेवन से रूप और वीर्य्य की वृद्धि तथा शरीर की दृढता होती है । यह अकालमृत्यु, बुढ़ापा तथा अन्य रोगों के समुदाय को नष्ट करती है ।

विशेषवचन—अभ्रकभस्म की सामान्य मात्रा $\frac{1}{2}$ रत्ती से २ रत्ती तक है ॥ १६७ ॥

अथ हरितालपर्य्यायास्तद्भेदाश्च—

हरितालं तालमालं[1] मतं शैलूषभूषणम् ।
पिञ्जरं[2] रोमहरणं तालकं पीतमित्यपि ॥
तालकं पटलं पिण्डं द्विधा तत्राद्यमुत्तमम् ॥ १६८ ॥

हरिताल, ताल, आल, शैलूषभूषण, पिञ्जर, रोमहरण, तालक, पीत; ये नाम हड़ताल के हैं । हड़ताल दो प्रकार का होता है एक "पिण्ड" दूसरा "पटल" । इनमें से पटल अर्थात् वंशपत्र अच्छा माना है ॥ १६८ ॥

अशुद्धतालमायुघ्नं कफमारुतमेहकृत् ।
तापस्फोटाङ्गसङ्कोचान्[3] कुरुते तेन शोधयेत् ॥ १६९ ॥

अशुद्ध हड़ताल आयु को कम करती है, कफ वायु तथा प्रमेह का कारण होती है। ताप फोड़े करती तथा अंगों का संकोच करती है । इस कारण इसे शुद्ध अवश्य करे ॥ १६९ ॥

अथ हरितालशोधनम्—

शुद्धं स्यात् तालकं स्विन्नं कूष्माण्डसलिले ततः ।

---

१ 'मालं' पा० ।   २ 'पिञ्जकं' पा० ।

३ 'तापशोफाङ्गसङ्कोचान्' पा० ।

चूर्णोदके पृथक् तैले तस्मिन् पूते न दोषकृत् ॥ १७० ॥

पेठे (कूम्हड़ा) के रस में हड़ताल का (दोलायन्त्र द्वारा) स्वेदन करे। फिर चूने के पानी में (दोलायन्त्र द्वारा) स्वेदन करे। फिर तिलतैल में (दोलायन्त्र द्वारा) स्वेदन करे। इसप्रकार से शुद्ध हड़ताल दोषकारक नहीं होती।

विशेषवचन— तैलांश को उष्ण जल से धोकर निकाल देना चाहिये। प्रत्येक द्रव से एक पहर स्वेदन करना होता है ॥ १७० ॥

अन्यच्च—

तालकं कणशः कृत्वा दशांशेन च टङ्कणम् ।
जम्बीरोत्थैर्द्रवैः क्षाल्यं काञ्जिकैः क्षालयेत् पुनः ॥ १७१ ॥
वस्त्रे चतुर्गुणे बद्ध्वा दोलायन्त्रे दिनं पचेत् ।
सचूर्णनारनालेन[1] दिनं कूष्माण्डजै रसैः ।
स्वेद्यं वा शाल्मलीतोयैस्तालकं शुद्धिमाप्नुयात् ॥ १७२ ॥

हड़ताल का जौकुट चूर्ण कर दस भाग ले, सुहागा एक भाग ले, दोनों को मिलाकर जम्बीरी नीबू के रस से (मर्दन करके) धोवे, फिर कांजी से धोवे। पश्चात् चार तह किये हुए वस्त्र की पोटली बना उसमें उस हड़ताल को बांध दे। पुनः कांजी लेकर उस में थोड़ा सा चूना डाल कर घोल दे। और उस में उस हड़ताल की पोटली को लटका कर दोलायन्त्र की विधि से दिनभर स्वेदन करे। पेठे के रस से दिनभर स्वेदन करे। अथवा (पेठे के रस के स्थान पर) सेमल की जड़ के रस से दोलायन्त्र में स्वेदन करे। इसप्रकार हड़ताल शुद्ध हो जाती है ॥ १७१—१७२ ॥

अन्यच्च—

तालकं पोट्टलीं बद्ध्वा सचूर्णे काञ्जिके पचेत् ।
दोलायन्त्रेण यामैकं ततः कूष्माण्डजे रसे ॥ १७३ ॥
तिलतैले पचेद् यामं यामं तत् त्रैफले जले ।

१ 'सञ्चूर्ण्य आरनालेन' पा० ।

दोलायन्त्रे चतुर्यामं पाच्यं शुध्यति तालकम् ॥ १७४ ॥

[इति शोधनम्]

हड़ताल को पोटली में बांध चूना मिली कांजी में दोलायन्त्र से एक पहर तक पकावे । फिर पेठे के रस में एक पहर तक पकावे । फिर एक पहर तक तिलतैल में पकावे । पश्चात् एक पहर तक त्रिफला के काढ़े में पकावे । इसप्रकार से दोलायन्त्र में चार पहर तक पका चुकने के पीछे हड़ताल शुद्ध हो जाती है ।

विशेषवचन–विशुद्ध हरिताल की मात्रा–$\frac{1}{8}$ रत्ती से $\frac{1}{2}$ रत्ती तक॥१७३–१७४

अथ हारितालमारणम्—

तालकं कणशः कृत्वा सुशुद्धं हरिडकान्तरे ।
चूर्णोदकेन संपिष्टमपामार्गजटोद्भवैः ॥ १७५ ॥
क्षारोदकैश्च संपिष्टमूद्‌र्ध्वाधो यावशूकजम् ।
चूर्णं दत्त्वा निरुध्याथ कूष्माण्डैश्च प्रपूरयेत् ॥ १७६ ॥
पुनर्मुखं निरुध्याथ चतुर्यामं क्रमाग्निना ।
पचेदेवं हि तच्चूर्णं कुष्ठादौ परियोजयेत् ॥ १७७ ॥

विशुद्ध हड़ताल को कण २ कर के चूने के जल से पीसे । (शुष्क होने पर) अपामार्ग की जड़ से बने क्षार के जल से पीसकर टिकिया बना ले । फिर एक हांडी में नीचे यवक्षार का चूर्ण बिछाकर हड़ताल की टिकिया रखे । ऊपर पुनः यवक्षार का बारीक चूर्ण दबा दबा कर डाले। इसके ऊपर अधोमुख शराव देकर सन्धिनिरोध करे । हांडी के अवशिष्ट भाग में पेठे का श्लक्ष्णपिष्ट कल्क (नीरस) भर कर हांडी का मुख भी बन्द कर दे। नीचे क्रमशः ४ प्रहर की मन्द मध्यम और तीव्र आग जलावे। स्वांगशीतल होने पर श्वेत रंग की हड़तालभस्म निकाल लेवे । इस के चूर्ण को कुष्ठ आदि रोगों में प्रयुक्त करे॥ १७५--१७७ ॥

हरितालं कटु स्निग्धं कषायंश्च विसर्पनुत[1] ।

---

१ 'कषायोष्णं विषप्रणुत्' इति वा पाठः कार्यः ।

तालकं हरते रोगान् कुष्ठमृत्युज्वरादिकान् ।
संशुद्धं कान्तिवीर्य्यौजः कुरुते मृत्युनाशनम् ॥ १७८ ॥

शुद्ध हड़ताल कटु, स्निग्ध, कसैली होती है, विसर्प रोग को दूर करती है, कुष्ठ अकालमृत्यु तथा ज्वरादि को हटाती है। कान्ति वीर्य्य एवं ओज को बढ़ाती है।

विशेषवचन–मूल में मृत्युनाशक गुण दोबार कहना भिन्न २ तन्त्रों के वाक्यों के उद्धरण के कारण है ॥ १७८ ॥

मतान्तरम्–

अम्लैरोलीजलैर्भाव्यं तालं द्वादशयामकम् ।
तथैव निम्बुनीरेण ततश्चूर्णोदकेन च ॥ १७९ ॥
प्रक्षाल्य शाल्मलीक्षारैर्द्विगुणैः खातमध्यगम् ।
विधाय कवचीयन्त्रं वालुकाभिः प्रपूरयेत् ॥ १८० ॥
द्वादशप्रहरं पक्त्वा स्वाङ्गशीतञ्च चूर्णयेत् ।
खादयेत् रक्तिकामेकां कुष्ठश्लीपदशान्तये ॥ १८१ ॥

हड़ताल को चाङ्गेरी के रस में बारह पहर भावना देवे। फिर नीबू के रस से १२ पहर भावना देवे। फिर चूने के पानी से हड़ताल को धो ले। और दुगुना सेमल का क्षार मिला काचकूपी में डाल दे। उस काचकूपी पर कपड़मिट्टी कर (कवचीयन्त्र) एक बड़ी हांडी में रख चारों ओर से बालू भर दे और उसके नीचे बारह पहर आग जलावे। स्वांगशीतल होने पर निकाल कर चूर्ण कर ले। इसकी एक रत्ति की मात्रा खावे तो कुष्ठ तथा श्लीपद रोग शान्त होता है।

विशेषवचन—सामान्यतः प्रयोग में आने वाली आधुनिक मात्रा–$\frac{1}{8}$ रत्ती से $\frac{1}{4}$ रत्ती तक है ॥ १७९–१८१ ॥

---

१ 'कान्तिवीर्ये च' पा०। २ 'अम्ललोणी' इति वा पठनीयम्।

अथ रसमाणिक्यम्—

तालकं वंशपत्राख्यं कूष्माण्डसलिले क्षिपेत्।
सप्तधा वा त्रिधा वाऽपि दध्ना चाम्लेन वा पुनः॥ १८२॥
शोधयित्वा पुनः शुष्कं चूर्णयेत् तण्डुलाकृति।
ततः शरावके पात्रे स्थापयेत् कुशलो भिषक्॥ १८३॥
बदरीपल्लवोत्थेन कल्केन लेपयेद्भिषक्।
अरुणाभमधःपात्रं तावज्ज्वाला प्रदीयते॥ १८४॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य माणिक्याभं भवेद् ध्रुवम्।
तद् रक्तिद्वितयं खादेद् घृतभ्रामरमर्दितम्॥ १८५॥
सम्पूज्य देवदेवेशं कुष्ठरोगाद्विमुच्यते।
स्फुटितं गलितं यच्च वातरक्तं भगन्दरम्॥ १८६॥
नाडीव्रणं व्रणं दुष्टमुपदंशं विचर्चिकाम्।
नासाऽऽस्यसम्भवान् रोगान् क्षतान् हन्ति सुदारुणान्।
पुण्डरीकञ्च चर्माख्यं विस्फोटं मण्डलं तथा॥ १८७॥

शुद्ध वंशपत्र हड़ताल को पेठे के रस में सात अथवा तीन वार भावित करे। फिर खट्टे दही (अथवा दही और किसी अम्ल-नीबू का रस वा कांजी) से सात या तीन वार भावनायें देकर (उष्ण जल द्वारा) शुद्ध कर ले। पुनः सुखा कर चावलों के समान कण २ बना ले। फिर दो शरावों में इसे कुशल वैद्य रखे। इन शरावों की सन्धियों को बेर के पत्तों से पीसे हुए कल्क से बन्द कर दे। फिर आग पर रख तबतक आग दे जबतक नीचे के पात्र के नीचे का भाग लाल रंग का नहीं हो जाता। स्वाङ्गशीतल होने पर माणिक्य के समान रंगदार चमकती हुई हड़ताल को निकाल ले। इसे रसमाणिक्य कहते हैं। शिव भगवान् की पूजा करके इसे दो रत्ती मात्रा में लेकर घी और शहद मिला रोगी खावे तो वह कुष्ठ रोग से छूट जाता है। फूटे तथा गले हुए वातरक्त, भगन्दर,

नासूर, दुष्ट व्रण, उपदंश, विचार्चिका, नाक तथा मुंह के रोग, दारुण क्षतरोग, पुण्डरीक कुष्ठ, चर्मदल अर्थात् चम्बल, विस्फोट तथा मण्डल कुष्ठ को यह रस-माणिक्य दूर करता है।

विशेषवचन—शराव में रखने से पूर्व हड़ताल के चूर्ण को दो चौड़े अभ्रक के पत्रों की तह में रखें। अभ्रकपत्रों को चारों ओर से पिन से टांककर हड़ताल को अन्दर संभालकर रखना चाहिये। फिर शरावसम्पुट में रखें। उस शरावसम्पुट को एक हांडी में रख ऊपर से वालुका भर दें। नीचे से अग्नि दें तो माणिक्य के समान लाल रंग की हरिताल मिलती है। वृद्धवैद्य इसीप्रकार बनाते हैं। अथवा दूसरी विधि यह है—अभ्रपत्र की दो तहों को पृथक् करके बीच में हड़ताल का चूर्ण बिछा दें। पुनः एक अङ्गीठी में निर्धूम अङ्गारों पर उसे रखें। अभ्रपत्र के किनारों को क्लिप वा चिमटे आदि से दबाये रखें। यह इस-प्रकार लगाने चाहियें कि दोनों अभ्रक की तहें जुड़ी रहें और हरिताल किनारों से न निकल सके। आंच से हरिताल पिघलकर लाल हो जायगी। अभ्रपत्र में से यह स्पष्ट दीखता रहेगा। जब हरिताल की लाली के कारण अभ्रपत्र लाल दीखें तो नीचे उतार लें। स्वाङ्गशीतल होने पर बीच में से रसमाणिक्य निकाल लें। रसमाणिक्य दोनों विधियों से बन जायगा। पूर्व की विधि में 'स्थापयेत् कुशलो भिषक्' के स्थान पर 'स्थापयेदभ्रपत्रयोः' यह पाठ कर देने से अधिक स्पष्ट हो जायगा॥ १८२–१८७॥

अथ सपर्य्यायमनःशिलायाः शोधनादिकम्—

मनःशिला च नैपाली शिलाह्वा नागजिह्विका।
मनोह्वा कुनटी गोणी करञ्जी करवीरिका।
मनोह्वा त्वोड्रपुष्पाभा शस्यते सर्वकर्मसु॥ १८८॥

मनःशिला, नैपाली, शिलाह्वा (शिला नाम वाली), नागजिह्विका, मनोह्वा, कुनटी, गोणी, करञ्जी, करवीरिका; ये सब नाम मनसिल के हैं। मनसिल जपापुष्प (जवाकुसुम) के समान लाल हो तो उसे उत्तम समझ सब कामों में बरतना चाहिये॥ १८८॥

मनःशिला मन्दबलश्च नूनं करोति जन्तुं शुभपाकहीना।
मलन्तु बद्धं कुरुते च नूनं सशर्करं कृच्छ्रगदं करोति ॥१८९॥

ठीक न शुद्ध हुई २ मनसिल मनुष्य के बल को मन्द करती है। मल-बद्धता करती है तथा शर्करा और मूत्रकृच्छ्र का कारण होती है॥ १८९ ॥

मतान्तरम्–

अश्मरीमूत्रहृद्रोगमशुद्धा कुरुते शिला।
मन्दाग्निं मलदुष्टिश्च शुद्धा सर्वरुजापहा ॥ १९० ॥

अशुद्ध मनसिल से पथरी, मूत्ररोग, हृद्रोग, मन्दाग्नि तथा मलदुष्टि रोग होते हैं और शुद्ध की हुई मनसिल सब रोगों को दूर करती है॥ १९० ॥

जयन्तीभृङ्गराजोत्थरक्तागस्त्यरसैः शिलाँ।
दोलायन्त्रे दिनं पाच्या यामं छागस्य मूत्रके।
क्षालयेदारनालेन सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ १९१ ॥

मनसिल को जयन्ती, भांगरा वा लाल अगास्तिया के रस में दोलायन्त्र द्वारा एक दिन पका कर कांजी से धो डाले। अथवा बकरी के मूत्र में एक पहर दोलायन्त्र द्वारा पकावे और कांजी से धोकर सब रोगों में प्रयुक्त करे।

विशेषवचन—तन्त्रान्तरों में पृथक् पृथक् द्रव्यों के रस से शोधन कहा जाने से यहां भी पृथक् अभिप्राय समझना चाहिये। इसप्रकार शोधन की चार विधियां हो जाती है। यदि सब द्रव्यों से क्रमशः पाक करके कांजी से धो लिया जाय और इसे एक ही विधि मान ली जाय तो भी कोई हानि नहीं॥ १९१ ॥

मतान्तरम्—

मातुलुङ्गरसैः पिष्टा जयानीरैर्मनःशिला।

---

१ 'मन्दबलं करोति जन्तुं ध्रुवं शोधनमन्तरेण। मलस्य बन्ध किल मूत्ररोधं' इत्यन्यत्र पाठान्तरम्।

२ 'जन्तोः' पा०।

३ 'शिलाम्। दोलायन्त्रे पचेद्यामं' रसरत्नसमुच्चयस्थः पाठः।

शृङ्गवेररसैर्वापि विशुध्यति मनःशिला ॥ १६२ ॥

(इति मनःशिलाशुद्धिः)

मनसिल को मातुलङ्ग (बिजौरा) के रस से वा जयन्ती के रस से अथवा अदरक के रस से पीसें तो वह शुद्ध होती है ॥ १६२ ॥

कटुः स्निग्धा शिला तिक्ता कफघ्नी लेखनी सरा ।
भूतावेशभयं हन्ति कासश्वासहरा शुभा ॥ १६३ ॥

शुद्ध उत्तम मनसिल कटु है, स्निग्ध है, तिक्त अर्थात् कड़वी है, कफ-नाशक है, लेखन करती है, सारक है, भूतावेश के भय को नाश करती है तथा कास श्वास को हरने वाली प्रसिद्ध है ।

विशेषवचन—विशुद्ध मनःशिला की मात्रा—१/२४ से १/१६ रत्ती तक है ॥ १६३ ॥

अथ खर्परशोधनम्—

पुष्पाणां रक्तपीतानां रसैः पित्तैश्च[1] भावयेत् ॥
नरमूत्रैश्च गोमूत्रैर्यवाम्लैश्च ससैन्धवैः ।
सप्ताहं त्रिदिनं वाऽपि पक्वः शुध्यति खर्परः ॥ १६४ ॥

खपरिया को रसग्रन्थों में कहे हुए किंशुकादि लाल पीले फूलों के रसों से और पित्तवर्ग से भावना देवे । इसप्रकार खर्पर शुद्ध हो जाता है । पुरुष के मूत्र से वा गौमूत्र से वा जौ की बनी कांजी में सेंधानमक मिलाकर सात दिन या तीन दिन दोलायन्त्र द्वारा पकाने से खर्पर शुद्ध होता है ।

विशेषवचन—'यवाम्लैश्च' के स्थान पर 'जलाम्लैश्च' और 'जम्भाम्लैश्च' ये दो पाठान्तर मिलते हैं । जलाम्ल से तो कांजी का ही ग्रहण है । जम्भाम्ल से जम्बीर का रस लिया जाता है ॥ १६४ ॥

मतान्तरम्—

खर्परः परिसन्तप्तः सप्तवारान् निमज्जितः ।
बीजपूररसस्यान्तर्[3]निर्मलत्वमवाप्नुयात् ॥ १६५ ॥

---

१ 'पिष्ट्वा च' पा० । २ 'पश्चात्' पा० । ३ 'निम्बुबीजरसे चान्तः' इति पाठान्तरम् । तत्र निम्बुरसे बीजपूररसे वा ईत्यथः ।

खपरिया को तपाकर बिजौरे के रस में बुझायें । इसप्रकार सात बार बुझाने से खपरिया निर्मल हो जाता है ॥ १६५ ॥

अथ मारणम्—

खर्परं पारदेनैव वालुकायन्त्रगं पचेत् ।
चूर्णयित्वा दिनं यावत् शोभनं[1] भस्म जायते ।
नेत्ररोगहरः क्लेदी क्षयहा खर्परो गुरुः ॥ १६६ ॥

(इति खर्परशोधनमारणम्)

शुद्ध खर्पर को चूर्ण कर समपरिमाण शुद्ध पारे से मिला एक दिन वालुकायन्त्र में पकावे । इसप्रकार से इसकी सुन्दर भस्म हो जाती है । खर्पर नेत्ररोगनाशक, क्लेद करने वाला, क्षयनाशक तथा भारी है ।

विशेषवचन—खर्परभस्म की मात्रा ½ रत्ती से २ रत्ती पर्यन्त है ॥ १६६ ॥

अथ सपर्य्यायतुत्थशोधनमारणम्—

तुत्थके तु शिखिग्रीवं हेमसारं मयूरकम् ।
विष्ठया मर्दयेत् तुत्थं मार्जारककपोतयोः ॥ १६७ ॥
दशांशं टङ्कणं दत्त्वा पाच्यं मृदुपुटे[2] ततः ।
पुटं[3] दध्ना[4] पुटं क्षौद्रैर्देयं तुत्थविशुद्धये ॥ १६८ ॥

तुत्थक, शिखिग्रीव, हेमसार और मयूरक ये नाम नीलेथोथे के हैं । नीलेथोथे (तूतिया) को बिल्ली की विष्ठा तथा कबूतर की बीठ (समान) से मर्दन करे । फिर नीलेथोथे से दसवां भाग सुहागा डालकर उसे मृदुपुट (लघुपुट) में पकावे । इसके पश्चात् दही से और फिर शहद से पुट दे तो नीलाथोथा शुद्ध (तथा मृत) हो जाता है ॥ १६७–१६८ ॥

अन्यच्च—

स्रोतोविष्ठासमं तुत्थं सक्षौद्रं टङ्कणाङ्घ्रियुक् ।

---

१ 'शोणं भस्म प्रजायते' पाठान्तरम् । तन्नातिसमीचीनं यतो भस्म पीताभं भवति । २ 'लघुपुटे' 'मृद्वग्निना' पा० । ३ 'पुटं दद्यात्पटुक्षौद्रैः किल' पा० । ४ 'खल्वे' पा० ।

त्रिधा सुपुटितं शुद्धं वान्तिभ्रान्तिविवर्जितम् ॥ १९९ ॥

बिल्ली की विष्ठा, नीलाथोथा तथा शहद समभाग लें, सुहागा चौथाई भाग लें। सबको मिलाकर तीनवार पुट देने से तुत्थ वान्ति भ्रान्ति से रहित शुद्ध हो जाता है ॥ १९९ ॥

अन्यच्च—

गन्धकेन समं तुत्थं तुत्थार्द्धेनार्द्धयामकम् ।
वान्तिभ्रान्ती यदा नस्तस्तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ २०० ॥

गन्धक एक भाग, नीलाथोथा दो भाग मिलाकर आधे पहर की पुट दे। इसीप्रकार पुट देते हुए जब वान्ति भ्रान्ति नष्ट हो जायें तब तुत्थ की शुद्धि और भस्म हो गई समझ काम में लावें।

विशेषवचन—वान्ति (के) भ्रान्ति (चक्कर आना) दोष का नाश प्रायः तीन पुटों से हो जाता है ॥ २०० ॥

गुणाः—

तुत्थं सकटुकक्षारं कषायं विशदं लघु ।
लेखनं भेदि चक्षुष्यं कण्डूक्रिमिविषापहम् ॥ २०१ ॥

(इति तुत्थकशुद्धिः)

नीलाथोथा, कटु क्षार कषाय विशद लघु लेखन (लेखन करने वाला तथा कै लाने वाला) भेदी तथा चक्षुओं के लिये हितकारी होता है,। खाज क्रिमि तथा विष को नाश करता है।

विशेषवचन—मृततुत्थ की मात्रा $\frac{१}{८}$ रत्ती से $\frac{१}{४}$ रत्ती तक। वमनार्थ तुत्थ की मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक ॥ २०१ ॥

अथ विमलशुद्धिः—

मूत्रारनालतैलेषु[१] गोदुग्धे कदलीरसे ।
कौलत्थे कोद्रवक्काथे माक्षिकं विमलं तथा ॥ २०२ ॥

---

१ 'तैलारनालतक्रेषु गोमूत्रे' पा०।

मुहुः शूरणकन्दस्थं स्वेदयेद्द्रवंवह्निना ।[1]
क्षाराम्ललवणैरण्डतैलसर्पिःसमन्वितम् ।[2]
पुटत्रयं प्रदातव्यं ततस्तु शोधितं भवेत् ॥ २०३ ॥[3]

विमल अर्थात् रौप्यमाक्षिक तथा स्वर्णमाक्षिक को शूरणकन्द में रख कर गोमूत्र, कांजी, तिलतैल, गोदुग्ध, केले का रस, कुलथी का क्वाथ, कोदों का क्वाथ; इनमें दोलायन्त्र से बार बार (तीन बार वा सातवार) स्वेदन करे। फिर क्षार (अपामार्ग आदि किसी क्षारगण के द्रव्य का क्षार अथवा प्रधानतया ग्रहण किया जाने वाला यवक्षार) अम्ल (बिजौरा वा नीबू का रस आदि), सेंधानमक, एरण्ड तैल तथा घी से मिलाकर तीन पुट देवें तो इन दोनों माक्षिकों की शुद्धि होती है।

विशेषवचन—यही भस्म भी कहलाती है । क्षार तथा लवण मिलाकर एक भाग हों तो रौप्यमाक्षिक तीन भाग होना चाहिये । पुनः पुनः क्षार तथा लवण मिलाने की आवश्यकता नहीं । अम्ल एरण्डतैल तथा घी प्रत्येक पुट में डाले जाते हैं । अन्तिम पुट के पश्चात् रौप्यमाक्षिक को जल से धो डालना चाहिये ॥ २०२—२०३ ॥

मतान्तरम्—

जम्बीरस्य रसैः स्विन्ना मेषशृङ्गीरसैस्तथा ।[4]
रम्भातोयेन वा पाच्या विमला शुद्धिमृच्छति ॥ २०४ ॥[5]

(इति विमलशुद्धिः

---

१ 'स्वेदयेद्द्रवर्णिनि' रसार्णवस्थः पाठः ।

२ 'क्षारम्ललवणैश्चैव तैल०' पा० । ३ 'तद्द्वयं' पा० ।

४ 'जम्बीरस्वरसे छिन्नामेषशृङ्गीरसेऽथवा ।
रम्भातोये तथा पाच्या विमला शुद्धिमृच्छति ।' इति रसमञ्जर्याम् । रसरत्नसमुच्चये तु—"जम्बीरस्वरसे स्विन्नो मेषशृङ्गीरसेऽथवा । आयाति शुद्धिं विमलो धातवश्च यथा परे ।" इति पाठः ।

५ 'पाच्यं घस्रं विमलशुद्धये' इति प्रासिद्धः पाठः । रसेन्द्रचिन्तामणावपीदृश एव पाठः॥

शोधनार्थ रूपामाखी को जम्बीरी के रस में दोलायन्त्र से एक दिन स्वेदन करे। अथवा मेढ़ासिंगी के रस से एक दिन स्वेदन करे। अथवा केले के रस से एक दिन दोलायन्त्र में पकावे तो रूपामाखी शुद्ध हो जाती है।

विशेषवचन—मात्रा-½ रत्ती से २ रत्ती तक ॥ २०४ ॥

अथ माक्षिकनामानि—

माक्षीके धातुमाक्षीकं ताप्यं[1] तापीसमुद्भवम्।
गरुडो माक्षिकः पक्षी बृहद्वर्णा इति स्मृतः ॥ २०५ ॥

माक्षीक, धातुमाक्षिक, ताप्य, तापीसमुद्भव, गरुड, माक्षिक, पक्षी, बृहद्वर्ण; ये सब सोनामाखी के नाम हैं ॥ २०५ ॥

अस्य लक्षणम्—

भङ्गे सुवर्णसङ्काशो मनाक् कृष्णच्छविर्बहिः।
बृहद्वर्ण इति ख्यातो माक्षिकः श्रेष्ठ उच्यते ॥ २०६ ॥

जो सोनामाखी तोड़ने में सोने जैसा हो, बाहर से थोड़ा कालिमा लिये हो उसे बृहद्वर्ण माक्षिक कहते हैं। वही उत्तम होता है ॥ २०६ ॥

अशुद्धमाक्षिकदोषाः—

मन्दाग्निं बलहानिञ्च व्रणविष्टम्भनेत्ररुक्[2]।
कुरुते माक्षीको मृत्युमशुद्धो नात्र संशयः ॥ २०७ ॥

अशुद्ध सोनामाखी मन्दाग्नि, बलहानि, व्रण, विष्टम्भ, नेत्ररोग और मृत्यु करता है ॥ २०७ ॥

अथ माक्षिकशोधनम्—

स्वर्णमाक्षिकचूर्णन्तु वस्त्रे बद्ध्वा विपाचयेत्।
कालमारिष-शालिञ्च-क्वाथे दोलाविधानतः।
तदधः पतितं शस्तमेवं शुध्यति माक्षिकम् ॥ २०८ ॥

स्वर्णमाक्षिक का चूर्ण वस्त्र में बांध कर, बड़ी चौलाई और शालिञ्च शाक

---

१ 'तप्तं' पा०। २ '०विष्टम्भगात्ररुक्' पा०।

के क्वाथ में दोलायन्त्र से पकावे । जो चूर्ण वस्त्र में से निकल कर क्वाथ में नीचे गिर जावे वह उत्तम है। इसप्रकार सोनामाखी का शोधन होता है ॥२०८॥

मतान्तरम्—

माक्षिकस्य त्रयो भागा भागैकं सैन्धवस्य च ।
मातुलुङ्गद्रवैर्वाऽथ जम्बीरोत्थद्रवैः पचेत् ॥ २०९ ॥
लौहपात्रे पचेत् तावत् लौहदर्व्या च चालयेत् ।
[२]भासवर्णमयो यावत् तावच्छुध्यति माक्षिकम् ॥ २१० ॥

सोनामाखी तीन भाग, सेंधानमक एक भाग; दोनों को मातुलुङ्ग अर्थात् बिजौरे के रस या जम्बीरी नीबू के रस में आलोडित कर लोहे की कड़ाही में तबतक पकावें और तबतक लोहे की कड़छी से हिलाते रहें जबतक लोहे की कड़ाही अग्नि के सदृश तप कर लाल न हो जाय। और जब सोनामाखी लालवर्ण (सिन्दूराभ) हो जाय तब शुद्ध हुआ समझो।

मतान्तरम्—

माक्षिकस्य चतुर्थांशं गन्धं दत्त्वा विमर्दयेत् ।
उरुबूकस्य तैलेन ततः कुर्य्यात्सुचक्रिकाम् ॥ २११ ॥
शरावसम्पुटे कृत्वा पुटेद्गजपुटेन तु ।
सिन्दूराभं भवेद्भस्म माक्षिकस्य न संशयः ॥ २१२ ॥

(इति माक्षिकशोधनम्)

सोनामाखी चार भाग, शुद्ध गन्धक एक भाग, दोनों को मिला कर घोटे । फिर एरण्डतैल से मर्दन कर टिकियां बनाले और शरावसम्पुट में रख गजपुट में फूंक दे । जब तक सिन्दूर के समान लाल रंग की भस्म न हो जाय तब तक इसीप्रकार पुट देता जाय ।

विशेषवचन—आयुर्वेदप्रकाश में धान्यतुष से गजपुट देने को लिखा है । परन्तु यह कोई आवश्यक नहीं । उपलों से भी ठीक भस्म हो जाती है । यहां

१ 'यावत्पात्रं सुलोहितम् । ताम्रवर्णमयो याति' इति रसरत्नाकरे पाठः ।

२ भासं दीप्तिः तद्वर्णम् इत्यर्थः ।

सम्पुट के ऊपर के पात्र में छिद्र होने चाहियें। अन्यथा सिन्दूरवर्ण की भस्म न होगी ॥ २११-२१२ ॥

माक्षिकं तिक्तमधुरं मेहार्शःक्रिमिकुष्ठनुत् ।
कफपित्तहरं बल्यं योगवाहि रसायनम् ॥ २१३ ॥

स्वर्णमाक्षिक (भस्म) तिक्त, मधुर होती है। प्रमेह, बवासीर, क्रिमि तथा कुष्ठ को नष्ट करती है और कफपित्त को हरती है। यह बलदायक, योगवाही और रसायन है।

विशेषवचन—मात्रा १/२ रत्ती से २ रत्ती तक ॥ २१३ ॥

अथ काशीशशोधनम्—

काशीशे धातुकाशीशं खेचरं दन्तरञ्जनम् ।

काशीश, धातुकाशीश, खेचर, दन्तरञ्जन; ये नाम कासीस के हैं।

सकृद्भृङ्गाम्बुना स्विन्नं काशीशं निर्मलं भवेत् ॥ २१४ ॥

(इति काशीशशोधनम्)

एक बार भांगरे के रस में स्वेदन करने से कासीस शुद्ध हो जाता है।

विशेषवचन—स्वेदन करते समय कासीस की डली को भूर्जपत्र में अच्छी प्रकार लपेट कर वस्त्र की पोटली में डालें। यदि भूर्जपत्र में न डालेगें तो कासीस द्रव में ही विलीन हो जायगा। इस से वायु के स्पर्श से उत्पन्न ऊपर की मलिनता हट जायगी। कासीस को यदि वस्त्रपोटली में ही डालकर स्वेदन किया जाय तो पश्चात् कासीस युक्त भृङ्गराज रस को सारकपत्र (Filter Paper) से छान ले और नीचे छने हुए द्रव को बाष्पस्वेदनयन्त्र पर सुखावे। उचित गाढ़ा हो जाने पर नीचे उतार ले और निष्कम्प पड़ा रहने दे। यह उत्तम शोधन है। सोमदेव कृत रसेन्द्रचूड़ामणि और उसी के मतानुवादी रसरत्नसमुच्चय में 'स्विन्नं' पाठ नहीं है, 'क्लिन्नं' पाठ है। जिसके अनुसार कासीस को भांगरे के रस से एक भावना देकर गीला करना चाहिये और शुष्क होने पर व्यवहार में लावें ॥ २१४ ॥

काशीशं निर्म्मलं स्निग्धं श्वित्रनेत्ररुजापहम् ।

---

१ 'शीतलं' इति पाठान्तरे स्पर्शतः शीतवीर्यम् ।

पित्तापस्मारशमनं रसवद्[1]गुणकारकम् ॥ २१५ ॥

शुद्ध हुआ २ कासीस स्निग्ध होता है, श्वेत कोढ़ और नेत्ररोगों को दूर करता है, पित्तापस्मार का नाशक है और पारे के समान गुण करता है ।

विशेषवचन–मात्रा $\frac{१}{२}$ रत्ती से २ रत्ती तक ॥ २१५ ॥

अथ कान्तपाषाणनामानि–

राजपट्टं महापट्टं शिखिग्रीवं विराटकम् ॥ २१६ ॥

राजपट्ट, महापट्ट, शिखिग्रीव, विराटक, कान्तपाषाण; ये सब चुम्बक पत्थर के नाम हैं ॥ २१६ ॥

अथ कान्तपाषाणशुद्धिः–

चूर्णितं कान्तपाषाणं महिषीक्षीरसंयुतम् ।
विपचेदायसे पात्रे गोघृतेन समाहितम् ॥ २१७ ॥

कान्तपाषाण के चूर्ण को, लोहे की कड़ाही में भैंस का दूध तथा गौ का घी डालकर पकावें । इस प्रकार कान्तपाषाण शुद्ध हो जाता है ॥ २१७ ॥

लवणे[2] च तथा क्षारे शोभाञ्जनरसे क्षिपेत् ।
अम्ल[3]वर्गस्य तोयेन दिनं घर्मे विभावयेत् ॥ २१८ ॥
त[4]थैव दोलिकायन्त्रे द्वि[5]वारं पाचयेत् सुधीः ।
कान्तपाषाणशुद्धौ तु रसकर्म्म समाचरेत् ॥ २१९ ॥

(इति कान्तपाषाणशोधनम् । अस्यैव नामान्तरं राजपट्ट इति)

अथवा लवण तथा क्षार में मिलाकर सुहांजने (सहिजन) के रस में डालकर

---

१ अत्र 'रसबन्धनकारकम्' इति पाठः साधीयान् । यतो नास्य गुणाः सर्वे पारदेन समाः । अस्य पारदबद्धताकरत्वेऽन्यत्राप्युक्तं–श्वित्राक्षिकुष्ठामयकण्डुहारिणौ कासीसकाख्यौ रसबन्धनौ स्मृतौ' इति ।

२ 'लवणानि तथा क्षारौ' इति रसेन्द्रचिन्तामणिपाठः ।

३ 'अम्लवर्गयुतेनादौ इति रसेन्द्रचिन्तामणौ पाठः ।

४ 'तद्द्रवैः' पा० । ५ 'दिवसं' पा० ।

धूप में सुखावे (अथवा सुहांजने के रस में ही लवण तथा क्षार डालकर उससे कान्तपाषाण को भावना दे)। पश्चात् अम्लवर्ग (नीबू आदि) के रस से भावित कर दिनभर धूप में सुखावे। इसप्रकार कान्तपाषाण शुद्ध हो जाता है। तब इसे रसकर्म में प्रयुक्त करे। इसीप्रकार दो वार दोलायन्त्र में पकाने से कान्तपाषाण शुद्ध होता है।

विशेषवचन—'द्विवार' के स्थान पर 'दिवसं' पाठ होने पर एक दिन (४ याम) दोलायन्त्र में पाक होगा। दोलायन्त्र में पाकार्थ वे ही द्रव अभीष्ट हैं जो भावना में कहे गये हैं। अन्यत्र कहा भी है–

'शोभाञ्जनरसे साम्लवर्गे दोलागतो दिनम्।
शुध्यति पाचितः कान्तपाषाणः पारदोपकृत् ॥'

'लवण' और 'क्षार' से लवणपञ्चक और त्रिक्षार का अभिप्राय है। रसरत्नाकर में स्पष्ट कहा है–

'सूर्यावर्तो वज्रकन्दं कदली देवदालिका।
शिग्रुः कोषातकी वन्ध्या काकमाची च वायसी ॥
आसामेकरसेनैव त्रिक्षारैर्लवणैर्युतम्।
भावयेदम्लवर्गेण दिनमेकं प्रयत्नतः ॥
सौवीरं कान्तपाषाणं शुद्धभूनागमृत्तिकाः।
शङ्खो नीलाञ्जनं चैव सर्वे उपरसाश्च ये ॥
पृथग्भाव्यं विधानेन शुद्धिं यान्ति दिने दिने।
तथा पचेत्तु तद्द्रावैर्दोलायन्त्रे दिनं सुधीः।
शुद्ध्यन्ति नात्र सन्देहः सर्वे तूपरसा अमी ॥'

शुद्ध होने पर इसे लोहे के समान पुटें दे देकर भस्म करले अथवा समपरिमाण गन्धक और भांगरा के रस के साथ सातवार पुट देकर इसे भस्म करने का तन्त्रान्तरों में विधान है। कहीं कहीं भांगरा के स्थान पर बिजौरे का रस लेने को कहा है। मात्रा ½ रत्ती से २ रत्ती तक ॥ २१८–२१९ ॥

अथ वराटिकालक्षणानि–

पीताभा ग्रन्थिला पृष्ठे दीर्घवृन्ता वराटिका।

रसवैद्यैर्विनिर्दिष्टा सा चराचरसंज्ञिका[1] ॥ २२० ॥
सार्द्धनिष्कभरा श्रेष्ठा निष्कभारा च मध्यमा ।
पादोननिष्कभारा च कनिष्ठा परिकीर्त्तिता ॥ २२१ ॥

वराटक अर्थात् कौड़ी वह अच्छी होती है जो पलि से रंग की हो, पीठ पर गांठदार हो, जिस के वृन्त दीर्घ हों। रसवैद्यों ने इसे चराचर नाम से भी कहा है। डेढ़ निष्क (१॥ शाण) भर भार में हो तो श्रेष्ठ, निष्क भर की हो तो मध्यम, पौने निष्क की हो तो कनिष्ठा (छोटी और प्रयोग में अवर) कौड़ी कहाती है।

विशेषवचन--'दीर्घवृत्ता' पाठ होने पर जो लम्बी और गोल हो–यह अर्थ होगा ॥ २२०---२२१ ॥

अथ वराटिकाशुद्धिः—

वराटी काञ्जिके स्विन्ना यामाच्छुद्धिमवाप्नुयात्[2] ।

कौड़ी को कांजी में एक प्रहर दोलायन्त्र से स्वेदन करें तो शुद्ध हो जाती है।

गुणाः—

परिणामादिशूलघ्नी क्षयहा ग्रहणीहरा ।
कटूष्णा दीपनी वृष्या तिक्ता[3] वातकफापहा ॥ २२२ ॥

कौड़ी की भस्म परिणामशूल आदि शूलों की नाशक है। क्षय को हटाती है। ग्रहणीरोग को दूर करती है। यह कटु, उष्ण, दीपन, वृष्य, तथा तिक्त है। वातकफ को नष्ट करती है ॥ २२२ ॥

मारणम्[4]----

भूगर्त्ते च समे शुद्धे पत्तनं स्थापयेत् सुधीः ।
तुषेण पूरयेत् तस्य[5] किञ्चिन्मध्यं भिषग्वरः ॥ २२३ ॥

---

१ 'सा वराटकसंज्ञका' इति पाठः प्रचरति ।
२ 'यावच्छुद्धिमवाप्नुयात्' पा० ।
३ 'नेत्र्या' इति पा० । ४ 'मतान्तरम्' पा० । ५ 'तस्याः' पा० ।

वराटपूरितां मूषां तन्मध्ये विनिवेशयेत् ।
करीषाग्निं ततो दद्यात् पालिकायन्त्रमुत्तमम् ।
अनेन म्रियते नूनं वराटं सर्वरोगजित् ॥ २२४ ॥

(इति वराटिकाशुद्धिः)

एक समतल गढ़ा खोदकर उसे झाड़ बुहार कर शुद्ध कर ले । विज्ञ वैद्य उसमें पत्तन (मृदङ्गाकृति-तन्दूर) की स्थापना करे । उस तन्दूर में कुछ तुष भर कर शुद्ध कौड़ियों से भरी मूषा रखे । ऊपर से फिर उपले भर कर आग लगा दे । इसे पालिकायन्त्र कहते हैं । इससे कौड़ी की भस्म हो जाती है । यह भस्म सब रोगों को नष्ट करती है ।

विशेषवचन—मात्रा-२ रत्ती ॥ २२३—२२४ ॥

अथाञ्जनशुद्धिः-

नीलाञ्जनं चूर्णयित्वा जम्बीरद्रवभावितम् ।
दिनैकमातपे शुद्धं ततः कार्य्येषु योजयेत् ॥ २२५ ॥

नीले अञ्जन (काला सुरमा) को चूर्ण करके जम्बीर के रस से एक दिन भावना देवे, फिर धूप में शुष्क करले तो शुद्ध हो जाता है । इसे अञ्जन आदि कार्य्यों में प्रयुक्त करे । अन्तःप्रयोगार्थ मात्रा ½ रत्ती से १ रत्ती तक ।

विशेषवचन-नीलाञ्जन में नाग मिला रहता है । उस नाग को पृथक् करने के लिये नीलाञ्जन में तांबा (⅕ भाग) मिलाकर मूषा में पिघलाना चाहिये । जब पिघल जाय तो उसे रेज़ी में डाल दें । ठोस होजाने पर कूटने से नाग पृथक् मिलेगा । अञ्जन में वह तांबा भी मिला हुआ होगा । उसे नीबू वा जम्बीर आदि के रस के साथ घोट घोट कर निकालना होगा । जब नीला पानी निकलना बन्द हो जाय तब स्वच्छ जल से अच्छी प्रकार धो डालें । प्राचीनकाल में शोधनार्थ तांबे के स्थान पर लोहे का प्रयोग भी था ।

अञ्जन में समपरिमाण गन्धक मिलाकर पुटें देने से उसकी भस्म हो जाती है । इस भस्म को आजकल कालाज़ार में प्रयुक्त किया जाता है ॥२२५॥

---

१ 'शुष्कं भवेत्, 'शुद्धं भवेत्, पा० ।

अथ हिङ्गुलपर्य्यायाः—

हिङ्गुले हिङ्गुलुर्याति दरदः शुकतुण्डकः।
रसगन्धकसम्भूतो हिङ्गूलो दैत्यरक्तकः॥ २२६॥

हिंगुल, हिंगुलु, दरद, शुकतुण्ड (तोते की चोंच के सदृश वर्ण में होने से), रसगन्धकसम्भूत (पारा और गन्धक के संयोग से बनने के कारण), हिङ्गूल, दैत्यरक्तक; ये सब शिंगरफ़ के नाम हैं॥ २२६॥

अथ हिङ्गुलशोधनम्—

अम्लवर्गद्रवैः पिष्ट्वा दरदो माहिषेण च।
दुग्धेन सप्तधा पिष्टः शुष्कीभूतो विशुध्यति॥ २२७॥

हिंगुल को अम्लवर्ग के रसों से (सातवार) पीसकर भैंस के दूध से सातवार पीसे। सूखने पर शुद्ध हो जाता है॥ २२७॥

अन्यच्च—

मेषीदुग्धेन दरदमम्लवर्गैर्विभावितम्।
सप्तवारं प्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चितम्॥ २२८॥

हिंगुल को भेड़ के दूध से सातवार भावित कर अम्लवर्ग से सात वार भावित करे तो निश्चित शुद्ध हो जाता है॥ २२८॥

अन्यमतम्—

दरदं दोलिकायन्त्रे पक्वं जम्बीरजैर्द्रवैः।
सप्तवारमजामूत्रैर्भावितं शुद्धिमेति हि॥ २२९॥

हिंगुल को दोलायन्त्र से जम्बीर के रस में पकावें। फिर सातवार बकरी के मूत्र में भावित करे तो शुद्ध हो जाता है॥ २२९॥

अथान्यत्—

आर्द्रकैर्लकुचद्रावैः सप्तधा भावितो यदि।
हिङ्गुलः शुद्धतां याति निर्दोषो जायते खलु॥ २३०॥

हिंगुल को अदरक के रस से अथवा बड़हल के रस से सातवार भावना दें तो शुद्ध एवं निर्दोष हो जाता है।

विशेषवचन—रसरत्नसमुच्चय के अनुसार इन्हें शोधन की दो विधियां ही जाननी चाहियें ॥ २३० ॥

अथ शुद्धहिङ्गुललक्षणं गुणाश्च—

बिम्ब्याभं हिङ्गुलं दिव्यं रसगन्धकसम्भवम् ।
मेहकुष्ठहरं रुच्यं बल्यं मेधाग्निवर्द्धनम् ॥ २३१ ॥

पारे और गन्धक से उत्पन्न हिंगुल बिम्बीफल के समान लाल रंग का दिव्य (श्रेष्ठ) होता है। यह प्रमेह और कुष्ठ को दूर करता है। रुचिवर्धक, बलकारक, मेधावर्धक तथा अग्निवर्धक है।

विशेषवचन—रसार्णव तथा रसेन्द्रचिन्तामणि में 'बिम्ब्याभ' के स्थान पर 'तिक्तोष्णं' पाठ है। वहां यह श्लोक केवल गुणपरक है। इसके अनुसार हिंगुल तिक्त एवं उष्ण होता है और उसमें दिव्यगुण होते हैं। मात्रा—½ रत्ती से १ रत्ती तक॥ २३१ ॥

अथ शिलाजतुनामानि—

शिलाजतुनि शैलेयमद्रयं गिरिजमश्मजम् ।
धातुजमश्मजतुकं शैलजं चाश्मसम्भवम् ॥ २३२ ॥

शिलाजतु, शैलेय, अद्र्य, गिरिज, अश्मज, धातुज, अश्मजतुक, शैलज, अश्मसंभव; ये शिलाजीत के नाम हैं ॥ २३२ ॥

तच्छुद्धिः—

गोदुग्धत्रिफलाभृङ्गद्रवैः पिष्टं शिलाजतु ।
दिनैकं लौहजे पात्रे शुद्धिमायात्यसंशयम् ॥ २३३ ॥

शिलाजीत को गोदूध, त्रिफला के क्वाथ तथा भांगरे के रस से एक २ दिन लोहे के पात्र में पीसें तो निश्चय से शुद्ध हो जाता है।

विशेषवचन—रसरत्नाकर में 'गोदुग्ध' के स्थान पर 'गोमूत्र' पढ़ा गया है। शुद्धि दोनों ही प्रकार से होती है।

---

१ 'बलमेदोऽग्निदीपनम्, पा०।

'गोमूत्रैस्त्रिफलाक्वाथैर्भृङ्गराजद्रवैर्जतुम्।
मर्दयेदायसे पात्रे दिनाच्छुद्धिः प्रजायते ॥'

पर्वत से जो शिलाजीत मिलती है उसमें बालू पत्ते आदि कई मलिनतायें रहती है। अतः दूध आदि से पीसने से पूर्व उष्ण जल द्वारा निर्मल कर लेना आवश्यक है। शिलाजीत के छोटे छोटे टुकड़े करके अत्युष्ण द्विगुण जल में घोल कर और वस्त्र से छान कर वा नितार कर एक लोहपात्र में डाल देते हैं। इसे धूप में रख देते हैं। जब ऊपर घना भाग आजाता है तब उसको ऊपर से लेकर दूसरे पात्र में डालते हैं और उससे दुगुना गरम जल भी डाल देते हैं। पुनः धूप में रखने पर जो घनभाग आजाता है उसे दुगुने गरम जल के साथ तीसरे पात्र में डालते हैं। इसीप्रकार तीसरे से चौथे में डाला जाता है। अन्त में घनभाग को लेकर पृथक् पात्र में सुखा ले। इसप्रकार तब-तक करते जाना चाहिये जबतक सारी शिलाजीत पृथक् न हो जाय। इस जल-शुद्ध शिलाजीत को गोदुग्ध आदि से मर्दन कर विशेष शोधन करना चाहिये।

अथ शुद्धशिलाजतुगुणाः—

शिलाजतु भवेत् तिक्तं कटुकञ्च रसायनम्।
क्षयशोथोदरार्शांसि हन्ति वस्तिरुजां जयेत् ॥ २३४ ॥

शिलाजीत तिक्त, विपाक में कटु, तथा रसायन है। क्षय शोथ उदर बवासीर तथा बस्ति की पीड़ा वा रोगों को दूर करता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—२ रत्ती से ८ रत्ती तक।

अथ सौवीरादिशोधनम्—

सौवीरं टङ्कणं शङ्ख कङ्कुष्ठं गैरिकं तथा।
एते वराटवच्छोध्या भवेयुर्दोषवर्जिताः ॥ २३५ ॥

सौवीराञ्जन, सुहागा, शंख, कङ्कुष्ठ (Gamboge), गेरू; इन्हें कौड़ी के समान शुद्ध करना चाहिये। उसप्रकार ये दोष-रहित होजाते हैं।

विशेषवचन—यदि इनमें से सुहागा और कङ्कुष्ठ को दोलायन्त्र में पाक यूं ही किया जायगा तो ये घुल जांयगे। अतः इनकी डलियां ही ले और

भोजपत्र में लपेट कर स्वेदन करे। इससे वायुस्पर्श से उत्पन्न ऊपर की मलिनता हट जायगी। कई कङ्कुष्ठ से मुर्दासंग लेते हैं परन्तु वे भूलते हैं। क्योंकि मुर्दासंग विरेचक नहीं। कङ्कुष्ठ बाज़ार में उसारारेवन्द नाम से मिलता है परन्तु वह रेवन्दचीनी का सार नहीं है ॥ २३५ ॥

कङ्कुष्ठादीनां शोधनम्–

कङ्कुष्ठं गैरिकं शङ्खं काशीशं टङ्कणं तथा।
नीलाञ्जनं शुक्तिभेदाः खुल्वकाः सवराटकाः ॥ २३६ ॥
जम्बीरवारिणा स्विन्नाः क्षालिताः कोष्णवारिणा।
शुद्धिमायान्त्यमी योज्या भिषग्भिर्योगसिद्धये ॥ २३७ ॥

कङ्कुष्ठ, गेरू, शंख, कसीस, सुहागा, नीला अञ्जन, सीप के भेद, शम्बूक या घोंघे, कौड़ी; इन सब को जम्बीर के रस से (१ याम) स्वेदन कर के कोसे पानी से धो दें तो शुद्ध होते हैं। इन्हें शुद्ध करके ही योगों में डालें ॥ २३६—२३७ ॥

अथ टङ्कणपर्यायाः–

टङ्कणं क्रामणष्टङ्कः सम्यक्क्षारश्च पाचनः।
सुभगो मालतीजातो द्रावी लौहविशुद्धिदः ॥ २३८ ॥

टङ्कण, क्रामण, टङ्क, सम्यक्क्षार, पाचन, सुभग, मालतीजात, (मालती नदी के किनारे होने के कारण), द्रावी (सुवर्ण आदि को पिघला देने से), लोहविशुद्धद (स्वर्ण रजत आदि धातुओं का शोधक); ये सुहागे के नाम हैं ॥ २३८ ॥

अथ टङ्कणशुद्धिः–

आदौ टङ्कणमादाय काञ्जिकाम्ले विनिक्षिपेत्।
एकरात्रात् समुद्धृत्य रौद्रयन्त्रे विभावयेत् ॥ २३९ ॥
नरमूत्रगतं टङ्कं गवां मूत्रगतं तथा।
दिनान्ते तत् समुद्धृत्य जम्बीराम्बुगतं ततः ॥ २४० ॥

जम्बीराम्लात् समुद्धृत्य नारिकेलस्य पात्रके ।
मरीचचूर्णसंयुक्तं चालयेच्छीतलाम्बुना ।
एवं टङ्कं समादाय सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ २४१ ॥

सुहागा (डली) लेकर खट्टी कांजी में डाले। एक रात्रि के पीछे निकाल कर धूप में सुखावे। अथवा क्रमशः पुरुष के मूत्र और गौ के मूत्र में सुहागे को डालकर शाम के समय निकाल ले। पुनः अगले दिन प्रातःकाल जम्बीरी के रस में डाले, फिर सायं निकालकर नारियल के पात्र में मरिचों के चूर्ण से मलमल कर शीतल जल से धोवे। इस प्रकार शुद्ध हुए सुहागे को सब योगों में बर्त्तें।

विशेषवचन—परन्तु आजकल प्रायशः 'वह्नावुत्फुल्लितः शुचिः' के अनुसार तवे पर खील करके शोधन कर योगों में बरतते हैं। मात्रा–२ रत्ती से ८ रत्ती तक ॥ २३९—२४१ ॥

गुणाः—

टङ्कणोऽग्निकरो रूक्षः कफघ्नो रेचनो लघुः ॥ २४२ ॥

सुहागा अग्निवर्धक, रूखा, कफनाशक, रेचन और लघु है ॥ २४२ ॥

अथ शङ्खमारणम्—

अन्धमूषागतं शङ्खं पलमेकं[1] विचक्षणः ।
माषार्द्धटङ्कणैर्मिश्रं दण्डयन्त्रेण मारयेत् ॥ २४३ ॥

अन्धमूषा में एक पल शुद्ध शंख को तथा आधा माषा सुहागे को मिलाकर पुट दे। फिर खरल में दण्ड से पीस ले। यह शंखभस्म है ॥ २४३ ॥

अथ शुद्धशङ्खगुणाः—

शङ्खः सर्वरुजां हन्ति विशेषादुदरामयम् ।
शूलाम्लपित्तविष्टम्भ–मेहहृत् वह्निदीपनः ॥ २४४ ॥

(अथ उपरसशोधनाद्यधिकारः)

शंख सब पीड़ाओं को दूर करता है। विशेषकर दस्तों में लाभकर है। यह

१ 'पक्कमेकं' पा० ।

शूल अम्लपित्त विष्टम्भ और प्रमेह को हरने वाला तथा अग्निदीपक है।

विशेषवचन—शङ्खभस्म की मात्रा—२ रत्ती ॥ २४४ ॥

अथ स्वर्णादिशोधनम् ।

हेमादिलौहकिट्टान्तं शोधनं मारणं शृणु ।
तैले तक्रे गवां मूत्रे काञ्जिकेऽथ कुलत्थजे ॥ २४५ ॥
तप्ततप्तानि सिञ्चेत तत्तद्द्रावे च सप्तधा ।
एवं स्वर्णादिलौहानि शुद्धिमायान्त्यसंशयम् ॥ २४६ ॥

स्वर्ण, चांदी, तांबा आदि धातुओं से लेकर लोहे के मल तक सब का शोधन और मारण इस अधिकार में लिखते हैं—

इन स्वर्ण आदि धातुओं को आग में तपा २ कर तिलतैल, तक्र (छाछ), गौमूत्र, कांजी तथा कुलथी के क्वाथ में सात २ वार बुझावे तो निःसन्देह शुद्धि होती है।

विशेषवचन—यह सब धातुओं का सामान्य शोधनप्रकार है। इस विधि से सोना चांदी आदि किसी भी धातु का शोधन किया जासकता है। शार्ङ्गधर में सात २ बार के स्थान पर तीन २ वार बुझाने का विधान है, परन्तु सात २ वार ही बुझाना अच्छा है ॥ २४५—२४६ ॥

सौख्यं वीर्य्यं बलं हन्ति नानारोगं करोति च ।
अशुद्धममृतं स्वर्णं तस्मात् शुद्धन्तु मारयेत् ॥ २४७ ॥

अशुद्ध तथा बिना मारा हुआ स्वर्ण, सुख वीर्य और बल का नाश करता है और नाना रोगों को उत्पन्न करता है। इसलिये शुद्ध स्वर्ण की ही भस्म करे ॥ २४७ ॥

मृत्तिकामातुलुङ्गाम्लैर्भावितं पञ्चवासरम्[1] ।
सभस्मलवणैर्हेम[2] शोधयेत् पुटपाकतः ॥ २४८ ॥

---

१ 'मातुलुङ्गाम्लैः पञ्चवासरभावितं, 'मातुलुङ्गाम्लैः पञ्चवारं सुभावितम्' पा० ।
२ ' मृद्भस्मलवणाद्धेम शोधयेत् पुटयेत्ततः' ॥ पा० ।

मृत्तिका (गेरू मिट्टी), गोबर की राख, सेन्धानमक; इन्हें एकत्र मिला बिजौरे के रस से घोटें। उससे कण्टकवेध्य स्वर्णपत्र को लिप्तकर पांच दिन तक पड़ा रहने दें। पश्चात् कपोत वा कुक्कुट पुट दें तो स्वर्ण शुद्ध हो जाता है। अथवा लेप करके शुष्क होने पर पुट दे। इसप्रकार पांच बार करे तो स्वर्ण शुद्ध हो जाता है।

विशेषवचन–कई मृत्तिका से पञ्चमृत्तिका लेते हैं। तब 'सभस्मलवणैः' कहने की आवश्यकता ही नहीं रहती। क्योंकि—

"इष्टिका गैरिकं लोणं भस्म वल्मीकमृत्तिका।
रसप्रयोगकुशलैः कीर्तिताः पञ्चमृत्तिकाः॥"

इसके अनुसार भस्म और लवण तो पञ्चमृत्तिकाओं में शामिल ही हैं।

यदि 'मृत्तिका' से पञ्चमृत्तिका लेने में ही आग्रह हो तो यहां दो विधियों का निर्देश मानना होगा। एक तो बिजौरे के रस में पीसी गई पञ्चमृत्तिका के लेप और पुटपाक से और दूसरी गोबर की राख और लवणों के योग के लेप और पुटपाक से। यदि 'मृद्भस्मलवणैः' पाठ हो तो गेरू अथवा वर्णमृत्तिका (कबीस–जिससे मिट्टी के पात्र रंगे जाते हैं) तथा गोबर की राख और सेन्धानमक के (मातुलुङ्ग-रस से पिसे) लेप और पुटपाक से। यह प्रकार वही है जो हमने पूर्व टीका में कहा है। परन्तु पञ्चमृत्तिका के प्रकार को यहां कह कर मतान्तर द्वारा उसके बाद ही पुनः कहना दोष के अन्तर्गत है॥ २४८॥

मतान्तरम्—

वल्मीकमृत्तिका धूमं गैरिकं चेष्टका पटु।
इत्येता मृत्तिकाः पञ्च जम्बीरैरारनालकैः॥ २४९॥
पिष्ट्वा लेप्यं स्वर्णपत्रं पुटेन तु विशुध्यति।
धारयेत् स्वर्णपत्रीभिस्त्रिदिनं पञ्चमृत्तिकाः॥ २५०॥

(इति स्वर्णशोधनम्)

बमई की मिट्टी, धुआं (गृहधूम), गेरू, ईंट का चूर्ण, लवण (सेन्धानमक); इन पांच मिट्टियों को जम्बीर के रस अथवा कांजी से पीसकर स्वर्ण

पत्र को लीपे और फिर पुट (२० उपलों से) देवे तो वह शुद्ध हो जाता है। तीन दिन तक पञ्चमृत्तिका स्वर्णपत्रों पर लगी रहने दे।

विशेषवचन—पञ्चमृत्तिकाओं में कहीं कहीं धूम के स्थान पर भस्म है। पुट पांच या सात देनी चाहियें। पुट देने में उपलों की संख्या द्रव्य की राशि पर भी निर्भर होती है। २० उपलों की आग १ पल स्वर्ण के लिये होती है। एक तोला ही स्वर्ण हो तो पांच सात उपलों की आग पर्याप्त है। ऐसा ही अन्यत्र भस्म आदि के विधानों में भी समझें॥ २४६–२५०॥

अथ स्वर्णमारणम्—

माक्षिकं नागचूर्णञ्च पिष्टमर्करसेन च।
हेमपत्रं पुटेनैव म्रियते क्षणमात्रतः॥ २५१॥

शोधित स्वर्णमाक्षिक चूर्ण तथा शुद्ध सीसे के चूर्ण (भस्म) को आक के रस वा दूध से पीसकर शुद्ध सोने के कंटकवेध्य पत्रों पर लेप करदे। फिर एक पुट देने से ही स्वर्ण की भस्म हो जाती है॥ २५१॥

मतान्तरम्—

स्वर्णार्द्ध[1] पारदं दत्त्वा कुर्य्यात् यत्नेन पिष्टिकाम्[2]।
दत्त्वोद्र्ध्वाधो नागचूर्णं पुटेन म्रियते ध्रुवम्॥ २५२॥

शुद्ध स्वर्णपत्र (कुतरा हुआ) और उस से आधा शोधित पारद खरल में डालकर यत्नपूर्वक मर्दन करे। जब पीठी बनजाय तब एक शराव में आधा ऊपर और आधा नीचे स्वर्णपत्र के समपरिमाण शुद्ध सीसे का चूर्ण (नागभस्म) रखे और बीच में उसी स्वर्ण की पीठी को रख सम्पुट कर पुट दे तो स्वर्ण की भस्म हो जाती है॥ २५२॥

मतान्तरम्—

गलितस्य सुवर्णस्य षोडशांशेन सीसकम्।
योजयित्वा समुद्धृत्य निम्बुनीरेण मर्दयेत्॥ २५३॥

---

१ 'सुशुद्धं' पा०। २ 'पीठिकाम्' पा०।

गोलं कृत्वा गन्धचूर्णं समं दत्त्वाधरोत्तरम्[1] ।
शरावसम्पुटे कृत्वा पुटेत् त्रिंशद्वनोपलैः ।
एवं मुनिपुटैर्हेम नोत्थानं लभते पुनः ॥ २५४ ॥

शुद्ध स्वर्ण को पिघलाकर उसमें सोलहवां भाग शुद्ध सीसा डाल दें। मिलजाने पर नीचे उतार ले और खरल में डाल नीबू के रस से भलीप्रकार मर्दन करे और गोला बनावे। गोले के समान शुद्ध गन्धक का चूर्ण ले। एक शराव में उस गन्धक को आधा नीचे और आधा ऊपर दें। बीच में गोले को रख दें। दूसरा शराव ऊपर देकर सम्पुट कर दें। इस शरावसम्पुट को तीस जंगली उपलों की आग देवे। इसप्रकार नीबू के रस से मर्दन कर गन्धक के साथ सात पुट देने से भस्म हुआ २ स्वर्ण फिर उत्थान को प्राप्त नहीं (निरुत्थ) होता अर्थात् मित्रपञ्चक से जीता नहीं।

विशेषवचन—नाग वा सिन्दूर के साथ स्वर्ण की भस्म करने से नागांश के विद्यमान होने पर स्वर्ण के पूर्ण गुण नहीं रहते। अतएव शत्रुधातु से किसी धातु को भस्म करना भी निन्दनीय समझा गया है। रसरत्नसमुच्चय में कहा है—

'अरिलोहेन लोहस्य मारणं दुर्गुणप्रदम् ।'

अतः उत्तम तो यही है कि इन विधियों को त्याग कर आगे कही जाने वाली विधि से स्वर्णभस्म करे। परन्तु यदि इन्हीं विधियों से भस्म करनी हो तो भस्म करने के पश्चात् म्लेच्छ (शिंगरफ़) से तब तक पुटें देनी चाहियें जबतक वह नागांश-रहित न हो जाय। रसेन्द्रचिन्तामणि में नागभस्म से स्वर्णभस्म करने की विधि में लिखा भी है—

'पुनः पुटेत्त्रिवारं तन्म्लेच्छतो नागहानये ॥'

कई लोग स्वर्ण की भस्म नीलाञ्जन (सुरमा) के योग से भी करते हैं। परन्तु वह सब से अधिक निकृष्ट है। इसके अन्दर सीसा (lead) और अञ्जन (Antimony) दो धातुएं होती हैं। इनमें से अञ्जन हृदय पर अच्छा प्रभाव नहीं रखता। स्वर्ण हृद्य होता है और उसका गुण ठीक उससे विपरीत है ॥ २५३–२५४ ॥

---

१ 'दद्यात् तदोपरि' इति पाठः प्रचरति ।

मतान्तरम्—

शुद्धसूतसमं स्वर्णं खल्वे कृत्वा तु गोलकम् ।
ऊर्ध्वाधो गन्धकं दत्त्वा सर्वतुल्यं निरुध्य च ॥ २५५ ॥
त्रिंशद्वनोपलैर्दद्यात् पुटान्येवं चतुर्दश ।
निरुत्थं जायते भस्म गन्धो देयः पुनः पुनः ॥ २५६ ॥

शुद्ध पारे के समान शुद्ध स्वर्ण लेकर खरल में घोटें और गोला बनावें। फिर दोनों के समान शुद्ध गन्धक ले एक शराव में ऊपर नीचे आधी २ गन्धक देकर और बीच में इस गोले को रखकर सम्पुट कर दे। फिर इसे तीस जंगली उपलों को आग दे। इसप्रकार चौदह पुट देने से निरुत्थ स्वर्णभस्म हो जाती है। इसमें प्रत्येक वार गन्धक डालनी चाहिये।

विशेषवचन—इस विधि में जब पूर्व पारद और स्वर्ण मिलाया जाय तो नीबू के रस से घोट कर मलिन जल निकाल देना चाहिये। वृद्ध वैद्य प्रत्येक पुट में पारद भी डालते हैं। परन्तु प्रतिपुट में $\frac{1}{16}$ भाग पारद को घटाते जाते हैं। गोलक बनाने के लिये जम्बीर वा नीबू का रस व्यवहार में लाया जाता है। आयुर्वेदप्रकाश के कर्ता ने कहा है—

'अत्रानुक्रमपि ज्ञेयं गोलकीकरणे बुधैः ।
जम्बीरद्रवदानं तु सर्वत्रैवं विनिश्चयः ॥'

रसमञ्जरीकार ने बताया है कि यदि इसमें नीबू के रस की भावना हो तो दस पुटों में ही स्वर्णभस्म तैयार हो जायगी ॥ २५५–२५६ ॥

अथ शुद्धस्वर्णगुणाः—

कषायतिक्तमधुरं सुवर्णं गुरु लेखनम् ।
हृद्यं रसायनं बल्यं चक्षुष्यं कान्तिदं शुचि ॥ २५७ ॥
आयुर्मेधावयःस्थैर्य-वाग्विशुद्धिस्मृतिप्रदम् ।
क्षयोन्मादगराणाञ्च कुष्ठानां नाशनं परम् ॥ २५८ ॥

(इति स्वर्णमारणम्)

स्वर्णभस्म कसैला, तिक्त, मधुर, भारी, लेखन, हृदय के लिये हितकारी, रसायन, बलदायक, चक्षुओं के लिये हितकारी, कान्तिदायक, पवित्र होती है। स्वर्ण आयु, मेधा, वयस् की स्थिरता, वाणी की शुद्धि और स्मृति का भी देने वाला है। क्षयरोग, उन्माद, गरविष तथा कुष्ठरोगों का परम नाशक है।

विशेषवचन—स्वर्णभस्म की मात्रा–$\frac{1}{8}$ रत्ती से $\frac{1}{4}$ रत्ती तक ॥२५७–२५८

अथ शुद्धरजतलक्षणम्—

दग्धोत्तीर्णं सुशीतं यन्निर्मलं कुन्दसन्निभम्।
गुरु स्निग्धं कुमारञ्च तारमुत्तममिष्यते ॥ २५६ ॥

जो रजत अर्थात् चांदी अग्नि में दग्ध करने के पश्चात् सुशीत होने पर कुन्द फूल के समान श्वेत एवं निर्मल हो, तथा जो भारी चिकनी और मुलायम हो वह उत्तम होती है ॥ २५६ ॥

अथ अशुद्धरजतदोषाः—

आयुः शुक्रं बलं हन्ति रोगसङ्घं करोति च।
अशुद्धञ्चामृतं तारं शुद्धं मार्यमतो बुधैः ॥ २६० ॥

अशुद्ध और ठीक भस्म न हुई २ चांदी आयु वीर्य तथा बल का नाश करती है और अनेक रोगों का कारण होती है। इसलिये चांदी को शुद्ध करके ही मारना चाहिये ॥ २६० ॥

अथ रजतशोधनम्—

नागेन क्षारराजेन द्रावितं शुद्धिमृच्छति।
रजतं, दोषनिर्मुक्तं किंवा क्षाराम्लपाचितम् ॥ २६१ ॥

(इति रजतशोधनम्)

चांदी को सीसा तथा सुहागे से मिलाकर पिघलावें तो शुद्ध हो जाती है। अथवा क्षार और अम्ल में पकाने से भी चांदी दोषरहित (शुद्ध) हो जाती है।

विशेषवचन—सीसा मिलाने की विधि निम्नप्रकार से की जाती है। एक कड़ाही लें। उसमें उपलों की राख और चूना (कलई, Lime) को जल

से गीला करके उसक अन्दर के कुछ मध्यभाग को छोड़ कर पालिका बनावें। मध्यभाग में चांदी और उसके बराबर सीसा डाल दें। अब कड़ाही को अङ्गारों पर रख धौंकनी से धौंके। ये दोनों पिघल जांयगे। सीसा चांदी में स्थित ताम्र की मिलावट को अपने में लेलेगा। ऊपर से सुहागा छोड़ते जांय, हिलाते जांय और धौंकते जांय। इसप्रकार सीसक और ताम्र भस्म होकर पृथक् हो जांयगे और केवलमात्र शुद्ध चांदी पिघली हुई रह जायगी। सुहागा तब तक देना चाहिये, जब तक सम्पूर्ण सीसक भस्म न हो जाय॥ २६१॥

अथ रजतमारणम्—

माक्षिकं गन्धकश्चैवमर्कक्षीरेण मर्दयेत्।
तेन लिप्तं रूप्यपत्रं पुटेन म्रियते ध्रुवम्॥ २६२॥

स्वर्णमाक्षिक भस्म ($\frac{1}{4}$ भाग) तथा शुद्ध गन्धकचूर्ण (सम भाग) दोनों को आक के दूध से मर्दन करके शुद्ध चांदी के पत्तों पर लेप करे। फिर शराव-सम्पुट में रख पुट दे। इसप्रकार पुट देने से चांदी की भस्म हो जाती है।

विशेषवचन—पुनः पुटें देने में माक्षिक न डालें और केवल गन्धक से ही पुटें दें॥ २६२॥

मतान्तरम्—

कण्टवेध्ये तारपत्रे दत्त्वा द्विगुणहिङ्गुलम्।
पातयन्त्रे रसो ग्राह्यो रजतं मृतमुच्यते॥ २६३॥

कांटे से बींधने योग्य पतले २ चांदी के पत्र बनाकर उसमें दुगुना हिङ्गुल (शुद्ध शिंगरफ़) मिलाकर ऊर्ध्वपातन-यन्त्र में पकावे। ऐसा चार पांच वार करे। नीचे चांदी की भस्म मिलेगी। ऊपर के पात्र में पारा मिलेगा।

विशेषवचन—ऊपर के पात्र पर शीतल जल से भीगा वस्त्र बदलते रहना चाहिये॥ २६३॥

मतान्तरम्—

तालं गन्धं रौप्यपत्रं मर्दयेत् निम्बुकद्रवैः।

त्रिपुटैश्च भवेद्भस्म योज्यमेतद्रसादिषु ॥ २६४ ॥

शुद्ध हड़ताल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध चांदी के पत्र; तीनों समभाग लेकर नीबू के रस से मर्दन करके तीन पुट दे। इससे चांदी की भस्म हो जाती है। इसे सब रसादिकों में वर्त्ते।

विशेषवचन–तन्त्रान्तरों में पूर्व रजत की पारद के साथ पिष्टी करने का विधान भी है। भस्म दोनों प्रकार से हो जायगी। रंग में भेद होगा। पारद संयोग से की गई भस्म सिन्दूरवर्ण होगी और दूसरी कृष्ण वर्ण। रसेन्द्र-चिन्तामणि में पाठ निम्न है–

"विधाय पिष्टिं सूतेन रजतस्याथ मेलयेत्।
तालं गन्धं समं पश्चान्मर्दयेन्निम्बुकद्रवैः ॥
द्वित्रैः पुटैर्भवेद्भस्म योज्यमेतद्रसादिषु" ॥ २६४ ॥

मतान्तरम्—

तारपत्रं चतुर्भागं भागैकं शुद्धतालकम् ।
मर्द्यं जम्बीरजैर्द्रवैस्तारपत्राणि लेपयेत् ॥ २६५ ॥
रुद्ध्वा त्रिभिः पुटैः पाच्यं पञ्चविंशद्वनोपलैः ।
म्रियते नात्र सन्देहो गन्धो देयः पुनः पुनः ॥ २६६ ॥

शुद्ध चांदी के पत्र चार भाग, शुद्ध हड़ताल एक भाग। हड़ताल को जम्बीरी के रस से घोटकर चांदी के पत्रों पर लेप कर देवे। फिर (शुष्क होने पर) इन पत्रों को शरावसम्पुट में रख २५ जंगली उपलों की आग दे। इस प्रकार तीन पुट देने से चांदी की भस्म हो जाती है। गन्धक प्रत्येक बार देनी चाहिये।

विशेषवचन—गन्धक प्रत्येक वार देनी चाहिये–इस कहने का यही अभिप्राय है कि तीनों पुटों में गन्धक भी साथ होनी चाहिये। गन्धक, हरिताल से लिप्त पत्रों के ऊपर नीचे दी जायगी। गन्धक का प्रमाण चांदी के पत्रों के समान होता है ॥ २६५—२६६ ॥

अथ शुद्धरजतगुणाः—

शीतं कषायं मधुरमम्लं वातप्रकोपजित् ।
दीपनं बलकृत् स्निग्धं गुल्माजीर्णविनाशनम् ।
आयुष्यं दीर्घरोगघ्नं रजतं लेखनं स्मृतम् ॥ २६७ ॥

(इति रजतमारणम्)

शुद्ध चांदी की भस्म शीतल कसैली मधुर खट्टी होती है। वायु के प्रकोप को जीतती है । दीपन और बलदायक है, स्निग्ध है, गुल्म तथा अजीर्ण की विनाशक है, आयुवर्धक है, दीर्घकाल से उत्पन्न हुए २ रोगों का नाश करती है । लेखन है ।

विशेषवचन—रजतभस्म की मात्रा—¼ रत्ती से १ रत्ती तक ॥ २६७ ॥

अथ अशुद्धताम्रदोषाः—

न विषं विषमित्याहुस्ताम्रश्च विषमुच्यते ।
एको दोषो विषे त्वष्टौ दोषास्ताम्रे प्रकीर्त्तिताः ॥ २६८ ॥

विष नाम से प्रसिद्ध द्रव्य विष नहीं हैं। परन्तु तांबा विष है। क्योंकि विष में तो कोई एक ही दोष होता है परन्तु तांबे में आठ दोष हैं ॥ २६८ ॥

भ्रमो मूर्च्छा विदाहश्च उत्क्लेदशोषवान्तयः ।
अरुचिश्चित्तसन्ताप एते दोषा विषोपमाः ।
तस्माद्विशुद्धं ताम्रं हि ग्राह्यं रोगोपशान्तये ॥ २६९ ॥

भ्रम, मूर्च्छा, विदाह, उत्क्लेद (देह में गीलापन वा catarrh), शोष (धातुओं को सुखाना), वान्ति (कै), अरुचि, चित्तसन्ताप, ये विषों के समान आठ दोष ताम्र में रहते हैं। इसलिये रोगों की शान्ति के लिये विशुद्ध तांबा ही लेना चाहिये और उसकी भस्म करके प्रयोग कराना चाहिये ॥२६९॥

अथ ताम्रशुद्धिः—

पट्टुना रविदुग्धेन ताम्रपत्राणि लेपयेत् ।
अग्नौ सन्ताप्य निर्गुण्डीरसे सिञ्चेत् पुनःपुनः ॥ २७० ॥

सेंधानमक और आक का दूध दोनों को मिलाकर तांबे के पत्तों पर लेप करे। फिर उन पत्रों को अग्नि में सन्तप्त करके बार २ (तीन आठ या बारह वार) निर्गुण्डी के रस में बुझावे। इसप्रकार से तांबा शुद्ध हो जाता है।

मतान्तरम्—

गोमूत्रेण पचेद्यामं ताम्रपत्रं दृढाग्निना।
शुध्यते नात्र सन्देहो मारणञ्चात्र कथ्यते॥ २७१॥

(इति ताम्रशोधनम्)

उत्तम ताम्रपत्रों को गोमूत्र (ताम्र से $\frac{1}{8}$ भाग लवण युक्त) में एक पहर तक तीव्र आंच से पकावें। इस से निःसन्देह तांबा शुद्ध हो जाता है। आगे मारने की विधि लिखते हैं—

विशेषवचन—अन्यत्र गोमूत्र में अम्ल वा क्षार मिलाकर पाक करने का विधान भी मिलता है। कई सेन्धानमक का ताम्रपत्रों पर लेप करके कुछ दिन पड़ा रहने देते हैं पश्चात् गोमूत्र में पकाते हैं॥ २७१॥

अथ ताम्रमारणम्—

सूतमेकं[1] द्विधा गन्धं यामं[2] मर्द्यन्तु कन्यया।
द्वयोस्तुल्यं ताम्रपत्रं लिप्त्वा स्थाल्यां[3] निरोधयेत्॥ २७२॥
सम्यङ्मृल्लवणैः[4] सार्द्धं पार्श्वे भस्म निधाय च।
चतुर्यामं पचेच्चुल्ल्यां पात्रपृष्ठे सगोमये[5]॥ २७३॥
जलं पुनः पुनर्देयं स्वाङ्गशीतं विमर्दयेत्[6]।
म्रियते नात्र सन्देहः सर्वरोगेषु[7] योजयेत्॥ २७४॥

---

१ सूतमेकं तथा गन्धं कन्याम्भोभिर्विमर्दयेत्। लिप्त्वा तुल्ये ताम्रपत्रे स्थाल्या गर्भे निरोधयेदित्यन्यत्र पाठः। २ 'यामं कृत्वा विमर्दितम्' इति रसरत्नाकरपाठः। ३ 'स्थाल्यां गर्भे निधापयेत्' इति र. र. पाठः। ४ 'सम्यक् शूरणजैः सार्धं पार्श्वे भस्म निधापयेत्' इति पाठः प्रचरति। 'सम्यग् लवणयन्त्रस्थं पार्श्वे' पा०। 'सम्यक् लवणयन्त्रस्थमतो भस्म निधापयेत्' इत्यपि पाठान्तरं दृश्यते। ५ 'सगोमयम्' पा०। ६ 'विचूर्णयेत्' पा०। ७ 'सर्वयोगेषु' पा०।

एक भाग शुद्ध पारा, दो भाग शुद्ध गन्धक लेकर कज्जली करे और उसे घीकुमार के रस से एक पहर तक मर्दन करे। फिर दोनों के तुल्य तांबे के पत्र लेकर इससे लीप दे। इन पत्रों को एक हांडी में रखे और ऊपर से एक शराव द्वारा ढक कर मिट्टी और नमक से सन्धिलेप कर दे। हांडी के अवशिष्ट स्थान को गोबर की राख (अथवा तिन्तडीवृक्षत्वक् भस्म) से ऊपर तक भर दे अब हांडी के मुख को एक अन्य शराव से बन्द कर ऊपर ताज़ा गोबर रख दे और चार पहर तक चूल्हे पर रखकर पकाये। नीचे आग देता जाय और गोबर पर थोड़ी थोड़ी देर बाद पानी छिड़कता रहे। स्वांगशीतल होने पर निकाल कर पीस ले। इसप्रकार ताम्र भस्म हो जाता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इसे सब रोगों में प्रयुक्त करे।

विशेषवचन—यदि 'सम्यक् शूरणजैः सार्द्धं' यही पाठ अभीष्ट हो तो गोलक बनाकर उसके ऊपर ज़मीकन्द का कल्क एक या डेढ़ अंगुल चढ़ा दे। पुनः इस पर शराव देकर सन्धिलेप के पश्चात् पूर्ववत् पाक करे। इसप्रकार भस्म के साथ ही अमृतीकरण भी होगा ॥ २७२—२७४ ॥

मतान्तरम्—

जम्भाम्भसा सैन्धवसंयुतेन सगन्धकं स्थापय शुल्बपत्रम्।
पङ्कायमानं[1] पुटयेत् सुयुक्त्या वान्त्यादिकं यावदुपैति शान्तिम् ॥२७५

सेंधानमक को जम्बीर के रस में घोल कर उससे गन्धक (ताम्रसमान) को अच्छी प्रकार घोटे और कीचड़ के सदृश होने पर ताम्र पत्रों पर गाढ़ा लेप कर दे। शुष्क होने पर युक्तिपूर्वक पुट दे। इसप्रकार तबतक करे जबतक वान्ति (कै) आदि आठ दोष हट नहीं जाते। इससे ताम्र भस्म हो जाती है।

विशेषवचन—रसेन्द्रचिन्तामणि–जहां से यह मत उद्धृत है–में यह श्लोक अमृतीकरण के प्रकरण में है। परन्तु इससे भस्म भी होजाती है। पुटें देने के पश्चात् सेन्धानमक को निकालने के लिये स्वच्छ जल से भस्म को धो देना चाहिये। यदि इस भस्म को पञ्चामृत और गन्धक से दो तीन पुटें और दे दी जांय तो बहुत उत्तम हो। 'पङ्कायमानं' के स्थान पर 'पक्वायमानं' पाठ पढ़ने वाले पूर्वोक्त

१ 'पक्वायमानं' पा०।

विधि के सदृश ही भस्म के स्थान पर वालुका देकर पाक करने को कहते हैं। पात्रपृष्ठ पर गोबर भी नहीं देना, न जल छिड़कना है। इसप्रकार पाक करने के पश्चात् पञ्चामृत से पुनः पुटें देने का विधान बतलाते हैं॥ २७५॥

अन्यमतम्—

शुद्धं ताम्रदलं विमर्द्य पटुना क्षारेण जम्बीरजै-
र्नीरैर्घस्रमिदं स्नुगर्कपयसा लिप्तं धमेत् सप्तधा।
निर्गुण्ड्यम्बुहिमं रसेन्द्रकलितं दुग्धाज्यगन्धेन तत्
तुल्येनाथ मृतं भवेत् सुपुटितं पञ्चामृतेन त्रिधा॥ २७६॥

शुद्ध तांबे के पत्रों को नमक क्षार तथा जम्बीरी के रस से एक दिन मर्दन करे। फिर उसी को थोहर और आक के दूध से लिप्त कर आग में धौंकनी से तपा कर संभालू के रस में बुझावे। इसप्रकार सातवार करे। बुझाने से जो चूर्ण नीचे गिरे उसे निकाल कर उसके समान शुद्ध पारा ले और उसके साथ मर्दन करे। पश्चात् तांबे के समान गन्धक के साथ घोटे। फिर गौ का दूध और घी पृथक् तांबे के समान लेकर उसमें डाल कर मर्दन करे। जब सूख जाय तब पुट दें। इसप्रकार जब भस्म हो जाय तो अनन्तर तीन पुट पञ्चामृत से दे। यह ताम्र की निर्दोष भस्म होती है॥ २७६॥

विशेषवचन—क्षार से यवक्षार सर्जिक्षार वा टङ्कण तीनों का ग्रहण हो सकता है। रसपद्धति में कहा है—

'त्रिक्षारैः पटुभिः स्नुगर्कपयसा क्षीरेण पिष्टैर्यथा—
लाभं चाम्लगणद्रवेण दशधा ध्मात्वा विलिप्यानले
शेफालीसलिलेऽम्लवर्गसलिले निर्वापितास्त्वल्पशः
पूर्वप्रक्रियया त्रिगव्यलुलिता भस्म स्युरर्कच्छदाः॥'

इसीप्रकार नमक कहने से पांच नमकों में से किसी भी नमक का ग्रहण हो सकता है। परन्तु मुख्यतया सैन्धव का ही प्रयोग होता है। कहीं कहीं सामुद्र नमक का भी प्रयोग देखा गया है।

सम्भालू के रस में बुझाने पर्यन्त की जो प्रक्रिया है वह ताम्र को अतिशुद्ध

और चूर्णरूप में लाने के लिये है । रसार्णव में शोधनार्थ ऐसा विधान मिलता है—

'स्नुह्यर्कक्षीरलवणक्षाराम्लपरिलेपितम् ।
ताम्रपत्रं तु निर्गुण्डीरसमध्ये तु ढालयेत् ॥'

आगे की विधि भस्म करने और उस भस्म को वान्त्यादिदोष-रहित करने के लिये है ।

पञ्चामृत से दूध दही घी खांड और मधु; ये पांच द्रव्य लिये जाते हैं ॥ २७६ ॥

अथ शुद्धताम्रगुणाः-

वान्तिभ्रान्तिविवर्जितं क्षयरुजाकुष्ठानि पाण्ड्वामयं
शूलं मेहगुदाङ्कुरानिलगदानुक्तानुपानैर्जयेत् ।
गुञ्जामात्रमिदं ततो द्विगुणितं तच्छुद्धकायेन चेत्
भुक्तं स्थौल्यजराऽपमृत्युशमनं पथ्याशिना वत्सरात् ॥२७७॥

वान्ति (कै) भ्रान्ति (चक्कर आना) से रहित (दो दोष उपलक्षण मात्र हैं-इससे आठों दोषों से रहित ऐसा समझना चाहिये) ताम्रभस्म को उन उन रोगनाशक अनुपानों के साथ सेवन करने से क्षयरोग, कुष्ठ, पाण्डु-रोग, शूल, प्रमेह, बवासीर के मस्से, वायु के रोग दूर होते हैं । ताम्रभस्म को देह का संशोधन करके एक रत्ति से क्रमशः दो रत्ति तक बढ़ाकर पथ्यसहित एक वर्ष तक सेवन किया जाय तो स्थूलता बुढ़ापा और अकाल मृत्यु दूर होती है ॥ २७७ ॥

ताम्रमुष्णं गरहरं यकृत्प्लीहोदरापहम् ।
क्रिमिशूलामवातघ्नं ग्रहण्यर्शोऽम्लपित्तजित् ॥ २७८ ॥

[इति ताम्रमारणम्]

ताम्रभस्म गरम है, गरविष को हरती है, यकृत्प्लीहोदर (जिगर वा तिल्ली का बढ़ना) को हटाती है । क्रिमि शूल तथा आमवात की नाशक है । ग्रहणी, बवासीर और अम्लपित्त को दूर करती है ।

विशेषवचन—अनुभवी वैद्य आजकल ताम्रभस्म को १/८ रत्ती से लेकर १/२ रत्ती तक की मात्रा में प्रयुक्त कराते हैं ॥ २७८ ॥

अथ पित्तलकांस्ययोः शोधनादिकम्—

पित्तलञ्च तथा कांस्यं ताम्रवन्मारयेत् पृथक् ।
ताम्रवच्छोधनं तेषां ताम्रवद् गुणकारकम् ॥ २७९ ॥

[इति पित्तलकांस्यशोधनमारणम्]

पित्तल तथा कांसी को तांबे के समान ही भस्म करे तथा तांबे के समान ही उनका शोधन करे । इनके गुण भी तांबे के समान ही हैं ।

विशेषवचन—२ भाग ताम्र और १ भाग यशद (जस्त) के मिलाने से जो पित्तल बनता है वह उत्तम होता है । पीतल को लालकर कांजी में बुझाने से यदि वर्ण लाल हो तो उसे भस्म के लिये ले, यदि काला हो जाय तो हेय है । पीतलभस्म की मात्रा—१/२ रत्ती से १ रत्ती पर्यन्त है ।

८ भाग ताम्र और २ भाग वंग को एकत्र पिघलाकर जो कांस्य (कांसी) बनता है, उसकी ही भस्म उपयोगी मानी गई है । इसकी भस्म की मात्रा—१/२ रत्ती से १ रत्ती तक है ॥ २७९ ॥

अथ नागवङ्गयोः शोधनम्—

नागवङ्गे च गलिते रविदुग्धेन सेचिते ।
त्रिवारान् शुद्धिमायातः सच्छिद्रे हण्डिकान्तरे ॥ २८० ॥

नाग (सीसा) और बंग (रांगा) दोनों में से किसी को जिसका शोधन अभीष्ट हो आग में पिघला कर आक (मदार) के दूध में सींचें । इसप्रकार तीन वार सींचने से ये शुद्ध हो जाते हैं । सींचने से पूर्व एक हांडी में आक का दूध डाल दें और उसके मुखपर सच्छिद्र भारी शराव रखें । छिद्र में से इन्हें दूध में डालें । (नहीं तो वे उछल कर बाहिर आते हैं और हाथ मुंह आदि को जला देते हैं) ॥ २८० ॥

मतान्तरम्—

वङ्गं चूर्णोदके स्विन्नं यामार्द्धेन विशुध्यति ॥ २८१ ॥

(इति नागवङ्गशुद्धिः)

रांगे के अत्यन्त बारीक पत्र को चूने के जल में दोलायन्त्र से आधा पहर तक स्वेदन करें तो शुद्ध हो जाता है ।

विशेषवचन—पहले बंग को गलाकर चूने के पानी में सात वार बुझावें फिर चूने के जल में आधा पहर स्वेदन करें तो ठीक शुद्ध होता है ॥ २८१ ॥

अथ सीसकमारणम्—

भूभुजङ्गमगस्तिश्च[1] पिष्ट्वा पात्रं[2] प्रलेपयेत् ।
तत्र संविद्रुते नागे वासापामार्गसम्भवम् ॥ २८२ ॥
क्षारं विमिश्रयेत् तत्र चतुर्थांशं गुरूक्तितः ।
प्रहरं पाचयेच्चुल्ल्यां वासादर्व्या च चालयेत् ॥ २८३ ॥
तत उद्धृत्य तच्चूर्णं वासानीरेण मर्दयेत् ।
(पुटेत्[3]पुनः समुद्धृत्य तेनैव परिमर्दयेत्)
एवं सप्तपुटैर्नागं सिन्दूरं जायते ध्रुवम् ॥ २८४ ॥

भूनाग (केंचुए, गिंडोये) और अगस्ति (अगास्तिया) के पत्र को पीसकर एक मृत्पात्र को लिप्त करें । उस पात्र में सीसे को पिघलावें । बांसा (अडूसा) और अपामार्ग के क्षार जो समभाग में मिलाये हों और वह सीसे से चतुर्थांश (चौथाई) हो लेकर पिघले हुए सीसे में मिश्रित करें वा इन क्षारों को चुटकी २ भर छोड़ते जावें । नीचे से आग देते जावें और साथ ही बांसे (अडूसे) के डण्डे से सीसे को हिलाते जावें । एक पहर आग दे चुकने के पीछे जब सीसे का चूर्ण वा भस्म हो जावे तब नीचे उतार कर उस चूर्ण को बांसे के रस से मर्दन करके पुट देवें । पुनः उसे निकाल कर बांसे (अडूसे) के रस से ही मर्दन करके और पुटें दें । इसप्रकार सातवार करने से सिन्दूर के समान लाल रंग की सीसे की भस्म प्राप्त होगी ।

विशेषवचन—'भुजङ्गममगस्त्यस्य पिष्ट्वा पत्रं प्रलेपयेत्' ऐसा पाठान्तर होने

---

१ 'भुजङ्गममगस्त्यञ्च' पा० । २ 'पत्रं पा० ।
३ 'पुटेदित्यादि पाठः मुद्रितेषु पुस्तकेषु नोपलभ्यते ।

पर अगस्त्य के पत्र को पीसकर सीसक पर लेप करे—ऐसा अर्थ होगा। यदि 'भुजङ्गममगस्त्यञ्च पिष्ट्वा पत्रं प्रलेपयेत्' ऐसा पाठ हो तब अर्थ यह होता है कि अगस्तिया और पान के पत्तों को पीसकर सीसे पर लेप करे। इस लिए सीसक को कड़ाही वा हण्डिका में पिघलाना होगा ॥ २८२—२८४ ॥

अन्यमतम्—

त्रिभिः कुम्भीपुटैर्नागो वासारसाविमर्दितः ।
सशिलो भस्मतामेति तद्रजः सर्वमेहजित् ॥ २८५ ॥

शुद्ध सीसा और शुद्ध मनसिल समभाग लेकर बांसे (अडूसा) के रस से मर्दन करके तीन वार गजपुट में फूंक दे, इससे सीसा भस्म हो जाता है। यह भस्म सब प्रकार के प्रमेहों को दूर करती है।

विशेषवचन—आयुर्वेदप्रकाश का कर्ता तो मनःशिला को अष्टमांश मिलाने को कहता है। परन्तु समभाग मनःशिला के योग से ही ठीक भस्म होती है। यदि मनःशिला और बांसे के रससे पुटें देने से पूर्व सीसक को चूर्ण वा सामान्य भस्मरूप में कर लिया जाय तो अच्छा होता है। अन्यथा बहुत पुटें देनी पड़ती हैं। सीसे को पूर्व कड़ाही में डालकर नीचे आग दें। पिघल जाने पर मदार की जड़ से हिलाते रहें और नीचे आग देते जांय जब हरे से रंग की भस्म वा चूर्ण हो जाय तब उतार लें और शीतल होने पर मनसिल मिला बांसे के रस से घोट कर पुट दें ॥ २८५ ॥

दशनागबलं धत्ते वीर्य्यायुःकान्तिवर्द्धनम् ।
मेहान् हन्ति हतं नागं, सेव्यं वङ्गश्च तद्गुणम् ॥ २८६ ॥

सीसे की भस्म को सेवन करने से दश हाथियों का बल होता है, वीर्य आयु तथा कान्ति की वृद्धि होती है, प्रमेह नष्ट होते हैं। बङ्गभस्म के भी ये ही गुण हैं-उसका भी सेवन करना चाहिये ॥ २८६ ॥

अथ शुद्धनागगुणाः—

तारस्य रञ्जनो नागो वातपित्तकफापहः ।
ग्रहणीकुष्ठगुल्मार्शः-शोषव्रणविषापहः ॥ २८७ ॥

[इति नागमारणम्]

सीसा चांदी को रंग देता है (हेमीकरणार्थ)। वात पित्त और कफ दोष को दूर करता है। ग्रहणी कुष्ठ गुल्म बवासीर शोष व्रण तथा विषों का नाशक है।

विशेषवचन—नाग की भस्म जो मनःशिला वा गन्धक के संयोग से की जाती है वही सर्वोत्तम जाननी चाहिये। अन्य विधियों से सम्पादित भस्में जिनमें मनःशिला वा गन्धक का योग नहीं थोड़े काल के लिये ही प्रयुक्त की जा सकती हैं। दीर्घकाल तक उनके प्रयोग से हानि होने की सम्भावना रहती है॥ २८७॥

अथ वङ्गमारणम्—

वङ्गं सतालमर्कस्य पिष्ट्वा दुग्धेन सम्पुटेत्।
शुष्काश्वत्थभवैर्वल्कैः सप्तधा भस्मतां नयेत्॥ २८८॥

शुद्ध वङ्ग अर्थात् रांगा और शुद्ध हड़ताल को समभाग लेकर आक के दूध से पीस कर उस पर पीपल वृक्ष की सूखी हुई छाल को अच्छी प्रकार लपेट कर पुट दे। इसप्रकार सात वार करे वङ्ग की उत्तम भस्म हो जाती है।

विशेषवचन—यदि वङ्ग चूर्णरूप न हो तो उसका हड़ताल और आक के दूध के साथ पीसना कठिन होगा। तब वङ्ग के कण्टकवेध्य पत्र लें और आक के दूध से हड़ताल को पीसकर उसका लेप उन पत्रों पर कर दें और उन्हें पीपल की सूखी छाल में लपेट दें। छाल को सातवार लपेट कर पुट देने से एक बार में ही भस्म हो जाती है। अथवा अनुभवी वैद्य उसका चूर्ण करके सम्पुट में पत्रों के ऊपर नीचे दे देते हैं। पश्चात् पुट देते हैं। यदि वङ्गपत्र को हड़ताल और मदार के दूध से लिसकर पीपल की छाल की भस्म वा क्षार में रख लघुपुटें दें तो शीघ्र भस्म होगी और यदि सबसे पूर्व चतुर्थांश पारद के साथ वङ्ग की पिष्टी करलें तो दो ही पुट में भस्म तय्यार होजायगी॥२८८॥

मतान्तरम्—

विशुद्धवङ्गपत्राणि द्रावयेद् हण्डिकान्तरे।

---

१ 'आभीरं शोधयेदादौ' इति रसमञ्जर्यां पाठः। 'विशुद्धं वङ्गपत्रं तु' इति वा पाठः कार्यः।

अपामार्गोद्भवं चूर्णं तत्तुल्यं तत्र मेलयेत् ॥ २८९ ॥
स्थूलाग्रया लौहदर्व्या शनैस्तदभिमर्दयेत्[1] ।
यावद्भस्मत्वमाप्नोति तावन्मर्धन्तु पूर्ववत् ॥ २९० ॥
ततस्त्वेकीकृतं चूर्णं कृत्वा चाङ्गारवर्जितम्[2] ।
नूतनेन शरावेण रोधयेच्च भिषग्वरः[3] ।
पश्चात् तीव्राग्निना पक्वं[4] वङ्गभस्म भवेद् ध्रुवम् ॥ २९१ ॥

विशुद्ध वङ्ग के पत्रों को हांडी (अथवा कड़ाही) में रख कर आग पर पिघलावे। उस पर अपामार्ग का चूर्ण-जो परिमाण में वङ्ग के समान हो-थोड़ा २ डालता जावे और लोहे की कड़छी से-जिसका अगला भाग मोटा हो-धीरे २ उस वङ्ग को मर्दन करता जाय। जब समझे कि वङ्ग की सम्पूर्ण भस्म हो गई है और डाले गये अपामार्ग के चूर्ण के छोटे छोटे अङ्गारे नहीं रहे तब इस चूर्ण को एकत्र कर एक नये शराव से ढक दे और नीचे तीव्र आग देवे तो निश्चय से वङ्गभस्म हो जाती है।

विशेषवचन—यह विधि रसमञ्जरी से उद्धृत प्रतीत होती है। परन्तु वहां वङ्ग से चौथाई अपामार्गचूर्ण लेने को कहा है—

'अपामार्गस्य चूर्णेन चतुर्थांशेन मेलयेत्।'

यह पाठ है। तन्त्रान्तरों में भी ऐसा ही विधान है। चौथाई अपामार्ग-चूर्ण से तीव्र अग्नि द्वारा भस्म हो भी जाती है। 'कृत्वा चाङ्गारवर्जितम्' के स्थान पर वहां 'भवेदङ्गारवर्णकम्' यह पाठ है और अच्छा भी है। तब अभिप्राय यह होता है कि भस्म को इकट्ठी करके शराव से दबा कर तब तक तीव्र अग्नि से पकावे जब तक कि वह अंगारे के समान लाल न होजाय। इस वङ्गभस्म

---

१ 'शनैस्तदवचालयेत्' पा०।
२ 'भवेदङ्गारवर्णकम्' इति रसमञ्जरीकृतः पाठः।
३ 'रोधयित्वान्तरे भिषक्' इति र० म० पाठः।
४ 'पक्वो वङ्गो भस्मत्वमृच्छति' र० म० पाठः।

को पश्चात् वस्त्र से छान भी लेना चाहिये। जो कच्चा अंश हो उसे पृथक् करलें॥

मतान्तरम्—

वङ्गं खर्परके कृत्वा चुल्ल्यां संस्थापयेत् सुधीः।
द्रवीभूते पुनस्तस्मिन् चूर्णान्येतानि दापयेत् ॥ २९२ ॥
प्रथमे रजनीचूर्णं द्वितीये च यमानिकाम्।
तृतीये जीरकञ्चैव ततश्चिञ्चात्वगुद्भवम् ॥ २९३ ॥
अश्वत्थवल्कलोत्थञ्च चूर्णं तत्र विनिक्षिपेत्।
एवं विधानतो वङ्गं म्रियते नात्र संशयः ॥ २९४ ॥

शुद्ध वङ्ग को एक कड़ाही में रख उसे आग पर पिघलावे। जब पिघल जाय तब उसमें आगे कहे हुए चूर्ण क्रमशः थोड़े थोड़े करके ऊपर से छोड़ता जाय। और लोहे की कड़छी से हिलाता जाय। पहले हल्दी का चूर्ण, फिर अजवायन का चूर्ण, फिर श्वेत जीरे का चूर्ण, फिर इमली की त्वचा (छाल) का चूर्ण और फिर पीपल वृक्ष की छाल का चूर्ण।

विशेषवचन-यदि अग्नि तीव्र देसकें तो इन में से प्रत्येक चूर्ण वङ्ग से चौथाई होना चाहिये। अग्नि तीव्र न हो तो समान लेते हैं। इस विधि से वङ्गभस्म होजाती है-इसमें कुछ संशय नहीं। जो वङ्गभस्म वनौषधिचूर्ण वा क्षार के संयोग के कारण क्षारमिश्रित होती है, उसे क्षार से रहित करने के लिये अन्त में जल से धो डालना चाहिये।

यदि पिछली दो विधियों से की गई भस्म को शुद्ध हड़ताल के साथ दो तीन पुटें दे दें तो अत्यन्त उत्तम हो जाती हैं ॥ २९२-२९४ ॥

गुणाः—

वङ्गं तिक्तोष्णकं[1] रूक्षं किञ्चिद्वातप्रकोपणम्।
मेदःश्लेष्मामयघ्नञ्च क्रिमिघ्नं मेहनाशनम् ॥ २९५ ॥

(इति वङ्गमरणम्)

---

१ 'तिक्ताम्लकं' पा०।

वङ्गभस्म तिक्त, गरम (हड़ताल के योग से की गई भस्म) रूक्ष है। कोष्ठ में वात का कुछ प्रकोप करती है। मेद और श्लेष्मा के रोगों की नाशक है क्रिमि और प्रमेह को हरती है।

विशेषवचन—वङ्गभस्म की आधुनिक मात्रा—½ रत्ती से २ रत्ती तक है ॥ २९५ ॥

अथ लौहशोधनादिकम्—

तप्तानि सर्वलोहानि कदलीमूलवारिणि।
सप्तधा त्वभिषिक्तानि शुद्धिमायान्त्यनुत्तमाम् ॥ २९६ ॥

(इति वङ्गमारणम्)

सब लोहों को तपा २ कर केले की जड़ के रस में सात २ वार बुझायें तो वे उत्तम शुद्ध हो जाते हैं।

विशेषवचन—यहां पर लोह शब्द वस्तुतः धातुमात्र का वाचक है। जिससे अभिप्राय यह है कि स्वर्ण आदि सभी धातुओं को तपा तपाकर केले की जड़ के रस में सात वार बुझाने से उनकी शुद्धि होती है। रसेन्द्रचिन्तामणि प्रभृति ग्रन्थों में-जहां से यह पाठ उद्धृत है-सर्वधातुसामान्यशोधन-प्रकरण में यह विधि पठित है। परन्तु यतः श्रीगोपालकृष्ण ने लोह के शोधन के प्रकरण में पढ़ा है अतः यहां सब लोह कहने से वज्र पाण्ड्य कान्त तीक्ष्ण आदि लोहे के भेदों का ही ग्रहण करें ॥ २९६ ॥

त्रिफलाऽष्टगुणे तोये त्रिफला षोडशं पलम्।
तत्क्वाथे पादशेषे तु लौहस्य पलपञ्चकम् ॥ २९७ ॥
कृत्वा पत्राणि[1] तप्तानि सप्तवारं निषेचयेत्।
एवं प्रलीयते दोषो गिरिजो[2] लौहसम्भवः ॥ २९८ ॥

(इति लौहशोधनम्)

सोलह पल त्रिफला लेकर उसमें १२८ पल पानी डाले और इसे मिट्टी के पात्र में पका कर शेष ३२ पल रहने पर छान ले। यह त्रिफलाक्काथ है।

---

१ 'च तप्तपत्राणि' पा०। २ 'गिरिजे' पा०।

इसमें लौह के पत्र पांच पल लेकर गर्म कर २ के सात वार बुझावे। ऐसा करने से पर्वतजन्य सब दोष दूर होकर लोहा शुद्ध हो जाता है ॥२६७–२६८॥

भानुपाकात् तथा स्थालीपाकाच्च पुटपाकतः।
निरुत्थो जायते लौहो यथोक्तफलदो भवेत् ॥ २६९ ॥

भानुपाक से, स्थालीपाक से तथा पुटपाक से लोहे की निरुत्थ भस्म हो जाती है और वह यथोक्त फल देने वाली होती है ॥ २६९ ॥

अथ भानुपाकविधिः—

लौहे दृषदि लौहश्च मुद्गरेण हतं मुहुः।
कृत्वाम्बुगलितं शुद्धं जलेन त्रैफलेन वा ॥ ३०० ॥
चालयेद्बहुशः पश्चात् कृत्वा द्रव्यान्तरं पृथक्।
शोषितं भानुभिर्भानोर्भानुपाके प्रयोजयेत् ॥ ३०१ ॥

जल के सदृश द्रवीभूत करके शोधित लोहे को लोहे वा दृढ़ पत्थर के ऊखल में मूसल से बार बार कूट कर मूंग बराबर मोटा चूर्ण कर ले और उसे जल से वा त्रिफलाक्वाथ से बहुत वार धोवे। कोयले कंकरी आदि अन्य मलिनताओं को पृथक् कर ले। पश्चात् इसे सूर्य की किरणों में–धूप में सुखा ले। अब इसे भानुपाक के योग्य समझे।

विशेषवचन—भानुपाक करने से पूर्व जो विधान तन्त्रान्तरों में उपलब्ध है वह निम्न है—

सबसे पूर्व लौह को निर्मल किया जाता है। अर्थात् लोहपत्र तय्यार करके चाङ्गेरी (तिपतिया), बिजौरा, अम्लवेतस प्रत्येक के रस में डुबा २ कर सात २ वार धूप में सुखाया जाता है। पश्चात् कांजी आदि में दो तीन दिन डूबा रहने देते हैं। फिर उसमें से निकालकर गोमूत्र से बनाये त्रिफला-कल्क से उसे लिप्त कर धूप में सुखाते हैं। तदनन्तर जल से पीसी मनःशिला का लेप देते हैं। उस पर वल्मीकमृत्तिका, आंवला, कुठारिकामूल, चाङ्गेरी, श्वेतदूब, सेन्धानमक; यथालाभ प्रत्येक को जल में पीस कर लेप करके धूप में सुखाते जाते हैं। इस लिप्त लौहपत्र को धौंकनी से धौंक बहुत न तपा

कर गौ के दूध, कांजी, गोमूत्र और त्रिफलाक्वाथ प्रत्येक में तीन २ बार बुझाते हैं। बुझाने के लिये प्रत्येक द्रव लोहे से दुगुना लिया जाता है। यहां त्रिफला-क्वाथ के लिये त्रिफला लोहे से दुगुनी ली जाती है और त्रिफला से चौगुना जल डालकर क्वाथ करते हैं। आधा रहने पर उतार लिया जाता है। दोषविशेष के लिये यदि भस्म तयार करनी होती है तो उस उस दोषनाशक ओषधियों के रस वा क्वाथ में भी बुझा लेते हैं। इस प्रकार लोह निर्मल हो जाता है। इसके अनन्तर अगले दिन पुनः खट्टी कांजी में बुझाकर कुठारिकामूल, त्रिफला, अपराजिता, हडजोडी, हस्तिकर्णपलाशमूल, शतावर, केशराज, शालिञ्चमूल, काशीमूल, पुनर्नवा, भांगरा; इनके लेप करके उसके एक सिरे को अंगारों में रख दो धौंकनियों से निरन्तर धौंकते जाते हैं। जिस भट्टी में इसे धौंका जाता है वहां नीचे एक शीतल ऊर्ध्वमुख अंकुश रखा होता है। लोहा पिघल कर उसके मुख पर जा गिरता है, उसके ठण्डा होने से वह वहां लग जाता है उसे संडासी वा चिमटा से उतार कर त्रिफलाक्वाथ में बुझा देते हैं। जैसे जैसे लोहपत्र पिघलता जाता है शेषभाग को धीरे धीरे अंगारों में करते जाते हैं। इसप्रकार लोहपत्र पिघल २ कर अंकुश पर जा लगता है और उसे संडासी से उतार २ कर त्रिफलाक्वाथ में बुझाते जाते हैं। कहीं कहीं कुठारिका आदि के लेप से पूर्व लोह से आधा भाग स्वर्णमाक्षिक अथवा चौथाई भाग नींबू आदि के रस से पीसी मनःशिला का लेप देते हैं। कुठारिका आदि लोहे से $\frac{1}{16}$ ली जाती हैं।

इतनी जो भानुपाक से पूर्व की विधि है उसी की ओर 'कृत्वाम्बुगलितं शुद्धं' से निर्देश है ॥ ३००—३०१ ॥

(क्षालने,) भानुपाके तु लौहतुल्यं फलत्रिकम् ।
जलं द्विगुणितं दत्त्वा चतुर्भागावशेषितम् ॥ ३०२ ॥

(लोहे को धोने के लिये) भानुपाक में तो त्रिफलाक्वाथ बनाने को लोहे के समभाग ही त्रिफला लें, उसमें दुगुना जल डालकर क्वाथ करें। जब चौथाई जल बच जावे तो उतार लें

विशेषवचन—धोने के लिये तो त्रिफला लोह से दुगुनी वा तिगुनी लेकर

चौगुने जल में काढ़ी जाती है। जब जल आधा रहजाता है तब उतार कर छान लेते हैं। कहा भी है–

'शुद्ध्यर्थं त्रिफला लौहात् कर्तव्या त्रि(द्वि)गुणा सदा।'
चतुर्गुणं फलात् तोयमर्द्धभागावशेषितम्।
एष एव विधिर्नित्यं क्षालनेऽपि च शस्यते" ॥ ३०२ ॥

एवमुक्तं फलक्काथं–जलं दत्त्वा पुनः पुनः।
शोषयेत् सूर्यतेजोभिर्निरन्तरमहस्त्रयम् ॥ ३०३ ॥

इसप्रकार से बने त्रिफला के क्वाथ को छान कर उसे लोहे में डाल तीन दिन तक निरन्तर सूर्य की किरणों से सुखावें। ऐसा बार बार करें।

विशेषवचन—लोहे में सम्पूर्ण क्वाथ डाल दिया करें और धूप में तीन दिन तक सूखने दें, जब सूख जाय तब नया डाल दें। इसप्रकार सात वार करना चाहिये। भानुपाक लौहपात्र में ही किया जाता है ॥ ३०३ ॥

अथवा तत्र तत्क्काथं दत्त्वा दत्त्वा भिषग्वरः।
सप्तसंप्तिकैरेव सप्तवारान् विशोषयेत् ॥ ३०४ ॥

(इति भानुपाकविधिः)

अथवा वैद्य को चाहिये कि इसप्रकार के बने हुए उस त्रिफला के क्वाथ को ही लोहे में डाल डालकर धूप में सातवार सुखावे अर्थात् उक्तविधि से बनाये क्वाथ को सात भागों में विभक्त कर एक भाग को लोहे में डालकर धूप में सुखाले। पुनः एक भाग डालकर सुखावे। इसप्रकार सात वार करे ॥३०४॥

अथ स्थालीपाकविधिः —

इत्थमादित्यपाकान्ते स्थाल्यां पाकमुपाचरेत्।
स्थालीपाके फलं ग्राह्यमयसस्त्रिगुणीकृतम्।
तस्य षोडशिकं तोयमष्टभागावशेषितम् ॥ ३०५ ॥

---

१ 'फलक्काथं दत्त्वा दत्त्वा' इति पा० केचिदिच्छन्ति।
२ 'सप्तसप्तविधैरेव सप्तवारान् विशोधयेत्' पा०।

इसप्रकार भानुपाक कर चुकने पर स्थालीपाक करे। (स्थालीपाक से पूर्व पुनः उस लोह को धोकर लोह खरल में पीस लेना चाहिये और वस्त्र से छान लेना चाहिये)। स्थालीपाक में लोहे से तिगुनी त्रिफला लेवे। उससे सोलह गुणा पानी डालकर पकावे शेष आठवां भाग बचने पर उतार ले ॥ ३०५ ॥

मृदुमध्यकठोराणामन्येषामयसा समम् ।
क्वथनीयं समादाय चतुरष्टौ च षोडश ॥ ३०६ ॥
गुणानां स्थाप्यते तोयं शेषयेदयसा समम् ।
स्वरसस्यापि लौहेन स्थालीपाके समानता ॥ ३०७ ॥

अन्य औषधियों को जिनसे स्थालीपाक करना हो लोहे के समान लेकर उन में जो मृदु द्रव्य हों उनमें चार गुणा, मध्यम द्रव्यों में आठ गुणा तथा कठोर द्रव्यों में सोलह गुणा पानी डालकर पकावें और शेष क्वाथ लोहे के बराबर रख लें। यदि किसी औषध का स्वरस लेना हो तो वह भी लोहे के समान ही लिया जाता है ॥ ३०५—३०७ ॥

स्थाल्यां क्वाथादिकं दत्त्वा यथाविधि विनिर्मितम् ।
पाकेन क्षीयते यस्मात् स्थालीपाक इति स्मृतः ॥ ३०८ ॥

स्थालीपाक का लक्षण—लोहे के साथ यथाविधि बनाये गये त्रिफला आदि औषधियों के क्वाथ स्वरस आदि को यतः स्थाली अर्थात् हांडी में डाल आग पर पका कर क्षीण कर दिया जाता है इसीलिये स्थालीपाक कहाता है ॥ ३०८ ॥

हस्तिकर्णपलाशस्य मूलञ्च शतमूलिका ।
भृंङ्गकेशाख्यराजाश्च[1] ह्येषां निजरसैः पृथक् ॥ ३०९ ॥
मिलित्वा वा विधातव्यं स्थालीपाकं[2] फलादनु ।

---

१ 'भृङ्गराजाख्यराजानामेषां निजरसैः सह' पा० ।

२ 'स्थालीपाके' पा० ।

यथादोषौषधेनापि स्थालीपाको विधीयते ॥ ३१० ॥

(इति स्थालीपाकविधिः)

स्थालीपाक में सबसे प्रथम त्रिफला के क्वाथ से लोहे का पाक किया जाता है फिर हस्तिकर्णपलाश की जड़ के रस से, अनन्तर शतावरी के रस से, और पश्चात् भांगरा और केशराज के रस से पाक करना चाहिये। इन पृथक् २ वा एकत्र सब रसों को लोहे में डाल पाक करे। यदि बनायी जाने वाली लौहभस्म को किसी दोषविशेष में प्रयोग कराना हो तो उस २ दोष को नाश करने वाले द्रव्यों के रस से भी स्थालीपाक कर लेना चाहिये॥ ३०९—३१०॥

अथ पुटपाकविधिः—

स्थालीपाके सुसंपक्कं प्रक्षाल्य स्वच्छवारिणा।
शुष्कं सञ्चूर्ण्य यत्नेन पुटपाके प्रयोजयेत् ॥ ३११ ॥

स्थालीपाक में अच्छीप्रकार पके हुए लोहे को स्वच्छ जल से धोकर सुखा ले। पश्चात् यत्नपूर्वक चूर्ण करके पुटपाक के लिये योग्य समझे॥ ३११ ॥

पुटाद्दोषविनाशः स्यात् पुटादेव गुणोदयः।
म्रियते च पुटाल्लौहः पुटं तस्मात् समाचरेत् ॥ ३१२ ॥

पुट देने से दोषों का नाश होता है तथा पुट देने से ही गुणों का उदय होता है। पुट देने से ही लौह मरता है। इसलिये पुट देवे॥ ३१२ ॥

यथा यथा प्रदीयन्ते पुटाः[1]सुबहुशो[2]ऽयसि।
त[3]था तथा प्रकुर्वन्ति गुणानेव सहस्रशः ॥ ३१३ ॥
पुटपाकेन पक्वस्तु शस्यते रसकर्म्मसु।

जितने २ ही अधिक पुट देंगें उतने २ ही सहस्रों गुण लोह में उदय होंगे। पुटपाक से पका हुआ ही लोहा रसकर्म्म में श्रेष्ठ माना है॥ ३१३ ॥

दशादिशतपर्य्यन्तो गदे पुटविधिर्मतः ॥ ३१४ ॥

---

१ 'सुबहवो' पा०। २ 'यदि' पा०
३ 'तथा तथाभिवर्द्धन्ते गुणा एव' पा०।

शतादिस्तु सहस्रान्तः पुटो देयो रसायने ।
वाजीकर्मणि विज्ञेयो[1] दशादिशतपञ्चकः ॥ ३१५ ॥

रोग दूर करने के लिये दस पुट से सौ पुट तक देने चाहियें। रसायनकर्म में सौ पुट से हज़ार पुट तक और वाजीकर्म में दस पुट से पांच सौ पुट तक देने चाहियें ॥ ३१४-३१५ ॥

तावद्वैद्यः[2] पुटेल्लौहं यावच्चूर्णीकृतं जले ।
निस्तरङ्गे लघुत्वेन समुत्तरति हंसवत् ॥ ३१६ ॥

वैद्य तब तक लोहे को पुट देता जाय जब तक उसका चूर्ण तरङ्गरहित (अक्षुब्ध) जल पर हल्का होने के कारण हंस के समान तैरे ॥ ३१६ ॥

पुटपाकौषधस्यापि क्काथो वा स्वरसोऽपि वा ।
वक्ष्यमाणप्रमाणेन कर्त्तव्यो भिषजां वरैः ॥ ३१७ ॥

पुटपाक की औषधों का क्काथ वा स्वरस भी आगे कहे जाने वाले (३३४ श्लोक में) प्रमाण के अनुसार करना चाहिये ॥ ३१७ ॥

रसाभावे तु सर्वेषां क्काथो ग्राह्यो मनीषिभिः ।
अभावात्[3] स्वरसस्यापि क्काथ एव फलत्रिकात् ॥ ३१८ ॥

यदि स्वरस न हो तो उस द्रव्य का क्काथ ले। और यतः त्रिफला से स्वरस प्राप्त नहीं हो सकता अतः त्रिफला का क्काथ ही लेना चाहिये ॥३१८॥

---

१ 'विज्ञेयः पुटः पञ्चाशतादिकः । दशोत्तरशतान्तस्तु पुटः पुटविचक्षणैः ॥' इति तन्त्रान्तरे ।

२ 'तावदेव' पा० ।

३ 'शिवदासेनाप्युद्धृतं चक्रदत्तटीकायां पतञ्जलिमतम् । तद्यथा—'अन्यानि यानि द्रव्याणि योक्तव्यानि पुटादिषु । तानि लौहसमान्येव जलं प्रागेव कीर्तितम् । लभ्यते स्वरसो येषां तेषां क्काथस्तु नेष्यते । त्रिफलाव्यतिरिक्तेन मतमेतत्पतञ्जलेः ।' 'अभावे तु स्वरसस्यापि' पा० ।

अथ त्रिफलादिगणः—

त्रिफला त्रिवृता दन्ती कटुकी[1] तालमूलिका ।
वृद्धदारश्च वृश्चीर-वृषपत्रक-चित्रकाः ॥ ३१९ ॥
शृङ्गवेरविडङ्गौ च भृङ्गभल्लातकौषधम् ।
दाडिमस्य च पत्राणि शतपुत्री पुनर्नवा ॥ ३२० ॥
कुठार[2]-कामकौ कन्दः तन्त्री भेकस्य पर्णिका ।
हस्तिकर्णपलाशश्च कुलिशः केशराजकः ॥ ३२१ ॥
माणः खण्डितकर्णश्च गोजिह्वा लोहमारकः ।
गिरिशान्तनकः[3] प्रोक्तस्त्रिफलादिरयं गणः ।
सामान्यपुटपाकार्थमेतानिच्छन्ति सूरयः ॥ ३२२ ॥

त्रिफला अर्थात् हरड़ बहेड़ा आंवला, त्रिवी (निसोत), दन्तीमूल, कुटकी मूसली, विधारा, पुनर्नवा श्वेत, बांसा के पत्ते, चीता, अदरख, वायविडंग, भांगरा, भिलावा, सोंठ, अनार के पत्ते, शतावर, लाल पुनर्नवा, कुडालिया, कामक (कान्तकामक-नागरमोथा), शूरणकन्द, गिलोय, मण्डूकपर्णी, हस्तिकर्ण-पलाश, हडजोड़ी, केशराज, माणकन्द, खण्डितकर्ण (वज्रकन्द-शकरकन्द), गोजिया, गिरिशान्तनक (शालिञ्च शाक); यह त्रिफलादिगण कहाता है । यह लौहमारक है। सामान्य पुटपाक के लिये विद्वानों ने इसे निर्धारित किया है ॥३१९-३२२॥

अथ एरण्डादिगणः—

विशेषपुटपाकाय गणानन्यान् शृणूदितान् ।
एरण्डः शारिवा द्राक्षा शिरीषश्च प्रसारणी ॥ ३२३ ॥

१ 'त्रिकटुस्तालमूलिका' पा० ।

२ कुठारः कुठारच्छिन्नाख्या ओषधिर्या हि चाङ्गेरीसदृक्षा भवति । उक्तंच-- 'अन्यतसमानं चाङ्गेर्या कुठाराच्छिन्नसंज्ञितम् ।' तथा 'चाङ्गेरिकासमा पत्रैः सुच्छिन्नेत्यभिधीयते ।' अत्र सुच्छिन्ना कुठाराच्छिन्नैव ।

३ 'गिरिसन्तानकः' पा० ।

माषमुद्गाख्यपर्णिन्यौ विदारीकन्द-केतकी ।
एरण्डादिगणो ह्येष सर्ववातविकारनुत् ॥ ३२४ ॥

विशेष (वात आदि दोषों में प्रयोग के लिये) पुटें देने के लिये अन्य गण कहते हैं---एरण्ड, शारिवा (अनन्तमूल), द्राक्षा (अंगूर वा मुनक्का), शिरीष (सिरस, सिरींह) की छाल, गन्धप्रसारणी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, विदारीकन्द, केतकी (केवड़ा) । यह एरण्डादिगण वात के सब विकारों का नाश करता है । इससे पुट देंगे तो लोहभस्म भी वातविकारनाशक हो जायगा ॥३२३–३२४॥

अथ किरातादिगणः—

किराताममृतानिम्ब–कुस्तुम्बुरुशतावरी ।
पटोलं चन्दनं पद्मं शाल्मल्यौडुम्बरी जटा ।
पैत्तिकामयहन्ताऽयं किरातादिगणो मतः ॥ ३२५ ॥

चिरायता, गिलोय, नीम, धनियां, शतावर, पटोलपत्र, चन्दन, पद्म (कमल), सींबल (सेमर), गूलर की जटा । यह किरातादिगण पित्तरोगों का नाशक है । इससे पुट देने से लोहा पित्तघ्न हो जायगा ॥ ३२५ ॥

अथ शृङ्गवेरादिगणः—

शृङ्गवेरस्य मूलानि निर्गुण्डी कौटजं फलम् ।
करञ्जद्वितयं मूर्वा शोभाञ्जन-शिरीषकौ ॥ ३२६ ॥
वरुणश्चार्कपर्णश्च पटोलं कण्टकारिका ।
शृङ्गवेरादिको ह्येष गणः श्लेष्मगदापहः ॥ ३२७ ॥

अदरख, संभालू, इन्द्रजौ, दोनों करञ्ज (वृक्षकरञ्ज और लताकरञ्ज), मूर्वा, सुहांजना (साहिजन), शिरीष (सिरींह, सिरस), वरुण (वरना), आक (मदार) के पत्ते, पटोलपत्र, कण्टकारी (छोटी कटेरी, कण्डयारी) । यह शृङ्गवेरादिगण कफरोगनाशक है । इससे पुट दें तो लोहा कफ के रोगों को नष्ट करने वाला हो जायगा ॥ ३२६—३२७ ॥

---

१ 'शाल्मल्युडुम्बरी जटा' पा० ।

अथ गोक्षुरादिगणः—

गोक्षुर-क्षुरकौ व्याघ्री सिंहपुच्छीद्वयं स्थिरा।
गोक्षुरादिरिति प्रोक्तो वातश्लेष्महरो गणः ॥ ३२८ ॥

गोखरू, कोकिलाक्ष या तालमखाना, छोटी कटेली (कण्टकारी), दोनों प्रकार की पृष्टपर्णी (दीर्घ पत्र वाली और गोल पत्र वाली), शालपर्णी ; यह गोक्षुरादिगण वातश्लेष्महर है। इनसे लोहे को पुट दें तो वातश्लेष्मज रोगों का नाश करेगा ॥ ३२८ ॥

अथ पटोलादिगणः—

पटोलपत्रकोशीरकासमर्दापराजिताः।
लोध्रेन्दीवरकल्हार-वाराहीकान्तया सह।
पटोलादिरिति ज्ञेयः पित्तश्लेष्मगदापहः ॥ ३२९ ॥

पटोलपत्र, खस, कसौंदी, विष्णुक्रान्ता या कोयल, लोध, नीलोत्पल, कुमुद, वाराहीकन्द, कान्ता (प्रियङ्गु अथवा अमरवेल) ; यह पटोलादिगण पित्त-श्लेष्महर है। इनसे लोहे को पुट दें तो वह पित्तश्लेष्मज रोग दूर करेगा ॥३२९॥

अथ किंशुकादिगणः—

किंशुकः काश्मरी विश्वमग्निमन्थस्त्रिकण्टकः।
श्योणाकः शालपर्णी च सिंहपुच्छीद्वयं स्थिरा ॥३३०॥
पाटला कण्टकारी च बृहती बिल्व एव च।
किंशुकादिगणो ह्येष दोषत्रयहरो मतः ॥३३१॥

पलाश के फूल या केसू, गंभारी, सोंठ, अरणी, गोखरू, श्योणाक (अरलू), शालपर्णी, दोनों प्रकार की पृष्टपर्णी, स्थिरा (माषपर्णी अथवा मूषिकपर्णी-चूहाकन्नी), पाटला, कटेली, बड़ी कटेली, बिल ; यह किंशुकादिगण त्रिदोष-नाशक है। इससे लोहे को पुट दें तो त्रिदोषज व्याधियों का नाश होगा।

अथ शतावर्यादिगणः—

शतावरीबलाधात्रीगुडूचीवृद्धदारक-

वानरीभृङ्गराजाख्यविदारीगोक्षुरक्षुरैः ।
वाजिगन्धाकणायुक्तैर्वाजीकर्मसु शस्यते ॥३३२॥

शतावर, बला, आंवला, गिलोय, विधारा, कौंच, भांगरा, विदारीकन्द, गोखरू, तालमखाना, असगन्ध, पिप्पली ; ये शतावर्यादिगण वाजीकरण में अच्छा है । इससे लोहे को पुट दें तो वह लोहभस्म वाजीकरण होगा ॥३३२॥

अथ विदार्यादिगणः—

विदारीकन्दपिण्डाह्वभृङ्गराजशतावरी-
क्षीरकञ्चुकभल्लातामृतकाचित्रकैस्तथा ॥
करिकर्णपलाशैश्च मुषलीमधुकैरपि ।
मुण्डरीकेशराजैश्च पुटो देयो रसायने ॥३३३॥

विदारीकन्द, पिण्डाह्व (पिण्डतगर), भांगरा, शतावर, खिरनी, भिलावा, गिलोय, चीतामूल, हस्तिकर्णपलाश, मूसली, मुलहठी, मुण्डी, केशराज; इनसे लोहे को पुट दें तो वह रसायन होता है ॥ ३३३ ॥

सामान्ये च विशेषे च पुटे यद् यत् प्रकीर्त्तितम् ।
मिलितैरेकशो वा तैर्यथेष्टं पुटयेत् ततः ॥
पुटपाके फलादीनामयसा ग्रहणं समम् ॥ ३३४ ॥

पुटें देने के लिये सामान्य और विशेष गणों में जो २ द्रव्य लिखे हैं उन्हें मिलाकर या अकेले २ से यथेष्ट पुटें देनी चाहियें । पुटपाक में त्रिफला आदियों को लोहे के समभाग लेना चाहिये ।

विशेषवचन—यदि मिलाकर द्रव्यों से पुटें देनी हों तो मिलित द्रव्यों को समभाग में मिलाकर लोहे के समपरिमाण लें । यदि एक २ द्रव्य से पुट देनी हो तो वह भी परिमाण में लोहे के समान ही होना चाहिये । शेष क्वाथ-विधान स्थालीपाक में निर्दिष्ट विधि के अनुसार ही जानना चाहिये ॥ ३३४ ॥

अथ पुटपाकप्रकरणमाह—

हस्तमात्रमिते गर्ते करीषेणार्द्धपूरिते ।
अथवा तुषकाष्ठाभ्यां पूरितेऽर्द्धे निधापयेत् ।

लौहमग्निं ततो दत्त्वा तथैवोद्ध्वं प्रपूरयेत् ॥ ३३५ ॥
दिवा वा यदि वा रात्रौ विधिनानेन पाचयेत् ।
चतुर्भिः प्रहरैरेव पुटपाकेन मारयेत् ॥ ३३६ ॥
पुंटपाकक्षणादूर्ध्वं स्थितो भवति भस्मसात् ।
अधस्तादपकृष्टस्तु मन्दो भवति वीर्य्यतः ॥ ३३७ ॥
कुण्डस्थो भस्मनाच्छन्न आकृष्टव्यः सुशीतलः ।
समाकृष्टस्य तप्तस्य गुणहानिः प्रजायते ॥ ३३८ ॥

एक हाथ लम्बा एक हाथ चौड़ा तथा एक हाथ गहरा गोल गढ़ा खोद-कर उसके आधे भाग में जंगली उपले अथवा तुष और लकड़ियां भर दे। उस पर लोहयुक्त शरावसम्पुट रख दे। अब अङ्गारे आदि से आग की योजना कर गढ़े को उपले वा तुष और लकड़ियों से भर दे। इच्छानुसार दिन में या रात में इसी विधि से पकाना चाहिये। पुटपाक का काल चार प्रहर (१२ घण्टे) है। अर्थात् इतने काल तक सम्पुट को अग्नि मिलनी चाहिये। पुटपाक द्वारा चार प्रहरमें लौह का मारण करे। पुटपाकक्षण (पुटपाक काल ४–प्रहर) से ऊपर (शीतल होने तक) पड़ा लोहा पूर्ण भस्म होजाता है। यदि पुटपाककाल से पूर्व ही लोहे को निकाल लें तो वह मृतलोह मन्दवीर्य (मन्द–शक्ति) होता है।

पूरी आग लगजाने पर उपलों वा तुष और लकड़ियों की राख होजाती है। इस राख से सम्पुट ढका रहता है। इसप्रकार कुण्ड में राख से ढके सम्पुट को पूर्ण शीतल होने पर बाहिर निकाले। पूर्व नहीं। यदि गरम गरम सम्पुट को ही बाहिर निकाल डालेंगे तो गुण न्यून होजाते हैं ॥ ३३५—३३८ ॥

मतान्तरम्—

शुद्धस्य सूतराजस्य भागो भागद्वयं बलेः ।

---

१ 'पतञ्जलिनाप्युक्तं—चतुर्भिः प्रहरैर्ज्ञेयः पुटपाकक्षणो बुधैः । 'पुटपाकेक्षणादूर्ध्वं' पा०

द्वयोः समं लौहचूर्णं मर्दयेत् कन्यकाद्रवैः ॥ ३३९ ॥
यामद्वयं ततो गोलं स्थापयेत् ताम्रभाजने।
आच्छाद्यैरण्डजैः पत्रैरुष्णो यामद्वयाद्भवेत् ॥ ३४० ॥
त्रिरात्रं धान्यराशिस्थं तत्ततो मर्दयेद् दृढम्।
रजस्तद्वस्त्रगलितं नीरे तरति हंसवत् ॥
तीक्ष्णं मुण्डं कान्तलौहं निरुत्थं जायते मृतम् ॥ ३४१ ॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक दो भाग और शुद्ध बारीक लोहचूर्ण दोनों के बराबर अर्थात् तीन भाग लेकर सबको मिला घीकुमारी के रस से दो पहर घोटकर गोला बनाले। इस गोले पर एरण्डपत्र लपेट दें और उसे सूत के डोरे से बांध दें। अब उस गोले को तांबे के पात्र (ताम्रसम्पुट) में रखे। यह दो पहरों (६ घण्टों) में ही गरम हो जाता है। फिर इसे तीन दिन धान्यों के ढेर में रखे और पश्चात् निकाल कर दृढ़ता से मर्दन कर कपड़े में से छान लेवे। कपड़े में से छनी हुई यह लोहे की भस्म जल पर हंस की तरह तैरेगी। इसप्रकार से तीक्ष्ण मुण्ड वा कान्तलौह की निरुत्थ भस्म हो जाती है।

विशेषवचन—अन्यत्र इस भस्म को सोमामृत नाम से कहा है। इसके निर्माण में पूर्व पारद गन्धक की कज्जली कर लेनी चाहिये। कज्जली को लोहचूर्ण के साथ मिला घीक्वार के रस से घोटा जाता है। कहीं यह भी लिखा है कि

---

१ 'द्वयोः समं तीक्ष्णचूर्णं मर्दयेत्कनकाम्बुना।' इति रसकामधेनौ रसामृतादुद्धृतः पाठः।

२ 'शुद्धस्य सूतराजस्य भागो भागद्वयं बलेः। द्वयोः समं सारचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाम्बुना॥ यामद्वयं तस्य गोलं संवेष्टयैरण्डजैर्दलैः। ततः सूत्रेण सम्बध्य स्थापयेत्ताम्रसम्पुटे॥ मुद्रयेद्वदनं तस्य मृदा संशोष्य तत्पुनः। त्रिदिनं धान्यराशिस्थं तत उद्धृत्य मर्दयेत्। रजस्तद्वस्त्रगलितं नीरे तरति हंसवत्। सोमामृताभिधमिदं लोहभस्म प्रकीर्तितम्॥ इति योगरत्नाकरे॥

गोलक को ताम्रपात्र में रख एरण्डपत्रों से ढांप दें और उसे दो प्रहर धूप में रखें पश्चात् उस पर एक शराव देकर धान्यराशि में रखे। रसायनगुणों के लिये इस भस्म का अनुपान रसामृत में त्रिफला और मधु बताया है रसरत्नसमुच्चय में भी यह योग है परन्तु वहां ताम्रपात्र के स्थान पर कांस्यपात्र कहा है—

" शुद्धसूतं द्विधा गन्धं खल्वेन कृतकज्जलम्।
द्वयोः समं लोहचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः॥
यामद्वयात्समुद्धृत्य तद्गोलं कांस्यपात्रके।
आच्छाद्यैरण्डपत्रैश्च यामार्धेऽत्युष्णतां व्रजेत्।
धान्यराशौ न्यसेत्पश्चात् त्रिदिनान्ते समुद्धरेत्॥
संपेष्य गालयेद्वस्त्रे सत्यं वारितरं भवेत्।
कान्तं तीक्ष्णं च मुण्डं च निरुत्थं जायते मृतम्॥

वहां तो स्वर्ण आदि को भी इसी प्रकार मारने का विधान है—

स्वर्णादीन्मारयेदेवं चूर्णं कृत्वा च लोहवत्।
सिद्धयोगो ह्ययं ख्यातः सिद्धानां सुमुखागतः॥
अनुभूतं मया सत्यं सर्वरोगजरापहम्।
त्रिफलामधुसंयुक्तं सर्वरोगेषु योजयेत्॥ " ३४१॥

मतान्तरम्—

क्षिपेद्वा द्वादशांशेन दरदं तीक्ष्णचूर्णतः।

---

१ "सूतकाद्द्विगुणं गन्धं दत्त्वा कुर्याच्च कज्जलीम्। द्वयोः सममयश्चूर्णं मर्दयेत् कन्यकाद्रवैः॥ यामयुग्मं ततः पिण्डं कृत्वा ताम्रस्य पात्रके। घर्मे धृत्वा रुवूकस्य पत्रैराच्छादयेद् बुधः॥ यामद्वयाद्भवेदुष्णं धान्यराशौ न्यसेत्ततः। दत्त्वोपरि शरावं तु त्रिदिनान्ते समुद्धरेत्॥ पिष्ट्वा च गालयेद्वस्त्रादेवं वारितरं भवेत्। एवं सर्वाणि लोहानि स्वर्णादीन्यपि मारयेत्॥" इति आयुर्वेदप्रकाशे रामराजोक्तं योगीन्द्राणां मतम्॥ अत्र 'यामद्वयाद्भवेदुष्णं' इत्यत्र 'यामार्धेनोष्णता भूयात्' इति पाठान्तरेण शार्ङ्गधरसंहितायामपि दृश्यते॥

२ 'क्षिपेद्वा दशमांशेन' इति क्वचित्पाठः।

कन्यानीरेण सम्मर्द्य यामयुग्मञ्च सम्पुटेत् ।
एवं सप्तपुटैर्मृत्युं[1] लौहचूर्णमवाप्नुयात् ॥ ३४२ ॥

(इति पुटपाकविधिः)

तीक्ष्णलौहचूर्ण बारह भाग, शुद्ध शिंगरफ़ एक भाग; दोनों को घीकुमारी के रस से दो पहर घोटकर सम्पुट में रख गजपुट में फूंक देवे । इसप्रकार सात वार शिंगरफ़ और घीकुमार में घोट पुट देने से सातपुट में लौहचूर्ण भस्म हो जाता है ॥ ३४२ ॥

अथ लौहस्य निरुत्थीकरणम्—

सर्वमेतन्मृतं लौहं पक्तव्यं[2] मित्रपञ्चकैः ।
यद्येवं स्यात् निरुत्थश्च सेव्यं रक्तिचतुष्टयम्[3] ॥ ३४३ ॥

सब लोहे की भस्मों को मित्रपञ्चक से मिलाकर धौंकनी से धौंक कर पकाना चाहिये । यदि इसप्रकार से लोहा न जिये-अपने स्वरूप में न आय तो निरुत्थभस्म समझे । इस लौहभस्म को चार रत्ति तक खा सकते हैं ।

विशेषवचन—लौहभस्म की आधुनिक मात्रा $\frac{1}{2}$ रत्ती से २ रत्ती तक जाननी चाहिये ॥३४३॥

अथ मित्रपञ्चकम्—

मधु सर्पिस्तथा गुञ्जा टङ्कणं गुग्गुलुस्तथा ।
मित्रपञ्चकमेतत्तु गणितं धातुमेलने ॥ ३४४ ॥

शहद, घी, रत्तियां, सुहागा, गूगल; ये पांचों मित्रपञ्चक कहाते हैं । यह धातुओं के मिलाने के काम में आता है ।

विशेषवचन—योगरत्नाकर में पञ्चमित्र निम्नोक्त है—

'मधुगुडघृतगुञ्जाटङ्कणं पञ्चमित्रम् ।'

---

१ ' सप्तपुटे मृत्युं ' पा० ।

२ ' ध्मातव्यं ' पा० ।

३ ' वारितरं हि तत् ' इति तन्त्रान्तरेषु पाठान्तरमुपलभ्यते ।

परन्तु इसे द्रावकपञ्चक नाम से ग्रन्थकार पूर्व बता चुका है। इसमें केवल गुग्गुलु के स्थान पर गुड़ की भिन्नता है। अन्यत्र निरुत्थपरीक्षा में लोहधमनार्थ इससे भिन्न मित्रपञ्चक कहा गया है–

"एतत्सर्वं लोहभस्म मित्रपञ्चकसंयुतम्।
ध्मातं सर्वं निरुत्थं स्यात्सेवनीयं न चान्यथा।
गुडगुग्गुलुसौभाग्यलाक्षामधुभिरीरितम्।
भिषग्भिर्लोहधमने प्रशस्तं मित्रपञ्चकम्॥" ३४४॥

मतान्तरम्-

गोघृतं गन्धकं लौहं तप्तखल्ले विमर्दयेत्।
दिनैकं कन्यकाद्रावै रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्।
इत्येवं सर्वलौहानां कर्त्तव्यं स्यात् निरुत्थितम्॥ ३४५॥

गौ का घी, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म; सबको तप्त खरल में डालकर मर्दन करे। जब अच्छीप्रकार मिल जाय तब नीचे उतार ले फिर घीकुमार के रस से दिनभर घोटकर शुष्क करले और सम्पुट में रख गजपुट में फूंक दे। इसप्रकार से सब लोहों का निरुत्थीकरण हो जाता है॥

विशेषवचन—तन्त्रान्तरों में सर्वत्र ही इससे भिन्न पाठ है। वहां तो—

'गन्धकं चोत्थितं लोहं तुल्यं खल्वे विमर्दयेत्।
दिनैकं कन्यकाद्रावै रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्॥'

ऐसा पाठ मिलता है। अथवा 'चोत्थितं' के स्थान पर 'तु मृतं' ऐसा पाठान्तर है। वहां कहीं 'गोघृतं' नहीं पढ़ा। जिसके अनुसार अभिप्राय यह होता है कि लोहभस्म (जो निरुत्थ नहीं है) और विशुद्ध गन्धक को समान भाग में लेकर घीक्वार के रससे खरल में मर्दन कर शुष्क होने पर गजपुट में फूंक दें। इस प्रकार वह निरुत्थ होजाती है॥ ३४५॥

रसायने विशेषो यथा—

मर्दयेच्च लोहभस्म गुञ्जामध्वाज्यटङ्कणैः।

---

१ 'गन्धकं चोत्थितं लौहं तप्तखल्वे' इति साधुः पाठः।
२ 'कर्तव्येयं निरुत्थितिः' पा०।

धमेद्वह्नौ पुनर्लौहं तदा योज्यं रसायने॥ ३४६॥

लोहभस्म को रत्तियों, मधु, घी और सुहागे से मिलाकर आग में धौंकनी से धौंके। यदि यह लौहभस्म तपाने से फिर लौह न बन जाय तो इसे रसायन-कर्म में प्रयुक्त करे॥ ३४६॥

गुणाः—

कृष्णायः शोथशूलार्शःक्रिमिपाण्डुत्वशोषनुत्।
वयस्यं गुरु चक्षुष्यं सर्वमेदोऽनिलापहम्॥ ३४७॥

कृष्णलोहभस्म, शोथ शूल बवासीर क्रिमिरोग पाण्डुरोग और शोषरोग को नष्ट करती है। आयुवर्धक है, भारी है, आंखों के लिये हितकारी है। सब प्रकार के मेद और वायु को नष्ट करती है।

विशेषवचन—कृष्णलोह(कालायस[1]) तीक्ष्णलोह का एक भेद है॥३४७॥

आयुःप्रदाता बलवीर्य्यकर्त्ता रोगापहर्त्ता मदनस्य कर्त्ता[2]।
अयःसमानं नहि किञ्चिदस्ति रसायनं श्रेष्ठतमं नराणाम् ३४८॥

लोहा आयु देने वाला, बल-वीर्य कारक, रोग-नाशक और कामोत्तेजक है। लोह की भस्म के समान अन्य कोई रसायन मनुष्यों के लिये उत्तम नहीं है॥३४८॥

लौहसेवने वर्जनीयानि—

कूष्माण्डं तिलतैलञ्च रसोनं[3] राजिकां तथा।
मद्यमम्लरसञ्चैव त्यजेत् लौहस्य सेवकः॥ ३४९॥

पेठा, तिल का तेल, लशुन, राई, मद्य, खटाई; इन सब को लौहभस्म का सेवन करनेवाला छोड़ देवे॥ ३४९॥

---

१ 'नीलकृष्णप्रभं सान्द्रं मसृणं गुरु भासुरम्।
लोहघातेऽप्यभग्नात्मधारं कालायसं मतम्॥' इति रसेन्द्रचूडामणौ।

२ 'धाता' पा०।

३ 'माषान्नं' पा०।

अथ वज्रपाण्ड्यादिगुणाः—

सामान्याद् द्विगुणं क्रौञ्चं[1] कालिङ्गोऽष्टगुणस्ततः ।
कलेः[2] शतगुणं भद्रं भद्राद्वज्रं सहस्रधा ॥ ३५० ॥
वज्राच्छतगुणं[3] पाण्डिर्निरङ्गं दशभिर्गुणैः ।
ततः कोटिसहस्रैर्वा कान्तलौहं महागुणम् ॥ ३५१ ॥

(इति लौहमारणम्)।

सामान्य लोहे से दुगुना क्रौञ्च लोह, क्रौञ्च से आठ गुना कालिङ्ग लौह, कालिङ्ग से सौ गुणा भद्रलौह, भद्रलौह से हज़ार गुणा वज्रलौह, वज्रलौह से सौ गुणा पाण्डिलौह, पाण्डिलौह से दस गुणा निरङ्गलौह तथा निरङ्गलौह से भी हज़ारों करोड़ गुणा कान्तलौह (कान्तपाषाण से सत्त्वपात द्वारा प्राप्त लौह) उत्तम है ।

विशेषवचन—सामान्यतः लोहे को पूर्व आचार्यों ने तीन विभागों में विभक्त किया है । मुण्ड तीक्ष्ण और कान्त । किसी किसी ने चार भागों में बांटा है । अर्थात् इन तीन के अतिरिक्त वज्र भी एक भेद गिना है । इनके भी बहुत से भेद हैं । जैसे मुण्ड लोह तीन प्रकार का है--१ कडार २ कुण्ठ और मृदुल । मुण्डलोह पर खटाई वा कासीस आदि का लेप करने से कोई अङ्ग (योगर-रचनाविशेष) नहीं दिखाई देता । कडार कठोर होता है । कुण्ठ उससे कम कठोर और मृदुल नरम होता[4] है। ये उत्तरोत्तर उत्तम हैं । इसीप्रकार

---

१ 'अतिश्लक्ष्णासितं सान्द्रमव्रणं परुषं भृशम् । सारं तु शिखराकारैरङ्गैर्बृहदणु द्विधा ॥ औरण्ड्रं स्नुहीपत्रसमैः कृष्णस्थूलैः कृशध्वनि । कालिङ्गं शुकनीलाख्यमङ्गैश्छिद्रसमैर्भवेत् । भद्रमेरण्डबीजाभैः पाराड्यं पीतसितासितैः । कृष्णायस्तु निरङ्गाख्यं न किट्टेनास्यते सदा । ' इति रसकामधेनौ । अत्र यदौरण्ड्रं तदेव मूले क्रौञ्चनाम्नोक्तं प्रतिभाति । लोहपद्धतिग्रन्थमनुसृत्य साराख्याद्द्विगुणं चौरण्ड्रं इति वा पाठः साधुः ।

२ ' वज्रात् सप्तगुणः परिण्डर्निरविर्दशभिर्गुणैः । तस्मात्सहस्रगुणितमिदं कान्तं महागुणम् । ' इति तन्त्रान्तरे पाठः ।

४ ' द्रुतद्रावमविस्फोटं चिक्कणं मृदुलं शुभम् ।
हतं यत्प्रसेरद्दुःखं तत्कुण्ठं मध्यमं स्मृतम् ॥
यन्मुण्डं भज्यते भङ्गे कृष्णं स्यात्तत्कडारकम् ॥” इति रसेन्द्रचूडामणौ ।

वज्र २० प्रकार का माना है। तीक्ष्ण लोह को किसी ने ३ प्रकार का किसी ने

---

१ वज्रं तु विंशतिविधं तानि स्युर्दमनाङ्ककम्।
रोहिणी डाहुनी ग्रन्थिः केतकी च कुटीरिका॥
नीलपिण्डं मौखलकं श्वेतं कङ्कोलकज्जले।
मत्स्यध्वजं तित्तिराभं क्षुद्रं वंशच्छदाभकम्।
मयूरग्रीवकं रुक्म मायूरं नकुलाङ्ककम्॥
वज्रं कालगिरि प्रोक्तं दमनाङ्गैस्तु दामनम्।
दरनालैश्च सूक्ष्मैश्च स्यादङ्गैः रोहिणी दृढा॥
यत्र स्वर्णसमा भूमिः कृष्णा वा डाहुनी च सा।
ग्रन्थिलैरङ्गकैर्ग्रन्थिः केतकी केतकीदलैः॥
कृष्णे रूप्यसमे रूक्षैर्दीर्घैरङ्गैः कुटीरिका।
यत्क्षेत्रे श्वयथुर्नीलपिण्डाभो नीलपिण्डकम्॥
मौखलं क्षौमधूमाभैः श्वेतं काचदरासितैः।
कङ्कोलकं मृणालाभैर्नालैर्विवरसन्निभैः॥
सितधारं कृष्णभूमि कृष्णैरङ्गैश्च कज्जलम्।
मत्स्यध्वजं तु मत्स्याभैस्तैत्तिरं तित्तिरिच्छदैः॥
कुण्डलाकृतिभिः क्षुद्रैः क्षुद्रं मलिनधारकम्।
त्रयोऽन्ये नामरूपार्था मायूरं नागपुष्पवत्॥
ऊर्ध्वगैः कपिलाभासैरङ्गैस्तु नकुलाङ्ककम्।
सर्वाद्रिनाशनमथो वज्रं कालगिरि स्मृतम्॥
धारया तनुपत्राभश्यामहेमाभया भवेत्॥

२ रसार्णवे त्रिविधो यथा—

रोहणं वाजरं चैव तृतीयं च पडालकम्।
इति तीक्ष्णं त्रिधा तच्च काललोहमिति स्मृतम्॥
नीलं कृष्णं त्वतिस्निग्धं सूक्ष्मधारमयः शुभम्॥

अत्र काललोहं तीक्ष्णस्यैव नामान्तरम्॥

६ प्रकार का और किसी ने १२ प्रकार का माना है। कालिङ्ग भद्र पाण्ड्य प्रभृति लोह तीक्ष्ण के अन्तर्गत ही हैं। कान्तलोह को चार वा पांच भेदों में बांटा गया है। इनका विशेष विवरण तन्त्रान्तरों में देखें॥ ३५१॥

---

१ रसेन्द्रचूडामणौ षोढा यथा—

'खरं सारं च होन्नालं तारापट्टं च भाजरम्।
काललोहाभिधानं च षड्विधं तीक्ष्णमुच्यते॥"
परुषं योगरोन्मुक्तं भङ्गे पारदसच्छवि।
नमने भङ्गुरं यत्तत्खरलोहमुदाहृतम्॥
योगराभासकं पाण्डुभूमिकं सारमीरितम्।
कृष्णपाण्डुवपुश्चञ्चुबीजतुल्योरुयोगरम्।
छेदने चातिपरुषं होन्नालमिति कथ्यते॥
(अङ्गं छाया तारपट्टं योगरस्याभिधात्रयम्।
चिकुरं भङ्गुरं लोहाद्योगरं तत्परं मतम्॥)
योगरैर्वज्रसङ्काशैः सूक्ष्मरेखैश्च सान्द्रकैः।
निचितं श्यामलाङ्गं च भाजरं तत्प्रकीर्तितम्॥

कालायसलक्षणं तु पूर्वमुक्तमेव॥

२ सारौरङ्कालिङ्गभद्रपाण्ड्यकृष्णायसैः सह पूर्वोक्ताः षड्भेदा इति द्वादशविधत्वं तीक्ष्णस्य। सारादीनां च लक्षणानि पृथगुक्तान्येव।

३ 'कान्तलौहं चतुर्धोक्तं रोमकं भ्रामकं तथा।
चुम्बकं द्रावकं चेति तेषु श्रेष्ठं परं परम्॥" इति रसेन्द्रचूडामणौ। तेषां लक्षणानि च तत्रैव—

'खन्यमानायतः कान्तपाषाणान्निःसरन्ति हि
सतेजांसि हि रोमाणि कान्तं तद्रोमकं मतम्।
क्वापि क्वापि गिरिश्रेष्ठे सुलभो भ्रामकोपलः॥
तन्मुखे क्षेपणाल्लोहं चक्रवद् भ्रमति ध्रुवम्।
विन्ध्याद्रौ चुम्बकाश्मानश्चुम्बन्त्यायसकीलकम्।
क्षिप्रं समाहरन्त्येव यूनां चित्तमिवाङ्गना॥

अथ मण्डूरशोधनादि—

ये गुणा मारिते मुण्डे ते गुणा मुण्डकिट्टके।
तस्मात्सर्वत्र मण्डूरं रोगशान्त्यै प्रयोजयेत् ॥ ३५२ ॥

जो गुण मरे हुए मुण्डलोह में हैं वेही गुण मुण्ड के किट्ट अर्थात् मण्डूर में हैं। इसलिये सर्वत्र रोगशान्ति के लिये मण्डूर का प्रयोग करे।

विशेषवचन—यहां जो मुण्डलोह कहा है उसे लौहमात्र का उपलक्षण जानना चाहिये। तीक्ष्ण और कान्तलोह से भी किट्ट वा मण्डूर की प्राप्ति होती है। जिस लोहे से जो किट्ट प्राप्त होता है उसके गुण उसी लोहे के सदृश होते हैं।

अन्यत्र कहा भी है—

'यस्य लोहस्य ये प्रोक्ताः तत्किट्टमपि तद्गुणम्।'

जहां विधान मण्डूर के प्रयोग का है वहां तो मण्डूर का प्रयोग होना ही चाहिये। परन्तु जहां लोह का प्रयोग हो और लोहभस्म की प्राप्ति न होसके तो वहां मण्डूर का प्रयोग करा सकते हैं।

मुण्डलोह से सर्वाधिक मण्डूर की प्राप्ति होती है। मण्डूर लोहे की मैल होती है। लोहे को गरम कर हथौड़े की चोट लगाने से मैल पृथक् हो जाती

यत्स्पृष्टं द्रावयेल्लोहं सुवर्णाद्यमशेषतः।
लभ्यते तन्महादुःखात्तुषारधरपर्वते ॥'

रसार्णवे तु पञ्चविधं कान्तम्। तत्र कर्षकमधिकम्।

सामान्यं कान्तलोहलक्षणं यदुक्तं रसेन्द्रचूडामणौ—

पात्रे यस्य प्रसरति जले तैलविन्दुर्न, लिप्तो
हिङ्गुर्गन्धं विसृजति निजं तिक्ततां निम्बकल्कः।
पाच्यं दुग्धं भवति शिखराकारकं नैति भूमौ
कान्तं लोहं तदिदमुदितं लक्षणोक्तं न चान्यत् ॥

योगरत्नाकरे तु—कान्तं चुम्बकसम्भवमिति।

१ मुण्डलोहस्य गुणाः— मुण्डं परं मृदुलकं कफवातशूलशूलाममेहगदकामल-पाण्डुहारि। गुल्मामवातजठरार्तिहरं प्रदीपि शोफापहं रुधिरकृत्खलु कोष्ठशोधि ॥

है। यह इकट्ठी होकर ढेला सा बन जाती है। इसे मण्डूर कहते हैं ॥ ३५२ ॥

शतोर्ध्वमुत्तमं किट्टं मध्यश्चाशीतिवार्षिकम्।
अधमं षष्टिवर्षीयं ततो हीनं विषोपमम् ॥ ३५३ ॥

सौ वर्ष से पुराना मण्डूर उत्तम होता है, अस्सी वर्ष का मण्डूर मध्यम तथा साठ वर्ष का मण्डूर अधम होता है। इससे कम वर्ष के मण्डूर को विष के समान त्याज्य समझना चाहिये ॥ ३५३ ॥

दग्ध्वाक्षकाष्ठैर्मलमायसन्तु गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान्।
विचूर्ण्य लीढं मधुनाऽचिरेण कुम्भाह्वयं पाण्डुगदं निहन्ति ॥

मण्डूर को बेहेड़े की लकड़ी की आग पर (वा बहेड़े की लकड़ी के अंगारों पर) लाल करके गोमूत्र में आठ वार बुझावे। उसे चूर्ण करके मधु के साथ मिलाकर चाटे तो कुम्भकामला और पाण्डुरोग शीघ्र नष्ट होता है।

विशेषवचन—तन्त्रान्तरों में गोमूत्र को भी बहेड़े की लकड़ी के पात्र में रखने को कहा है। यथा—

'अक्षाङ्गारैर्धमेत्किट्टमक्षपात्रस्थगोजले।
अष्टौ वारांस्तु निर्वाप्य ततः सूक्ष्मं विचूर्णयेत् ॥
तच्चूर्णं मधुना लीढं पाण्डुं हन्ति सकामलम्।'

यदि इस मण्डूरचूर्ण को त्रिफलाक्काथ से भावनायें देकर कुछ पुटें दे दी जांय तो बहुत उत्तम होगा। अथवा शार्ङ्गधर आदि के अनुसार दुगुने त्रिफलाक्काथ में आलोडित कर कड़ाही में तीव्र आंच से भर्जन कर लेना चाहिये। पकाते समय लोहे के दण्ड से दृढ़ मर्दन करना होता है ॥ ३५४ ॥

किट्टाद्दशगुणं मुण्डं मुण्डात्तीक्ष्णं शताधिकम्।
तीक्ष्णात् लक्षगुणं कान्तं भक्षणात् कुरुते गुणम् ॥ ३५५ ॥

मण्डूर की अपेक्षा दश गुणा अधिक मुण्डलौह-भस्म, मुण्ड से सौ गुणा तीक्ष्णलौह की भस्म, तथा तीक्ष्णलौह अर्थात् फौलाद से लाख गुणा अधिक कान्तलौह की भस्म खाने से गुण करती है ॥ ३५५ ॥

---

१ 'बलम्' 'गुणान्' पा०।

अथ सर्वधातुमारणविधिः—

नागैः सुवर्णं रजतञ्च ताप्यैर्गन्धेन ताम्रं शिलया च नागम्।
तालेन वङ्गं त्रिविधंश्च लौहं नारीपयो हन्ति च हिङ्गुलेन ॥३५६॥

(इति स्वर्णादिशोधनमारणविधिः)

स्वर्ण की भस्म सीसे से,चांदी की भस्म स्वर्णमाक्षिक से,ताम्रभस्म गन्धक से, नागभस्म मनसिल से, और वङ्गभस्म हड़ताल से करे। और त्रिविध लौह (मुण्ड, तीक्ष्ण कान्त) को हिंगुल और स्त्री के दूध से मारे।

विशेषवचन—सुवर्ण आदि उक्त धातुओं के नाग प्रभृति के योग से भस्मों के विधान पूर्व आ चुके हैं। हिङ्गुल और स्त्रीदुग्ध के योग से लोहभस्म की विधि नहीं आयी। वह रसरत्नसमुच्चय में 'हिङ्गुलस्य पलान्पञ्च नारीस्तन्येन पेषयेत्। तेन लोहस्य पत्राणि लेपयेत्पपञ्चकम्' इत्यादि देखी जा सकती है। हिङ्गुल और घीकार के योग से तो यहां पर भी कही ही है ॥ ३५६ ॥

अथ मणिमुक्तादिशोधनमारणम्—

स्वेदयेद्दोलिकायन्त्रे जयन्त्याः स्वरसेन च।
मणिमुक्ताप्रवालानि यामैकाच्छोधनं[2] भवेत् ॥ ३५७ ॥

मणि, मोती, मूंगा आदि रत्नों को जयन्ती के पत्तों के रस में दोलायन्त्र द्वारा एक पहर तक स्वेदन करना चाहिये। इसप्रकार वे शुद्ध हो जाते हैं ॥ ३५७ ॥

मुक्ताफलानि शुद्धानि खल्ले पिष्ट्वा पुटेल्लघु।
एवं भस्मत्वमाप्नोति वज्रकं[3] काञ्जियोगतः ॥ ३५८ ॥

शुद्ध मोतियों को खरल में पीसकर लघुपुट में फूंके, भस्म हो जाती है। इसीप्रकार हीरे को काञ्जी के योग से भस्म करे (?)

विशेषवचन—यहां पीसना भी जयन्ती के रस से चाहिये। कई गुलाब

---

१ 'विविधं' पा०। २ 'यामैकेन च शोधयेत्' पा०। 'यामैकं शोधनं भवेत्' यो० र० पाठः। ३ अत्र 'मौक्तिकं पुटयोगतः' इति वा पाठः साधुः।

के अर्क से मोतियों को घोट कर टिकिया बना लेते हैं ।

'वज्रकं काञ्जियोगतः' यह पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है । क्योंकि वज्र इतनी सुगमता से भस्म नहीं होता । 'वज्रकं' के स्थान पर 'मौक्तिकं' पाठ हो तो ठीक होगा । मोती को कांजी में शोधन का विधान भी मिलता है और उससे भस्म भी होजाती है । यथा—

' मुक्ताफलं जम्भनीरैर्दिनैकं काञ्जिकेऽथवा ।
प्रक्षिप्याथ समुद्धृत्य खल्वे तेनैव घर्षयेत् ॥ '

यहां पर मोती को कांजी में डालकर दिन भर पड़ा रहने देने के पश्चात् निकाल कर कांजी से ही पीसने को कहा है । रत्नों को अम्लों से स्वेदन का विधान भी मिलता है । रससार में अन्य द्रवों का नाम लेकर—

' अम्लैः क्षारैश्च मूत्रैश्च रत्नानि स्वेदयेत्सुधीः ।
भजन्ते मार्दवं तानि स्वेदितानि न संशयः ॥ '

इसप्रकार कहा है । जिसका अभिप्राय यही है कि मोती आदि रत्नों को यदि अम्ल (कांजी आदि) से स्विन्न करें तो वे मृदु होजाते हैं ॥ ३५८ ॥

मतान्तरम्—

कुमार्य्या तण्डुलीयेन स्तन्येन च निषेचयेत् ।
प्रत्येकं सप्तवारांश्च तप्ततप्तानि कृत्स्नशः ॥ ३५९ ॥
मौक्तिकानि प्रवालानि तथा रत्नान्यशेषतः ।
क्षणाद्विविधवर्णानि म्रियन्ते नात्र संशयः ॥ ३६० ॥

मोती मूंगा तथा सब रत्नों को आग में तपा २ कर घीकुमार के रस चौलाई के रस तथा स्त्री के दूध से पृथक् सात वार बुझावें । इससे मोती मूंगा तथा विविध वर्ण के सब रत्न क्षण में शुद्ध होते तथा मर जाते हैं ।

विशेषवचन—इन उक्त रसों से मर्दन करके टिकिया बनाकर पुटं देने

१ ' स्त्रीस्तन्येन निषेचनात् ' इति रसकामधेनुपाठः । 'तुल्येन निषेचयेत्' पा० ।
२ ' सप्तवेलं च ' पा० ।
३ 'शुद्ध्यन्ते' इति रसकामधेनौ पाठः ।

से ही मरण होगा। बुझाने से तो केवल मोती आदि का शोधन ही होता है वा वे चूर्ण किये जासकते हैं ॥ ३५९-३६० ॥

प्रवालमारणम्-

स्त्रीदुग्धेन प्रवालञ्च भावयित्वा तु खल्लके[१]।
स्थापयेद्धण्डिकामध्ये शरावेण निरोधयेत् ।
चुल्ल्यामग्निप्रतापेन म्रियते प्रहरद्वये ॥ ३६१ ॥

प्रवाल अर्थात् मूंगे को खरल में स्त्री के दूध की भावना देकर चक्रिका बना शुष्क होने पर हांडी में रखे। हांडी के मुख को शराव द्वारा बन्द करके इस सम्पुट को तीव्र आग पर रखकर पकावे। दो पहर में मूंगा भस्म हो जाता है ॥ ३६१ ॥

कुलत्थस्य पलशतं[२] वारिद्रोणेन पाचयेत् ।
तस्मिन् पादावशेषे च क्वाथेऽष्टौ मणयः शिलाः ॥ ३६२ ॥
आतपे त्रिदिनं शोध्याः, क्वाथसिक्ताः पुनः पुनः ।
शुध्यन्ते सर्वरत्नानि[३] मणयश्च न संशयः ॥ ३६३ ॥

(इति मुक्तादिशोधनमारणम्)

कुलथी सौपल लेकर एक द्रोण (द्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार २ द्रोण) जल में पकावे। चौथाई बचने पर क्वाथ को उतार ले। इस क्वाथ में आठों मणियों और शिलाओं (संगयशब आदि अथवा राजावर्त आदि) को डालकर धूप में तीन दिन भावना देवे। इस क्वाथ द्वारा बार २ सींचने से सब रत्न और मणियां शुद्ध हो जाती हैं। इसमें संशय नहीं।

---

१ 'हण्डिके। मध्येऽपि तक्रसहितं स्थापयेत्तां निरोधयेत्' इति पाठः प्रचरति। अथवाऽत्र 'हण्डिका-मध्येऽपि चक्रिकां कृत्वा स्थापयेत्तां निरोधयेत्' इति पाठःकार्यः।

२ 'पचेद्द्रोणं वारिद्रोणेन बुद्धिमान्' इति रसरत्नाकरे पाठः।

३ वैक्रान्तः सूर्यकान्तश्च हीरकं मौक्तिकं मणिः।
चन्द्रकान्तस्तथा चैव राजावर्तश्च सप्तमः ॥
गरुडोद्गारकश्चैव ज्ञातव्या मणयस्त्वमी ॥

विशेषवचन—यहां पर रत्नों के नाम नहीं दिये हैं, सामान्यतः ही कह दिया है। रत्नों में ९ मुख्य हैं, जिनका अधिकतर प्रयोग तन्त्रों में देखा जाता है। वे ये हैं-हीरा, माणिक्य (चूनी), मोती, पुष्पराग (पुखराज), नील (नीलम), तार्क्ष्य (पन्ना), वैदूर्य (लहसुनिया), गोमेद, प्रवाल (मूंगा)। इनका सम्बन्ध नवग्रह से भी बताया जाता है। हीरा-शुक्र का, माणिक्य—सूर्य का, मोती-चन्द्रमा का, पुष्पराग—गुरु का, नील-शनि का, तार्क्ष्य—बुध का, वैदूर्य-केतु का, गोमेद-राहु का, प्रवाल-मङ्गल का रत्न है। इस नवग्रह के साथ सम्बन्ध बताने से रत्नों के वर्ण का ज्ञान भी होजाता है। यथा हीरे को शुक्र का रत्न बताने से उसके शुभ्र वर्ण का होना पता लगता है (इसमें अन्य वर्ण भी होते हैं)। माणिक्य को सूर्य का ग्रह बताने से लाल वर्ण का होना स्पष्ट है। इसप्रकार क्रमशः मोती नीलाभ श्वेत, पुष्पराग पीला, नीलम नीला, पन्ना हरा, वैदूर्य धूम्रवर्ण का(बिल्ली की आंख के सदृश), गोमेद गौ की चर्बी के सदृश वर्ण का (राहु का वर्ण कृष्ण माना गया है—इस रत्न के बच जाने से उसे इसी का कह दिया है), प्रवाल लाल होता है (मंगल का एक नाम लोहिताङ्ग) है। यह भी कहा जाता है कि उन २ ग्रहों के कोप के समय उस २ के रत्न का धारण करना हितकर होता है। रत्न के धारण से ग्रहशान्ति होती है। इन रत्नों की भस्मों का प्रयोग रोगशान्ति के लिये भी होता है। हीरे की भस्म के प्रकार पूर्व कहे जा चुके हैं परन्तु एक प्रकार यहां भी कहा जाता है—

'कुलत्थक्काथसंयुक्तलकुचद्रवपिष्टया।
शिलया लिप्तमूषायां वज्रं क्षिप्त्वा निरुध्य च॥
अष्टवारं पुटेत्सम्यक् विशुष्कैर्वनकोत्पलैः।
शतवारं ततो ध्मात्वा निक्षिप्तं शुद्धपारदे॥
निश्चितं म्रियते वज्रं भस्म वारितरं भवेत्।
सत्यवाक् सोमसेनानीरेतद्वज्रस्य मारणम्।
दृष्टप्रत्ययसंयुक्तमुक्तवान् रसकौतुकी॥'

सबसे प्रथम मनःशिला को कुलथी के क्वाथ से और पश्चात् बड़हल के रससे पीस कर मूषा को लीप दें। उसके शुष्क होने पर उसमें हीरे को रखकर

पुट दें । ऐसे आठ वार पुटें देने के पश्चात् उसे आग में लाल कर शुद्ध पारे में सौ वार बुझावें । अब वह पीसने योग्य हो जायगा । उसे दृढ़ खरल में डालकर पीस लें । पश्चात् हड़ताल मनसिल गन्धक हिङ्गुल के योग से पुटें दे लें।

हीरे को पुरुष स्त्री और नपुंसक तीन भेदों में बांटते हैं । ये अपने अपने लिङ्ग में ही प्रयुक्त किये जाने चाहियें । पुंवज्र को सर्वत्र प्रयोग करा सकते हैं । यह श्रेष्ठ माना जाता है । जिस हीरे के आठ फलक हों,छः कोण हों,जो तीक्ष्णधार हो, जो दृढ़ और चमकदार हो और किसीप्रकार का दोष (गार, त्रास, विन्दु, रेखा, जलगर्भता) न हो, वह सर्वश्रेष्ठ है, वही पुंवज्र कहाता है । यदि हीरा चपटा लम्बा और गोल सा हो तो वह स्त्रीवज्र होता है । इसीप्रकार यदि हीरक के कोण तीक्ष्ण न हों, गोल हो और कुछ अधिक भारी हो तो वह नपुंसक होता है ।

इन प्रत्येक हीरों को पुनः शास्त्रकारों ने वर्णभेद ब्राह्मण आदि वर्णों में बांटा है । यदि हीरा शुभ्रवर्ण हो तो ब्राह्मण, यदि लाल हो तो क्षत्रिय, यदि पीला हो तो वैश्य, यदि कृष्णवर्ण हो तो उसे शूद्र कहा जाता है । इन्हें भी अपने अपने वर्णों में प्रयोग का विधान है । परन्तु जो उत्तम वर्ण का है वह अपने से नीचे के वर्णों में भी लाभकर होता है ।

हीरा आयुवर्धक, त्रिदोषनाशक, वृष्य है तथा योगवाही होने से सर्वरोगनाशक होता है । राजयक्ष्मा, प्रमेह, पाण्डु तथा शोथ आदि में लाभकर है । इसकी आधुनिक मात्रा पूर्व कही ही जा चुकी है ।

मोती और प्रवाल की मारणविधि तो ऊपर कही ही है । सब रत्नों का विशेष शोधन निम्न है—

‘ शुद्ध्यत्यम्लेन माणिक्यं जयन्त्या मौक्तिकं तथा ।
विद्रुमं क्षारवर्गेण तार्क्ष्यं गोदुग्धतस्तथा ॥
पुष्परागं च धान्याम्लैः कुलत्थक्काथसंयुतैः ।
तण्डुलीयजलैर्वज्रं नीलं नीलीरसेन च ॥
रोचनाभिश्च गोमेदं वैडूर्यं त्रिफलाजलैः ॥’

यद्यपि कई आचार्य सुरत्नों को स्वयं शुद्ध मानते हैं परन्तु उनका भी यह

विचार है कि शोधन से रत्नों में गुणाधान अवश्य होता है। वज्र के अतिरिक्त शेष रत्नों के मारण की विधि निम्न है—

‘लकुचद्रवसम्पिष्टैः शिलागन्धकतालकैः।
वज्रं विनान्यरत्नानि म्रियन्तेऽष्टपुटैः खलु॥’

रत्नों का पेषण अतिदृढ़ पत्थर के खरलों में करना चाहिये अन्यथा खरल भी घिसकर उसी में मिलजायगा। माणिक्यभस्म की मात्रा १/४ रत्ती से १/२ रत्ती तक है। मोतीभस्म की मात्रा १/४ रत्ती से १ रत्ती पर्यन्त है। पुष्परागभस्म की मात्रा भी मोती के सदृश ही है। नीलमभस्म की मात्रा १/८ रत्ती से १/२ रत्ती तक है। पन्नाभस्म की मात्रा मोती के समान है। वैदूर्यभस्म की मात्रा १/८ रत्ती से १ रत्ती पर्यन्त मानी गई है। गोमेदभस्म की मात्रा मोती के समान है। प्रवालभस्म की मात्रा १/२ रत्ती से २ रत्ती पर्यन्त है।

भस्म करने के लिये वह माणिक्य लेना चाहिये जो लाल कमल के सदृश हो (किसी किसी में थोड़ी सी नीली आभा भी होती है वह भी अच्छा होता है), स्वच्छ हो, गोल लम्बा हो, भारी हो, सम हो—टेढ़ा मेढ़ा न हो, स्निग्ध हो। माणिक्यभस्म अग्निदीपक, वृष्य, कफ तथा वात की नाशक, क्षयरोगहर, वाजीकरण है तथा भूत आदि दोषों और कर्मज रोगों को हटाती है।

मोती वे अच्छे होते हैं जो मोटे गोल नीली आभा से युक्त श्वेत वर्ण के तथा स्निग्ध हों, जिनमें से किरणें सी निकलती हों, भारी हों, व्रणरहित हों। यदि टेढ़े मेढ़े जलगर्भ तथा रूक्षता आदि दोषों से युक्त हों तो हेय हैं। असली मोतियों को यदि नमक युक्त गोमूत्र में डाल धान्य के तुषों से मर्दन करें तो वर्ण आदि से हीन नहीं होते। नकली मोतियों में विकार आजाते हैं।

मोती कफ पित्त तथा क्षयरोग के नाशक होते हैं। श्वास कास हिक्का तथा मन्दाग्नि को हटाते हैं। पुष्टिकारक वृष्य और आयुवर्धक हैं। दाह को भी नष्ट करते हैं। हड्डी को दृढ़ करते हैं। बालकों के दन्तोद्भेदज्वर में भी दिये जाते हैं। यह शोष और शोथ को भी दूर करते हैं।

पुष्पराग वह श्रेष्ठ है जो पीले कनेर के सदृश पीला हो, स्वच्छ हो, स्थूल हो, भारी हो, स्निग्ध हो, और मृदु हो, चिकना हो, चमकदार हो, सम हो। इसकी भस्म अग्निदीपक, लघु, पाचक, दाह तथा कुष्ठ की नाशक होती है।

विष के कफ वात तथा मन्दाग्नि को दूर करती है। अर्श में भी हितकर मानी है।

नीलम वह उत्तम होता है जो कालिमा लिये नीले वर्ण का हो और वह वर्ण सर्वत्र एक सा हो, भारी हो, स्वच्छ हो, स्निग्ध हो, मृदु हो, चमकदार हो, पिण्डित हो।

इसकी भस्म विषमज्वर कास श्वास तथा अर्श में प्रयुक्त की जाती है। यह त्रिदोषनाशक वृष्य तथा अग्नि-दीपक होती है।

पन्ना वह लेना चाहिये जो हरे वर्ण का भारी स्निग्ध चिकना चमकदार तथा सम हो। जिसमें से किरणें सी निकलती हो।

इसकी भस्म ज्वर के विष श्वास सन्निपात मन्दाग्नि अर्श पाण्डु तथा शोफ की नाशक होती है। ओज को बढ़ाती है॥

वैदूर्य वह प्रशस्त है जिसमें श्याम और शुभ्रवर्ण की आभा हो, देखने में बिल्ली की आंख के सदृश हो, सम स्वच्छ तथा भारी हो, जिसमें फहराते हुए श्वेत दुपट्टे के सदृश दिखाई देवे।

इसकी भस्म रक्तपित्त को नष्ट करती है। बुद्धि आयु और बल को बढ़ाती है। पित्तप्रधान रोगों की नाशक है, अग्निदीपक है तथा मल को निकालती है।

गोमेद वह अच्छा होता है जो स्वच्छ गोमूत्र के वर्ण का हो, स्निग्ध हो, सम हो, भारी हो, दल-रहित हो, स्वच्छ हो, चिकना हो, चमकदार हो।

गोमेदभस्म कफपित्तनाशक, अग्निदीपक, पाचक, रुचिकर, त्वचा के लिये हितकर (कुष्ठनाशक) तथा बुद्धिवर्धक होती है। यह क्षय तथा पाण्डुरोग को हटाती है।

प्रवाल (मूंगा) वह उत्तम है जो पके हुए बिम्बफिल के सदृश रक्तवर्ण का हो, गोल लम्बा हो, टेढ़ा मेढ़ा न हो, चिकना हो, व्रणरहित हो, मोटा हो।

यह क्षय रक्तपित्त कास आदि रोगों में हितकर होता है। दीपन है, पाचन है, लघु है, विष तथा भूत आदि का नाशक है। नेत्ररोगों को हटाता है, वीर्यवर्धक है। रात्रिस्वेद को भी दूर करता है।

इन नौ रत्नों के अतिरिक्त अन्य भी रत्न हैं जिन्हें क्षुद्ररत्नों के नाम से भी कह देते हैं। जैसे वैक्रान्त, सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, राजावर्त (लाजवर्द), पेरोजक (फ़िरोज़ा) तथा स्फटिक (बिल्लौर)।

इनमें से वैक्रान्त का शोधनमारण पूर्व कहा जा चुका है। इसके गुण वज्र के सदृश ही होते हैं। इसमें वर्ण शुद्ध भी होते हैं। और मिश्रित भी। यह वर्णभेद से आठ प्रकार का है। श्वेत, लाल, पीला, नीला, कबूतर के वर्णका, श्याम, काला तथा कर्बुर। यह आयुवर्धक, बल्य, वर्णकर, अतिवृष्य, बुद्धिवर्धक, त्रिदोषज रोगों का नाशक है। देह को दृढ़ करता है।

सूर्यकान्त वह मणि है जिसमें से सूर्यकिरणें गुज़र कर अग्नि पैदा कर देती हैं जैसे आतसी शीशा। यह स्वच्छ, किसी प्रकार के छिलके आदि आवरण से रहित, स्निग्ध, चिकनी और व्रणरहित अच्छी होती है। इसे किसी अम्ल में स्वेदन कर शोधन करने के पश्चात् समपरिणाम मनःशिला और गन्धक से पुटें देकर भस्म कर लेना चाहिये।

इसकी भस्म उष्ण होती है, बुद्धि को बढ़ाती है, कफवातनाशक तथा रसायन है।

चन्द्रकान्त वह मणि है जिस पर चन्द्रमा की किरणें पड़ने से जल सा द्रव चूने लग जाय। यह निर्मल, चिकनी, पीले वर्ण की तथा स्निग्ध उत्तम होती है। इसकी भस्म मनःशिला और हिङ्गुल के योग से की जाती है।

यह शीतल होती है, पित्तरोगों को हटाती है। रक्तपित्त और दाह की नाशक है।

लाजवर्द नीले रंग का होता है। यह भी निर्मल, चिकना, स्निग्ध, भारी तथा मयूर के कण्ठ के सदृश वर्ण वाला ग्राह्य है।

इसकी शुद्धि नीबू के रस क्षार और गोमूत्र से दोलायन्त्र द्वारा की जाती जाती है।

भस्म के लिये इसे पीसकर समपरिमाण गन्धक मिला नीबू के रस से भावित कर गजपुट देनी चाहिये। इसप्रकार ८ या १० वार करने से भस्म हो जाता है।

यह दीपक पाचक है, शीतल है, पित्त को शान्त करता है, पुष्टिकारक है, पाण्डु, प्रमेह तथा क्षय में हितकर है, मदात्यय में अत्यन्त लाभ करता है। कै और हिचकी को भी हटाता है।

फ़िरोज़ा हरे से रंग का होता है। इसका शोधन मारण पूर्ववत् ही है। यह अग्निदीपक, शूलनाशक तथा विषनाशक होता है।

बिल्लौर शुभ्रवर्ण का होता है। यह स्निग्ध, आवरणरहित तथा स्वच्छ और पारदर्शक श्रेष्ठ है। इसका शोधन मारण भी राजावर्त के समान है। यह अतिशीतल होता है, पित्त को शान्त करता है, रक्तपित्त को हटाता है और ज्वर तथा दाह का नाशक है। सूर्यकान्त आदि के भस्मों की मात्रा चौथाई रत्ती से १ रत्ती पर्यन्त समझनी चाहिये ॥ ३६२–३६३॥

अथ विषशुद्धिः ।

कृत्वा चणकसंस्थानं गोमूत्रैर्भावयेत् त्र्यहम् ।
समटङ्कणसम्पिष्टं मृतमित्युच्यते विषम् ॥ ३६४ ॥

स्थावर कन्दविष जो उपयोग में आते हैं उन (दार्विक, सैकत, वत्सनाभ, शक्तुक, मुस्तक, सार्षप, कौर्म, शृङ्गी) आठों विषों को शुद्ध करने की विधि लिखते हैं-इन विषों को चने के समान खण्ड २ करके गोमूत्र से तीन दिन भावना देवे। इसप्रकार विष शुद्ध हो जाता है। विष में समान भाग सुहागा डालकर पीस ले तो विष मर गया है–ऐसा कहा जाता है।

मूल पत्र फल कन्द आदि आश्रयभेद से स्थावर विष १० प्रकार के होते हैं। इन सब में से कन्दविषों को श्रेष्ठ माना गया है। कन्दविष कहीं १३ प्रकार का माना है, जैसे रसरत्नसमुच्चय में—

'तेषु श्रेष्ठं कन्दविषं तत्त्रयोदशधा स्मृतम् ।
कर्कटं कालकूटं च वत्सनाभं हलाहलम् ॥
वालुकं कर्दमं चैव साक्तुकं मूलकं तथा ।
सार्षपं शृङ्गकं देवि मुस्तकं च महाविषम् ॥
हारिद्रकमिति प्रोक्तं त्रयोदशविधं विषम् ॥'

इनके लक्षण भी वहां दिये गये हैं।

रसेन्द्रचिन्तामणि में विष के १८ भेद कहे हैं। जिन में से १० औषधार्थ त्याज्य बताये गये हैं, ८ ग्राह्य हैं। त्याज्य विष निम्न हैं—

कालकूटमेषश्रृङ्गीदर्दुरहलाहलकर्कोटग्रन्थिहारिद्ररक्तश्रृङ्गीकेशरयमदंष्ट्राप्रभेदेन दश विषाणि परिवर्जनीयानि। ग्राह्य विष ये हैं—

'तत्र सक्तुकमुस्तककौर्मदर्वीकसार्षपसैकतवत्सनाभश्वेतश्रृङ्गीभेदानि प्रयोगार्थमाहरणीयानि भवन्ति।

तन्त्रों में मुख्यतया विष के ९ भेद गिने हैं—

'कालकूटो वत्सनाभः श्रृङ्गकश्च प्रदीपनः।
हालाहलो ब्रह्मपुत्रो हारिद्रः सक्तुकस्तथा॥
सौराष्ट्रिक इति प्रोक्ता विषभेदा अमी नव॥

इन में से जो भैषज्यार्थ ग्राह्य विष हैं उन्हीं का शोधन उक्त प्रकार से किया जाता है। इनमें से भी सर्वाधिक वत्सनाभ का प्रयोग ही है। विष-सामान्य कहने से वत्सनाभ का ही ग्रहण होता है॥ ३६४॥

अथवा त्रैफले क्वाथे विषं शुध्यति पाचितम्।
दोलायां त्रिफलाक्वाथे छागीक्षीरे च पाचितम्॥ ३६५॥

अथवा त्रिफला के क्वाथ में दोलायन्त्र से विष को पकावे तो वह शुद्ध होता है। अथवा क्रमशः त्रिफलाक्वाथ और बकरी के दूध में (एक याम पर्यन्त) पकावे तो विष शुद्ध हो जाता है।

विशेषवचन—केवल बकरी के दूध में स्वेदन से भी विष शुद्ध होता है—ऐसा तन्त्रान्तरों में कहा है। बकरी का दूध यदि न मिल सके तो विष की शुद्धि गोदुग्ध से भी की जा सकती है॥ ३६५॥

गोमूत्रपूर्णपात्रे च दोलायन्त्रे विषं पचेत्।
दशतोलकमानेन चादौ वैद्यो दिवानिशम्॥ ३६६॥

एक हांडी में गोमूत्र भरकर उसमें दस तोला विष को दोलायन्त्र से दिन रात (२४ घण्टे) पकावे तो वह शुद्ध हो जाता है॥ ३६६॥

मतान्तरम्—

विषभागांश्चणकवत् स्थूलान् कृत्वा तु भाजने ।
तत्र गोमूत्रकं दत्त्वा प्रत्यहं नित्यनूतनम् ॥ ३६७ ॥
शोषयेत्त्रिदिनादूर्ध्वं धृत्वा तीव्रातपे ततः ।
प्रयोगेषु प्रयुञ्जीत भागमानेन तद्विषम् ॥ ३६८ ॥

(इति विषशुद्धिः)

एक मृत्पात्र में गोमूत्र में चने के समान विष के खण्ड करके डाल देवे। प्रतिदिन पुराना गोमूत्र फेंक कर नया डालता जाय। तीन दिन के पश्चात् तीव्र धूप में रखकर विष को सुखा लेवे। इसप्रकार से शुद्ध हुए २ विष को औषधयोगों में उक्त मान में प्रयुक्त करे।

विशेषवचन—तीन दिन के पश्चात् जब विष को गोमूत्र से पृथक् किया जाय तो उस समय उसके ऊपर का छिलका छील डालना चाहिये ऐसा वृद्ध-वैद्यों का आदेश है ॥ ३६७—३६८ ॥

अथोपविषमाह—

अर्कसेहुण्डधुस्तूरलाङ्गलीकरवीरकाः ।
गुञ्जाऽहिफेनावित्येताः सप्तोपविषजातयः ॥ ३६९ ॥

आक, सेहुण्ड (थोहर), धतूरा, लांगली अर्थात् कलिहारी, कनेर, रत्ति (घुंघची) तथा अफीम; ये सात उपविष की जातियां हैं। अर्थात् सब प्रकार के आक, सब जाति के थोहर, सब जाति के धतूरे, सब जाति की कलिहारी, सब जाति के कनेर, सब जाति की रत्ति, सब जाति की अफीम; इन्हें उपविष कहते हैं। ये भी स्थावर विष के अन्तर्गत ही हैं।

विशेषवचन—मतान्तर से कुचला और जमालगोटे को मिलाकर उपविषों की ९ जातियां कही जाती हैं ॥ ३६९ ॥

तच्छुद्धिः—

धुस्तूरस्य च यद्बीजमन्यच्चोपविषं च यत् ।
तच्छोध्यं दोलिकायन्त्रे क्षीरपूर्णेऽथ पात्रके ॥ ३७० ॥

(इत्युपविषशुद्धिः)

धतूरे के बीज और अन्य उपविष शुद्ध करने हों तो उन्हें दूध से भरे हुए पात्र में दोलायन्त्र द्वारा (एक प्रहर) पाक करके शुद्ध करे।

विशेषवचन–तन्त्रान्तरों में धत्तूरबीज के शोधन की अन्य विधि भी मिलती है–धतूरे के बीजों को चार पहर तक गोमूत्र में भिगोवें। पश्चात् उसका छिलका उतार कर पीस लें ॥ ३७० ॥

अथ जैपालशुद्धिः–

निस्तुषं जयपालञ्च द्विधा कृत्वा विचक्षणः।
एतद्बीजस्य मध्यन्तु पत्रवत् परिवर्जयेत् ॥ ३७१ ॥
अष्टमांशेन चूर्णेन टङ्कणस्य च मेलयेत्।
केशयन्त्रे च तद्द्राव्यं पाच्यं दुग्धेन सम्प्लुतम्।
त्रिरात्रं शुद्धिमायाति जैपालममृतोपमम् ॥ ३७२ ॥

जयपाल अर्थात् जमालगोटे के बीजों का छिलका उतार कर, एक २ बीज के दो २ भाग करके उसके बीच की पतली पत्ती या जीभी निकाल फेंके। फिर बीजों का आठवां भाग सुहागे का चूर्ण मिला कर केशयन्त्र में रख दूध से भरे पात्र में पकावें। इसीप्रकार तीन दिन पाक करने से जमालगोटा शुद्ध हो जाता है और अमृत के समान गुणदायक होता है।

विशेषवचन—केशों का एक छिका सा बनाकर उसमें बीज रख दोला-यन्त्र की विधि से पकाना केशयन्त्र में पकाना कहाता है ॥ ३७१–३७२ ॥

अथ स्नुहीक्षीरशुद्धिः–

चिञ्चापत्ररसे कर्षे वस्त्रपूते पलद्वयम्।
स्नुहीक्षीरं रौद्रयन्त्रे भावयेद् यततः सुधीः।
द्रवे शुष्के समुत्तार्य सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ ३७३ ॥

स्नुही (थोहर या सीज, सेहुण्ड) का दूध दो पल ले। उसमें इमली के पत्तों के रस को वस्त्र से छानकर एक कर्ष भर मिला दे। फिर धूप में सुखावे। इसप्रकार थोहर के दूध की शुद्धि होती है। इसे सब योगों में डाले।

विशेषवचन–कई आचार्य स्नुहीक्षीर को स्वयं शुद्ध ही मानते हैं। जैसे

योगरत्नाकर में कहा है—"अर्कसेहुण्डयोर्दुग्धं तत्स्वयं शुद्धमुच्यते" ॥३७३॥

अथ जलौकाशोधनम्—

चिरन्तनीं जलौकान्तु ताम्रपात्रेषु रक्षयेत् ।
चतुर्माषं निशाचूर्णं जलाष्टकपले क्षिपेत् ॥ ३७४ ॥
तस्मिन् क्षिपेत् जलौकां तां स्वयं लालां परित्यजेत् ।
त्यक्तलाला जलौका च सा योज्या रक्तमोक्षणे ॥ ३७५ ॥

पुरानी जलौका अर्थात् जोंक को ले। फिर एक तांबे के पात्र में चार माषा (आधा तोला) हल्दी का चूर्ण और आठ पल (३२ तोले) जल डाले। उसमें पुरानी जोंक डाल दे। जोंक स्वयं अपनी लार उस जल में छोड़ देगी पश्चात् उस जोंक को शुद्ध समझ कर उसे खून निकलवाने के काम में प्रयुक्त करे ॥ ३७४-३७५ ॥

रोमपृष्ठा च कपिला रक्तरेखा च दुर्बला ।
वर्जनीया विशेषेण भिषजा कीर्त्तिमिच्छता ॥ ३७६ ॥

जिस जोंक की पीठ पर रोम हों, कपिल रंग की हो, लाल रेखा वाली हो, दुर्बल हो—उसे कीर्ति चाहने वाला वैद्य विशेषकर प्रयोग न करे।

विशेषवचन—जलौकाप्रयोग के विशेष ज्ञान के लिये सुश्रुतसंहिता सूत्रस्थान अध्याय १३ देखें ॥ ३७६ ॥

अथ वृद्धदारकबीजशोधनम्—

बीजमादौ समादाय रौद्रयन्त्रे विशोषयेत् ।
ईषत्सैन्धवयुक्तेन द्रवेण यत्नतः सुधीः ।
अपामार्गस्य वा तोयैर्वाद्धक्यबीजशोधनम् ॥ ३७७ ॥

बीजों का सामान्य शोधन—बुद्धिमान वैद्य बीजों को लेकर एक पात्र में डाल थोड़े से सेन्धानमक युक्त द्रव से भिगो यत्नपूर्वक धूप में सुखा डाले। इस प्रकार वे शुद्ध हो जाते हैं।

विधारे के बीज का शोधन—विधारे के बीजों को अपामार्ग के रस से

शोधा जाता है। अर्थात् विधारे के बीजों को एक पात्र में डाल उसमें थोड़ा सेन्धानमक युक्त अपामार्गरस डाल कर धूप में सुखा लें ॥ ३७७ ॥

मतान्तरम्—

वृद्धदारकबीजन्तु पक्वं दोलाकृतं पचेत् ।
दुग्धपूर्णेषु पात्रेषु ततः शुध्यति निश्चितम् ॥ ३७८ ॥

(इति वृद्धदारकबीजशोधनम्)

दूधभरे पात्र में विधारे के बीजों को दोलायन्त्र से पकावें तो निश्चित शुद्ध होजाते हैं ॥ ३७८ ॥

अथ नानाबीजशोधनम् —

अपामार्गकषायेण निम्बुबीजं विशोधयेत् ।
मूलक्काथैः कुमार्य्याश्च जैपालबीजशोधनम् ॥ ३७९ ॥

अपामार्ग के क्वाथ से नींबू के बीजों को भावित कर शुद्ध करे। घीकुमार की जड़ के क्वाथ से जमालगोटे के बीजों का शोधन करे ॥ ३७९ ॥

इन्द्रवारुणिकाक्काथैः राजवृक्षस्य बीजकम् ।
समूलोत्तरवारुण्या धुस्तूरबीजशोधनम् ॥ ३८० ॥

इन्द्रायण के क्वाथ से अमलतास के बीजों को भावित कर शुद्ध किया जाता है। जड़युक्त इन्द्रायण के क्वाथ से धतूरे के बीजों का शोधन होता है ॥ ३८० ॥

शिग्रुकार्पासबीजानि अपामार्गस्य बीजकम् ।
घर्मेण शोधनं तेषां न दद्यात् सैन्धवं ततः ॥ ३८१ ॥

सहिजन (सुहांजना), कपास और अपामार्ग के बीज धूप में सुखाने से शुद्ध हो जाते हैं, इनमें सेन्धानमक न डाले।

विशेषवचन–इनका शोधन करने के लिये अपामार्ग का क्वाथ डाला जाता है। परन्तु सेन्धानमक नहीं डाला जायगा ॥ ३८१ ॥

तिक्ता कोषातकी दन्ती पटोली चेन्द्रवारुणी ।

१–'निम्बबीजं' पा० ।

कटुतुम्बी देवदाली काकतुण्डी च शुध्यति ।
धात्रीफलरसेनैव महाकालस्य शोधनम् ॥ ३८२ ॥

कड़वी तोरी के बीज, दन्ती के बीज, पटोल के बीज, इन्द्रायण के बीज, कड़वी तुम्बी के बीज, देवदाली के बीज, कौआठोडी के बीज; ये भी पूर्ववत् (अपामार्गक्वाथ से) शुद्ध होते हैं। महाकाल (माखाल, लाल इन्द्रायण) के बीजों को आंवले के रस में भावित करके शुद्ध करे ॥ ३८२ ॥

करञ्जयुग्मयोर्बीजं भृङ्गराजेन शोधयेत् ।
गुञ्जादिसर्वबीजानां नरमूत्रैः पटुं विना ।
नारिकेलाम्बुना शोध्यं बिल्वभल्लातकोद्भवम् ॥ ३८३ ॥

दोनों करञ्जों के बीजों को भांगरे के रस से शुद्ध करे। रत्ति आदि सब बीजों को मनुष्य के मूत्र में बिना नमक मिलाये ही भावित कर शुद्ध करे। बिल्वबीज और भिलावे के बीज को नारियल के जल से शुद्ध करे।

विशेषवचन—बीजों को शुद्ध करने में जहां २ नमक का निषेध किया है उसके अतिरिक्त अन्य बीजों को भिन्न २ द्रव्यों के रसों में शुद्ध करने के समय कुछ नमक भी डाल देना चाहिये।

यहां पर जो बीजों का शोधन कहा है वह उनके तीव्र तैलांश को निकालने के लिये ही है। यदि हम चाहें कि उक्त बीजों का तैल एकत्र करें तब भी उन्हीं कषायों के प्रयोग से कर सकते हैं। रसरत्नाकर में तैलपातन-विधि बताई है। धत्तूरबीज के लिये वहां कहा है—

"धत्तूरबीजचूर्णानि वस्त्रपूतानि कारयेत् ।
समूलोत्तरवारुण्या कषायेण विलोडयेत् ॥
आलिप्य कांस्यपात्रे तु धारयेदातपे खरे ।
सन्तप्ते स्वच्छवस्त्रेण पीडयेत्तैलमाहरेत् ॥"

मूल में भी समूल उत्तरवारुणी (इन्द्रायण) के क्वाथ से शोधन लिखा है। इसीप्रकार सहिजन आदि के लिये कहा है—

'शिग्रुपुष्पार्ककार्पासबीजानामपमार्जनात् ।

ग्राह्यं धत्तूरवत्तैलमेकैकस्य पृथक् पृथक् ॥'

जैपालबीज के तैल के लिये कहा है–

'मूलक्वाथैः कुमार्यास्तु तैलं जैपालजं भवेत् ।'

मूल में शोधन भी इसीप्रकार ही कहा है ।

अमलतास के बीज के तैल के लिये वहां बताया है–

'क्वाथेन चेन्द्रवारुण्यास्तैलमारग्वधं भवेत् ।'

यहां मूल में भी इन्द्रवारुणी (इन्द्रायण) के क्वाथ से ही इन बीजों का शोधन कहा है । तिक्तकोशातक (कड़वी तोरी) आदि के लिये रसरत्नाकर में कहा है–

'कटुतुम्बी देवदाली पटोली चेन्द्रवारुणी ।
तिक्तकोशातकी चैषां शुष्कबीजानि कारयेत् ॥
काकतुण्डया अपामार्गक्वाथे तैलं समाहरेत् ॥'

महाकालबीज के तैलपातन के विषय में भी–

'महाकालस्य बीजानि चूर्णितानि विभावयेत् ।
धात्रीफलरसेनैव सप्तवारं पुनः पुनः ।
सोष्णं कृत्वा तु तच्चूर्णं तैलयन्त्रेण पीडयेत् ॥'

मूल में शोधन भी धात्रीफल (आंवला) के रस से ही कहा है ।

करञ्जबीज के विषय में----

'चूर्णं करञ्जबीजोत्थं भृङ्गराजरसैः सह ।
समालोड्यातपे तप्तं पीडनात्तैलमाहरेत् ॥

मूल में भी शोधन भांगरे के रस से ही है ।

भल्लातकबीज के लिये भी इसीप्रकार कहा है—

गुञ्जाभल्लातबीजोत्थं चूर्णं चित्रकमूलजम् ।
नारिकेलाम्बुनालोड्य घर्मे तच्चालयेत्क्षणम् ॥
पीडयेत्तं च पट्टाभ्यां तैलं पतति तद्गतम् ।

यहां पर भी भल्लातक का नारियल के जल से शोधन कहा है ।

इसीप्रकार बिल्वबीज के विषय में भी–

'नारिकेलाम्बुना भाव्यं बिल्वबीजस्य चूर्णकम्।
दिनैकं तैलयन्त्रेण तैलमाहृत्य योजयेत्॥'

अभिप्राय यह है कि उक्त जो भी बीजों का शोधन कहा है वह उसके तैलांश को कम करने के लिये ही है। तैलांश के कम होजाने से उसकी तीव्रवीर्यता हटजाती है।

हमने ऊपर सहिजनबीज आदि का शोधन अपामार्गक्काथ से कहा है और उसमें प्रमाण उक्त उद्धरण भी है। परन्तु यतः संग्रहकार ने धत्तूरबीज-शोधन के बाद संग्रह किया है तो जड़सहित इन्द्रवारुणी के क्काथ से भी उनका शोधन कर सकते हैं। अन्यत्र शोधन बताते हुए कहा भी है—

'अथवोत्तरवारुण्याः कषायेण समाहरेत्।
तैलं समस्तबीजानां ग्राहयेदातपे खरे॥' ३८३॥

गुडूचीत्रिफलाक्काथे क्षीरे चैव विशेषतः।
पक्त्वा च खण्डशः शुद्धं गृह्णीयात् मृदु गुग्गुलुम्॥३८४॥

इति विषोपविषादिशोधनम्।

गुग्गुलु को खण्ड २ करके गिलोय वा त्रिफला के क्काथ में अथवा विशेषतः दूध में पका कर शुद्ध करें।

विशेषवचन—इनमें पकाने के पश्चात् द्रव को वस्त्र से छान लिया जाता है। गुग्गुलु, क्काथ वा दूध में घुल जाता है। वस्त्र से वह छाना जाता है। ऊपर के फोक को फैंक देना चाहिये। वस्त्र से छानने के पश्चात् उसे स्थिर रख दें। गुग्गुलु नीचे बैठ जायगा। उसे मन्द आंच पर वा धूप में सुखा सकते हैं॥ ३८४॥

इति रसेन्द्रसारसंग्रहे प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ विरेकाधिकारः ।

क्षीराब्धेरुत्थितं देवं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् ।
वन्दे धन्वन्तरिं भक्त्या नानागदनिसूदनम् ॥ १ ॥

क्षीरसमुद्र से प्रकट हुए, चतुर्भुजरूप, पीले वस्त्रधारी महाराज धन्वन्तरि जी को मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूं जो नाना रोगों के नाश करने वाले हैं ॥ १ ॥

प्रायशो वपुषः शुद्धिं कृत्वा देयं तदौषधम् ।
अतः पूर्वं चिकित्सायां रेचकौषधमुच्यते ॥ २ ॥

शरीर की शुद्धि करके ही प्रायः उस २ रोग की नाशक औषध दी जाती है, इसलिये चिकित्सा-प्रकरण में सब से प्रथम रेचक अर्थात् दस्त लाने वाली औषध लिखते हैं ॥ २ ॥

अथ इच्छाभेदी रसः--

तुल्यं टङ्कणपारदं समरिचं तुल्यांशकं गन्धकं
विश्वा च द्विगुणा ततो नवगुणं जैपालचूर्णं क्षिपेत् ।
गुञ्जैकप्रमितो रसो हिमजलैः संसेवितो रेचयेत्
यावन्नोष्णजलं पिबेदपि वरं पथ्यञ्च दध्योदनम् ॥ ३ ॥

शुद्ध सुहागा, शुद्ध पारा, मरिच का चूर्ण, शुद्ध आंवलासार गन्धक; प्रत्येक द्रव्य एक एक भाग ले । सोंठ का (कपड़े में से छना) चूर्ण दो भाग तथा शुद्ध जमालगोटे के बीजों का चूर्ण नौ भाग ले । सबसे प्रथम पारे गन्धक की कज्जली बनावे । फिर अन्य द्रव्य उसमें मिला घोटकर जल से एक एक रत्ति की गोली बनाले और शीशी में रखे । इसे इच्छाभेदी रस कहते हैं ।

इस रस की एक रत्ति भर की गोली को शीतल जल के अनुपान से सेवन करने पर कुछ घण्टों के पीछे दस्त आयेंगे। ये दस्त तब तक आते रहेंगे जब तक शीतल जल पीता रहेगा। जब गरम जल पीयेगा तब दस्त बन्द हो जांयगे। दस्त बन्द हो चुकने के बाद पथ्य में दही और चावल खाना चाहिये।

विशेषवचन—रसेन्द्रचिन्तामणि में यही योग थोड़े से भेद से बृहदिच्छाभेदी नाम से कहा है। वहां प्रथम पङ्क्ति इसप्रकार है—

'शुद्धं पारदटङ्कणं समरिचं गन्धाश्मतुल्यं त्रिवृत्।'

बीच में तीसरी और चौथी श्लोकपङ्क्ति अधिक है—

'खल्वे दण्डयुगं विमर्द्य विधिना चार्कस्य पत्रे ततः

स्वेदं गोमयवह्निना च मृदुना स्वेच्छावशाद्भेदकः।'

शेष पाठ मूल के सदृश ही है। इसप्रकार इस योग में एक भाग निसोत डाला जाता है। इसे जल से घोटकर आक के पत्तों में रखकर मन्द मन्द आंच से स्वेद दिया जाता है।

दस्त लेने की विधि यह है कि जब दवाई सेवन से दस्त आने आरम्भ हों तो एक दस्त आने के बाद दो तीन घूंट ठण्डा जल पीलें। इसी प्रकार दस्त आने के बाद ठण्डा जल पीते जाएं। जब दस्त बन्द करने हों तो थोड़ा सा गर्म जल पीलें, बन्द हो जाने के बाद पथ्य सेवन करें। दस्त लेने से एक दिन पूर्व घी मिली खिचड़ी खाकर कोष्ठ स्निग्ध कर लेना चाहिए। बिना स्निग्ध कोष्ठ किए भी अत्यावश्यक हो तो दवा दे देनी चाहिए। इस इच्छाभेदी रस की गोली को चूर्णकर खांड में मिलाकर देना अच्छा है।

गरम जल पीने के पश्चात् यदि चाहें कि दस्त न आय तो एक पहर तक शीतल जल न पीना चाहिये, पीना ही हो तो गरम जल पीवे। शीतल पानी पी लेने पर फिर दस्त आने आरम्भ हो जांयगे।

विशेषवचन—इसकी आधुनिक मात्रा—आधी रत्ती है॥ ३॥

मतान्तरम्—

जैपालाष्टौ द्विको गन्धस्त्रिशुण्ठी मरिचं द्विकम्।
एकः सूतः टङ्कणैको गुञ्जामात्रा वटी कृता॥ ४॥

शूलव्याधिप्रभृतयः कुष्ठैकादश पित्तजाः ।
भगन्दरादिहृद्रोगाः सर्वे नश्यन्ति भक्षणात् ॥ ५ ॥

शुद्ध जमालगोटा ८ भाग, शुद्ध गन्धक दो भाग, सोंठ चूर्ण तीन भाग, मरिच चूर्ण दो भाग, शुद्ध पारा एक भाग तथा शुद्ध सुहागा एक भाग । प्रथम पारा गन्धक की कज्जली कर शेष द्रव्यों को मिला जल से पीसकर एक रत्ति प्रमाण की गोली बनावे। इसको भी उसीप्रकार शीतल जल से खाने से विरेचन होता है । जब दस्त बन्द करने हों तो गरम जल पीवे । इस से शूल आदि पेट के रोग, ग्यारह प्रकार के कुष्ठरोग, पित्त के रोग, भगन्दर आदि तथा हृदय के सब रोग नाश होते हैं । अर्थात् इन रोगों में इससे विरेचन देना श्रेष्ठ होता है ।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—आधी रत्ती ॥४–५॥

अथ गदमुरारिः इच्छाभेदी—

रसबलिगगनार्कं शुद्धतालं विषञ्च
त्रिकटुत्रिफलमेतत् टङ्कणं भृङ्गमेभिः ।
सममिह जयपालोद्भूतचूर्णं विमर्द्य
द्विनिशमनिशमेतद् भृङ्गराजोत्थवारा ॥ ६ ॥
भवति गदमुरारिः स्वेच्छया भेदकोऽयं
हरति सकलरोगान् सन्निपातानशेषान् ।
इह हिं भवति पथ्यं मत्स्यमांसादि सर्वं
घृतविलुलितमस्मिन् भोजनं भूरि देयम् ॥ ७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध वत्सनाभ विष, सोंठ का चूर्ण, कालीमिर्च का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, हरड़ का चूर्ण, बहेड़े का चूर्ण, आंवले का चूर्ण, शुद्ध सुहागा, दारचीनी का चूर्ण; इन सब द्रव्यों को एक एक तोला लें । शुद्ध जमालगोटे का चूर्ण चौदह तोला लें । पहले पारा गन्धक की कज्जली करें । फिर शेष द्रव्यों को मिलाकर

भांगरे के स्वरस में दो दिन तक लगातार खरल करें। इसकी फिर आधी आधी रत्ति भर की गोली बना सुखाकर शीशी में रख लें। यह गदमुरारि रस पूर्ववत् शीतल जल से इच्छानुसार दस्त लाता है। सब रोग तथा सब सन्निपातों का दूर करता है। विरेचन होने के पीछे मत्स्य मांस आदि सब पथ्य है। प्रभूत घी से युक्त भोजन इसमें विशेषतः देना चाहिये ॥ ६—७ ॥

अथ रुक्मिशो रसः—

अभयाचूर्णमादाय नूतनैर्जयपालकैः।
पञ्चमांशेन मिलितैः स्नुहीदुग्धेन मर्दिताः ॥ ८ ॥
गुडिकास्तस्य कर्त्तव्या वर्त्तुलाश्चणकप्रभाः।
पीतैका[1] हन्ति चातङ्कं रेचनैस्तु रसैः सह ॥ ९ ॥
रुक्मिशे न च दाहः स्यान्न च मूर्च्छा भ्रमः क्लमः।
वेगतः सारयेदेषा विशेषादामनाशिनी ॥ १० ॥
निरूहेण तथा नैव तथा बिन्दुघृतेन च।
त्रिवृता न तथा रेच्या यथा स्याद् गुडिकोत्तमा ॥ ११ ॥
अतिशुद्धं भवेद् देहमतिप्रबलमुत्तमम्।
अतिरूपमतिप्रौढमत्यायुष्करमुत्तमम् ॥ १२ ॥
विष्टम्भे गुडिका देया चोदरे दारुणामये।
अधोदेशेषु सर्वेषु गुदेषु च महौषधिः।
दीयते क्षीयते सामः कामकायविवर्द्धनः[2] ॥ १३ ॥

बड़ी हरड़ के छिलके का कपड़छान किया हुआ चूर्ण पांच भाग, नया शुद्ध जमालगोटा एक भाग; दोनों को मिलाकर थोहर (सेहुण्ड) के दूध में

---

१ अत्र 'एकैकस्यास्य टङ्कस्य रेचनैश्च रसैस्तदा' इति पाठः समुपलभ्यते, परमर्थानवबोधकत्वात् पाठान्तरमस्माभिः समुपयोजितम्।

२ अत्र 'कामं कायविशोधनः' इति पठनं साधुतरम्।

घोटकर चने के समान गोली बना ले। एक गोली को विरेचक रसों (द्राक्षा-रस आदि) के साथ सेवन करने से रोग नष्ट होते हैं। इस रुक्मिशरस के सेवन से न तो दाह होता है, न मूर्च्छा, न भ्रम, न क्लम। दस्त वेग से होता है। यह विशेषतः आम को नष्ट करता है। निरूहबस्ति, बिन्दुघृत, त्रिवी (निसोत); इनके प्रयोग से भी ऐसा विरेचन नहीं होता जैसा इससे होता है। इससे देह अति-शुद्ध अति-प्रबल और उत्तम रूपवान् शक्ति-सम्पन्न हो जाता है। यह उत्तम आयु-वर्धक है। यह महौषध कब्ज उदररोग अफारा आदि दारुण रोगों में तथा नीचे के भाग के सब रोगों में एवं भगन्दर बवासीर आदि गुदा के रोगों में दी जाती है। इससे आमदोष क्षय को प्राप्त होता है। यह कामदेव तथा देह की वृद्धि करता है ॥८-१३॥

अथ इच्छाभेदी गुडिका—

पारदं गन्धकं कुर्य्यात् सौभाग्यं पिप्पली समम्।
समानि जयपालानि क्रियन्ते रेचनाय च।
शीतेन रेचयेत् सम्यगुष्णेनैव प्रशाम्यति॥ १४ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, पिप्पली का चूर्ण सब सम भाग लें। पहले कज्जली करें। फिर शेष द्रव्यों को घोट कर सबके समान शुद्ध जमालगोटे का चूर्ण डाल घोट लें। इस रसको एक रत्ति भर लेकर कुछ खांड मिलाकर शीतल जल से दें तो अच्छा रेचन होता है। जब दस्त बन्द करने हों तो गरम जल पीलें।

विशेषवचन—यतः नाम में गुडिका कहा है अतः जल से घोटकर एक एक रत्ती की गोलियां बनालें ॥ १४ ॥

अन्यश्चेच्छाभेदी रसः—

शुण्ठीमरिचसंयुक्तं रसगन्धकटङ्कणम्।
जैपालास्त्रिगुणाः प्रोक्ताः सर्वमेकत्र चूर्णयेत्[1] ॥ १५ ॥
इच्छाभेदी द्विगुञ्जः स्यात् सितया सह दापयेत्[2]।

१ 'पेषयेत्' पा०। २ 'पाययेत्' पा०।

यावन्तश्चुल्लुकाः पीतास्तावद्वारान् विरेचयेत् ॥
तक्रौदनं खादितव्यमिच्छाभेदी यथेच्छया ॥ १६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोंठ चूर्ण, मिरच चूर्ण, शुद्ध सुहागा; प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग लें और शुद्ध जमालगोटे का चूर्ण तीन भाग लें। पहले कज्जली करें फिर शेष द्रव्यों को मिला पीसकर दो रत्ति भर की गोली बना लें। इस इच्छाभेदी रस को दो रत्ति भर ले कुछ खांड या मिश्री मिला कर देवे। ऊपर से जितने घूंट जल पीयेगा उतनी वार विरेचन होगा। पथ्य में छाछ और चावल खाना चाहिये।

विशेषवचन—इसका इच्छाभेदी नाम इसीलिये है कि इच्छानुकूल दस्त लाता है। कोमल प्रकृति वालों को इसकी मात्रा डेढ़ रत्ति भर दें और कठोर कोष्ठ वालों को दो रत्ति भर। जब दस्त बन्द करने हों तो रोगी गरम जल पीले। फिर एक पहर तक ठण्डा जल न पीवे। पीछे पथ्य खा ले ॥१५-१६॥

अथ पुष्परेचनी गुडिका—

देवदाली स्वर्णपुष्पं गुडेन गुडिका कृता।
गुदमध्ये प्रदातव्या[2] पातयेच्च महागदम् ॥ १७ ॥
अधश्च साममायाति पुनः सा दीयते गुदे।
प्रक्षाल्य वारिणा चैषा वारं वारं प्रयच्छयते[3] ॥ १८ ॥
अनेन क्रमयोगेन मलःसामोविरेच्यते[4]।
जायते सकलं देहं शुद्धवर्णं निरामयम् ॥ १९ ॥

बंदाल डोडा, अमलतास का गूदा दोनों एक २ भाग गुड़ दो भाग लें। सबको कूट पीसकर गोली बनावें। यह गोली गुदा में रखने से विरेचन कराके महारोग वा अर्श को दूर करती है। दस्त होने के साथ ही आम के समेत गोली भी बाहर आ जाती है। उसे जल से धोकर फिर गुदा में रखें।

---

१ 'तावद्वेगाद्' पा०। २ 'प्रदेयैषा' पा०। ३ 'प्रयच्छति' पा०। ४ 'मलमामविरेचनम्' पा०।

(अथवा गुदा को जल से धोकर पुनः नयी गोली रखे—यह अर्थ शुद्धता का सूचक भी है)। इसप्रकार वार २ रखने से मल और दस्त द्वारा आमयुक्त मल बाहर निकल जाता है और देह शुद्ध-वर्ण और नीरोग होजाता है।

विशेषवचन—इसे लम्बी बत्ती के समान बना लें जिसके दोनों प्रान्त गोल हों जिससे गुदा में प्रविष्ट हो सके ॥ १७—१६ ॥

अथ सर्वाङ्गसुन्दरो रसः—

शुद्धसूतश्च गन्धश्च विषश्च जयपालकम् ।
कटुत्रयश्च त्रिफला टङ्कणश्च समांशकम् ॥ २० ॥
अस्य मात्रा प्रयोक्तव्या गुञ्जात्रयसमा ततः ।
सर्वेषु ज्वररोगेषु सामवाते विशेषतः ॥ २१ ॥
नाशयेत् श्वासकासश्च अग्निमान्द्यं विशेषतः ।
ब्रह्मणा निर्मितः पूर्वं रसः सर्व्वाङ्गसुन्दरः ॥ २२ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, शुद्ध जमालगोटा, सोंठ चूर्ण, मिरच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, हरड़ चूर्ण, बहेड़ा चूर्ण, आंवला चूर्ण, शुद्ध सुहागा; सबको सम भाग ले। प्रथम विष और जमालगोटे का चूर्ण डालकर जल से खूब घोटे। पश्चात् पारा गन्धक की कज्जली और टङ्कण डालकर उसमें मिला दें। और अन्त में शेष चूर्ण देकर अच्छी प्रकार घोटकर तीन रत्ति प्रमाण गोली बनालें। इसके प्रयोग से सर्व ज्वर विशेष कर आमवातयुक्त ज्वर नाश होते हैं। श्वास कास विशेषकर अग्निमांद्य को भी यह नष्ट करती है। यह रस ब्रह्मा ने पूर्व बनाया था। इसका नाम सर्वाङ्गसुन्दर रस है।

विशेषवचन—आजकल के अनुसार इसकी दो रत्ति की मात्रा देनी चाहिए ॥ २०–२२ ॥

निषिद्धविरेचकानाह—

बालवृद्धकृशक्षीण-पीनसार्त्तभयार्दिताः ।
रूक्षशोषतृषायुक्ताः गर्भिणी च नवज्वरी ॥ २३ ॥
अधो गच्छति यस्यासृक् सूतिकाऽऽतङ्कपीडिता ।

नैते विरेकयोग्याः स्युरन्येषाञ्च बलाबलम् ॥ २४ ॥
नवज्वरे च ये योगाः भेदकाः परिकीर्त्तिताः ।
ते तथैव प्रयोक्तव्याः वीक्ष्य देहमलादिकम्[1] ॥ २५ ॥

बालक, बूढ़े, पतले, क्षीण, पीनस(प्रतिश्याय)रोगी, डरपोक, रूखे, शोष(यक्ष्मा) रोगी, प्यासे, गर्भिणी स्त्री, नये ज्वर वाले, जिसके गुदा योनि आदि नीचे के भाग से खून निकले, सूतिकारोग वाली स्त्री; इनको विरेचन न देवे। अन्यों को बलाबल देखकर देवे। (यद्यपि नवज्वर में विरेचन का निषेध है परन्तु) नवज्वर में जो भेदक (विरेचक) योग कहे हैं उन्हें उक्त प्रकार से ही शरीर और दोष आदि को देखकर यथायोग्य मात्रा में प्रयोग करना चाहिए ॥ २३-२५ ॥

[इति विरेकाधिकारः]

अथ ज्वरचिकित्सा।

नवज्वराङ्कुशः--

क्रमेण वृद्धान् रसगन्धहिङ्गुलान्
नैकुम्भबीजान्यथ दन्तिवारिणा।
पिष्ट्वाऽस्य गुञ्जा[2]ऽभिनवज्वरापहा
जलेन[3] चाद्या सितया प्रयोजिता ॥ १ ॥

शुद्ध पारा एक भाग, गन्धक दो भाग, शुद्ध शिंगरफ तीन भाग, शुद्ध जैपालबीज चार भाग। सबसे पहिले पारा गन्धक की कज्जली बनावें। फिर शिंगरफ़ मिलाकर घोटें। पश्चात् जैपालबीज चूर्ण मिलाकर दन्तीमूल के क्वाथ

---

१ 'देहबलादिकम्' इति पा०।

२ 'गुञ्जा हि नवज्वरापहा' पा०।

३ 'जलेन चार्द्रा सितया प्रयोजिता' इति पाठः प्रचरति। 'जलेन सार्द्धं सितया प्रयोजिता' इति केचित् पठन्ति।

से पीसकर एक रत्ति प्रमाण की गोली बनावे। प्रयोग के समय एक गोली को पीसकर उसमें थोड़ी सी खांड मिलालें और जल के साथ दें। कई गोली को खांड के शरबत के साथ भी दे देते हैं। इस गोली को दिनभर में एक वार ही दें। इससे शीघ्र नया ज्वर दूर हो जाता है।

विशेषवचन--इस योग को ही भावप्रकाश में ज्वरघ्नी वटिका नाम से और रसप्रकाशसुधाकर में ज्वराररिस नाम से कहा है।

रसरत्नसमुच्चय में भी एक योग है जो वृद्धज्वराङ्कुश वा हिङ्गुलेश्वर नाम से है। पाठ यह है--

'रसहिङ्गुलजैपालैर्वृद्ध्या दन्त्यम्बुर्दितः।
दिनार्धेन ज्वरं हन्याद्गुञ्जैकं सितया सह॥'

यहां गन्धक नहीं कही गयी। परन्तु पारद बिना गन्धक के योग के हानिकर होता है अतएव अनुक्त भी गन्धक यहां देना ही चाहिए और पारद के साथ क्रम में गन्धक यतः दूसरा द्रव्य है अतः गन्धक के दो भाग ही लें। इस प्रकार यह पूर्वोक्त ज्वरघ्नी ज्वरारि वा नवज्वराङ्कुश का नामान्तरमात्र ही है।

अभिनव ज्वर में सामान्यतः विरेचन का एकदम निषेध है। इसलिए दोषों को तथा ज्वर को समझ कर सात आठ दिन बाद विरेचन देना प्रशस्त है। परन्तु यदि कई दिन से कोष्ठबद्धता हो और उससे ज्वर हो गया हो तब तो तुरन्त इस रस को दे देना चाहिए। यह नियम सर्वत्र स्मरण रखकर नवज्वर में विरेचन देना उचित है। "पिष्ट्वा" का अर्थ पीसना ही है। संस्कृत टीकाकार ने जो "पिष्ट्वा" का अर्थ सात भावना देना लिखा है ठीक नहीं है, ना ही वैद्यसम्मत है॥ १॥

हिङ्गुलेश्वरो रसः--

तुल्यांशं मर्दयेत् खल्ले पिप्पलीं हिङ्गुलं विषम्।
द्विगुञ्जा मधुना देया वातज्वरनिवृत्तये॥ २॥

पिप्पली का चूर्ण, शुद्ध शिंगरफ़, शुद्ध विष; तीनों को समभाग लेकर

पीसकर जल से दो रत्ति भर की गोली बनाकर रखें। इसे वातज्वर में शहद के साथ देने से ज्वर निवृत्त होता है।

विशेषवचन—इस रस को बनाते समय सब से पूर्व शुद्ध विष (वत्सनाभ) को चूर्णकर खरल में डाल दें और उसमें थोड़ा सा जल देकर अच्छी तरह घोटें। जब वह एकसा नरम होजाय तब शुद्ध शिंगरफ़ डालकर सम्यक्तया मर्दन करें। और अन्त में पिप्पली चूर्ण डाल घोटकर गोलियां बना लें।

इस रस का अन्य पुस्तक में पाठभेद है 'द्विगुञ्जा' के स्थान में 'गुञ्जार्द्धा' पाठ है। अर्थात् आधी रत्ति भर की गोली बनावें। यही ठीक भी है। यह आधी रत्ति की गोली चार २ घण्टे के अन्तर से दिन में तीन चार बार तक भी दे सकते हैं। नवज्वर-संयुक्त आमवात भी इससे आराम होता है। वातज्वर मलेरिया तथा बारी से आनेवाले ज्वरों में ज्वरवेग को कम करने में यह अच्छा काम देता है। इसका प्रयोग वातज्वर में तो होता ही है परन्तु यदि वात के साथ कफ का संसर्ग भी हो तो भी इसे दे सकते हैं। अनुपान में अदरक का रस बढ़ाया जा सकता है ॥ २ ॥

ज्वरधूमकेतू रसः—

भवेत् समं सूतसमुद्रफेनहिङ्गूलगन्धं परिमर्द्य यत्नात्[1]।
नवज्वरे वल्लमितं[2] त्रिघस्त्रमार्द्राम्बुणा[3]ऽयं ज्वरधूमकेतुः ॥३॥

शुद्ध पारा, शुद्ध समुद्रफेन, शुद्ध शिंगरफ, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर शेष द्रव्यों को मिला अदरख के रस में तीन दिन तक घोटकर डेढ़ रत्ति प्रमाण गोली बनावे। यह ज्वरधूमकेतु रस कहाता है। नवज्वर में इसका प्रयोग कराना चाहिए

विशेषवचन—वल्ल के अर्थ तीन रत्ति, दो रत्ति और डेढ़ रत्ति ये तीनों ही हैं। परन्तु आजकल के बलाबल को ध्यान में रख के इस रसेन्द्रसारसंग्रह की टीका में सर्वत्र वल्ल का अर्थ डेढ़ रत्ति ही मानकर किया

---

१ 'यामम्' इति रसेन्द्रचिन्तामणौ पाठः।
२ 'वल्लमितस्त्रिघस्र०' 'वल्लयुगं त्रिघस्र०' पा०।
३ 'त्रिघस्रमार्द्राम्भसायं' र० चि० पाठः।

है। इसे दिन भर में तीन वार दे सकते हैं। अनुपान—अदरक का रस और मधु आदि। यह ज्वर के वेग को कम करती है। इससे थोड़ा २ पसीना आता है तथा ज्वर क्रमशः कम होजाता है।

समुद्रफेन का शोधन—सब से पूर्व समुद्रफेन के ऊपर के कठिन अस्थिभाग को हटा देना चाहिये। पश्चात् खरल में पीस लें और नीबू के रस से एक बार अच्छी प्रकार मर्दन कर लें। कहा भी है—

'अशुद्धः स करोत्यङ्गभङ्गं तस्माद्विशोधयेत्।
समुद्रफेनः सम्पिष्टो निम्बुतोयेन शुध्यति॥' ३॥

मृत्युञ्जयो रसः—

अव्यक्तः सिद्धिदः शुद्धो रोगघ्नः कीर्त्तिवर्द्धनः।
यशःप्रदः शिवः साक्षात् मृत्युञ्जयरसः स्मृतः॥ ४॥
विषस्यैकस्तथा भागो मरिचं पिप्पलीकणः।
गन्धकस्य तथा भागो भागः स्यात् टङ्कणस्य च॥ ५॥
सर्वत्र समभागः स्यात् हिङ्गुलन्तु द्विभागिकम्।
चूर्णयेत् खल्लमध्ये तु मुद्गमानां वटीं चरेत्॥ ६॥
जम्बीरस्य रसेनात्र कार्य्यं हिङ्गुलशोधनम्।
रसश्चेत् समभागः स्यात् हिङ्गुलं नेष्यते तदा॥ ७॥
गोमूत्रशोधितश्चात्र विषं सौरविशोधितम्।
मृत्युरूपं ज्वरं हन्ति मृत्युञ्जयरसः स्मृतः॥ ८॥
मृत्युर्विनिर्जितो यस्मात्तेन मृत्युञ्जयो रसः।
मधुना लेहनं प्रोक्तं सर्वज्वरनिवृत्तये॥ ९॥

---

१ 'द्विभागं हिङ्गुलं भवेत्' पा०।

२ 'भाव्यं हिङ्गुलशोधितम्' पा०।

दध्युदकानुपानेन वातज्वरनिबर्हणः।
आर्द्रकस्य रसैः पानं दारुणे सान्निपातिके ॥ १० ॥
जम्बीरद्रवयोगेण अजीर्णज्वरनाशनः[1]।
अजाजीगुडसंयुक्तो विषमज्वरनाशनः ॥ ११ ॥
तीव्रज्वरे महाघोरे पुरुषे यौवनान्विते।
पूर्णमात्रा प्रदातव्या पूर्णं वटीचतुष्टयम् ॥ १२ ॥
स्त्रीबालवृद्धक्षीणेषु चार्द्धमात्रा प्रकीर्त्तिता।
अतिवृद्धे च क्षीणे च शिशौ चाल्पवयस्यपि ॥ १३ ॥
तुर्य्यमात्रा प्रदातव्या व्यवस्थासारनिश्चिता।
नवज्वरे[2] महाघोरे यामैकात् नाशयेद् ध्रुवम् ॥ १४ ॥
मध्यज्वरे तथा जीर्णे त्रिरात्रात् नाशयेद् ध्रुवम्।
सप्ताहात् सन्निपातोत्थं ज्वराजीर्णकसंज्ञकम् ॥ १५ ॥

मृत्युञ्जय रस अव्यक्त (ज्वरचिकित्सा का आत्मा), सिद्धिदाता, शुद्ध रोगनाशक, कीर्त्तिवर्धक, यशःप्रद तथा साक्षात् शिव अर्थात् कल्याणदाता है। शिव भी अव्यक्त, आठ सिद्धियों का देने वाला, शुद्ध, भवरोगनाशक, कीर्त्तिवर्द्धक तथा यश देने वाला है।

शुद्ध विष, मिरच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा; प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग, शुद्ध हिंगुल दो भाग लें। सबको खरल में जल से (अथवा योगरत्नाकर के अनुसार अदरक[3] के के रस से) पीस मूंग के दाने

---

१ 'जीर्णज्वरविनाशनः' इति केचिदिच्छन्ति योगरत्नाकरसंवादात्।

२ 'नवज्वरे प्रदाने च यामैकान्नाशयेज्ज्वरम्।' इत्यन्यत्र पाठः।

३ 'वत्सनाभं गन्धकं च मरिचं टङ्कणं कणा। एकैकं भागमादाय द्विभाग हिङ्गुलं भवेत्। आर्द्रकस्वरसेनैव मुद्गमानां वटीं चरेत्। मधुना लेहनं प्रोक्तं सर्वज्वरविनाशनम्।' इत्यादि योगरत्नाकरे।

के समान गोली बना लें।

इस मृत्युञ्जय रस में हिङ्गुल को जम्बीरी नीबू के रस से शुद्ध करके डाले, यदि हिङ्गुल के स्थान में शुद्ध पारा डालना चाहें तो गन्धक के समभाग ही अर्थात् एक भाग शुद्ध पारा डालें और पारा गन्धक की कज्जली करलें। वत्सनाभ विष को गौमूत्र में शुद्धकर और धूप में सुखाकर डालें।

यह रस मृत्युरूप ज्वर को हरता है इस कारण इसे मृत्युञ्जय रस कहते हैं। अथवा इससे मृत्यु अर्थात् ज्वरादि रोगों से होने वाली अकाल मृत्यु जीती गई है इसलिए इसे मृत्युञ्जय रस कहते हैं।

इसे शहद में मिला चाटने से सब प्रकार के ज्वर निवृत्त होते हैं। दही के जल के अनुपान से दें तो वातज्वर निवृत्त होता है। अदरक के रस के साथ पीने से दारुण सन्निपात दूर होता है। जम्बीरी नीबू के रस से अजीर्ण-ज्वर नाश होता है। जीरे और पुराने गुड़ के साथ देने से विषमज्वर नष्ट होता है।

ज्वर का वेग तेज़ हो, ज्वर महाघोर हो, पुरुष भी जवान हो तो इस रस की पूर्णमात्रा दे सकते हैं। पूर्ण मात्रा चार गोली तक है। स्त्री, बालक, वृद्ध, क्षीण इनको दिन भर में आधी मात्रा (२ मूंग) अर्थात् एक वार में मूंग से आधी गोली (चार बार तक) दे सकते हैं। अतिवृद्ध अतिक्षीण तथा छोटे बालकों को भी चौथाई मात्रा (१ मूंग) दिन भर में दी जा सकती है परन्तु एक वार में एक मूंग की चौथाई मात्रा देनी चाहिए। महाघोर नवीन ज्वर का वेग इसके सेवन से एक पहर भर में निश्चित कम हो जाता है। मध्यम ज्वर अर्थात् बहुत तेज़ न हो ऐसे ज्वर में और जीर्णज्वर में इसे दें तो तीन दिन में ज्वर नाश होता है। सन्निपात और अजीर्णज्वर को एक सप्ताह में नाश करता है।

विशेषवचन—अव्यक्त कहने से मृत्युञ्जयरस-पक्ष में अव्यक्तराग यह अर्थ भी कर सकते हैं। अव्यक्तराग का अभिप्राय ईषत् लोहित वर्ण होता है।

उक्त ज्वरावस्थाओं के अतिरिक्त तन्त्रान्तरों में इसे वातपैत्तिक ज्वर या दाह में भी प्रयुक्त करने को कहा है परन्तु शर्त यह है कि रोगी क्षीण न हो और कफ की प्रबलता न हो। अनुपान खांड और नारियल का जल है।

इस रस के निर्माण में भी प्रथम शुद्ध वत्सनाभविष को चूर्ण कर जल से इतना घोटना चाहिए कि झाग झाग होजाय । ऐसा ही सर्वत्र समझना चाहिए। पश्चात् हिंगुल आदि अन्य द्रव्य उचित क्रम से मिलाकर घोटने चाहिएं। तब यह अल्प मात्रा में भी अधिक कार्यकर होता है ।

सान्निपातिक ज्वर की प्रथमावस्था में तथा ऐकाहिक आदि ज्वरों में जब तापपरिमाण अधिक हो, शिर भारी हो वा शिर में शूल हो तो दिन में दो या तीन बार दे सकते हैं। यदि कोष्ठबद्धता हो तो अनुपान कोसा अदरक का रस और मधु होना चाहिये । अन्यथा पान के रस और मधु के साथ भी दिया जा सकता है । यदि सन्निपात ज्वर में श्वास हिक्का आदि लक्षण हों तो न दे। शिशु गर्भिणी राजयक्ष्मा आदि रोग से आक्रान्त क्षीण पुरुषों को इसका सेवन न कराना चाहिये ।

मध्यज्वर में या जब ज्वर निराम हो रहा हो, भूख पूरी न लगती हो, शरीर भारी हो तो भी वैद्य इसे देते हैं। ऐसे समय अनुपान पिप्पलीचूर्ण और मधु होना चाहिये ।

जीर्ण और विषम ज्वर में भी इसे देने को कहा है परन्तु यदि तापांश अधिक हो, अन्न आदि न पचता हो, शोथ आदि उपद्रव न हों तभी इसका सेवन करायें। जीर्णज्वर में पिप्पली चूर्ण और मधु के साथ दे सकते हैं। विषमज्वर में इस रस का अनुपान मूल में स्पष्ट कहा ही है ।

गुरुपाक वा मात्राधिक भोजन से उत्पन्न ज्वर में भी इसका प्रयोग किया जाता है । अनुपान ऊपर बताया ही गया है ॥ ४-१५ ॥

जयावटी—

विषं त्रिकटुकं मुस्तं हरिद्रा निम्बपत्रकम् ।
विडङ्गमष्टमं चूर्णं छागमूत्रैः समं समम् ॥
चणकाभा वटी कार्य्या स्यात् जया योगवाहिका ॥ १६ ॥

शुद्ध विष, सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, मोथा चूर्ण, हल्दी चूर्ण, नीम के पत्तों का चूर्ण, वायविडंग का चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग ले और जयन्ती की जड़ का चूर्ण सबके समान अर्थात् आठ भाग डाले ।

सब को पीस कर बकरी के मूत्र में घोट कर चने के समान (दो रत्ती की) गोली बनावें। यह जयावटी योगवाही है अर्थात् जिस अनुपान से दें वैसा ही गुण करती है।

विशेष वचन—जयन्ती योगवाही होती है अतएव ही इस योग में उसे सम्पूर्ण चूर्ण के समान डाला गया है। यह रस पैत्तिक एवं रक्तपित्त से उत्पन्न होने वाले ज्वरों में अतीव प्रशस्त है ॥ १६ ॥

जयन्तीवटिका—

विषं पाठाऽश्वगन्धा च वचा तालीशपत्रकम् ।
मरिचं पिप्पली निम्बमजामूत्रेण तुल्यकम् ॥
वटिका पूर्ववत् कार्य्या जयन्ती योगवाहिका ॥ १७ ॥

शुद्ध विष, पाठा(पाढ़)चूर्ण, असगन्ध चूर्ण, बच का चूर्ण, तालीश-पत्र का चूर्ण, मिरच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, नीम के पत्तों का चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग लें और सब के समान (आठ भाग) जयन्ती की जड़ का चूर्ण डाल सब को मिला बकरी के मूत्र में पीस कर चने के समान गोली बनालें। यह जयन्ती वटी भी योगवाही है। अर्थात् सब रोगों को भिन्न २ अनुपानों से दूर करती है ॥ १७ ॥

जयाजयन्ती-वटीप्रयोगविधिः ।

जयन्ती वा जया वाऽथ क्षीरैः पित्तज्वरापहा ।
मुद्गामलकयूषेण पथ्यं देयं घृतं विना ॥ १८ ॥
जयन्ती वा जया वाऽथ सक्षौद्रमरिचान्विता ।
सन्निपातज्वरं हन्ति रसश्चानन्दभैरवः ॥ १९ ॥
जयन्ती वा जया वाऽथ विषमज्वरनुद्घृतैः ।
सर्वज्वरं मधुव्योषैः गवां मूत्रेण शीतकम् ॥ २० ॥
चन्दनस्य कषायेण रक्तपित्तज्वरापहा ।
जयन्ती वा जया वाऽथ माक्षिकेण च कासाजित् ॥ २१ ॥

जयन्ती वा जया क्षीरैः पाण्डुशोथविनाशिनी ॥ २२ ॥
जयन्ती वा जया वाऽथ तण्डुलोदकपानतः ।
अश्मरीं हन्ति नो चित्रं मूत्रकृच्छ्रन्तु दारुणम् ॥ २३ ॥
जयन्तीं वा जयां वाऽथ गोमूत्रेण युतां पिबेत् ।
हन्त्याशु काकणं कुष्ठं सुलेपेन च तद् द्रुतम् ॥ २४ ॥
द्विनिष्कं केतकीमूलं पिष्ट्वा तोयेन पाययेत् ।
जयन्ती वा जया वाऽथ मेहं हन्ति सुराह्वयम् ॥ २५ ॥
जयन्ती वा जया वाऽथ मधुना मेहजिद्भवेत् ।
लोध्रमुस्ताऽभयातुल्यं कट्फलञ्च जलैः सह ॥
क्वाथयित्वा पिबेच्चानु मधुना सर्वमेहजित् ॥ २६ ॥
जयन्तीं वा जयां वाऽथ गुडैः कोष्णजलैः पिबेत् ।
त्रिदोषोत्थं हरेद् गुल्मं रसश्चानन्दभैरवः ॥ २७ ॥
जयन्ती वा जया हन्ति शुण्ठ्या सर्वं भगन्दरम् ।
जयन्ती वा जया वाऽथ तक्रेण ग्रहणीप्रणुत् ॥ २८ ॥
जयन्ती वा जया वाऽथ रसश्चानन्दभैरवः ।
रक्तपित्ते त्रिदोषोत्थे शीततोयेन पाययेत् ॥ २९ ॥
जयन्ती वा जया वाऽथ भृङ्गद्रावैर्निशान्ध्यनुत् ।
जयन्तीं वा जयां वाऽथ घृष्ट्वा स्तन्येन चाञ्जयेत् ।
स्रावणं सर्वदोषोत्थं मांसवृद्धिश्च नाशयेत् ॥ ३० ॥

जयावटी या जयन्ती वटी दोनों में से किसी एक को भी दूध के साथ दें तो पित्तज्वर नाश होता है। इसके साथ ही मूंग और आंवले का रस बना कर बिना घी डाले पथ्य देना चाहिये ।

जया वा जयन्ती को शहद और काली मिरच के चूर्ण के साथ मिलाकर दें तो सन्निपात दूर होता है (इसी प्रकार आनन्दभैरव रस भी सन्निपात को दूर करता है)। जया और जयन्ती को घी के साथ दें तो विषमज्वर दूर होता है। सोंठ, मिरच, पिप्पली के चूर्ण तथा शहद से मिला कर दें तो सब ज्वर दूर होते हैं। गौ के मूत्र के साथ दें तो शीतज्वर शान्त होता है। लालचन्दन के क्वाथ से दें तो रक्तपित्त ज्वर दूर होता है। शहद से दें तो खांसी नष्ट होती है। इन्हें दूध के साथ दें तो पाण्डु एवं शोथरोग नाश होते हैं। यदि तण्डुलोदक से (अर्थात् कच्चे चावलों को ६ गुने जल में भिगो कर उस जल से) दें तो पथरी तथा भयङ्कर मूत्रकृच्छ्र निःसंशय नाश होते हैं। गोमूत्र से रोगी पीवे तो काकण कुष्ठ दूर होता है। इसी जया वा जयन्ती को यदि गोमूत्र से घिस कर लेप भी करें तो कुष्ठ और भी शीघ्र अच्छा होता है। केतकी की जड़ दो निष्क (२ शाण) भर लें और उसे जल से पीस उस के साथ इस गोली को खिलावें तो सुरामेह को दूर करती है। इस गोली को मधु के साथ खावें तो प्रमेह को दूर करती है। इसी जया वा जयन्ती को खाकर अनुपान रूप में लोध, मोथा, कायफल और हरड़ इन चारों को समभाग ले क्वाथ बना के शीतल होने पर शहद मिला कर पीवें तो सब प्रमेह नाश होते हैं। इसी जया वा जयन्ती को पुराने गुड़ तथा कांसे जल से पीवे तो त्रिदोषजनित गुल्म नष्ट होता है। (इसी प्रकार गुल्म रोग में आनन्दभैरव रस भी लाभ करता है)। इसी गोली को सोंठ से खावें तो सब प्रकार का भगन्दर दूर होता है। इसे तक्र के साथ पीवें तो ग्रहणी-रोग नाश होता है। इसी जया वा जयन्ती को शीतल जल से दें तो त्रिदोषज रक्तपित्त में लाभ होता है। [आनन्दभैरव रस से भी लाभ होता है]। जया वा जयन्ती को भांगरे के रस से अञ्जन करें तो अन्धराता रोग दूर होता है। इसी गोली को स्त्री के दूध से घिस कर आंखों में डालें या अञ्जन करें तो आंखों से पानी जाने का रोग तथा सर्वदोषज मांसवृद्धि रोग (अधिमांसार्म प्रभृति) आराम होता है।

विशेषवचन--जया वा जयन्ती वटी को सब प्रकार के नवीन ज्वरों में सन्निपात ज्वर की प्रथमावस्था में दुर्जल ज्वर में जब आम परिपक्व न हो,

दाह प्यास गर्मी अग्निमान्द्य हो, तापपरिमाण अधिक हो तो दिन में दो या तीन बार दे सकते हैं। यदि ज्वर में तन्द्रा कास और सर्दी प्रभृति लक्षण हों या सन्निपात में श्वास हिक्का आदि उपद्रव हों तो उतना लाभकर नहीं। अनुपान ऊपर कहे ही गये हैं। उन के अतिरिक्त मृत्युञ्जय रस में निर्दिष्ट अनुपानों से भी इसे दे सकते हैं। यदि रोगी को ज्वर के साथ साथ दिन में दो तीन बार दस्त आते हों तो इसे ईषद्भृष्ट जीरक चूर्ण और मधु के साथ देना चाहिये।

मध्य-ज्वर और जीर्ण एवं विषमज्वर में भी मृत्युञ्जय रस में बताये गये अनुपानों से दे सकते हैं।

नये वा पुराने ऊर्ध्वग रक्तपित्त में अथवा वातिक पैत्तिक वा क्षतज कास रोग में यदि ज्वर अल्प हो तापांश १००° से १०१° तक हो और रोगी सबल हो तो इसे सेवन करावें। अनुपान ऊपर कहे ही हैं।

नूतन पाण्डुरोग में यदि शोथ हो अथवा नूतन शोथ रोग की सज्वर वा विज्वर अवस्था में इसका प्रयोग होता है। इसीप्रकार अन्यत्र भी ऊहा द्वारा इसका प्रयोग करा सकते हैं ॥ १८-३० ॥

भस्मेश्वरयोगः—

भस्म षोडशनिष्कं स्यादारण्योपलकोद्भवम् ।
निष्कत्रयञ्च मरिचं विषनिष्कञ्च चूर्णयेत् ॥ ३१ ॥
अयं भस्मेश्वरो नाम सन्निपातनिकृन्तनः ।
पञ्चगुञ्जामितं खादेदार्द्रकस्य रसेन तु ॥ ३२ ॥

जंगली उपलों की राख सोलह निष्क (८ तोला), मिरच चूर्ण तीन निष्क (१॥ तोला), शुद्ध विष एक निष्क (आधा तोला) तीनों को घोट कर जल से पांच रत्ति की गोली बना ले। अदरक के रस के साथ देने से यह सन्निपात ज्वर के वेग को कम करता है। इसका नाम भस्मेश्वर योग है।

विशेष वचन—इस योग की आधुनिक मात्रा—१ रत्ती जाननी चाहिये। योगरत्नाकर में तो इस योग को यदि ठण्डा पसीना आता हो तो वहां देने

के लिये कहा है। इतनी विशेषता उस में अवश्य है कि वहां धतूरे के रस की भावना भी कही है और उद्धूलन प्रकरण में पढ़ा है। पाठ इसप्रकार है—

'विषभागो भवेदेको मरिचात् त्रिगुणो मतः।
आरण्योपलजं भस्म षोडशांशसमन्वितम्॥
एकत्र मिलितं चूर्णं धूर्तस्वरसभावितम्।
आतपे शोषितं तच्च शीतस्वेदहरं परम्' ॥ ३१–३२ ॥

स्वच्छन्दभैरवरसः—

ताम्रभस्म विषं हेम्नः शतधा भावितं रसैः।
गुञ्जार्द्धं सन्निपातादि–नवज्वरहरं परम्॥ ३३॥
आर्द्राम्बुशर्करासिन्धुयुतः स्वच्छन्दभैरवः।
इक्षुद्राक्षासितांश्चापि दधि पथ्यं रुचौ ददेत्॥ ३४॥

विशुद्ध ताम्रभस्म, शुद्धविष; दोनों को समभाग ले पीसें। फिर धतूरे के रस से सौ बार भावित कर आधी रत्ती की गोली बना कर रखें। यह सन्निपात आदि तथा नये ज्वर के वेग को कम करती है। अदरक के रस शक्कर और सेंधा नमक से मिला कर स्वच्छन्दभैरव रस को देना चाहिये। रुचि हो तो रोगी को गन्ने का रस, किशमिश, मिश्री तथा दही आदि पथ्य देवें।

विशेष वचन—आधुनिक मात्रा–१ सर्षप ॥ ३३–३४ ॥

ज्वरमुरारिरसः—

हिङ्गुलश्च विषं व्योषं टङ्गणं नागराभये।
जयपालसमायुक्तं सद्यो ज्वरविनाशनम्॥ ३५॥

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध विष, सोंठ चूर्ण, मिरच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध सुहागा, सोंठ चूर्ण, हरड़ चूर्ण; प्रत्येक १ भाग, शुद्ध जमालगोटा सब के समान। इन्हें मर्दन कर जल से १ रत्ति प्रमाण की गोली बनावे। इसके यथाविधि प्रयोग से विरेचन होकर ज्वर शीघ्र उतर जाता है।

१–'गुञ्जार्द्धांशं जयेत् सन्निपातं वाभिनवं ज्वरम्' र. चि. पाठः।
२–'इक्षुद्राक्षासितैर्वारि' पा०।

विशेष वचन--सोंठ दो बार लिखी है अतः दो भाग लेनी चाहिये। इसमें अनुपान के तौर पर अदरक का रस प्रयुक्त होता है। कई यहां पर जमालगोटे को भी एक भाग ही लेने को कहते हैं परन्तु प्राचीन वृद्ध वैद्यों के मतानुसार शेष द्रव्यों के चूर्ण के समान ही लेना ठीक होगा। यदि हरड़ न डालें तो यह बृहद्धिङ्गुलेश्वर नाम से भैषज्यरत्नावली में योग है ॥ ३५ ॥

नवज्वरेभाङ्कुशः—

सगन्धटङ्कं रसं१तालकञ्च विमर्दितं भावय मीनपित्तैः ।
दिनत्रयं वल्ल२मितं प्रदद्यात् वृन्ताकतक्रौदनमेव पथ्यम् ।
नवज्वरेभाङ्कुशनामधेयः क्षणेन घर्मोद्गममातनोति ॥३६॥

शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, शुद्ध सुहागा, शुद्ध हड़ताल; प्रत्येक द्रव्य सम-भाग लें। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिला कर पीसें। पश्चात् तीन दिन तक रोहू मछली के पित्त से इसको भावित करें। फिर इसकी डेढ़ रत्ति भर की गोली बना लें। इस के प्रयोग से शीघ्र ही पसीना आ जाता है। इसमें पथ्य बेंगन और तक्र तथा चावल देने चाहियें। इसका नाम नवज्वरेभाङ्कुश है।

विशेष वचन-- इसकी आजकल की मात्रा एक रत्ति है। यह प्रायः श्लैष्मिक ज्वर तथा पित्तश्लैष्मिक ज्वर में प्रयुक्त होता है ॥ ३६ ॥

त्रैलोक्यडम्बररसः—

सूतार्कगन्धचपलाजयपालतिक्ता
पथ्या त्रिवृच्च विषतिन्दुकजं समांशम् ।
स३म्मर्द्य वज्रिपयसा मधुना द्विगुञ्ज४ः
त्रैलोक्यडम्बर५रसोऽभिनवज्वरघ्नः ॥ ३७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, पिप्पलीचूर्ण, शुद्ध जमालगोटा, कुटकी चूर्ण, हरड़ चूर्ण, त्रिवी(निसोत)चूर्ण तथा शुद्ध कुचले का चूर्ण;

१—'रसमूषणं च' इति क्वचित्पाठः । २—'वल्लयुगं' पा० । ३—'सम्भाव्य' पा० । ४—'त्रिवल्लः' र. र. स. पाठः । ५—'०डम्बरभवो०' पा० ।

प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारे गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिला कर डण्डा थोहर (सेहुण्ड) के दूध में घोट कर दो रत्ति प्रमाण गोली बनावें। इसे शहद से मिला कर देवें तो नये ज्वर के वेग को कम करता है। इसका नाम त्रैलोक्यडम्बर रस है।

विशेषवचन—इसे कोष्ठबद्धता तथा अजीर्णसंयुक्त ज्वर में प्रायः प्रयुक्त करते हैं।

प्रसङ्ग से यहां कुचला शोधन लिखते हैं—कुचले को थोड़े से घी में तवे पर भूनें जब फूल कर लाल हो जाये तो निकाल लें और चाकू से त्वचा को छील कर काम में लावें। यह शुद्ध कुचला कहाता है। दूसरी रीति यह है कि कुचले को पन्द्रह दिन गोमूत्र में पड़ा रहने दे। गोमूत्र हो सके तो नित्य नया डालता जाय और पुराना निकाल दे। जब १५ दिन बाद कुचले फूल जांय तो निकाल ले। ऊपर का छिलका और कुचले की बीच की जीभी निकाल फेंके। शेष भाग को धो सुखाकर कूट ले। इस शुद्ध कुचले का सर्वत्र प्रयोग कर सकते हैं।

त्रैलोक्यडम्बर का अर्थ त्रिलोकी में चमत्कार करने वाला-ऐसा है ॥३७॥

प्रतापमार्त्तण्डरसः—

विषहिङ्गुलजैपाल-टङ्कणं क्रमवर्द्धितम्[1]।
रसः प्रतापमार्त्तण्डः सद्योज्वरविनाशनः ॥ ३८ ॥

शुद्ध विष एक भाग, शुद्ध हिंगुल दो भाग, शुद्ध जमालगोटा तीन भाग, शुद्ध सुहागा चार भाग। सब को मिला कर पीस कर रखें। इस की एक रत्ति की मात्रा देने से विरेचन होकर ज्वर तुरन्त कम हो जाता है। इसका नाम प्रतापमार्त्तण्ड है ॥ ३८ ॥

तरुणज्वरारिरसः—

जैपालगन्धं विषपारदञ्च तुल्यं कुमारीस्वरसेन पिष्टम्[2]।
अस्य द्विगुञ्जा हि सितोदकेन ख्यातो रसोऽयं तरुणज्वरारिः ॥३९॥

१–'क्रममर्दितम्' इति भैषज्यरत्नावल्यां पाठः। २–'मर्द्यम्' पा०।

दातव्य एषोऽहनि पञ्चमे वा षष्ठेऽथवा सप्तम एव वाऽपि।
जाते विरेके विजि[1]तो ज्वरः स्यात् पटोलमुद्रा[2]म्बुनिषेवणेन ॥४०॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष तथा शुद्ध जमालगोटा प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली बनावे फिर सब को मिला घीकुमार के रस में पीस कर दो रत्ति की गोली बनावे। मिश्री के शर्बत के साथ देने से ज्वर नाश होता है। इसका नाम तरुण-ज्वरारि रस है। यह रस ज्वर चढ़ने के दिन से पांचवें छटे अथवा सातवें दिन देना चाहिये। इससे विरेचन होकर ज्वर उतर जाता है। पथ्य में पटोलपत्र तथा मूंग का रस देना चाहिये।

विशेष वचन—आधुनिक मात्रा आधी रत्ती है॥ ३९-४०॥

गदमुरारिः—

रसबलिशिललौहव्योषताम्राणि तुल्या-
न्यथ सदरद[3]नागाभ्याश्च भागः प्रदिष्टः।
भवति गदमुरारिश्चास्य गुञ्जाद्वयं वै
क्षपयति दिवसेन प्रौढमामज्वराख्यम्॥ ४१॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मनसिल, लौहभस्म, सोंठचूर्ण, मिरच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, ताम्रभस्म, शुद्ध हिंगुल, सीसकभस्म। प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिला कर पीस कर जल से दो रत्ती समान गोली बनाले। इसके देने से दिन भर में ही तीव्र आमज्वर कम हो जाता है। इसका नाम गदमुरारि रस है।

विशेष वचन—इसकी आधुनिक मात्रा आधी रत्ती है। इसके पाठ में तन्त्रान्तरों में भेद है। योगरत्नाकर में पाठ निम्न है—

'रसबलिफणिलोहव्योमताम्राणि तुल्या-
न्यथ रसदलभागो वत्सनागं प्रघृष्टम्।

१—'विगतज्वरः' पा०। २—'०मुद्गान्न०' पा०। ३—'सदरदनागं भागमेतत् प्रदिष्टम्' इति आयुर्वेदसंग्रहे पाठः।

भवति गदमुरारिश्चास्य गुञ्जार्द्रवारा
क्षपयति दिवसेन प्रौढमामज्वराख्यम् ॥'

इस प्रकार पारा, गन्धक, सीसाभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म; प्रत्येक १ भाग, शुद्ध वत्सनाभ (बच्छनाग) आधा भाग; इन्हें एकत्र विधिपूर्वक मिलाने से गदमुरारि रस होता है। इसे एक रत्ती मात्रा में अदरक के रस के साथ देने से प्रवृद्ध आमज्वर नष्ट होता है। यही योग आगे नवज्वरेभसिंह नाम से है ॥ ४१ ॥

विद्याधररसः—

रसो गन्धस्ताम्रं त्रिकटुकटुकी टङ्कणवरा-
त्रिवृद्दन्ती हेम द्युमणि विषमेतत्सममिदम् ।
समस्तैस्तुल्यं स्याद्विमलजयपालोद्भवरजः
ततः स्नुक्क्षीरेण प्रचुरमृदितं[1] दन्तिसलिलैः ॥ ४२ ॥
द्विगुञ्जाऽस्य प्रौढं जयति वटिका साममतुलं
ज्वरं पाण्डुं गुल्मं ग्रहणिगुदकीलोद्भवरुजः ।
मरुच्छूलाजीर्णं प्रबलमथ सामं क्रिमिगदं
विबद्धं[2] प्लीहानं यकृतमपि[3] विद्याधररसः ॥ ४३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, सोंठचूर्ण, मिरचचूर्ण, पिप्पली चूर्ण, कुटकी चूर्ण, शुद्ध सुहागा, हरड़ चूर्ण, बहेड़ा चूर्ण, आंवला चूर्ण, त्रिवी(निसोत) चूर्ण, दन्तीमूल चूर्ण, शुद्ध धतूरे के बीजों का चूर्ण, आक की जड़ का चूर्ण, शुद्ध विष; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर शेष द्रव्यों को मिला लें। इसमें सब मिलित द्रव्यों के समभाग शुद्ध जमालगोटे का चूर्ण डालकर थोहर के दूध से दृढ़ता से मर्दन करें। फिर दन्तीमूल के क्वाथ से घोट कर दो रत्ती प्रमाण की गोली बनावें। इसकी एक गोली देने से तेज़ सामज्वर का वेग कम हो जाता है, पाण्डु गुल्म शान्त होते हैं, ग्रहणीरोग तथा बवासीर के मस्सों की पीड़ा हटती है। वायु शूल, अजीर्ण,

१—'प्रगुणमृदितं', 'त्रिदिनमृदितं' पा०। २—'विबन्धं' पा०। ३—'प्रबलमपि' पा०।

आम, क्रिमिरोग, कब्ज़ तथा बढ़ी हुई तिल्ली वा जिगर को भी यह विद्याधर रस ठीक करता है ॥ ४२-४३ ॥

अमृतमञ्जरी—

हिङ्गुलं मरिचं टङ्कं पिप्पली विषमेव च।
जातीकोषं समं सर्वं जम्बीराद्भिर्विमर्दितम् ॥ ४४ ॥
गुञ्जाद्वयं त्रयं वापि देयश्च सान्निपातिके।
कासश्वासौ जयत्याशु सर्वज्वरविनाशनः ॥ ४५ ॥

शुद्ध हिंगुल, मरिच चूर्ण, शुद्ध सुहागा, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध विष, जावित्री चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर जम्बीरी नीबू के रस से पीस कर दो या तीन रत्ती की गोली बनावें। इसकी एक गोली सन्निपातज्वर में देनी चाहिये। इससे खांसी और श्वास को शीघ्र लाभ होता है तथा सर्व ज्वरों का नाश होता है।

विशेष वचन—इसे आजकल १ रत्ती मात्रा में दिया जाता है। इसका अनुपान—अदरक का रस वा गरम जल है। यह मन्दाग्नि, अजीर्ण, आमवात तथा सर्वाङ्गग्रह में भी प्रयुक्त होता है ॥ ४४-४५ ॥

महाज्वराङ्कुशः—

सूतं गन्धं विषं तुल्यं धूर्त्तबीजं त्रिभिः समम्।
चतुर्णां द्विगुणं व्योषचूर्णं गुञ्जाद्वयं हितम् ॥ ४६ ॥
जम्बीरस्य[1] च मज्जाभिरार्द्रकस्य रसैर्युतम्।
महाज्वराङ्कुशो[2] नाम ज्वराष्टक[3]निसूदनः ॥ ४७ ॥
ऐकाहिकं द्व्याहिकं वा त्र्याहिकं[4]श्च चतुर्थकम्।
विषमश्च त्रिदोषोत्थं हन्ति सर्वं[5] न संशयः ॥ ४८ ॥

१-'जम्बीरकस्य मज्जाभिः' पा०। जम्बीरकस्य मज्जायामार्द्रकस्य' र. र. पाठः। २-'ज्वराङ्कुशो रसो नाम्ना ज्वरान् सर्वान् निकृन्तयेत्' र. र. पाठः। ३-'ज्वराणां मूलकृन्तनः' र. चि. पाठः। ४-'तृतीयकचतुर्थकौ। रसो दत्तोऽनुपानेन ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति' र. चि. पाठः। ५-'सद्यो' पा०।

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक एक तोला, शुद्ध विष एक तोला, शुद्ध धतूरे के बीज तीन तोले, सोंठ चूर्ण चार तोला, मिरच चूर्ण चार तोला, पिप्पली चूर्ण चार तोला ले। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली बनावें फिर सब मिला कर पीस कर रख लें। इस महाज्वराङ्कुश रस की दो रत्ति की मात्रा जम्बीरी नीबू के रस से अथवा अदरक के रस से दें तो यह आठों प्रकार के ज्वर नाश करता है। इससे ऐकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक, चातुर्थक, विषमज्वर तथा त्रिदोषज ज्वर नाश होता है, इस में संशय नहीं।

विशेष वचन—यह रस नवज्वर में तथा विषम ज्वर में जब प्रलाप हो तो प्रलाप को तथा ज्वर के वेग को कम करता है। ज्वर के पूर्व देने से इससे ज्वर रुक भी जाता है।

जम्बीर रस आदि को अनुपान के तौर पर न प्रयुक्त करके कई इनसे मर्दन कर गोलियां बना लेते हैं।

रसेन्द्रचिन्तामणि रसरत्नाकर प्रभृति तन्त्रों में यह योग ऐसा ही मिलता है परन्तु योगरत्नाकर में कुछ विशेषता है। वहां इसके चूर्ण को स्वर्णक्षीरी से चार बार भावना देकर धूप में सुखा पुनः चूर्णित करने को कहा है। शार्ङ्गधरसंहिता में त्रिकटुचूर्ण डालने को नहीं कहा उसके स्थान पर स्वर्णक्षीरी (चोक) का चूर्ण है। रसरत्नसमुच्चय में जो महाज्वराङ्कुश रस है वहां त्रिकटु चूर्ण का परिमाण इस से आधा है। वह इसे विशेषतः वातश्लेष्मज्वर द्वन्द्वज वा त्रिदोष ज्वर में प्रयुक्त करने को कहता है। और औषध के जीर्ण होने पर दही भात का पथ्य बताता है।

यह रस सामान्यतः श्लैष्मिक वातश्लैष्मिक और विषम ज्वरों की प्रथमावस्था में जब शिर वा माथा भारी प्रतीत हो, वेदना हो, कास हो, अग्निमान्द्य हो और अङ्गमर्द हो तो सेवन कराया जाता है। यदि शिर में चक्कर आते हों तो न दें॥ ४६-४८॥

ज्वरकेशरिका—

शुद्धसूतं विषं व्योषं गन्धं त्रैफलमेव च।
जयपालं समं कुर्य्याद् भृङ्गतोयेन मर्दयेत्॥ ४९॥

वटिकां गुञ्जमात्रान्तु कुर्याद् वैद्यः प्रयत्नतः ।
प्रमाणे सर्षपाकारा बालानाञ्च प्रशस्यते ॥ ५० ॥
नारिकेलाम्बुना वाऽपि सर्वज्वरविनाशिनी ।
नारिकेलजलं शस्तं त्रिकर्षं पाययेदनु ॥ ५१ ॥
सितया च समं पीता पित्तज्वरविनाशिनी ।
मरिचेन च पीता सा सन्निपातज्वरं जयेत् ॥ ५२ ॥
पिप्पलीजीरकाभ्यान्तु दाहज्वरविनाशिनी ।
विषमज्वरभूतोत्थ-ज्वरं प्लीहानमेव च ॥ ५३ ॥
अग्निमान्द्यमजीर्णञ्च श्वयथुञ्च सुदारुणम् ।
शूलाजीर्णं तथा गुल्मं कुष्ठाष्टादश पित्तजान् ।
ज्वरकेशरिका ख्याता तरुणज्वरनाशिनी ॥ ५४ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, सोंठ चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, मिरच चूर्ण, हरड़ चूर्ण, बहेड़ा चूर्ण, आंवला चूर्ण, शुद्ध जमालगोटे का चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली करें। फिर शेष द्रव्यों का चूर्ण मिला कर भांगरे के रस से घोट कर एक रत्ती प्रमाण की गोली बनावें। बालकों के लिये सरसों के समान गोली बनानी चाहिये। नारियल के पानी से इस गोली को दें तो सब ज्वरों का विनाश करता है। नारियल का जल तीन कर्ष प्रमाण में गोली के बाद पीना चाहिये। गोली को पीस मिश्री मिला जल से पीवें तो पित्तज्वर नाश होता है। इसे मरिच चूर्ण (२ रत्ती) के साथ पीने से सन्निपातज्वर हटता है। पिप्पली चूर्ण (१ रत्ती) और जीरे के चूर्ण (४ रत्ती) के साथ सेवन करने से दाहज्वर नष्ट होता है। विषमज्वर, भूतज्वर, प्लीहा (तिल्ली), अग्निमांद्य, अजीर्ण, भयंकर शोथ, शूल, अजीर्ण, गुल्म, अठारह प्रकार के कुष्ठ, पित्तजरोग तथा तरुण ज्वर (नवज्वर) को यह ज्वरकेशरिका वटी नाश करती है।

१–'कृत्वा' पा० । २–'प्रमाणं सर्षपाकारं' पा० । ३–'कर्षत्रयं पिबेदनु' पा० । ४–'पीत्वा' पा० । ५–'विषमज्वरभूतोत्थं ज्वरं' पा० ।

विशेष वचन—यह रस उत्तम है। इस से अधिक विरेचन भी नहीं होता और शनैः २ ज्वर वेग भी कम हो जाता है। यह सुकुमार प्रकृति वालों के लिये अच्छा है। भावप्रकाश में भांगरे के रस से मर्दन के स्थान पर द्रोणपुष्पी (गोमा) के रस से मर्दन करने को कहा गया है। भावप्रकाश में नाम नवज्वरहरी है ॥ ४९-५४ ॥

नवज्वरेभसिंहः—

शुद्धसूतं तथा गन्धं लौहं ताम्रञ्च सीसकम् ।
मरिचं पिप्पली विश्वं समभागं विचूर्णयेत् ॥ ५५ ॥
अर्द्धभागं विषं दद्यात् मर्दयेत् वासरद्वयम् ।
शृङ्गवेरानुपानेन दद्यात् गुञ्जाद्वयं भिषक् ॥ ५६ ॥
नवज्वरे महाघोरे वातसंङ्ग्रहणीगदे[1] ।
नवज्वरेभसिंहोऽयं सर्वरोगे[2] प्रयुज्यते ॥ ५७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, ताम्रभस्म, सीसाभस्म, मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, सोंठ चूर्ण; प्रत्येक एक २ तोला लें। शुद्ध विष आधा तोला लें। सब से प्रथम पारे गन्धक की कज्जली करें। फिर शुद्ध विष डाल कर जल से दो दिन तक घोटें पश्चात् शेष द्रव्य मिला कर पीसें और दो रत्ती की गोली बना लें। इसे अदरक के रस से दें तो महाघोर नया ज्वर, वातरोग, संग्रहणी अथवा वातज ग्रहणीरोग नष्ट होता है। अन्य भी सब रोगों में इस नवज्वरेभसिंह रस को प्रयुक्त कर सकते हैं।

विशेष वचन—पैत्तिक सन्निपात में अर्थात् अतिसार युक्त सन्निपात ज्वर में यह रस अच्छा लाभ करता है। अतिसार को नष्ट करके ज्वर को भी कम करता है। इस रस की २ रत्ती पूर्ण मात्रा है। इसे १ रत्ती मात्रा में प्रायशः प्रयुक्त किया जाता है ॥ ५५-५७ ॥

१—'धातुस्थे ग्रहणीगदे' पा०। २—'सर्वज्वरकुलान्तकृत्' तन्त्रान्तरे पाठः।

अथ निरामज्वरे—

उदकमञ्जरीरसः—

सूतो गन्धष्टङ्कणः सोषणः स्यादेतैस्तुल्या शर्करा मत्स्यपित्तैः।
भूयो भूयो भावयेत्तु त्रिरात्रं वल्लो देयः शृङ्गवेरस्य वारा ॥ ५८ ॥
सम्यक् तापे वारिभक्तं सतक्रं वृन्ताकाढ्यं पथ्यमत्र प्रादिष्टम्।
अह्नायोग्रं हन्ति सामं प्रभावात् पित्ताधिक्ये मूर्ध्नि वारिप्रयोगः ॥५९

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, मरिच चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिला लें। मिलित सब द्रव्यों के समान खांड मिला कर, मछली (रोहू) के पित्त से तीन बार इसे भावना दें। इस रस को डेढ़ रत्ति की मात्रा में अदरक के रस के साथ देने से ताप कम हो जाता है। ताप प्रतीत होने पर वारिभक्त (ओदन पका कर उसी समय यदि शीतल जल में डाल दिया जाय तो उसे वारिभक्त कहते हैं) छाछ तथा बेंगन की भाजी का पथ्य देवे। यह उग्र साम दोष को अपने प्रभाव से शीघ्र दूर करता है। यदि इसके खाने से पित्ताधिक्य हो अर्थात् सिर गर्म हो वा शरीर में गरमी अधिक प्रतीत हो तो सिर पर जल डालना चाहिये।

विशेष वचन—इससे पसीना आकर ज्वर भी उतर जाता है और रोगी निर्बल भी नहीं होता। अर्थात् हृदय की शक्ति को कम नहीं करता है। इस स्थान में "वल्ल" का अर्थ दो रत्ति की गोली भी ले लें और प्रयोग करें तो मात्रा कुछ अधिक नहीं। वस्तुतः इसे दो रत्ति की मात्रा में ही प्रयोग किया जाता है। यहां शर्करा "शब्द" का अर्थ "विष" करना ठीक नहीं। यह निघण्टु के विरुद्ध है। खांड डाल कर रससिद्ध वैद्यों ने अनुभव भी किया हुआ है, पूरा गुण देता है।

१–'सोषणश्च सर्वैस्तुल्या' भा० प्र० पाठः। २–'भावयेत्तत् त्रिरात्रं' पा०। ३–'शृङ्गवेरद्रवेण' भा० प्र० पाठः। ४–'तापे शीतं व्यञ्जनैस्तक्रभक्तं' भा० प्र० पाठः। ५–'वृन्ताकाख्यं पथ्यमेतत्' पा०। ६–'आङ्गं रोगं' पा०। 'अह्नैवोग्रं हन्ति सद्यो ज्वरन्तु' भा० प्र० पाठः। ७–'तोयं च दद्यात्' भा० प्र० पाठः।

योगरत्नाकर में इसी योग को ही चन्द्रशेखर नाम से कहा है वहां भी स्पष्ट ही सिता (खांड) पढ़ा है। वहां बताया है कि यह रस अति तीव्र कफपैत्तिक ज्वर का नाशक है। रसरत्नसमुच्चय में यही रस जलमञ्जरी नाम से है, परन्तु थोड़ा भेद है। वहां पारा आदि चार द्रव्यों को मिला कर उसे जम्बीर के रस से तीन दिन मर्दन करने को कहा गया है। पश्चात् सूख जाने पर खांड मिला मछली के पित्त से भावना देने का विधान है। यहां अनुपान रूप में अदरक का रस कहा है वहां पित्त से भावना के पश्चात् उससे औषध को तीन बार भावित करने का आदेश है। इस रस को दिन में तीन बार दिया जाता है।

'सम्यक् तापे वारिभक्तं सतक्रं' के स्थान पर यदि 'तापे शीतं वारि भक्तं सतक्रं' ऐसा पाठ हो तो अधिक अच्छा होगा। तब अर्थ यह होगा कि गरमी अनुभव होने पर पीने के लिये शीतल पानी दें और चावल छाछ का पथ्य हो ॥ ५८-५९ ॥

चन्द्रशेखरो रसः—

विहाय शर्करां यदा प्रदीयते मनःशिला।
तदा निरामकज्वरारिरेष चन्द्रशेखरः ॥ ६० ॥

उपरोक्त उदकमञ्जरी रस में यदि "शर्करा" न डाल कर उस के स्थान में "शुद्ध मनसिल" उतनी ही डाल दें तो निरामज्वर को दूर कर देने वाला यह रस, चन्द्रशेखर कहाता है।

विशेष वचन—यह योग पुनः आगे १७२ से १७४ श्लोकों द्वारा कहा गया है। इस की मात्रा तीक्ष्णवीर्य मनसिल के होने से कम होनी चाहिये। अर्थात् इसे $\frac{१}{८}$ रत्ति तक देना चाहिये ॥ ६० ॥

पञ्चवक्त्ररसः—

रसो गन्धकष्टङ्कणः सोषणोऽयं फणी पिप्पलीत्येष धुस्तूरपिष्टः।
जयेत् सन्निपातं द्विगुञ्जाऽनुपानं भवेदर्कमूलाम्बु सव्योषचूर्णम् ॥६१

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, मिरच चूर्ण, शुद्ध विष, पिप्पली चूर्ण; इन सब को समभाग ले। पहले पारा और गन्धक की कज्जली करले फिर शेष द्रव्य उसमें मिला कर धतूरे के रस से पीस कर दो रत्ति के समान

गोली बना लें । आक की जड़ के क्वाथ में त्रिकुटा का चूर्ण डाल कर उसके साथ एक गोली को पिलावें तो सन्निपातज्वर दूर होता है ।

विशेष वचन—यद्यपि नागभस्म भी ज्वर में प्रयुक्त होने वाले रसों में है परन्तु यहां पर फणी से नागभस्म न लेकर वत्सनाग (मीठा विष, बछनाग) लेना चाहिये । फणी का अर्थ नाग है अतएव बहुत से टीकाकार नागभस्म लेने को कहते हैं परन्तु यहां 'नाग' से सीसक न लेकर वत्सनाग ही लेना चाहिये । 'नाग' शब्द वत्सनाग का वाचक भी है तथा इसकी प्रमाणता तो तन्त्रान्तरों में कहे योग की समता से भी सिद्ध है । रसरत्नसमुच्चय तथा योगरत्नाकर में पञ्चवक्त्ररस का पाठ है ।

'शुद्धं सूतं विषं गन्धं मरिचं टङ्कणं कणाम् ।
मर्दयेद्धूर्तजद्रावैर्दिनमेकं तु शोषयेत् ॥
पञ्चवक्त्रो रसो नाम द्विगुञ्जः सन्निपातजित् ।
अर्कमूलकषायं च सत्र्यूषमनुपाययेत् ॥' इत्यादि ॥

यही पाठ शार्ङ्गधरसंहिता में भी है । भावप्रकाश, भैषज्यरत्नावली, रसेन्द्रचूडामणि प्रभृति ग्रन्थों में भी पञ्चवक्त्ररस पढ़ा है । उनमें पिप्पली नहीं है । विष तो उनमें भी है । अतएव इस योग की टीका में नागभस्म न लेकर शुद्ध बछनाग विष लेने को कहा है । यदि वत्सनाभ के योग से इस रस को तय्यार किया जाय तो इसकी आधुनिक मात्रा आधी रत्ती से एक रत्ती तक समझनी चाहिये । इसमें पथ्य दही भात है और यदि गरमी मालूम हो तो पानार्थ शीतल जल देना चाहिये और मस्तक पर भी शीतल जल का परिषेक करना चाहिये ॥ ६१ ॥

पर्पटरसः—

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मर्द्यं भृङ्गरसेन च ।
मृतं ताम्रं लौहभस्म पादांशेन तयोः क्षिपेत् ॥ ६२ ॥
लौहपात्रे च विपचेत् चालयेत् लौहचाटुना ।
तत् क्षिपेत् कदलीपत्रे गोमयोपरिसंस्थिते ॥ ६३ ॥

पश्चात् सञ्चूर्णयेत् खल्ले निर्गुण्ड्या भावयेद्दिनम् ।
जयन्तीत्रिफलाकन्यावासाभार्गीकटुत्रिकैः ॥ ६४ ॥
भृङ्गाग्निमूलमुण्डीभिर्भावयेत् दिनसप्तकम् ।
अङ्गारैः स्वेदयेत् किञ्चित् पर्पटाख्यो महारसः ॥ ६५ ॥
चतुर्गुञ्जामितो भक्ष्यः सम्यक् श्लेष्मज्वरं हरेत् ।
पथ्याशुण्ठ्यमृताक्वाथमनुपानं प्रयोजयेत् ॥ ६६ ॥

शुद्ध पारा एक तोला (६६ रत्ती) तथा शुद्ध गन्धक दो तोला । दोनों की कज्जली करे, और इसे भांगरे के रस से मर्दन करे । फिर ताम्रभस्म ६ माशे (७२ रत्ती) लौहभस्म ६ माशा इन दोनों को उसी कज्जली में मिला घोट ले । फिर एक लोहे के पात्र में सब द्रव्यों को डाल कर आग पर रखे और उसे लोहे की शलाका से चलावे । जब गर्म होने से कुछ कीचड़ के समान द्रव्य हो जावे (ध्यान रहे अधिक आग न देवें) तो फिर गोबर को लीप कर उस पर नया कोमल केले का पत्ता बिछा दें । अब इस पत्ते पर उस कीचड़ समान द्रव्य को उलटा दें और ऊपर से केले का पत्ता रख के चपटे पात्र से दबा दें । बस यह पर्पटी तय्यार हो गई । अब इस पपड़ी को खरल में डाल कर चूर्ण करे और संभालू के रस से दिन भर भावना देवे । फिर जयन्ती, त्रिफला, घीकुमारी, बांसा (अडूसा), भारंगी, त्रिकुटा, भांगरा, चीते की जड़, मुण्डी; इनके काढों से पृथक् २ सात दिन तक भावनायें देवें । फिर इसे अङ्गारों पर रखकर कुछ स्वेदन करे । यह पर्पट नामक महारस कहाता है । इसकी चार रत्ती भर मात्रा (आधुनिक मात्रा १ रत्ती से ३ रत्ती तक) खाकर ऊपर से हरड़, सोंठ, गिलोय का काढ़ा अनुपान में पीवे तो श्लेष्मज्वर अच्छा हो जाता है ॥ ६२–६६ ॥

वातपित्तान्तकरसः—

मृतसूताभ्रमुस्तार्क-तीक्ष्णमाक्षिकतालकम् ।
गन्धकं मर्दयेत् तुल्यं यष्टिद्राक्षाऽमृतारसैः ॥ ६७ ॥
धात्रीशतावरीद्रावैः द्रवैः क्षीरविदारिजैः ।

दिनं दिनं विभाव्याथ सिताक्षौद्रयुता वटी ॥ ६८ ॥
माषमात्रा, निहन्त्याशु वातपित्तज्वरं क्षयम् ।
दाहं तृषां श्रमं शोषं वातपित्तान्तको रसः ॥
सिताक्षीरं पिबेच्चानु यष्टिक्वाथं सितायुतम् ॥ ६९ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, नागरमोथे का चूर्ण, ताम्रभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर मुलहठी, किशमिश और गिलोय; इनके काढ़ों वा स्वरसों से पृथक् २ फिर आंवले के स्वरस, शतावरी के स्वरस और क्षीरविदारी के रस से एक २ दिन भावना दे । इसकी गोली एक उड़द भर की रखे । इस गोली को शहद और खांड से खावे तो शीघ्र ही वातपित्त ज्वर के वेग को कम करती है । क्षयरोग, दाह, तृष्णा, श्रम, शोष; इन रोगों को दूर करती है । इस रस का नाम वातपित्तान्तक रस है । इस गोली को खाकर ऊपर से दूध में मिश्री मिलाकर अथवा मुलहठी के क्वाथ में मिश्री मिलाकर पीवे ॥ ६७–६९ ॥

विश्वेश्वररसः—

मृतसूताकंतीक्ष्णाभ्र तालं गन्धञ्च कट्फलम् ।
मेषशृङ्गी वचा शुण्ठी भार्गी पथ्या च बालकम् ॥ ७० ॥
धन्याकं मर्दयेत् तुल्यं पर्पटोत्थद्रवैर्दिनम् ।
मद्यं माषं लिहेत् क्षौद्रैः कफपित्तमदात्यये ॥ ७१ ॥
रसो विश्वेश्वरो नाम प्रोक्तो नागार्जुनेन च ।
काकमाचीरसं चानु सैन्धवेन युतं पिबेत् ॥ ७२ ॥

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, तीक्ष्णलोहभस्म, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध गन्धक, कायफल चूर्ण, मेढ़ासिंगी चूर्ण, बच का चूर्ण, सोंठ का चूर्ण, भार्गी का चूर्ण, हरड़ का चूर्ण, सुगन्धबाला का चूर्ण, धनियां का चूर्ण; इन सब द्रव्यों को समभाग लेकर पित्तपापड़ा के स्वरस से एक दिन घोट कर एक उड़द भर की गोली बनायें और उसे शहद से खावें तो कफपित्तज मदात्ययरोग नष्ट

होता है। इसका नाम विश्वेश्वर रस है। इस नागार्जुन ने कहा था। इस रस के खाने के बाद मकोय का रस सेंधानमक डालकर पी लें।

विशेष वचन—इसे रस के मूलपाठ में ज्वरघ्न गुण नहीं कहा। परन्तु यतः ज्वरप्रकरण में संग्रह किया गया है अतः इसका कफपित्तज ज्वर को हटाना भी एक गुण समझना चाहिये। इसे २ रत्ती मात्रा पर्यन्त भी प्रयोग करा सकते हैं॥ ७०-७२॥

शीताररिसः—

पारदं गन्धकं शुद्धं टङ्कणञ्च समं समम्।
पारदात् द्विगुणं देयं जैपालं तुषवर्जितम्॥ ७३॥
सैन्धवं मरिचं चिञ्चात्वग्भस्म शर्कराऽपि च[1]।
प्रत्येकं सूततुल्यं स्याज्जम्बीरैर्मर्दयेद् दिनम्॥ ७४॥
द्विगुञ्जस्तप्ततोयेन वातश्लेष्मज्वरापहः।
रसः शीतारिनामायं शीतज्वरहरः परः॥ ७५॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लें। शुद्ध जमालगोटा दो तोला लें। सेंधानमक, मरिचचूर्ण, इमली की छाल की भस्म, खांड; ये सब द्रव्य भी एक २ तोला पृथक् २ लें। पारा और गन्धक

१—"शर्करा" का अर्थ संस्कृत टीकाकार ने "विष" कर दिया है। पर निघण्टु ने शर्करा का अर्थ विष नहीं माना। केवल 'वैद्यकशब्दासिन्धु" कोष में 'शर्करा" का अर्थ 'विष" इसी टीकाकार के प्रमाण पर केवल रसेन्द्रसार पुस्तक का प्रमाण देकर लिखा है। परन्तु यह कोई प्रमाण नहीं। इसलिये निघण्टु में "शर्करा" का अर्थ "विष" नहीं किया गया है। नांहीं विष के नामों में "शर्करा" का पाठ है। "शर्करा" का वास्तविक अर्थ, 'खांड" करके इसे बनाकर श्रीमान् नरेन्द्रनाथ मित्र आदि मान्य वैद्यों ने इसे व्यवहार करके देखा पूरा लाभ देता है। "शर्करा" का अर्थ "विष" मानकर भी अनेक वैद्य इस रस को बनाते हैं। तब विष डालने से इस रस की मात्रा कम कर देनी चाहिये।

की कज्जली पहले करें। फिर अन्य द्रव्य मिला लें। इस में जम्बीरी का रस डाल कर दिन भरें मर्दन करें। इसे दो रत्ती भर गरम जल से खायें तो वातश्लेष्मज्वर को नाश करता है। यह रस शीतारि नाम से प्रसिद्ध है और शीतज्वर नाश करने में उत्कृष्ट है।

विशेष वचन—यही रस थोड़े से भेद से रसरत्नसमुच्चय में 'ज्वराङ्कुश रस' नाम से है। वहां शर्करा के स्थान पर मधु है और शङ्खभस्म १ भाग अधिक डाली गयी है। रसेन्द्रचिन्तामणि में यह योग शीतारिरस नाम से ही है वहां 'सूतकं टङ्कणं शुल्वं गन्धं चूर्णं समं समम्' ऐसा पाठ है। जिसके अनुसार 'शुद्धं' के स्थान पर 'शुल्वं' भी हो सकता है। ताम्र का शीतज्वर के नाश में बहुधा प्रयोग भी देखा जाता है। आधुनिकमात्रा शीतारि रस की १ रत्ती है ॥ ७३-७५ ॥

चिन्तामणिरसः—

रसविषगन्धकटङ्कणताम्रयवक्षारकञ्च सव्योषम्[1]।
तालकफलत्रयञ्च क्षौद्रं दत्त्वा शतं वारान् ॥ ७६ ॥
संमर्द्य रक्तिविमिता[2] वटिका कार्य्या भिषग्वरैः प्राज्ञैः[3]।
शुण्ठीपिष्टेन समं चैकां द्वे वाऽथवा तिस्रः ॥ ७७ ॥
सम्प्राश्य नारिकेलज-जलमनुपेयञ्च विमलमतिमद्भिः[4]।
सैन्धवजीरकसहितं[5] तक्रं पथ्यं प्रयोक्तव्यम् ॥ ७८ ॥
प्रशमयति सन्निपातज्वरं तथा जीर्णकज्वरं[6] विविधम्।
प्लीहानं चाध्मानं कासं श्वासं वह्निमान्द्यम्।
चिन्तामणी रसोऽयं किल स्वयं[7] भैरवेण निर्दिष्टः ॥ ७९ ॥

१ 'यवक्षारकं व्योषम्' पा०। २ 'रक्तिकामिता' पा०। ३ 'वटिकाः कुर्याद् भिषक् प्राज्ञः' पा०। ४ 'नारिकेलीजलमनुपेयं प्रयुञ्जीत' पा०। अस्यानन्तरं च तन्त्रान्तरे 'भेदानन्तरमेव प्रक्षालितभक्तकतक्रमुपयोज्यम्' इत्यधिकः पाठः। ५ 'शेषात् सैन्धवजीरं तक्रं भक्तं' पा०। ६ 'जीर्णं विषमञ्च' पा०। ७ 'नियतं' पा०।

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, शुद्ध सुहागा, ताम्रभस्म, यवक्षार, सोंठ चूर्ण, मिरच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध हड़ताल, हरड़ चूर्ण, बहेड़ा चूर्ण, आंवला चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करलें फिर सब द्रव्य मिला कर भलप्रिकार घोट लें। पश्चात् कुछ शहद डाल कर सौ वार अर्थात् खूब ही घोट कर एक रत्ती भर की गोली बना कर रखें[१]। इसकी एक दो वा तीन गोली बलाबल देख कर सोंठ के चूर्ण से खावें और ऊपर से नारियल का पानी पीवें। सेन्धानमक और जीरा चूर्ण मिला कर छाछ पीना इस में पथ्य है। इससे सन्निपात ज्वर, विविध जीर्णज्वर, तिल्ली, आध्मान, खांसी, श्वास और अग्निमान्द्य रोग दूर होता है। यह चिन्तामणि रस स्वयं भैरव जी ने कहा है ॥ ७६-७६ ॥

चिन्तामणिरसः (प्रकारभेदेन)—

रसं गन्धं विषं लौहं धूर्त्तबीजन्तु तत्समम् ।
द्वौ भागौ ताम्रवह्न्योश्च व्योषचूर्णञ्च तत्समम् ॥ ८० ॥
जम्बीरस्य च मज्जाभिरार्द्रकस्य रसैर्युतम् ।
अस्यानुपानेन वटी ज्वरे देया प्रयत्नतः ॥ ८१ ॥
अग्निमान्द्ये ऽप्यजीर्णे च आध्मानेऽनिलसम्भवे ।
अतिसारे[२] छर्दिते च अरोचकानिपीडिते ॥ ८२ ॥
गुञ्जाद्वयां वटीं खादेत् सद्यो ज्वरविनाशिनीम् ।
वातिकं पैत्तिकञ्चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ ८३ ॥
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च चातुर्थकविपर्य्ययम् ।

१—जहां २ "शहद" मिलाकर गोली बनानी लिखी है वहां पर थोड़ा शहद और थोड़ा सा पानी मिलाकर गोली बनायें तो ठीक बन जाती है और कठोर भी हो जाती है। केवल शहद डालकर बनाने से चपटी हो जाती है।

२ 'अतिसारेऽर्दिते चैव' पा०।

असाध्यश्चापि साध्यश्च ज्वरश्चैवातिदुस्तरम् ॥ ८४ ॥
ज्वरान् सर्वान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा।
चिन्तामणिरसो नाम सर्वज्वरकुलान्तकः ॥ ८५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, लौहभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लें। शुद्ध धतूरे के बीज ४ तोला लें। ताम्रभस्म दो तोला, चीतामूल चूर्ण दो तोला, सोंठ चूर्ण ४ तोला, मिरच चूर्ण ४ तोला, पिप्पली चूर्ण ४ तोला लें। पहले पारे और गन्धक की कज्जली बनायें फिर सब द्रव्यों को नियमानुसार मिला मर्दन कर जल से दो रत्ती भर की गोली बना लें। इस गोली को जम्बीरी के रस से और अदरक के रस के अनुपान से दें तो शीघ्र ही ज्वर का वेग कम हो जाता है। वायु से उत्पन्न अग्निमान्द्य, अजीर्ण, आध्मान, अतिसार, वमन, अरुचि इन सब रोगों को दूर करता है। वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, ऐकाहिक, द्व्याहिक, चातुर्थक, चातुर्थकविपर्यय, तथा असाध्य हो वा साध्य, अति दुस्तर ज्वर को भी यह रस नाश करता है। सब ज्वरों को इतना शीघ्र दूर करता है जिस प्रकार सूर्य भगवान अन्धकार को दूर करते हैं। यह चिन्तामणि रस सर्व ज्वरों को नाश करने वाला है।

विशेष वचन—यहां पर कई 'अस्यानुपानेन' इत्यादि नहीं पढ़ते और जम्बीररस और अदरक रस से वटी बनाने को कहते हैं। इसमें उपादान द्रव्यों के परिमाण में भी टीकाकारों में भेद है। कई धतूरे के बीज एक भाग लेने को कहते हैं। इसीप्रकार मिलित त्रिकटुचूर्ण ४ भाग लेने को कहते हैं और कई प्रत्येक २ भाग लेते हैं। हमने तो पूर्वोक्त महाज्वराङ्कुश के अनुसार उक्त प्रमाण में लेना उचित समझा है। प्रयोग प्रायशः मिलित त्रिकुटा चूर्ण ४ तोला से है ॥ ८०—८५ ॥

सन्निपातज्वरे—

कुलवधूरसः—

शुद्धसूतं मृतं ताम्रं मृतं नागं मनःशिला ।
तुत्थकं तुल्यतुल्यांशं दिनमेकं विमर्दयेत् ॥ ८६ ॥
द्रवैश्चोत्तरवारुण्याश्चणमात्रा वटी कृता ।
सन्निपातं निहन्त्याशु नस्यमात्रेण दारुणम् ॥
एषा कुलवधूर्नाम जले घृष्ट्वा प्रयोजयेत् ॥ ८७ ॥

शुद्ध पारा, ताम्रभस्म, नागभस्म, शुद्ध मनसिल, शुद्ध नीलाथोथा ; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लेकर उचित क्रम से मर्दन करे । फिर इन्द्रायण के रसमें दिनभर दृढ़ता से मर्दन करके चने के समान गोली बना लें । इस गोली को जल में घिस कर नाक में नस्य दें तो भयंकर सन्निपात की मूर्च्छा दूर होती है । इसे कुलबधू रस कहते हैं ।

विशेष वचन—इसको पानी में घिसकर आंख में अञ्जन लगाकर भी वृद्ध वैद्य व्यवहार करते हैं ॥ ८६–८७ ॥

जयमङ्गलरसः—(अञ्जनम्)

भस्मसूताभ्रकं तारं मुण्डतीक्ष्णालमाक्षिकम् ।
वन्हिटङ्कणकव्योषं समं संमर्दयेत् दिनम् ॥ ८८ ॥
पाठानिर्गुण्डिकायष्टि-बिल्वमूलकषायकैः ।
ततो मूषागतं रुद्ध्वा विपचेद् भूधरे पुटे ॥ ८९ ॥
माषैकं दशमूलस्य कषायेण प्रयोजयेत् ।
अञ्जनेनाथवा नस्यात् सन्निपातं जयेद् ध्रुवम् ॥ ९० ॥

रसासिन्दूर, अभ्रकभस्म, चांदभस्म, मुण्डलौहभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, शुद्ध हड़ताल, स्वर्णमाक्षिकभस्म, चीताचूर्ण, शुद्ध सुहागा, सोंठचूर्ण, मिरच-

१ 'तस्य तुल्यांशं' पा० । २ 'षष्टी' पा० । ३ 'ज्वरम्' पा० ।

चूर्ण, पिप्पलीचूर्ण । इन में से प्रत्येक द्रव्य को समभाग लेकर पाठा (पाढ़), संभालू , मुलहठी और बिल की जड़ के काढ़ों से पृथक् २ एक २ दिन मर्दन करके मूषा में बन्द कर भूधरपुट में पकावे । इसको एक माष भर लेकर दशमूल के क्वाथ के अनुपान से प्रयुक्त करे । इसको अञ्जन या नस्य में भी प्रयुक्त करे तो सन्निपात की मूर्च्छा हटजाती है ।

विशेष वचन—इसी को जयमङ्गल अञ्जन भी कहते हैं । इसकी अन्तः-प्रयोगार्थ आधुनिकमात्रा–½ रत्ती से ३ रत्ती तक है ॥ ८८–९० ॥

नस्यभैरवरसः—

मृतसूतार्कतीक्ष्णाग्निं टङ्कणं खर्परं समम् ।[1]
सव्योषमर्कदुग्धेन दिनं संमर्दयेद् दृढम् ।
अर्कक्षीरयुतं नस्यं सन्निपातहरं परम् ॥ ९१ ॥

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, लौहभस्म, चीतामूल चूर्ण, शुद्ध सुहागा, शुद्ध खपरिया, सोंठचूर्ण, मिरच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण । प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लेकर मिला लें । इसमें आक का दूध डाल कर दिन भर अच्छीप्रकार मर्दन करें । फिर इसे निकाल शीशी में सुरक्षित रखें । आक के दूध से युक्त यह नस्य भयंकर सन्निपात की मूर्च्छा को भी दूर करती है ॥ ९१ ॥

अञ्जनभैरवरसः—

सूततीक्ष्णकणागन्धमेकांशं जयपालकम् ।
सर्वैस्त्रिगुणितं जम्भ-वारिणा[2] च सुपेषितम् ।
नेत्राञ्जनेन हन्त्याशु सर्वोपद्रवमुद्धतम्[3] ॥ ९२ ॥

शुद्ध पारद, लौहभस्म, पिप्पली का चूर्ण, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले । फिर शुद्ध जमालगोटा उक्त मिलित द्रव्यों से तिगुना ले । पहले पारे गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिला कर

---

१ 'मृतसुतार्कतीक्ष्णानि' इति रसेन्द्रचिन्तामणिपाठः । २ 'जम्बुवारिणा' पा० । ३ 'सर्वोपद्रवमुल्बणम्' पा० ।

जम्बीर के रस में दृढ़ता से मर्दन करे। इसको नेत्रों में आंजे तो सब उपद्रवों से युक्त सान्निपात भी दूर होता है।

विशेष वचन—रसेन्द्रचिन्तामणि में 'जम्भवारिणा च सुपेषितम्' के स्थान पर 'जम्भवारिपिष्टं दिनाष्टकम्' यह पाठ है और यही अधिक अच्छा है। इसके अनुसार आठ दिन जम्बीर के रस से पीसना चाहिये। जयपाल की तीक्ष्णता इससे बहुत कम हो जायगी और नेत्रों को हानि न पहुंचेगी। रसकामधेनु में तो 'सूतं च तीक्ष्णकं गन्धमेकांशं' ऐसा पाठ है। वहां पिप्पली नहीं है ॥ ६२ ॥

अञ्जनो रसः—

गन्धेशं लशुनाम्भोभिर्मर्दयेद् याममात्रकम् ।
तस्योदकेन संयुक्तं नस्यं तत् प्रतिबोधकृत्[1] ।
मरिचेन समायुक्तं हन्ति तन्द्राप्रलापकम्[2] ॥ ६३ ॥

शुद्ध पारा तथा शुद्ध गन्धक को समभाग लेकर कज्जली बनावें और लहसन के स्वरस में एक पहर घोटें। शुष्क होने पर शीशी में रखें। इसको लहसन के ताज़ा स्वरस से मिला कर नस्य दें तो सान्निपात की मूर्च्छा से रोगी जाग जाता है। इसी रस में काली मिरचों का चूर्ण मिला कर नस्य दें तो तन्द्रा और प्रलाप को दूर करता है।

विशेष वचन—इसे ताज़ा भी तुरन्त बनाके दे सकते हैं। कज्जली बनी रखी हो तो केवल लहसन के रस से देने से भी संज्ञालाभ होता है। तन्द्रा तथा प्रलाप—जिसे डाक्टर डिलीरियम Delirium कहते हैं—में यह अञ्जन रस अच्छा काम करता है। रसेन्द्रचिन्तामणि प्रभृति में इस का नाम 'मोहान्धसूर्य रस' है ॥ ६३ ॥

अञ्जनो रसः (प्रकारभेदेन)—

वाह्लीकं रसकं तुत्थं कर्पूरं मृतशुल्वकम् ।
कासमर्दरसैर्मर्द्यं दिनार्द्धं वटकीकृतम् ।

---

१ 'प्रतिबोधयेत्' पा०। २ 'तन्द्राप्रलापकान्' पा०।

अञ्जनं ज्वरदाहघ्नं सर्वदोषनिसूदनम् ॥ ६४ ॥

हींग, रसक अर्थात् शुद्ध खपरिया, शुद्ध नीलाथोथा, कर्पूर, ताम्रभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें । कसौंदी के रस से आधा दिन मर्दन करके गोली वा वर्त्ति बना लें । इसको घिसकर अञ्जन करें तो ज्वर दाह को कम करता तथा सर्व दोषों को दूर करता है ॥ ६४ ॥

त्रैलोक्यसुन्दरो रसः—

रसगन्धकयोर्माषौ प्रत्येकं कज्जलीकृतौ ।
शक्रश्च मुषली चैव धुस्तूरं केशराजकम् ॥ ६५ ॥
देवदाली जयन्ती च तथा मण्डूकपर्णिका ।
एषां पत्ररसैः शाणैः शिलायां खल्लयेत् पुनः ॥ ६६ ॥
शोषयित्वा वटी कार्य्या त्वनेका राजिकोपमा ।
त्रिदोषजं ज्वरं हन्ति तथा प्रचलकोष्ठकम् ॥ ६७ ॥
तप्ते तु नारिकेलस्य जलं देयं प्रयत्नतः ।
यदा वटी न कार्य्या तु तदा खाद्या तु रक्तिका ।
त्रैलोक्यसुन्दरो नाम सन्निपातहरो रसः ॥ ६८ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; दोनों को दो २ माषा (२४ रत्ती) लेकर कज्जली करे । फिर कुटज, मूसली, धतूरा, केशराज, बन्दालडोडा, जयन्ती, मण्डूकपर्णी; इनके पत्तों के रस पृथक् शाण (आधा २ तोला) लेकर क्रमशः खरल करे। इसकी राई के समान गोलियां बना रखे । ये गोलियां त्रिदोषज ज्वर को तथा दस्तों को बन्द करती हैं । ताप अधिक हो तो नारियल का पानी देना चाहिये । यदि गोली न बनानी हों तो एक २ रत्ति भर मात्रा देने से सन्निपात दूर होता है । यह त्रैलोक्यसुन्दर रस है ।

विशेषवचन—इसकी मात्रा एक रत्ति की ही देवे । किसी पुस्तक में " प्रबलकोष्ठकम् " पाठ भी छपा है । परन्तु अन्य रसग्रन्थों में "प्रचलकोष्ठकम् " यह पाठ है और यह ठीक भी है ॥ ६५—६८ ॥

स्वच्छन्दभैरव रसः—

रसगन्धकयोः शाणं प्रत्येकं कज्जलीकृतम् ।
सुवर्णमाक्षिकं शाणं शुद्धञ्चैकत्र कारयेत् ॥ ९९ ॥
रुद्रजटा निसिन्धुश्च नागदाऽऽमलकी तथा ।
विषकण्टालिका चैषां स्वरसं शाणमात्रकम् ॥ १०० ॥
दत्त्वा संशोध्य सम्मर्द्य कार्य्या मुद्गसमा वटी ।
आर्द्रकस्य रसैः पेया जीरकश्चानु भक्षयेत् ॥ १०१ ॥
स्वच्छन्दभैरवाख्योऽयं सन्निपातोग्रयहृन्मतः ।
ग्रहणीसूतिकातङ्कं नाशयेदविचारतः ॥ १०२ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक एक २ शाण (आधा तोला) लेकर कज्जली करे। स्वर्णमाक्षिकभस्म एक शाण उसी में डालकर घोटे । फिर रुद्रजटा अर्थात् ईश्वरीलता, संभालू, हरड़, आमला विषकांटलीवृक्ष; इनका स्वरस एक २ शाण पृथक् २ डालकर खरल करें । मूंग के समान गोली बनावें । एक गोली को अदरक के रस से खाकर ऊपर से जीरा (थोड़ा भुना) चबावें । यह स्वच्छन्द-भैरव रस सन्निपात की उग्रता को कम करता है और ग्रहणी तथा सूतिकारोग को दूर करता है ।

विशेष वचन—इसमें 'नागदामलकी तथा' ऐसा पाठ है । नागदा का अर्थ हरड़ किया गया है । परन्तु निघण्टु में ऐसा कोई शब्द हरड़ का वाचक नहीं है । इसके स्थान पर टीकाकारों ने 'नागं दमनकं तथा' और 'बला मदनकं तथा ' ये दो पाठान्तर बताये हैं । यदि ध्यान से देखा जाय तो दोनों का अभिप्राय एक ही है । 'नाग' नागबला का वाचक भी है । दमनक का पर्याय मदनक भी है । दमनक दौणा को कहते हैं ॥ ९९—१०२ ॥

अथ शीताङ्गसन्निपातलक्षणम्—

शीतं शरीरं शीताङ्गे छर्द्यतीसारकम्पनम् ।
क्षुद्विघातोऽङ्गमर्दश्च हिक्का श्वासः क्लमोऽरतिः ।

सर्वाङ्गशिथिलत्वश्च सन्निपाते प्रजायते ॥ १०३ ॥

शरीर ठण्डा हो जाये, वमन अतिसार और कंपकंपी हो, भूख नाश हो, अङ्ग टूटें, हिचकी आवे, श्वास, क्लम (अनायास थकावट), अरति (बेचैनी) हो, सब अङ्ग शिथिल हो जायें—ऐसे लक्षण हों तो समझें शीताङ्ग-सन्निपात है।

विशेषवचन—तेरह प्रकार के सन्निपातों में एक शीताङ्ग सन्निपात भी है। आगे आनन्दभैरवी वटी में शीताङ्गसन्निपात का नाम लिया है। अत एव उसका लक्षण पहिले कह दिया है। इसकी अवधि तन्त्रान्तर के 'पक्षमेकं तु शीताङ्गे' इस वचन के अनुसार १४—१५ दिन की समझनी चाहिये ॥१०३॥

आनन्दभैरवो रसः—

हिङ्गुलश्च विषं व्योषं मरिचं टङ्कणं कणा।
जातीकोषसमं चूर्णं जम्बीरद्रवमर्दितम्।
रक्तिमानां वटीं कुर्यात् खादेदार्द्रकसंयुताम् ॥ १०४ ॥
वटीद्वयं त्रयं वापि सान्निपाते सुदारुणे।
ज्वरमष्टविधं हन्ति तथाऽतीसारनाशनः ॥ १०५ ॥
जीर्णज्वरहरश्चैव तथा सर्वाङ्गभेदहा[1]।
आमवातादिरोगश्च नाशयेदविकल्पतः ॥ १०६ ॥

शुद्ध शिंगरफ, शुद्ध विष, सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध सुहागा, मरिचचूर्ण, पिप्पली चूर्ण, जावित्री चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर जम्बीरी नीबू के रस में पीसें और एक रत्ति प्रमाण की गोली बनावें। रोगी इसे अदरक के रस से खावे। भयंकर सान्निपात में इसकी दो वा तीन गोली तक (दिन में) दे सकते हैं। इससे आठों प्रकार का ज्वर तथा अतीसार नष्ट होता है। यह जीर्ण-

---

१ 'सर्वाङ्गभेदकः' इति पाठः प्रचरति। केनचित् 'सर्वाङ्गभेदकम्' इति पाठोऽत्र स्वीकृतः।

ज्वर को भी हरता है। सम्पूर्ण देह की वातिक वेदना का नाशक है। आमवात आदि रोगों को भी निश्चित नाश करता है।

विशेषवचन—इस योग में मरिच और पिप्पली पृथक् भी पढ़ी हैं और व्योष (त्रिकटु) के अन्तर्गत भी हैं अतः दो वार कही जाने से इनके दो दो भाग लिये जांयगे। यदि 'व्योष' न पढ़ा जाय तो यही 'अमृतमञ्जरी' है ॥ १०४–१०६ ॥

आनन्दभैरवी वटिका—

विषं त्रिकटुकं गन्धं टङ्कणं मृतशुल्बकम् ।
धुस्तूरस्य च बीजानि हिङ्गुलं नवमं स्मृतम् ॥ १०७ ॥
एतानि समभागानि दिनैकं विजयाद्रवैः ।
मर्दयेत् चणकाभान्तु वटीश्चानन्दभैरवीम् ॥ १०८ ॥
भक्षयेच्च पिबेच्चानु रविमूलकषायकम् ।
सव्योषं हन्ति नो चित्रं सन्निपातं सुदारुणम् ॥ १०९ ॥
शीताङ्गे सन्निपाते वा सामान्ये वा त्रिदोषजे ।
धन्याक-पिप्पली-शुण्ठी–कटुकी–कण्टकारिका–
क्काथं पिप्पलीसंयुक्तं चतुर्गुञ्जा च पर्पटी ।
सन्निपातज्वरं हन्ति वटिकाऽऽनन्दभैरवी ॥ ११० ॥
मूलञ्च कटुरोहिण्याः समं बिल्वं सजीरकम् ।
दध्ना पिष्टं पिबेच्चानु वटीं चानन्दभैरवीम् ।
सन्निपातातिसारघ्नीं पथ्यं शाकविवर्जितम् ॥ १११ ॥
आनन्दभैरवीं दत्त्वा क्काथं वरुणसम्भवम् ।
पाययेदश्मरीं हन्ति सप्तरात्रात् न संशयः ॥ ११२ ॥
वागुजीसम्भवैस्तैलैर्वटीश्चानन्दभैरवीम् ।

लेहयेत् निष्कमात्रान्तु गलत्कुष्ठञ्च नाशयेत् ॥ ११३ ॥
दधिमस्तुसिताक्षौद्रैः वटीञ्चानन्दभैरवीम् ।
भक्षयेत् मूत्रकृच्छ्रार्त्तो यवक्षारसिताऽन्विताम् ॥ ११४ ॥
गोदुग्धं क्वथितञ्चानु शीतलं मधुना पिबेत् ।
गुञ्जामूलं पिबेत् क्षीरैरनुपानं प्रशस्यते ॥ ११५ ॥
अनेन चानुपानेन वटिकाऽऽनन्दभैरवी ।
देया रुद्रजटाक्षौद्रैः सर्वमेहप्रशान्तये ॥ ११६ ॥

शुद्ध विष, सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पलीचूर्ण, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, ताम्रभस्म, शुद्ध धतूरे के बीज, शुद्ध हिंगुल; ये नौ द्रव्य समभाग लेकर एक दिन भांग के रस में खरल करके चने के समान गोली बनावें। इसका नाम आनन्दभैरवी वटी है। इस गोली को खाकर ऊपर से आक की जड़ का क्वाथ त्रिकुटे का चूर्ण मिलाकर पीवे तो भयानक सन्निपात दूर होता है। शीताङ्ग सन्निपात में अथवा सामान्य सन्निपात में आनन्द भैरवी वटी एक तथा रसपर्पटी चार रत्ती को मिलाकर धनियां, पिप्पली, सोंठ, कटुकी, छोटी कटेरी; इनके क्वाथ में पिप्पलीचूर्ण का प्रक्षेप देकर उसके अनुपान से रोगी को सेवन करावें। इससे सन्निपातज्वर नष्ट हो जायग। कुटकी की जड़, बेलगिरी और जीरा; इन्हें दही में पीसकर आनन्द भैरवी के पीछे पीवे तो सन्निपातज अतीसार शान्त होता है। इसमें शाक छोड़ देवे और अन्य पथ्य खावे। आनन्दभैरवी को सेवन करा ऊपर से वरुणत्वक् का क्वाथ पिलावें तो सात दिन में पथरी दूर हो जाती है-इसमें संशय नहीं। बाबची के तेल से आनन्द भैरवी वटी को एक निष्क भर चाटे तो गलत्कुष्ठ दूर हो जाता है। आनन्द-भैरवी वटी को यवक्षार और खांड के साथ पीसकर दही का पानी मिश्री और शहद इस अनुपान के साथ सेवन करे तो मूत्रकृच्छ्र रोग दूर हो जाता है। अनुपान के लिये (प्रमेह में) गौ के दूध को उबाल कर ठण्डा करले उसमें शहद मिला ले। अथवा रत्तियों की जड़ के चूर्ण को दूध से पीवे। ईश्वरीलता

चूर्ण और शहद के साथ आनन्दभैरवी वटी को मिला कर चाटे और उक्त अनुपान पीवे तो सब प्रमेह नष्ट होते हैं।

विशेषवचन—आनन्दभैरवी वटी को आजकल ज्वर आदि में सामान्यतः १ रत्ती मात्रा में प्रयुक्त कराया जाता है। गलत्कुष्ठ आदि अति बलवान् रोग में इसे इससे बड़ी मात्रा में भी प्रयुक्त कराया जासकता है ॥ १०७—११६ ॥

प्राणेश्वरो रसः—

शुद्धसूतं तथा गन्धं सूतार्द्धविषसंयुतम्[1] ।
समस्तं[2] मर्दयेत् तालमूलीनीरैस्त्र्यहं बुधः ॥ ११७ ॥
पूरयेत् कूपिकां[3] तां च सन्निरुध्य[4] विशोषयेत् ।
सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैर्वेष्टायित्वा तु शोषयेत्[5] ॥ ११८ ॥
पुटेत्[6] कुम्भीप्रमाणेन[7] स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
गृहीत्वा कूपिकायाश्च मर्दयेच्च दिनं ततः ॥ ११९ ॥
अजाजी जीरकं हिङ्गु-सर्जिकाटङ्कणैर्युतम्[8] ।
गुग्गुलुः पञ्चलवणं यवक्षारो यमानिका ॥ १२० ॥
मरिचं पिप्पली चैव प्रत्येकञ्च[9] समांशतः ।
एषां कषायेण पुनर्भावयेत् सप्तधाऽऽतपे ॥ १२१ ॥
नागवल्लीदलयुतं पञ्चगुञ्जं रसेश्वरम् ।
दद्यात् नवज्वरे तीव्रे कोष्णं वारि पिबेदनु ॥ १२२ ॥

---

१ 'मृताभ्रं विषसंयुतम्' इति भैषज्यरत्नावलीस्थितः पाठः। २ 'समं तत्' पा०। ३ 'कूपिकान्ते च' 'कूपिकान्तश्च' 'कूपिकान्तेन' पा०। ४ 'मुद्रयित्वा च शोषयेत्' पा०। ५ 'शोधयेत्' पा०। ६ 'पुटेत्तत्कुम्भपात्रेण' इति क्वचित्पाठः। ७ 'कुण्डप्रमाणेन' पा०। ८ 'टङ्कणं च यत्' 'टङ्कणं जगत्' पा०। ९ 'प्रत्येकं रसमानतः' पा०।

प्राणेश्वररसो नाम्ना सन्निपातप्रकोपजित् ।
शीतज्वरे दाहपूर्वे गुल्मे शूले त्रिदोषजे ॥ १२३ ॥
वाञ्छितं भोजनं दद्यात् कुर्य्याच्चन्दनलेपनम् ।
तापोद्रेकप्रशमनो नानाऽतीसारनाशनः ।
भवेच्च नात्र सन्देहः स्वास्थ्यञ्च लभते नरः ॥ १२४ ॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक एक भाग, शुद्ध विष आधा भाग ले। पहले पारे गन्धक की कज्जली बनालें, फिर विषचूर्ण मिला के मूसली के रस से तीन दिन खरल करें पश्चात् उसे एक काचकूपी में डाल दें और उस कूपी का मुंह बन्द कर दें तथा कूपी पर सात कपड़मिट्टी करके सुखा लें गजपुट की आंच देकर स्वांगशीतल होने पर निकाल लें और दिन भर पीसें। फिर कालाजीरा, श्वेतजीरा, हींग, सज्जी, सुहागा, गूगल, पांचों नमक, यवक्षार, अजवायन, मिरच, पिप्पली; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। कुल मिला कर उतना लें जितनी काचकूपी में से दवाई निकली है। उससे दश गुणा जल डाल कर पकावें शेष आठवां भाग बचने पर उतारें। कूपी से निकली दवाई में इस क्वाथ की भावना देवें। सात वार भावना देकर धूप में सुखावें। इस रस को पांच रत्ती मात्रा में लेकर पान के पत्ते में रख नये तेज ज्वर में दें और अनुपान में गर्म पानी पिलावें। इससे ज्वर का वेग कम हो जायगा। यह प्राणश्वेर रस सान्निपात के प्रकोप को दूर करता है। दाहपूर्व शीत ज्वर में (वह ज्वर जिस में पाहिले दाह हो और पश्चात् रोगी शीत का अनुभव करे) अथवा शीतपूर्व ज्वर और दाहपूर्व ज्वर, गुल्म और त्रिदोषज शूल में लाभ करता है। इसके सेवन के समय रोगी पथ्य में यथेष्ट भोजन कर सकता है, (और यदि ताप अधिक हो तो) शरीर या माथे पर चन्दन का लेप करे। यह रस ताप की अधिकता को कम करता है और नानाप्रकार के अतीसार को नष्ट करता है—इसमें सन्देह नहीं, और रोगी नीरोग हो जाता है।

---

१ 'बलाधिष्ठानकारकम्' पा०। 'बालभाषणगायनैः' इति रसराजसुन्दरे पाठः।

विशेष वचन—काचकूपी को सब से पूर्व ही सात कपड़मिट्टी करके तय्यार कर रखना चाहिये। पश्चात् इसमें औषध डाल मुख को भी बन्द करदें और अच्छीप्रकार धूप में सुखा दें। इस काचकूपी को वालुकायन्त्र में रखे। कूपिका के मुख के ऊपर भी वालुका होनी चाहिये। वालुकायन्त्र के मुख को शराव देकर मिट्टी से लीप दें। पश्चात् गजपुट दें। इस प्रकार पुट देना उत्तम होगा।

पञ्चलवण से सैन्धव सामुद्र विड सौवर्चल और औद्भिद नमक लिये जाते हैं। प्रत्येक नमक जीरा आदि द्रव्य के समभाग होगा।

यद्यपि भावना के नियम के अनुसार क्वाथ्य द्रव्यों से आठ गुना जल दिया जाता है और अष्टमांश बचाया जाता है परन्तु यहां क्वाथ्य द्रव्यों में हींग, तीनों क्षार, गुग्गुलु, पांचों नमक; ऐसे द्रव्य हैं जो घुल जाते हैं और उक्त प्रमाण में जल देने से क्वाथ ठीक नहीं होता। अतः वैद्य यहां क्वाथ्यद्रव्य से दस गुणा जल डालकर अष्टमांश रखने को कहते हैं।

इस रस की आधुनिक मात्रा $\frac{1}{2}$ रत्ती से २ रत्ती तक पर्याप्त होगी।

भैषज्यरत्नावली के पाठ के अनुसार ('सूतार्द्ध' के स्थान पर 'मृताभ्रं') पारा गन्धक अभ्रकभस्म और वत्सनाभ समभाग लिये जांयगे। तब 'समं तत्' यह पाठ भी ठीक रहेगा।

इसीप्रकार 'टङ्कणैर्युतम्' के स्थान पर 'टङ्कणं जगत्' पाठ है। जगत् से फिटकरी का ग्रहण है। 'प्रत्येकं च समांशतः' के स्थान पर 'प्रत्येकं रसमानतः' ऐसा पाठ है। जिसका अर्थ यह है कि प्रत्येक क्वाथ्य द्रव्य पारद के तुल्य लेना चाहिये।

रसरत्नसमुच्चय में जो प्राणेश्वर रस है वह इसप्रकार है—पारद, गन्धक, अभ्रकभस्म को समान भाग में लेकर वाराहीकन्द के रस से मर्दन करें। पश्चात् वालुकायन्त्र में पकावें। फिर औषध को निकाल पीसकर पारद के समान त्रिफला, त्रिकटु, चित्रक, तीनों क्षार, पांचों नमक, हींग, शुद्ध गूगल, अजवाइन, जीरा, इन्द्रजौ; इन २० द्रव्यों का चूर्ण मिलावें। इसे एक माषक

प्रमाण में २ पल गरम जल के अनुपान से सेवन कराने को लिखा है। इसका प्रयोग अभिन्यास, अग्निमान्द्य, संग्रहणी, पाण्डु तथा गुल्म में करने को कहा है। रोग की प्रबलता में दिन में दो बार देना चाहिये ॥ ११७—१२४ ॥

सन्निपातभैरवरसः—

ताम्रं गन्धं रसं श्वेत–गुञ्जामरिचभूतनाः ।
समीनपित्तजैपालान् तुल्यानेकत्र मर्दयेत् ॥ १२५ ॥
गुञ्जाचतुष्टयञ्चास्य नवज्वरहरं परम् ।
ज्वराङ्कुशः सन्निपात–भैरवोऽयं प्रकाशितः ॥ १२६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, शुद्ध सफेद रत्ती का चूर्ण, मरिच चूर्ण, हरड़ चूर्ण, शुद्ध मछली का पित्त, शुद्ध जमालगोटा; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें। फिर सबको एकत्र पीस लें। इसकी चार रत्ति भर की मात्रा नये ज्वर को दूर करती है। यह सन्निपातभैरवरस ज्वरनाशक है।

विशेषवचन—मात्रा एक रत्ति की पर्याप्त है। यह रस अत्यन्त उष्णवीर्य है। इसे तीव्र मलबन्ध युक्त ज्वर में देना चाहिये। यह विरेचन है और पसीना लाता है ॥ १२५—१२६ ॥

शीतभञ्जीरसः—

रसो हिङ्गुलगन्धश्च जैपालं सम्मितं त्रिभिः ।
दन्तीक्वाथेन संमर्द्य रसो ज्वरहरः परः ॥ १२७ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव दापयेद्रक्तिकाद्वयम् ।
नवज्वरं महाघोरं नाशयेद् याममात्रतः ॥ १२८ ॥
शर्करा दधिभक्तञ्च पथ्यं देयं प्रयत्नतः ।
शीततोयं पिबेच्चानु इक्षुमुद्गरसो हितः ।
शीतभञ्जी रसो नाम सर्वज्वरकुलान्तकः ॥ १२९ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लें। शुद्ध जमालगोटा तीनों के समान अर्थात् तीन तोला लें। पहले पारा और गन्धक की कज्जली करें। फिर हिङ्गुल मिलाकर घोटें। पश्चात् जमालगोटा डालकर दन्तीमूल के क्वाथ से मर्दन कर दो रत्ति भर की गोली बना लें। इसे अदरक के रस के साथ देने से महाघोर नये ज्वर का ताप एक पहर में कम हो जाता है। पथ्य में खांड, दही और चावल देना चाहिये। गरमी प्रतीत हो अथवा प्यास हो तो ठण्डा जल, गन्ने का रस वा मूंग का रस हितकारी है। यह शीतभञ्जी रस सब ज्वरों का नाशक है।

विशेषवचन—मात्रा ½ रत्ति से एक रत्ती की उचित है। हिङ्गुल के स्थान पर यदि काली मिर्च हो तो उसे श्रीराम रस कहते हैं। रसेन्द्रचिन्तामणि तथा भैषज्यरत्नावली में इस रस के पाठ की प्रथम पङ्क्ति 'रसं हिङ्गुलगन्धं च जैपालं च समं समम्' इस प्रकार है। जिसके अनुसार जमालगोटा भी एक भाग लेना चाहिये। तब इस रस की मात्रा १ रत्ती की होगी ॥ १२७—१२६ ॥

उन्मत्तरसः—

रसं गन्धञ्च तुल्यांशं धुस्तूरफलजैर्द्रवैः ।
मर्दयेत् दिनमेकन्तु तुल्यं त्रिकटुकं क्षिपेत् ॥
उन्मत्ताख्यो रसो नाम नस्ये स्यात् सन्निपातजित् ॥ १३० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक एक २ तोला लेकर कज्जली करे और धतूरे के फल के रस से दिन भर घोटे। फिर सोंठ चूर्ण दो तोला, पिप्पली चूर्ण दो तोला तथा मिरच चूर्ण दो तोला डालकर मर्दन करे। इसको उन्मत्तरस कहते हैं। इसकी नस्य दें तो सान्निपात की मूर्च्छा हटती है ॥ १३० ॥

सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति रोगिणम् ।
कस्तेन न कृतो धर्म्मः काञ्च पूजां न सोऽर्हति ? ॥ १३१ ॥

सन्निपात रूपी समुद्र में डूबे हुए रोगी को जो बचाकर बाहर निकाल देता है उसने किस धर्म का पालन नहीं किया और किस पूजा के वह योग्य नहीं ? ॥ १३१ ॥

मृतसञ्जीवनो रसः—

म्लेच्छस्य भागाश्चत्वारो जैपालस्य त्रयो मताः ।
द्वौ भागौ टङ्कणस्यैव भागैकममृतस्य च ॥ १३२ ॥
तत्सर्वं मर्द[1]येत् श्लक्ष्णं शुष्कं यामं भिषग्वरः ।
शृङ्गवेराम्बुना देयो व्योषचित्रकसैन्धवैः ॥ १३३ ॥
मा[2]षद्वयमितस्तापं हरत्येष विनिश्च[3]यः ॥ १३४ ॥
[4]घनसारेण सारेण चन्दनेन विलेपनम् ।
निद[5]ध्यात् कांस्यपा[6]त्रं च दाहयुक्तं च वीजयेत् ।
शाल्यन्नं तक्रसहितं भोजयेदि[7]क्षुसंयुतम् ॥ १३५ ॥
सन्निपाते महाघोरे त्रिदोषे विषमज्वरे ।
आमवाते वातशूले गुल्मे प्लीह्नि जलोदरे ॥ १३६ ॥
शीतपूर्वे दाहपूर्वे विषमे सं[8]ततज्वरे ।
अग्निमान्द्ये च वाते च प्रयोज्योऽयं रसे[9]श्वरः ।
मृतसञ्जीवनो नाम विख्या[10]तोऽयं रसायने ॥ १३७ ॥

विशुद्ध हिङ्गुल चार तोला, शुद्ध जमालगोटा तीन तोला, शुद्ध सुहागा दो तोला, शुद्ध विष एक तोला; इन सबको खरल में शुष्क ही अतिसूक्ष्म करके पीस ले अथवा अदरक के रससे पीसे[11] ले। इसको सोंठ, मिरच, पिप्पली,

---

१ ‘ मर्द्य ’ पा० । २ ‘ यामद्वयमितस्तापं ’ पा० । ३ ‘ न संशयः ’ पा० । ४ ‘ घनसारससारेण ’ पा० । ५ ‘विदद्यात् ’ पा० । ‘विदध्यात् कांस्यपात्रे च सेचयेद्रोगिणं भिषक्’ इति पाठः प्रचरति । ६ ‘ कांस्यपात्रेण वीजयेद् ’ पा० । ७ ‘ भोजयेदिन्दुसंयुतम् ’ पा० । ८ ‘सन्ततज्वरे’ पा० । ९ ‘रसोत्तमः’ पा० । १० ‘ विख्यातो रससागरे ’ पा० ।

११ ‘ विषटङ्कणजैपालहिङ्गुलानि विमर्दयेत् ।
क्रमवृद्धानि यामैकं शुण्ठीवार्भिश्च शोषयेत् ॥’ इत्यादि रसराजसुन्दरे

चीता, सेंधानमक; इनके चूर्ण से मिलाकर दो उड़द मात्रा में अदरक के रस से दें तो निश्चय से ज्वर के ताप को कम करता है। यदि दाह अधिक हो तो कर्पूर और मक्खन मिलाकर अथवा चन्दन को शीतलजल में घिसकर शरीर और मस्तक आदि पर लेप करें। कांसी के पात्र को नाभि पर रखकर उसमें शीतल जल की धारा गिरावें[1] और पङ्खा करें। शालीचावल छाछ सहित खिलावें अथवा गन्ने के रस के साथ दें। महाघोर सन्निपात, त्रिदोष विषमज्वर, आमवात, वातशूल, गुल्म, तिल्ली, जलोदर, शीतपूर्व विषमज्वर, दाहपूर्व विषमज्वर, सततज्वर, अग्निमान्द्य और वातरोगों में इसे प्रयोग कराना चाहिये। यह मृतसञ्जीवन नाम का रस रसायन में प्रसिद्ध है।

विशेषवचन—यद्यपि म्लेच्छ का अर्थ ताम्र भी होता है परन्तु भैषज्यरत्नावली में उक्त 'हिङ्गुलभागाश्चत्वारः' इस पाठान्तर से यहां 'म्लेच्छ' से हिङ्गुल ही लेना चाहिये। इस रस की गोलियां अदरक के रस के साथ पीस कर बनायी जासकती हैं। आधुनिक मात्रा १ रत्ती है। प्रयोग के समय सोंठ आदि का मिलित चूर्ण ४ रत्ती मिला सकते हैं॥ १३२—१३७॥

स्वल्पबडवानलरसः—

शुद्धताम्रस्य भागैकं मरिचस्य तथैव च।
विषं तत्तुल्यकं दद्यात् तत्सर्वं श्लक्ष्णचूर्णितम्॥ १३८॥
लाङ्गलीरससंयुक्तं तत्सर्वं पुटके पचेत्।
रक्तिकाद्वितयं वाऽपि त्रितयं वा प्रकल्पयेत्॥ १३९॥
दोषे व्योषसमायुक्तो त्रिदोषशमनो भवेत्।
भक्षयेत् पवने चोग्रे बडवानलसंज्ञितम्॥ १४०॥

ताम्रभस्म एक भाग, मरिचचूर्ण एक भाग, शुद्ध विष एकभाग; तीनों को लाङ्गली अर्थात् कलिहारी के रस के साथ खरल करके लघुपुट में पाक करे।

१ अन्यत्राप्युक्तं 'उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्रकांस्यादिपात्रं विनिधाय नाभौ। तत्राम्बुधारा बहुला पतन्ती निहन्ति दाहं त्वरितं सुशीता॥'

दोष के अनुसार इसकी दो रत्ति या तीन रत्ति की मात्रा त्रिकुटा के साथ देने से तीनों दोष शान्त होते हैं । वात बहुत बढ़ी हो तो रोगी इसे सेवन करे । इसका नाम स्वल्पबडवानल रस है ।

विशेषवचन—इसकी आधुनिक मात्रा $\frac{1}{8}$ से आधी रत्ति तक समझनी चाहिये ॥ १३८-१४० ॥

बृहद्बडवानलो रसः--

सूतकं गन्धकश्चैव हरितालं मनःशिला ।
अभ्रकं वत्सनाभश्च दारु जङ्गमजं विषम् ॥ १४१ ॥
जैपालात् सार्द्धशतकं सर्वं सञ्चूर्ण्य मर्दयेत् ।
मत्स्यमाहिषमायूरच्छागपित्तैर्विभावयेत् ॥ १४२ ॥
वटिकां शीततोयेन कुर्य्यात् गुञ्जाप्रमाणतः ।
बडवानलनामायं नारिकेलजलेन वै ।
भक्षयेत् सन्निपातार्त्तो मुक्तस्तस्मात् सुखी भवेत्[1] ॥ १४३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध मनसिल, अभ्रकभस्म, शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध संखिया, शुद्ध सर्पविष; प्रत्येक एक एक तोला लें, शुद्ध जमालगोटे के बीज डेढ़ सौ लें । पारा गन्धक की कज्जली करें । फिर अन्य द्रव्य मिला रोहू मछली, भैंस, मोर, बकरी; इनके पित्तों से भावनायें दें और शुष्क होने पर शीतल जल से घोट कर एक २ रत्ती की गोली बना लें इस रस का नाम बडवानल रस है । नारियल के जल के अनुपान से सन्निपात का रोगी सेवन करे ।

विशेष वचन—इस रस के बनाने में वैद्य को अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिये । जो इसकी गोलियां बनावे उसके हाथ वा अंगुली पर किसी प्रकार का छोटा सा भी क्षत न होना चाहिये । रस को बनाने के पश्चात् हाथों को अच्छी तरह धो लेना चाहिये ।

१ 'मृत्युरस्यासुखीभवेत्' पा० । आसुखीभवेत् परावृत्तमुखो भवेदित्यर्थः ।

संखिया का शोधन पूर्व नहीं कहा गया अतः यहां एक या दो विधियों का कहना अनुचित न होगा। संखिया की डली के छुद्रकण वा चूर्णित करके चौलाई के रस में दिन भर दोलायन्त्र द्वारा पकावे तो वह शुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार बकरी के दूध वा गौ के दूध में भी शोधन कर सकते हैं। कई कांजिक में शोधन करते हैं।

जङ्गमाविष से प्रधानतः सर्पविष लिया जाता है। यह विष भी कृष्णसर्प का होना चाहिये। इसका शोधन निम्न प्रकार से किया जाता है— एक सीप में कृष्णसर्प विष और उससे चौथाई सरसों का तेल डाल कर ... में रख देते हैं। यह पीले रंग का हो जाता है। तब इसे औषधों में प्रयुक्त करते हैं।

बृहद्वडवानल रस की मात्रा छोटी सरसों वा राई के बराबर समझनी चाहिये। इस रस का प्रयोग तभी होता है जब रोगी मरणासन्न हो—उसके बचने की आशा न हो। यदि आधे घण्टे तक रोगी निःसंज्ञ रहे तो पुनः एक गोली दे सकते हैं। यदि रोगी होश में आजाय, नेत्र और मुख लाल हो जांय, तापमान अत्यन्त तीव्र हो, नाडी प्रबल हो जाय तो पुनः यह रस न दें और उसे शीतल जल से स्नान करायें अथवा शीतल जल से भीगा कपड़ा रोगी के देह पर और मस्तक पर रखें। पथ्य दही चावल दें। सर्पविषयुक्त औषधों के प्रयोग में यही नियम है ॥ १४१-१४३ ॥

सूचिकाभरणो रसः—

**रसगन्धकनागश्च विषं स्थावरजङ्गमम् ।
मात्स्यवाराहमायूर-च्छागपित्तैर्विभावयेत् ॥ १४४ ॥
सूचिकाभरणो नाम भैरवेण प्रकीर्त्तितः ।
सूचिकाग्रेण दातव्यः सन्निपातनिबर्हणः ॥ १४५ ॥**

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, नागभस्म, शुद्ध मीठा तेलिया, शुद्ध सांप का विष; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारे और गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्यों को मिलाकर खरल करें और मछली सूअर मोर और

हों। परन्तु यदि प्राप्त न हो सकें तो उन में से जो पित्त मिलें उन से ही भावना देकर कार्य चलावें।

विशेष वचन—वस्तुतः यह पाठ रसराजेन्द्र रस के बाद होना चाहिये। तन्त्रान्तरों में उसी रस के साथ पढ़ा है। लेखक के प्रमाद से यहां लिखा गया है। इससे ऊपर के और इससे नीचे के योग में पित्त का नाम भी नहीं है। हां उस के बाद कहे जाने वाले चन्द्रशेखर रस में एक पित्त की भावना है। अथवा इसे सन्निपातसूर्य रस के बाद पढ़ना चाहिये। रसेन्द्राचिन्तामणि में सन्निपातसूर्य रस में ही कहा है। अभिप्राय यह है कि पित्त का प्रकरण तो होना चाहिये। भावनार्थ जो पित्त प्रयुक्त होते हैं वे आगे कहे जाने वाले स्वच्छन्दनायक रस में कहे जांयगे। हम पित्तवर्ग की टीका में पूर्व भी कह आये हैं॥ १६७॥

वेतालो रसः—

रसं गन्धं विषञ्चैव मरिचाऽऽलं समांशिकम्[1]।
शिलायां[2] मर्दयेत् तावद् यावज्जायेत कज्जलम्॥ १६८॥
गुञ्जामात्रं प्रयोक्तव्यं हरेद् द्वादशसंज्ञकम्।
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु सन्निपातं सुदारुणम्॥ १६९॥
दन्तपङ्क्तिर्दृढा यस्य लोचने भ्रान्ततारके।
चलिते चेन्द्रियग्रामे वेतालं विनियोजयेत्॥ १७०॥
म्लानेषु लिप्तदेहेषु मोहग्रस्तेषु देहिषु।
दातुमर्हति वेतालं यमदूतनिवारकम्॥ १७१॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक एक भाग; दोनों की पत्थर के खरल में कज्जली करे। फिर शुद्ध विष, शुद्ध हड़ताल तथा मरिचचूर्ण प्रत्येक एक २ भाग डाल कर मर्दन करे इस को वेताल रस कहते हैं। इसे एक रत्ती प्रमाण

१–'समान्विकम्' इति क्वचित्पाठः। २–'मर्दयेच्छिलया तावद्' पा०।

देने से साध्य असाध्य बारह प्रकार के सन्निपात दूर होते हैं। जिस सन्निपात-रोगी की दन्तपंक्ति जकड़कर भिच गई हों और नेत्रों की पुतलियां स्थान से भ्रष्ट होकर ऊपर चढ़ गई हों तथा सब इन्द्रियां अपनी शक्ति छोड़ चुकी हों वहां पर वेताल रस का प्रयोग करे। जब रोगी श्रीहीन, मल से लिपे शरीर-वाला, मोह-मूर्च्छाग्रस्त हो चुका हो तब वैद्य इस वेतालरस को देवे। यह मृत्यु-मुख से रक्षा करता है। (तथा ज्वर की तीव्रता को कम करता है)।

विशेषवचन—'मरिचालं' के स्थान पर भैषज्यरत्नावली में 'मरिचञ्च' पाठ है। सन्निपात १३ प्रकार के होते हैं। एकदोषप्रवृद्ध होने से तीन, दो दोष प्रवृद्ध होने से तीन, तीनों दोष बढ़े होने से एक। तथा वात पित्त कफ इन दोषों के वृद्ध मध्य और हीन भेद से छह। इनमें से जिस सन्निपात में तीनों दोष प्रवृद्ध हों उसको इस रस से साध्य नहीं माना। इस प्रकार शेष जो १२ सन्निपात बचते हैं उनमें उक्त लक्षण होने पर इस रस का प्रयोगस्थान कहा है॥ १६८—१७१॥

चन्द्रशेखरः—

शुद्धसूतं समं गन्धं मरिचं टङ्कणं तथा।
चतुस्तुल्या शिला योज्या मत्स्यपित्तेन भावयेत्॥ १७२॥
त्रिदिनं मर्दयेत् तेन रसोऽयं चन्द्रशेखरः।
द्विगुञ्जमार्द्रकद्रावैर्देयं शीतोदकं पुनः॥ १७३॥
तक्रभक्तञ्च वृन्ताकं भिषक् तत्र प्रयोजयेत्।
त्रिदिनात् श्लेष्मपित्तोत्थमत्युष्णं नाशयेत् ज्वरम्॥ १७४॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, मरिचचूर्ण, शुद्ध सुहागा; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला ले। शुद्ध मनसिल चार तोला ले। पहले कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर रोहू मछली के पित्त से तीन भावना दे और दो रत्ति प्रमाण गोली बनावे। इसे रोगी अदरक के रस से खावे। वैद्य रोगी को पथ्य में ठण्डा जल छाछ-चावल और बैंगन की भाजी दे। तीन दिन में श्लेष्मपित्तज अति उष्ण ज्वर के वेग को यह रस कम करता है।

विशेषवचन—इसकी मात्रा ½ रत्ति दें। इसे अतिसार वमन और हिक्का लक्षण हों तो प्रयोग न करावें। इस रस का गौण वर्णन पूर्व ६० श्लोक में आ चुका है॥ १७२-१७४॥

कस्तूरीभैरवो रसः—

हिङ्गुलञ्च विषं टङ्कं[1] जातीकोषफले तथा।
मरिचं पिप्पली चैव कस्तूरी च समांशिका।
रक्तिद्वयं ततः खादेत् सन्निपाते सुदारुणे॥ १७५॥

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध विष, शुद्ध सुहागा, जावित्रीचूर्ण, जायफलचूर्ण, मरिचचूर्ण, पिप्पलीचूर्ण, कस्तूरी; प्रत्येक द्रव्य को समभाग लेकर जल से खरल कर दो रत्ति प्रमाण गोली बनावें। इसे दारुण सन्निपात में दें।

विशेष वचन—इससे ज्वर की तीव्रता कम होती है। यह मस्तिष्क में खून के संचार को कम करता है तथा नाड़ी भी क्षीण नहीं होती। इसे प्रायः वातश्लेष्मज्वर वातश्लेष्मप्रधान सन्निपात ज्वर में देते हैं। अनुपान—अदरक का रस और मधु। आधुनिक मात्रा—१ रत्ती। इसे अन्यत्र स्वल्पकस्तूरी-भैरव रस नाम से कहा गया है॥ १७५॥

बृहत् कस्तूरीभैरवो रसः—

मृतं वङ्गं खर्परञ्च कस्तूरी स्वर्णतारके[2]।
एतेषां समभागेन कर्षमेकं पृथक् पृथक्।
मृतं कान्तं पलं देयं हेमसारं द्विकार्षिकम्॥ १७६॥
रसभस्म लवङ्गञ्च जातिकाफलमेव च।
वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकं दिनसप्तकम्॥ १७७॥
द्रोणपुष्परसैर्वाऽपि नागवल्ल्या रसेन च।
दत्त्वा[3] द्विचन्द्रत्रिकटू यत्नतो वटिकां चरेत्॥ १७८॥

१–'टङ्कः' पा०। २–'हिरण्यं तारतालकम्' र० रा० सु० पाठः। ३–'द्विचन्द्रो त्रिकटुर्देयो' पा०।

वातात्मके सन्निपाते महाश्लेष्मगदेषु च ।
त्रिदोषजनिते घोरे सन्निपाते सुदारुणे ॥ १७९ ॥
नष्टगर्भे नष्टशुक्रे प्रमेहे विषमज्वरे ।
कासे श्वासे क्षये गुल्मे महाशोथे महागदे ॥ १८० ॥
स्त्रीणां शतं गच्छतश्च न च शुक्रक्षयो भवेत् ।[1]
एतान् सर्वान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १८१ ॥

बङ्गभस्म एक कर्ष, खपरिया भस्म एक कर्ष, कस्तूरी एक कर्ष, स्वर्णभस्म एक कर्ष, चांदीभस्म एक कर्ष, कान्तभस्म एक पल, स्वर्णमाक्षिकभस्म दो कर्ष, रससिन्दूर दो कर्ष, लवंगचूर्ण दो कर्ष, जायफल का चूर्ण दो कर्ष; इन सब को एकत्र कर क्रमशः द्रोणपुष्पी के रस तथा पान के रस से सात २ दिन भावना दें। पश्चात् दोनों कर्पूर (कर्पूर और चीनक कर्पूर) एक २ कर्ष, सोंठ चूर्ण एक कर्ष, मरिचचूर्ण एक कर्ष, पिप्पलीचूर्ण एक कर्ष डालकर यत्नपूर्वक (एक वा दो रत्ती की) गोली बना लें। इसे वातिक सन्निपात में, महाश्लेष्मजरोगों में, त्रिदोषजनित घोर दारुण सन्निपात में, गर्भनाश में, शुक्रहीनता में, प्रमेह में, विषमज्वर में, कास श्वास क्षय गुल्म महाशोथ तथा महारोग वा अर्श में देना चाहिये। इसका सेवन करने वाला सौ स्त्री से भी भोग करे तब भी वीर्य का क्षय नहीं होता अर्थात् वृष्य है। यह रस उपर्युक्त सब रोगों को दूर करता है जैसे सूर्य अन्धकार को।

विशेष वचन—जब सर्वांग ठण्डा हो जाता है, नाड़ी बन्द होती तथा गला कफ से भर जाता है, उस समय इसे देने से रोगी की अवस्था परिवर्त्तित हो जाती है। इस रस को तन्त्रान्तर में मध्यकस्तूरीभैरव नाम से कहा है।

अन्य टीकाकार 'द्विचन्द्रत्रिकट्टू' से कर्पूर दो कर्ष और त्रिकुटा का प्रत्येक द्रव्य दो कर्ष लेते हैं।

१–'गच्छाति च' पा०।

'हेमसार' नीले थोथे को भी कहते हैं। ज्वर के योगों में नीले थोथे (तूतिया) के योग भी मिलते हैं जैसे चन्द्रसूर्य रस आदि। परन्तु वैद्य स्वर्णमाक्षिक भस्म से ही इस योग को तय्यार करते हैं। अथवा 'हेमसार' से अभिप्राय हरिताल हो सकता है। क्योंकि कनकरस काञ्चनक पिङ्गसार आदि शब्द हरिताल के वाचक निघण्टुओं में मिलते हैं॥ १७६-१८१॥

अन्यो बृहत्कस्तूरीभैरवो रसः—

मृगमदशशिसूर्या धातकी शूकशिम्बी-
कनकरजतमुक्ता विद्रुमं लौहपाठे।
क्रिमिरिपुघनविश्वा तोयतालाभ्रधात्री
रविदलरसपिष्टः कस्तुरीभैरवोऽयम्॥ १८२॥
कस्तूरीभैरवः ख्यातः सर्वज्वरविनाशनः[1]।
आर्द्रकस्य रसैः पेयो विषमज्वरनाशनः॥ १८३॥
द्वन्द्वजान् भौतिकान् वाऽपि ज्वरान् कामादिसम्भवान्।
अभिचारकृतांश्चैव तथा शस्त्रकृतान्[2] पुनः।
निहन्याद्भक्षणादेव डाकिन्यादियुतांस्तथा॥ १८४॥

कस्तूरी, कर्पूर, ताम्रभस्म, धाय के फूलों का चूर्ण, कौंच के बीजों का चूर्ण, स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, मोतीभस्म, मूंगाभस्म, लौहभस्म, पाठा चूर्ण, विडङ्गचूर्ण, मोथाचूर्ण, सोंठचूर्ण, सुगन्धबालाचूर्ण, शुद्ध हड़ताल, अभ्रकभस्म, आंवला चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। सब को मिला कर आक के पत्तों के रस से घोट कर (एक रत्ती की) गोली बनावें। यह कस्तूरी भैरव रस सब ज्वरों को नाश करता है। इसे अदरक के रस के साथ देने से विषमज्वर नष्ट होते हैं। द्वन्द्वज, भौतिक (भूतज), कामक्रोधादि से उत्पन्न ज्वर, अभिचार से उत्पन्न ज्वर, शस्त्राघात से उत्पन्न ज्वर, डाकिनी आदि से युक्त ज्वर तथा अन्य रोगों को यह नाश करता है।

१-'सर्वरोगान्तकारी' पा०। २-'शत्रुकृतान्' 'शुक्रकृतान्' पा०।

विशेष वचन—तन्त्रान्तरों में उक्त मूल पाठ के बाद निम्न पाठ भी उपलब्ध होता है—

'बिल्वचूर्णजीरकाभ्यां मधुना सह पानतः ।
आमातिसारग्रहणीं ज्वरातीसारमेव च ॥
अग्निर्दीप्तिकरः शान्तः कासरोगनिकृन्तनः[1] ।
क्षपयेद् भक्षणादेव मेहरोगं हलीमकम् ॥
जीर्णज्वरं नूतनं वा द्विकालीनञ्च सन्ततम् ।
प्रक्षिप्तं भौतिकं वापि हन्ति सर्वान् विशेषतः[2] ॥
ऐकाहिकं द्व्याहिकं वा त्र्याहिकं च[3] चतुर्थकम् ।
पञ्चाहिकं षष्ठसंस्थं पाक्षिकं मासिकं तथा ॥
सर्वान् ज्वरान् निहन्त्याशु भक्ष्यमाणमथार्द्रकैः[4] ॥

अभिप्राय यह है कि बेलगिरी का चूर्ण, श्वेत जीरे का चूर्ण और मधु इस अनुपान के साथ यदि इस रस का सेवन कराया जाय तो आमातिसार संग्रहणी और ज्वरातिसार भी हट जाता है। यह अग्नि को दीप्त करता है। कास प्रमेह और हलीमक रोग का भी नाशक है। अदरक के रस के साथ यह रस नया पुराना दिन में दोबार होने वाला सन्तत तथा ऐकाहिक आदि सब ज्वरों को नष्ट करता है। यह नाड़ीक्षीणता में लाभकर है। विसूचिका में भी यह अतीव गुणकारक है ॥ १८२–१८४ ॥

सौभाग्यवटी—

सौभाग्यामृतजीरपञ्चलवणव्योषाऽभयाक्षामला–
निश्चन्द्राभ्रकशुद्धगन्धकरसानेकीकृतान् भावयेत् ।
निर्गुण्डीयुगभृङ्गराजकवृषाऽपामार्गपत्रोल्लसत्–

१–अस्मादनन्तरं 'दुर्बलं दुर्ग्रहंवापि नाडीसूक्ष्मकृतं पुनः' इत्यधिकः क्वचित् ।
२–अस्मादनन्तरं 'हरते वातरोगं वा पाण्डुरोगं गलग्रहम्' इत्यधिकः पठ्यते तन्त्रान्तरे ।
३–'चातुराहिकम्' पा० । ४–'भक्षणादार्द्रकद्रवैः' पा० ।

प्रत्येकस्वरसेन सिद्धगुडिका हन्ति त्रिदोषोदयम् ॥ १८५ ॥
येषां शीतमतीव देहमखिलं स्वेदद्रवार्द्रीकृतं
निद्रा घोरतरा समस्तकरणव्यामोहमुग्धं मनः।
शूलश्वासबलासकाससहितं मूर्च्छाऽरुचिं तृड्ज्वरं।
तेषां वै परिहृत्य मृत्युवदनात् प्रत्यानयेत् जीवनम् ॥१८६॥

शुद्ध सुहागा, शुद्ध विष, श्वेत जीरा चूर्ण, पांचों नमक (पृथक् २) सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, हरड़ चूर्ण, बहेड़ा चूर्ण, आंवला चूर्ण, निश्चन्द्र अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारे और गन्धक की कज्जली करे। फिर सब द्रव्यों को मिला दोनों प्रकार की निर्गुण्डी (सम्भालू), भांगरा, बांसा (अडूसा), अपामार्ग; इन के पत्तों का रस लेकर प्रत्येक की भावनायें देवे। इस की (दो रत्ति प्रमाण) गोली बना के खिलाने से सन्निपात दूर होता है। जिन का देह बहुत पसीने के आने से अति ठण्डा हो गया हो, जिन को घोर निद्रा हो, जिन की समस्त इन्द्रियां अपना कार्य (ज्ञान वा कर्म) न करें और अतएव मन भी मुग्ध हो, शूल श्वास कफ कास मूर्च्छा अरुचि प्यास तथा ज्वर हो उन सब रोगियों को मृत्यु के मुख से छीन कर यह सौभाग्यवटी नया जीवन प्रदान करती है ॥ १८५–१८६ ॥

सन्निपातहरो रसः—

पारदं गन्धकं टङ्कं सोषणं गजपिप्पली।
व्योषं च धुस्तूरजलैः पिष्टं गुञ्जाद्वयं द्रुतम्।
सन्निपातं निहन्त्यर्क-कषायैर्व्योषचूर्णितैः ॥ १८७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, मरिच चूर्ण, गजपिप्पली चूर्ण, सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण; सब समभाग ले कर धतूरे के रस

१–'सिद्धवटिका घ्नन्ति त्रिदोषामयम्' पा० । २–'दाहमखिलं' पा० । ३–'समस्तकरणव्योमाहदुष्टं जयेत्' पा० । ४–'तन्द्राश्वासमतीव कसनिचितं' पा० ।

के साथ घोट कर दो रत्ति प्रमाण गोली बनावे। इस गोली को खाकर ऊपर से आक की जड़ का क्वाथ त्रिकुटा चूर्ण डाल कर पीवे तो शीघ्र सन्निपात दूर होता है। इस रस का नाम सन्निपातहर रस है।

विशेष वचन—पूर्व कहे गये पञ्चवक्त्र रस में विष के स्थान पर व्योष को बदल देने से सन्निपातहर रस हो गया है। यहां मरिच चूर्ण के दो बार पढ़े जाने से उस के दो भाग लिये जांयगे ॥ १८७ ॥

सन्निपातबडवानलो रसः—

रसाष्टको ऽमृतं सप्त स्यात् षट्को गन्धतालयोः।
दन्तीबीजानि षड्भागाः पञ्चभागन्तु टङ्कणम् ॥ १८८ ॥
चत्वारि धूर्त्तबीजस्य व्योषस्य त्रितयो भवेत्।
एतानि वह्निमूलस्य क्वाथेन परिमर्दयेत् ॥ १८९ ॥
आर्द्रकस्य रसेनाथ देयं गुञ्जाद्वयं हितम्।
बडवानलसंज्ञोऽयं सन्निपातहरः परः ॥ १९० ॥

शुद्ध पारा ८ तोले, शुद्ध विष ७ तोले, शुद्ध गन्धक ६ तोले और शुद्ध हड़ताल ६ तोला, दन्ती के शुद्ध बीज ६ तोला, शुद्ध सुहागा ५ तोला, धतूरे के शुद्ध बीज ४ तोला, सोंठ चूर्ण १ तोला, मरिच चूर्ण १ तोला, पिप्पली चूर्ण १ तोला। पहले पारे और गन्धक की कज्जली बनालें। फिर शेष द्रव्य डाल कर मर्दन कर चित्रकमूल का क्वाथ डाल कर घोटे और दो रत्ति भर की गोली बनावे। इसे अदरक के रस से खावे तो यह बड़वानल रस सन्निपात को नाश करने में श्रेष्ठ है।

विशेष वचन—आधुनिक मात्रा—१ रत्ती। यहां 'व्योषस्य' इस प्रकार षष्ठ्यन्त पढ़ने से इसकी गौणता है और मान प्रधान है अतः त्रिकटु मिला कर तीन तोला लिया जायगा। कई त्रिकटु के प्रत्येक द्रव्य को तीन तीन तोला प्रमाण में लेने को कहते हैं ॥ १८८-१९० ॥

आर्द्रकस्य रसेनैव वटी कार्य्या द्विगुञ्जिका।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं यथादोषानुसारतः।
अभ्रं ज्वरारिनामेदं सर्वज्वरविनाशनम् ॥ २१० ॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्।
विषमाख्यान् ज्वरान् सर्वान् धातुस्थान् विषमज्वरान् ॥२११॥
प्लीहानं यकृतं गुल्ममग्रमांसं सशोथकम्।
हिक्कां श्वासञ्च कासञ्च मन्दानलमरोचकम्।
नाशयेन्नात्र सन्देहो वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २१२ ॥

अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्धविष; प्रत्येक द्रव्य एक-एक तोला लें। शुद्ध धतूरे के बीज दो तोला, सोंठचूर्ण, मिर्च चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण; तीनों मिला कर पांच तोला। पहले पारे गन्धक की कज्जली बनालें। फिर अन्य द्रव्य उसमें मिला कर मर्दन कर अदरक के रस से घोट दो रत्ति भर की गोली बना लेवें। दोषानुसार भिन्न-भिन्न अनुपानों से देने से यह ज्वरारि अभ्र सब ज्वरों को अच्छा करता है।

वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, विषमज्वर, धातुगत विषमज्वर, तिल्ली, यकृत्, गुल्म, अग्रमांस, शोथ, हिचकी, श्वास, कास, मन्दाग्नि, अरुचि; इन सब रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे बिजली वृक्षों पर गिरकर उनका समूल नाश कर देती है।

विशेषवचन—जो विषमज्वर लगातार रहता हो और गलशुण्डी वा तालुमूल की ग्रन्थियें सूज गई हों जिसे डाक्टर टांसिल हो जाना कहते हैं, वहां पर इस ज्वरारि अभ्रक को देने से वह ज्वर और वे स्वतन्त्र रोग भी अच्छे हो जाते हैं। आधुनिक मात्रा–१ रत्ती ॥२०९—२१२॥

१–'जलेन वटिकां कुर्याद्यथादोषानुपानतः। अभ्रं ज्वरारिनामेदं...' पा०। २–'द्वन्द्वजांश्च' पा०। ३–'गुल्ममग्निमान्द्यं' पा०। ४–'कासं श्वासं तृषां कम्पं दाहं शीतं वमिं भ्रमिम्' पा०।

अथ ज्वराशनि रसः—

रसं गन्धं सैन्धवञ्च विषं ताम्रं समांशिकम् ।
सर्वचूर्णसमं लौहं तत्समं शुद्धमभ्रकम् ॥ २१३ ॥
लौहे च लौहदण्डेन निर्गुण्डी-स्वरसेन च ।
मर्दयेत् यत्नतः पश्चात् मरिचं सूततुल्यकम् ॥ २१४ ॥
नागवल्ल्या दलेनैव[1] दातव्यो रक्तिसम्मितः ।
सर्वज्वरहरः श्रेष्ठो ज्वरान् हन्ति सुदारुणान् ॥ २१५ ॥
कासं श्वासं महाघोरं विषमाख्यं ज्वरं वमिम् ।
धातुस्थं परमं[2] दाहं ज्वरं[3] दोषत्रयोद्भवम् ॥ २१६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सैंधानमक, शुद्ध विष, ताम्रभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक-एक तोला लें। लौहभस्म पांच तोला, शुद्ध अभ्रकभस्म पांच तोला लें। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें। फिर सब द्रव्य मिलाकर लोहे के खरल में लोहे की मूसली से संभालू का रस डालकर खरल करें। जब सूख जाये तो काली मिर्च का चूर्ण एक तोला मिलाकर खरल करें और जल से एक रत्ति भर की गोली बना रखें। इसे पान के पत्ते में रख कर दें तो यह सर्वज्वरों को दूर करता है—भयंकर ज्वरों को भी दूर करता है। खांसी, श्वास, घोर विषमज्वर, वमन, धातुगतज्वर, वा धातुगत परम दाह तथा त्रिदोष जनित ज्वरों को नष्ट करता है ॥ २१३—२१६ ॥

अथ अर्द्धनारीश्वरो रसः—

रसगन्धौ समौ शुद्धौ विषं ग्राह्यञ्च तत्समम् ।
जैपालं तत्समं ग्राह्यं मरिचञ्च चतुर्गुणम् ॥ २१७ ॥

१—'पर्णेन सह दातव्यो रसो रक्तिकसम्मितः । कासं ···पा० ।'
२—'प्रबलं' पा० । ३ 'ज्वरदोषं चिरोद्भवम् । यकृद्गुल्मोदरप्लीहश्वयथूंश्च विनाशयेत् ।' पा० ।

त्रिफलाया रसैर्मर्द्यं भावना पञ्चधा तथा।
जम्बीराणां द्रवैर्नस्यमेकस्मिन् नासिकापुटे ॥ २१८ ॥
शरीरार्द्धगतं घोरं ज्वरं हन्ति न संशयः।
अर्द्धनारीश्वरो नाम रसः शम्भुप्रकीर्त्तितः ॥ २१९ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक एक-एक तोला, शुद्ध विष दो तोला, शुद्ध जमालगोटा दो तोला, मरिचचूर्ण आठ तोला ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर सब को मिलाकर त्रिफला के रस से मर्दन करे और जम्बीरी नीबू के रस से पांच वार भावना देकर रखे। इस रस को एक ओर नाक के छिद्र में नस्य दे तो शरीर के उस आधे भाग का ज्वर दूर हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। यह अर्द्धनारीश्वर रस महादेव जी ने कहा है।

विशेषवचन—आधा उतर जाने पर दूसरे नासिका के छिद्र में नस्य दे तो शेष आधा भी उतर जाता है। स्मरण रहे कि यह विषमज्वरों को ही दूर करता है। कई मरिचचूर्ण को एक भाग से चौगुना (४ तोला) लेने को कहते हैं ॥ २१७-२१९ ॥

अथ चन्दनादिलौहम्—

रक्तचन्दनह्रीवेर-पाठोशीरकणाशिवा-
नागरोत्पलधात्रीभिस्त्रिमदेन समन्वितम्।
लौहं निहन्ति विविधान् समस्तान् विषमज्वरान् ॥२२०॥

लाल चन्दन का चूर्ण, सुगन्धबाला का चूर्ण, पाठा का चूर्ण, खस का चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, हरड़ चूर्ण, सोंठचूर्ण नीलोत्पल का चूर्ण, आंवला चूर्ण, वायविडङ्ग का चूर्ण, नागरमोथे का चूर्ण, चीते का चूर्ण; प्रत्येक एक-एक तोला, लौहभस्म बारह तोले—इन्हें मिलाकर खरल करे। इसे चन्दनादिलौह कहते हैं। दोषानुसार अनुपान से अथवा शहद से देने पर यह विविध प्रकार के ज्वरों तथा

१—'त्रिवृन्मूलरसैः' इति क्वचित्पाठः।

समस्त विषमज्वरों दूर को करता है।

विशेषवचन—यह विषमज्वर तथा जीर्णज्वर पर अव्यर्थ योग है। सन्ध्याकाल में जो ज्वर अल्पवेग से होता है और जिसमें हाथ पैर और नेत्रों में दाह हो ऐसे जीर्णज्वर में लाभ करता है। मात्रा—दो रत्ती तक है। जल से घोट कर गोलियां बनायी जा सकती हैं। अनुपान में गिलोय का रस देसकते हैं। रसेन्द्रचिन्तामणि में इसका नाम विषमज्वराङ्कुशलौह है॥ २२०॥

अथ ज्वरारि रसः—

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं विषञ्चैव कटुत्रयम्।
नागभस्म शिला चैव प्रत्येकं कर्षमानकम्॥ २२१॥
शुद्धतालार्द्धकर्षञ्च शुल्वमेकत्र कारयेत्।
धुस्तूरस्य च बीजानि कार्षिकाणि प्रकल्पयेत्॥ २२२॥
रोहितमत्स्यपित्तेन अर्कक्षीरार्द्रकाम्बुणा।
मर्दयेदुदयास्तञ्च चणकाभा वटी कृता॥ २२३॥
आर्द्रकस्य रसैः कर्षैर्मधुमाषसमायुतम्।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय ज्वरारिरससंज्ञितम्॥ २२४॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव कफजं नाशयेद् ध्रुवम्।
वातपित्तसमुद्भूतं वातश्लैष्मिकमेव च॥ २२५॥
भयादुत्पत्तिकं वाऽपि शोकोत्पन्नमथापि वा।
अभिचाराभिशापोत्थं भूतोत्थञ्च ज्वरं जयेत्॥ २२६॥
मेदःप्राप्तं सन्ततञ्च रसस्थे तु ज्वरे तथा।
सन्निपातज्वरे देयो मधुव्योषसमायुतः।
घर्मं पित्तं तथा कम्पं दाहं हन्ति न संशयः॥ २२७॥

इन्द्रवज्रो यथा वृक्षं तथा ज्वरविनाशनः ।
वर्जयेत् क्षीरमांसञ्च दधितक्रसुराघृतम् ॥ २२८ ॥
ज्वरे मांसास्थिगे चैव रक्तस्थे तु ज्वरे नृणाम् ।
शैत्ये दाहे तथा घर्मे प्रलापे चातुराहिके ।
महावेगे ज्वरे चैव जीर्णे चापि प्रदापयेत् ॥ २२९ ॥

शुद्ध पारा एक कर्ष, शुद्ध गन्धक दो कर्ष, शुद्ध विष एक कर्ष, सोंठ चूर्ण एक कर्ष, मरिच चूर्ण एक कर्ष, पिप्पली चूर्ण एक कर्ष, नागभस्म एक कर्ष, शुद्ध मनसिल एक कर्ष, शुद्ध हड़ताल आधा कर्ष, ताम्रभस्म आधा कर्ष, शुद्ध धतूरे के बीज एक कर्ष ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर रोहित मछली के ताज़े पित्त से, आक के दूध से और अदरक के रस से पृथक् सूर्योदय से सूर्यास्त तक मर्दन करे और चने के समान गोली बना ले। इसे रोगी प्रातःकाल अदरक के एक कर्ष रस और एक माशा शहद से खावे। इसका नाम ज्वरारि रस है। यह वातिक, पैत्तिक, कफज, वातपित्तज, वातश्लेष्मज, भयज, शोकज, अभिचारज अभिशापज, भूतज, मेदोगत (मेदधातु तक पहुंचा हुआ ज्वर), सन्तत; इन ज्वरों को नष्ट करता है। रसधातुगत तथा सन्निपात ज्वर में त्रिकुटा चूर्ण और शहद मिलाकर देना चाहिये। विशेष करके इन ज्वरों में जो पसीना आता है उसको कम करता है। पित्त को कम करता है। कम्प और दाह को नाश करता है। जैसे बिजली गिरकर वृक्षों का नाश कर देती है वैसे ही यह ज्वर का नाश करता है। इसके सेवन के समय दूध, मांस, दही, तक्र, मद्य, घी; इन्हें छोड़ देना चाहिये। इस रस को मांस गत और अस्थिगत ज्वर में, रक्तगत ज्वर में, शीत दाह, अति पसीना, प्रलाप; इन लक्षणों के होने पर, बहुत तेज़ चातुर्थकज्वर एवं जीर्णज्वर में भी देना चाहिये।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा आधी रत्ती जाननी चाहिये ॥२२१—२२९॥

अथ सर्वज्वरहरलौहम्—

चित्रकं त्रिफला व्योषं विडङ्गं मुस्तकं तथा ।

श्रेयसी पिप्पलीमूलमुशीरं देवदारु च ॥ २३० ॥
किराततिक्तकं पाठां[1] कटुकी कण्टकारिका ।
शोभाञ्जनस्य बीजानि मधुकं वत्सकं समम् ॥ २३१ ॥
लौहतुल्यं गृहीत्वा तु वटिकां कारयेद्भिषक् ।
सर्वज्वरहरं लौहं सर्वरोगहरं[2] तथा ॥ २३२ ॥
वातिकं पैत्तिकं[3]श्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
द्वन्द्वजं[4] विषमाख्यञ्च धातुस्थञ्च ज्वरं जयेत् ॥ २३३ ॥
शीतं कम्पं तृषां दाहं घर्मस्रुतिवमिभ्रमीन् ।
रक्तपित्तमतीसारं मन्दाग्निं कासमेव च ॥ २३४ ॥
प्लीहानं यकृतं गुल्मं सामवातं सुदारुणम् ।
अर्शांसि घोरमुदरं मूर्च्छां पाण्डुं हलीमकम् ॥ २३५ ॥
अजीर्णं ग्रहणीश्चैव यक्ष्माणं शोथमेव च ।
बल्यं वृष्यं पुष्टिकरं सर्वरोगनिसूदनम् ।
सर्वज्वरहरं लौहं चन्द्रनाथेन भाषितम् ॥ २३६ ॥

चीते का चूर्ण, हरड़ चूर्ण, बहेड़ा चूर्ण, आंवलाचूर्ण, सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, वायविडंग का चूर्ण, नागरमोथा चूर्ण, गजपीपल का चूर्ण, पिप्पलीमूल चूर्ण, खस चूर्ण, देवदारु चूर्ण, चिरायता चूर्ण, पाठा चूर्ण, कुटकी चूर्ण, कण्टकारी चूर्ण, सुहांजने (सहिजन) के बीजों का चूर्ण, मुलहठी का चूर्ण, कुटज

१—'बालं' पा० ।

२—'सर्वज्वरकुलान्तकृत्' पा० ।

३—'श्लेष्मद्वन्द्वजं' पा० ।

४—'जीर्णज्वरं च विषमं रोगसङ्करमेव च । प्लीहानमग्रमांसं च यकृतं च विनाशयेत् पा० ।

की छाल का चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य एक-एक तोला लें। लौहभस्म सब के समान अर्थात् बीस तोला लें। सब को मिला जल से खरल कर एक रत्ति भर की गोली बना लें। यह सर्वज्वरहरलौह सब रोगों में लाभ करता है। वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, द्वन्द्वज, विषम तथा सप्तधातुगत ज्वरों को दूर करता है। शीत, कम्प, प्यास, दाह, पसीने आने, वमन, सिर में चक्कर आने, रक्तपित्त, अतीसार, मन्दाग्नि, खांसी, तिल्ली का बढ़ना, जिगर का बढ़ना, गुल्म, घोर आमवात, बवासीर, घोर उदररोग, मूर्च्छा, पाण्डु, हलीमक, अजीर्ण, ग्रहणी, राजयक्ष्मा, शोथ; इन को दूर करता है। बल देता है, वृष्य (वीर्यवर्द्धक) है, पुष्टि कर है अर्थात् शरीर को मोटा करता है तथा सब रोगों का नाश करता है। यह सर्वज्वरहरलौह चन्द्रनाथ ने कहा है।

विशेषवचन—इसकी एक या दो रत्ति की गोली दिन में तीन चार तक दे सकते हैं॥ २३०—२३६ ॥

अथ बृहत्सर्वज्वरहरलौहम्—

पारदं गन्धकञ्चैव ताम्रमभ्रञ्च माक्षिकम्।
हिरण्यं तारतालञ्च कर्षमेकं पृथक् पृथक्॥ २३७॥
कान्तलौहं[1] पलं देयं सर्वमेकीकृतं शुभम्।
वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकं दिनसप्तकम्॥ २३८॥
कारवेल्लरसैर्वापि दशमूलरसेन च।
पर्पट्याश्च[2] कषायेण त्रिफलाक्वाथकेन[3] वा।
गुडूच्याः स्वरसेनैव नागवल्लीरसेन च॥ २३९॥
काकमाचीरसेनैव निर्गुण्ड्याः स्वरसैस्तथा।
पुनर्नवार्द्रकाम्भोभिर्भावना[4] परिकीर्त्तिता॥ २४०॥

१–'मृतकान्तं' पा०। २–'पर्पटस्य' पा०।
३–'क्वाथेन त्रैफलेन' पा०। ४ 'भावनां परिकल्प्य च' पा०।

रक्तिकादिक्रमेणैव वटिकां कारयेद्भिषक् ।
पिप्पलीगुडसंयुक्ता वटिका[1] ज्वरनाशिनी ॥ २४१ ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति जीर्णज्वर[2]हरं तथा ।
[3]वारिदोषोद्भवञ्चैव नानादोषोद्भवं तथा ॥ २४२ ॥
सततादिज्वरं हन्ति साध्या[4]साध्यमथापि वा ।
त्त्वयोद्भवञ्च धातुस्थं कामशोकभवं तथा ॥ २४३ ॥
भूतावे[5]शभवञ्चैव त्रि[6]दोषजनितं तथा ।
अभिघातज्वरञ्चैव तथाऽभिचारसम्भवम् ॥ २४४ ॥
अभिन्यासं महाघोरं विषमं त्र्याहिकं तथा ।
शीतपूर्वं दाहपूर्वं त्रि[7]दोषं विषमज्वरम् ॥ २४५ ॥
प्रलेपकज्वरं घोरमर्द्धनारीश्वरं तथा ।
प्लीहज्वरं तथा कासं चातुर्थकविपर्य्ययम् ॥ २४६ ॥
पा[9]ण्डुरोगं कामलाञ्च अग्निमान्द्यं महागदम् ।
एतान् सर्वान् निहन्त्याशु पक्षार्द्धेन न संशयः ॥ २४७ ॥
शाल्यन्नं तक्रसहितं भोजयेद्विडं[10]संयुतम् ।
ककारपूर्वकं सर्वं वर्जनीयं विशेषतः[11] ॥ २४८ ॥
मैथुनं वर्जयेत् तावद् यावन्न बलवान् भवेत् ।

---

१ 'वटिका वीर्यवर्द्धिनी' पा० । २ 'चिरकालसमुद्भवम्' पा० । ३ 'विविधं वारिदोषोत्थं' पा० । ४ 'साध्यासाध्यं न संशयः' पा० । ५ 'भूतावेशज्वरं' पा० । ६ 'त्त्वदोषोद्भवं तथा' पा० ७ 'विषमञ्च त्रिदोषजम्' पा० । ८ 'विषमं शीतलं ज्वरम्' पा० । ९ 'पाण्डुरोगगणान् सर्वान्' पा० । १० 'भोजयेद् द्विजसंयुतम्' पा० । ११ 'न संशयः' पा० ।

सर्वज्वरहरं लौहं दुर्लभं परिकीर्त्तितम् ॥ २४६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, शुद्ध हड़ताल; प्रत्येक द्रव्य एक-एक कर्ष लें। कान्तलौहभस्म एक पल लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर सब द्रव्य मिलाकर आगे लिखी औषधों से सात-सात दिन तक भावना देवें। करेले का रस, दशमूल का क्वाथ, पित्तपापड़े का क्वाथ, त्रिफला का क्वाथ, गिलोय का स्वरस, पान का रस, मकोय का रस, संभालू का रस, पुनर्नवा का रस, अदरक का रस। पश्चात् रोगी के बलाबल आदि के अनुसार एक-एक वा दो-दो रत्ती भर की गोली बना लें। इस गोली में पिप्पली और गुड़ मिला कर खावे तो ज्वर नाश करती है। वातिक आदि भेद से आठों प्रकार का ज्वर, जीर्णज्वर, जलदोष से हुआ ज्वर, नाना दोषों से हुआ ज्वर, सतत सन्तत आदि विषमज्वर—चाहे वे साध्य हों वा असाध्य, क्षयज्वर, धातुगत ज्वर, काम शोक वा भूतावेश से उत्पन्न ज्वर, त्रिदोषज ज्वर, अभिघातज तथा अभिचारज ज्वर, महाघोर अभिन्यास ज्वर, विषम ज्वर, तृतीयक, शीतपूर्व ज्वर, दाहपूर्व ज्वर, त्रिदोषज विषम ज्वर, प्रलेपक ज्वर, अर्धनारीश्वर ज्वर (जो शरीर के आधे भाग में हो आधे में न हो), प्लीहज्वर, खांसी, चातुर्थकाविपर्यय ज्वर, पाण्डुरोग, कामला, अग्निमान्द्य तथा अर्श; इनको एक सप्ताह में निश्चित नाश करता है। खाने को पथ्य शालि चावल और छाछ, विडनमक मिलाकर देने चाहियें। ककार पूर्ववाले ककड़ी करेला आदि आठ द्रव्य न खावें। रोगी आराम होने के पश्चात् तब तक मैथुन न करे जब तक बलवान न हो जाये। यह सर्वज्वरहर लौह परम दुर्लभ योग है।

विशेषवचन—इस रस को विशेषतः पित्ताधिक ज्वर में प्रयोग कराते हैं। यक्ष्मा के ज्वर में यह उत्तम काम करता है ॥ २३७—२४६ ॥

अथ महाराजवटी—

रसगन्धकमभ्रञ्च प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ।
वृद्धदारकवङ्गञ्च लौहं कर्षार्द्धकं क्षिपेत् ॥ २५० ॥

---

१ 'श्रेष्ठमनुपानं प्रकल्पयेत्' पा० ।

स्वर्णं ताम्रञ्च कर्पूरं प्रत्येकं कर्षपादिकम् ।
शक्राशनं वरी चैव श्वेतसर्जलवङ्गकम् ॥ २५१ ॥
कोकिलाक्षं विदारी च मुषली शूकशिम्बिकम् ।
जातीफलं तथा कोषं बला नागबला तथा ॥ २५२ ॥
माषद्वयमितं भागं तालमूल्या रसेन च ।
पिष्ट्वा च वटिका कार्य्या चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः ॥ २५३ ॥
मधुना भक्षयेत्प्रातर्विषमज्वरशान्तये ।
धातुस्थांश्च ज्वरान् सर्वान् हन्यादेव न संशयः ॥ २५४ ॥
वातिकं पैत्तिकश्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
ज्वरं नानाविधं हन्ति कासं श्वासं क्षयं तथा ॥ २५५ ॥
बलपुष्टिकरी नित्यं कामिनीं रमयेत् सदा ।
न च शुक्रं क्षयं याति न बलं ह्रासतां व्रजेत् ॥ २५६ ॥
ऊर्द्ध्वगं श्लेष्मजं हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् ।
कामलां पाण्डुरोगश्च प्रमेहं रक्तपित्तकम् ।
महाराजवटी ख्याता राजयोग्या च सर्वदा ॥ २५७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म; प्रत्येक एक-एक कर्ष (२ तोला), विधारे के शुद्ध बीज आधा कर्ष, बङ्गभस्म आधा कर्ष, लौहभस्म आधा कर्ष, स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म, कर्पूर; प्रत्येक चौथाई कर्ष, भांग के बीज, शतावर का चूर्ण, श्वेत राल, लौंग का चूर्ण, कोकिलाक्ष के बीज अर्थात् तालमखाना, विदारीकन्द का चूर्ण, मूसली का चूर्ण, कौंच के बीज का चूर्ण, जायफल का चूर्ण, जावित्री का चूर्ण, बला (खरैंटी) का चूर्ण, नागबला (गंगेरन) चूर्ण; इनमें से प्रत्येक द्रव्य दो-दो माशे ($\frac{1}{4}$ तोला) लें। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर मूसली के रस से घोटकर चार रत्ति भर की गोली बनावें। इसे शहद से मिलाकर प्रातःकाल

खावे तो विषमज्वर नाश होता है। यह धातुस्थ ज्वरों को निश्चय से नष्ट करती है। नाना प्रकार के वात पित्त, कफ और सन्निपात के ज्वर खांसी श्वास तथा क्षय को हटाती है। बल-पुष्टिकारक है। नित्य स्त्री को भोगने की सामर्थ्य देती है, न तो शुक्रक्षय होता है, न बल कम होता है। ऊर्ध्वग (देह के ऊर्ध्व भाग में होने वाले) श्लेष्मज रोग तथा सन्निपात को दूर करती है। कामला, पाण्डु, प्रमेह, रक्तपित्त; इन सब रोगों को दूर करती है। यह राजाओं के योग्य है। इसका नाम महाराज वटी है।

विशेषवचन—पुराने विषम ज्वर और जीर्ण ज्वर में जब मांस तथा बल भी क्षीण हो गया हो तो इससे बहुत लाभ होता है।

वस्तुतः 'ऊर्ध्वगं' इत्यादि श्लोकपङ्क्ति 'कामलां' इत्यादि के पश्चात् होनी चाहिये। तब अभिप्राय यह होगा कि ऊर्ध्वग (ऊर्ध्वमार्ग से प्रवृत्त होने वाले) कफज रक्तपित्त में यह वटी लाभकर होती है। तथा दारुण सन्निपात को भी हटाती है। रक्तपित्त के विषय में निदान में कहा भी है—

'ऊर्ध्वगं कफसंसृष्टमधोगं पवनानुगम्।
द्विभागं कफवाताभ्यामुभाभ्यामनुवर्तते॥' २५०—२५७॥

अथ अपराचिन्तामणिरसः—

हाटकं रजतं तालं मुक्ता गन्धकपारदौ।
त्रिकटु कुनटी चैव कस्तूरी च पृथक् समम्॥ २५८॥
जलेन वटिका कार्य्या द्विगुञ्जाफलमानतः।
चिन्तामणिरसो ह्येष ज्वराष्टानां निकृन्तनः॥ २५९॥

स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, शुद्ध हड़ताल, मोतीभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध मनःशिला, कस्तूरी; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारे गन्धक की कज्जली करे, फिर अन्य द्रव्य मिलाकर जल से खरल कर दो रत्ति प्रमाण की गोली बनाये। यह चिन्तामणि रस आठों ज्वरों का नाश करता है।

विशेषवचन—आधुनिकमात्रा-$\frac{1}{4}$ रत्ती से $\frac{1}{2}$ रत्ती तक॥ २५८—२५९॥

अथ त्रैलोक्य-चिन्तामणिरसः—

भागद्वयं स्वर्णभस्म द्विभागं तारमभ्रकम् ।
लौहात् पञ्च प्रवालञ्च मौक्तिकं त्रयसम्मितम् ॥ २६० ॥
भस्मसूतं सप्तकञ्च सर्वं मर्द्यन्तु कन्यया ।
छायाशुष्का वटी कार्य्या छागीदुग्धानुपानतः ॥ २६१ ॥
क्षयं हन्ति तथा कासं गुल्मञ्चापि प्रमेहनुत् ।
जीर्णज्वरहरश्चायं उन्मादस्य निकृन्तनः ।
सर्वरोगहरश्चापि वारिदोषनिवारणः ॥ २६२ ॥

स्वर्णभस्म दो तोला, चांदीभस्म दो तोला, अभ्रकभस्म दो तोला, लौहभस्म पांच तोला, मूंगाभस्म और मोतीभस्म प्रत्येक तीन २ तोला लें। रससिन्दूर सात तोला ले; इन सबको पीसकर घीकुमारी के रस से खरल कर छाया में सुखाकर (एक वा दो रत्ति भर की) गोली बनावें। इसे बकरी के दूध के अनुपान से पीने से क्षय कास गुल्म तथा प्रमेह दूर होता है। यह जीर्णज्वर और उन्माद का नाशक है। सब रोगों को हरता है। पानी के दोष से होने वाले ज्वर आदि रोगों को भी यह त्रैलोक्यचिन्तामणि रस दूर करता है ॥ २६०—२६२ ॥

अथ बृहच्चिन्तामणिरसः—

रसं गन्धं विषश्चैव त्रिकटु त्रैफलं तथा ।
शिलाह्वा रौप्यकं स्वर्णं मौक्तिकं तालकं समम् ॥ २६३ ॥
मृगकस्तूरिकायाश्च ग्राह्यं पाणमाषिकं भिषक् ।
भृङ्गराजरसेनैव तुलस्याः स्वरसेन वा ॥ २६४ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव वटीं कुर्य्यात् द्विगुञ्जिकाम् ।
चिन्तामणिरसो ह्येष सर्वरोगकुलान्तकः ॥ २६५ ॥
सन्निपातज्वरहरः कफरोगं विनाशयेत् ।

एकजं द्वन्द्वजश्चैव विविधं विषमज्वरम् ॥ २६६॥
अग्निमान्द्यं शिरःशूलं विद्रधिं सभगन्दरम् ।
एतान्येवं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ २६७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, हरड़ चूर्ण, बहेड़ा चूर्ण, आंवला चूर्ण, शुद्ध मनसिल, चांदीभस्म, सोनाभस्म मोतीभस्म, हड़ताल शुद्ध; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला ले, कस्तूरी छः माशा ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे, फिर अन्य द्रव्य मिलाकर भांगरे के रस से तथा तुलसी के स्वरस से घोटे । पश्चात् अदरक के रस से मर्दन कर दो रत्ति भर की गोली बनावे। यह चिन्तामणि रस सब रोगों को दूर करता है। सन्निपात ज्वर, कफरोग, एकज, द्वन्द्वज, विविध विषम ज्वर, अग्निमान्द्य, शिर दर्द, विद्रधि, भगन्दर; इन सब रोगों को ऐसे दूर करता है जैसे सूर्य अन्धकार को।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा $\frac{1}{2}$ रत्ती है। योगों में जहां मान नहीं कहा होता प्रायः वहां वैद्य तोला लेते हैं । आयुर्वेद में दो मान मुख्यतया प्रचलित हैं। जो परिमाण बड़ा है उसके अनुसार तोला कर्षार्द्ध का वाचक है और जो छोटा मान है उसके अनुसार तोला कर्ष का वाचक है । शब्द-माला नामक कोष ग्रन्थ में भी शाणद्वय, कोल, द्रङ्क्षण, वटक, कर्षार्द्ध; ये पर्याय कहे हैं। लीलावती में इसका पर्याय कर्ष है। यदि दो शाण का तोला कहें तो तोला ८ मासे के बराबर होगा और मासे को १२ रत्ति का मानेंगे। जब कर्ष को तोले का वाचक मानें तो तोला १६ मासे का होगा परन्तु मासा ६ रत्ती का होगा। इसप्रकार तोला ९६ ही रत्ती का होता है। इस योग को ६ रत्ती का मासा और १६ मासे का तोला (कर्ष) इस मान परिभाषा से लेकर तैय्यार करें । क्योंकि रसग्रन्थों में यही मान है। अर्थात् यदि पारद आदि पृथक् ९६ रत्ती हों तो कस्तूरी ३६ रत्ती डालेंगे। रसरत्नसमुच्चय में परिभाषा है—

'षड्भिरेव तु गुञ्जाभिर्माष एकः प्रकीर्तितः।
माषाः षोडश तोलः स्याच्चतुस्तोलैः पलं भवेत् ॥' २६३—२६७ ॥

अथ पुटपाकविषमज्वरान्तकलौहम्—

हिङ्गूलसम्भवं सूतं गन्धकेन सुकज्जलम् ।
रसपर्पटीवत् पाच्यं सूताङ्घ्रि हेमभस्मकम् ॥ २६८ ॥
लौहं ताम्रमभ्रकञ्च रसस्य द्विगुणं क्षिपेत् ।
वङ्गश्चैव प्रवालश्च रसार्द्धश्च विनिक्षिपेत् ॥ २६९ ॥
मुक्ता शङ्खं शुक्तिभस्म रसपादिकमेव च ।
मुक्तागृहे च संस्थाप्य पुटपाकेन साधयेत् ॥ २७० ॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय द्विगुञ्जाफलमानतः ।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं कणाहिङ्गु ससैन्धवम् ॥ २७१ ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति वातपित्तकफोद्भवम् ।
प्लीहानं यकृतं गुल्मं साध्यासाध्यमथापि वा ॥ २७२ ॥
सन्ततं सतताख्यञ्च त्र्याहिकं चातुराहिकम् ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं मेहमरोचकम् ॥ २७३ ॥
ग्रहणीमामदोषञ्च कासं श्वासञ्च दारुणम् ।
मूत्रकृच्छ्रातिसारञ्च नाशयेदविकल्पतः ॥ २७४ ॥

हिंगुल से निकाला हुआ पारा एक तोला (९६ रत्ती), शुद्ध गन्धक एक तोला; दोनों की खूब घोटकर कज्जली करें । फिर लोहे की कड़छी में डाल मन्द आंच देकर रसपर्पटी बनालें । इसे पीसकर स्वर्णभस्म तीन

१–'हिङ्गुलप्रोद्भवं' पा० । २–'सुकज्जलीम्' पा० । ३–'पर्पटीरसवत्' पा० । ४–'तथा' पा० । ५–'वङ्गकं गैरिकं चैव प्रवालञ्च रसार्द्धकम्' भै०र० पा० । ६–'प्रदेयं रसपादिकम्' पा० । ७–'विषमज्वरनाशनम्' पा० । ८–'तत्र तत्' पा० । ९–अस्मादनन्तरं 'अग्निं च कुरुते दीप्तं बलवर्णप्रसादनम् । विषमज्वरान्तकं नाम्ना धन्वन्तरिप्रकाशितम् ।' इत्याधिकः पाठः भैषज्यरत्नावल्यामुपलभ्यते ॥

माशा (२४ रत्ती), लौहभस्म दो तोला, ताम्रभस्म दो तोला, अभ्रकभस्म दो तोला, वङ्गभस्म छः माशा (४८रत्ती), प्रवाल भस्म छः माशे, मोतीभस्म तीन माशे, शंखभस्म तीन माशे तथा मोती की सीप की भस्म तीन माशे डालें। फिर सबको मिला पीसकर जल से घोटकर सीपियों में भरें। शुष्क होने पर दूसरी सीपियों से बन्द कर कपड़मिट्टी करें। पश्चात् सात या आठ जंगली उपलों की आग से कपोत पुट देवें। जब गन्धक की गन्ध आने लगे तभी उन्हें निकाल लें और सीपियों में से औषध निकाल कर रख लें। इस पुटपाक विषमज्वरान्तक लौह को दो रत्ती भर लेकर उसमें पिप्पली (२ रत्ती), हींग ($\frac{1}{2}$ रत्ती) और सेन्धा नमक (१ रत्ती) मिलाकर प्रातःकाल खावे। यह बात पित्त कफ से उत्पन्न आठों प्रकार के ज्वर, प्लीहा, यकृत्, गुल्म, साध्य तथा असाध्य सतत सन्तत ऐकाहिक चातुर्थक ज्वर, कामला, पाण्डु, शोथ, प्रमेह, अरुचि, ग्रहणी, आमदोष, भयंकर खांसी और दमा, मूत्रकृच्छ्र, अतिसार; इन सब रोगों को अवश्य अच्छा करता है।

विशेषवचन—यह अतिसार तथा शोथ प्लीहा आदि से युक्त पुराने विषमज्वर में लाभ करता है। यक्ष्मा में भी इस का प्रयोग होता है।

टीका में तोला माशा आदि आजकल के प्रचलित मान के अनुसार दिये हैं।

मूल में द्रव्यों को घोटने के लिये किसी द्रव का निर्देश नहीं। अतः सामान्य नियम के अनुसार जल से ही घोटना चाहिये। परन्तु कई वैद्य घीकुमारी के रस से भी घोट लेते हैं। इस योग में कई वङ्ग के स्थान पर स्वर्णगैरिक डालते हैं। परन्तु भैषज्यरत्नावली के पाठ के अनुसार वङ्गभस्म और शोधित स्वर्णगैरिक दोनों ही डाल सकते हैं॥ २६८—२७४॥

अथ बृहद्विषमज्वरान्तकलौहम्—

शुद्धसूतं तथा गन्धं कारयेत् कज्जलीं शुभाम्।
मृतसूतं हेमतारं लौहमभ्रञ्च ताम्रकम्॥ २७५॥
तालसत्त्वं वङ्गभस्म मौक्तिकं सप्रवालकम्।

सुवर्णमाक्षिकश्चापि चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥ २७६ ॥
निर्गुण्डी नागवल्ली च काकमाची सपर्पटी ।
त्रिफला कारवेल्लश्च दशमूली पुनर्नवा ॥ २७७ ॥
गुडूची वृषकश्चापि सभृङ्गकेशराजकः ।
एतेषाञ्च रसेनैव भावयेत् त्रिदिनं पृथक् ॥ २७८ ॥
गुञ्जामानां वटीं कुर्य्यात् शास्त्रवित् कुशलो भिषक् ।
पिप्पलीगुडकेनैव लिहेच्च वटिकां शुभाम् ॥ २७९ ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति निरामं साममेव वा ।
सप्तधातुगतश्चापि नानादोषोद्भवं तथा ॥ २८० ॥
सततादिज्वरं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ।
अभिघाताभिचारोत्थं ज्वरं जीर्णं विशेषतः ॥ २८१ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक एक २ तोला लेकर कज्जली करें। फिर रससिन्दूर, स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, हड़ताल का सत्त्व (अथवा हड़ताल भस्म), बंगभस्म, मोतीभस्म, मूंगा-भस्म तथा स्वर्णमाक्षिकभस्म; इन सब द्रव्यों को एक २ तोला लेकर उसमें मिलाकर पीसें। फिर संभालू के रस से, पान के रस से, मकोय के रस से, पित्तपापड़ा के रस से, त्रिफला के क्वाथ से, करेला के रस से, दशमूल के क्वाथ से, पुनर्नवा के रस से, गिलोय के रस से, बांसा के रस से, भांगरे के रस से, केशराज के रस से तीन २ भावनायें देकर एक रत्ति भर की गोली बना लें। इस गोली को पिप्पली और गुड से प्रातःकाल देना चाहिये। यह आठों प्रकार के ज्वर-निराम हों वा साम, सप्तधातुगत ज्वर, नानादोषों से उत्पन्न ज्वर, सतत सन्तत अन्येद्युष्क त्र्याहिक चातुर्थक आदि विषमज्वर-साध्य हों या असाध्य, तथा अभिघात एवं अभिचार से उत्पन्न ज्वरों को हटाता है। जीर्णज्वरों में विशेषतः लाभकर है।

विशेषवचन—यहां द्रव्यों का प्रमाण नहीं दिया, परन्तु नाम विषमज्वरान्तकलौह है, जिससे लौह की प्रधानता सिद्ध होती है। ऐसे स्थानों पर सामान्यतः लौह अन्य द्रव्यों के समान लिया जाता है। अथवा लौह की मात्रा अन्य द्रव्यों के भागों से अधिक होनी चाहिये जैसे कि इससे पूर्व इसी योग से बहुत कुछ मिलते जुलते बृहत्सर्वज्वरहरलौह में है। परन्तु यह योग उक्त मान के अनुसार (अर्थात् अन्य द्रव्यों के समान ही १ भाग लौहभस्म लेकर) ही बनाकर वैद्य व्यवहार में लाते हैं। इसे उस नियम का अपवाद समझा जा सकता है। और कहीं कहीं तो इसे बृहद्विषमज्वरान्तकलौह न कह कर बृहद्विषमज्वरान्तक रस नाम से ही उल्लेख किया है॥ २७५—२८१॥

अथ शीतभञ्जीरसः (प्रकारभेदेन)—

तालकं दरदोद्भूतपारदो गन्धकः शिला।
क्रमवृद्ध्या ताम्रपात्रीं द्रवैरेतैर्विलेपयेत्॥ २८२॥
अधोमुखीं दृढे भाण्डे तां निरुद्ध्यांथ पूरयेत्।
चुल्ल्यां बालुकया घस्रमग्निं प्रज्वालयेद् दृढम्॥ २८३॥
शीते सञ्चूर्ण्य माषोऽस्य नागवल्लीदले स्थितः।
भक्षितो मरिचैः सार्द्धं समस्तान् विषमज्वरान्।
शीतदाहादिकं हन्यात् पथ्यं शाल्योदनं पयः॥ २८४॥

शुद्ध हड़ताल एक तोला, हिंगुल से निकाला हुआ पारा दो तोला, शुद्ध गन्धक तीन तोला, शुद्ध मनासिल चार तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें, फिर सब द्रव्य मिला पीसें। जल से मर्दन करके इसको एक छोटे से ताम्र के पात्र में लीप दें। इस पात्र को नीचे की ओर मुख करके एक दृढ़ भाण्ड में रख दें। अब एक शराव उस पर अधोमुख रख सन्धि-बन्धन कर दें। ऊपर से दृढ़ भाण्ड में रेता भर दें। फिर चूल्हे पर रख नीचे से एक दिन अर्थात् बारह घण्टे तक तेज़ आंच दें। स्वांगशीतल होने पर रेता निकाल उस शरावे को हटा औषध निकाल पीसकर रखें। इसे एक

धान्यमाष प्रमाण में लेकर कालीमिरचों का चूर्ण मिला पान के पत्ते में रख-कर खायें तो समस्त विषम ज्वर तथा शीत दाह आदि दूर होते हैं। इसमें पथ्य दूध और चावल है।

विशेषवचन—इस योग का यह पाठ प्रमादपूर्ण है। क्योंकि 'द्रवैरेतै-र्विलेपयेत्' कहा है। परन्तु एक भी द्रव का नाम नहीं है। भावप्रकाश में भी यह योग है और वहां का पाठ ठीक मालूम होता है। भावमिश्र ने रसरत्नप्रदीप से उद्धृत किया है। वहां—

"क्रमाद्भागार्धरहितं कारवेल्ल्यम्बुमर्दितम्।
अनेनास्य प्रमाणेन ताम्रपात्रं प्रलेपयेत्" ॥

ऐसा पाठ है। इसके अनुसार हड़ताल ८ भाग हिङ्गुलोत्थ पारद ४ भाग, गन्धक २ भाग और मनःशिला १ भाग ली जायगी। इन्हें यथाविधि मिला कारवेल्ली (केरली) के रस से मर्दन कर ताम्रपात्र में लेप करना होगा। हड़ताल आदि द्रव्यों का मिलाकर जो प्रमाण है उतना अर्थात् १५ भाग ताम्र का पात्र होना चाहिये। ताम्रपात्र कण्टकवेध्य होना चाहिये। मूलपाठ को इसीप्रकार शोध लेना उत्तम है॥

एक और शीतभञ्जी रस तन्त्रों में मिलता है जो इसी के सदृश है। उसमें केवल लेप करने वाले द्रव्यों के प्रमाण में भेद है—

'सूतकं गन्धकं चैव हरितालं मनःशिला।
एक निष्कं द्विनिष्कं च चतुर्निष्कं तथैव च ॥
पञ्चनिष्कं रसैः कारवेल्ल्याः कल्कं प्रकल्पयेत्।
ताम्रपात्राणि तुल्यानि तेन कल्केन लेपयेत् ॥
शरावसम्पुटे कृत्वा ततो चुल्ह्यां निधापयेत् ॥
धान्यस्फुटनमात्रेण तदोत्तार्य प्रयत्नतः।
ततः सञ्चूर्णयेदेवं रसः क्षौद्रेण भावितः ॥
यवैकमात्रया हन्ति घोरं शीतज्वरं ध्रुवम् ॥'

इसमें पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, हरिताल ४ भाग तथा मनःशिला ५ भाग है। शेष पूर्ववत् ही है। इसे ही भावमिश्र ने भावप्रकाश में रस-प्रदीप से शीतज्वरारि नाम से उद्धृत किया है।

रसरत्नसमुच्चय में कुछ मिलते जुलते दो योग शीतभञ्जी रस के कहे हैं। एक में लेपार्थ कल्क पारा, खर्पर, हरिताल, तुत्थ, गन्धक और टङ्कण समभाग से प्रस्तुत करने को कहा है। यह रसेन्द्रचिन्तामणि में भी पढ़ा है। और प्रकृत ग्रन्थ में भी कहा जायगा। भावप्रकाश में भी रसक के स्थान पर ताम्र (जो कि पाठ प्रमादपूर्ण ही है) की भिन्नता से यह योग है। वह रसेन्द्रचिन्तामणि से इसे उद्धृत करता है। रसेन्द्रचिन्तामणि में तो ताम्र नहीं है—रसक (खपरिया) है।

दूसरे में पारा हड़ताल और मनःशिला (समभाग) की कज्जली को कर्कटी के रससे पीस कर ताम्रपात्र में डाल पाक करने को कहा है। मरिचचूर्ण के साथ इसे सेवन कर गरम जल पीने का विधान है।

इसीप्रकार एक और योग है जिसमें पारा तथा हड़ताल की कज्जली को कारवेल्ली के रस से मर्दन कर उसे पात्र में रख ऊपर ताम्र का पात्र अधोमुख रख कर शराव दे सन्धि को गुड़ चूना खड़िया तथा हरड़ से बन्द कर ऊपर पात्र के अवशिष्ट भाग को रेत से भर कर पाक करने का विधान है। इसे मृतजीवन नाम से कहा है। और भी कई नामों से (नवज्वरारि विद्यावल्लभ त्रैलोक्यसुन्दर प्रभृति) इसी प्रकार के योग मिलते हैं। इन सब में यतः ताम्र का अमृतीकरण सम्भव नहीं अतः वमन आने की सम्भावना है। इस वमन की शान्ति के लिये मस्तक पर शीतल जल की धारा डालने को कहा है। अथवा पीछे से सर्वत्र अमृतीकरण कर लेना उचित है। आधुनिक मात्रा—$\frac{1}{8}$ रत्ती से $\frac{1}{2}$ रत्ती पर्यन्त जाननी चाहिये ॥ २८२—२८४ ॥

अथ चिन्तामणिः (प्रकारभेदेन)—

तालकं शुक्तिकाचूर्णं[1] शिखिग्रीवं समांशिकम् ।
संपिष्य कारयेत् सर्वं चक्रिकासन्निभं शुभम् ॥ २८५ ॥
शरावपिहितं रात्रौ पचेद् गजपुटेन तु ।

१–'शुल्वकं चूर्णं' इति पाठः प्रचरति ।

स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य भक्षयेत् माषमात्रकम् ।
शर्करासहितं सेव्यं सर्वज्वरहरं परम् ॥ २८६ ॥

शुद्ध हड़ताल, सीपभस्म, शुद्ध नीलाथोथा; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। दिन भर पीसकर जल से घोट टिकिया बना लें। और शुष्क होने पर रात को एक शराव में बन्द करके गजपुट में फूंक देवें। स्वाङ्गशीतल होने पर निकाल कर पीस लें। इसे एक उड़द भर लेकर के खांड के साथ खावें तो सब ज्वर दूर होते हैं।

विशेषवचन—इसे शीत ज्वर में दें। जो इससे पूर्व की रसेन्द्रसारसंग्रह की छपी हुई प्रतियां मिलती हैं उनमें 'शुक्तिकाचूर्णं' के स्थान पर "शुल्वकं चूर्णं" ऐसा पाठ मिलता है। जिसके अनुसार इसमें ताम्रभस्म भी एक भाग डालना चाहिये, यहां चूर्ण से शुक्तिकाचूर्ण (सीपभस्म) का ग्रहण किया जाता है। परन्तु यह क्यों ? इसमें कोई प्रमाण नहीं है। जीवानन्द कृत टीका से ही औरों ने भी उद्धृत कर लिया है। प्रतीत होता है कि उसने 'शुक्तिकाचूर्णं' यह पाठ भी देखा होगा और उसके समन्वय के लिये 'शुल्वकं चूर्णं' यह पाठ रखते हुए ही चूर्ण का अभिप्राय शुक्तिभस्म कर लिया है। 'शुल्वकं चूर्णं' के स्थान पर 'शुक्तिका चूर्णं' यह पाठ भैषज्यरत्नावली में मिलता है और वही ठीक है और उसीके अनुसार मूल में भी संशोधन कर दिया है।

इससे मिलते जुलते अन्य योग भी मिलते हैं जिनमें ये ही तीन द्रव्य हैं। यथा तालकादि ज्वराङ्कुश है—

'तालकं शुक्तिकाचूर्णं तुल्यं तत्रोभयोरपि ।
नवमांशं च तुत्थं स्यान्मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥
तत्तु संशुष्कमुपलैर्वन्यैर्गजपुटे पचेत् ।
शीतं तच्चूर्णयेच्चूर्णं गुञ्जामात्रं सितायुतम् ॥
प्रभाते भक्षयेत्तेन याति शीतज्वरः क्षयम् ।
वान्तिर्भवति कस्यापि कस्याचिन्न भवत्यपि ॥
एकेन दिवसेनैव शीतज्वरहरं परम् ।
मध्याह्नसमये पथ्यं भक्तं शिखरिणीयुतम् ॥'

इसमें हड़ताल और सीपभस्म एक-एक भाग है और नीलाथोथा दोनों के मिलित चूर्ण से नौवां भाग है। इसे ही शीतभञ्जी रस नाम से भावप्रकाश में कहा है। भेद इतना है कि यहां १ रत्ती मात्रा कही है और वहां आधी रत्ती। आधी रत्ती मात्रा में ही प्रयोग उत्तम है। एक और योग भी तालकादिज्वराङ्कुश नाम से मिलता है। उसमें तीनों द्रव्य तो यही हैं परन्तु परिमाण में भेद है। मर्दन के लिये धतूरे का रस प्रयुक्त होता है और पुटपाक नहीं किया जाता। हड़ताल १ कर्ष, तूतिया २ कर्ष और सीपभस्म ६ कर्ष है। धतूरे के रस से एक पहर घोट कर लौहपात्र में डाल मन्द आंच पर सुखा लेते हैं। पुनः अगले दिन कुछ गीला कर मन्द आंच पर कोसा करके गोलियां बना लेते हैं। इसे भी खांड के साथ मिला शीतज्वर में देने का विधान है।

तुत्थकादिज्वराङ्कुश नाम से एक और योग है। उसमें तूतिया १ भाग शम्बूकभस्म (घोंघाभस्म, कई सीपभस्म लेते हैं) २ भाग, हड़ताल ४ भाग है। घीक्वार के रस से घोट गोला बना लेते है। उसे एरण्डपत्रों से लपेट कर सूत्र से बांध देते हैं और शरावसम्पुट में रख गजपुट देते हैं।

इसीप्रकार तालान्तक रस है—

'तालकस्य च भागौ द्वौ भागन्तुत्थस्य शुक्तिका—
चूर्णकानां चतुर्भागं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥
यामैकेन ततः पश्चाद् रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्।
अस्य गुञ्जाद्वयं हन्ति वातिकं पैत्तिकं ज्वरम् ॥
शीतज्वरं विशेषेण तृतीयकचतुर्थकौ ॥'

अर्थात् हड़ताल २ भाग, तूतिया १ भाग, सीपभस्म ४ भाग लेकर घीक्वार के रस से १ पहर मर्दन कर शुष्क होने पर गजपुट में पाक करें।

एक शीतभञ्जी रस नाम से और योग भी है। उसमें हड़ताल १ भाग, नीलाथोथा २ भाग, सीपभस्म ३ भाग है। उसे धतूरे के पत्र के रस से घोट कर उक्त द्वितीय तालकादि ज्वराङ्कुश की तरह तय्यार किया जाता है।

इन सब प्रमाणों से हमारा पाठशोधन उचित ही है। यदि ताम्र और

तुत्थ दोनों हों तो औषध अति तीव्रवीर्य होगी और वमन के बहुत अधिक आने का भय होगा। एक शीतभञ्जी वा शीतारि रस है, उसमें तुत्थ और ताम्र दोनों हैं। परन्तु वह इससे भिन्न है, उसमें सीपभस्म नहीं है। वहां हड़ताल तुत्थ ताम्रभस्म और मनशिल को समपरिमाण में लेकर त्रिफला क्वाथ से घोट पुट देनी है। पश्चात् आक का दूध, सेहुण्ड का दूध, दन्ती क्वाथ तथा श्यामा (त्रिवृत) क्वाथ से ७-७ भावनायें दी जाती हैं। यह तो अत्यन्त तीव्रवीर्य है। सबल रोगी ही इसे सह सकेगा। इसकी एक मात्रा को ४० मिरच के दाने गुड़ आधा तोला तथा तुलसी के दो पत्तों के साथ सेवन कराने को कहा है॥ २८५—२८६॥

अथ ज्वराङ्कुशः—

ताम्रतो द्विगुणं तालं मर्दयेत् सुपर्वीद्रवैः।
प्रपुटेत् भूधरे शीते वज्रीक्षीरैर्विमर्दयेत्॥ २८७॥
प्रपुटेत् भूधरे पश्चात् पञ्चगुञ्जामितं शुभम्।
आर्द्रकस्य रसेनैव सर्वज्वरनिकृन्तनः॥ २८८॥
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च त्र्याहिकञ्चातुराहिकम्।
विषमं चापि शीताढ्यं ज्वरं हन्ति ज्वराङ्कुशः॥ २८९॥

ताम्रभस्म एक तोला, शुद्ध हड़ताल दो तोला, दोनों को मिला करेले के रसमें घोटकर भूधरयन्त्र में पुट देवे। स्वांगशीतल होने पर निकाल डण्डा थोहर (सेहुण्ड) के दूध में घोट कर फिर भूधर यन्त्र में पुट देवे। शीतल होने पर निकाल कर पांच रत्ति मात्रा में अदरक के रस से खिलावे। यह सर्व ज्वरों का नाशक है। ऐकाहिक, द्व्याहिक, तृतीयक, चातुर्थक, विषमज्वर, शीतज्वर; इन सब को यह ज्वराङ्कुश दूर करता है।

विशेषवचन—इसकी मात्रा आधी रत्ती की पर्याप्त है॥ २८७—२८९॥

अथ मेघनादो रसः—

आरं कांस्यं मृतं ताम्रं त्रिभिस्तुल्यञ्च गन्धकम्।

रसेन[1] मेघनादस्य पिष्ट्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत्[2] ।
भक्षयेत् पर्णखण्डेन विषमज्वरनाशनम् ॥ २६० ॥
अस्य[3] मात्रा द्विगुञ्जा स्यात् पथ्यं दुग्धौदनं हितम् ।
पञ्चामृतपलश्चैकमनुपानं प्रयोजयेत्[5] ॥ २६१ ॥

पित्तल भस्म, कांस्यभस्म, ताम्रभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला, शुद्ध गन्धक तीन तोला । सब को पीस कर लाल चौलाई के रस में घोट पिण्डी बांध कर सम्पुट कर गजपुट में फूंक देवे । इस की दो रत्ति की मात्रा लेकर पान के पत्तों के रस से खावे तो विषमज्वर नाश होते हैं । पथ्य में दूध चावल देवे । अनुपान में पञ्चामृत एक पल पीवे ।

विशेष वचन—इस रस का नाम आरादि ज्वराङ्कुश भी है । कहीं कहीं 'आरं' के स्थान पर 'तारं' पाठ है, यथा—भैषज्यरत्नावली में । तब पित्तलभस्म न लेकर रजतभस्म ली जाती है । कहीं कहीं यह भी स्पष्ट किया है कि पुटें छह देनी चाहियें । इस रस की आधुनिक मात्रा आधी रत्ती की पर्याप्त है । पञ्चामृत से दूध, दही, घी, खांड और मधु; ये पांच द्रव्य लिये जाते हैं । जहां इस रस का 'तारं' इत्यादि से पाठ है, वहां अनुपान के लिये—

'नागरातिविषामुस्तभूनिम्बामृतवत्सकैः ।
सर्वज्वरातिसारघ्नं क्काथमस्यानुपाययेत् ॥
तरुणं वा ज्वरं जीर्णं तृष्णां दाहं च नाशयेत् ॥'

सोंठ, अतीस, मोथा, चिरायता, गिलोय, कुटज; इनका क्काथ देने को कहा है । यह क्काथ ज्वरातिसारनाशक है । प्यास और दाह से युक्त नवीन वा पुराने ज्वर को भी हटाता है ॥ २६०-२६१ ॥

अथ शीतज्वरहरो रसः—

सूतमाक्षिकगन्धानां भागाश्चारुष्करस्य च ।

१–'क्काथेन' पा० । २–'पुटैः पचेत् । षड्भिस्तु जायते सिद्धो मेघनादो ज्वरापहः । पर्णखण्डेन माषैकं विषमज्वरनाशनम्' पा० । ३–'सञ्चूर्ण्य पर्णखण्डेन दातव्यो विषमापहः । मात्रास्य गुञ्जाद्वितयं' पा० । ४–'अत्र' पा० । ५–'प्रकल्पयेत्' पा० ।

तथाऽष्टौ तालकाच्चूर्णात् रविदुग्धस्य षोडश ॥ २९२ ॥
स्नुहीक्षीरस्य चैवाष्टौ सर्वं मृद्वाग्निना पचेत् ।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य ततः खल्वे विमर्दयेत् ।
शीतज्वरहरो नाम्ना रसोऽयं परिकीर्त्तितः ॥ २९३ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक एक तोला; दोनों की कज्जली करे। फिर स्वर्णमाक्षिकभस्म एक तोला, शुद्ध भिलावा एक तोला, शुद्ध हड़ताल का चूर्ण आठ तोला, आक का दूध सोलह तोला, थोहर का दूध आठ तोला। सब को पीसकर मन्दाग्नि से पुटपाक विधि से पकावे। स्वाङ्गशीतल होने पर खरल में डाल पीसलें। यह शीतज्वर को दूर करता है।

विशेषवचन—मात्रा एक रत्ति तक दें ॥ २९२-२९३ ॥

अथ शीतभञ्जीरसः (प्रकारभेदेन)—

पारदं रसकं तालं तुत्थं टङ्कणगन्धकम् ।
सर्वमेतत् समं शुद्धं कारवेल्लरसैर्दिनम्[1] ॥ २९४ ॥
मर्दयेत् तेन कल्केन ताम्रपात्रोदरं लिपेत् ।
अङ्गुलार्द्धार्द्धमानेन[2] तं पचेत् सिकताह्वये[3] ॥ २९५ ॥
यन्त्रे यावत् स्फुटन्त्येवं व्रीहयस्तस्य पृष्ठतः ।
ततस्तत्[4] शीतलं ग्राह्यं ताम्रपात्रोदरात् भिषक् ॥ २९६ ॥
माषैकं[5] पर्णखण्डेन भक्षयेत् मरिचैः समम् ।
शीतभञ्जीरसो नाम त्रिदिनान्नाशयेज्ज्वरम् ॥ २९७ ॥

१-'कारवेल्ल्या द्रवैः' पा० । २-'अङ्गुलार्द्धप्रमाणेन' पा० । ३-'पचेद्दावाग्निना चुल्ल्यां ताम्रपृष्ठगता यदा' पाठः क्वचित् ।

४-'ततः सुशीतलं' रसरत्नसमुच्चये पाठः । ५-'शीतभञ्जीरसो नाम चूर्णयेन्मारिचैः समम् । माषैकं पर्णखण्डेन भक्षयेन्नाशयेज्ज्वरम् । त्रिदिनैर्विषमं तीव्रमेकद्वित्रिचतुर्थकम्' र. र. स. पाठः ।

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध खपरिया, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध नीलाथोथा, शुद्ध सुहागा; प्रत्येक द्रव्य सम भाग लेकर पीसे और करेले के रस से एक दिन घोटे। फिर इस कल्क से एक ताम्बे के पात्र के अन्दर की ओर चौथाई अंगुल तक लेप करदे, फिर उसे उलटा मुंह करके एक हांडी में रखे और उस ताम्रपात्र से बड़ा एक और मिट्टी का पात्र लेकर उससे ताम्रपात्र को ढक दे। बेर के पत्तों से सन्धिलेप करके ऊपर हांडी के शेष भाग में बालू भरदे। उसके ऊपर कुछ धान डालदे। नीचे से पात्रको ज्वाला देवे। आग तब तक देनी चाहिये जब तक ऊपर के धान न फूट जांय। पश्चात् शीतल होने पर ताम्र के पात्र में से इस रस को निकाल पीसकर संभाल रखे। इस रस को एक उड़द भर मात्रा में और मरिचचूर्ण के साथ पान के पत्ते में रख खाने से तीन दिन में ज्वर नाश हो जाता है। इसका नाम शीतभञ्जीरस है।

विशेषवचन—चौथाई अंगुली के स्थान में आधी अंगुली भर लीपे" यह पाठ भी है। यहां "रसक" शब्द का अर्थ खपरिया न करके चन्द्रिकाकार ने "फिटकरी" अर्थ किया है।

इसमें यह स्मरण रखना चाहिये कि ताम्रपात्र भी भस्म हो जाता है। उसे भी साथ ही पीस लेते हैं। मूलपाठ में यद्यपि ऐसा नहीं लिखा। ऐसा ही मूलपाठ रसरत्नसमुच्चय में भी है। परन्तु भैषज्यरत्नावली में—

'यन्त्रे यावत्स्फुटन्त्येव व्रीहयस्तस्य पृष्ठतः।
ताम्रपात्रं समुद्धृत्य चूर्णयेन्मरिचैः समम्॥
शीतभञ्जीरसो नाम द्विगुञ्जं वातिक ज्वरे।
दातव्यं पर्णखण्डेन मुहूर्त्तान्नाशयेज्ज्वरम्॥'।

यह पाठ है। ताम्रपात्र बनाने के लिये पारद आदि द्रव्यों के मिलित प्रमाण के समान शुद्ध ताम्र लिया जाता है। पाक होजाने के पश्चात् जब इस औषध को निकाल कर पीसते हैं तभी कई उसके समान ही मरिच चूर्ण भी मिला लेते हैं। तब इसकी मात्रा १ रत्ती भी दे सकते हैं॥ २८४—२८७॥

अथ पञ्चाननो रसः—

रसकं तालकं तुत्थं टङ्कणं रसगन्धकम्।

तुल्यांशं सुषवीतोयैर्मर्दयेत् यामयुग्मकम् ॥ २९८ ॥
कृत्वा गोलं ताम्रपात्रेणाधोवक्त्रेण रोधयेत् ।
स्थालीं मृत्कर्पटैर्लिप्त्वा पचेत् चुल्ल्यां दिनं ततः ॥२९९॥
तच्छीतं ताम्रभस्मापि गृह्णीयात् सुरसाजलैः ।
यामं मर्द्य ततो वल्लं तुलसीमरिचैर्युतम् ॥ ३०० ॥
हन्ति सर्वं ज्वरं घोरं विषमञ्च त्रिदोषजम् ।
धात्रीकल्केन वा युक्तं दाहाख्यं विषमं जयेत् ॥ ३०१ ॥
पथ्यं दुग्धौदनं दद्यात् मुद्गयूषं सशर्करम् ।
ज्वरे धातुगते दद्यात् पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् ।
अयं पञ्चाननो नाम विषमज्वरनाशनः ॥ ३०२ ॥

शुद्ध खपरिया, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध नीलाथोथा, शुद्ध सुहागा, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य एक-एक तोला लें। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य उस में मिलाकर करेले के रस से दो पहर अर्थात् छः घण्टे तक मर्दन करे फिर उसका गोला बनाकर एक हांडी में रखकर ऊपर से एक ताम्रपात्र (६ तोला) का उलटा मुंह करके उसे ढक दें। (पश्चात् इसे भी एक शराव से ढक कर सन्धिलेप करें और पूर्ववत् हांडी को बालू से भर दें) हांडी पर कपड़ मिट्टी कर लेनी चाहिये। इसे चूल्हे पर रख दें और दिन भर की आंच दें। स्वांगशीतल होने पर ताम्रपात्र के नीचे की औषध और ताम्र-भस्म (वही भस्मीभूत ताम्रपात्र) पीसकर तुलसी के रस से एक पहर तक मर्दन करके सुखाकर रख ले। इसे पञ्चानन रस कहते हैं। इसकी डेढ़ रत्ति की मात्रा लेकर तुलसी और मिरच के साथ देने से सब घोर विषम ज्वर तथा त्रिदोषज ज्वर दूर होते हैं। आंवले के कल्क से मिलाकर दें तो दाह-ज्वर नामक विषम ज्वर दूर होता है। पथ्य में दूध चावल वा मूंग का रस खांड मिलाकर दें। धातुगत ज्वर में इस पञ्चानन रस को पिप्पलीचूर्ण और शहद मिलाकर देना चाहिये। यह पञ्चानन रस विषमज्वर-नाशक है।

विशेषवचन—यह रस इससे पूर्व कहे शीतभञ्जी रस का नामान्तर मात्र ही है। आधुनिक मात्रा आधी रत्ती ही जाननी चाहिये। इसमें और इससे पूर्व के रस में भेद इतना ही है कि वहां कल्क से ताम्रपात्र को लीप देते हैं और इसमें कल्क का गोला बनाकर ताम्रपात्र से ढक देते हैं। परिणाम में प्राप्त औषध एक सी ही होती है ॥२९८—३०२॥

अथ वमनयोगः—

कुमारीमूलकर्षैकं पिबेत् कोष्णजलेन तु।
विषमन्तु ज्वरं हन्ति वमनेन चिरन्तनम् ॥ ३०३ ॥

घीकुमार की जड़ को पीसकर एक कर्ष लें और उसे कोसे पानी से पीवें। वमन होकर पुराना विषमज्वर दूर हो जाता है ॥ ३०३ ॥

अथ विश्वेश्वरो रसः—

दरदं गन्धकं सूतं तुल्यांशं मर्दयेद् द्रवैः।
अश्वत्थजैस्त्र्यहं पश्चात् रसैः कोलकमूलजैः ॥ ३०४ ॥
निदिग्धिकारसैः काकमाचिकाया रसैः पुनः।
द्विगुञ्जां वा त्रिगुञ्जां वा गोक्षीरेण प्रदापयेत्।
रात्रिज्वरं निहन्त्याशु नाम्ना विश्वेश्वरो रसः ॥ ३०५ ॥

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें, फिर हिंगुल मिला पीस लें। अनन्तर पीपल वृक्ष की छाल के क्वाथ में तीन दिन तक मर्दन करें। फिर बेर की जड़ के क्वाथ में तीन दिन, फिर कण्टकारी के रस वा क्वाथ में तीन दिन, फिर मकोय के स्वरस में तीन दिन मर्दन करके दो रत्ति या तीन रत्ति की गोलियां बना लें। इसे गौ के दूध से दें तो रात को आने वाला ज्वर दूर होता है। इसका नाम विश्वेश्वर रस है।

विशेषवचन—भैषज्यरत्नावली प्रभृति में 'पारदं रसकं गन्धं तुल्यांशं मर्दयेद्' ऐसा पाठ है। जिसके अनुसार हिङ्गुल के स्थान पर खर्परभस्म

१—'पारदं रसकं गन्धं' इत्यन्यत्र पाठः।

डाली जाती है। 'कोलकमूलजैः' के स्थान पर 'कानकमूलजैः' ऐसा पाठ भी है–जिसके दो अर्थ होते हैं। एक दन्तीमूलक्वाथ वा धत्तूरमूल का रस। हमने खर्परभस्म वाले योग को पीपल छाल का क्वाथ, धत्तूरमूल रस, कण्टकारी रस और मकोय के रस की भावनायें देकर प्रयोग कराया है। उससे रात्रि-ज्वर शीघ्र नष्ट भी होता है। यह रात्रिज्वर पर उत्तम योग है ॥३०४–३०५॥

अथ त्र्याहिकारि रसः—

रसकेन समं शङ्खं शिखिग्रीवञ्च[1] पादिकम्।
गोजिह्वया जयन्त्या च तण्डुलीयैश्च भावयेत् ॥ ३०६ ॥
प्रत्येकं सप्तसप्ताथ शुष्कं गुञ्जाचतुष्टयम्।
जरणेन[2] घृतेनाद्यात् त्र्याहिकज्वरशान्तये ॥ ३०७

शुद्ध खपरियाभस्म, शङ्खभस्म; दोनों को एक २ तोला (९६ रत्ति) लें, शुद्ध नीलाथोथा छः माशे (४८ रत्ती) लें। तीनों को पीसकर गोजिया का रस, जयन्ती का रस तथा चौलाई का रस; प्रत्येक की सात २ भावनायें देवें। सूखने पर इसकी चार रत्ति की मात्रा ले पुराने घी से खावें तो तृतीयक ज्वर दूर होता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा $\frac{1}{2}$ रत्ती से १ रत्ती तक जाननी चाहिये। द्रव्यों का उक्तमान प्राचीन टीकाकारों के अनुसार है। परन्तु सामान्यतः एक भाग से चतुर्थांश तुत्थ लिया जाना चाहिये। तब प्रचलित मान के अनुसार यदि खर्परभस्म और शङ्खभस्म एक २ तोला (९६ रत्ती) लिया जाय तो नीलाथोथा ३ माशे (२४ रत्ती) लिया जायगा ॥ ३०६—३०७ ॥

अथ चातुर्थकारिः—

हरितालं शिलातुत्थं शङ्खचूर्णञ्च गन्धकम्।
समांशं मर्दयेत् प्राज्ञः कुमारीरसभावितम्[3] ॥ ३०८ ॥

१—शिखिग्रीवं रसकशङ्खयोः द्वयोः पादिकम् इति प्राच्याः।
२—जरणेन भृष्टजीरकचूर्णेनेति केचित्। 'पुराणेन' पा०।
३—'कुमारीरससंयुतम्' पा०।

शरावसम्पुटे कृत्वा पश्चाद् गजपुटे पचेत्।
कुमारिकारसेनैव वल्लमात्रा वटीकृता ॥ ३०६ ॥
द[1]त्ता शीतज्वरं हन्ति चातुर्थकं[2] विशेषतः।
मरिचघृतयोगेन तक्रं पीत्वा चरेद्वटीम्।
एतया वमनं भूत्वा ज्वरस्त[3]स्माद्विनश्यति ॥ ३१० ॥

शुद्ध हड़ताल, शुद्ध मनसिल, शुद्ध नीलाथोथा, शङ्खभस्म, शुद्ध गन्धक; इन सबको समभाग लेकर घीकुमारी के रस से पीसे। सूखने पर सम्पुट कर गजपुट में फूंक देवे। स्वांगशीतल होने पर इसे निकाल कर घीकुमारी के रस से घोटकर डेढ़ रत्ती की गोली बनाले। इसे देने से शीत-ज्वर, विशेष करके चातुर्थक ज्वर दूर होता है। रोगी तक्र में मिरचचूर्ण और घी मिलाकर पहले पी ले फिर गोली खावे। इससे वमन होकर ज्वर दूर हो जायगा।

विशेषवचन—यह वमनार्थ योग है अतः यहां वल्ल का अर्थ ३ रत्ती भी लिया जा सकता है। परन्तु यदि थोड़ी मात्रा में कुछ २ देर के बाद बार-बार देने से वमन हो तो उत्तम है ॥ ३०८—३१० ॥

अथ चिन्तामणि रसः (प्रकारभेदेन)—

रसं गन्धं विषं शुल्वं मृतमभ्रं फलात्रिकम्।
त्र्यूषणं दान्तिबीजञ्च समं खल्ले विमर्दयेत् ॥ ३११ ॥
द्रोणपुष्पीरसैर्भाव्यं शुष्कं तत् वस्त्रगालितम्।
चिन्तामणिरसोऽजीर्णे ह्येष वै शस्यते सदा ॥ ३१२ ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति सर्वशूलहरः परः।
[4]गुञ्जैकं वा द्विगुञ्जं वा देयमार्द्रकवारिणा ॥ ३१३ ॥

१—'दत्त्वा' पा०।
२—'चातुर्थकमथापि च', 'चातुर्थं च विशेषतः' पा०। ३—'ज्वरः शीघ्रं' पा०।
४—'गुञ्जको वा द्विगुञ्जः स्यादामरोगहरः परः' इति पा० क्वचित्।

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, हरड़ चूर्ण, बहेड़ा चूर्ण, आंवला चूर्ण, सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध दन्ती-बीज; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर द्रोणपुष्पी अर्थात् गूमा के रस से भावनायें दे। जब सूख जावे तब वस्त्र से छान शीशी में रख ले। यह चिन्तामणि रस अजीर्ण रोग में बड़ा अच्छा है। आठों प्रकार के ज्वरों को नाश करता है। सब शूल दूर करता है। एक रत्ति या दो रत्ति मात्रा में इस रस को लेकर अदरक के स्वरस से देना चाहिये।

विशेषवचन—जहां भावना देने को तो कहा हो परन्तु कितने दिन या कितनी वार यह न बताया हो वहां प्रायः सामान्य-भावनानियम के अनुसार सात भावना दी जाती हैं। अतः द्रोणपुष्पी (गूमा) के रस की सात भावना दी जांयगी ॥ ३११—३१३ ॥

अथ बृहच्चिन्तामणिरसः (प्रकारभेदेन)—

रसगन्धकलौहानि ताम्रं तारं हिरण्यकम्।
हरितालं खर्परश्च कांस्यं वङ्गश्च विद्रुमम् ॥ ३१४ ॥
मुक्ता माक्षिककाशीशं शिला च टङ्कणं समम्।
कर्पूरं च समं दत्त्वा भावना[1] सप्तसप्तकम् ॥ ३१५ ॥
भार्गी वासा च निर्गुण्डी नागवल्ली जयन्तिका।
कारवेल्लं पटोलश्च शक्राशनपुनर्नवे ॥ ३१६
आर्द्रकश्च ततो[2] दद्यात् प्रत्येकं वारसप्तकम्।
चिन्तामणिरसो नाम सर्वज्वरविनाशनः ॥ ३१७ ॥
वातिकं पैत्तिकश्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्।
द्वन्द्वजं विषमाख्यश्च धातुस्थश्च ज्वरं जयेत् ॥ ३१८ ॥

१—'भावयेत्तु भिषग्वरः' इति पाठः कार्यः।

२—'रसैरेषां प्रत्येकैः' इति पाठः कार्यः।

कासं श्वासं तथा शोथं पाण्डुरोगं हलीमकम् ।
प्लीहानमग्रमांसञ्च यकृतञ्च विनाशयेत् ॥ ३१९ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, ताम्रभस्म, चांदीभस्म, स्वर्णभस्म, शुद्ध हड़ताल, खपरियाभस्म, कांस्यभस्म, बंगभस्म, मूंगाभस्म, मोतीभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध कासीस, शुद्ध मनसिल, शुद्ध सुहागा, कर्पूर; ये सब द्रव्य समभाग लें। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर पीस लें। अनन्तर आगे लिखे द्रव्यों की भावना देवें। भारंगी, बांसा संभालू, पान, जयन्ती, करेला, पटोलपत्र, भांग, पुनर्नवा, अदरक। इन में से एक २ द्रव्य की सात सात वार भावना देनी चाहिये। यह चिन्तामणि रस (एक रत्ति भर मात्रा में प्रयोग से) सब ज्वरों को दूर करता है। वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, द्वन्द्वज, विषम तथा धातुस्थ ज्वरों को जीतता है। खांसी, दमा, शोथ, पाण्डुरोग, हलीमक, तिल्ली, अग्रमांस, यकृत्वृद्धि; इन सब रोगों को दूर करता है। ३१४—३१९ ॥

महाज्वराङ्कुशः—

पारदं गन्धकं ताम्रं हिङ्गुलं तालमेव च ।
वङ्गं लौहं माक्षिकञ्च खर्परञ्च मनःशिला ॥ ३२० ॥
मृताभ्रकं गैरिकञ्च[1] टङ्कणं दन्तिबीजकम् ।
सर्वाण्येतानि द्रव्याणि चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥ ३२१ ॥
जम्बीरविजयाचित्र–तुलसीतिन्तिडीरसैः ।
एभिर्दिनत्रयं भाव्यं[2] निर्जने रौद्रसङ्कुले ॥ ३२२ ॥
चणमात्रां वटीं कृत्वा छायाशुष्काञ्च कारयेत् ।
मन्दाग्नि[3] दीपनी चैव सर्वज्वरविनाशिनी ॥ ३२३ ॥

१—'स्वर्णाभ्रकं गैरिकञ्च टङ्कणं रूप्यमेव च' इति पाठान्तरं क्वचित् ।
२—'रौद्रे निर्जने खल्लगह्वरे' पा० । 'रौद्रे निर्जने खलु मर्दयेत्' पा० ।
३—'महाग्निजननी चैषा' पा० ।

द्वन्द्वजं[1] सर्वजश्चैव चिरकालसमुद्भवम् ।
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च ज्वरञ्च[2] सान्निपातिकम् ॥ ३२४ ॥

चातुर्थकं तथाऽप्युग्रं जलदोषसमुद्भवम् ।
सर्वान् ज्वरान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३२५ ॥

(नातः परं किञ्चिदस्ति ज्वरनाशाय भेषजम् ।)
महाज्वराङ्कुशो नाम रसोऽयं मुनिभाषितः ॥ ३२६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध हड़ताल, वंगभस्म, लौहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, खर्परभस्म, शुद्ध मनसिल, अभ्रकभस्म, शुद्ध गेरू, शुद्ध सुहागा, शुद्ध दन्तीबीज; इन द्रव्यों को समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे, फिर अन्य द्रव्य मिलाकर जम्बीर, भांग, चीता, तुलसी, तिन्तिड़ी (वृक्षाम्ल-विषांबिल अथवा इमली); इन सबके रस से तीन २ दिन भावना दे। एकान्त स्थान में धूप में भावना देनी चाहिये। फिर चने के समान गोली बना कर छाया में सुखा ले। यह गोली मन्दाग्नि को दूर करके अग्नि का दीपन करती है, सब रोगों का नाश करती है। द्वन्द्वज वा सन्निपातज पुराना ज्वर, एकाहिक, द्व्याहिक, सान्निपात ज्वर, चातुर्थक, जलदोष से उत्पन्न उग्र ज्वर; इन सब को इसप्रकार दूर करती है जिस प्रकार अन्धकार को सूरज दूर करता है। इससे बढ़ कर ज्वरनाश के लिये अन्य औषध नहीं। यह मुनि का कहा हुआ महाज्वराङ्कुश रस है।

विशेषवचन—यह एक से दो रत्ती तक की मात्रा में आजकल प्रयुक्त कराया जाता है। पाठान्तर के अनुसार दन्तिबीज न डालकर स्वर्णभस्म और चांदीभस्म डाली जाती है। यह रस प्रायः पुराने सान्तर ज्वरों में वा वारी से आने वाले मलेरिया प्रभृति ज्वरों में विशेष लाभ करता है। अब ज्वर

१—'एकजं द्वन्द्वजं चैव' पा०।

२—'त्रिदोषप्रभवं ज्वरम्' पा०। 'तथा त्रिदिवसज्वरम्' इति वा पाठः साधुः।

का वेग न हो उस समय देते हैं। वेग के आने से पूर्व इसकी दो या तीन मात्रायें देने से वह वेग रोका जा सकता है ॥ ३२०—३२६ ॥

अथ तन्त्रान्तरोक्तो महाज्वराङ्कुशः—

पारदं हिङ्गुलं ताम्रं माक्षिकं तुल्यमेव च।
वङ्गं मृतञ्च गन्धश्च खर्परञ्च मनःशिला ॥ ३२७ ॥
तालकं घनपाषाणं गैरिकं टङ्कणं तथा।
दन्तीबीजानि सर्वाणि चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥ ३२८ ॥
भावना पूर्ववत् देया वटीं कुर्य्याच्च पूर्ववत् ॥ ३२९ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध हिंगुल, ताम्रभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, वंगभस्म, शुद्ध गन्धक, खर्परभस्म, शुद्ध मनसिल, शुद्ध हड़ताल, अभ्रकभस्म, शुद्ध गेरू, शुद्ध सुहागा, शुद्ध दन्तीबीज; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर ऊपर के महाज्वराङ्कुश रस में कहे हुए सब द्रव्यों की भावना देकर पूर्ववत् ही (चने के बराबर) गोली बनावें। पूर्व के समान ही यह सब ज्वरों को दूर करती है।

विशेषवचन—कई एक टीकाकारों ने घनपाषाण से कान्तपाषाण का ग्रहण किया है परन्तु कहीं भी ये पर्यायवाचक नहीं मिलते। इससे अभ्रक लिया जा सकता है वह ज्वर में विशेष हितकर है। रसरत्नाकर में स्पष्ट कहा है 'घनपाषाणमभ्रकम्'। अथवा यदि इससे पूर्व के योग से एकसङ्गति करनी हो तो घन से अभ्रक और पाषाण से कान्तपाषाण का ग्रहण करें। अर्थात् लौहभस्म के स्थान पर यहां कान्तपाषाणभस्म है। ये दोनों एक दूसरे के प्रतिनिधि हैं। आधुनिक मात्रा और प्रयोग इसका पूर्ववत् ही है। यह योग वही का वही है केवल पाठभेद है। रसरत्नाकर में 'तुल्यमेव च' के स्थान पर 'तुत्थमेव च' पाठ है। संग्रहकर्ता ने यहां तो 'भावना पूर्ववत्' इत्यादि से संक्षेप कर दिया है। परन्तु जो पाठ रसरत्नाकर में है उसके अनुसार भावना की औषधियां भी कुछ भिन्न हैं—

'जयन्ती विजया चिञ्चा तुलसी शालपर्णिका ।
प्रत्येकं च रसं दत्त्वा निर्जने वाथ भूगृहे ॥'

ऐसा पाठान्तर है । इसके अनुसार जयन्ती, भांग, इमली, तुलसी तथा शालपर्णी की भावनायें दी जाती हैं ॥ ३२७—३२६ ॥

अथ सर्वतोभद्ररसः—

विशुद्धं गगनं ग्राह्यं द्विकर्षं शुद्धगन्धकम् ।
तोलकं तोलकार्द्धञ्च हिङ्गुलोत्थरसं तथा ॥ ३३० ॥

कर्पूरं केशरं मांसी तेजपत्रं लवङ्गकम् ।
जातीकोषफलञ्चैव सूक्ष्मैला करिपिप्पली ॥ ३३१ ॥
कुष्ठं तालीशपत्रञ्च धातकीचोचमुस्तकम् ।
हरीतकी च मरिचं शृङ्गवेरविभीतकम् ॥ ३३२ ॥
पिप्पल्यामलकञ्चैव शाणभागं विचूर्णितम् ।
सर्वमेकीकृतं पिष्ट्वा वटीं कुर्य्याद् द्विगुञ्जिकाम् ॥ ३३३ ॥
भक्षयेत् पर्णखण्डेन मधुना सितयाऽपि वा ।
रोगं ज्ञात्वाऽनुपानञ्च प्रातः कुर्याद्विचक्षणः ॥ ३३४ ॥
हन्ति मन्दानलान् सर्वानामदोषं विसूचिकाम् ।
पित्तश्लेष्मभवं रोगं वातश्लेष्मभवं तथा ॥ ३३५ ॥
आनाहं मूत्रकृच्छ्रञ्च संग्रहग्रहणीं वमिम् ।
अम्लपित्तं शीतपित्तं रक्तपित्तं विशेषतः ॥ ३३६ ॥
चिरज्वरं पित्तभवं धातुस्थं विषमज्वरम् ।
कासं पञ्चविधं हन्ति कामलां पाण्डुमेव च ॥ ३३७ ॥
सर्वलोकहितार्थाय शिवेन कथितः पुरा ।
सर्वतोभद्रनामायं रसः साक्षात् महेश्वरः ॥ ३३८ ॥

अभ्रकभस्म दो कर्ष, शुद्ध गन्धक एक तोला, हिंगुल से निकाला हुआ पारा आधा तोला ले । कर्पूर, नागकेसर चूर्ण, जटामांसी (बालछड़) चूर्ण, तेजपात का चूर्ण, लौंग का चूर्ण, जायफल चूर्ण, जावित्री चूर्ण, छोटी इलायची के बीजों का चूर्ण, गजपीपल का चूर्ण, कूठ का चूर्ण, तालीशपत्र चूर्ण, धाय के फूलों का चूर्ण, दारचीनी चूर्ण, मोथा चूर्ण, हरड़ चूर्ण, मरिच चूर्ण, सोंठ चूर्ण, बहेड़ा चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, आंवला चूर्ण; प्रत्येक एक २ शाण ले। पहले पारे गन्धक की कज्जली करे । फिर अन्य द्रव्य मिलाकर जलसे पीसकर दो रत्ति भर की गोली बना ले। इसे पान के रस से अथवा शहद से या मिश्री से खावे। प्रातःकाल इसे खाकर रोगानुसार अनुपान करे। यह मन्दाग्नि, आमदोष, विसूचिका, पित्तश्लेष्मज रोग, वातश्लेष्मज रोग, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, संग्रहग्रहणी, वमन, अम्लपित्त, शीतपित्त, विशेष करके रक्तपित्त, पुराना ज्वर, पित्तज्वर, धातुस्थ ज्वर, विषम ज्वर, पांच प्रकार की खांसी, कामला, पाण्डु; इन रोगों को दूर करता है । यह सर्वतोभद्र रस साक्षात् महेश्वर अर्थात् महासामर्थ्यशाली है । सब लोकों के हित के लिये इसे शिवजी ने पूर्व कहा था।

विशेषवचन—यहां जो कर्ष है वह तोले का वाचक है। अतः अभ्रकभस्म २ तोले (१९२ रत्ती) लिया जायगा। गन्धक १ तोला (९६ रत्ती), पारा आधा तोला (४८ रत्ती) और कर्पूर आदि के चूर्ण एक शाण (२४ रत्ती) लिये जांयगे।

संग्रहणी में भी यह रस अपूर्व लाभ करता है । ज्वरातिसार में भी यह प्रयुक्त होता है। यक्ष्मा के प्रलेपकज्वर के नाश के लिये भी इसे देते हैं । किसी किसी ने कर्ष को २ तोले का मान कर अभ्रकभस्म ४ तोले और इसीप्रकार कर्पूर आदि के चूर्ण आधा तोला लेने को कहे हैं ॥३३०—३३८॥

अथ बृहज्ज्वरान्तकलौहम्—

रसं गन्धं तोलकञ्च जातीकोषफले तथा ।
हेमभस्म तु पादैकं तोलार्द्धं रूप्यलौहकम् ॥ ३३९ ॥
शिलाजत्वभ्रकञ्चैव भृङ्गराजञ्च मुस्तकम् ।

केशराजमपामार्गं लवङ्गञ्च फलत्रिकम् ॥ ३४० ॥
वराङ्गवल्कलश्चैव पिप्पलीमूलमेव च ।
सैन्धवश्च विडश्चैव गुडूचीचूर्णमेव च ॥ ३४१ ॥
कण्टकारीं रसोनञ्च धान्यकं जीरकद्वयम् ।
चन्दनं देवकाष्ठञ्च दार्वीन्द्रयवमेव च ॥ ३४२ ॥
किराततिक्तकं बालं तोलकञ्च समाहरेत् ।
द्वितोलं मरिचं देयं भावयेदार्द्रकद्रवैः ॥ ३४३ ॥
माषार्द्धं भक्षयेत् प्रातर्मधुना मधुरीकृतम् ।
ज्वरं नानाविधं हन्ति शुक्रस्थं चिरकालजम् ॥ ३४४ ॥
साध्यासाध्यविचारोऽत्र नैव कार्य्यो भिषग्वरैः ।
अन्तर्धातुगतञ्चैव नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ३४५ ॥
भूतोत्थं श्रमजञ्चापि सन्निपातज्वरं तथा ।
असाध्यञ्च ज्वरं हन्ति यथा सूर्योदयस्तमः ॥ ३४६ ॥
गरुडञ्च समालोक्य यथा सर्पः पलायते ।
तथैवास्य प्रसादेन ज्वरः सोपद्रवो ध्रुवम् ॥ ३४७ ॥
बलदं पुष्टिदश्चैव मन्दाग्निनाशनं परम् ।
वीर्य्यस्तम्भकरश्चैव कामलापाण्डुरोगनुत् ॥ ३४८ ॥
सदा तु रमते नारीं न वीर्य्यं क्षयतां व्रजेत् ।
प्रमेहं विविधञ्चैव विविधां ग्रहणीं तथा ।
अनुपानविशेषेण सर्वव्याधिं विनाशयेत् ॥ ३४९ ॥

शुद्ध पारा एक तोला (९६ रत्ती), शुद्ध गन्धक एक तोला ले, दोनों की कज्जली करे । फिर इसमें जायफल एक तोला, जावित्री एक तोला, स्वर्ण-

भस्म तीन माशे (आधुनिक मानके अनुसार-२४ रत्ती), चांदीभस्म आधा तोला (४८ रत्ती), लौहभस्म आधा तोला, शुद्ध शिलाजीत, अभ्रकभस्म, भांगराचूर्ण, मोथाचूर्ण, केशराजचूर्ण, अपामार्गचूर्ण, लौंगचूर्ण, हरड़चूर्ण, बहेड़ाचूर्ण, आंवलाचूर्ण, दारचीनी चूर्ण, पिप्पलामूल चूर्ण, सेंधानमक, बिडनमक, गिलोय का चूर्ण [प्रायः "गिलोय का सत" डालने का व्यवहार है], कण्टकारी चूर्ण, लशुन, धनियांचूर्ण, सफ़ेद जीरा चूर्ण, कालाजीरा चूर्ण, लालचन्दन चूर्ण, देवदारु चूर्ण, दारुहल्दी चूर्ण, इन्द्रजौ चूर्ण, चिरायता चूर्ण सुगन्ध बाला चूर्ण, इनमें से प्रत्येक एक २ तोला और मरिच चूर्ण दो तोला डालकर सब द्रव्यों को एकत्र घोटकर अदरक के रसकी सात भावना देवे। इसे सुखाकर शीशी में रख ले। इसको आधा माषा (२½ वा ३ रत्ती) ले शहद से मीठा करके प्रातःकाल खावे तो नाना प्रकार के ज्वर, पुराना ज्वर, शुक्रगत ज्वर दूर होते हैं। इस रस को देते समय विद्वान वैद्य साध्य या असाध्य का विचार न करे, असाध्य में भी दे दे। धातुओं के अन्दर पहुंचे हुए ज्वर को भी यह नाश करता है—यह बात असन्दिग्ध है। भूतज्वर, श्रमज्वर, सन्निपात ज्वर और असाध्य ज्वर को भी यह ऐसे दूर करता है जैसे सूर्य अन्धकार को। गरुड़ को देखकर जैसे सांप भाग जाते हैं वैसे ही इस रस की कृपा से उपद्रव सहित ज्वर भाग जाते हैं। यह रस बलदायक, पुष्टिकर, मन्दाग्नि-नाशक, वीर्यस्तम्भकारक, कामला-पाण्डु-रोग-नाशक है। इसे सेवन करने वालों को नित्य नारी से रमण करने की सामर्थ्य रहती है। वीर्य भी क्षय को प्राप्त नहीं होता। यह विविध प्रकार के प्रमेह, विविध ग्रहणी रोग तथा अन्य सब रोगों को भी उन २ रोग के नाशक विशेष अनुपानों से दूर करता है॥ ३३६—३४६॥

अथ चूडामणिरसः—

मृतं सूतं प्रवालञ्च स्वर्णं तारञ्च वङ्गकम्।
शुल्वं मुक्ता तीक्ष्णमभ्रं सर्वमेकत्र योजयेत्॥ ३५०॥
पिष्ट्वा जलेन वटिका कार्य्या वल्लप्रमाणतः।
धातुस्थं सान्निपातोत्थं ज्वरं विषमसम्भवम्॥ ३५१॥

कामशोकसमुद्भूतं त्रिदोषजनितं तथा ।
कासं श्वासञ्च विविधं शूलं सर्वाङ्गसम्भवम् ॥ ३५२ ॥
शिरोरोगं कर्णशूलं दन्तशूलं गलग्रहम् ।
वातपित्तसमुद्भूतं ग्रहणीं सर्वसम्भवाम् ॥ ३५३ ॥
आमवातं कटिशूलमग्निमान्द्यं विसूचिकाम् ।
अर्शांसि कामलां मेहं मूत्रकृच्छ्रादिकञ्च यत् ॥ ३५४ ॥
तत्सर्वं नाशयत्याशु विष्णुचक्रमिवासुरान् ।
चूडामणिरसो ह्येष शिवेन परिकीर्त्तितः ॥ ३५५ ॥

रससिन्दूर, प्रवालभस्म, स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, वंगभस्म, ताम्रभस्म, मोतीभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, अभ्रकभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें । सब को पीस जलसे डेढ़ रत्ति की गोली बना लें । यह रस धातुगत, सन्निपात, विषम, कामज, शोकज ज्वर तथा त्रिदोषज कास, श्वास, विविध सर्वाङ्गशूल, वातपित्तज शिरोरोग, कर्णशूल, दन्तशूल, गलग्रह, तथा सर्वदोषज संग्रहणी, आमवात, कटीशूल, अग्निमान्द्य, विसूचिका, बवासीर, कामला, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों को ऐसे शीघ्र नाश करता है जैसे असुरों को विष्णु का सुदर्शनचक्र । यह रस शिवजी ने बनाया है ।

विशेष वचन—इसे विशेषतः पुराने विषमज्वर में वात की प्रधानता और ज्वर के वेग की प्रबलता में प्रयोग कराया जाता है । अवस्था-विशेष के अनुसार अनुपान की कल्पना की जासकती है, परन्तु सामान्यतः इसे अदरक रस और मधु वा पिप्पलीचूर्ण और मधु के साथ दिया जाता है ॥ ३५०—३५५ ॥

अथ भानुचूडामणिः—

सुवर्णं रससिन्दूरं प्रवालं वङ्गमेव च ।
लौहं ताम्रं तेजपत्रं यमानीं विश्वभेषजम् ॥ ३५६ ॥

सैन्धवं मरिचं कुष्टं खदिरं द्विहरिद्रकम्।
रसाञ्जनं माक्षिकञ्च समभागञ्च कारयेत् ॥ ३५७॥
वारिणा वटिका कार्य्या रक्तिद्वयप्रमाणतः।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ ३५८॥

स्वर्णभस्म, रससिन्दूर, प्रवालभस्म, वंगभस्म, लोहभस्म, ताम्रभस्म, तेजपत्र चूर्ण, अजवायन का चूर्ण, सोंठचूर्ण, सेंधानमक, मिरचचूर्ण, कूठचूर्ण, कत्थाचूर्ण, हल्दीचूर्ण, दारुहल्दी का चूर्ण, रसौंत, स्वर्णमाक्षिकभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। सबको पीसकर जलसे दो रत्ति प्रमाण की गोली बनावे। इसे प्रातःकाल सेवन करे तो सब ज्वर नाश करती है ॥ ३५६—३५८ ॥

अथ बृहच्चूडामणिरसः—

कस्तूरिकाविद्रुमरौप्यलौहं तालं हिरण्यं रससिन्दुरञ्च।
सुवर्णसिन्दूरलवङ्गमुक्ताः चोचं घनं माक्षिकराजपट्टम् ॥३५९॥
गोक्षूरजातीफलजातिकोपं मरीचकर्पूरशिखिग्रिवञ्च।
प्रगृह्य सर्वं हि समं प्रयत्नादथाश्वगन्धाद्द्विगुणं हि वैद्यः ॥३६०॥
वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकं मुनिसङ्ख्यया।
निर्गुण्डीफञ्जिकावासा–रविमूलत्रिकण्टकैः ॥ ३६१ ॥
तद्वीर्य्यं कथयिष्यामि वातिकं पैत्तिकं ज्वरम्।
कफोद्भवं द्विदोषोत्थं त्रिदोषजनितं तथा ॥ ३६२ ॥
सन्ततं सततं हन्ति तृतीयकचतुर्थकौ।
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च विषमं भूतसम्भवम् ॥ ३६३ ॥
नाशयेदचिरादेव वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा।
चूडामणिरसो ह्येष शिवेन परिभाषितः ॥ ३६४ ॥

कस्तूरी, प्रवालभस्म, रौप्यभस्म, लौहभस्म, हड़ताल शुद्ध, स्वर्णभस्म,

रससिन्दूर, सुवर्णसिन्दूर, लौंग, मोतीभस्म, दारचीनी, अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, कान्तपाषाणभस्म, गोखरूचूर्ण, जायफल चूर्ण, जावित्री चूर्ण, मिरच चूर्ण, कपूर, शुद्ध नीलाथोथा । प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लेकर मिलावें । फिर असगन्ध का चूर्ण दो तोला डालकर आगे कही प्रत्येक औषध से सात २ वार भावना देवें । निर्गुण्डी (सम्भालू), ब्रह्मयष्टी (भारंगी), बांसा (अडूसा), आक की जड़, गोखरू; इनके रस या काढ़े से भावना दें । फिर सूख जाने पर सुरक्षित रख लें । इसके सेवन से वातिक, पैत्तिक, कफज, द्विदोषज, त्रिदोषज, सन्तत, सतत, तृतीयक, चातुर्थक, ऐकाहिक, द्व्याहिक, विषमज्वर, भूतज्वर सब नष्ट हो जाते हैं । बिजली जिस प्रकार वृक्षों को नष्ट करती है वैसे ही यह शीघ्र ज्वरों को नष्ट करता है । इसका नाम चूड़ामणि रस है । इसे स्वयं शिवजी ने कहा है ।

विशेषवचन–इस रस की मात्रा–२ रत्ती है । कई यहां 'घन' से मोथा लेते हैं परन्तु अगले योग को देखने से अभ्रकभस्म लेना ही उचित है । अभ्रक ज्वर में अत्यन्त लाभकर होता है । इस रस को अर्धाङ्गज्वर में भी दिया जाता है ॥ ३५९—३६४ ॥

अथ बृहज्ज्वरचूडामणिरसः—

स्वर्णं स्वर्णसिन्दूरं लौहं तारं मृगाण्डजाम् ।
जातीफलं जातिकोषं लवङ्गञ्च त्रिकण्टकम् ॥ ३६५ ॥
कर्पूरं गगनञ्चैव चोचं मुषलतालकम् ।
प्रत्येकं कर्षमानन्तु तुरङ्गञ्च द्विकार्षिकम् ॥ ३६६ ॥
विद्रुमं भस्मसूतञ्च मौक्तिकं माक्षिकं तथा ।
राजपट्टं शिखिग्रीवं सर्वं सञ्चूर्ण्य यत्नतः ।
खल्ले तु चूर्णमादाय भावयेत् परिकीर्त्तितैः ॥ ३६७ ॥
निर्गुण्डीफञ्जिकावासा–रविमूलत्रिकण्टकैः ।
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥ ३६८ ॥

स्वर्णभस्म, स्वर्णसिन्दूर, लौहभस्म, चांदीभस्म, कस्तूरी, जायफलचूर्ण, जावित्री का चूर्ण, लौंग का चूर्ण, गोखरू का चूर्ण, कपूर, अभ्रकभस्म, दारचीनी का चूर्ण, मूसली का चूर्ण, शुद्ध हड़ताल; इन द्रव्यों में से प्रत्येक को एक २ कर्ष लें। अश्वगन्धा दो कर्ष लें। मूंगाभस्म, रससिन्दूर, मोतीभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, कान्तपाषाणभस्म, शुद्ध नीलाथोथा, प्रत्येक द्रव्य दो २ कर्ष लें। इन सबको एकत्र करके यत्न से पीसकर क्रमशः आगे लिखे द्रव्यों की भावना देवें। संभालू, भारंगी, बांसा, आक की जड़ गोखरू; इनके काढ़े या स्वरस लेकर प्रत्येक से सात २ भावना देवे। (फिर एक रत्ति की गोली बनावे)। इस के सेवन से आठों प्रकार के ज्वर, साध्य वा असाध्य दोनों दूर होते हैं।

विशेषवचन—पूर्वोक्त बृहत् चूड़ामणि रस तथा इस रस में बहुत भेद नहीं है। द्रव्य प्रायः वही हैं। केवल मरिच के स्थान पर यहां मूसली है। यदि 'तुरङ्गञ्च द्विकार्षिकम्' से केवल असगन्ध दो कर्ष ली जाय और कहे जाने वाले मूंगा आदि द्रव्यों में दो कर्ष प्रमाणका अनुवर्तन न अभिप्रेत हो तो यह बृहत् चूड़ामणिरस ही होजाता है। दो कर्ष प्रमाण को मूंगा आदि में अनुवर्तन करने से इसे उससे भिन्न रस स्वीकार किया जाता है।

कई टीकाकार 'मुषलतालकम्' से केवल मूसली लेते हैं और हेतु यह देते हैं कि तन्त्रान्तर में तालक पृथक् नहीं पढ़ा। परन्तु इससे ऊपर के योग में ही तालक पृथक् कहा है।

इसीप्रकार इसकी रसान्तरता बताने के लिये 'तुरङ्ग' का अर्थ गन्धक करते हैं। परन्तु किसी निघण्टु में यह गन्धक का वाचक नहीं मिलता। मुख्यार्थ अश्वगन्धा ही है।

यह रस भी पूर्व रस के सदृश ही जीर्ण विषम वा अर्धाङ्ग-ज्वर में प्रयुक्त कराया जा सकता है।

रोगों में पथ्या-पथ्य के लिये चरक सुश्रुत तथा अन्य पथ्यापथ्य के बताने वाले ग्रन्थों को देखें॥ ३६५—३६८॥

इति रसेन्द्रसारसंग्रहे ज्वराधिकारः।

अथ ज्वरातिसार-चिकित्सा ।

अथ मृतसञ्जीवनी वटी—

मागधी वत्सनाभश्च तयोस्तुल्यश्च हिङ्गुलम् ।
मृतसञ्जीवनी ख्याता जम्बीररसमर्दिता ॥ १ ॥
मूलकस्य च बीजानां वटिका तुल्यरूपिणी ।
पानीया शीततोयेन ज्वरातीसारनाशिनी ।
विसूच्यां सन्निपाते च ज्वरे चैवातिदुस्तरे ॥ २ ॥

पिप्पलीचूर्ण एक तोला, शुद्ध वत्सनाभ एक तोला, शुद्ध हिंगुल दो तोला; इन सबको मिला पीसकर जम्बीरी नीबू के रस से घोट कर मूली के बीज के बराबर गोली बनावे । इसे ठण्डे जल से पीने से ज्वरातीसार दूर होता है । विसूची, सान्निपात तथा भयंकर ज्वर में भी यह लाभ देती है ।

विशेषवचन—यद्यपि ज्वर और अतिसार की पृथक् चिकित्सायें कही हैं, परन्तु जो ज्वर की मुख्यतया अनुलोमन वा विरेचन चिकित्सा है वह अतिसार को बढ़ाती है और जो अतिसार की स्तम्भन चिकित्सा है वह ज्वर-वर्धक है अतः वह चिकित्सा ज्वरातिसार में हित नहीं होती । ज्वरातिसार की पृथक् ही चिकित्सा है। इस में लङ्घन के बाद दीपक पाचक ज्वरघ्न चिकित्सा होती है । पश्चात् अल्प संग्राही औषध भी दी जासकती हैं । ज्वर में कही औषधें जो अतिसार में हानिकर न हों और अतिसार में कहे गये योग जो ज्वर को बढ़ाने वाले न हों इस में प्रयोग किये ही जा सकते हैं ।

यदि स्तम्भक औषध ही पूर्व दे देंगे तो आध्मान शूल विष्टम्भ यकृद्-वृद्धि शोथ आदि उपद्रव होजांयगे । अतः स्तम्भक औषध पीछे दी जाती है । औषध केवल स्तम्भक ही न हो पाचक भी हो ॥ १—२ ॥

अथ आनन्दभैरवो रसः—

हिङ्गुलश्च विषं व्योषं टङ्गणं गन्धकं समम् ।

जम्बीररससंयुक्तं मर्दयेत् यामकद्वयम्[1] ॥ ३ ॥
कासश्वासातिसारेषु ग्रहण्यां सान्निपातिके[2] ।
अपस्मारेऽनिले मेहेऽप्यजीर्णे वह्निमान्द्यके ।
गुञ्जामात्रः प्रदातव्यो रस आनन्दभैरवः ॥ ४ ॥

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध विष, सोंठ चूर्ण, मिरच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध सुहागा, शुद्ध गन्धक; सब द्रव्य समभाग ले और जम्बीरी नीबू के रस से छह घण्टे घोटकर एक रत्ति प्रमाण की गोली बनावे। यह आनन्दभैरव रस कहाता है। इसके सेवन से खांसी, श्वास, अतिसार, ग्रहणी, सन्निपात, अपस्मार, वातरोग, प्रमेह, अजीर्ण, अग्निमान्द्य रोग नष्ट होते हैं।

विशेषवचन—सब से पूर्व विषचूर्ण को खरल में डालकर जम्बीरी नीबू के रस से खूब घोटे पश्चात् गन्धक, हिङ्गुल और सुहागा क्रमशः डालकर मर्दन करे। पीछे त्रिकटु का कपड़छान किया चूर्ण डालकर घोट ले और गोलियां बनावे ॥ ३—४ ॥

अथ अमृतार्णवो रसः—

हिङ्गुलोत्थो रसो लौहं टङ्कणं गन्धकं शटी ।
धान्यकं बालकं मुस्तं पाठाऽजाजी[3] घुणप्रिया ॥ ५ ॥
प्रत्येकं तोलकं चूर्णं छागीदुग्धेन पेषयेत् ।
माषैका वटिका कार्य्या रसोऽयममृतार्णवः ॥ ६ ॥
वटिकां भक्षयेत् प्रातर्गहनानन्दभाषिताम् ।
धान्यजीरकयूषेण[4] विजयाशणबीजतः ॥ ७ ॥

१—'याममात्रकम्' पा० ।
२—'च हलीमके' पा० ।
३—'जीरं' पा० ।
४—'धान्यजीरकचूर्णेन विजयाशालबीजतः' पा० ।

मधुना च्छागदुग्धेन मण्डेन शीतवारिणा ।
कदलीमोचकरसैः कञ्चटद्रवकेण च ॥ ८ ॥
अतिसारं जयेदुग्रमेकजं द्वन्द्वजं तथा ।
दोषत्रयसमुद्भूतमुपसर्गसमान्वितम् ॥ ६ ॥
शूलघ्नो वह्निजननो ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ।
अम्लपित्तप्रशमनः कासघ्नो गुल्मनाशनः ॥ १० ॥

हिंगुल से निकाला हुआ पारा, लौहभस्म, शुद्ध सुहागा, शुद्ध गन्धक, कचूरचूर्ण, धनियांचूर्ण, सुगन्धबालाचूर्ण, मोथा चूर्ण, पाठा चूर्ण, जीरा चूर्ण, अतीस का चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लेकर पीस करके बकरी के दूध से घोटकर एक माषा भर की गोली बनाओ । इस रस का नाम अमृतार्णव रस है । गहनानन्द ने इसको कहा है । इस रस की गोली प्रातः काल खावे और अनुपानों में मूंग वा मसूर के रस में धनियां और जीरा का चूर्ण डालकर अथवा भांग के बीज और सन के बीजों के चूर्ण के साथ, मधु के साथ, बकरी के दूध के साथ, चावलों के मण्ड के साथ, शीतल जल से, केले की जड़ के रस से अथवा केले के फल के साथ (अथवा मोचरस के साथ) अथवा कञ्चटशाक (जलचौलाई) के रस से देने से एकज द्वन्द्वज त्रिदोषज तथा उपद्रवों से युक्त उग्र अतिसार दूर होता है। यह रस शूलनाशक अग्निदीपक है । ग्रहणी, बवासीर, अम्लपित्त, खांसी तथा गुल्मरोग को नाश करता है ।

विशेषवचन—आज कल इसकी मात्रा ४ रत्ति की व्यवहार की जाती है ॥ ८—१० ॥

प

अथ सिद्धप्राणेश्वरो रसः—

गन्धेशाभ्रं पृथग्वेदभागमन्यच्च भागिकम्
स्वर्जिटङ्कयवक्षाराः पञ्चैव लवणानि च ॥ ११ ॥

१—'कण्टकारीद्रवेण वा' पा० ।

वराव्योषेन्द्रबीजानि द्विजीराग्नियमानिकाः।
सहिङ्गु बीजसारश्च शतपुष्पा सुचूर्णिता ॥ १२ ॥
सिद्धप्राणेश्वरः सूतः प्राणिनां प्राणदायकः।
माषैकं भक्षयेदस्य नागवल्लीदलैर्युतम्[1] ॥ १३ ॥
उष्णोदकानुपानञ्च दद्यात् तत्र पलत्रयम्[2]।
ज्वरातिसारेऽतिसृतौ[3] केवले वा ज्वरेऽपि वा ॥ १४ ॥
ज्वरे त्रिदोषजे घोरे[4] ग्रहण्यादिगदेऽपि च।
वातरोगे तथा शूले शूले च परिणामजे ॥ १५ ॥

शुद्ध गन्धक चार तोला, शुद्ध पारा चार तोला; दोनों की कज्जली करे। इसमें अभ्रकभस्म चार तोला मिलावे। फिर सज्जी, यवक्षार, शुद्ध सुहागा, पांचों नमक, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, इन्द्रजौ, श्वेतजीरा, कालाजीरा, चीता, अजवायन, हींग, विडङ्ग, सोये; इन में से एक २ द्रव्य का चूर्ण एक तोला लेकर मिलावे। सब को पीसकर जल से एक माषा भर की गोली बना ले। इस रस को एक माषा भर लेकर पान के पत्ते में रख खावे और अनुपान में तीन पल गरम पानी पीवे तो ज्वरातीसार, केवल अतिसार वा केवल ज्वर, त्रिदोषज ज्वर, घोर ग्रहणी आदि रोग, वातरोग, शूलरोग तथा परिणामशूल में यह लाभ करता है।

विशेषवचन—इसे २ से ४ रत्ती तक की मात्रा में आजकल दिया जाता है। यह रस आमान्वित ज्वरातिसार में अधिक लाभकर है। यदि पेट में कृमि होने के कारण ज्वरातिसार हो वा केवल अतिसार हो तो वहां भी इससे लाभ होता है॥ ११--१५ ॥

१—'भक्षयेदच्छनागवल्लीद्रवैर्युतम्' इति रसेन्द्रचिन्तामणिपाठः।

२—'पलद्वयम्' पा०।

३—'ज्वरतिसारेऽतीसारे' पा०। 'ज्वरातिसारेऽतिस्रुतौ' पा०।

४—'घोरे त्रिदोषजे रोगे ग्रहण्यामसृगामये।' पा०।

भक्षणाद् ग्रहणीं हन्ति रसः कनकसुन्दरः।
अग्निमान्द्यं ज्वरं तीव्रमतिसारञ्च नाशयेत्।
द[1]ध्यन्नं दापयेत् पथ्यं यद्वा[2] तक्रौदनं हितम्॥ २७॥

शुद्ध हिंगुल, मरिच चूर्ण, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध विष, शुद्ध धतूरे के बीज; सब समभाग लेकर पीसें। भांग के रस से एक पहर मर्दन करके चने के समान गोली बनाकर खावें तो यह ग्रहणी, अग्निमान्द्य, ज्वर तथा तीव्र अतीसार को नाश करता है। इसमें दही चावल और छाछ चावल का पथ्य देना हितकर है। इस का नाम कनकसुन्दर रस है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा १ रत्ती है। रसप्रकाशसुधाकर में भांग के रस से मर्दन करने को नहीं कहा। वहां कनकसुन्दरी गुटिका नाम से है। निघण्टुरत्नाकर में हिंगुल के स्थान पर पारा है। रसकामधेनु में यह हेमसुन्दर नाम से है। टोडरानन्द में इस का नाम कनकप्रभा है॥ २६—२७॥

अथ कनकप्रभा वटी—

सुवर्णबीजं मरिचं मराल-पादं कणा टङ्कणकं विषञ्च।
गन्धं जयाद्भिर्दिवसं विमर्द्य गुञ्जाप्रमाणां वटिकां विदध्यात्॥२८॥
एषाऽतिसारग्रहणीज्वराग्नि-मान्द्यान्निहन्यात् कनकप्रभेयम्।
दध्योदनं भोज्य[3]मनुष्णवारि मांसं भजेत्तित्तिरिलावकानाम्॥२९॥

शुद्ध धतूरे के बीज, मरिच चूर्ण, हंसपदी अर्थात् प्रसौंशां का चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध सुहागा, शुद्ध विष, शुद्ध गन्धक; इन सबको समभाग लेकर भांग के रस से एक दिन घोटकर एक रत्ति प्रमाण की गोली बनावे, इसे सेवन करने से अतिसार, ग्रहणी, ज्वर, अग्निमान्द्य नाश होते हैं।

१—'पथ्यं दध्योदनं दद्याद्यद्वा तक्रौदनं चरेत्।' भै० र० पाठः।
२—'सदा तक्रौदनं हितम्' पा०। 'गव्याजं तक्रमेव वा' र० र० स० पाठः।
३—'पथ्यमनुष्णवारि' पा०।

इसमें दही चावल, ठण्डा जल, तीतर और लावा का मांस खाना पथ्य है। यह कनकप्रभा वटी है।

विशेषवचन–'जया' जयन्ती का वाचक भी है। अतः जयन्ती के रस से भी कई मर्दन करते हैं। जयन्ती योगवाही तथा ज्वरनाशक प्रसिद्ध है॥ २८—२९॥

अथ कारुण्यसागररसः—

भस्मसूतात्[1] द्विधा गन्धं तथा[2] द्वित्वं मृताभ्रकम्।
दिनं सार्षपतैलेन पिष्ट्वा यामं विपाचयेत्॥ ३०॥
रसैर्मार्कवमूलोत्थैः पिष्ट्वा[3] यामं विपाचयेत्।
त्रिक्षारपञ्चलवण–विषव्योषाग्निजीरकैः॥ ३१॥
सविडङ्गैस्तुल्यभागैरयं[4] कारुण्यसागरः।
माषमात्रं[5] ददीताऽस्य भिषक् सर्वातिसारके॥ ३२॥
सज्वरे विज्वरे[6] वाऽपि[7] सशूले शोणितोद्भवे।
निरामे शोथयुक्ते वा ग्रहण्यां सान्निपातिके।
अनुपानं[8] विनाप्येष कार्य्यसिद्धिं करिष्यति॥ ३३॥

रसासिन्दूर एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला, अभ्रक भस्म दो तोला। तीनों को पीस सरसों के तेल से घोटकर बालुकायन्त्र में एक पहर पका लेवे। फिर भांगरे की जड़ के रस में पीस कर एक पहर बालुकायन्त्र में पकावे। अनन्तर यवक्षार, शुद्ध सुहागा, सज्जी, पांचों नमक, शुद्ध विष,

---

१–'रसभस्म' र० चि० पाठः। २–'तस्य तुल्यं' र० चि० पाठः। 'तस्माद् द्विघ्नं मृताभ्रकम्' रसराजसुन्दरे पाठः।

३–'निर्यासैः संविमर्द्य च' पा०। ४–'सचित्रकैः समानांशैर्युक्तैः' पा०।

५–'माषद्वयं प्रयुञ्जीत रसस्यास्यातिसारके।' पा०। ६–'विषमे' र० रा० सु० पाठः।

७–'वाथ शूले च शोणितोद्भवे' र० चि० पाठः। ८–'सानुपानकम्' पा०।

सोंठ चूर्ण, मिरच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, चीता चूर्ण, श्वेत जीरा चूर्ण, त्रिडंग चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य समभाग (रससिन्दूर के समान अर्थात् १ तोला) लेकर पहले द्रव्यों में मिलाकर घोटे और एक माषा की गोली बनाकर रोगी को दे। इस से सब प्रकार का अतिसार, चाहे वह ज्वर युक्त हो वा ज्वर रहित, शूलयुक्त हो, रक्तज हो, निराम हो, शोथयुक्त हो, सान्निपातिक हो-लाभ होता है। ग्रहणी में भी हितकर है। विना अनुपान के भी यह कार्य सिद्ध करता है।

विशेषवचन–इस की आधुनिक मात्रा २ रत्ती है ॥

बृहद्रसराजसुन्दर में तृप्तिसागर रस नाम से एक रस संगृहीत है–जिसका पाठ निम्न है—

'रसभस्म तु भागैकं रसाद् द्विगुणगन्धकम् ।
गन्धकाद् द्विगुणं चाभ्रं निश्चन्द्रं मर्दयेत्ततः ॥
दिनैकं कटुतैलेन रुद्ध्वा चुल्ह्यां विपाचयेत् ।
यामैकं वालुयन्त्रे च समुद्धृत्य विमर्दयेत् ॥
हयमारकमूलोत्थै रसैर्यामं निरुद्ध्य च ।
पूर्ववत्पाचयेच्चुल्ह्यां समादाय विमिश्रयेत् ॥
त्रिक्षारपञ्चलवणनिष्काग्निद्वयजीरकैः ।
विडङ्गेन च तुल्येन युक्तोऽयं तृप्तिसागरः ॥
भक्षयेन्माषमात्रं च सन्निपातातिसारजित् ।
सज्वरां ग्रहणीं हन्ति ह्यनुपानं विना रसः ॥'

यह रस कारुण्यसागर ही है। उक्त पाठ के अनुसार अभ्रकभस्म ४ तोले ली जाती है। करुणासागर के पाठ में 'तस्माद् द्विघ्नं मृताभ्रकम्' ऐसा पाठान्तर उपलब्ध है–वहां भी ४ तोले ही अभ्रकभस्म होगी। मार्कव (भृङ्गराज-भांगरा) के स्थान पर यहां हयमारक (कनेर) है। 'विषव्योषाग्नि-जीरकैः' के स्थान पर 'निष्काग्निद्वयजीरकैः' ऐसा पाठ है। इसप्रकार के पाठभेद लेखकप्रमाद से हो सकते हैं ॥ ३०—३३ ॥

अथ बृहत्कनकसुन्दरो रसः—

शुद्धसूतं समं गन्धं मरिचं टङ्कणं तथा ।

स्वर्णबीजं समं मर्द्यं भार्गीद्रावैर्दिनार्द्धकम् ॥ ३४ ॥
सूततुल्यं मृतश्चाभ्रं रसः कनकसुन्दरः ।
अस्य गुञ्जाद्वयं हन्ति पित्तातीसारमुग्रकम् ॥ ३५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, मिरच चूर्ण, शुद्ध सुहागा, काले धतूरे के शोधित बीज; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर पीस ले और भारंगी के रस या क्वाथ से आधा दिन घोटे। फिर अभ्रकभस्म एक तोला मिलाकर पीसकर दो रत्ति भर की गोली बना ले। इस कनकसुन्दर रस से प्रबल पित्तातीसार नाश होता है।

विशेषवचन—रसेन्द्रचिन्तामणि में इस रस को थोड़ा भिन्न पढ़कर वातातिसार में प्रयुक्त करने को कहा है। वहां मर्दनार्थ भारंगीरस के स्थान पर भृङ्गराज का रस है। और अभ्रक के स्थान पर शुद्ध वत्सनाभ विष है। इस में पथ्य दहीभात है। दही गौ का वा बकरी का होना चाहिये ॥३४—३५॥

अथ मृतसञ्जीवनो रसः—

रसगन्धौ समौ ग्राह्यौ सूतपादं विषं क्षिपेत् ।
सर्वतुल्यं मृतश्चाभ्रं मर्द्यं धुस्तूरजैर्द्रवैः ॥ ३६ ॥
सर्पाक्ष्याश्च द्रवैर्यामं कषायेणाथ भावयेत् ।

१–'भृङ्गद्रावैर्दिनार्द्धकम्' र०चि० पाठः।'
२–'विषं योज्यं' र० चि०पाठः।
३–'युक्तो' र० चि पाठः। 'योगं' र० र० पाठः।
४–'वातातीसारमद्भुतम्' र० चि० पाठः। 'पित्तातिसारमद्भुतम्' र०र० पाठः।
अस्मादनन्तरं च 'दध्यन्नं दापयेत्पथ्यमाजं वाथ गवां दधि' इत्याधिकं पठ्यते।
५–'शुद्धसूतं समं गन्धं' र० चि० पाठः।

धातक्यतिविषा–मुस्तं शुण्ठी–जीरक–वालकम् ॥ ३७ ॥
यमानी धान्यकं[2] बिल्वं पाठा पथ्या कणान्विता ।
कुटजस्य त्वचं बीजं कपित्थं दाडिमं[3] बला ॥ ३८ ॥
प्रत्येकं कर्षमात्रं स्यात् कुट्टितं[4] क्वाथयेत् जलैः ।
चतुर्गुणं[5] जलं दत्त्वा यावत् पादावशेषितम् ॥ ३९ ॥
अनेन त्रिदिनं भाव्यं पूर्वोक्तं मर्दितं रसम् ।
रुद्ध्वा तद्वालुकायन्त्रे क्षणं मृद्वग्निना पचेत् ॥ ४० ॥
मृतसञ्जीवनो नाम[6] चास्य गुञ्जाचतुष्टयम् ।
दातव्यमनुपानेन चासाध्यमपि साधयेत् ॥ ४१ ॥
षट्प्रकारमतीसारं साध्यासाध्यं जयेद् ध्रुवम् ।
नागरातिविषा मुस्तं देवदारु कणा[7] वचा ॥ ४२ ॥
यमानी बालकं धान्यं कुटजत्वक्[8] हरीतकी ।
धातकीन्द्रयवौ बिल्वं पाठा मोचरसं समम् ।
चूर्णितं मधुना लेह्यमनुपानं सुखावहम् ॥ ४३ ॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक एक भाग, दोनों की कज्जली करे। फिर शोधित विष $\frac{1}{4}$ भाग तथा अभ्रकभस्म तीनों के बराबर डालकर सबको पीसकर धतूरे के रस से १ पहर घोटे। फिर सर्पाक्षी (कोई शालिञ्ची-शाक और कोई रास्ना भी अर्थ लेते हैं) के रस से या कषाय से एक पहर

---

१ 'धात्री चातिविषा' र० चि० पाठः। २ 'धातकी' र० चि० पाठः।

३ 'बालदाडिमम्' भै० र० पाठः। 'दाडिमं तिलाः' र० चि० पाठः। 'दाडिमं-वचा' र० र० पाठः।

४ 'कल्कितं क्वाथितं' र० चि० पाठः। ५ 'कल्कात् चतुर्गुणं तोयं क्वाथ्यं पादावशेषितम्' र० चि० पाठः। ६ 'नाम्ना रसो' पा०।

७ 'वचारुणा' र० चि० पाठः। ८ 'कुटजस्य त्वचाभया' पा०।

तक मर्दन करे। इसके अनन्तर धाय के फूल, अतीस, मोथा, सोंठ, जीरा, सुगन्धबाला, अजवायन, धनियां, बेलगिरी, पाठा, हरड़, पिप्पली, कुटज की छाल, इन्द्रजौ, कैथ, अनारदाना, बला; इन सतरह द्रव्यों में से प्रत्येक को एक २ कर्ष लेकर सब को मिलाकर जौकुट करके इन से चौगुना अर्थात् ६८ कर्ष जल डाल कर पकावे, शेष सतरह कर्ष बचने पर उतार ले। इस काढ़े से पूर्वोक्त घुटे हुए पारदादि को तीन दिन तक भावित करे। सूखने पर बालुकायन्त्र से एक क्षण अर्थात् चार दण्ड तक पकावे। अग्नि मन्द २ हो। फिर निकाल कर चार रत्ति भर की गोली जल से बनावे। इसे योग्य अनुपान से देने से छः प्रकार का साध्य या असाध्य अतीसार ठीक होता है। इस के साथ आगे लिखा अनुपान करे। सोंठ, अतीस, मोथा, देवदार, पिप्पली, बच, अजवायन, सुगन्धबाला, धनियां, कुड़े की छाल, हरड़, धाय के फूल, इन्द्रजौ, बेलगिरी, पाठा, मोचरस; सब द्रव्य समभाग लेकर कूट पीस कर चूर्ण कर इसे शहद से चाटे।

विशेषवचन–यहां पर पारद आदि का प्रमाण नहीं कहा, केवल क्वाथ्य-द्रव्यों का प्रमाण कहा है। क्वाथ्य द्रव्य १७ हैं जिनका प्रमाण मिलाकर १७ कर्ष होता है। यदि अवर मान के अनुसार कर्ष को तोले का वाचक समझा जाय तो १७ तोले भावनार्थ क्वाथ्य द्रव्य हुए। क्वाथ्य द्रव्य भाव्य द्रव्य के समान होने चाहियें। अतः पारद ४ तोले, गन्धक ४ तोले, शुद्ध-विष १ तोला और अभ्रकभस्म ९ तोले लें तो १८ तोले भाव्य द्रव्य होंगे। जो कि लगभग क्वाथ्य द्रव्य के तुल्य समझने चाहियें। अतः वैद्य इस प्रमाण में उक्त द्रव्यों को लेते हैं।

यदि पारद १ तोला (९६ रत्ती), गन्धक १ तोला, शुद्ध विष ३ मासे (२४ रत्ती) और अभ्रकभस्म २$\frac{1}{4}$ तोले इस हिसाब से लें तो जो भावनार्थ क्वाथ कहा है उसे ही तीन वार के लिये पर्याप्त समझें।

भावनाओं के पश्चात् औषध के सूख जाने पर उसे एक मिट्टी के शरावे में बन्द कर बालुकायन्त्र में पकावें। कई औषध को हांडी में डालकर उसके ऊपर ही औंधा मुंह शराव देकर सन्धिलेप कर देते हैं और हांडी के शेष भाग को वालू से भर कर अग्नि देते हैं।

इस रस की आधुनिक मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक है । अनुपान चूर्ण की मात्रा-१ मासे से ३ मासे तक समझनी चाहिये ।

योगरत्नाकर में भी मृतसंजीवन रस है—

'रसगन्धौ विषं सूतात्पादभागं समं च तैः ।
गगनं भावयेदेभी रसैः सर्वं विचूर्णयेत् ॥
सर्पाक्षीधातकीस्वर्णविषाविश्वजयाम्बुदम् ।
यवानीबिल्वधान्याकजीरपाठाकणाशिवाः ।
कुटजत्वक्कपित्थं च दाडिमं सकलिङ्गकम् ॥
इत्येषां गोलकं कृत्वा वालुकायन्त्रगं पचेत् ।
मृतसञ्जीवनो नाम रसः स्यादस्य वल्लकः ॥
षट्प्रकारमतीसारं हन्ति वै चानुशीलितः ।
विश्वाब्दधातकीदारुयवान्यम्बुकणा वचा ।
कुटजो धान्यकं बिल्वं पाठेन्द्रयवशाल्मली ॥
विषा[1]भया समं चैषां चूर्णेन मधुना सह ॥

इसमें सर्पाक्षी और धतूरे से भी भावना देने को ही कहा है । प्रकृत-ग्रन्थ के मूलपाठ में शेष धातकी आदि सब द्रव्यों को मिला उसके क्वाथ से भावना देने को कहा है । यहां प्रत्येक द्रव्य के रस वा क्वाथ से पृथक् भावना देने का अभिप्राय प्रतीत होता है । सर्पाक्षी और धतूरे के अतिरिक्त यहां १६ द्रव्य हैं । इसमें 'बला' नहीं पढ़ी गई । भैषज्यरत्नावली के पाठ के अनुसार भी 'बला' नहीं चाहिये । वहां 'दाडिमं बला' के स्थान पर 'बालदडिमम्' ऐसा पाठ है । जिसका अभिप्राय छोटा कच्चा अनार (नसपाल) से है । इसप्रकार वहां भी १६ ही द्रव्य हैं । लेखकप्रमाद से 'दाडिम बला' ऐसा पाठ होगया प्रतीत होता है । 'बालक' के स्थान पर योगरत्नाकर में जया है । जया भी ज्वरातिसार में अच्छी है । परन्तु शायद ल के स्थान पर य का परिवर्तन होगया हो—वास्तव में 'विश्वजलाम्बुदम्' पाठ हो । 'जल' बालक (सुगन्धबाला) का वाचक है ॥ ३६—४३ ॥

१—'विश्वाभया' इति प्रमादकृतः पाठः ।

अथ प्राणेश्वरो रसः—

रसगन्धकमभ्रञ्च टङ्कणं शतपुष्पकम् ।
यमानी जीरकाख्यञ्च प्रत्येकं कर्षयुग्मकम् ॥ ४४ ॥
कर्षमेकं यवक्षारं हिङ्गु पटुकपञ्चकम् ।
विडङ्गेन्द्रयवं सर्ज–रसकञ्चाग्निसंज्ञितम् ।
घृष्ट्वा च वटिका कार्य्या नाम्ना प्राणेश्वरो रसः ॥ ४५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, शुद्ध सुहागा, सोये चूर्ण, अजवायन चूर्ण, जीरा चूर्ण; प्रत्येक दो २ कर्ष लें । पहले पारे गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिला लें । पश्चात् यवक्षार, हींग, पांचों नमक, विडंग, इन्द्रजौ, राल, चीता; इन में से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ कर्ष लें । सब को मिला पीसकर जल से घोट गोली बना लें । इसका नाम प्राणेश्वर रस है ।

विशेषवचन–आधुनिक मात्रा–२ रत्ती से ४ रत्ती तक है । सिद्धप्राणेश्वर के सदृश ही ज्वरातिसार में लाभकर है ॥ ४४—४५ ॥

पित्तज्वरे पित्तभवोऽतिसारस्तथातिसारे यदि वा ज्वरः स्यात् ।
दोषस्य दूष्यस्य समानभावात् ज्वरातिसारः कथितो भिषग्भिः ॥४६॥

यदि पित्तज्वर में पैत्तिक अतीसार हो जाय अथवा उसी प्रकार इससे विपरीत अतीसार में ज्वर हो जाय तो उस रोग को चिकित्सक ज्वरातिसार कहते हैं । इसमें ज्वर और अतिसार के उत्पादक दोष (वात आदि) और दूष्य (रस रक्त आदि) समान होते हैं ।

अभिप्राय यह है कि जो दोष जिन दूष्यों को दूषित करके ज्वर को प्रकट करते हैं यदि वह ही दोष उन्हीं दूष्यों को दूषित करके ज्वर के रहते ही अतीसार को भी उत्पन्न कर देते हैं तो उसे ज्वरातिसार कहा जाता है । इसीप्रकार जो दोष जिन दूष्यों को दूषित करके अतिसार को करते हैं वह ही दोष उन्हीं दूष्यों को दूषित करके अतिसार के रहते ही ज्वर को भी प्रकट करते हैं उसे भी ज्वरातिसार कहा जायगा ।

ज्वरातिसार वस्तुतः कोई स्वतन्त्र व्याधि नहीं। अपितु ज्वर और अतिसार के मेल को ही ज्वरातिसार कहा जाता है। इसकी चिकित्सा यतः केवल ज्वर और केवल अतिसार से भिन्न होती है अतः चिकित्सा-प्रकरण में इसका पृथक् उपदेश आवश्यक हो जाता है ॥ ४६ ॥

इति ज्वरातिसार-चिकित्सा।

अथ अतीसार-चिकित्सा।

अथ अतिसारवारणो रसः

दरदं कृतकर्पूरं मुस्तेन्द्रयवसंयुतम्।
सर्वातीसारशमनं खाखसीक्षीरभावितम् ॥ १ ॥

शुद्ध हिंगुल, उड़ाया हुआ वा शुद्ध कपूर, मोथा चूर्ण, इन्द्रजौ का चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर अफीम के रस से भावित करके गोली बनालें। इससे सब अतीसार शान्त होते हैं।

विशेषवचन—भावनार्थ शुद्ध अफ़ीम १ भाग ले और उसे जल में घोल लें। गोली १ रत्ती की बनावें। अनुभवी वैद्य तो एक भाग के चतुर्थांश अफ़ीम से भावना देकर २ रत्ती की गोली बनाते हैं। इसे पक्वातिसार में जब उदर में आध्मान गुड़गुड़ाहट आदि लक्षण न हो तभी देना अच्छा है। रसराजसुन्दर में यह 'अतिसारदलन' नाम से है। पाठ निम्न है—

'दरदाम्बुदकर्पूरं वत्सबीजं सुचूर्णितम्।
भावितं खाखसक्षीरैः सर्वातीसारनाशनम् ॥
शुद्धपानीयतः सिद्धं तक्रेणेदं द्रुतं भवेत्।
नाम्नातीसारदलनमनुभूतं महीतले ॥'

अनुपान वा पथ्य के लिये इस रस में तक्र का प्रयोग करना चाहिये—यह यहां विशेष कहा है ॥ १ ॥

अथ पूर्णचन्द्रोदयो रसः—

शुद्धञ्च तालकं लौहं गगनञ्च पलं पलम्।
कर्पूरं पारदं गन्धं प्रत्येकं वटकोन्मितम् ॥ २ ॥

१—'अम्बु च' पाठान्तरम्। अम्बु बालकम्।

जातीकोषमुरापत्रं शटीतालीशकेशरम्।
व्योषं चोचं कणामूलं लवङ्गं पिचुसम्मितम्॥ ३॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकः।
नानारूपमतीसारं ग्रहणीं सर्वरूपिणीम्॥ ४॥
अम्लपित्तं तथा शूलं शूलञ्च परिणामजम्।
रसायनवरश्चायं वाजीकरण उत्तमः॥ ५॥

शुद्ध हड़ताल, लौहभस्म, अभ्रकभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ पल (४ कर्ष) लें। कपूर, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य आधा कर्ष लें। जावित्री चूर्ण, मुरामांसी चूर्ण, तेजपत्र चूर्ण, कचूर चूर्ण, तालीशपत्र चूर्ण, नागकेशर चूर्ण, सोंठ चूर्ण, मिरच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, दारचीनी का चूर्ण, पिपलामूल चूर्ण, लौंग चूर्ण; ये सब एक २ कर्ष लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर सब द्रव्यों को उचित क्रम से मिला कर जलसे गोली बना लें। इसे गुरु देव तथा ब्राह्मण की पूजा करने वाला प्रातःकाल खाये तो नाना रूप के अतिसार, सब प्रकार की ग्रहणी, अम्लपित्त, शूल, परिणाम-शूल नष्ट होते हैं। यह उत्तम वाजीकरण और रसायन भी है।

विशेषवचन—इसकी आधुनिक मात्रा दो वा तीन रत्ती की है। इसे आमातिसार में दिया जाता है॥ २—५॥

अथ कणाद्यं लौहम्—

कणानागरपाठाभिस्त्रिवर्गत्रितयेन[1] च।
बिल्वचन्दनह्रीबेरैः सर्वातीसारजिद्भवेत्[2]॥ ६॥
सर्वोपद्रवसंयुक्तामपि हन्ति प्रवाहिकाम्।
नानेन सदृशं लौहं विद्यते ग्रहणीहरम्॥ ७॥

पिप्पली, सोंठ, पाठा, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, विडंग, नागरमोथा, चीता, बिल का गूदा, लाल चन्दन, सुगन्धवाला,

१ 'त्रिवर्गद्वितयेन' पा०। २ 'सर्वातीसारनुन्मतः' पा०।

इन में से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग ले और सब के बराबर लौहभस्म डाले। इसकी गोली बना रखे। इसे देने से सब अतीसार दूर होते हैं। सब उपद्रवों से युक्त प्रवाहिका को भी यह लौह दूर करता है। इस 'कणाद्य लौह' से बढ़कर ग्रहणी रोग का नाश करने वाला और लौह नहीं है।

विशेषवचन—त्रिवर्गत्रितय से त्रिकुटा त्रिफला और त्रिमद का ग्रहण होता है। इन वर्गों के द्रव्य ऊपर क्रमशः कह दिये हैं। सोंठ के दोबार पढ़े जाने से २ भाग लिये जांयगे। लोह की प्रधानता होने के कारण लोहभस्म सर्वसम ली जाती है। आधुनिक मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक है॥ ६—७॥

अथ बृहद्गगनसुन्दरो रसः—

पारदं गन्धकश्चाभ्रं लौहश्चापि वराटकम्।
रूप्यं चातिविषं कर्षं समभागं प्रकल्पयेत्॥ ८॥
धान्यशुण्ठीकृतक्काथैर्भावयेच्च पृथक् पृथक्।
गुञ्जाप्रमाणां वटिकां कारयेत् कुशलो भिषक्॥ ९॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकः।
दग्धबिल्वं गुडेनैव कुर्य्यात् तदनुपानकम्॥ १०॥
अजादुग्धेन वा पेयं जम्बूत्वक्साधितं रसम्।
अतीसारे ज्वरे घोरे ग्रहण्यामरुचौ तथा॥ ११॥
सामे सशूलरक्ते च पिच्छास्रावे भ्रमे तथा।
शोथे रक्तातिसारे च संग्रहग्रहणीषु च॥ १२॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, कौड़ीभस्म, चांदी-भस्म, अतीस का चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष ले। पहले पारे गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर सब को पीस कर धनियां और सोंठ के काढ़ों से पृथक् २ भावना देवें। इस की एक रत्ति प्रमाण की गोली बनाकर प्रातःकाल गुरु देवता ब्राह्मणों का पूजन करके सेवन करे और कच्चे बिल को भूनकर गुड मिला अनुपान रूप से खावे। अथवा बकरी

के दूध के साथ जामुन की छाल के काढ़े को अनुपान रूप में पीवे। अथवा जामुन की छाल के रस में बकरी का दूध पका ले, उस दूध को पीवे। यह रस अतिसार, घोर ज्वर, ग्रहणी, अरुचि, आम शूल और रक्त सहित पिच्छास्राव में (जब आंव आती हो), भ्रम शोथ रक्तातीसार तथा संग्रहग्रहणी में लाभ करता है।

विशेषवचन—यह पैत्तिक आमातिसार में विशेष लाभकर है॥८-१२॥

अथ लोकनाथो रसः—

भस्मसूतस्य भागैकं चत्वारः शुद्धगन्धकात्।
क्षिप्त्वा वराटिकागर्भे टङ्कणेन निरुद्ध्य च॥ १३॥
भाण्डे रुद्ध्वा पुटे पाच्यं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्।
लोकनाथरसो नाम क्षौद्रैर्गुञ्जाचतुष्टयम्॥ १४॥
नागरातिविषामुस्तं देवदारुवचान्वितम्।
कषायमनुपानन्तु सर्वातीसारनाशनम्॥ १५॥

रससिन्दूर एक तोला, शुद्ध गन्धक चार तोला; दोनों को पीस कर मिलावे। फिर कौड़ियों के पेट में इसे भरकर उनका मुंह सुहागे से बन्द करके सुखाकर एक हांडी में रख ऊपर से मुंह बन्द कर लघुपुट में फूंक देवे। स्वांग शीतल होने पर निकाल कर पीस ले। चार रत्ति भर इसकी मात्रा शहद से मिलाकर खावे। अनुपान में सोंठ, अतीस, मोथा, देवदार और बच; इनका काढ़ा बनाकर पीवे तो सब प्रकार का अतीसार दूर होता है।

विशेषवचन—सुहागे को गौ के दूध वा बकरी के दूध से पीसकर कौड़ियों के मुंह पर लेप किया जाता है। रसरत्नसमुच्चय में भी यह योग है—

'मृतपारदभागैकं चत्वारः शुद्धगन्धकात्।
यामैकं मर्दयेत्खल्वे तेन पूर्या वराटकाः॥
टङ्कणं तु गवां क्षीरैः पिष्ट्वा तेन मुखं लिपेत्।
वराटानां प्रयत्नेन रुद्ध्वा भाण्डे पुटे पचेत्॥

स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य ततश्चूर्ण्या वराटकाः ।
लोकनाथरसो नाम्ना क्षौद्रैर्गुञ्जाचतुष्टयम् ॥
नागरातिविषामुस्तादेवदारु वचान्वितम् ।
कषायमनुपानं स्याद्वातातीसारनाशनः ॥'

जो अनुपानार्थ काढ़ा कहा गया है यह विशेषतः वातातिसार में दिया जाता है । रसरत्नाकर में भी 'वातातीसारनाशनम्' ऐसा पाठ है ।

यही योग मूत्राघातप्रकरण में लघुलोकेश्वर नाम से कहा गया है। केवल अनुपान की भिन्नता है । वहां यह भी बताया है कि कौड़ियों का मुंह बन्द करने के लिये सुहागा रससिन्दूर के भाग से चौथाई होना चाहिये।

आजकल इसे २ रत्ती मात्रा में प्रयुक्त कराया जाता है ।

एक लोकनाथ (लोकेश्वर) रस रसराजसुन्दर में दिया है वहां शुद्ध पारद १ भाग गन्धक २ भाग है और सुहागे को गोमूत्र से पीसने को कहा है—

'शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मर्दयेत्प्रहरद्वयम् ।
सञ्जाते कज्जले श्लक्ष्णे तेन पूर्या वराटिका ॥
टङ्कणं च गवां मूत्रे पिष्ट्वा लेप्यं मुखं ततः ।
वराटिकाः प्रयत्नेन रुद्ध्वा भाण्डे पुटे पचेत् ॥
स्वाङ्गशीतं तथा भाण्डमुत्तार्य च वराटिका ।
ततः सूक्ष्मं कृतं चूर्णं लोकेश्वररसः स्मृतः ॥
चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन लीढं च मधुना समम् ।
अतिसारं ग्रहण्यर्शो नाशयेत्तत्क्षणादपि ॥, १३–१५ ॥'

चिन्तामणिरसः—

**शुद्धसूतं मृतं ताम्रं गन्धकं प्रतिकार्षिकम् ।
चूर्णयेद्विषकर्षार्द्धं विषार्द्धं तिन्तिडीफलम् ॥ १६ ॥
मर्दयेत् खल्लमध्ये तु चाम्लेन गोलकीकृतम् ।
गर्त्तं षडङ्गुलं कुर्य्यात् सर्वतो वर्त्तुलं शुभम् ॥ १७ ॥**

नागवल्ल्याः क्षिपेत् पत्रमादौ पत्रे[1] च गोलकम्।
आच्छाद्य तच्च पत्रेण[2] रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ॥ १८ ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य सपत्रञ्च विशेषतः।
कर्षार्द्धं मरिचं दत्त्वा कर्षार्द्धं तिन्तिडीफलम् ॥ १६ ॥
गुञ्जामितां वटीं कुर्य्यात् चिन्तामणिरसो महान्।
अतिसारे त्रिदोषोत्थे संग्रहग्रहणीगदे।
अनुपानं विधातव्यं यथादोषानुसारतः ॥ २० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक एक २ कर्ष लेकर कज्जली करे। फिर ताम्रभस्म एक कर्ष मिला कर घोटे। शोधित विष आधा कर्ष, तिन्तिडी [वृक्षाम्ल, विषांबिल (ग्राही), कई पका इमली का फल (भेदी) लेते हैं] चौथाई कर्ष मिलावे। सबको खूब मर्दन करे। तथा कांजी से घोटकर एक गोला बनावे। भूमि में छह अंगुल चौड़ा तथा गहरा गोल गढ़ा बनाकर उसमें पान के पत्ते बिछादे। उस पर गोला रखकर उसके ऊपर भी पान के पत्ते से ढक दे। ऊपर गजपुट दे। स्वांगशीतल होने पर उस गोले को पत्तों समेत चूर्ण करले। और फिर उसमें मरिच चूर्ण आधा कर्ष और तिन्तिड़ीफल (विषांबिल) आधा कर्ष मिलाकर घोट ले। एक रत्ति प्रमाण की गोली बनाले। यह चिन्तामणि रस कहाता है। इसे अतिसार में, त्रिदोषज संग्रहणी में देवे। इसके साथ दोषानुसार भिन्न २ अनुपान का विधान करे।

विशेषवचन-यहां पर जीवानन्द ने और उसी के पीछे आंखें मूंद कर चलने वाले दूसरे टीकाकारों ने हास्यास्पद भूल की है। देखिये-पारद आदि द्रव्य मिलाकर ३॥ कर्ष हैं-जिनका गोलक बनाना है। वे टीकाकार कहते हैं कि इस गोलक में ६ अंगुल गढ़ा करें और उस में पान का पत्र रखें। कमसे कम यह तो सोचना चाहिये कि इस छोटे से गोलक में ६ अंगुल का गर्त हो भी सकता है? यहां तो भूमि में गर्त करके उसमें पान के पत्ते बिछा गोलक रख ऊपर पान के पत्तों से आच्छादित करना है।

१ 'पात्रे' पा०। २ 'पात्रेण' पा०।

अथवा पान के पत्तों को गोलक के चारों ओर लपेट कर उस गर्त में रख पान के पत्तों से शेष भाग को अच्छादित कर सकते हैं। कई गोलक को पान के पत्तों में लपेट कर गर्त में रख देते हैं और ऊपर वालुका देकर पुट देते हैं।

मूलपाठ में इसे गजपुट देने को लिखा है। परन्तु यह तीव्र होगी। कुक्कुटपुट देना उत्तम होगा। अतः 'गजपुटे' के स्थान पर 'दद्मपुटे' कर सकते हैं।

रसतन्त्रों में चिन्तामणि रस का पाठ और उपलब्ध होता है—

'अभ्रगन्धकसूतानां तोलैकैकं पृथक् पृथक्।
गृहीत्वा विषतोलार्धं तोलार्द्धं तित्तिरीफलम्॥
यावत्तच्छ्लक्ष्णतां याति द्रवैरम्लैर्विमर्दयेत्।
विस्तारपरिणाहेन गर्तं कृत्वा षडङ्गुलम्॥
फणिवल्लीदलान्यत्र गर्तायां प्रक्षिपेदथ।
गर्तायाञ्च ततो देयं पुटमारण्यकोत्पलैः॥
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य शृङ्गवेरैर्विमर्दयेत्।
तोलार्धममृतं दत्वा तोलार्धं तित्तिरीफलम्॥
स्थापयेत्खल्लितं खल्वे योजयेद् गुञ्जमात्रया।
शृङ्गवेराम्भसा युक्तैर्व्योषचित्रकसैन्धवैः॥
सन्निपाते महावाते त्रिदोषे विषमज्वरे।
अग्निमान्द्ये ग्रहण्याञ्च तथा देयोऽतिसारिणे।
दाहाधिक्यं[1] यदा कुर्यादुदकं ढालयेत्तदा।
एष योगवरः श्रीमान् प्राणिनां प्राणदायकः॥
चिन्तामणिरिति ख्यातो रसः सर्वाङ्गसुन्दरः॥'

यहां पर ताम्र के स्थान पर अभ्रक है। हो सकता है–'ताम्रं' के स्थान पर 'चाभ्रं' पाठ हो। मूलपाठ में विष से आधा तित्तिड़ीफल है। टीका में उद्धृत पाठ के अनुसार विष और तित्तिड़ीफल समान भाग हैं। सम्भव

१-'वाताधिक्ये यथा' इति प्रमादकृतः पाठः।

है—'विषार्द्ध' के स्थान पर 'कर्षार्द्ध' पाठ हो । यहां पुट देने के पश्चात् अदरक के रस से मर्दन करना अधिक कहा है । पश्चात् 'मरिच' के स्थान पर 'अमृत' विशेष है । प्रकृत ग्रन्थ के मूलोक्त पाठ में सम्भव है 'कर्षार्द्धं मरिचं' के स्थान पर 'कर्षार्द्धममृतं' हो । लेखक का लिखने में प्रमाद हो । टीका में जो पाठ उद्धृत है वहां एक अनुपान का उल्लेख है-अर्थात् त्रिकटु चित्रक और सैन्धानसक; इनके चूर्ण को अदरक के रस में डालकर औषध के पश्चात् पीना चाहिये ।

यहां पर जो तिन्तिड़ीफल कहा गया है, कई टीकाकार उससे जैपालबीज लेने को कहते हैं । तिन्तिड़ीफल जमालगोटे का वाचक भी है । इसप्रकार यह योग भैषज्यरत्नावली प्रभृति के ज्वराधिकार में--

'सूतं गन्धकमभ्रकं सममलवं सूतार्द्धभागं विषं
तत् त्र्यंशं जयपालमम्लमृदितं तद्गोलकं वेष्टितम् ।
पत्रैर्मञ्जुभुजङ्गवल्लिजनितैर्निक्षिप्य खाते पुटं
दत्वा कुक्कुटसंज्ञकं सह दलैः सञ्चूर्ण्य तत्र क्षिपेत् ॥
भागार्द्धं जयपालबीजममृतं तत्तुल्यमेकीकृतं
गुञ्जा त्र्यूषणसिन्धुचित्रकयुता सर्वान् ज्वरान्नाशयेत् ॥
शूलं संग्रहणीगदं सजठरं दध्यन्नसंसेविनाम् ।
तापे सेचनकारिणां गदवतां सूतस्य चिन्तामणेः ॥
'अयमेव रसो देयो मृतकल्पगदातुरे ।'

इस पाठ से उक्त चिन्तमणि रस के समान हो जाता है यदि 'तत् त्र्यंशं पाठ को प्रमादपाठ मानते हुए 'तत्तुल्यं' यह पाठ कर दिया जाय ।

इसे उस अतिसार में प्रयोग करा सकते हैं जिसमें अतिसार के प्रकट होने से पूर्व तीव्र कोष्ठबद्धता हो और उसी कोष्ठबद्धता के कारण अतिसार हो । इसे ऐसे अतिसार की आमावस्था में दे सकते हैं । विशेष कर यदि कोष्ठ में कफ वात की प्रबलता हो । वृक्षाम्ल से प्रस्तुत रस को अतिसार की निरामावस्था में भी प्रयुक्त कर सकते हैं ॥ १६—२० ॥

अहिफेनवटिका—

अहिफेनं सखर्जूरं घृष्ट्वा गुञ्जैकमात्रकम् ।
रक्तस्रावमतीसारमतिवृद्धं विनाशयेत् ॥ २१ ॥

शुद्ध अफीम, पिण्डखजूर; दोनों को सम भाग में पीसकर एक रत्ति प्रमाण की गोली बनावे । इसे सेवन करने से रक्तस्राव और अति बढ़े हुए अतिसार का नाश होता है ॥ २१ ॥

महागन्धकं सर्वाङ्गसुन्दरश्च—

रसगन्धकयोः कर्षं ग्राह्यमेकं सुशोधितम् ।
ततः कज्जलिकां कृत्वा मृदुपाकेन सधयेत् ॥ २२ ॥
जातीफलं[1] तथा कोषं लवङ्गारिष्टपत्रके ।
(सिन्धुवारदलश्चैव एलाबीजं तथैव च) ॥ २३ ॥
एषांश्च[2] कर्षमात्रेण तोयेनाथ विमर्दयेत् ।
मुक्तागृहे पुनः स्थाप्यं पुटपाकेन साधयेत् ॥ २४ ॥
घनपङ्कं बहिर्लिप्त्वा पुटमध्ये निधापयेत् ।
गुञ्जाषट्कप्रमाणेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ २५ ॥
एतत्प्रोक्तं कुमाराणां रक्षणाय महौषधम् ।
ज्वरघ्नं दीपनश्चैव बलवर्णप्रसाधनम् ॥ २६ ॥
दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयत्येव प्रवाहिकाम् ।
सूतिकाश्च जयेदेतद्[3]रक्तार्शो रक्तसम्भवम् ॥ २७ ॥
पिशाचा दानवा दैत्या बालानां विघ्नकारकाः[4] ।

१—'जात्याः फलं' पा० । २—'एतेषां' पा० ।

३—'जयेदेतदपि वैद्यविवर्जिताम् । कासश्वासातिसारघ्नं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ बालरोगं निहन्त्याशु सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ पिशाचा......' इति पाठान्तरम् ।

४—'ये विघातकाः' पा० ।

यत्रौषधवरास्तिष्ठेत् तत्र सीमां न यान्ति ते ॥ २८ ॥
बालानां गदयुक्तानां स्त्रीणांश्चैव विशेषतः ।
महागन्धकमेतद्धि सर्वव्याधिनिसूदनम् ।
विना पाकेन सर्वाङ्गसुन्दरोऽयं प्रकीर्त्तितः ॥ २९ ॥

शुद्ध पारा एक कर्ष, शुद्ध गन्धक एक कर्ष; दोनों की कज्जली करके मृदु पाक से पका पर्पटी बनावे । पर्पटी बनाकर फिर चूर्ण करे और इसमें जायफल का चूर्ण एक कर्ष, जावित्री का चूर्ण एक कर्ष, लौंग का चूर्ण एक कर्ष, नीम के पत्तों का चूर्ण एक कर्ष, संभालू के पत्तों का चूर्ण एक कर्ष, छोटी इलायची के बीजों का चूर्ण एक कर्ष; इन सब को इकट्ठा मिलाकर पीसें । फिर जल से अच्छी प्रकार घोट कर पिण्डाकार कर लें । पश्चात् गीले को ही सीप में भरकर धूप में सुखा लें । सूख जाने पर उस पर दूसरी सीप रखकर केले के पत्ते से सीपों को लपेट गाढ़ा २ मिट्टी के गारे या कीचड़ का लेप कर दें । लेप के सूख जाने पर छोटे पुट अर्थात् सात आठ जंगली उपलों की आग में रख गन्धक का गन्ध निकलने के समय तक पकावे । जब गन्धक का गन्ध निकलने लगे तभी बाहर निकाल लें । शीतल होने पर औषध को पीसकर छह रत्ति प्रमाण नित्य खावे । यह महागन्धक कहाती है । बच्चों की रक्षा करने के लिये महौषध है—इससे बच्चों के ज्वर अतिसार आदि अनेक रोग दूर होते हैं । यह महागन्धक ज्वरनाशक, अग्निदीपक, बल और वर्ण को बढ़ाने वाली तथा भयंकर ग्रहणी रोग प्रवाहिका सूतिकारोग खूनी बवासीर; इन सब रोगों को नष्ट करती है । जहां यह औषध सेवन की जाती हो वहां पर पिशाच दैत्य राक्षस आदि जो बच्चों के जीवन के घातक होते हैं, पास नहीं फटकते । बीमार बच्चों तथा बीमार स्त्रियों के ज्वर अतिसार सूतिका आदि सब रोगों में यह महागन्धक लाभ करती है । इसी औषध को सीपियों में भरकर यदि पुटपाक न करें तो इसे सर्वाङ्गसुन्दर रस कहते हैं ।

१—'त्यजन्ति ते' पा० ।　　२—'स्त्रीणाञ्च' पा० ।

विशेषवचन — पुट में मन्द आंच से ही महागन्धक को पकावें। कहीं गजपुट न दे दें। नहीं तो सारा गन्धक उड़ जायेगा और जायफल आदि जल कर राख हो जांयगे। महागन्धक नाम भी व्यर्थ हो जायेगा-गुण भी उतना न करेगा। इसलिये सात आठ जंगली उपलों की आंच दें। जब ऊपर की मिट्टी लाल होने लगे, गन्धक की गन्ध उठने लगे, तभी निकाल लेना चाहिये। इस स्थान पर यह बात भी सब को विदित होजाना चाहिये कि सदा से वैद्यगण गुणावगुण देखकर पाठ में घटाते बढ़ाते भी रहे हैं। इस महागन्धक में "सिन्धुवारदलञ्चैव एलाबीजं तथैव च" यह पाठ बंगाल में श्रीमान् कविराज रमानाथसेन जी ने मिलाया है। यह योग अपूर्व लाभ करता है इस में सन्देह नहीं। आधुनिक मात्रा—२ रत्ती से ६ रत्ती तक है। कई पूर्व रसपर्पटी नहीं बनाते। वे कज्जली में कुछ जल देकर कीचड़ सा करके मन्द आंच से गरम कर लेते हैं। परन्तु यह उत्तम प्रकार नहीं। रसपर्पटी बनाकर इस योग को तय्यार करना ही अच्छा है, तभी अधिक लाभ होता है। रसपर्पटी का प्रकार ही अधिक प्रचलित भी है॥ २२—२९॥

ग्रहण्यां ये रसाः प्रोक्तास्तेऽतीसारे प्रकीर्त्तिताः ॥ ३० ॥

ग्रहणीरोगाधिकार में भी जो रस कहे गये हैं वे भी दोष आदि की परीक्षा करके अतिसार में प्रयोग कराये जाते हैं॥ ३०॥

इति रसेन्द्रसारसंग्रहे द्वितीयाध्यायेऽतीसारचिकित्सा।

अथ ग्रहणीरोगचिकित्सा।

जातीफलादिग्रहणीकपाटः—

जातीफलं टङ्कणमभ्रकञ्च धुस्तूरबीजं समभागचूर्णम्।
भागद्वयं स्यादहिफेनकस्य गन्धालिकापत्ररसेन मर्द्यम् ॥ १ ॥
चणप्रमाणा वटिका विधेया यत्नाद्विदध्याद् ग्रहणीगदेषु।
सामेषु रक्तेषु सशूलकेषु पक्केष्वपक्केषु गुदामयेषु ॥ २ ॥

१—'भागद्वयाढ्यं फणिफेनयुक्तं' पा०।
२—'मधुप्रयुक्ता ग्रहणीगदेषु' पा०।

रोगेषु दद्यादनुपानभेदैर्मधुप्रयुक्तां ग्रहणीगदेषु।
पथ्यं सदध्योदनमत्र देयं रसोत्तमोऽयं ग्रहणीकपाटः ॥ ३ ॥

जायफल चूर्ण, शुद्ध सुहागा, अभ्रकभस्म, शुद्ध धतूरे के बीज; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लेवें। शुद्ध अफीम दो तोला लें। सबको पीसकर प्रसारणी के रस से घोटकर छोटे चने के समान गोली बनालें। ग्रहणी में, आम में, खून आने में, तथा शूलयुक्त पक्व या अपक्व ग्रहणी रोग, अतीसार तथा बवासीर में भिन्न २ अनुपानों से इस गोली को दें। ग्रहणी रोग में शहद से दें और पथ्य में दही चावल दें। इसका नाम ग्रहणीकपाट है।

विशेषवचन–रसराजसुन्दर में यह 'जातीफलाद्या वटी' नामसे और भैषज्यरत्नावली में 'जातीफलादि रस' नाम से है ॥ १—३ ॥

अपरः ग्रहणीकपाटो रसः—

टङ्कणक्षारगन्धाश्म–रसं जातीफलं तथा।
बिल्वं खादिरसारञ्च जीरकञ्च[2] मधूलिका ॥ ४ ॥
कपिहस्तकबीजञ्च[3] तथा[4] चोरकपुष्पकम्।
एषां शाणं समादाय श्लक्ष्णचूर्णञ्च कारयेत् ॥ ५ ॥
बिल्वपत्रककार्पास–फलं शालिञ्च–दुग्धिकाम्।
शालिञ्चमूलं कुटजं तथा कञ्चटपत्रकम् ॥ ६ ॥
सर्वेषां स्वरसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक्।
रक्तिकैक[5]प्रमाणेन खादयेत्[6] दिवसत्रयम् ॥ ७ ॥

१—'युक्त्या विदध्यादतिसारवत्सु' पा०।
२—'जीरकं श्वेतधूनकम्' पा०। ३—'कपिकच्छुकबीजं च' पा०।
४—'तथैव वकपुष्पकम्' पा०। 'अवाक्पुष्पी तथैव च' पा०।
५—'माषकैकप्रमाणेन' पा०।
६—'खादेदह्नि वटीद्वयम्' पा०।

दधिमस्तु[1] ततः पेयं पलमात्रप्रमाणतः ।
अपि योगशताक्रान्तां ग्रहणीमुद्धतां जयेत् ॥ ८ ॥
आमशूलं ज्वरं कासं श्वासञ्चैव[2] प्रवाहिकाम् ।
रक्तस्रावकरं द्रव्यं कार्य्यं नैवात्र युक्तितः ॥ ९ ॥
कृष्णवार्त्ताकुमत्स्यश्च दधि तक्रञ्च[3] शस्यते ।
ज्ञात्वा वायोः[4] कृतिं तत्र तैलं वारि प्रदापयेत्[5] ॥ १० ॥

शुद्ध सुहागा, यवक्षार, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, जायफल चूर्ण, बिल का गूदा, कत्था, जीरे का चूर्ण, मूर्वामूल, कौंच के बीज तथा शंखिनी का चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य एक २ शाण लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर चूर्ण करें। बिल के पत्ते, कपास के फल, शालिञ्च-शाक, दूधी, शालिञ्चमूल, कुटज की छाल तथा जलचौलाई; इन सब के स्वरस या क्वाथ से घोटकर एक २ रत्ति की गोली बनावें। रोगी तीन दिन खावे और ऊपर दही का पानी एक पल भर पीवे। सैंकड़ों योगों से भी जो ग्रहणी दूर न हुई हो वह इस योग से दूर होती है। आमशूल, ज्वर, खांसी श्वास, प्रवाहिका; इन रोगों को भी दूर करता है। रक्तस्राव करने वाले पदार्थों को इसे सेवन करने के समय न खावे। काला बेंगन, मछली, दही, छाछ; इन सबको पथ्य में खा सकते हैं। वायु के कर्म वा लक्षण को जानकर अथवा रोग में वायु की हेतुता को जानकर तेल वा जल का व्यवहार करे।

विशेषवचन—भैषज्यरत्नावली के पाठ के अनुसार 'मूर्वा' के स्थान पर श्वेत राल और चोरकपुष्प (चोरपुष्पिका, चोरहुली—शंखिनी) के स्थान पर

१—'दधिमण्डस्ततः पेयः' पा० । २—'श्वासं शोथं' पा० ।

३—'दधि तैलञ्च' पा० ।

४—'ज्ञात्वानिलाकृतिं तत्र जलं तैलं प्रदापयेत्' 'ज्ञात्वा वायोर्गतिं तत्र जलं तैलं प्रदापयेत्' पा० ।

५—'अस्मादनन्तरं च 'ग्रहणीकपाटनामा कपाटघटनादिव' इत्याधिकः क्वचित् पा० ।

वकपुष्प (अगास्तिया) डालते हैं। रसरत्नाकर में 'चोरकपुष्पकम्' के स्थान पर 'तथैवावाकपुष्पिका' पाठ है। अवाक्‌पुष्पी चोरपुष्पी का नाम भी है। कई सौंफ़ लेते हैं॥ ४—१०॥

जातीफलाद्या वटिका—

अभ्रस्य सूतस्य च गन्धकस्य प्रत्येकशो माषचतुष्टयञ्च।
विधाय शुद्धोपलपात्रमध्ये सुकज्जलीं वैद्यवरः प्रयत्नात्॥११॥
जातीफलं शाल्मलिवेष्टमुस्तं सटङ्कणं सातिविषं सजीरम्।
प्रत्येकमेषां मरिचस्य शाण-प्रमाणमेकं विषमापकञ्च॥१२॥
विचूर्ण्य सर्वाण्यवलोड्य पश्चात् विभावयेत् पत्ररसैरमीषाम्।
इन्द्राणिकेन्द्राशनकश्च जम्बू जयन्तिका दाडिम-केशराजौ।
अविद्धकर्णोऽपि च भृङ्गराजो विभाव्य सम्यक् वटिका विधेया॥१३॥
कोलास्थिमानाथ बहुप्रकारं सामं निहन्यादनिलान् गदांश्च।
कुर्य्याद्विशेषादनलप्रवृद्धिं कासञ्च पञ्चात्मकमम्लपित्तम्॥ १४॥
इयं निहन्याद् ग्रहणीमसाध्यां मर्त्यस्य जीर्णग्रहणीं प्रवृद्धाम्।
असारकत्वं त्वतिसारमुग्रं श्वासं तथा पाण्डुमरोचकञ्च॥ १५॥

---

१ 'विशुद्धसूतस्य' पा०। २ 'पत्रभवैरमीषाम्। रसै रसोन्मानमितै रसालवंशौ च भद्रोत्कटकञ्चटौ च। इन्द्राणिकेन्द्राशनकं सजम्बु' पा०। ३ 'भृङ्गराजौ' पा०।

४ 'सामं निहन्त्यत्र यथानुपानम्' पा०।

५ 'कुर्याद्विशेषादनलात्रलम्बं' भै. र. पाठः।

६ इयं निहन्ति ग्रहणीं प्रवृद्धां मर्त्यस्य जीर्णग्रहणीमसाध्याम्। चिरोद्भवां संग्रहकोष्ठदुष्टिं शोथं समग्रं गुदजानसाध्यान्। आमानुबन्धं त्वतिसारमुग्रं जयेद् भृशं योगशतैरसाध्यम्' भै. र. पाठः।

७ 'आमानुबन्धं त्वतिसारमुग्रं' इति पाठः कार्यः।

चिरोद्भवां संग्रहकोष्ठदुष्टिं जयेद्भृशं योगशतैरसाध्याम् ।
अनेकसम्भावितमर्त्यलोका नानाविधव्याधि-पयोधि-नौका ॥१६॥

शुद्ध पारा चार माषा, शुद्ध गन्धक चार माषा (यदि ६ रत्ती का माषा लें तो २४ रत्ती) लेकर पत्थर के खरल में कज्जली करे। फिर अभ्रकभस्म चार माशे मिलाकर घोट दें । अनन्तर जायफल, मोचरस, मोथा, शुद्ध सुहागा, अतीस, जीरा, मिरच; इन में से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ शाण (४ माषा=२४ रत्ती) ले । और शोधित विष एक माषा (६ रत्ती) लेकर सब को मिलाकर चूर्ण करे । फिर आगे लिखी बूटियों के पत्तों के रस से भावना देवे । संभालू, भांग, जामुन, जयन्ती, अनार, केशराज, पाठा, भांगरा; इन में से प्रत्येक द्रव्य के रस से भावना देकर बेर की गुठली के समान गोली बना लेवे । इसका नाम जातीफलाद्या वटी है । यह अनेक प्रकार के आमातिसार आदि साम दोषों तथा वायुरोगों को दूर करती है। अग्नि बहुत बढ़ाती है । पांचों प्रकार की खांसी, अम्लपित्त, असाध्य ग्रहणी, पुरानी प्रबल संग्रहणी, अल्पसारक अतिसार (वातातिसार),उग्र अतिसार, श्वास, पाण्डु, अरुचि को हटाती है। चाहे सैंकड़ों योग ठीक न कर सके हों परन्तु यह पुरानी संग्रहणी को ठीक कर देती है। यह मर्त्यलोक में बहुत आदृत है, यतः यह अनेकविध व्याधिरूपी समुद्र में नौका के समान है ।

विशेषवचन–इस की आधुनिक मात्रा–२ रत्ती है ।

रसरत्नाकर भैषज्यरत्नावली प्रभृति तन्त्रान्तरों में 'अभ्रस्य सूतस्य' के स्थान पर 'विशुद्धसूतस्य' यही पाठ मिलता है। उनके अनुसार अभ्रक-भस्म नहीं डालना चाहिये ।

'विभावयेत् पत्ररसैरमीषाम्' इत्यादि के स्थान पर 'विभावयेत् पत्र-भवैरमीषाम्' यह और इससे आगे 'रसै रसोन्मानामितै रसालवंशौ च भद्रोत्कटकञ्चटौ च' यह अधिक पाठ भैषज्यरत्नावली और रसराजसुन्दर में है।

---

१ अस्मादनन्तरं भैषज्यरत्नावल्यां 'विवर्जनीयास्त्विह भृष्टमत्स्या मत्स्यस्तथा पाण्डुरवर्ण एव । रम्भाफलं मूलमथो दलञ्च बुधैर्विधेयं न कदाचिदत्र । जातीफलाद्या वटिका विधेया यशोऽर्थिनो वैद्यवरस्य हृद्या' इत्यधिकः पाठः ।

इसके अनुसार आम के पत्ते, बांस के पत्ते, भद्रोत्कटा (प्रसारणी) के पत्ते और कच्छट (जलचौलाई) के पत्तों के रस भावनार्थ अधिक हैं। सारे रस ही पारद के समान लेने को कहे हैं। प्रतीत होता है कि लेखक के प्रमाद से उक्त भावना के द्रव्य छुट गये हैं। रसरत्नाकर में भी ये भावनाद्रव्य कहे हैं। वहां पाठ है—

'विचूर्ण्य सर्वैरवमर्द्य पश्चाद्विभावयेत्पत्ररसैरमीषाम्।
वंशाम्रभद्रोत्कटकच्छटानामिन्द्राणिकेन्द्राशनकं सजम्बु॥
जयन्तिका दाडिमकेशराजमविद्धकर्णाऽपि च भृङ्गराजः।'

पारद के समान रसों का लेना कहां तक उचित है-यह विचारणीय है। शायद 'रसोन्मानामितैः' में रस से अभिप्राय पारद से विष पर्यन्त मिलित द्रव्यसमूह से हो। तब भावना ठीक रहेगी। सामान्य नियम के अनुसार प्रत्येक की ७ भावनायें होनी चाहियें।

उक्त पाठ से आगे रसरत्नाकर में निम्न पाठ है—

'विभाव्य सम्यग्वटिका विधेया कोलास्थिमानाथ यथानुपानम्॥
सोमं निहन्त्यत्र बहुप्रकारं सूतीविकारं श्वयथुं समग्रम्।
कासं च पञ्चात्मकमम्लपित्तामियं निहन्याद्ग्रहणीं प्रवृद्धाम्।
अभ्यस्य जीयाद् गुदजानसाध्यानामानुबन्धं ह्यतिसारमुग्रम्।
श्वासं तथा पाण्डुगदं निहन्ति चिरोद्भवां च ग्रहणीं प्रदुष्टाम्॥
जयेद्धशां योगशतैरसाध्यां विवर्जनीया इह दुष्टमत्स्याः।
मत्स्यास्तथा पाण्डुरवर्णकाश्च रम्भाफलं मूलमथो दलं च॥
बुधैर्विधेयं न कदाचिदत्र जातीफलाद्या वटिका च हृद्या।
यशोऽर्थिनो वैद्यवरस्य विद्या ह्यनेकसम्भवितमर्त्यलोके॥
नानाविधव्याधिपयोधिनौका जातीफलाद्या वटिका प्रसिद्धा॥'[1]

इसप्रकार यहां साम के स्थान पर सोम (सोमरोग) पढ़ा है। सूती-विकार, शोथ, अर्श, आमानुबन्ध अतिसार; इन रोगों में भी इस वटिका का प्रयोग करने को कहा है। परहेज़ भी बताया है—कि दुष्टमत्स्य तथा पाण्डु वर्ण की मछलियां, केले का फल जड़ और पत्ते; इन्हें इस रस के

१ 'निर्णाशयेन्मृत्युमतिप्रासिद्धा' इति पाठान्तरं केचिदिच्छन्ति।

प्रयोग के समय कदापि न खावे। भैषज्यरत्नावली में दुष्टमत्स्य के स्थान पर भृष्टमत्स्य (तेल आदि में भुनी मछली) कही है॥ ११—१६॥

पूर्णकला वटी—

रसं गन्धं घनं लौहं धातकीपुष्पबिल्वकम्।
विषं कुटजबीजञ्च पाठाजीरकधान्यकम्॥ १७॥
रसाञ्जनं टङ्कणञ्च शिलाजतु पलं तथा।
अभ्रांशञ्च फलं ग्राह्यं प्रत्येकं तोलकत्रयम्॥ १८॥
भेकपर्णी पञ्चमूली बलाकञ्चटदाडिमम्।
शृङ्गाटं केशरं जम्बू दधिमस्तु जयन्तिका॥ १९॥
केशराजो भृङ्गराजः प्रत्येकं तोलकद्वयम्।
द्विमाषा वटिका कार्य्या तक्रेण परिसेविता॥ २०॥
इयं पूर्णकला नाम ग्रहणीगदनाशिनी।
शूलघ्नी दाहशमनी वह्निदा ज्वरनाशिनी।
भ्रमच्छर्दिच्छेदकरी संग्रहग्रहणीं जयेत्॥ २१॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, मोथा चूर्ण, लौहभस्म, धाय के फूल, बिल का गूदा, शोधित विष, इन्द्रजौ, पाठा, जीरा, धनियां, रसौंत, शुद्ध सुहागा, शुद्ध शिलाजीत, अभ्रकभस्म; इन सब में प्रत्येक का चूर्ण एक २ पल (चार तोला) लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर शेष द्रव्य मिला दें और हरड़ चूर्ण, बहेड़ा चूर्ण तथा आंवला चूर्ण; प्रत्येक तीन २ तोला लेकर सबको मिलाकर खरल करें। फिर इस में मण्डूकपर्णी, छोटी पञ्चमूली, बला, जलचौलाई, अनारदाना, सिंघाड़ा, नागकेशर, जामुन की छाल, जयन्ती, केशराज, भांगरा; इन में से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण दो २ तोला डालें। तथा दही का पानी दो तोला डालकर, सब को भली प्रकार खरल करें। फिर दो माषा भर की गोली बनाकर तक्र से सेवन करे तो यह पूर्णकला नाम की वटी ग्रहणी रोग को दूर करती है। शूल नाश करती, दाह

शान्त करती, अग्निदीपन करती, ज्वर नाश करती एवं भ्रम वमन तथा संग्रह-ग्रहणी को काट गिराती है ।

विशेषवचन—कुछ आचार्य "घन" शब्द का अर्थ मोथा न करके अभ्रक कहते हैं । उनके मत से पारा एक पल तथा गन्धक एक पल लें । शेष "घन" अर्थात् अभ्रक से लेकर त्रिफला पर्यन्त सब द्रव्य प्रत्येक तीन २ तोला लेंगे । पल का अर्थ यहां "कर्ष" न जाने क्यों संस्कृत टीकाकार ने कर डाला है ।

वस्तुतस्तु यहां पाठ में कुछ गड़बड़ है । अन्यत्र 'शिलाजतु फलं तथा । अभ्रकञ्च तथा ग्राह्यं प्रत्येकं तोलकत्रयम् ।' यह पाठ मिलता है । इसके अनु-सार पारद आदि प्रत्येक द्रव्य ३ तोला लिया जाता है । 'फल' से जायफल लेते हैं । जायफल दीपक पाचक ग्राही होता है और वातातिसार एवं जीर्णा-तिसार में हितकर है । जातीफलाद्या वटिका, जातीफलरस, जातीफलादिग्रह-णीकपाट नाम से भी जायफल के योग ग्रहणी में कहे हैं । पीयूषवल्ली, ग्रहणी-गजेन्द्रवटिका, ग्रहणीकपाट आदि रसों में भी जायफल विद्यमान है । इसकी आधुनिक मात्रा २ रत्ती से ३ रत्ती तक है ।

स्वल्पपञ्चमूल से शालपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, और गोखरू लिये जाते हैं ।

पूर्णकला वटी को वातिक पैत्तिक वा वातपैत्तिक ग्रहणी में विशेषतः प्रयोग कराया जाता है ॥१७—२१ ॥

वज्रकपाटो रसः—

पारदं गन्धकञ्चैव अहिफेनं समोचकम् ।
त्रिकटु त्रैफलञ्चैव सममेकत्र कारयेत् ॥ २२ ॥
भङ्गाभृङ्गद्रवैश्चैतद् भावयेच्च पुनः पुनः ।
रक्तित्रयं ततश्चास्य मधुना सह भक्षयेत् ।
असाध्यां ग्रहणीं हन्ति रसो वज्रकपाटकः ॥ २३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध अफ़ीम, मोचरस, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला; प्रत्येक का चूर्ण एक २ तोला लें । पहले पारे गन्धक

की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर भांग के रस और भांगरे के रस से सात सात वार भावना देकर तीन रत्ति की गोली बना लें। इसे शहद से खाने से असाध्य ग्रहणी रोग भी दूर होता है। इस का नाम वज्रकपाट रस है ॥ २२—२३ ॥

जातीफलरसः—

पारदाभ्रकसिन्दूरं गन्धं जातीफलं समम्[1] ।
कुटजस्य फलञ्चैव[2] धूर्त्तबीजानि[3] टङ्कणम् ॥ २४ ॥
व्योषं[4] मुस्ताऽभया चैव चूतबीजं तथैव च ।
बिल्वकं[5] सर्जबीजञ्च दाडिमीफलवल्कलम् ॥ २५ ॥
एतानि समभागानि निक्षिपेत् खल्लमध्यतः ।
विजयास्वरसेनैव[6] मर्दयेत् श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ २६ ॥
गुञ्जाफलप्रमाणान्तु वटिकां कारयेद्भिषक् ।
एकां[7] कुटजमूलत्वक्–कषायेण प्रयोजयेत् ॥ २७ ॥
आमातिसारं[8] हरते कुरुते वह्निदीपनम् ।
मधुना बिल्वशुण्ठेन रक्तग्रहणिकां जयेत् ॥ २८ ॥
शुण्ठीधान्यकयोगेन[9] चातिसारं निहन्त्यसौ ।
जातीफलरसो ह्येष ग्रहणीगदनाशनः ॥ २९ ॥

---

१ 'विषं' पा०। २ 'तथा' पा०। ३ 'च बीजानि' पा०।

४ 'व्योषमुस्ताभयाचूतफलबीजं' पा०।

५ 'बिल्वमातङ्गबीजानि दाडिमारलुजीरकैः।' पा०।

६ 'कपित्थस्वरसेनैव मर्दयेच्छ्लक्ष्णचूर्णकम्। गुञ्जामात्रप्रमाणेन वटकान्' पा०।

७ 'एवं' पा०। ८ 'आमग्रहणिकां हत्वा कुरुते दीपनं परम्। तक्रेण मधुना चैव' पा०।

९ 'शुण्ठीकषायसंयुक्तमतिसारं निवारयेत्। सविशेषानुपानैश्च ग्रहणीषु प्रयोजयेत्' पा०।

शुद्ध पारा, अभ्रकभस्म, रससिन्दूर, शुद्ध गन्धक, जायफल, इन्द्रजौ, धतूरे के शोधित बीज, शुद्ध सुहागा, सोंठ, मिरच, पिप्पली, मोथा, हरड़, आम की गुठली की गिरी, बिल का गूदा, शाल के बीज, अनार के फल का छिलका; ये सब द्रव्य समभाग लें। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य इस में मिला लें। बाद में भांग के स्वरस या क्काथ से घोटकर एक रत्ति प्रमाण की गोली बनावें। इस गोली को कुटज की जड़ की छाल के क्वाथ से पीवें तो आमातिसार नष्ट होता है तथा अग्नि प्रदीप्त होती है। इसे शहद और बिल की गिरी से मिलाकर दें तो खून की ग्रहणी को अच्छा करती है। सोंठ और धनियें के योग से अतिसार को दूर करती है। यह जातीफल रस ग्रहणीरोग को नाश करता है।

विशेषवचन–भैषज्यरत्नावली में 'दाडिमीफलवल्कलम्' के स्थान पर 'दाडिमीवल्कजीरकम्' ऐसा पाठ है। उसके अनुसार इसमें श्वेत जीरा भी एक भाग डाला जाएगा। जीरा भी ग्रहणी अतिसार में अत्यन्त हितकर है।

जो इस योग के पाठान्तर टिप्पणी में दिये हैं उन से इस का नाम दूसरे तन्त्रों में ग्रहणीकपाट रखा गया है। उसके अनुसार गन्धक के स्थान पर शुद्ध विष, सर्जबीज के स्थान पर मातङ्गबीज (पीपल वा गूलर के बीज) है तथा अरलू की छाल और जीरा अधिक हैं। भावना कैथ के रस की देनी है। कुटज के जड़ की छाल के क्काथ का अनुपान साम ग्रहणी में बताया है। रक्त ग्रहणी में तक्र और मधु अनुपान कहे हैं। अतिसार में शुण्ठी का क्काथ अनुपान है॥ २४—२६॥

ग्रहणीगजेन्द्रवाटिका—

रसगन्धकलौहानि शङ्खटङ्कणरामठम् ।
शटीतालीशमुस्तानि धान्यजीरकसैन्धवम् ॥ ३० ॥

धातक्यतिविषा शुण्ठी गृहधूमो हरीतकी ।
भल्लातकं तेजपत्रं जातीफललवङ्गकम् ॥ ३१ ॥

त्वगेला[1] बालकं बिल्वं मेथी शक्राशनं[2] समम् ।
छागीदुग्धेन वटिका रसवैद्येन कारिता ॥ ३२ ॥
गहनानन्दनाथेन भाषितेयं रसायने ।
वटी गजेन्द्रसंज्ञेयं श्रीमता लोकरक्षणे ॥ ३३ ॥
ग्रहणीं विविधां हन्ति ज्वरातिसारनाशिनी ।
शूलगुल्माम्लपित्तानि कामलाञ्च हलीमकम् ॥ ३४ ॥
बलवर्णाग्निजननी सेविता च चिरायुषी ।
कण्डूं कुष्ठं विसर्पञ्च गुदभ्रंशं क्रिमिं जयेत् ॥ ३५ ॥
माषद्वयां वटीं खादेच्छागीदुग्धानुपानतः ।
वयोऽग्निबलमावीक्ष्य युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम् ॥ ३६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, शंखभस्म, शुद्ध सुहागा, हींग, कचूर, तालीशपत्र, मोथा, धनियां, जीरा, सेंधानमक, धाय के फूल, अतीस, सोंठ, रसोईघर का धुंआ, हरड़, शुद्ध भिलावा (न सहने पर लाल चन्दन डालें), तेजपात, जायफल, लौंग, दारचीनी, छोटी इलायची, सुगन्धबाला, बिल का गूदा, मेथी, भांग के शोधित बीज; इन सब के चूर्ण प्रत्येक समभाग लें। पहले कज्जली करें । फिर सबको मिला लें और बकरी के दूध से पीसकर गोली बना लेवें। श्रीमान् गहनानन्द ने यह गजेन्द्रवटी लोकोपकार के लिये रसायन में कही है। यह विविध प्रकार की ग्रहणी, ज्वरातीसार, शूल, गुल्म, अम्लपित्त, कामला, हलीमक रोग नाश करती है। बल वर्ण और अग्नि को बढ़ाती है। आयु को बढ़ाती है। खाज, कुष्ठ, विसर्प, गुदभ्रंश, क्रिमिरोग; इन सब की नाशक है। दो माषे भर की गोली बकरी के दूध से सेवन करें। अथवा उम्र तथा अग्निबल को देखकर अवर मात्रा से प्रारम्भ करा थोड़ा थोड़ा मात्रा को युक्ति पूर्वक बढ़ाना चाहिये।

---

१ 'त्वगेलावालुकं' पा० । २ 'शक्राशनस्य च । रसैः संमर्द्य वटिका' इति भैषज्यरत्नावल्यां रसराजसुन्दरे च पाठः ।

विशेषवचन–इसे २ रत्ती से क्रमशः बढ़ाकर १० रत्ती तक की मात्रा में प्रयोग करा सकते हैं। सामान्यतः चार रत्ती की मात्रा पर्याप्त है।

भैषज्यरत्नावली के पाठ के अनुसार मेथी-पर्यन्त द्रव्य समभाग लेकर भांग के रस से मर्दन कर वटी बनाते हैं।

यह वातपैत्तिक आम ग्रहणी में अधिक लाभकर है ॥ ३०—३६ ॥

पीयूषवल्लीरसः—

सूतमभ्रं गन्धकञ्च तारं लौहं सटङ्कणम् ।
रसाञ्जनं माक्षिकञ्च शाणमेकं पृथक् पृथक् ॥ ३७ ॥
लवङ्गं चन्दनं मुस्तं पाठा जीरकधान्यकम् ।
समङ्गाऽतिविषा लोध्रं कुटजेन्द्रयवं त्वचम् ॥ ३८ ॥
जातीफलं विश्वविल्वं कनकं दाडिमीच्छदम् ।
समङ्गा धातकी कुष्ठं प्रत्येकं रससम्मितम् ॥ ३९ ॥
भावयेत् सर्वमेकत्र केशराजरसैः पुनः ।
चणकाभा वटी कार्य्या छागीदुग्धेन पेषिता ॥ ४० ॥
अनुपानं प्रदातव्यं दग्धविल्वं समं गुडैः ।
हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं चिरजामपि ॥ ४१ ॥
आमसम्पाचनो सम्यग् वन्हिवृद्धिकरस्तथा ।
पीयूषवल्लीनामायं ग्रहणीरोगनाशनः ॥ ४२ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, चांदीभस्म, लौहभस्म, शुद्ध सुहागा, रसौंत, स्वर्णमाक्षिक भस्म; सब एक २ शाण लें। (कई शाण के स्थान में एक कोल भी पाठ चाहते हैं)। लौंग, लाल चन्दन, मोथा, पाठा, जीरा, धनियां, लाजवन्ती, अतीस, लोध, कुड़े की छाल, इन्द्रजौ, दारचीनी, जायफल, सोंठ, बिलगिरी, धतूरे के शुद्ध बीज (कई धतूरे के स्थान में "बालक" अर्थात् सुगन्धबाला पाठ चाहते हैं), अनार के पत्ते (अनार के छिलके का व्यवहार है), मंजीठ, धाय के फूल, कूठ; इनमें से

प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ शाण लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिला कर केशराज के रस से सात वार भावना दें। फिर बकरी के दूध में पीसकर चने के समान गोली बनालें। इसे खिला कर ऊपर से आग में भुना हुआ बिल का गूदा और गुड खिलाओ। इससे सब प्रकार के अतीसार तथा पुरानी ग्रहणी तक भी ठीक होती है। यह रस ग्रहणीरोग-नाशक है।

विशेषवचन—भैषज्यरत्नावली के पाठ में इस रस का गुणपाठ बहुत बड़ा है—

'अतीसारं ज्वरं तीव्रं रक्तातीसारमुल्वणम्।
ग्रहणीं चिरजां हन्ति शोथं दुर्नामकं तथा॥
आमशूलविबन्धघ्नः संग्रहग्रहणीहरः।
पिच्छामदोषं विविधं पिपासादाहरोगकम्॥
हृल्लासारोचकच्छर्दिगुदभ्रंशं सुदारुणम्।
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम्॥
कृष्णारुणञ्च पीतञ्च मांसधावनसन्निभम्।
प्लीहगुल्मोदरानाहसूतिकारोगसङ्करम्॥
असृग्दरं निहन्त्येव वन्ध्यानां गर्भदः परम्।
कामलां पाण्डुरोगञ्च प्रमेहानपि विंशतिम्॥
एतान् सर्वान् निहन्त्याशु मासार्द्धे नात्र संशयः।
पीयूषवल्ली वटिका अश्विभ्यां निर्मिता पुरा।
कश्यपाय ददेऽश्विभ्यां ततः प्राप प्रजापतिः॥
धन्वन्तरिस्ततः प्राप देवतानां पतिस्ततः।
परम्पराप्राप्त एष रसस्त्रैलोक्यदुर्लभः॥'

यह रस आमातिसार रक्तातिसार एवं पुरानी ग्रहणी पर अतीव लाभकर है। प्रवाहिका में भी जब आंव और रक्त पतले मल के साथ बार २ मरोड़ के साथ आते हों तो इसे राल चूर्ण आधी रत्ती और मधु के साथ देते हैं। शीघ्र रोग को दूर करता है॥ ३७—४२॥

ग्रहणीशार्दूल रसः—

रसगन्धकयोश्चापि कर्षमेकं सुशोधितम् ।
द्वयोः कज्जलिकां कृत्वा हाटकं षोडशांशतः ॥ ४३ ॥
लवङ्गं निम्बपत्रं च जातीकोषफले तथा ।
एतेषां कर्षचूर्णेन सूक्ष्मैलां सह मेलयेत् ॥ ४४ ॥
मुक्तागृहे तु संस्थाप्य पुटपाकेन साधयेत् ।
गुञ्जापञ्चप्रमाणेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ ४५ ॥
सूतिकां ग्रहणीरोगं हरत्येष सुनिश्चितम् ।
अर्शोघ्नो दीपनश्चैव बलपुष्टिप्रसाधनः ॥ ४६ ॥
कासश्वासातिसारघ्नो बलवीर्य्यकरः परः ।
दुर्वारं ग्रहणीरोगाश्चामशूलं च नाशयेत् ।
संसारलोकरक्षार्थं पुरा रुद्रेण भाषितः ॥ ४७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक १ कर्ष ले, दोनों की कज्जली करें। स्वर्ण भस्म को कज्जली से सोलहवां भाग (यदि कर्ष को १ तोला मानें तो दो तोले कज्जली का सोलहवां भाग १२ रत्ती होता है) डालें। लौंग का चूर्ण, नीम के पत्ते, जावित्री, जायफल, छोटी इलायची के बीज; इनमें से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ कर्ष मिलावें। सबको बारीक पीसकर सीपों में भरकर लघुपुट में पाक करें। इस रस को पांच रत्ती प्रमाण लेकर प्रतिदिन खाये तो सूतिका तथा ग्रहणी रोग को अवश्य दूर करता है, बवासीर को नाश करता तथा अग्निदीपन करता है। बल पुष्टि देता है। कास श्वास अतीसार को नाश करता है। बल वीर्य बढ़ाता है। दुःसाध्य ग्रहणी रोग तथा आमशूल को नाश करता है। संसार के भले के लिये रुद्र भगवान् ने पहले इसे कहा था।

विशेषवचन—यह महागन्धक का थोड़ा सा भिन्न रूप है। इस में संभालू के पत्ते नहीं हैं परन्तु स्वर्णभस्म है। महागन्धक के सदृश ही यदि पारद

गन्धक और स्वर्णभस्म मिलाकर पर्पटी पाक करलें तो अधिक लाभकर होगा। पश्चात् लौंग आदि के चूर्ण मिला जल से घोट कर सीपों में भर महागन्धक के सदृश ही पाक करें। महागन्धक की तरह इसमें बहुत छोटी सात आठ उपलों का पुट दें नहीं तो लौंग आदियों की भस्म हो जायगी जिससे गुण में हानि होगी।

रसेन्द्रसारसंग्रह के संस्कृत टीकाकार जीवानन्द और उनके मतानुवादी यहां पर पारद गन्धक मिलाकर एक कर्ष लेते हैं। परन्तु महागन्धक में पृथक् एक कर्ष लेने को कहते हैं, यह क्यों ? उन्हीं से पूछना चाहिये। यह बच्चों के अतिसार ज्वरातिसार क्रिमियों के कारण उत्पन्न ज्वर तथा पुरानी ग्रहणी में अधिक लाभदायक है ॥ ४३—४७ ॥

श्री वैद्यनाथ वटी—

शाणं रसस्य संगृह्य काञ्जिकेन तु शोधयेत् ।
चित्रकस्य रसेनापि त्रिफलायाश्च बुद्धिमान् ॥ ४८ ॥
रसार्द्धं गन्धकं शुद्धं भृङ्गराजरसेन वै ।
द्वाभ्यां संमूर्च्छनं कृत्वा स्वरसैः शाणसम्मितैः ॥ ४९ ॥
खल्लयेच्च शिला¹खण्डे क्रमशो वक्ष्यमाणकैः ।
निर्गुण्डीमधुकश्वेताकुठरग्रीष्मसुन्दरैः² ॥ ५० ॥
भृङ्गाब्दकेशराजैश्च जयेन्द्राशनकोत्कटैः³ ।
सर्षपाभां वटीं कृत्वा दद्यात्तां ग्रहणीगदे ॥ ५१ ॥
सामवातेऽग्निमान्द्ये च ज्वरे प्लीहोदरेषु च ।

१—'शिलाखल्ले' पा० ।

२—'निर्गुण्डीमण्डुकीश्वेताकुचेलाग्रीष्मसुन्दरैः । भृङ्गाह्वकेशराजैश्च जयेन्द्राशनकोत्कटैः' इति भैषज्यरत्नावल्यादिषु पाठान्तरम् । अत्र मण्डुकी मण्डूकपर्णी, कुचेला पाठा ।

३—'जयेन्द्राशनकेत्कटैः' पा० ।

वातश्लेष्मविकारेषु तथा श्लेष्मगदेषु च ।
अम्लतक्रादि सेवां च कुर्वीत स्वेच्छया बहु ॥ ५२॥
श्रीमता वैद्यनाथेन लोकानुग्रहकारिणा ।
स्वप्नान्ते ब्राह्मणस्येयं भाषिता लिखितेन तु ॥ ५३ ॥

पारा एक शाण लेकर कांजी के साथ मर्दन कर शुद्ध करे। फिर चीते के क्वाथ से और फिर त्रिफला के क्वाथ से शुद्ध करे। अब भांगरे के रस से शुद्ध हुआ २ गन्धक आधा शाण लेकर पारे से मिला कज्जली करे। इसे संभालू, मुलहठी, श्वेत अपराजिता (विष्णुक्रान्ता), बाबुई तुलसी, ग्रीष्मसुन्दरक, भांगरा, मोथा, केशराज, जयन्ती, भांग, सिंहली पिप्पली; (कई दारचीनी लेते हैं); इन में से प्रत्येक के रस को एक २ शाण भर लेकर भावना दे और फिर सरसों के समान गोली बनावे । इसे ग्रहणी, आमवात, अग्निमान्द्य, ज्वर, प्लीहा, उदररोग, वातश्लेष्मज विकार तथा श्लेष्मरोगों में दे। खट्टी तक्र आदि का इस में इच्छानुसार खूब सेवन करे। श्रीमान् परोपकारी लिखित नामक वैद्यनाथ ने इसे स्वप्न के अन्त में प्रातःकाल ब्राह्मण को बताया था-इस लिये इसका नाम वैद्यनाथ वटी है।

विशेषवचन–टिप्पणी में कहे गये अधिक पाठ के अनुसार इसकी पूरी मात्रा ७ गोली है और अनुपान दही का पानी। दही के पानी में गोलियों को घोट कर रोगी को पिलाना चाहिये ॥ ४८—५३ ॥

रसपर्पटिका—

याऽम्लपित्ते विधातव्या गुडिका च क्षुधावती ।
तत्र प्रोक्तविधा शुद्धौ समानौ रसगन्धकौ ॥ ५४ ॥
सम्मर्द्य कज्जलाभौ तु कुर्य्यात् पात्रे दृढाश्रये ।

१–'अस्मादनन्तरं 'दधिमस्तु विनिक्षिप्य मर्दयित्वा यथाबलम् । दातव्याः गुडिकाः सप्त रोगिणे ग्रहणीगदे ।' इत्यधिकः पाठः समुपलभ्यते ।

२–'अम्बुतक्रादि' पा० ।

३–'लिखिता न तु' पा० । 'लिखितापि च' इति केचिदिच्छन्ति ।

ततो बादरवह्निस्थ–लौहपात्रे द्रवीकृतम् ॥ ५५ ॥
गोमयोपरि विन्यस्त–कदलीपत्रपातनात् ।
कुर्य्यात् पर्प्पटिकाकारमस्य रक्तिद्वयं क्रमात् ॥ ५६ ॥
रक्तिद्वादशकं यावत् प्रयोगः प्रहरार्द्धतः ।
तदूर्ध्वं बहुपूगस्य भक्षणं दिवसे पुनः ॥ ५७ ॥
तृतीय एव मांसाज्य-दुग्धाद्यत्र विधीयते ।
वर्ज्यं विदाहि स्त्री रम्भा-मूलं तैलञ्च सार्षपम् ॥ ५८ ॥
कृष्णमत्स्याम्बुजखगांस्त्यक्त्वोन्निद्रः पयः पिबेत् ।
ग्रहणीक्षयकुष्ठार्शःशोथाजीर्णविनाशिनी ॥ ५६ ॥
रसपर्पटिका ख्याता निबद्धा चक्रपाणिना ॥ ६० ॥

अम्लपित्त रोग की चिकित्सा में जो क्षुधावती गुड़िका कही जायगी उस में लिखे प्रकार से पारे और गन्धक को शुद्ध करके समभाग लेकर दृढ़ खरल कर उत्तम कज्जली बना लें। उसे एक लोहे के पात्र (कड़छी) में डालकर बेर की लकड़ी की आग के अंगारों पर पिघलावें (और लोहे की शलाका से हिलाते रहें)। इससे पूर्व ही स्वच्छ धरती पर गोबर लीप कर ऊपर कोमल केले का पत्ता बिछा रखें। आग पर कज्जली के पिघलते ही इस केले के पत्ते पर उसे डाल दें और ऊपर से दूसरा पत्ता रख (समतल शिला से) दबा दें। यह रसपर्पटी बन गई। इसे दो रत्ति से आरम्भ कर क्रमशः बारह रत्ति तक बढ़ा के प्रतिदिन खावें। आधे पहर के बाद कुछ सुपारियां खा लें। तीसरे दिन से मांस घी दूध आदि का प्रयोग करें। विदाही अन्न, स्त्रीभोग, केले की जड़, सरसों का तेल, काली मछली (गड़क नामक) तथा जलचर पक्षी त्याज्य हैं। दिन में न सोये, दूध पीवे, अथवा नींद से जागकर दूध पीवे। यह ग्रहणी, क्षय, कुष्ठ, बवासीर, शोथ तथा

१–'क्षुद्रमत्स्याम्बुजखगान्' पा० २–'त्यक्तनिद्रः' पा०।
३–'शोषाजीर्ण' पा०।

अजीर्ण का नाश करती है। यह रसपर्पटी चक्रपाणि ने (प्रसिद्ध करने के हेतु) ग्रन्थ (चक्रदत्त नाम से प्रसिद्ध चिकित्सासारसंग्रह) में कही है।

विशेषवचन–नई कज्जली बना के रसपर्पटी बनायेंगे तो बनेगी। पुरानी रखी हुई कज्जली से बनायेंगे तो नहीं बनेगी। चक्रदत्त की टीका में शिवदास ने कहा है कि रसपर्पटी की एक मात्रा को पान के पत्ते में रख खावे और पश्चात् श्वेतजीरा चूर्ण २ रत्ती और हींग १ रत्ती खानी चाहिये। फिर कुछ देर ठहर कर जल पीना चाहिये। रसपर्पटी के सेवन के पश्चात् ही तत्काल जल पीने का निषेध है। हींग १ रत्ती तीव्र रहेगी। आधी रत्ती ही पर्याप्त है।

इस पर्पटी को कई दूध से भी और छाछ से भी ग्रहणी में देते हैं। बम्बई तथा दक्षिण देश के वैद्य पर्पटी के साथ केवल मीठे आमों का रस ही पिलाकर रोग दूर करते हैं।

क्षुधावती गुडिका में पारदशोधन का प्रकार इसप्रकार है—पारद को जयन्ती, एरण्डपत्र, अदरक तथा मकोय के रस से क्रमशः मर्दन करने से वह शुद्ध होजाता है। एक २ रस से सात दिन अवश्य घोटना चाहिये यह अनुभवी वैद्यों का आदेश है। यह प्रकार पारदशोधन प्रकरण (९ पृष्ठ) में भी कह आये हैं। वहां यह भी कहा है कि इन रसों से मर्दन के पश्चात् पारे को उष्ण कांजी से धो देना चाहिये।

गन्धक शोधन का प्रकार—आंवलासार गन्धक के छोटे २ कण करके लोहे के पात्र में डाल दें और ऊपर भांगरे का रस डाल दें जितने से वह डूब जाय। पश्चात् पात्र को तीव्र धूप में रख कर सुखा लें। जब सूख जाय तो पुनः रस डाल दें और सुखा लें। इस प्रकार तीन बार करने के पश्चात् गन्धक को पीसकर चूर्ण कर लें। एक दूसरे पात्र में भांगरे का रस डालकर मुख पर निर्मल पतला कपड़ा बांध दें। लोहे की कड़छी में उस गन्धक चूर्ण को डाल मन्द अग्नि पर पिघलावें। ज्यों ही पिघल जाय त्यों ही उसे कपड़े पर डाल दें। गन्धक छन कर भांगरे के रस में जा गिरेगी। पश्चात् भांगरे के रस से पृथक् कर जल से धो डालें और सुखालें।

रसपर्पटी बनाने में कज्जली के लिये उक्त प्रकार से शुद्ध पारा और गन्धक

लिया जाता है।

तन्त्रान्तर में रसपर्पटी के निर्माणप्रकार सेवनप्रकार तथा पथ्यापथ्य का विस्तृत वर्णन है—

'श्री विन्ध्यवासिपादान् नत्वा धन्वन्तरिञ्च सुराभिषजम्।
रसगन्धकपर्पटिका परिपाटीपाटवं वक्ष्ये॥
मग्नं रसे जयन्त्याः पश्चादेरण्डसम्भूते।
आर्द्रकरसे च सूतं पत्ररसे काकमाच्याश्च॥
मग्नमुदितानुपूर्व्या मर्दनशुष्कं करेण गृह्णीयात्।
प्रस्तरभाजनमध्ये शुद्धिरियं पारदस्योक्ता॥
शुकपिच्छसमच्छायो नवनीतसमद्युतिः।
मसृणः कठिनः स्निग्धः श्रेष्ठो गन्धक इष्यते॥
कृत्वा भद्रं गन्धकमतिकुशलः क्षुद्रतण्डुलाकारम्।
तद्भृङ्गराजरसैरनन्तरं भावयेत्पात्रे॥
तदनु च शुष्कं कुर्यात् धूलिसमानञ्च सप्तधा रौद्रे।
तदनु च शुष्कं चूर्णं कृत्वा विन्यस्य लौहिकामध्ये॥
निर्धूमबदरकाष्ठाङ्गारे न्यस्तं विलाप्य तैलसमम्।
पात्रस्थितभृङ्गराजरसमध्ये ढालयेन्निपुणः॥
तस्मिन् प्रविष्टमात्रं कठिनत्वं याति गन्धकचूर्णम्।
पुनरपि रौद्रे शुष्कं केतकरजसा समानतां नीतम्॥
शुद्धे सूते शोधितगन्धकचूर्णेन तुल्यता कार्या।
तावन्मर्दनमनयोर्यावन्न कणोऽपि दृश्यते सूते॥
पश्चात्कज्जलसदृशं चूर्णं लौहीस्थितं प्रयत्नेन।
निर्धूमबदरकाष्ठाङ्गारे न्यस्तं विलाप्य तैलसमम्॥
सद्यो गोमयनिहिते कदलदले ढालयेन्मृदुनि।
लौहीस्थितमवशिष्टं कठिनं तन्न गृहीतव्यम्॥
पश्चात्पर्पटरूपा पर्पटिका कीर्त्यते लोकैः॥'

यह रसपर्पटी की निर्माणविधि हुई। अब उत्तम रसपर्पटिका की परीक्षा कहते हैं—

'मयूरचन्द्रिकाकारं लिङ्गं यत्र तु दृश्यते ।
तत्र सिद्धिं विजानीयाद्वैद्यो नैवात्र संशयः ॥'

अर्थात् यदि रसपर्पटी में मोर की पूंछ के चंदोए के आकार की चमक दिखाई दे तो उसे उत्तम समझना चाहिये ।

अब उसकी सेवनविधि बताते हैं—

'समुदितपात्रे भरणावदनीया पर्पटी मनुजैः ।
जीरकगुञ्जे हिङ्गोरर्द्धं खादेच्च वातले जठरे ॥
जीरकहिङ्गोरशने त्वनुपानं सलिलधारया कार्यम् ।
रसगन्धकपर्पटिका भक्षणमात्रे तु नाम्भसः पानम् ॥
प्रथमं गुञ्जायुगलं प्रतिदिनमेकैकवृद्धितो भक्ष्यम् ।
दशगुञ्जापरिमाणान्नाधिकमशनीयमेकविंशतिदिनानि ॥'

रसपर्पटी को पीसकर यदि वात प्रधान हो–जैसा कि ग्रहणी रोग में होता ही है जीरा और हींग मिलाकर भरणीनक्षत्र में सेवन करना चाहिये। रसपर्पटी को यदि जीरा और हींग के साथ सेवन किया जाय तो अनुपान जल चाहिये। परन्तु इस पर्पटी के सेवन के तत्काल ही बाद जल न पीना चाहिये। प्रथम दिन २ रत्ती से प्रारम्भ कर क्रमशः एक२ रत्ती बढ़ाते जांय जब तक १० रत्ती न हो जाय। पश्चात् क्रमशः एक२ रत्ती घटाते हुए २ रत्ती तक आजाना चाहिये। इसप्रकार २१ दिन का क्रम रखना होता है। पहिले दो दिन दो२ रत्ती प्रयोग करे फिर एक२ रत्ती प्रतिदिन बढ़ाता जाय जब तक रसपर्पटी १० रत्ती न हो जाय। इस क्रम में १० दिन हो जांयगे। पुनः दो दिन १० रत्ती प्रयोग करा के क्रमशः एक-एक रत्ती घटाता जाय जब तक फिर २ रत्ती पर न आजाय, इस प्रकार १० दिन और हो जाते हैं। फिर एक दिन और २ रत्ती का प्रयोग कर ले। इसप्रकार २१ दिन का क्रम पूरा होता है। यदि १२ रत्ती तक बढ़ाने का क्रम जैसा कि प्रकृत ग्रन्थ में है तो प्रथम दिन २ रत्ती से प्रारम्भकर प्रति दिन एक-एक रत्ती बढ़ाते जांय जब तक रसपर्पटी १२ रत्ती हो जाती है—इस प्रकार ११ दिन होते हैं। उसके अगले दिन से ही एक-एक रत्ती घटाते जांय और २ रत्ती पर आजांय—ये १० दिन होते हैं। इस प्रकार २१ दिन का क्रम पूरा होता है। परन्तु आज-

कल वैद्य १२ रत्ती तक प्रयोग नहीं कराते, १० रत्ती तक ही कराते हैं और अतएव ही 'रक्तिद्वादशकं' के स्थान पर 'रक्तिकादशकं' पाठ चाहते हैं।

आगे पथ्यापथ्य निर्दिष्ट है—

'वातातपकोपमनश्चिन्तनमाहारसमयवैषम्यम्।
व्यायामश्चायासः स्नानं व्याख्यानमहितमत्यन्तम्॥
पाके स्तोकं सर्पिर्जीरकधन्याकवेशवारैश्च।
सिन्धूद्भवेन रन्धनमोदनधान्यानि शालयो भक्ष्याः॥
कृष्णं वातिङ्गनफलमविद्धकर्णा च वास्तूकम्।
अक्षतमुद्गसहितः फलदलसहितं पटोलञ्च॥
क्रमुकफलशृङ्गवेरौ भक्ष्यौ शाकेषु काकमाची च।
लावकवर्त्तकतित्तिरमयूरमांसञ्च हिततरं भवति॥
मद्गुररोहितमीनावदनीयौ कृष्णमत्स्याश्च।
नीरक्षीरं व्यञ्जनमदनीयं पक्वकदलञ्च॥
रम्भाफलदलवल्कलमूलानां वर्जनं कार्यम्।
तिक्तं निम्बादिकमपि नाद्यं नोष्णं तथान्नञ्च॥
आनूपमांसजलचरपतत्रिपललञ्च सर्वथा त्याज्यम्।
स्त्रीणां सम्भाषणमपि गडकश्च कृष्णमत्स्येषु॥
नाम्लं न दधि शाकं पर्पट्या भक्षणे भक्ष्यम्।
शुद्धखण्डशर्करादिक इक्षुविकारो न भक्ष्य इक्षुश्च॥
न दलं न फलं न लताप्यदनीया कारवेल्लस्य।
स्तोकं घृतमिह भक्ष्यं पथ्ये साकाङ्क्षमुत्थानम्॥
क्षुत्पीडायां भोजनमवश्यकार्यं महानिशायाञ्च।
समजलमिश्रं पक्वं क्षीरं यद्वाधिकजलपक्वञ्च॥
कथमपि भोजनसमयातिक्रमजाते ज्वरे विरेके च।
वमने च नारिकेलसलिलं दुग्धञ्च पातव्यम्॥
स्वप्ने जाते रमिते विरेकतः क्षीरमेव पातव्यम्॥
न ज्ञायते बुभुक्षा लक्ष्या प्रतीयते यदि वा।
अशक्तिभ्रमिभिन्नमस्तकशूलाद्यैर्नूनमवधार्या॥

किम्बहु वाच्यं रोगी यदा यदा भवति साकाङ्क्षः ॥
पाययितव्यं दुग्धं तदा तदा निर्भयीभूय ।
विहिताकरणे चास्यामविहितकरणे च रोगखिन्नानाम् ॥
व्यापत्तयोऽपि बहुधा दृष्टाः प्रामाणिकैर्बहुशः ।
तस्मादवधातव्यं भवितव्यं भोजने निपुणैः ॥
एवमियं क्रियमाणा भवति श्रेयस्करी नियतम् ॥'

अभिप्राय यह है कि रसपर्पटी के सेवन काल में वायुसेवन, धूप सेवन, क्रोध, चिन्ता, अकाल में भोजन, व्यायाम वा अन्य परिश्रम, स्नान, अधिक बोलना अहितकर है। कच्चा केला, केले के पत्ते जड़ वा छाल, नीम आदि तिक्त पदार्थ, गरम अन्न, सूअर आदि आनूपमांस, जलचरपक्षियों के मांस, मैथुन, कृष्णवर्ण की मछलियों में से गडक नाम की मछली, खटाई, दही, पत्रशाक, गुड, खांड, शक्कर, गन्ने का रस, करेला सर्वथा त्याज्य हैं।

थोड़ा घी, जीरा, सेन्धानमक से पकाये गये व्यञ्जन (भाजी) आदि, शालि चावल, काला बैंगन, पाठा, बथुआ, मूंग, पटोलपत्र, पटोलफल (परवल), सुपारी, पत्रशाकों में मकोय, लवा बटेर तीतर और मोर का मांस, मद्गुर रोहू और कृष्णवर्ण की मछलियां, जल से पकाया दूध तथा पका केला पथ्य है।

जब भूख लगे उसी समय भोजन करना आवश्यक है। यदि आधी-रात को भी भूख आ लगे तब समभाग जल मिलाकर पकाया दूध वा अधिकभाग जल से पकाया दूध अवश्य पीना चाहिये। यदि भूख न भी पता लगे परन्तु देह अशक्त हो झिन झिन हो माथे में वेदना हो तो भूख लगी समझें और उस समय भी ऐसा ही दूध पिलावें। यदि स्वप्न में वीर्य-स्राव हो जाय तो भी दूध पिलाना चाहिये। अभिप्राय यह है कि जब जब भी भूख लगे वा रोगी को इच्छा हो दूध निःशंक दिया जा सकता है। यदि भोजन समय पर न मिल सका हो, ज्वर हो, दस्त वा कै हुई हो तो भी दूध ही दिया जाता है।

परन्तु यह यहां स्मरण रखना चाहिये कि प्रारम्भ २ में ग्रहणी के रोगी दूध को पचा नहीं सकते तब उन्हें अधिकतर तीतर आदि का मांसरस ही

वैद्य दिया करते हैं। ऐसे समय दूध से अधिक दस्त हो जाते हैं। दस्त बन्द होने के बाद दूध का सेवन कराना चाहिये। रसपर्पटी के सेवनकाल में उक्त नियमों का पालन अति आवश्यक है अन्यथा लाभ न होगा, हानि होने की सम्भावना हो सकती है।

रसपर्पटी का गुणनिर्देश—

'अर्शोरोगं ग्रहणीं सामां शूलातिसारौ च।
कामलपाण्डुव्याधिं प्लीहानञ्चातिदारुणं हन्ति॥
गुल्मजलोदरभस्मकरोगं हन्यामवातांश्च।
अष्टादशैव कुष्ठान्यशेषशोथादिरोगांश्च॥
इयमम्लपित्तशमनी त्रिदोषदमनी क्षुधातिकमनीया।
अग्निं निमग्नमुदरे ज्वालाजटिलं करोत्याशु॥
रसगन्धकपर्पटिका त्वपवार्य व्याधिसङ्घातम्।
वलीपलितशून्यं पुरुषं दीर्घायुषं कुरुते॥
व्याधिप्रभावहरणादपमृत्युत्रासनाशकरणाच्च।
मर्त्यानाममृतवटी रसगन्धकपर्पटी जयति॥'

यहां शूल, अतिसार, कामला पण्डु, तिल्ली, गुल्म, जलोदर, भस्मक-रोग, आमवात, अठारह कुष्ठ, अम्लपित्त रोगों का नाशक होना भी बताया है। यह अग्नि को तीव्र करके भूख भी लगाती है। इसमें रसायनगुण भी हैं—वलीपलित को हटाती है और आयु को बढ़ाती है।

रसपर्पटी के निर्माण में पारद के विशेष शोधन से पूर्व उसके मल अग्नि और विष नामक स्वाभाविक दोषों का शोधन तो आवश्यक है ही। उस में मल-दोष के नाश के लिये घीकुमार के रस से, अग्निदोष के नाश के लिये त्रिफला चूर्ण से, विषदोष के नाश के लिये चित्रक के रस के साथ पारे को मर्दन करना होता है—ऐसा कहते हैं।

'मलशिखिविषाभिधाना रसस्य नैसर्गिकास्त्रयो दोषाः।
मूर्च्छां मलेन कुरुते शिखिना दाहं विषेण मृत्युञ्च॥
गृहकन्या हरति मलं त्रिफलाऽग्निं चित्रकश्च विषम्।
तस्माद्दोभिर्मिश्रैर्वारान् सम्मूर्च्छयेत् सप्त॥' रसहृदयतन्त्र।

अथवा प्रथम अध्याय में पारदशोधन प्रकरण में जो इन दोषों के नाश का प्रकार कहा है उससे पारे का शोधन कर लेना चाहिये और उसके बाद यहां जयन्ती आदि के रस से विशेष शोधन किया जाता है ॥ ५४—६० ॥

विजयपर्पटी—

हाटकं रजतं ताम्रं यद्यत्र परिदीयते ।
विजयाख्या तु सा ज्ञेया सर्वरोगनिसूदनी ॥ ६१ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, तांबाभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य भस्म मिलाकर खूब घोटकर रसपर्पटी की तरह पर्पटी बना लें। इस का नाम विजय-पर्पटी है। यह सभी रोगों को दूर करती है।

विशेषवचन—इस प्रकार की विजयपर्पटी किसी अन्य तन्त्र में देखने में नहीं आई। वस्तुतः यह पाठ विजयावटिका का है और आगे यही का यही पाठ कहा भी जायगा। यहां दुबारा लिखा गया है इसका नाम विजयपर्पटी रख दिया है। उक्त परिमाण में पर्पटी का पाक भी ठीक न होगा। दूसरे तन्त्रों में विजयपर्पटी का निम्न योग है—

'गन्धकं क्षुद्रितं कृत्वा भाव्यं भृङ्गरसेन तु ।
सप्तधा वा त्रिधा वापि पश्चाच्छुष्कं विचूर्णयेत् ॥
चूर्णयित्वाऽयसे पात्रे कृत्वा वह्निगतं सुधीः ।
द्रुतं भृङ्गरसे क्षिप्तं तत उद्धृत्य शोषयेत् ॥
तच्च गन्धं पलञ्चैकं गन्धार्द्धं शुद्धपारदम् ।
सूतार्द्धं भस्मरौप्यञ्च तदर्द्धं स्वर्णभस्मकम् ॥
तदर्धं मृतवैक्रान्तं मौक्तिकञ्च विनिक्षिपेत् ।
एकीकृत्य ततः सर्वं कुर्यात् पर्पटिकां शुभाम् ॥
लौहपात्रे समरसं मर्दितं कज्जलीकृतम् ।
बदराङ्गारवह्निस्थे लौहपात्रे द्रवीकृते ॥
मयूरचन्द्रिकाकारं लिङ्गं वा यदि दृश्यते ।
आद्ययोर्दृश्यते सूतः खरपाके न दृश्यते ॥

मृदौ न सम्यग्भङ्गः स्यान्मध्ये भङ्गश्च रूप्यवत् ।
खरे लघुर्भवेद्भङ्गो रूक्षसूक्ष्मोऽरुणच्छविः ॥
मृदुमध्यौ तथा खाद्यौ खरस्त्याज्यो विषोपमः ।
जराव्याधिशताकीर्णं विश्वं दृष्ट्वा पुरा हरिः ॥
चकार पर्पटीमेतां यथा नारायणोऽमृतम् ।
आदौ शङ्करमभ्यर्च्य द्विजातीन् प्रणिपत्य च ॥
प्रभाते भक्षयेदेनां प्राग्रक्तिद्वयसम्मिताम् ।
रक्तिकादिक्रमाद् वृद्धिर्भक्षया नैव दशोपरि ॥
आरोग्यदर्शनं यावत्तावद्ध्रासस्ततः परम् ।
अजीर्णे भोजनं नैव पथ्यकाले व्यतिक्रमे ॥
घृतसैन्धवधन्याकहिङ्गुजीरकनागरैः ।
शस्यते व्यञ्जनं सिद्धं पित्ते स्वाद्वम्लमाक्षिकम् ॥
कृष्णमत्स्येन मुद्गेन मांसेन जाङ्गलेन च ।
जाङ्गलेषु शशच्छागौ मत्स्यौ रोहितमद्गुरौ ॥
पटोलफलपत्रञ्च कृष्णवार्त्ताकुजालिका ।
सुस्विन्नपूगैस्ताम्बूलैर्लाभे कर्पूरसंयुतैः ॥
क्षुधाकाले व्यतिक्रान्ते यदि वायुः प्रकुप्यति ।
झिन्झिनीतिशिरःशूले विरेके वमथौ तथा ॥
तृष्णायाञ्चाधिके पित्ते नारिकेलाम्बु निर्भयम् ।
नारिकेलपयः पेयं द्विर्भक्ष्यं क्षीरमेव च ॥
स्वप्ने शुक्रच्युतौ चैव चम्पकं कदलीफलम् ।
वर्ज्यं निम्बादिकं शाकं पाकाम्लं काञ्जिकं सुराम् ॥
कदलीफलपत्राङ्घ्रित्रपुषालाबुकर्कटी ।
कूष्माण्डं कारवेल्लञ्च व्यायामं जागरं निशि ॥
न पश्येन्न स्पृशेद् गच्छेत् स्त्रियं जीवितुमिच्छति ।
यद्यौषधे स्त्रियं गच्छेत् कर्तव्या तु प्रतिक्रिया ॥
दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति दुःसाध्यां बहुवार्षिकीम् ।
आमशूलमतीसारं सामञ्चैव सुदारुणम् ॥

अतीसारं षडर्शांसि यक्ष्माणं सपरिग्रहम् ।
शोथञ्च कामलां पाण्डुं प्लीहानञ्च जलोदरम् ॥
पक्तिशूलं चाम्लपित्तं वातरक्तं वमिं क्रमिम् ।
अष्टादशविधं कुष्ठं प्रमेहान् विषमज्वरान् ॥
वातपित्तकफोत्थांश्च ज्वरान् हन्ति सुदारुणान् ।
जीर्णोऽपि पर्पटीं कुर्वन् वपुषा निर्मलः सुधीः ॥
जीवेद्वर्षशतं श्रीमान् वलीपलितवर्जितः ॥

प्रातः करोति सततं नियतं द्विगुञ्जां यस्तां स विन्दति तुलां कुसुमायुधस्य ।
आयुश्च दीर्घमनघं वपुषः स्थिरत्वं हानिं वलीपलितयोरतुलं बलञ्च ॥'

पूर्ववत् भांगरे के रस से शोधित गन्धक १ पल और गन्धक से आधा अर्थात् आधा पल शुद्ध पारद डालकर खरल में कज्जली करे। इस कज्जली में पारे से आधी चांदीभस्म और इससे आधी स्वर्णभस्म, इससे आधी वैक्रान्तभस्म और उतनी ही मोतीभस्म मिलाकर रसपर्पटी के सदृश पर्पटी पाक करे। यह विजयपर्पटी है। इसमें पथ्यापथ्य प्रयोगविधि आदि लगभग रसपर्पटी के सदृश ही है।

इसके पाठ में यह भी बता दिया हैं कि पर्पटियों का पाक तीन प्रकार का होता है जिसे १–मृदु २–मध्य और ३ खर कहा जाता है। औषधार्थ मृदु और मध्य ही ठीक है। खरपाक ठीक नहीं होता–वह गुण नहीं करता। मृदु और मध्य पाक में पारद की चमक मोर की पूंछ की चन्द्रिका के सदृश दीखती है। खरपाक में नहीं दिखाई देती। मृदुपाक में पर्पटी उत्तम रूप से नहीं टूटती। मध्यपाक में चांदी के समान भङ्ग होता है। खरपाक में भङ्ग शीघ्र होता है (बारीक चूर्ण रूप में) और पर्पटी रूक्ष तथा पकी ईंट के वर्ण की सी होती है। प्रकृतग्रन्थ में यह बात पञ्चामृतपर्पटी के बाद कही जायगी।

दूसरा जो विजयपर्पटी का योग है वह इस प्रकार है—

'रसं वज्रं हेम तारं मौक्तिकं ताम्रमभ्रकम् ।
सर्वतुल्येन गन्धेन कुर्याद्विजयपर्पटीम् ॥
दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति दुःसाध्यां बहुवार्षिकीम् ॥

आमशूलमतीसारं चिरोत्थमतिदारुणम् ।
प्रवाहिकां षडर्शांसि यक्ष्माणं सपरिग्रहम् ॥
शोथञ्च कामलां पाण्डुं प्लीहगुल्मजलोदरम् ।
पक्तिशूलमम्लपित्तं वातरक्तं वमिं भ्रमिम् ॥
अष्टादशविधान् कुष्ठान् प्रमेहान् विषमज्वरान् ।
चतुर्विधमजीर्णञ्च मन्दाग्निंश्वमरोचकम् ॥
जीर्णोऽपि पर्पटीं कुर्वन् वपुषा निर्मलः सुधीः ।
जीवेद्वर्षशतं श्रीमान् वलीपलितवर्जितः ॥
प्रातःकरोति सततं नियतं द्विगुञ्जां यस्तां स विन्दति तुलां कुसुमायुधस्य ।
आयुश्च दीर्घमनघं वपुषः स्थिरत्वं हानिं वलीपलितयोरतुलं बलञ्च ॥
जराव्याधिसमाकीर्णं विश्वं दृष्ट्वा पुरा हरः ।
चकार पर्पटीमेतां यथा नारायणः सुधाम् ॥'

शुद्ध पारद, हीराभस्म, सोनाभस्म, चांदीभस्म, मोतीभस्म, तांबाभस्म, अभ्रकभस्म; प्रत्येक १ भाग और शुद्ध गन्धक सबके समान अर्थात् ७ भाग ले। पारा गन्धक की कज्जली कर शेष भस्म मिला पर्पटी पाक करे। यह विजय-पर्पटी है। इसकी मात्रा चौथाई रत्ती से अधिक-से-अधिक आधी रत्ती तक समझें। यह विजयपर्पटी भी इससे पूर्व कही विजयपर्पटी के सदृश ही पुरानी ग्रहणी, आमशूल, पुराना अतीसार, प्रवाहिका, बवासीर, यक्ष्मा, शोथ, कामला, पाण्डु, तिल्ली, गुल्म, जलोदर, परिणामशूल, अम्लपित्त, वातरक्त, वमन, भ्रम, कुष्ठ, प्रमेह, विषमज्वर, अजीर्ण, मन्दाग्नि, अरुचि आदि रोगों को नष्ट करती है ॥ ६१ ॥

स्वर्णपर्पटी—

रसोत्तमं पलं शुद्धं हेम तोलकसंयुतम् ।
शिलायां मर्दयेत् तावत् यावदेकत्वमागतम् ॥ ६२ ॥
गन्धकस्य पलञ्चैकमयःपात्रे ततो दृढे ।
मर्दयेत् दृढपाणिभ्यां यावत् कज्जलतां व्रजेत् ॥ ६३ ॥

ततः पाकविधानज्ञः पर्प्पटीं कारयेत् सुधीः ।
रक्तिकादिक्रमेणैव योजयेदनुपानतः ।
ग्रहणीं विविधां हन्ति वृष्या सर्वज्वरापहा ॥ ६४ ॥

हिंगुल से निकाला हुआ वा उत्तम शुद्ध पारा १पल (४तोला), स्वर्णभस्म एक तोला; दोनों को पत्थर के खरल में खरल करे जब एक हो जावे तो शुद्ध गन्धक १ पल (४ तोला) डाले । और लोहे के खरल में डाल दृढ़ता से तब तक घोटता रहे जब तक कज्जल नहीं होजाता । फिर रसपर्पटी के समान पर्पटी बनाले । इसे रत्ति आदि के वृद्धि और ह्रास क्रम से उस-उस रोगनाशक अनुपानों से दें । यह विविध प्रकार की ग्रहणी को दूर करती है । वृष्य है और सर्व ज्वरों को नाश करती है ।

विशेषवचन—सामान्यतः इसकी आधुनिक मात्रा आधी रत्ती से अधिक-से-अधिक ४ रत्ती पर्यन्त है ।

यहां पर 'पल' से चार तोला लेना चाहिये । जहां पर प्राचीन रस-योग में कोई द्रव्य तोलक प्रमाण में हो तो उसे ठीक-ठीक बनाने के लिये यदि उसमें किसी द्रव्य का प्रमाण पल आदि में दिया हो तो पल को चार तोले का मानकर उसी हिसाब से लें ।

परन्तु प्रायः वैद्य यहां पल को आठ तोले का मान कर इस योग को बनाते हैं । अतएव आठ तोले का पल ही लेकर भैषज्यरत्नावली की टीका में इस योग को बनाने के लिये कहा है । योगरत्नाकर के यक्ष्माप्रकरण में भी ऐसा सुवर्णपर्पटीरस कहा गया है । योगरत्नाकर के ग्रहणीप्रकरण में सुवर्णरसपर्पटी नाम से योग इसप्रकार है—

'शुद्धसूतं पलमितं तुर्यांशस्वर्णसंयुतम् ।
मर्दयेन्निम्बुनीरेण यावदेकत्वमाप्नुयात् ॥

---

१ 'ग्रहणीं विविधां हन्ति यक्ष्माणञ्च विशेषतः । शूलमष्टविधं हन्ति वृष्या सर्वरुजापहा' भै. र. पाठः ।

२ 'सर्वरुजापहा' पा० ।

प्रक्षाल्योष्णाम्बुना पश्चात् पलमात्रे तु गन्धके ।
द्रुते लोहमये पात्रे बादरानलयोगतः ॥
प्रक्षिप्य चालयेल्लोह्यां मन्दं लोहशलाकया ।
ततः पाकं विदित्वा तु रम्भापत्रे शनैः क्षिपेत् ॥
गोमयस्थे तदुपरि रम्भापत्रेण यन्त्रयेत् ।
शीतं तच्चूर्णितं गुञ्जाक्रमवृद्धं निषेवयेत् ॥
माषमात्रं भवेद्यावत्ततो मात्रां न वर्धयेत् ।
सक्षौद्रेणोषणेनैव लेहयेद्भिषगुत्तमः ॥
ग्रहणीं हन्ति शोषं च सुवर्णरसपर्पटी ।
सद्योबलकरी शुक्रवर्धनी वह्निदीपनी ॥
क्षयकासश्वासमेहशूलातीसारपाण्डुनत् ॥'

इसमें स्वर्ण पारद से चतुर्थांश है । कई योगरत्नाकर के इस वचन के आधार पर स्वर्णभस्म न डालकर शुद्ध स्वर्णपत्रों से ही इसे तय्यार करते हैं। परन्तु स्वर्णभस्म के योग से प्रस्तुत करने पर अधिक लाभ होगा। जब स्वर्णभस्म डाली जायगी तब नीबू के रस से घोट कर गरम पानी से धोने की आवश्यकता नहीं रहती (जैसा कि योगरत्नाकर के विधान में है) ॥ ६२-६४ ॥

अथ पञ्चामृतपर्पटी—

अष्टौ गन्धकमाषका[1] रसदलं लौहं तदर्द्धं शुभं
लौहार्द्धश्च वराभ्रकं सुविमलं ताम्रं तथाऽऽर्द्धिकम् ।
पात्रे लौहमये च मर्दनविधौ चूर्णीकृतश्चैकतो
दर्व्या बादरवह्निनाऽतिमृदुना पाकं विदित्वा दले ॥ ६५ ॥
रम्भाया लघु ढालयेत् पटुरियं पञ्चामृता पर्पटी
ख्याता क्षौद्रघृतान्विता प्रातिदिनं गुञ्जाद्वयं वृद्धितः ।

१ 'गन्धकतोलका' पा० ।

लौहे मर्दनयोगतः सुविमलं भक्ष्यक्रिया लौहवत्
गुञ्जाऽष्टावथवा त्रिकं त्रिगुणितं सप्ताहमेवं भजेत् ॥ ६६ ॥
नानावर्णग्रहण्यामरुचिसमुदये दुष्टदुर्नामकादौ
छर्द्यां दीर्घातिसारे ज्वरभवकसिते रक्तपित्ते क्षयेऽपि ।
वृष्याणां वृष्यराज्ञी वलिपलितहरा नेत्ररोगैकहन्त्री
तुन्दं दीप्तस्थिराग्निं पुनरपि नवकं रोगिदेहं करोति ॥ ६७ ॥

शुद्ध गन्धक आठ माषा, शुद्ध पारा चार माषा, दोनों की कज्जली करे। फिर लौहभस्म दो माषे, अभ्रकभस्म एक माषा और ताम्रभस्म आधा माषा मिला लोहे के खरल में खूब घोटे। फिर इसे एक लोहे के पात्र में डाल बेर की लकड़ी के अंगारों की आग दें पिघलावें। एक लोहे की सलाई से सारे चूर्ण को हिलाता जाये। पिघलते ही केले के पत्ते पर पूर्व के समान ढाल देवे और दबाकर पर्पटी बना ले। यह पंचामृत पर्पटी कहाती है। इसे घी और शहद से मिलाकर खिलावें। प्रतिदिन दो रत्ती से क्रमशः बढ़ाकर खिलाता जावे। लोहे के पात्र में घोटकर इसे सेवन करावे। इसकी खाने की विधि लौहभस्म के समान है। आठ रत्ति या नौ रत्ति तक बढ़ाकर एक सप्ताह में खावे। यह नाना वर्ण की ग्रहणी, अरुचि, दुष्ट बवासीर आदि, वमन, चिरकालीन अतिसार रोग, ज्वर से उत्पन्न खांसी, रक्तपित्त, क्षयरोग; इनमें देने से उन-उन रोगों को नाश करती है। यह वृष्य औषधों में महारानी है, वली (झुर्रियां) और श्वेत बालों को दूर करती हैं। नेत्ररोगों के नाश करने में एक ही है। इसके खाने से उदर की अग्नि दीप्त और स्थिर होती है तथा रोगी का देह फिर से नया होजाता है।

विशेषवचन—इसकी सामान्य मात्रा २ रत्ती से ४ रत्ती तक है। वृद्धि-ह्रासक्रम से २ रत्ती से ८ रत्ती तक सेवन करायी जा सकती है। यदि संग्रहणी में तिल्ली जिगर बढ़ गये हों, अपना कार्य न कर रहे हों, ज्वर हो तब

१ 'सुविपुलं' र. चि. पाठः। २ 'विधिः' र. चि. पाठः।
३ 'ज्वरभरकलिते' पा०। ४ 'तत्स्थं' 'तुल्यं' पा०।

पञ्चामृतपर्पटी विशेष लाभ करती है। कई इसे पञ्चानन पर्पटी भी कह देते हैं।

'रसदलं' के स्थान पर कई 'रसपलं' पाठ पढ़ते हैं । परन्तु पारद आदि द्रव्यों के गन्धक की अपेक्षा बहुत अधिक परिणाम में होजाने से पर्पटीपाक नहीं हो सकता अतः वह पाठ हेय है । यदि 'सुविमलं' के स्थान पर 'सुविपुलं' पाठ हो तो अभिप्राय यह है कि यतः इसके द्रव्यों का मर्दन लौहपात्र में खूब होता है अतः इसका सेवनप्रकार भी लौह के समान ही है ।

पञ्चामृतपर्पटी नाम से एक और योग योगरत्नाकर में है—

'लोहाभ्रार्करसं समं द्विगुणितं गन्धं पचेत्कोलिका-
काष्ठाग्नौ मृदुले निधाय सकलं लोहस्य पात्रे भिषक् ।
सर्वं गोमयमण्डले विनिहिते रम्भादले विन्यसेत्
तस्योद्‌ध्वं कदलीदलं द्रुततरं वैद्येश्वरो विन्यसेत् ॥
स्यात्पञ्चामृतपर्पटी ग्रहणिकायक्ष्मातिसारज्वर-
स्त्रीरुक्पाण्डुगराम्लपित्तगुदजक्षुन्मान्द्यविध्वंसिनी ।
ग्रहण्यामनुपानं हि हिङ्गुजीरकसैन्धवम् ।
जीरकं पाण्डुगरयोरितरेषु स्वयुक्तितः' ॥

इसमें द्रव्य तो वे ही हैं परन्तु मान में भेद है। पारद, लोहभस्म, अभ्रकभस्म और ताम्रभस्म, प्रत्येक एक भाग और गन्धक सब से दुगुनी है। ग्रहणी में अनुपान हींग (आधी रत्ती), जीरा (४ रत्ती) और सेन्धानमक (१ रत्ती) है। पाण्डु और गरदोष में अकेले जीरकचूर्ण के साथ पीस कर दी जाती है।

इनके अतिरिक्त लौहपर्पटी का सेवन भी ग्रहणी में कराते हैं। उसमें शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और लोहभस्म; तीन द्रव्य समपरिमाण में लिये जाते हैं। पश्चात् अन्य पर्पटियों के सदृश तय्यार कर लेते हैं। इसका अनुपान शीतल जल वा धनियां और जीरे का क्वाथ है। पथ्यापथ्य आदि अन्य पर्पटियों के सदृश ही है ॥ ६५—६७ ॥

पाकोऽस्याः त्रिविधः प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा ।

आद्ययोर्दृश्यते सूतः खरपाके न दृश्यते ॥ ६८ ॥
मृदौ न सम्यग्भङ्गः स्यात् मध्ये भङ्गश्च रौप्यवत् ।
खरे लघुर्भवेद्भङ्गो रूक्षः श्लक्ष्णोऽरुणच्छविः ।
मृदुमध्यौ तथा खाद्यौ खरस्त्याज्यो विषोपमः ॥ ६९ ॥

पर्पटी का पाक तीन प्रकार का है । मृदु, मध्य तथा खर। मृदु और मध्यपाक में पारा दीखता है । परन्तु खरपाक में पारा नहीं दीखता । मृदु पाक हो तो पर्पटी ठीक टूट नहीं सकती । मध्यपाक हो तो चांदी के समान टूटती है । खरपाक हो तो आसानी से टूट जाती है तथा टूटने में रूखी चिकनी और अरुणिमा लिये होती है । मृदुपाक और मध्यपाक वाली पर्पटी तो खानी चाहिये परन्तु खरपाक वाली नहीं क्योंकि वह विष के तुल्य हो जाती है ॥ ६८—६९ ॥

अथ अग्निकुमारो रसः—

शुद्धसूतं समं गन्धं त्रिकटु पटुपञ्चकम् ।
दशकं तुल्यतुल्यञ्च विजया सर्वसम्मिता ।
भावयेच्चित्रभृङ्गोत्थैस्त्रिधा च विजयाद्रवैः ॥ ७० ॥
दीप्ताग्निना तु यामैकं बालुकायन्त्रके पचेत् ।
सञ्चूर्ण्य चार्द्रकद्रावैर्भावयित्वा च भक्षयेत् ॥ ७१ ॥
मधुना शाणमानन्तु रसो ह्यग्निकुमारकः ।
दीप्ताग्निकारकः साम–ग्रहणीदोषनाशनः ॥ ७२ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक एक २ तोला लेकर कज्जली करे । फिर सोंठ, मिरच, पिप्पली, पांचों नमक; इन में से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला ले और शुद्ध भांग का चूर्ण दस तोला डाले । सबको मिला पीस कर चीता के क्वाथ से तीन वार भावना दे । फिर भांगरे के रस से तिन वार भावना दे । पुनः भांग के रस से तिन वार भावना दे । इसे एक पहर तक बालुकायन्त्र में पकावे । फिर इसे निकाल चूर्ण कर अदरक के रस

से भावना देकर रखे। इसे एक शाणभर लेकर शहद से खावे तो यह अग्निकुमार रस अग्नि को दीप्त करता तथा आमयुक्त ग्रहणी रोग को नाश करता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा ८ रत्ती पर्याप्त है। अन्तिम भावना देने के पश्चात् कुछ गीले को ही दो शरावों में बन्द करके बालुकायन्त्र में तब तक पकाना चाहिये जब तक औषध शुष्क हो जाये। शुष्क होने की पहिचान गन्धक की गन्ध आने से हो जायगी। उसी समय उसे निकाल लें और पुनः चूर्ण करके अदरक के रस की भावनायें देवें। भावना सामान्य नियम के अनुसार सात देनी होंगी। इस सारे की पुष्टि रसरत्नसमुच्चय में कहे अग्निकुमार रस के पाठ से होजायगी—

'शुद्ध सूतं विषं[1] गन्धं द्विक्षारं[2] पटुपञ्चकम्।
दशकं तुल्यतुल्यांशं भर्जिता विजया नवा॥
दशानां तुल्यभागा सा तस्यार्धं शिग्रुमूलकम्।
तत्सर्वं विजयाद्रावैः शिग्रुचित्रकभृङ्गजैः॥
द्रावैर्दिनत्रयं[3] मर्द्यं रुद्ध्वा भाण्डे पचेल्लघु।
दीप्ताग्निना तु यामैकं शुष्कं[4] यावत्समुद्धरेत्॥
सप्तधा चार्द्रकद्रावैर्भावयेच्चूर्णयेद्भिषक्[5]।
दीपकोऽग्निकुमारोऽयं निष्कैकं[6] मधुना लिहेत्॥
प्रतिकर्षं[7] गुडं शुण्ठी ह्यनुपानं च दीपनम्॥'

'शुष्कं यावत्' से स्पष्ट है कि औषध के सूखने तक ही पकाना उचित है। इस अग्निकुमार रस में त्रिकटु के स्थान पर शुद्ध विष, यवक्षार और सज्जीक्षार; ये तीन द्रव्य हैं। भांग के प्रमाण से आधा सहिजन की जड़

१—'मृतं' र. र. पाठः। २—' त्रिक्षारं ' र० र० पाठः।
३—'द्रवैर्दिनद्वयं ' र० र० पाठः। ४—'शुद्धं पाच्यं ' र० र० पाठः।
५—'सप्तधा चार्द्रकद्रावैश्चित्रकै र्भावयेद्भिषक् ' र० र० पाठः।
६—'निष्कार्धं' इति केचिदिच्छन्ति।
७—'प्रतिनिष्कं' इति केचिदिच्छन्ति।

का चूर्ण अधिक है। भावनाद्रवों में भी सहिजन की मूली का रस अधिक है। अनुपान में यहां गुड और सोंठ का प्रयोग विशेष कहा है। पाकानन्तर अदरक के रस की सात भावनायें देने का विधान स्पष्ट ही है।

स्वल्पनायिका और मध्यमनायिका चूर्ण नाम से जो योग मिलते हैं उनमें भी प्रकृत ग्रन्थ के अग्निकुमार रस में कहे ११ द्रव्य वही हैं। प्रमाण में भेद है, भावनायें नहीं देनी और नाही पाक करना है।

स्वल्पनायिका चूर्ण में पाचों नमक प्रत्येक ३ शाण, त्रिकटु प्रत्येक १ कर्ष (४ शाण), गन्धक २ शाण, पारद १ शाण तथा भांग १६ शाण है।

मध्यनायिका में गन्धक १ कर्ष, पारा आधा कर्ष, त्रिकटु प्रत्येक २ कर्ष, पांचों नमक प्रत्येक १॥ कर्ष, भांग ८॥ कर्ष है।

अनुपान दोनों में कांजिक है। मात्रा १ मासा दी जाती है। ये ग्रहणी और अतिसार में प्रसिद्ध योग हैं॥ ७०-७२॥

बडवामुखो रसः—

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतताम्राभ्रटङ्कणम्।
सामुद्रञ्च यवक्षारं सर्जिसैन्धवनागरम्॥ ७३॥
अपामार्गस्य च क्षारं पलाशवरुणस्य च।
प्रत्येकं सूततुल्यं स्यादम्लयोगेन मर्दयेत्॥ ७४॥
हस्तिशुण्डीद्रवैश्चाग्नौ मर्दयित्वा पुटेल्लघु।
माषमात्रः प्रदातव्यो रसोऽयं बडवामुखः।
ग्रहणीं विविधां हन्ति सङ्ग्रहग्रहणीं ज्वरम्॥ ७५॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध सुहागा, समुद्र-लवण, यवक्षार, सज्जी, सेंधानमक, सोंठ का चूर्ण, अपामार्ग का क्षार, ढाक का क्षार, वरुण का क्षार; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा और गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर किसी अम्ल से (कांजी वा नीबू आदि के रस से) पीसे, फिर हाथीसुण्डी के रस से मर्दन करके सूखजाने पर लघुपुट देवे। पश्चात् निकाल कर एक माषा भर खावे

तो विविध प्रकार की ग्रहणी, संग्रहग्रहणी तथा ज्वर नष्ट होते हैं।

विशेषवचन—इसकी आधुनिक मात्रा-२ रत्ती है। रसरत्नसमुच्चय में इससे मिलता जुलता योग 'वज्रधर रस' कहा है—

'रसगन्धकताम्राभ्रं क्षारांस्त्रीन्वरुणावृषम्।
अपामार्गस्य च क्षारं लवणं द्विद्विमाषकम्॥
शार्ङ्गेर्या हस्तिशुण्ड्याश्च रसे पिष्टं पचेत्पुटे।
भक्षयित्वा ततो गुञ्जां ग्रहण्यां काञ्जिकं पिबेत्॥
पक्तिशूले च कासे च मन्दाग्नावार्द्रकद्रवम्।
अम्लपित्ते च धारोष्णं क्षीरं वज्रधरो ह्ययम्॥'

इसमें पलाशक्षार के स्थान पर वासकक्षार है। सामुद्रनमक नहीं है। अम्ल के स्थान पर शार्ङ्गेरी के रस से मर्दन है। शेष बडवामुख रस के सदृश ही है। यहां मात्रा १ रत्ती की कही है। अनुपान ग्रहणी में कांजी। परिणामशूल खांसी और मन्दाग्नि में अदरक का रस। अम्लपित्त में धारोष्ण दूध। इन्हीं अनुपानों से बडवामुख रस का प्रयोग भी उन २ रोगों में करा सकते हैं॥ ७३-७५॥

ग्रहणीकपाटो रसः—

रसगन्धकयोश्चापि जातीफल[1]लवङ्गयोः।
प्रत्येकं शाण[2]मानञ्च श्लक्ष्णचूर्णीकृतं शुभम्॥ ७६॥
सूर्यावर्त्तरसेनैव बिल्वपत्ररसेन च
[3]शृङ्गाटकसमुद्भूत—स्वरसेन च मर्दयेत्॥ ७७॥
चण्डातपेन संशोष्य वटिकां कारयेद्भिषक्।
बिल्वपत्ररसेनैव दा[4]पयेद्रक्तिकाद्वयम्॥ ७८॥

१—'जातीफलविडङ्गकम्' र. र. पाठः।
२—'शाणमात्रन्तु श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्' र. र. पाठः।
३—'शृङ्गाटकस्य पत्राणां रसैः प्रत्येकशः पलैः' इति भै. र., र. र. स्थितः पाठः।
४—'भक्षयेद्' र. र. पाठः।

दध्ना च भोजनीयो[1]ऽसौ ग्रहणीरोगनाशनः ।
पाण्डुरोगमतीसारं शोथं[2] हन्ति तथा ज्वरम् ।
अयश्च[3] ग्रहणीरोगे कपाटो रस उत्तमः ॥ ७९ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, जायफल का चूर्ण, लौंग का चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य एक २ शाण लें। पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य बारीक चूर्ण मिलाकर सूर्यमुखी के रस से, बिल के पत्तों के रस से तथा सिंघाड़े के पत्तों के रस से क्रमशः घोटकर तेज धूप में सुखा लें और दो रत्ति प्रमाण की गोली बना लें। बिलपत्र के रस से रोगी को दें। खाने को दही दें। इससे ग्रहणी रोग नाश होता है। पाण्डुरोग, अतीसार, शोथ, ज्वर; इन सब को यह ग्रहणीकपाट रस दूर करता है। ग्रहणी रोग में यह कपाट रस उत्तम है ॥७६–७९॥

संग्रहणीकपाटो रसः—

मुक्ता सुवर्णं रसगन्धटङ्कं घनं कपर्दोऽमृततुल्यभागः ।
सर्वैः समं शङ्खकचूर्णमत्र भाव्यं च खल्लेऽतिविषाद्रवेण[4] ॥ ८० ॥
गोलञ्च कृत्वा मृदु[5]कर्पटस्थं सम्पाच्य भाण्डे दिवसार्द्धकञ्च ।
सर्वाङ्गशीतो रस एष भाव्यो धुस्तूरवन्ह्योर्मुषलीद्रवैश्च ॥ ८१ ॥
लौहस्य पात्रे परिभावितश्च सिद्धो भवेत् सङ्ग्रहणीकपाटः ।

१–'सम्प्रदातव्यो' इति पा० कश्चिदिच्छति ।

२–'शोथदुर्नामनाशनम्' र. र. पाठः ।

३–'ग्रहणीकपाटनामायं रसः परमदुर्लभः' पा० । 'ग्रहणीकपाटनामायं कपाट-घटनादिव' र. र. पाठः ।

४---रसराजसुन्दरे तु अस्मादनन्तरं गोलञ्चेत्यादि न पठितम् । लोहस्य पात्रे परिपाचितश्चेत्यादिना पाठः समुपलभ्यते ।

५—'मृतकर्परस्थं संरुध्य चाग्नौ हि पचेद्दिनार्धम् । सुस्वाङ्गशीतो रस एष भाव्यो धुस्तूरचैत्रैर्मुषलीद्रवैश्च । लोहस्य पात्रे परिपाचितश्च' इति पाठान्तरं केचित्पठन्ति ।

संसाधितः[1] सद्भिषजा प्रयत्नात् योगस्थितेनार्य्यसमर्च्चितेन ॥८२॥
वातोत्तरायां मरिचाज्ययुक्तैः पित्तोत्तरायां मधुपिप्पलीभिः ।
कफोत्तरायां विजयारसेन कटुत्रयेणाज्ययुतो[2] ग्रहण्याम् ॥८३॥
क्षये ज्वरे चार्शसि षट्प्रकारे[3] सामातिसारेऽरुचिपीनसे च ।
मेहे[4] च कृच्छ्रे गतधातुवृद्धौ गुञ्जाद्वयश्चापि महामयघ्नम् ॥८४॥

मोतीभस्म, सुवर्णभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, अभ्रक-भस्म, कौड़ीभस्म, शुद्ध विष; प्रत्येक द्रव्य समभाग और इन सब के समान शंखभस्म लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिला लें और अतीस के स्वरस या क्वाथ से मर्दन कर के एक गोला बनावें इसे एक पतले कपड़े में लपेट कर एक पात्र में डाल आधा दिन पकावें। जब सर्वांगशीत हो जायें तब इसको धतूरा, चीता, मूसली इन तीनों के रस से क्रमशः लोहे के पात्र में भावित करे। सूखने पर शीशी में डाल लें। इसे संग्रहणीकपाट रस कहते हैं। इसे भगवान के उपासक समाहित चित्त वाले आर्यजन पूजित वैद्य बनावें। वातप्रधान ग्रहणी में मिरचों के चूर्ण और घी के साथ, पित्तप्रधान ग्रहणी में शहद और पिप्पली के चूर्ण के साथ, कफप्रधान ग्रहणी में भांग के रस से अथवा सोंठ मिरच पिप्पली के चूर्ण और घी से मिलाकर दें। क्षय, ज्वर, छह प्रकार के बवासीर, आमातीसार, अरुचि, पीनस, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, धातुक्षीणता में इसे दो रत्ति दें तो इन रोगों को तथा अन्य महारोगों को दूर करता है।

विशेषवचन—यहां पर अतीस के क्वाथ से भावना देने के बाद गोला-बनाकर पतले कपड़े में लपेट सम्पुट में बन्द कर २ पहर की पुट देकर पकाते हैं। विना कपड़ा लपेटे भी पुटपाक करने में कोई हानि नहीं प्रतीत होती।

१—संसाधित इत्यादि श्लोकपङ्क्तिर्नान्यत्रोपलभ्यते ॥
२—'कटुत्रयेणापि युतः' इत्यन्यत्र पाठः।
३—'विड्विकारे' इति क्वचित्पाठः।
४—'मोहे च' पा०।

यदि 'मृदुकर्पटस्थं' (जो व्यर्थ प्रतीत होता है) के स्थान पर 'मृदुनानलेन' यह पाठ कर दें तो अच्छा रहेगा। तब औषधगोलक को एक मिट्टी के पात्र में रख ऊपर औंधा मुंह शराव देकर सन्धिबन्धन कर शेष भाग में वालुका भर दो पहर मन्द अग्नि से पाक करना होगा। अथवा औषधगोलक को दो शरावों में सम्पुट कर हांडी में नीचे ऊपर वालुका देकर पकाना होगा।

इस योग का नाम संग्रहग्रहणीकपाट भी है। यह क्षय ज्वर युक्त अतिसार वा ग्रहणी में अति लाभकर है ॥ ८०-८४ ॥

अन्यो ग्रहणीकपाटो रसः—

गिरिजाभवबीजकज्जली परिमृद्याद्र्रसेन शोषिता।
कुटजस्य तु भस्मना पुनर्द्विगुणेनाथ विमृद्य मिश्रिता ॥८५॥
मर्दयित्वा प्रदातव्यमस्य[1] गुञ्जाचतुष्टयम्।
अजाक्षीरेण दातव्यं क्काथेन कुटजस्य वा ॥ ८६ ॥
यूषं देयं मसूरस्य वारिभक्तञ्च शीतलम्।
दध्ना सह पुनर्देयं रक्तादौ[2] रक्तिकाद्वयम् ॥
वर्द्धयेद्दशपर्य्यन्तं ह्रासयेत् क्रमशस्तथा।
निहन्ति ग्रहणीं सर्वां विशेषात् कुक्षिमार्दवम् ॥ ८७ ॥

शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारा; दोनों एक २ तोला ले कज्जली करें। फिर अदरक के स्वरस से घोटकर सुखावें। इसमें कुटज की छाल की भस्म चार तोला मिलाकर घोटें। यह ग्रहणीकपाट रस है। इसकी चार रत्ति की मात्रा बनाकर बकरी के दूध से दें अथवा कुटज के क्काथ से दें तो ग्रहणी रोग दूर होता है। इसके साथ पथ्य में मसूर का यूष, दही और शीतल वारिभक्त (ओदन पका कर यदि उसी समय शीतल जल में डाल दें तो उस ओदन को वारिभक्त कहते हैं) देना चाहिये। रक्तातीसार आदि में दो रत्ति से दस रत्ति

१—अस्येति ग्रहणीकपाटरसस्य। अथवा 'अस्याः' इति पाठः कार्यः।
२—'प्रासादौ' पा०।

पर्यन्त क्रमश बढ़ा और घटाकर दें। इस से सब प्रकार का ग्रहणी रोग और विशेष करके पेट की मृदुता (मृदुकोष्ठता) दूर होती है ॥ ८४-८७ ॥

विजयावटिका—

हाटकं रजतं ताम्रं यद्यत्र परिदीयते ।
विजयाख्या तु सा ज्ञेया सर्वरोगनिसूदनी ॥ ८८ ॥

यदि उपर्युक्त ग्रहणीकपाट रस में सोनाभस्म, चांदीभस्म तथा ताम्बाभस्म भी (एक २ भाग) मिला दें तो यह विजया वटिका सब रोगों को दूर करने वाली है।

विशेषवचन-आधुनिक मात्रा १ रत्ती की होगी ॥ ८८ ॥

ग्रहणीकपर्दपोट्टली-

कपर्दतुल्यं रसकन्तु[1] गन्धं लौहं मृतं टङ्कणकञ्च तुल्यम् ।
जयारसेनैकदिनं विमर्द्य[2] चूर्णेन संवेष्ट्य[3] पुटेच्च भाण्डे[4] ।
ददीत[5] तत् पोट्टलिका[6]ऽभिधानं वातप्रधानग्रहणीनिवृत्त्यै ॥८९॥

कौड़ी भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, शुद्ध सुहागा; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। यथाविधि मर्दन करके भांग (अथवा जयन्ती) के रस से सब को घोटकर चूने से वेष्टन कर सम्पुट करके पुट दे दें। यह ग्रहणीकपर्द-पोटली रस वातप्रधान ग्रहणी को दूर करता है।

विशेषवचन—पोट्टलिका नाम होने से कज्जली लौहभस्म और सुहागे को भांग वा जयन्ती के रससे घोटकर कौड़ियों में भर लेते हैं और उसके मुख को चूने से बन्दकर सम्पुट करके पुट देते हैं।

अथवा यदि कौड़ी भस्म ही डालनी हो तो उन्हीं द्रव्यों के साथ कौड़ी-

---

१—'रसगन्धकल्कं' र. र. स. पाठः।

२—'विमार्दितं' पा० । ३—'सम्पेष्य पुटेत भाण्डे' र. र. स. पाठः प्रमादकृतः। ४—'भाण्डगम्' पा० ।

५—'ददीत तां पोट्टलिकां च दोषत्रयप्रधानग्रहणीनिवृत्त्यै' र. र. स. पाठः।

६—'पोट्टलिकाभिधानकं वातप्रधानां ग्रहणीं निवर्तयेत् ।' पा० ।

भस्म को जया (जयन्ती वा भांग) के रस से मर्दन करके मिट्टी की मूषा में बन्द करके पुट देते हैं । मूषा को अन्दर की ओर से चूने से लिप्त कर लेते हैं। यही प्रकार अधिक प्रचलित है और अच्छा भी है।

इस रस की आधुनिक मात्रा २ रत्ती है । रसरत्नसमुच्चय में तो इसे त्रिदोषप्रधान ग्रहणी में प्रयोग कराने को कहा है। वहां यह पोटलीरस नाम से है ॥ ८९ ॥

हंसपोट्टली-

दग्धान्[1] कपर्दकान् पिष्ट्वा त्र्यूषणं टङ्कणं विषम् ।
गन्धकं शुद्धसूतञ्च तुल्यं जम्बीरजैर्द्रवैः ॥ ९० ॥
मर्दयेद् भक्षयेन्माषं संलिह्यान्मरिचार्द्रकम्[2] ।
निहन्ति ग्रहणीरोगं पथ्यं तक्रौदनं हितम् ॥ ९१ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोंठ का चूर्ण, मिरच का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, कौड़ीभस्म, शुद्ध सुहागा, शुद्ध विष; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिला ले और सब को जम्बीरी नींबू के रस में घोट कर एक माष भर की गोली बना ले। इसे सेवन कर मिरच के चूर्ण को अदरक के रस में मिलाकर चाटे। ग्रहणी रोग दूर होता है। पथ्य में छाछ और चावल देवे।

विशेषवचन—मात्रा १ रत्ती तक दे सकते हैं । रसरत्नसमुच्चय में यह अग्निकुमार रस नाम से और रसराजसुन्दर में वराटादियोग नाम से है। अनुपान में पाठान्तर के अनुसार मरिचचूर्ण और घी का लेहन करना चाहिये ॥ ९०—९१ ॥

अन्यो ग्रहणीकपाटः—

तुल्यं कान्तं रसं तालं माक्षिकं टङ्कणं तथा ।
सपादनिष्कं प्रत्येकं पञ्चनिष्कं वराटकम् ।

---

१ 'दग्ध्वा वराटकान् पीतान्' र. रा. सु. पाठः ।
२ 'मरिचाज्यं लिहेदनु' पा० ।

द्विनिष्कं गन्धकं सर्वं पिष्ट्वा जम्बीरजैर्द्रवैः ॥ ९२ ॥
अर्द्धभार[1]करीषेण पुटितं भस्म शोभनम् ।
प्रदद्याद् ग्रहणीगुल्म-क्षयकुष्ठप्रमेहके ॥ ९३ ॥

कान्तलौहभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध हड़ताल, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध सुहागा; प्रत्येक द्रव्य सवा निष्क लें, कौड़ीभस्म पांच निष्क, शुद्ध गन्धक दो निष्क लें। पहले पारे गन्धक की कज्जली करके फिर अन्य द्रव्य मिलायें और जम्बीरी के रस से घोटें। आधा भार (१००० पल=१। मन) जङ्गली उपलों से पुट दें। स्वांगशीतल होने पर निकाल रखें। इसके प्रयोग से ग्रहणी, गुल्म, क्षय, कुष्ठ और प्रमेह नाश होते हैं।

विशेषवचन—यहां निष्क को शाण का वाचक नहीं समझना क्योंकि उसके अनुसार १००० पल उपलों की आग बहुत ही अधिक होगी। निष्क पल का वाचक भी है। अतः यहां निष्क से पल ही लेना चाहिये। और इसी के अनुसार प्रमाण में द्रव्य लेने से पुट की आग भी ठीक ही रहेगी। इस रस की आधुनिक मात्रा—१ रत्ती से ४ रत्ती तक जानें ॥ ९२-९३ ॥

ग्रहणीकपाटः—

रसाभ्रगन्धान् क्रमवृद्धियुक्तान् जङ्घारसेन त्रिदिनं विमर्द्य ।
जयन्तिकाभृङ्गकलम्बिनीरैर्दिनं यवक्षारसटङ्कणाश्च ॥ ९४ ॥
क्षिप्त्वा तु गन्धस्य च तुल्यभागं वातारितैलेन युतं पुटित्वा ।
गुडूचिकाशाल्मलिकारसेन जयारसेनापि विमर्द्य शाणम् ॥ ९५ ॥
सार्द्धं मरीचैः मधुना समेतं ददीत पथ्यं दधिभक्तकञ्च ।
शिवेन प्रोक्तो जगतां हिताय महारसोऽयं ग्रहणीकपाटः ॥ ९६ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, अभ्रक भस्म दो तोला, शुद्ध गन्धक तीन तोला ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अभ्रकभस्म मिला कर काकजङ्घा के रस से तीन दिन तक खरल करे। फिर जयन्ती के रस से, भांगरे के रस से तथा

---

१ 'अर्द्धभागकरीषेण' पा०

नाड़ीशाक के रस से एक२ दिन खरल करे। अनन्तर यवक्षार तीन तोला, शुद्ध सुहागा तीन तोला मिलाकर पीसे और एरण्ड के तेल से घोट कर पुट देवे। पश्चात् गिलोय का रस, सेमल का रस तथा भांग का रस इनसे घोटकर रखे। इस को एक शाण भर लेकर काली मिरचों के चूर्ण और मधु के साथ देवे। पथ्य में दही चावल देवें। इस ग्रहणीकपाट रस को शिवजी ने लोकोपकार के लिये कहा है।

विशेषवचन—इस रस की आधुनिक मात्रा-२ रत्ती से ४ रत्ती तक है। उक्त मूलपाठ के आगे तन्त्रान्तर में निम्न पाठ भी है—

'सौवीरकं जीरकयुग्मधान्ययवासवारीणि च नागरञ्च।
कपित्थसारेण समं प्रगृह्य ददीत चूर्णं निशि तीव्रतापे॥
गद्याणमात्रं मधुखण्डयुक्तं, गुडेन युक्तञ्च रुचिप्रवृद्ध्यै।
वातप्रधाने च कफप्रधाने रात्रौ कषायं कुटजस्य दद्यात्॥
कृशानुजातीद्वयमात्रिकेण कटुत्रयेणापि युतं ददीत॥'

अर्थात् यदि इसके सेवन से तीव्र ताप हो तो सूखे बेर, श्वेत जीरा, कालाजीरा, धनियां, जवासा, सुगन्धबाला, सोंठ, कैथफल की गिरी; इनके चूर्णों को समभाग में मिला गद्याण प्रमाण (यह ४८ रत्ती वा ६४ रत्ती का होता है) में ले शहद और खांड के साथ रात को सोते समय दे। इस चूर्ण की मात्रा ३ माशे की पर्याप्त है। रुचि की वृद्धि के लिये इस रस को गुड के साथ देना चाहिये। वातप्रधान और कफप्रधान संग्रहणी में अनुपान के तौर पर कुड़े की छाल के काढ़े को चित्रक, जावित्री, जायफल; इनका प्रक्षेप देकर मधु मिला वा त्रिकुटा के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पिलाना चाहिये। रसरत्नसमुच्चय में ग्रहणीहर नाम से एक रस है जो इसी का ही सर्वथा त्रुटित रूप प्रतीत होता है। कहीं यह ग्रहण्यर्गल नाम से और सुदर्शन नाम से भी है॥९४-९६॥

ग्रहणीवज्रकपाटः—

**सूतं गन्धं यवक्षारं जयन्त्युग्राऽभ्रटङ्गणम्।
जयन्तीभृङ्गजम्बीर-द्रवैः पिष्ट्वा दिनत्रयम्॥ ९७॥
यामार्द्धं गोलकं स्वेद्यं मन्देन पावकेन च।**

शीते जयारससमैः[1] शाल्मलीविजयाद्रवैः ॥ ९८ ॥
भावयेत् सप्तधा वज्र–कपाटः स्याद् रसोत्तमः ।
माषद्वयं त्रयं वाऽस्य मधुना ग्रहणीं जयेत् ॥ ९९ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, यवक्षार, जयन्ती, वच, अभ्रकभस्म, सुहागा शुद्ध; इन सब को समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलावे और जयन्ती, भांगरा तथा जम्बीरी के रस से तीन २ दिन पीसकर गोली बनाकर आधा पहर मन्दाग्नि से स्वेदन करे। जब शीतल हो जाये तो जयन्ती के रस सेमल के रस और भांग के रस से इसको सात सात वार भावना देवे। इस रस का नाम वज्रकपाट रस है। इसे दो माषा या तीन माषा लेकर शहद से दें तो ग्रहणी रोग नाश करता है॥

विशेषवचन—इस ग्रहणीवज्रकपाट की आधुनिक मात्रा--४ रत्ती से ८ रत्ती तक जाननी चाहिये।

रसरत्नसमुच्चय में भी वज्रकपाट नाम से यह योग है। उसे देखने से यह पता लगता है कि 'शीते जयारससमैः शाल्मलीविजयाद्रवैः' में कुछ लेख-प्रमाद अवश्य है—

' मृतसूताभ्रकं गन्धं यवक्षारं सटङ्कणम् ।
वचा जया समं सर्वं जयन्तीभृङ्गजद्रवैः ॥
सजम्बीरैस्त्र्यहं मर्द्यं शोषयेत्तं च गोलकम् ।
मन्दवह्नौ शनैः स्वेद्यं यामार्धं लौहपात्रके ॥
रससाम्ये प्रतिविषा देया मोचरसस्तथा ।
भावयेद्विजयाद्रावैः शोष्यं पेष्यं च सप्तधा ॥
रसो वज्रकपाटोऽयं निष्कार्धं मधुना लिहेत् ॥'

इसके अनुसार 'शीते विषा रससमा शाल्मलीविजयाद्रवैः (अथवा 'च जयाद्रवैः') ऐसा पाठ होना ठीक है । अर्थात् मन्दाग्नि से स्वेदन के पश्चात् शीतल होने पर पारद के समान पृथक् अतीस चूर्ण और मोचरस मिलावे।

---

१ 'जयारससमं' इति पाठः कार्यः ।

इसे भांग के रस से सात वार भावना देवे। यही पाठ रसराजसुन्दर में संगृहीत है।

इससे यह भी स्पष्ट है कि स्वेदन लोहपात्र में करना है। अर्थात् लोहे की मूषा में गोलक को बन्द करके लवणयन्त्र में पकाना चाहिये। जैसा कि तन्त्रान्तर से स्पष्ट है—

' मृतसूताभ्रकं गन्धं यवक्षारं सटङ्कणम्।
अग्निमन्थं वचां कुर्यात् सूततुल्यानिमान्सुधीः॥
ततो जयन्तीजम्बीरभृङ्गद्रावैर्विमर्दयेत्।
त्रिवासरं ततो गोलं कृत्वा संशोष्य धारयेत्॥
लवणान्तर्गतं लोहपात्रे सम्यग्विमुद्रितम्।
अधो वह्निं शनैः कुर्याद् यामार्धञ्च तदुद्धरेत्॥
रसतुल्यामतिविषां दद्यान्मोचरसं तथा '॥ इत्यादि।

अथवा लोहे की कड़ाही में गोलक रखें उस पर औंधा मुंह शराव देकर सन्धिलेप कर दें। कड़ाही के शेष भाग को नमक से भर दें। नमक से वह शराव चारों ओर से और ऊपर अच्छीप्रकार ढका जाना चाहिये। रसेन्द्रचिन्ता मणि में कहा है—

' त्रिवासरं ततो गोलं कृत्वा संशोष्य धारयेत्।
लोहपात्रे शरावं च दत्त्वोपरि विमुद्रयेत्॥
अधो वह्निं शनैः कुर्याद्यामार्धं तत उद्धरेत्।
रसतुल्यामतिविषां दद्यान्मोचरसं तथा॥ '

इसके अतिरिक्त इन दोनों पाठों में इससे आगे निम्न पाठ है—

' कपित्थविजयाद्रावैर्भावयेत्सप्तधा भिषक्[1]।
धातकीन्द्रयवा मुस्ता लोध्र[2]बिल्वगुडूचिकाः।
एतद्रसैर्भावयित्वा वारैकं[3]ञ्च विशोषयेत्।

---

१ 'पृथक्' रसेन्द्रचिन्तामणौ शार्ङ्गधरे च पाठः।

२ 'लोध्रप्रतिविषामृताः' र. चि. पाठः।

३ 'दिनैकं' र. चि. पाठः। 'वेलैकैकं' शार्ङ्गधरपाठः।

रसं वज्रकपाटाख्यं माषैकं मधुना लिहेत् ॥
वह्निं शुण्ठीं विडं बिल्वं सैन्धवं चूर्णयेत्समम् ।
पिबेदुष्णाम्बुना चानु सर्वजां ग्रहणीं जयेत् ॥'

अर्थात् इनके अनुसार अतीस और मोचरस मिलाने के पश्चात् केवल भांग के रस से ही भावना नहीं देनी । कैथ फल के रस से भी सातबार भावना देनी चाहिये और धाय के फूल, इन्द्रजौ, मोथा, लोध, बेलगिरी (रसेन्द्रचिन्तामणि के पाठ के अनुसार अतीस), गिलोय; इनके रस वा क्वाथों से भी एक २ बार भावना दी जाती है ।

चित्रक, सोंठ, बिडनमक, बेलगिरी, सेन्धानमक; इनके चूर्ण को (३ मासे तक) गरम-जल के साथ इस रस के अनुपान रूप में पीना चाहिये । अर्थात् रस की एक मात्रा को मधु के साथ चाटकर ऊपर कहे अनुपान का सेवन करे ।

रसेन्द्रचिन्तामणि, शार्ङ्गधर वा तन्त्रान्तर के उक्त पाठों के अनुसार 'जयन्त्युग्राभ्र०' में जयन्ती से अग्निमन्थ (अरणी) लेते हैं । इसीप्रकार रसरत्नसमुच्चय के 'जया' पाठ में भी उससे अरणी का ग्रहण करते हैं । 'जया' और 'जयन्ती' अग्निमन्थ के वाचक भी हैं । परन्तु प्रकृतग्रन्थ और रसरत्न-समुच्चय के पाठ में अधिकतया व्यवहार जयन्ती (पं० जयन्तड़) से ही है । उक्त सब उद्धरणों में शुद्ध पारद के स्थान पर पारदभस्म वा रससिन्दूर डालने को कहा है ॥ ९७–९९ ॥

प्रकारान्तरो ग्रहणीवज्रकपाटः—

तारमौक्तिकहेमानि सारश्चैकैकभागिकाः ।
द्विभागो गन्धकः सूतस्त्रिभागो मर्दयेदिमान् ॥ १०० ॥
कपित्थस्वरसैर्गाढं मृगशृङ्गे ततः क्षिपेत् ।
पुटेत् मध्यपुटेनैव तत उद्धृत्य मर्दयेत् ॥ १०१ ॥
बलारसैः सप्तधैवमपामार्गरसैस्त्रिधा ।

---

१ 'शाणैकं' शार्ङ्गधरपाठः ।
२ 'लवणं' शार्ङ्गधरपाठः । ३ 'सप्तवेलं' यो. र. पाठः । 'सप्तवारान्' पा० ।

लोध्रप्रतिविषामुस्ता—धातकीन्द्रयवामृताः ॥ १०२ ॥
प्रत्येकमेतत्स्वरसैर्भावना स्यात् त्रिधा त्रिधा ।
माषमात्रो रसो देयो मधुना मरिचैस्तथा ॥ १०३ ॥
हन्यात् सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वजामपि ।
कपाटो ग्रहणीरोगे रसोऽयं वह्निदीपनः ॥ १०४ ॥

चांदीभस्म, मोतीभस्म, स्वर्णभस्म, लौहभस्म; प्रत्येक एक २ तोला लें । शुद्ध गन्धक दो तोला लें । शुद्ध पारा ३ तोला लें । पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर सब द्रव्य मिलाकर मर्दन करें और कैथ के रस से खूब घोटकर सुखा के हरिण के सींग में भर दें । अनन्तर कपड़मिट्टी कर मध्यपुट (वराहपुट) में भस्म करें । शीतल होने पर औषध को निकाल कर चूर्ण करें । बला के रस से सात वार भावना देवें । फिर अपामार्ग के रस से तीन वार भावना देवें । लोध, अतीस, मोथा, धाय के फूल, इन्द्रजौ तथा गिलोय इन में से प्रत्येक के स्वरस या क्काथ से तीन २ भावनायें दें । फिर इसको सुखा लें । इसको एक उड़द भर लेकर (२ रत्ती तक देसकते हैं) शहद और मिरचों के चूर्ण से मिलाकर खावें तो सब प्रकार के अतीसार और सब प्रकार की ग्रहणी दूर होती है । यह रस अग्नि को दीपन करने वाला है तथा इसका नाम ग्रहणीवज्रकपाट रस है ।

विशेषवचन—यह रस पुरातन ग्रहणी में अत्यन्त हितकर है । इसे बृहद् ग्रहणी कपाट नाम से भी कहा जाता है ॥ १००-१०४ ॥

पानीयभक्तवटी—

कृष्णाभ्रलौहमलशुद्धविडङ्गचूर्णं
प्रत्येकमेकपलिकं विधिवद्विधाय ।
चव्यं कटुत्रयफलत्रयकेशराज—

---

१ 'प्रत्येकमेषां' पा० ।

२ 'कुष्ठ' भै. र. पाठः ।

दन्तीपयोदचपलानल[1]घण्टकर्णाः ॥ १०५ ॥
मा[2]णौल्लकन्दबृहतीत्रिवृताः ससूर्य्या–
वर्त्ताः पुनर्नविकया सहितास्त्वमीषाम् ।
मूलं प्रति प्रति विशोधितमत्त्रमेकं
चूर्णं तदर्द्धरस[3]गन्धकमेकसंस्थम् ॥ १०६ ॥
कृत्वाऽऽर्द्रकीयरससम्वलितञ्च भूयः
सम्पिष्य तस्य वटिका[4] विधिवद् विधेया ।
हन्त्यम्लपित्तमरुचिं ग्रहणीमसाध्यां
दुर्नामकामलभगन्दरशोथ[5]गुल्मान् ॥ १०७ ॥
शूलञ्च पाकजनितं सतताग्निमान्द्यं
सद्यः करोत्यु[6]पचितिं चिरनष्टवह्नेः ।
कुष्ठं निहन्ति पलितञ्च वलिं प्रवृद्धां ।
श्वासञ्च कासमपि पाण्डुगदं निहन्ति ॥ १०८ ॥
वार्य्यन्नमांस[7]–दधिकाञ्जिकतक्रमत्स्य–
वृन्ताम्लतैलपरिपक्वभुजो यथेष्टम् ।
शृङ्गाटबिल्वगुड[8]कञ्चटनारिकेल--
दुग्धानि सर्ववि[9]दलानि विवर्जयेत् तु ॥ १०९ ॥

---

१ 'खण्डकर्णाः' र. चि. पाठः ।
२ 'मानोरुवृक०' र. र. पाठः । 'माणौल्लशुक्क०' र. चि. पाठः ।
३ 'चूर्णं तदर्धरसगन्धकसंयुतं च' र० चि० पाठः । 'चूर्णात्तदर्धरसगन्धकमेकसंस्थम्' र० र० पाठः । ४ 'गुटिका विधिवत् कृता सा' पा० । ५ 'शोषशोथान्' र० चि० पाठः । ६ 'करोत्युपचयं चिरमन्दमग्निम्' पा० । ७ 'माष' पा० ।
८ 'गुडकं वटनारिकेल' र० चि० पाठः । ९ 'सर्वविदलं कदलीफलं च । व्यायाममैथुनपरिश्रमवह्नितापतप्ताम्बुपानपनसादि विवर्जयेत्त' र. र. पाठः ।

कृष्णाभ्रकभस्म, शुद्ध मण्डूर (मण्डूर भस्म), विडंग का चूर्ण; प्रत्येक एक २ पल (४ कर्ष) विधिपूर्वक ले। चव्य, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, केशराज, दन्तीमूल, मोथा, पिप्पली तथा चीता, घण्टाकर्ण अर्थात् खारकोन, माणकन्द, ज़मीकन्द(सूरण), बड़ी कटेली, त्रिवी, सूर्यावर्त्त (सूरजमुखी), पुनर्नवा; इन में से प्रत्येक का मूल लेकर निर्मल करके चूर्ण करलें। चव्य से पुनर्नवा तक प्रत्येक द्रव्य को एक २ अक्ष (कर्ष) लें। शुद्ध पारा तथा शुद्ध गन्धक आधा २ कर्ष लें (कई आचार्य मिले हुए पारा गन्धक को आधा कर्ष लेते हैं)। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें अनन्तर उपर्युक्त सब द्रव्यों को उसमें मिलाकर अदरक का रस डालकर खरल करें और (दो रत्तिभर की) गोली बनालें। इसके सेवन से अम्लपित्त, अरुचि, असाध्य ग्रहणी, बवासीर, कामला, भगन्दर, शोथ, गुल्म, परिणामज शूल, निरन्तर रहनेवाला अग्निमान्द्य; ये रोग दूर होते हैं। नष्ट अग्नि वाले की अग्नि को शीघ्र बढ़ाता है। कुष्ठ नाश करता है, पलितरोग तथा बढ़ी हुई बलियों को दूर करता है। श्वास, कास और पाण्डुरोग का नाशक है। इसके सेवन के समय वारिभक्त, मांस, दही, कांजी, छाछ, मछली, वृक्षाम्ल (विषांबिल) तथा तेल में पकाये पदार्थ यथेष्ट खावे, परन्तु सिंघाड़े, बिल, गुड़, जलचौलाई, नारियल, दूध तथा सब प्रकार की दालें न खावे।

विशेषवचन—इस रस की आधुनिक मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक जानें। इसे रसेन्द्रचिन्तामणि में मध्यपानीय भक्त गुटिका नाम से कहा है। रसरत्नाकर में पञ्चामृत वटी नाम से है। वहां इसके अनन्तर विदलवर्ग भी कहा है—

'मुद्गमकुष्ठचणककलायाढकीभिराख्यातः।
वैदल इति वर्गोऽयं विष्टम्भी पवनशूलकरः॥

मूंग मोठ, चना, मटर, अरहर; इनसे वैदलवर्ग होता है। यह विष्टम्भकारक है, मलवात को उत्पन्न करता है और शूलोत्पादक है। यहां इन दालों को उपलक्षण मात्र ही समझें। उड़द आदि का सेवन भी हानिकर है ॥ १०५-१०६ ॥

शम्बूकादिवटी—

दग्धशम्बूकसिन्धूत्थं तुल्यं चौद्रेण मर्दयेत् ।
निष्कैकेण निहन्त्याशु वातसङ्ग्रहणीगदम् ॥ ११० ॥

शम्बूक अर्थात् घोंघे की भस्म और सेंधानमक समभाग लेकर शहद से मिलाकर एक निष्कभर खायें तो वातसंग्रहणी रोग दूर होता है ।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा--१ माषा है ॥ ११० ॥

हिरण्यगर्भपोट्टलीरसः—

एकांशो रसराजस्य ग्राह्यौ द्वौ हाटकस्य च ।
मुक्ताफलस्य चत्वारो भागाः षड् दीर्घनिस्वनात् ॥ १११ ॥
त्र्यंशं बलेर्वराट्याश्च टङ्कणो रसपादिकः ।
पक्वनिम्बुकतोयेन सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ ११२ ॥
मूषामध्ये न्यसेत् कल्कं तस्य वक्त्रं निरोधयेत् ।
गर्त्तेऽरत्निप्रमाणे तु पुटेत् त्रिंशद्वनोपलैः ॥ ११३ ॥
स्वाङ्गशीतलतां ज्ञात्वा रसं मूषोदरान्नयेत् ।
ततः खल्लोदरे मर्द्यः सुधारूपं समुद्धरेत् ॥ ११४ ॥
एतस्यामृतरूपस्य दद्याद् गुञ्जाचतुष्टयम् ।
घृतमाध्वीकसंयुक्तमेकोनत्रिंशदूषणैः ॥ ११५ ॥
मन्दाग्नौ रोगसङ्घे च ग्रहण्यां विषमज्वरे ।
गुदाङ्कुरे महाशूले पीनसे श्वासकासयोः ॥ ११६ ॥
अतीसारे ग्रहण्यां च श्वयथौ पाण्डुके गदे ।
सर्वेषु कोष्ठरोगेषु[1] यकृत्प्लीहोदरेषु च ॥ ११७ ॥
वातपित्तकफोत्थेषु द्वन्द्वजेषु त्रिजेषु च ।

१ 'कुष्ठरोगेषु' पा० ।

दद्यात् सर्वेषु रोगेषु श्रेष्ठमेतद् रसायनम् ॥ ११८ ॥

शुद्ध पारा एक तोला (९६ रत्ती), स्वर्णभस्म दो तोला, मोतीभस्म ४ तोला, शङ्खभस्म ६ तोला, शुद्ध गन्धक तीन तोला, कौड़ीभस्म तीन तोला, शुद्ध सुहागा तीन माशा (२४ रत्ती) ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर सब द्रव्य मिलाकर एकत्र सब को भली प्रकार पीस ले। और पके हुए नीबू के रस से मर्दन करे । फिर इस कल्क को मूषा में रख मुख बन्दकर सन्धिबन्धन करदे। और एक अरलि प्रमाण गढ़े में तीस जंगली उपलों की आग में फूँक देवे। स्वांगशीतल होने पर मूषा के अन्दर से रस को निकाल ले। इसे खरल में अत्यन्त महीन पीसकर शीशी में भर रखे। इस अमृतरूपी रस की चार रत्ति की मात्रा को घी शहद और उनत्तीस काली मिरचों के चूर्ण से मिलाकर दे। मन्दाग्नि, ग्रहणी में उत्पन्न रोगसमूह, विषम ज्वर, गुदाङ्कुर अर्थात् बवासीर, महाशूल, पीनस (प्रतिश्याय), श्वास, कास, अतीसार, ग्रहणी, सूजन, पाण्डुरोग, सब प्रकार के कोष्ठरोग, यकृदुदर, प्लीहोदर, वात पित्त कफ से होने वाले अर्थात् एकदोषज द्विदोषज त्रिदोषज सब रोगों में यह लाभ करता है और श्रेष्ठ रसायन है।

विशेषवचन—इस रस की आधुनिक मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक है।

जीवानन्द और उसकी नक़ल करने वाले 'दीर्घनिस्वन' से कांस्यभस्म लेते हैं। परन्तु एक तो 'दीर्घनिस्वन' कोषों में कांसे का वाचक ही नहीं कहा और दूसरा यह सारक भी है। यदि योग में थोड़े प्रमाण में होता तब भी कथञ्चित् ठीक मान लेते। परन्तु सब से बड़े प्रमाण में यही है। 'दीर्घनिस्वन' से लिया जाने वाला द्रव्य वास्तव में शङ्खभस्म ही है। कोषों में शङ्ख का पर्याय 'दीर्घनाद' भी है। दीर्घनिस्वन और दीर्घनाद एक ही अर्थ को बताते हैं। यह ग्रहणी अतिसार शूल मन्दाग्नि श्वास कास आदि उक्त रोगों में अतीव हितकर होता है।

कहीं-कहीं पाठों में गन्धक दो तोला तथा पक्व नीबू के स्थान में पका हुआ तिन्दुक फल भी लिखा है॥ १११—११८ ॥

रसाभ्रवटी–

शुद्धसूतस्य कर्षैकं कर्षैकं गन्धकस्य च ।
द्वयोः कज्जलिकातुल्यं व्योमचूर्णं प्रदापयेत् ॥ ११९ ॥
केशराजस्य भृङ्गस्य निर्गुण्ड्याश्चित्रकस्य च ।
ग्रीष्मसुन्दरमण्डूकी–जयन्तीन्द्राशनस्य च ॥ १२० ॥
श्वेतापराजितायाश्च स्वरसं पर्णसम्भवम् ।
रसतुल्यं प्रदातव्यं चूर्णञ्च मरिचोद्भवम् ॥ १२१ ॥
देयं रसार्द्धभागेन चूर्णं टङ्कणसम्भवम् ।
सम्मर्द्य वटिकां कुर्य्यात् कलायसदृशीं बुधः ॥ १२२ ॥
हन्ति कासं क्षयं श्वासं वातश्लेष्मभवां रुजम् ।
ज्वरे चैवातिसारे च सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥ १२३ ॥
चातुर्थके ज्वरे श्रेष्ठो ग्रहण्यांतङ्कनाशनः ।
दधि चावश्यकं देयं प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥ १२४ ॥

शुद्ध पारा एक कर्ष, शुद्ध गन्धक एक कर्ष लेकर दोनों की कज्जली करे। उसमें अभ्रकभस्म दो कर्ष डालकर मिलाले । फिर क्रमशः केशराज, भांगरा, संभालू, चीता, ग्रीष्मसुन्दरक, मण्डूकपर्णी, जयन्ती, भांग, श्वेत अपराजिता; इनके पत्तों के स्वरस से मर्दन करें । पश्चात् मिरचों का चूर्ण एक कर्ष और शुद्ध सुहागे को आधा कर्ष डालकर, सबको भलीप्रकार मर्दन कर मटर बराबर गोली बनावें । इस योगराज के सेवन से खांसी, क्षय, श्वास, वातकफ से होने वाले रोग, ज्वरातीसार एवं ज्वर तथा अतीसार में निश्चय से लाभ होता है। चातुर्थक ज्वर को दूर करने में उत्तम है । ग्रहणी रोग को नाश करता है। इसमें दही खाना नागार्जुन मुनि ने आवश्यक बताया है ।

विशेषवचन—वस्तुतः यह ज्वरातिसाराधिकार में कहा गया 'अभ्रवटिका' योग ही है । थोड़े से पाठभेद से यहां रसाभ्रवटी नाम से कह दिया है । वहां

१ 'सूतिकातङ्कनाशनः' पा० ।

पारा, गन्धक और अभ्रक एक-एक कर्ष हैं, और त्रिकटु चूर्ण भी पृथक् एक-एक कर्ष है। यहां पारा गन्धक तो पृथक् एक-एक कर्ष ही हैं परन्तु 'कज्जलिकां कृत्वा' के स्थान पर 'कज्जलिकातुल्यं' पाठ करके अभ्रक को दो कर्ष कर दिया है। अभ्रवटिका में जहां मूल में 'व्योषचूर्णं' पाठ है वहां रसाभ्रवटी योग की तरह ही 'व्योमचूर्णं' पाठान्तर भी है। उस पाठान्तर के अनुसार वहां भी त्रिकटुचूर्ण नहीं डाला जाता। यह वहां स्पष्ट किया ही जा चुका है। शेष एकसा ही है। यहां दो एक पङ्क्तियों को निकालकर गुणनिर्देश को संक्षिप्त कर दिया है ॥ ११९—१२४ ॥

अन्योऽग्निकुमारः—

रसं गन्धं विषं व्योषं टङ्कणं लौहभस्मकम्।
अजमोदाऽहिफेनश्च सर्वतुल्यं मृताभ्रकम् ॥ १२५ ॥
चित्रकस्य कषायेण मर्दयेद् याममात्रकम्।
मरिचाभां वटीं खादेदजीर्णं ग्रहणीं तथा।
नाशयेन्नात्र सन्देहो गुह्यमेतच्चिकित्सितम् ॥ १२६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, सोंठ का चूर्ण, मिरच का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, शुद्ध सुहागा, लोहभस्म, अजमोदा का चूर्ण, शुद्ध अफीम; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला, अभ्रक भस्म दस तोला लें। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलायें। सबको चीते के क्वाथ से एक पहर तक मर्दन करें। फिर काली मिरच के बराबर गोली बना रखें। इससे अजीर्ण तथा ग्रहणी में अवश्य लाभ होता है। यह औषध गोप्य है।

विशेषवचन—'अजमोदा' से यहां अजमोद न डालकर अजवाइन का चूर्ण डालना चाहिये। परिभाषा निम्न है-

'अन्तःसम्मार्जने प्रायोऽजमोदा च यमानिका।
बहिःसम्मार्जने ज्ञेया चाजमोदाजमोदिका ॥' १२५—१२६ ॥

---

१ अस्मादनन्तरं 'रसश्चाग्निकुमारोऽयं दीपयत्याशु पावकम्' इत्यधिकः पाठः क्वचिदुपलभ्यते।

नृपतिवल्लभो रसः–

जातीफललवङ्गाब्द–त्वगेला टङ्करामठम् ।
जीरकं तेजपत्रञ्च यमानीविश्वसैन्धवाः ॥ १२७ ॥
लौहमभ्रं रसो गन्धस्ताम्रं प्रत्येकशः पलम् ।
मरिचं द्विपलं दत्त्वा छागीक्षीरेण पेषयेत् ॥ १२८ ॥
धात्रीरसेन वा पेष्यं वटिकाः कुरु यत्नतः ।
श्रीमद्गहननाथेन विचिन्त्य परिनिर्मितः ॥ १२९ ॥
सूर्य्यवत् तेजसा चायं रसो नृपतिवल्लभः ।
अष्टादशवटीः खादेत् पवित्रः सूर्य्यदर्शकः ॥ १३० ॥
हन्ति मन्दानलं सर्वमामदोषं विसूचिकाम् ।
प्लीहगुल्मोदराष्ठीला–यकृत्पाण्डुत्वकामलाम् ॥ १३१ ॥
सर्वानेव गदान् हन्ति चण्डांशुरिव पापहा ।
बलवर्णकरो हृद्य आयुष्यो वीर्य्यवर्द्धनः ॥ १३२ ॥
परं वाजीकरः श्रेष्ठः पट्टुदो मन्त्रसिद्धिदः ।
अरोगी दीर्घजीवी स्याद्रोगी रोगाद्विमुच्यते ॥ १३३ ॥
रसस्यास्य प्रसादेन बुद्धिमान् जायते नरः ।
बदरास्थिप्रमाणेन वटिकां कारयेद् भिषक् ॥ १३४ ॥

जायफल, लौंग, मोथा, दारचीनी, छोटी इलायची के बीज, शुद्ध सुहागा, हींग, जीरा, तेजपत्र, अजवायन, सोंठ, सेंधानमक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ पल लेवें। काली मिरचों का चूर्ण दो पल (कहीं कहीं तीन पल लिखा है) लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर घोटें और बकरी के

१ 'शोथमामदोषं' पा० ।

दूध अथवा आंवले के रस से पीसकर गोलियां बना लें। यह नृपतिवल्लभ रस तेज में सूर्य के समान है अर्थात् अपना रोगनाशक प्रभाव शीघ्र और अवश्य करता है। सूर्य का दर्शन करने वाला पवित्र होकर रोगी इसकी अठारह गोलियों का सेवन करे। मन्दाग्नि, सब प्रकार के आमदोष, विसूचिका, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अष्ठीला, यकृत्, पाण्डु, कामला आदि सब रोगों को पापनाशक (रोगनाशक) सूर्य के समान नष्ट करता है। बल वर्ण बढ़ाने वाला, हृदय के लिये हितकारी, आयु को बढ़ाने वाला, वीर्यवर्धक, परम वाजीकरण, आरोग्य देने वाला तथा मन्त्र-सिद्धि देने वाला (मन्त्र के सदृश शीघ्र सफलता देने वाला) है। यदि नीरोग पुरुष इसका सेवन करे तो वह दीर्घायु होता है और रोगी सेवन करे तो वह रोग से मुक्त होजाता है। अर्थात् रसायनगुण के लिये इसे नीरोग पुरुष भी सेवन कर सकते हैं। इसके सेवन से मनुष्य बुद्धिमान् हो जाता है। इसकी गोली झरबेरी के बेर की गुठली के तुल्य बनानी चाहिये। नृपतिवल्लभ रस को श्रीगहनानन्द ने विचारपूर्वक बनाया है।

विशेषवचन-आजकल इसे प्रायः २ रत्ती मात्रा में प्रयुक्त करते हैं। २ रत्ती की गोलियां दिन में दो बार दी जाती हैं। इसप्रकार १८ गोलियों का प्रयोग समय ९ दिन का होता है। यदि इससे बड़ी मात्रा (४ रत्ती) दिन में एक वार दें तो अठारह दिन इसका प्रयोगकाल होगा। वास्तव में प्रयोग समय तो वैद्य स्वयं निर्धारित कर सकता है।

इसकी एक मात्रा में ईषद्भृष्ट जीरकचूर्ण ४ रत्ती मिलाकर अतिसार ग्रहणी आदि में जल इलायची के अर्क वा तण्डुलोदक आदि के साथ देते हैं। बड़े कष्टसाध्य विसूचिका के रोगी जिनका मूत्र भी रुक गया हो इससे नीरोग होते देखे गये हैं। मूत्र के प्रवृत्त कराने लिये मूत्रशलाका की आवश्यकता नहीं होती। वमन भी रुकजाता है, अधिक प्यास भी नहीं लगती, दस्त भी श्वेत से पीले होकर रुक जाते हैं और मल बंध कर आने लगता है। अफारा आदि तथा अन्य वायु के उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं। वायु अनुलोम हो जाता है।

भैषज्यरत्नावली में इसका गुणनिर्देश बहुत बड़ा है। वहां 'पाण्डुत्व-कामलाम्'—इस पाठ के आगे—

'हृच्छूलं पार्श्वशूलं[1] च चक्षुःशूलं हलीमकम्।
शिरःशूलं कटीशूलमानाहमष्टशूलकम्॥
[2]संश्वासमामवातञ्च श्लीपदं [3]भेहदर्बुदम्।
गलगण्डं गण्डमालामम्लपित्तञ्च गर्दभीम्[4]॥
कृमिकुष्ठानि सं[5]हन्ति वातरक्तं भगन्दरम्[6]।
जीर्णज्वरं[7] ज्वरं कण्डूं तन्द्रालस्यं [8]वमिं भ्रमिम्॥
दाहविद्राधिहिक्काञ्च जडगद्गदमूकताम्।
[9]दुर्वारं स्वरभेदञ्च ब्रध्नवृद्धिविसर्पकान्॥
ऊरुस्तम्भं रक्तपित्तं गुदभ्रंशारुचिं तृषाम्।
कर्णनासा[10]समुत्थांश्च दन्तरोगं च पीनसम्[11]॥
स्थौल्यं च कुरुते नित्यं रसो नृपतिवल्लभः॥'

यह पाठ है॥ १२७-१३४॥

राजवल्लभो रसः—

जातीफललवङ्गाब्द-त्वगेलाटङ्करामठम्।
जीरकं तेजपत्रञ्च यमानी विश्वसैन्धवम्॥ १३५॥

---

१ 'पृष्ठशूलं च पार्श्वशूलं तथैव च। कटीशूलं कुक्षिशूल०' पा०।

२ 'कासश्वासामवातांश्च' पा०। ३ 'शोथमर्बुदम् पा०। ४ 'गृध्रसीम्' पा०।

५ 'दद्रूणि' पा०। ६ अस्यानन्तरं च 'उपदंशमतीसारं ग्रहण्यर्शः प्रमेहकम्। अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च मूत्राघातं सुदारुणम्।' इत्यधिकः क्वचित्।

७ 'ज्वरं जीर्णं तथा पाण्डुं' पा०। ८ 'भ्रमं क्लमम्' पा०।

९ 'मौढ्यं च' पा०। १० 'मुखोत्थांश्च' पा०।

११ 'अस्यानन्तरं 'शैत्यं च शीतापित्तं च स्थावरादिविषाणि च। वातपित्त-कफोत्थांश्च द्वन्द्वजान् सान्निपातिकान्।' इति पाठः समुपलभ्यते। अस्माच्चानन्तरं सर्वानेवेत्यादि बुद्धिमान् जायते नर इति पर्यन्तं प्रकृतग्रन्थस्य मूलोक्तः पाठ एवास्ति। पटुद इत्यत्र बुद्धिद इति पाठान्तरेण।

लौहमभ्रं सताम्रञ्च रसगन्धकमेव च।
मरिचं त्रिवृता रूप्यं प्रत्येकं द्विपलोन्मितम् ॥ १३६ ॥
धात्रीरसे वटीं कुर्य्याद् द्विगुञ्जाफलमानतः।
हन्ति शूलं तथा गुल्ममामवातं सुदारुणम् ॥ १३७॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च चक्षुःशूलं हलीमकम्।
शिरःशूलं कटीशूलमानाहञ्चाष्टशूलकम् ॥ १३८ ॥
क्रिमिकुष्ठानि दद्रूणि वातरक्तं भगन्दरम्।
उपदंशमतीसारं ग्रहण्यर्शः प्रवाहिकाम्।
राजवल्लभनामाऽयं महेशेन प्रकाशितः ॥ १३९ ॥

जायफल, लौंग, मोथा, दारचीनी, छोटी इलायची, शुद्ध सुहागा, हींग, जीरा, तेजपात, अजवायन, सोंठ, सेंधानमक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, मिरच, निसोत (त्रिवी), रौप्य भस्म। प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण दो २ पल लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर आंवले के रस से घोट कर दो रत्ति प्रमाण की गोली बनावें। यह शूल, गुल्म, घोर आमवात, हृदय की शूल, पार्श्वशूल, चक्षुःशूल, हलीमक, शिरःशूल, कटीशूल, आनाह, आठों प्रकार के शूल, क्रिमिरोग, कुष्ठरोग, दाद, वातरक्त, भगन्दर, उपदंश, अतीसार, ग्रहणी, बवासीर, प्रवाहिका; इन रोगों को नाश करता है। यह राजवल्लभ नामक रस महादेव जी ने प्रकाशित किया है।

विशेषवचन-यह रस पूर्वोक्त नृपवल्लभ से मिलता जुलता ही है। मान में भेद है। उसमें जायफल आदि १७ द्रव्य एक-एक पल थे और मरिच दो पल थी। इसमें सभी द्रव्य दो-दो पल हैं और निसोत चूर्ण तथा रौप्य भस्म अधिक है ॥ १३५—१३९ ॥

बृहन्नृपवल्लभः-

रसगन्धकलौहाभ्रं नागं चित्रं त्रिवृत्समम्।

---

१ 'च मुस्तकम्' पा०।

टङ्कं जातीफलं हिङ्गु त्वगेलाब्दलवङ्गकम्[1] ॥ १४० ॥
तेजपत्रमजाजी च यमानी विश्वसैन्धवम् ।
प्रत्येकं तोलकं चूर्णं मरीचतारयोस्तथा[2] ॥ १४१ ॥
निरुत्थकं मृतं हेम तथा द्वादशरक्तिकम्[3] ।
आर्द्रकस्य रसेनैव धात्र्याश्च स्वरसेन च ॥ १४२ ॥
भावयित्वा प्रदातव्यो माषद्वयप्रमाणतः[4] ।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय पथ्यं भक्षेद् यथेप्सितम्[5] ॥ १४३ ॥
अग्निमान्द्यमजीर्णञ्च दुर्नामग्रहणीं जयेत् ।
आमाजीर्णप्रशमनः सर्वरोगनिसूदनः ।
नाशयेदौदरान् रोगान् विष्णुचक्रमिवासुरान् ॥ १४४ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, सीसाभस्म, चीते का चूर्ण, त्रिवी (निसोत) का चूर्ण, शुद्ध सुहागा, जायफल का चूर्ण, हींग, दारचीनी का चूर्ण, छोटी इलायची के बीजों का चूर्ण, मोथे का चूर्ण, लौंग का चूर्ण, तेजपात का चूर्ण, श्वेत जीरे का चूर्ण, अजवायन का चूर्ण, सोंठ का चूर्ण, सेंधानमक, मिरचों का चूर्ण, चांदीभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला (९६ रत्ती) ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिला स्वर्णभस्म बारह रत्ति डाल खरल करे। पश्चात् अदरक तथा आंवले के रस से पृथक् सात-सात भावना देकर दो माषा प्रमाण में प्रातःकाल खाने को दे। पथ्य यथेष्ट खावे। यह अग्निमान्द्य, अजीर्ण, बवासीर, ग्रहणी, आमाजीर्ण आदि सब रोगों को शान्त करता है। उदर के रोगों को यह इसप्रकार दूर करता है जैसे विष्णु का चक्र असुरों को।

---

१ 'त्वगेला वह्निवङ्गकम्' पा०। २ 'तथा मरिचताम्रयोः' पा०।
३ 'माषचतुष्टयम्' पा०। ४ 'चणमात्रं भिषग्वरैः' पा०।
५ 'यथोचितम्' पा०।

विशेषवचन—इस रस का २ रत्ती से ४ रत्ती पर्यन्त मात्रा में व्यवहार है। तन्त्रान्तर के पाठ के अनुसार इस योग में निसोत चूर्ण, लौंग चूर्ण तथा रजतभस्म नहीं है। चित्रकचूर्ण, वङ्गभस्म और ताम्रभस्म डाली जाती है। वहां चित्रक के दो बार पढ़े जाने से २ भाग डाले जाते हैं। कई १ भाग चित्रक और १ भाग शुद्ध भिलावा (मूल में पाठ वह्नि है) डालते हैं। स्वर्ण यहां १२ रत्ती है और वहां ४ मासे ('माषाः षोडश तोलः स्यात् चतुस्तोलैः पलं भवेत्' इस रसरत्नसमुच्चय की परिभाषा के अनुसार ¼ तोला वा २४ रत्ती होता है। १२ रत्ती का मासा मानकर ४८ रत्ती भी वैद्य डालते हैं) है।

इसका नाम कहीं राजवल्लभ भी है ॥ १४०—१४४ ॥

महाराजनृपतिवल्लभो रसः—

कर्षत्रयं मृतं कान्तं मृताभ्रं मृतताम्रकम् ।
मृतं तारं माक्षिकञ्च कर्षं कर्षं प्रदापयेत् ॥ १४५ ॥
मृतं स्वर्णं मृतं तारं टङ्कणं शृङ्गमेव च ।
वसिरं दन्तिमूलञ्च मरिचं तेजपत्रकम् ॥ १४६ ॥
यमानीं बालकं मुस्तं शुण्ठकञ्च सधान्यकम् ।
सिन्धूद्भवं सकर्पूरं विडङ्गं चित्रकं विषम् ॥ १४७ ॥
पारदं गन्धकञ्चैव तोलमानं प्रदापयेत् ।
तोलद्वयं त्रिवृच्चूर्णं लवङ्गं तच्चतुर्गुणम् ॥ १४८ ॥
जातीकोषफलञ्चैव तत्समं स्याद्वराङ्गकम् ।
सर्वेषामर्द्धभागन्तु विडकं तत्र मिश्रयेत् ॥ १४९ ॥
सर्वमेकीकृतं यद् यत् त्रुटिचूर्णञ्च तत्समम् ।
भावना च प्रदातव्या छागीदुग्धेन सप्तधा ॥ १५० ॥
मातुलुङ्गरसैः पश्चाद् भावयेत् सप्तवारकम् ।
छायाशुष्कां वटीं कृत्वा भक्षयेद्दशरक्तिकाम् ॥ १५१ ॥

मन्दानलं सङ्ग्रहणीं प्रवृद्धामामानुबन्धां क्रिमिपाण्डुरोगम् ।
छर्घम्लपित्तं हृदयामयञ्च गुल्मोदरानाहभगन्दरञ्च ॥ १५२ ॥
अर्शांसि वै पित्तकृतानशेषान् सामं सशूलाष्टकमेव हन्ति ।
साजीर्णविष्टम्भविसर्पदाहं विलम्बिकाञ्चाप्यलसं प्रमेहम् ॥१५३॥
कुष्ठान्यशेषाणि च कासशोषं हन्यात् सशोथं ज्वरमूत्रकृच्छ्रम् ।
मतान्तरे सर्वसुभद्रनामा महेश्वरेणैव विभाषितोऽयम् ॥ १५४॥

कान्तलौहभस्म तीन कर्ष (३ तोला), अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, मुक्ता-भस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष (एक तोला) लें। स्वर्ण-भस्म, रौप्यभस्म, शुद्ध सुहागा, काकड़ासिङ्गी या हिरण के सींग की भस्म, गजपीपल, दन्तीमूल, मिरच, तेजपत्र, अजवायन, सुगन्धबाला, मोथा, सोंठ, धनियां, सेंधानमक, कपूर, वायविडङ्ग, चीता; इन सब का चूर्ण तथा शुद्ध विष, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लें। त्रिवी (निसोत) का चूर्ण दो तोले। लौंग, जायफल, जावित्री, दारचीनी; प्रत्येक का चूर्ण आठ २ तोले लें। सब वस्तुओं का जितना मान हो उससे आधा भाग (३०॥ तोले) विडनमक मिलावें। फिर जितना सब वस्तुओं का मान हो उतना (६१॥ तोले) छोटी इलायची के बीजों का चूर्ण डालें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य सब वस्तुओं को मिलाकर बकरी के दूध से सात वार भावना देवें। और बिजौरा के रस की भी सात वार भावना देवें। छाया में सुखाकर दस रत्ति भर की गोली बना लेवें। इसके सेवन से मन्दाग्नि, आमयुक्त बढ़ी हुई संग्रहणी, क्रिमिरोग, पाण्डुरोग, छर्दि, अम्लपित्त, हृदयरोग, गुल्म, उदर, आनाह, भगन्दर, बवासीर, सब पित्तजरोग, आम, आठों शूल, अजीर्ण, विष्टम्भ, विसर्प, दाह, विलम्बिका, अलसक, प्रमेह, सब प्रकार के कुष्ठ, कास, शोषरोग, शोथ, ज्वर, मूत्रकृच्छ्र आदि रोग दूर होते हैं। यह महाराजनृपति-वल्लभ रस है। इसका दूसरा नाम सर्वसुभद्ररस भी है। इसे स्वयं महेश्वर ने कहा है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा-४ रत्ती से १०रत्ती तक। बहुत से वैद्य कर्ष

को २ तोला मान कर इस योग को बनाते हैं। तब कान्तलौहभस्म ६ तोले, अभ्रकभस्म से माक्षिक भस्म पर्यन्त प्रत्येक २ तोले, स्वर्णभस्म से गन्धक पर्यन्त प्रत्येक द्रव्य १ तोला, निसोत २ तोला, लौंग से दारचीनी पर्यन्त प्रत्येक ८ तोला, विडनमक ३४ तोले, इलायची का चूर्ण १०२ तोले से योग तय्यार होता है।

'मृतं तारं माक्षिकञ्च' में तार से मोती लिये हैं। मोतीभस्म से ही यह योग तय्यार किया जाता है। राजनिघण्टु में—

'मुक्ता सौम्या मौक्तिकं मौक्तिकेयं तारं तारा भौतिकं तारका च।' इत्यादि पर्याय कहे हैं।

कई दो वार 'तारं' पढ़ने से रजतभस्म २ तोला डालते हैं। और किसी ने 'तारं माक्षिकं' से रजतमाक्षिक भस्म ली है। कइयों का विचार यह है कि एक स्थल पर 'तारं' प्रमाद से लिखा गया है-उस जगह 'वङ्गं' होना चाहिये क्योंकि इससे अगले योग में--जिसके द्रव्य बहुत से वही हैं--में वङ्ग है। 'शृङ्गकम्' से काकड़ासिंगी ही अधिकतर लिया जाता है। इससे अगले योग में भी 'शृङ्गी' है॥ १४९—१५४॥

अन्यो महाराजनृपतिवल्लभः—

माक्षिकं लौहमभ्रञ्च वङ्गं रजतहाटकम्।
ग्रन्थिर्यमानिका चोचं ताम्रं नागरटङ्कणम्॥ १५५॥
सैन्धवं बालकं मुस्तं धान्याकं गन्धकं रसम्।
शृङ्गी कर्पूरकश्चैव प्रत्येकं माषकोन्मितम्॥ १५६॥
माषद्वयं रामठं स्यान्मरिचानां चतुष्टयम्।
जातीकोषं लवङ्गञ्च पत्रञ्च तोलकोन्मितम्॥ १५७॥
नाभिशङ्खं विडङ्गञ्च शाणं माषद्वयं विषम्।
कर्षषट्कं सत्रिमाषं सूक्ष्मैलानां ततः क्षिपेत्॥ १५८॥
विडं कर्षद्वयं सर्वं छागीक्षीरेण पेषयेत्।

चतुर्गुञ्जामितं खादेत् सानाहग्रहणीं जयेत् ॥ १५९ ॥
शम्भुना निर्मितो ह्येष पूर्ववद् गुणकारकः ।
नाम्ना महाराजपूर्वो नृपवल्लभ उच्यते ॥ १६० ॥

स्वर्णमाक्षिकभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, वंगभस्म, चांदीभस्म, स्वर्णभस्म, पिप्पलीमूल का चूर्ण, अजवायन का चूर्ण, दारचीनी का चूर्ण, ताम्रभस्म, सोंठ का चूर्ण, शुद्ध सुहागा, सेंधानमक, सुगन्धबाला चूर्ण, मोथे का चूर्ण, धनियां का चूर्ण, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, काकड़ासिंगी का चूर्ण, कपूर; प्रत्येक द्रव्य एक २ माषा (६ रत्ती) लें । हींग दो माषे (१२ रत्ती) लें । मिरच का चूर्ण चार माषे (२४ रत्ती) लें । जावित्री का चूर्ण, लौंग का चूर्ण, तेजपत्र का चूर्ण; प्रत्येक एक २ तोला (९६ रत्ती) लें । शङ्ख की नाभि की भस्म, विडङ्ग का चूर्ण एक २ शाण (४ मासे=२४ रत्ती) लें । शुद्ध विष दो माषा (१२ रत्ती) लें । छोटी इलायची के बीजों का चूर्ण छः कर्ष तीन माशा (६ तोला १८ रत्ती) लें । विड्लवण दो कर्ष (२ तोला) लें। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें । फिर सब द्रव्य मिला पीस कर बकरी के दूध में घोट कर चार रत्ति प्रमाण की गोली बनावें । इससे आनाह सहित ग्रहणीरोग आराम होता है । यह रस शम्भु ने बनाया है । पूर्वोक्त महाराजनृपतिवल्लभरस के समान यह महाराजनृपवल्लभ रस भी गुण करता है ॥

विशेषवचन–जब ग्रहणी रोग में आंतों में गुड़गुड़ाहट हो, दस्त श्वेत रंग का और गाढ़ा हो, कमर में दर्द हो, आंव आती हो, जिसका दौरा दस पन्द्रह दिन या मास बाद होता हो या नित्य ही ऐसा रहता हो–ऐसी अवस्था में इसे देते हैं । घटीयन्त्र ग्रहणी में भी इसे प्रयोग कराया जाता है ।

कर्ष को दो तोले का मान कर भी इस योग को बनाया जाता है । तब माषा १२ रत्ती का होता है । ४ मासे का आधा तोला होगा ॥ १५५–१६० ॥

इति ग्रहणीरोगचिकित्सा ।

अथाजीर्ण-चिकित्सा ।

महोदधिवटी–

एकैकं विषसूतश्च जाती टङ्कं द्विकं द्विकम् ।
कृष्णात्रिकं विश्वषट्कं द्विकं गन्धं कपर्दकम् ॥ १ ॥
देवपुष्पं वाणमितं सर्वं सम्मर्द्य यत्नतः ।
नाम्ना महोदधिवटी नष्टमग्निं प्रदीपयेत् ॥ २ ॥

शोधित मीठा विष एक तोला, शुद्ध पारा एक तोला, जायफल का चूर्ण दो तोला, शुद्ध सुहागा दो तोला, पिप्पली का चूर्ण तीन तोला, सोंठ का चूर्ण छः तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला, कौड़ीभस्म दो तोला, लौंग का चूर्ण पांच तोला । सब से पूर्व पारे गन्धक की कज्जली करे । फिर अन्य द्रव्य मिला कर यत्नपूर्वक पीस ले । यह महोदधि वटी नष्ट अग्नि को प्रदीप्त करती है ।

विशेषवचन—इसकी आधुनिक मात्रा २ रत्ती है ।

रसेन्द्रचिन्तामणि भैषज्यरत्नावली प्रभृति ग्रन्थों में 'द्विकं गन्धं कपर्दकम्' के स्थान पर 'दग्धं कपर्दकं तथा' यह पाठ है । तब कौड़ीभस्म ६ तोला ली जाती है । गन्धक नहीं डाली जाती । पारद के स्थान पर रससिन्दूर का व्यवहार होता है ।

इसे वातिक और श्लैष्मिक अजीर्ण वा विष्टब्धाजीर्ण और आमाजीर्ण में विशेषतः प्रयुक्त कराया जाता है । यह रस पाचक और अल्प संग्राही है ॥ १-२ ॥

अग्नितुण्डी रसः–

शुद्धसूतं विषं गन्धमजमोदा फलत्रिकम् ।
सर्जिक्षारं यवक्षारं वह्निसैन्धवजीरकम् ॥ ३ ॥
सौवर्चलं विडङ्गानि सामुद्रं त्र्यूषणं तथा ।

---

१ 'दग्धं कपर्दकं तथा' अन्यत्र पाठान्तरम् ।

२ 'टङ्कणं' भै. र. पाठः ।

विषमुष्टिः सर्वसमा जम्बीराम्लेन मर्दयेत् ॥
मरिचाभां वटीं खादेत् वह्निमान्द्यप्रशान्तये ॥ ४ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध विष, शुद्ध गन्धक तथा अजवायन, हरड़, बहेड़ा, आंवला; इनके चूर्ण, सज्जी, यवक्षार, चीता का चूर्ण, सेंधानमक, जीरे का चूर्ण, सौंचल नमक, वायविडंग का चूर्ण, समुद्र लवण, सोंठ चूर्ण, मिरच का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। सबके समान शुद्ध कुचले का चूर्ण लें। पहले कज्जली करें। फिर कुचले और विष का चूर्ण डालकर जम्बीरी नीबू के रस से मर्दन करें। पश्चात् शेष द्रव्य मिला अच्छी प्रकार घोटकर काली मिरच के समान गोली बना लें। इसे खाने से मन्दाग्नि रोग शान्त होता है।

विशेषवचन—भैषज्यरत्नावली और रसराजसुन्दर में 'त्र्यूषणं' के स्थान पर 'टङ्कणं' पाठ है। वहां त्रिकटु चूर्ण न देकर शुद्ध सुहागा डालते हैं। इसी के अनुसार रसतरङ्गिणी में भी उसके कर्ता ने सुहागा ही लिखा है। परन्तु अन्य तन्त्रों में जहां भी इसका पाठ है त्रिकटु चूर्ण डालने को कहा है। रसरत्नसमुच्चय में यह 'सर्वरोगान्तका वटी' नाम से है। वहां 'वाह्निमान्द्यप्रशान्तये' के पश्चात् निम्न श्लोक है—

'पथ्या शुण्ठी गुडं चानु पलार्धं भक्षयेत्सदा।
अग्निमान्द्ये वटी ख्याता सर्वरोगकुलान्तका ॥'

अर्थात् मन्दाग्निरोग में उक्त वटी के सेवन के पश्चात् हरड़चूर्ण, सोंठ चूर्ण और गुड; इन्हें मिलाकर उचित मात्रा में खाना चाहिये।

रसप्रकाशसुधाकर में जो इसका योग है उसमें विडङ्गचूर्ण नहीं है—

'सूतं समं गन्धकवत्सनाभं यवानिकां चैव फलत्रिकञ्च।
क्षारद्वयं चित्रकसिन्धुजीरकं सामुद्रकं त्र्यूषणमेव रुच्यम् ॥
समं प्रकुर्याद्विषमुष्टिमेभिर्जम्बीरनीरेण विमर्दयेच्च।
वटीं च भक्षेदथ चाग्निमान्द्ये तथा ह्यजीर्णेऽथ विसूचिकायाम् ॥'

यह रस दीपक पाचक है। वातनाडियों के बल को बढ़ाता है। रात को जागने से अथवा बहुत खाने से जो अतीसार होता है जिसमें रोगी को प्यास

१ 'विषमुष्टिसमं सर्वं' पा०। २ 'सर्वतुल्या' पा०।

लगती है, मल कुछ लाल सा और शब्द के साथ आता है उसमें भी हितकर होता है। कमर या पीठ आदि में यदि वातिक वेदना हो तो उसे भी दूर करता है। जिस अर्शोरोग में रोगी को मल बड़े कष्ट से आता हो और आने के पश्चात् फिर भी बार-बार पाखाने की इच्छा बनी रहती हो वहां दिया जाता है। वात का अनुलोमक है। कब्ज़ भी नहीं होने देता। मल मूत्र भी ठीक आते हैं। श्वास कास प्रभृति में यदि साथ ही अग्नि भी मन्द हो तो इससे लाभ होता है। विशेषतः भोजन के बाद होजाने वाले श्वास में यह हितकर है।

विषमुष्टि वाले योगों को लगातार बहुत दिनों तक न सेवन करना चाहिये। क्योंकि यह प्रतिदिन देह में थोड़ा २ जमा होता जाता है। परिणामतः कुछ काल के पश्चात् इसके विष के चिन्ह प्रकट हो सकते हैं। नियम यह है कि सात आठ दिन सेवन कराने के पश्चात् एक या दो दिन का व्यवधान डाल दें ॥ ३–४ ॥

बडवानलो रसः–

शुद्धसूतस्य कर्षैकं गन्धकं तत्समं मतम् ।
पिप्पली पञ्चलवणं मरिचञ्च फलत्रयम् ॥ ५ ॥
क्षारत्रयं समं सर्वं चूर्णं कृत्वा प्रयत्नतः ।
निर्गुण्ड्याश्च द्रवेणैव भावयेद्दिनमेकतः ।
बडवानलनामाऽयं मन्दाग्निश्च विनाशयेत् ॥ ६ ॥

शुद्ध पारा एक कर्ष, शुद्ध गन्धक एक कर्ष, पिप्पली, पांचों नमक, मिरच, हरड़, बहेड़ा, आंवला; इन सब का चूर्ण, सज्जी, शुद्ध सुहागा तथा यवक्षार; प्रत्येक द्रव्य एक२ कर्ष ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिला खरल करे। और निर्गुण्डी का रस डाल कर एक दिन भर भावित करे। यह बडवानल रस मन्दाग्नि रोग का नाशक है।

विशेषवचन–मात्रा–४ रत्ती से ६ रत्ती तक है ॥ ५–६ ॥

हुताशनो रसः—

गन्धेशटङ्कणैकैकं विषमत्र त्रिभागिकम् ।

अष्टभागं तु मरिचं जम्भाम्भोमर्दितं दिनम् ॥ ७ ॥
तद्वटीं मुद्गमानेन कृत्वार्द्रेण प्रयोजयेत् ।
शूलारोचकगुल्मेषु विसूच्यां वह्निमान्द्यके ।
अजीर्णे सन्निपातादौ शैत्ये जाड्ये शिरोगदे ॥ ८ ॥

शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, शुद्ध सुहागा; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लें। शुद्ध विष तीन तोला और मिरच का चूर्ण आठ तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर जम्बीरी नीबू के रस से मर्दन करें। और मूंग के बराबर गोली बनावें। इसे अदरक के रस से खावें तो यह शूल, अरुचि, गुल्म, विसूची, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, सान्निपात आदि तथा शीत, जड़ता और सिर दर्द; इन रोगों को दूर करता है।

विशेषवचन—यदि इस योग में कौड़ीभस्म और शङ्खभस्म प्रत्येक २ या ३ तोला मिलादें तो यही अग्निकुमार रस होजाता है। अग्निकुमार रस आगे कहा जायगा। योगरत्नाकर में तो कौड़ीभस्म शंखभस्म और गृहधूम; प्रत्येक ३ तोला ये अधिक मिलाकर भी हुताशन रस नाम से ही कहा है—

'एकांशकाः पारदगन्धटङ्काः कपर्दशङ्खामृतगेहधूमाः ।
त्र्यंशा इमेऽथो मरिचं त्विभांशं सम्मर्दितं जम्भरसेन गाढम् ॥
गुल्मारोचकशूलवह्निसदनाजीर्णं विषूचीं कफं
जाड्यं शीर्षसमुद्भवं च कसनं मुद्गप्रमाणा वटी ।
लीढार्द्रस्य रसेन हन्ति कथितानेतान्गदान्ब्रह्मणा
पूर्वं निर्मित एष यत्नशतकैर्नाम्ना हुताशो रसः ॥'

हुताशनरस का विशेष प्रयोग आमाजीर्ण में होता है। यदि अजीर्ण में झूठी भूख लगे तो उसे भी यह दूर करता है। विषूचिका में कर्पूरजल के साथ देते हैं ॥ ७—८ ॥

बृहद्धुताशनो रसः—

एकंद्विकद्वादशभागयुक्तं योज्यं विषं टङ्कणमूषणञ्च ।

---

१ 'एकं च दिग्द्वादशभागमानं' यो. र. पाठः ।

हुताशनो नाम हुताशनस्य करोति वृद्धिं कफ[1]जिन्नराणाम् ॥ ९ ॥

शुद्ध विष एक तोला, शुद्ध सुहागा दो तोला, काली मिरच का चूर्ण बारह तोला; इन सब को जल से घोटकर गोली बनावे। इसे खाने से अग्नि-वृद्धि होती है तथा कफ नाश होता है। इसका नाम हुताशन रस है।

विशेषवचन—मात्रा-१ रत्ती से २ रत्ती पर्यन्त है। 'एकं च दिग्द्वादशभागमानं' इस योगरत्नाकर के पाठ के अनुसार शुद्ध सुहागा १० तोला होता है ॥ ९ ॥

अमृतकल्पवटी—

शुद्धौ पारदगन्धौ च समानौ कज्जलीकृतौ।
तयोरर्द्धं विषं शुद्धं तत्समं टङ्कणं भवेत् ॥ १० ॥
भृङ्गराजद्रवैर्भाव्यं त्रिदिनं यत्नतः पुनः।
मुद्गप्रमाणा वटिका कर्त्तव्या भिषजां वरैः ॥ ११ ॥
वटीद्वयं हरेच्छूलमग्निमान्द्यं सुदारुणम्।
अजीर्णं जरयत्याशु धातुपुष्टिं करोति च ॥ १२ ॥
नानाव्याधिहरा चेयं वटी गुरुवचो यथा।
अनुपानविशेषेण सम्यग् गुणकरी भवेत् ॥ १३ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक एक तोला दोनों की कज्जली करे। फिर शुद्ध विष एक तोला, शुद्ध सुहागा एक तोला डालकर मर्दन करे। पश्चात् भांगरे के रस से यत्न पूर्वक तीन दिन भावना दे और मूंग के बराबर गोली बना ले। दो गोली खाने से ही शूल, अग्निमांद्य, अजीर्ण रोग दूर होते हैं। यह वटी धातुपुष्टि करती है। विशेष २ अनुपानों से नाना व्याधियों को दूर करती है। यह बात गुरु के वचन के समान सत्य है। इसका नाम अमृत-कल्पवटी है ॥ १०-१३ ॥

---

१ 'कफवातहन्ता' यो. र. पाठः।

अग्निकुमारो रसः—

रसेन्द्रगन्धौ सह टङ्कणेन समं विषं योज्यमिह त्रिभागम् ।
कपर्दशङ्खाविह नेत्रभागौ मरीचमत्राष्टगुणं प्रदेयम् ॥ १४ ॥
सुपक्वजम्बीररसेन घृष्टः सिद्धो भवेदाग्निकुमार एषः ।
विसूचिकाऽजीर्णसमीरणार्त्ते दद्याद् द्विवल्लं ग्रहणीगदे च ॥१५॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा; प्रत्येक द्रव्य-एक २ तोला, शुद्ध विष तीन तोला, कौड़ीभस्म दो तोला, शंखभस्म दो तोला, मिरच का चूर्ण आठ तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर पके हुए जम्बीरी नींबू के रस से घोट कर तीन रत्ति की गोली बनावें। यह अग्निकुमार रस है। इसका प्रयोग विसूचिका, अजीर्ण, वायुरोग तथा ग्रहणी-रोग को दूर करता है।

विशेषवचन-आधुनिक मात्रा-१ रत्ती से २ रत्ती तक है।

'नेत्र' दो और तीन दोनों संख्याओं का वाचक होता है। अतः कई कौड़भिस्म और शङ्खभस्म को ३ तोला भी लेते हैं। अग्निकुमार रस दोनों ही प्रकार से तय्यार किया जाता है। योगरत्नाकर में इसी पाठ के अग्निकुमार से पूर्व एक अग्निकुमार रस कहा है उसमें कौड़ीभस्म और शङ्खभस्म दो-दो भाग हैं।

'पारदं च विषं गन्धं टङ्कणं समभागतः ।
मरीचादष्टभागाः स्युर्द्वौ द्वौ शङ्खवराटयोः ॥
पक्वजम्बीरजैर्गाढं रसैः सप्त विभावयेत् ।
गुञ्जाद्वयमितो देयो रसो ह्याग्निकुमारकः ॥
समीरणसमुद्भूतमजीर्णं च विषूचिकाम् ।
क्षणेन क्षपयत्येष कफरोगनिकृन्तनः ॥'

---

१ 'रसेन गन्धं' यो. र. पाठः। २ 'योज्यमतः' यो. र. पाठः।

३ 'मरीचकं चाष्टगुणं विमर्द्य' पा०।

४ 'खल्वे सिद्धो भवत्यग्निकुमारकोऽयम्। अजीर्णवातं गुदगुल्मवातं विसूचिकाद्यं विनिहन्ति सद्यः।' यो. र. पाठः।

इसमें जम्बीर के रस से सात वार भावना देने को कहा है। जिस अग्निकुमार में कौड़ी भस्म और शङ्खभस्म ३ भाग कहे हैं वह आगे इसी अधिकार में कहा जायगा। रसेन्द्रचिन्तामणि में भी कहा है-

'टङ्कणं रसगन्धौ च समं भागत्रयं विषात्।
कपर्दशङ्खौ त्रिलवौ[1] वसुभागं मरीचकम् ॥
दिनं जम्भाम्भसा पिष्टं भवेदग्निकुमारकः।
विषूचीशूलवातादिवह्निमान्द्ये द्विगुञ्जकः ॥
अजीर्णे सङ्ग्रहण्यां वा प्रयोज्योऽयं निजौषधैः ॥'

'त्रिलवौ' के स्थान पर 'द्विलवौ' पाठ करके 'मरीचकम्' के पश्चात्-

'दिनं जम्भाम्भसा पिष्ट्वा नागवल्ल्यार्द्रवह्निना।
शिग्रुमूलेन लुङ्गेन भवेदग्निकुमारकः ॥
अजीर्णशूलमन्दाग्निप्लीहपाण्ड्वामयेषु च।
वातरोगेषु सर्वेषु मूत्ररोगेषु वातजे ॥
कासे दुर्नाम्न्यतीसारे ग्रहण्यां सन्निपातके ॥'

इस पाठ से तन्त्रान्तर में अग्निकुमार रस कहा है। इसमें पान, अदरक, चित्रक, सहिजन की जड़ तथा बिजौरे के रस से एक २ दिन मर्दन करने का विधान अधिक है।

यहां पर मूल की टीका में 'नेत्र' से दो भाग ही ले लें। इसप्रकार ग्रन्थ में योग की पुनरावृत्ति न रहेगी ॥ १४—१५ ॥

बृहदग्निकुमारो रसः-

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं गन्धतुल्यश्च टङ्कणम्।
फलत्रयं यवक्षारं व्योषं पञ्चपटूनि च ॥ १६ ॥
द्वादशैतानि सर्वाणि रसतुल्यानि दापयेत्।
सम्मर्द्य सप्तधा सर्वं भावयेदार्द्रकद्रवैः ॥ १७ ॥
संशोष्य चूर्णयित्वा तु भक्षयेदार्द्रकाम्बुना।

---

१ 'त्रिनवौ' इति प्रमादकृतः पाठः।

शाणमात्रं वयो वीक्ष्य नानाऽजीर्णप्रशान्तये ॥ १८ ॥
रसश्चाग्निकुमारोऽयं महेशेन प्रकाशितः ।
महाग्निकारकः सदृक् कालभास्करतेजसाम् ॥ १९ ॥
अग्निमान्द्यभावन् रोगान् शोथं पाण्ड्वामयं जयेत् ।
दुर्नामग्रहणीसाम–रोगान् हन्ति न संशयः ।
यथेष्टाहारचेष्टस्य नास्त्यत्र नियमः क्वचित् ॥ २० ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला, शुद्ध सुहागा दो तोला, हरड़, बहेड़ा, आंवला, यवक्षार, सोंठ, मिरच, पिप्पली, पांचों नमक; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर खरल करें। अदरक के रस की सात भावनायें दें और सुखाकर चूर्ण कर लें। आयु का विचार करके इसे एक शाण भर लेकर अदरक के रस से सेवन करें तो नाना प्रकार के अजीर्ण नाश होते हैं। यह अग्निकुमार रस महेश ने प्रकाशित किया है। यह महा अग्निकारक है, प्रलय काल के सूर्य के समान तेजस्वी है। इससे अग्निमान्द्य से होने वाले रोग, शोथ, पाण्डु, बवासीर, ग्रहणी, आमयुक्त रोग नष्ट होते हैं–इसमें कोई संशय नहीं। इसके सेवन के समय मनुष्य यथेष्ट आहार विहार कर सकता है। इसमें कोई रुकावट नहीं।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा–१ मासा ॥ १६—२० ॥

अपरो बृहदग्निकुमारो रसः–

व्योषं जातीफले द्वे च लवङ्गश्च वराङ्गकम् ।
पत्रं शृङ्गी कणा टङ्कं यमानी जीरकद्वयम् ॥ २१ ॥
सैन्धवश्च विडं हिङ्गु रसं गन्धश्च रौप्यकम् ।
लौहमभ्रं समं सर्वं जम्बीररसमर्दितम् ॥ २२ ॥
अजीर्णशान्तये खादेच्चतुर्गुञ्जां वटीं नरः ।
अत्यग्निकारकश्चायं रसश्चाग्निकुमारकः ॥ २३ ॥

सङ्ग्रहग्रहणीञ्चैव वातपित्तकफोद्भवाम् ।
नाशयेदामदोषञ्च त्रिदोषजनितञ्च यत् ।
शूलदोषं विसूचीञ्च भास्करस्तिमिरं यथा ॥ २४ ॥

सोंठ, मिरच, पिप्पली, जावित्री, जायफल, लौंग, दारचीनी, तेजपत्र, काकड़ासिंगी, पिप्पली, सुहागा शुद्ध, अजवायन, जीरा श्वेत, जीरा काला, सेंधानमक, विडनमक, हींग; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, चांदीभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला ले। पहले पारे और गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिला जम्बीर के रस से मर्दन कर चार रत्ति भर की गोली बना ले। इसके सेवन से अजीर्णनाश होता है। यह अग्नि को अत्यन्त तीव्र करता है। संग्रहणी, वात पित्त कफ के रोग, आमदोष, त्रिदोषजनित रोग, शूलरोग, विसूची; इन सबको ऐसे नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकार को ॥ २१–२४ ॥

बृहन्महोदधिवटी—

लवङ्गं चित्रकं शुण्ठी जयपालः समं समम् ।
टङ्कणञ्च प्रदातव्यं वृद्धदारस्य कार्षिकम् ॥ २५ ॥
चतुर्दश भावनाश्च दन्तीद्रावैः प्रदापयेत् ।
लिम्पाकेन त्रिधा देया वृद्धदारेण पञ्चधा ॥ २६ ॥
रसं गन्धञ्च गरलं मेलयित्वा विभावयेत् ।
आर्द्रकस्य रसेनैव चित्रकस्य रसेन च ॥ २७ ॥
मुद्गप्रमाणां वटिकां कृत्वा खादेद् दिने दिने ।
क्षुत्प्रबोधकरी चेयं जीर्णज्वरविनाशिनी ॥ २८ ॥

लौंग, चीता, सोंठ, शुद्ध जमालगोटा, शुद्ध सुहागा, विधारा; प्रत्येक का चूर्ण एक २ कर्ष लेकर दन्तीमूल के क्वाथ की चौदह भावनायें दें। फिर नीबू के रस से तीन भावना दें और विधारे के क्वाथ की पांच भावनायें दें। इसमें

---

१ 'वा' पाठान्तरम्।

शुद्ध पारा तथा शुद्ध गन्धक प्रत्येक एक २ कर्ष की कज्जली और शुद्ध विष एक कर्ष मिला के खूब मर्दन करें और अदरक के रस से तथा चीते के क्वाथ से क्रमशः भावनायें देकर मूंग के समान गोली बना लें। इसे नित्य खावें तो यह भूख को जगाती है तथा जीर्णज्वर को नाश करती है।

विशेषवचन—यहां अदरक के रस और चीते के क्वाथ की भावनाओं की संख्या नहीं दी। सामान्य नियम के अनुसार सात होनी चाहियें। अथवा तन्त्रान्तर के अनुसार कम से कम तीन तो होनी ही चाहियें। योगरत्नाकर में इस रस का पाठ इसप्रकार है—

‘दन्तीबीजमकल्मषं सदहनं शुण्ठी लवङ्गं समं
गन्धं पारदटङ्कणं च मरिचं श्रीवृद्धदारो विषम्।
खल्वे यामयुगं[1] विमर्द्य विधिना दन्तीद्रवैर्भावनाः
देयाः पञ्चदशानु निम्बुकजलैस्त्रेधा त्रिधा चित्रकैः॥
त्रेधा चार्द्रकजै रसैः शुभधिया सप्तैव चावेगिना
पश्चाच्छुष्ककलायसंमितवटी कार्या भिषक्सम्मता।
क्षुद्बोधप्रकरी त्रिशूलशमनी जीर्णज्वरध्वंसिनी
कासारोचकपाण्डुतोदरगदक्रामरुङ्नाशिनी[2]॥
बस्त्याटोपहलीमकामयहरी मन्दाग्निसन्दीपनी
सिद्धेयं तु महोदधिप्रकटिता सर्वामयघ्नी सदा॥’

इसमें मरिच चूर्ण अधिक है। भावनाओं में भी दन्तीद्रव से १५ भावनायें देने को कहा है, विधारे से सात और अदरक एवं चित्रक की तीन-तीन भावनायें देने का विधान है। इससे यह भी स्पष्ट है कि लौंग आदि के चूर्ण कज्जली और विष एक वार ही मिलाकर दन्तीमूल आदि की भावनायें क्रमशः देसकते हैं। यह आवश्यक नहीं कि लौंग आदि चूर्णों को तो पहले दन्तीमूल, नीबू और विधारा; इनके रसों की भावनायें दे लें और पीछे कज्जली विष मिलायें, उसके पश्चात् चित्रक और अदरक के रस की भावनायें दें।

---

१ ‘दण्डयुगं’ पा०।

२ ‘गदे सामाङ्गरुङ्नाशिनी’ ‘गदान् पामामरुन्नाशिनी’ पा०।

इसकी गोली मूंग से भी छोटी बनायें और रोगी की शक्ति देखकर प्रयुक्त करें ॥ २५—२८ ॥

रामवाणरसः—

पारदामृतलवङ्गगन्धकं भागयुग्ममरिचेन मिश्रितम् ।
जातिकाफलमथार्द्धभागिकं तिन्तिडीफलरसेन मर्दितम् ॥२९॥
माषमात्रमनुपानयोगतः सद्य एव जठराग्निदीपनः ।
वह्निमान्द्य-दशवक्त्रनाशनो रामवाण इति विश्रुतो रसः ॥३०॥
जाठरामयरुजाश्च ताडकां दुःसहं ह्यरुचिकं कबन्धकम् ।
सङ्ग्रहग्रहणिकुम्भकर्णकं सामवातखरदूषणं जयेत् ॥ ३१ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध विष, लौंग का चूर्ण, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला, मिरचों का चूर्ण दो तोला, जायफल का चूर्ण आधा तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर तिन्तिड़ीक के रस से घोटकर उड़द भर की गोलियां बनावें। उचित अनुपान के साथ सेवन से शीघ्र ही जठराग्नि प्रदीप्त होती है। अग्निमान्द्यरूपी रावण के नाश के लिये यह रस रामवाण है। अतीसार रूपी ताड़का को, दुःसह अरुचि रूपी कबन्ध को, संग्रहग्रहणीरूपी कुम्भकर्ण को तथा आम युक्त वात (आमवात) रूपी खर और दूषण को यह रामवाण जीतता है।

विशेषवचन—भावप्रकाश में जाठराग्नि का दीपन करने के लिये काली मिर्च का अनुपान बताया है—

'दीयते तु मरिचानुपानतः सद्य एव जठराग्निदीपनः ।
रोचनः कफकुलान्तकारकः श्वासकासवमिजन्तुनाशनः ॥'

रसेन्द्रचिन्तामणि में तो—

---

१ 'तत्र जातिफलमर्द्धभागिकम्' पा० ।

२ 'सेवितं' पा० ।

३ 'रामवाणगुटिकारसायनम्' र. चि. पाठः।

४ श्लोकपङ्क्तिरियं नान्यत्रोपलभ्यते ।

'बिल्वपत्रमरिचेन भावितं सद्य एव जठराग्निवर्द्धनम् ॥
वातो नाशमुपैति चार्द्रकरसैर्निर्गुण्डिकाया द्रवैः ।
पित्तं नाशमुपैति धान्यकजलैर्वासा त्रिदोषं हरेत् ॥
शुण्ठीसिन्धुहरीतकीभिरुदरं क्वाथैश्च पौनर्नवैः ।
शोथं पाण्डुगदं निहन्ति गुटिका रोगार्त्तिविध्वंसिनी ॥'

ये अनुपान सूचक श्लोक कहे हैं। इसके अनुसार अग्निदीपन में बेलपत्री और कालीमिर्च का अनुपान है। वात के नाश के लिये अदरक वा सम्भालू का रस है। पित्त के नाशार्थ धनियां का जल अनुपान में दिया जाता है। बासा (अडूसा) स्वरस के अनुपान से यह गोलियां तीनों दोषों का नाश करती हैं। उदररोगों में सोंठ, सेन्धानमक और हरड़; इनका चूर्ण देना चाहिये। पाण्डु और शोथ में पुनर्नवा के क्वाथ का अनुपान हितकर है।

इस रस में तिन्तिडीफल से कई कच्ची इमली लेते हैं परन्तु वृक्षाम्ल (विषांबिल) का लेना ही अधिक अच्छा है। वृक्षाम्ल के गुण धन्वन्तरिनिघण्टु और राजनिघण्टु में इसप्रकार हैं—

'तिन्तिडीकं च वातघ्नं ग्राह्युष्णं रुचिकृल्लघु।' ध० नि०।

'वृक्षाम्लमम्लं कटुकं कषायं सोष्णं कफार्शोघ्नमुदीरयन्ति।
तृष्णासमीरोदरहृद्गदादिगुल्मातिसारव्रणदोषनाशि ॥' रा० नि०।

कच्ची इमली के गुण निम्नोक्त हैं—

'अम्लिकायाः फलं चाममत्यन्तं पित्तकृल्लघु।
रक्तकृद्वातशमनं बस्तिशुद्धिकरं परम् ॥' ध० नि०

राजनिघण्टु में भी ऐसे ही गुण कहे हैं ॥ २९-३१ ॥

अजीर्णकण्टको रसः—

**शुद्धसूतं विषं[1] गन्धं समं[2] सर्वं विचूर्णयेत् ।
मरिचं सर्वतुल्यञ्च कण्टकार्याः फलद्रवैः ॥ ३२ ॥**

---

१ 'विडं' रसप्रकाशसुधाकरे पाठः।
२ 'प्रत्येकं च समं समम्' यो. र. पाठः।

मर्दयेद्[1] भावयेत् सर्वमेकविंशतिवारकम्।
त्रिगुञ्जां[2] वटिकां खादेत् सर्वाजीर्णप्रशान्तये।
अजीर्णकण्टकः[3] सोऽयं रसो हन्ति विसूचिकाम्॥ ३३॥

शुद्ध पारा, शुद्ध विष, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारे गन्धक की कज्जली करे। फिर विष मिला खरल करे और सबके बराबर मिरचों का चूर्ण मिला दे। इस सारे द्रव्य को कण्टकारी के फल का रस डालकर मर्दन करे। इसप्रकार इक्कीस वार भावना देवे और तीन रत्ति की गोली बनावे। इसके सेवन से सब अजीर्ण नाश होते हैं। यह रस विसूचिका रोग को दूर करता है। नाम अजीर्णकण्टक रस है।

विशेषवचन—इसकी मात्रा एक रत्ति की पर्याप्त है। सामान्य अजीर्ण के अतिरिक्त इसे विसूचिका की प्रथमावस्था में प्रयोग कराया जाता है। इसे वहां कर्पूरोदक वा मोथा के क्वाथ से देना चाहिये।

रसरत्नाकर में इसका नाम अग्निकुमार रस है। रसराजसुन्दर में जो पाठ इस रस का संगृहीत है वहां बृहतीफल के रस से भावनायें देने को कहा है—

'शुद्धसूतविषगन्धकं समं तुल्यभागमरिचं च चूर्णितम्।
मर्दयेत्तु बृहतीफलद्रवैरेकविंशतिविभावितं पुनः॥
गुञ्जिकात्रयमिदं सुभक्षितं सद्य एव जठराग्निवर्द्धनम्।
एष कण्टकरसो विषूचिकाजीर्णमारुतगदान्निहन्ति च॥'॥३२-३३॥

पाशुपतो रसः—

शुद्धसूतं[4] द्विधा गन्धं त्रिभागं तीक्ष्णभस्मकम्[5]।
त्रिभिः समं विषं देयं[6] चित्रकक्वाथभावितम्॥ ३४॥

---

१ 'एवं' 'यत्नाद्' पा०।
२ 'वटीं गुञ्जात्रयं' 'गुञ्जात्रयामिदं' पा०। 'वल्लमात्रां गुटीं' र. प्र. सु. पाठः।
३ 'सर्वोपद्रवसंयुक्तां विषूचीमपि नाशयेत्' यो. र. पाठः।
४ 'कर्ष सूतं' यो. र. पाठः। ५ 'भस्म तीक्ष्णकम्' पा०।
६ 'योज्यं चित्रकद्रवभावितम्' पा०।

धूर्त्तबीजस्य भस्मापि द्वात्रिंशद्भागसंयुतम् ।
कटुत्रयं त्रिभागं स्यात् लवङ्गैले च तत्समे ॥ ३५ ॥
जातीफलं तथा कोषमर्द्धभागं नियोजयेत् ।
तथार्द्धं पञ्च लवणं स्नुह्यर्करण्डतिन्तिडी-
अपामार्गाश्वत्थजञ्च क्षारं दद्याद् विचक्षणः ॥ ३६ ॥
हरीतकी यवक्षारं स्वर्जिका हिङ्गु जीरकम् ।
टङ्कणं सूततुल्यञ्च अम्लयोगेन मर्दयेत् ॥ ३७ ॥
भोजनान्ते प्रयोक्तव्यो गुञ्जाफलप्रमाणतः ॥ ३८ ॥
रसः पाशुपतो नाम सद्यः प्रत्ययकारकः ।
दीपनः पाचनो हृद्यः सद्यो हन्ति विसूचिकाम् ॥ ३९ ॥
तालमूलीरसेनैव उदरामयनाशनः ।
अतीसारं मोचरसैः ग्रहणीं तक्रसैन्धवैः ॥ ४० ॥

---

१ 'द्विधा त्रिकटुकं योज्यं' यो. र. पाठः ।

२ 'जातीफलं जातिपत्रं चार्धभागमितं मतम्' यो. र. पाठः ।

३ 'स्नुह्यर्कौ चापि तिन्तिडी । अपामार्गोऽश्वत्थ एषां लवणं च पलार्धकम् । टङ्कणं यावकक्षारं स्वर्जिका हिङ्गु जीरकम् । हरीतकी सूततुल्या मर्दयेदम्लयोगतः' यो. र. पाठः ।

४ धूर्तबीजस्येत्यादि पूर्वं नोक्त्वास्यानन्तरं 'धूर्तबीजस्य वै भस्म सर्वैः सप्तमभागतः' इति पाठः योगरत्नाकर उपलभ्यते ।

५ श्लोकपङ्क्तिरियं नान्यत्रोपलभ्यते । 'गुञ्जामात्रा वटी कार्या सर्वाजीर्णविनाशिनी' इति च पाठोऽत्रास्ति ।

६ दीपन इत्यादि श्लोकपङ्क्तिरपि तन्त्रान्तरे नास्ति ।

७ तालमूलीतक्रयोगादुदरामयनाशिनी' यो. र. पाठः ।

८ 'मोचरसेनातिसारं' पा० ।

सौवर्चलकणाशुण्ठी-युतः शूलं[1] विनाशयेत् ।
अर्शो[2] हन्ति च तक्रेण पिप्पल्या राजयक्ष्मकम् ॥ ४१ ॥
वातरोगं निहन्त्याशु शुण्ठीसौवर्चलान्वितः[3] ।
शर्कराधान्ययोगेन[4] पित्तरोगं निहन्त्ययम् ॥ ४२ ॥
पिप्पलीक्षौद्रयोगेण श्लेष्मरोगश्च[5] तत्क्षणात् ।
अस्मात्[6] परतरो नास्ति धन्वन्तरिमतो रसः ॥ ४३ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला इन दोनों की कज्जली करे। फिर लोहभस्म तीन तोला, शुद्ध विष छः तोला; सबको मिला एकत्र पीसकर चीते के क्वाथ से भावित करे। अनन्तर धतूरे के बीजों की भस्म बत्तीस तोला, तथा सोंठ का चूर्ण तीन तोला, मिरच का चूर्ण तीन तोला, पिप्पली का चूर्ण तीन तोला, लौंग तीन तोला, छोटी इलायची के बीजों का चूर्ण तीन तोला, जायफल आधा तोला, जावित्री आधा तोला, पांचों नमक प्रत्येक आधा २ तोला मिलावे। थोहर (सेहुण्ड) का क्षार, आक (मदार) का क्षार, एरण्ड का क्षार, इमली का क्षार, अपामार्ग का क्षार, पीपल वृक्ष की छाल का क्षार, हरड़ का चूर्ण, यवक्षार, सज्जी, हींग, जीरा का चूर्ण, शुद्ध सुहागा; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला डालें। इन सबको अम्लवर्ग से (नीबू आदि के रस से) मर्दन करें और एक रत्ति भर की गोली बना रखें। इसे भोजन के बाद खावें। यह पाशुपत नामक रस लाभ होने का तुरन्त विश्वास दिलाता है, दीपन है, पाचन है, हृदय के लिये हित है, विसूचिका को शीघ्र दूर करता है। मूसली के रस से दें तो उदरामय (अतीसार अथवा उदर रोग) को

---

१ 'शूले नागरकं शस्तं हिङ्गु सौवर्चलान्वितम् ।' यो. र. पाठः ।
२ 'अर्शःसु तक्रेण हिता पिप्पल्या राजयक्ष्मणि' पा० ।
३ 'सौवर्चलान्विता' पा० ।
४ 'गुडूचीशर्करायोगात्पित्तरोगविनाशिनी' यो. र. पाठः ।
५ 'श्लेष्मरोगान्निकृन्तति' पा० ।
६ 'अतः परतरा नास्ति धन्वन्तरिमते वटी' यो. र. पाठः ।

दूर करता है। मोचरस से दें तो अतीसार को हटाता है। सेंधानमक मिले तक्र से दें तो ग्रहणी को नाश करता है। सौंचल नमक, पिप्पली तथा सोंठ; इनके चूर्ण से शूल का नाशक है। तक्र के अनुपान से बवासीर को हटाता है। पिप्पलीचूर्ण से मिलाकर सेवन से राजयक्ष्मा को नाश करता है। सोंठ और सौंचल नमक से वातरोगों में हितकर है। खांड और धनियां मिलाकर अथवा धनियें के जल में खांड डाल कर अनुपान से पित्तरोगों का नाशक है। पिप्पलीचूर्ण और शहद से दें तो कफरोग को तत्क्षण दूर करता है। इससे बढ़कर धन्वन्तरि जी के मत में कोई रस नहीं है।

विशेषवचन—योगरत्नाकर आदि में जो पाठ पाशुपत रस का मिलता है उसके अनुसार त्रिकटु लौंग और छोटी इलायची; प्रत्येक दो तोला होनी चाहिये। एरण्डक्षार भी नहीं डालना चाहिये। सेहुण्ड मदार इमली अपामार्ग (ओंगा, चिरचिरा, पुठकण्डा) पीपल; इनके क्षार चार-चार तोले होने चाहियें। धत्तूर बीज की भस्म भी सब चूर्ण से सातवां भाग होनी चाहिये। सब द्रव्यों का चूर्ण ५१½ तोले होता है अतः प्रचलित मान (८ रत्ती का मासा और १२ मासे का तोला) के अनुसार धत्तूरबीजभस्म का मान ७ तोला ४ मासा और लगभग २¼ रत्ती पड़ता है। सहपान वा अनुपानों में थोड़ी भिन्नता है। उदरामय में मूसली के साथ छाछ भी कही है। शूल में हींग सौंचल नमक और सोंठ का चूर्ण है। पित्तरोगों में धनियां के स्थान पर गिलोय है।

पाठान्तर टिप्पणी में उद्धृत कर दिये हैं॥ ३४—४३॥

बृहच्छङ्खवटी—

दग्धशङ्खस्य चूर्णं स्यात् तथा लवणपञ्चकम्।
तिन्तिडीक्षारकश्चैव कटुकत्रयमेव च॥ ४४॥
तथैव हिङ्गुकं ग्राह्यं विषं पारदगन्धकम्।
अपामार्गस्य वह्नेश्च क्षारैर्लिम्पाकजैर्द्रवैः॥ ४५॥
भावयेत् सर्वचूर्णं तदम्लवर्गैर्विशेषतः।
यावत् तदम्लतां याति गुडिकाऽमृतरूपिणी॥ ४६॥

सद्यो वह्निकरी चैव भस्मकञ्च नियच्छति।
भुक्त्वाऽऽकण्ठन्तु तस्यान्ते खादेच्च गुडिकामिमाम् ॥ ४७॥
तत्क्षणाज्जारयत्याशु पुनर्भोजनमिष्यति।
हन्ति वातं तथा पित्तं कुष्ठानि विषमज्वरम् ॥ ४८ ॥
गुल्माख्यं पाण्डुरोगञ्च निद्राऽऽलस्यमरोचकम्।
शूलञ्च परिणामोत्थं प्रमेहञ्च प्रवाहिकाम्।
रक्तस्रावञ्च शोथञ्च दुर्नामानि विशेषतः ॥ ४९ ॥

शंखभस्म, पांचों नमक, इमली का क्षार, सोंठ, मिरच, पिप्पली; इनके चूर्ण, हींग, शुद्ध विष, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर अपामार्ग के रस से, चीते के क्वाथ से तथा नीबू के रस से भावना देवें। विशेष करके अम्लवर्ग से तब तक भावना देवें जब तक कि वह गोली खट्टी न हो जाये। यह अमृतरूपी गोली शीघ्र ही अग्नि को बढ़ाती है। भस्मकरोग को दूर करती है। कण्ठ तक भोजन करके इस गोली को खावें तो भी तत्क्षण भोजन पच जाता है और शीघ्र ही पुनः भोजन की इच्छा होती है। वातदोष, पित्तदोष, कुष्ठ, विषमज्वर, गुल्म, पाण्डुरोग, निद्रा, आलस्य, अरुचि, शूल, परिणामशूल, प्रमेह, प्रवाहिका, रक्तस्राव, शोथ और विशेषकर बवासीर रोग को यह नाश करती है।

विशेषवचन—इसकी मात्रा–१ रत्ती से २ रत्ती पर्यन्त है। इसे अन्यत्र कहीं शङ्खवटी और कहीं महाशङ्खवटी नाम से कहा है। गरम जल के साथ इसे प्रयोग कराया जाता है। मुंह में रखकर चूस भी सकते हैं। यह वातिक अजीर्ण वा विष्टब्धाजीर्ण में अति हितकर है। जाठराग्नि का दीपन करती है

---

१ 'सर्वाजीर्णविनाशिनी। ज्वरं गुल्मं पाण्डुरोगं कुष्ठं शूलं प्रमेहकम् ॥ वातरक्तं महाशोथं वातपित्तकफानपि। दुर्नामारिरियं चाशु दृष्टो वारसहस्रशः। निर्मूलं दह्यते शीघ्रं तूलकं वह्निना यथा॥ लोहवङ्गयुता सेयं महाशङ्खवटी स्मृता। प्रभाते कोष्णतोयानुपानमेव प्रशस्यते॥' भै. र. पाठः॥

और वायु को अनुलोम करती है। आमाजीर्ण और रसशेषाजीर्ण में भी प्रयुक्त होती है। विसूचिका की प्रथमावस्था में भी इससे लाभ होते देखा गया है। अतिसार में भी इसे प्रयोग कराते हैं। यह शीघ्र ही मल को बांध देती है। शूल में भी उत्तम है।

भैषज्यरत्नावली में यहां अम्लवर्ग भी कहा है—

'जम्बीरबीजपूरञ्च मातुलुङ्गकचुक्रकम्।
चाङ्गेरी तिन्तिडी चैव बदरी करमर्दकम्॥
अष्टावम्लस्य वर्गोऽयं कथितो मुनिपुङ्गवैः॥'

जम्बीरी नीबू, बिजौरा, मातुलुङ्ग, चुक्र (अम्लवेतस), चाङ्गेरी, तिन्तिडी (विषांबिल वा इमली), बेर, करौंदा; इन आठ द्रव्यों से अम्लवर्ग होता है। यथालाभ इनसे मर्दन किया जाता है। अथवा एक अम्लगण पूर्व (३२ पृष्ट पर) भी कहा जा चुका है उससे मर्दन कर सकते हैं।

इसी योग में लोहभस्म और वङ्गभस्म भी एक-एक भाग मिलाते हैं। तब वह क्षीणकाय दुर्बल व्यक्ति के लिये अधिक लाभदायक होता है।

दो शङ्खवटी के योग और लिखते हैं—

'चिञ्चाक्षारपलं पटुव्रजपलं निम्बूरसे कल्कितं
तस्मिन् शङ्खपलं प्रतप्तमसकृत् संस्थाप्य शीर्णावधि।
हिङ्गुव्योषपलं रसामृतवली निक्षिप्य निष्कांशिकाः
बद्ध्वा शङ्खवटी क्षयग्रहणिकारुक्पाक्तिशूलादिषु॥'

एक पल (४ तोला) शङ्ख के टुकड़े को गरम करके नीबू के रस में बार-बार बुझावें। जब वह सारा चूर्ण रूप में होजाय तो खरल में उसे डाल नीबू के रस से भली भांति खरल करें। पश्चात् उस में इमलीक्षार १ पल, पांचों नमक मिलित १ पल, हींग और त्रिकटु चारों मिलित १ पल, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक (दोनों की कज्जली करलें), शुद्ध विष; प्रत्येक १ निष्क (शाण=२४ रत्ती) उचित क्रम से मिला १॥ रत्ती की गोली बना लें। इसे भी क्षय संग्रहणी तथा परिणामशूल आदि में प्रयोग कराते हैं।

अन्य योग—

'चिञ्चाश्वत्थस्नुहीक्षारादपामार्गार्कतस्तथा।

लवणं पञ्च संगृह्य ततो लवणपञ्चकम् ॥
सैन्धवाद्यं समादाय सर्वमेतत्पलद्वयम् ।
कर्षं कर्षं विषं गन्धं रसं टङ्कणमेव च ॥
हिङ्गुपिप्पलिशुण्ठीनां तथा मरिचजीरयोः ।
द्वौ द्वौ कर्षौ पृथक्कार्यौ तथा द्वौ शङ्खचूर्णतः ॥
फलत्रयाच्च कर्षैकं द्विकर्षं तु लवङ्गतः ।
एतत्सर्वं समादाय श्लक्ष्णचूर्णीकृतं शुभम् ॥
भावयेदम्लयोगेन सप्तधा च प्रयत्नतः ।
रसः शङ्खवटी नाम्ना सेवितः सर्वरोगजित् ॥
गुञ्जामात्रमिदं खादेद्भवेद्दीपनपाचनम् ।
अजीर्णं वातसम्भूतं पित्तश्लेष्मभवं तथा ॥
विषूचीं शूलमानाहं हन्यादत्र न संशयः ॥'

इमली क्षार, पीपलक्षार, सेहुण्डक्षार, अपामार्गक्षार, मदारक्षार; ये पांचों क्षार मिलित १ पल, सेन्धा आदि पांचों नमक मिलित १ पल, शुद्ध विष १ कर्ष ($\frac{1}{4}$ पल), गन्धक १ कर्ष, पारद १ कर्ष, सुहागा १ कर्ष, हींग २ कर्ष ($\frac{1}{2}$ पल), पिप्पलीचूर्ण २ कर्ष, सोंठ चूर्ण २कर्ष, काली मिर्च का चूर्ण २कर्ष, श्वेत जीरा चूर्ण २ कर्ष, शङ्खभस्म २ कर्ष, त्रिफला के प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण १ कर्ष, लौंग २ कर्ष; इन्हें यथाविधि मिला मर्दन करे और नीबू आदि के रस से सात बार भावना दे । एक रत्ती की गोली बनावे । यह भी दीपन पाचन है और वातिक पैत्तिक वा श्लैष्मिक अजीर्ण विसूचिका शूल तथा आनाह में प्रयुक्त करायी जाती है ।

दो शङ्खवटियों के योग इसी प्रकरण में आगे कहे जांयगे । पांच छह और भी शङ्खवटी के योग मिलते हैं । उन्हें तन्त्रान्तरों में देखें ॥ ४४—४९ ॥

भक्तविपाकवटी—

माक्षिकं रसगन्धौ च हरितालं मनःशिला ।
त्रिवृद्दन्ती वारिवाहः चित्रकश्च महौषधम् ॥ ५० ॥
पिप्पली मरिचं पथ्या यमानी कृष्णजीरकम् ।

रामठं कटुका पाठा सैन्धवं साजमोदकम् ॥ ५१ ॥
जातीफलं यवक्षारं समभागं विचूर्णयेत् ।
आर्द्रकस्य रसेनैव निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च ॥ ५२ ॥
सूर्य्यावर्त्तरसेनैव तुलस्याः स्वरसेन च ।
आतपे भावयेद्वैद्यः खल्ल२पात्रे च निर्मले ।
पेषयित्वा वटीं खादेत् गुञ्जाफलसमप्रभाम् ॥ ५३ ॥
भुक्तोत्तरीये बहुभोजनान्ते मुहुर्मुहुर्वाञ्छति भोजनानि ।
आमानुबन्धे च चिराग्निमान्द्ये विड्३विग्रहे पित्तकफानुबन्धे ॥ ५४ ॥
अर्शःसु शोथोदरकेऽप्यजीर्णे शूले प्रदोषप्र४भवे ज्वरे च ।
५शस्ता वटी भक्तविपाकसंज्ञा सुखं६ विपाच्याशु निरस्य७ कोष्ठात् ॥५५॥

स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध मनसिल, त्रिवी (निसोत), दन्तीमूल, नागरमोथा, चीता, सोंठ, पिप्पली, मरिच, हरड़, अजवायन, काला जीरा, हींग, कुटकी, पाठा, सेंधानमक, अजमोदा (अर्थात् अजवायन), जायफल, यवक्षार; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर पीसें और अदरक, निर्गुण्डी (सम्भालू), सूर्यावर्त्त (सूरजमुखी) तथा तुलसी के रस से धूप में भावनायें दें। स्वच्छ खरल में पीसकर एक रत्ति भर की गोली बना लें। भोजन के पीछे वा मात्रा से अधिक भोजन कर लेने पर इसे देना चाहिये।

---

१ 'कटुकापाली' र. र. पाठः। कापाली करटकपाली लता विडङ्गं वा। 'कटुपाञ्चाली' र. रा. सु. पाठः। पाञ्चाली पिप्पली।

२ 'स्वर्णपात्रे प्रयत्नतः। शोषयित्वा वटीं कृत्वा गुञ्जाफलमितां शुभाम्। भक्षयेत्तु वटीं प्रायो लवङ्गेन नियोजिताम्' र. रा. सु. पाठः।

३ 'विट्संग्रहे वातकफानुबन्धे शोथोदरे मेहगदेऽप्यजीर्णे' र. रा. सु. पाठः। ४ 'त्रिदोषप्रभवे' पा०। ५ 'सम्यग्वटी भुक्तविपाकसंज्ञा' र. रा. सु. पाठः। ६ विपाचयत्याशु नरस्य भुक्तम्' इति पाठः कार्यः। ७ 'नरस्य कोष्ठम्' पा०।

इससे बारम्बार और भोजन खाने की इच्छा होती है । आमानुबन्ध युक्त पुराने अग्निमान्द्य में, पित्त कफ के अनुबन्ध से युक्त कब्ज में, बवासीर में, शोथ में, उदर में, अजीर्ण में, शूल में, रात्रि के पूर्वभाग में होने वाले ज्वर में, यह वटी देनी अच्छी है । यह कोष्ठ में, सुख से अन्न को पचाकर मल को निकाल देती है । इस का नाम भक्तविपाकवटी है ।

रसरत्नाकर में यह वटी (भक्तपावक नाम से) रसायनाधिकार में कही है । वहां 'मनःशिला' के पश्चात् एक श्लोकपङ्क्ति अधिक है–

'गगनं कान्तलौहं च सर्वमेषां समांशकम् ।'

इसके अनुसार अभ्रक भस्म और कान्तलौह भस्म भी एक २ भाग डाली जाती है । 'तुलस्याः स्वरसेन च' के स्थान पर 'ज्योतिष्मत्या रसेन च' यह पाठान्तर है । इन्हीं पाठों से यहां भी महाभक्तपाक वटी आगे कही जायगी । रसरत्नाकर में 'गुञ्जाफलसमप्रभाम्' के पश्चात् एक ही श्लोकपङ्क्ति है और वह यह है—

'भक्षयेच्छाणमानेन लवङ्गस्य च योगतः ॥'

इसके स्थान पर महाभक्तपाकवटी में

'भक्षयेत्तां वटीं प्राज्ञो लवङ्गेन नियोजिताम् ।'

यह पाठ मिलेगा । भक्तविपाक वटी के गुणनिर्देश के श्लोकों में प्रमादपाठ है । उसे ऐसा ही रखते हुए कुछ शोधन का यहां प्रयत्न किया है । वस्तुतः यहां 'सुखं विपाच्याशु नरस्य कोष्ठम्' यह मुद्रित पाठ है । उसे थोड़ा सा बदल दिया है । अथवा महाभक्तपाक वटी नाम से कहे पाठ के अनुसार ही यहां गुणनिर्देश का पाठ होना चाहिये । वस्तुतः भक्तविपाकवटी और महाभक्तपाक वटी दोनों योग एक ही हैं । 'गगनं' इत्यादि पङ्क्ति के न लिखे जाने से तथा 'ज्योतिष्मत्या रसेन च' के स्थान पर 'तुलस्याः स्वरसेन च' हो जाने से पृथक् योग ही बनगया है ।

इस योग में सामान्य नियम के अनुसार अदरक आदि के रस से सात–सात भावना देनी चाहियें । इस योग को भुक्तोत्तरीया वटी नाम से भी कहते हैं ॥ ४०—४१ ॥

पञ्चामृतवटी—

अभ्रकं पारदं ताम्रं गन्धकं मरिचानि[1] च ।
समभागमिदं[2] चूर्णं चाङ्गेरीरसमर्दितम्[3] ॥ ५६ ॥
मर्दिते[4] हि रसे भूयो जयन्तीसिन्धुवारयोः ।
भावनापि[5] च कर्त्तव्या[6] गुञ्जापरिमिता वटी ॥ ५७ ॥
तप्तोदकानुपानेन[7] चतस्रस्तिस्र एव वा ।
वह्निमान्द्ये प्रदातव्या वट्यः पञ्चामृताः शुभाः[8] ॥ ५८ ॥

अभ्रकभस्म, शुद्ध पारा, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक, मिरच का चूर्ण; सब द्रव्य समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्यों को मिलाकर चाङ्गेरी के रस से मर्दन करें। पुनः जयन्ती के रस से और संभालू के रस से क्रमशः भावनायें देकर एक रत्ति प्रमाण गोली बनावें। इसकी तीन या चार गोली (दिन भर में) गरम जल से पीवे तो अग्निमान्द्य शान्त होता है। इसे पञ्चामृत वटी कहते हैं।

विशेषवचन—यहां भावना कहने से जयन्ती वा सम्भालू की सात-सात भावना देते हैं। अन्यत्र इस रससे मिलता जुलता पञ्चामृत चूर्ण भी कहा है-

'पारदं गन्धकं लौहं ताम्रमभ्रकमेव च ।
एषां माषकमेकैकं जम्बीरद्रवभावितम् ॥
देयं त्रिकटुना तुल्यं सम्यग्गुञ्जाचतुष्टयम् ।
तप्ततोयानुपानेन वह्निमान्द्यहरं परम् ॥'

इसमें शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म; प्रत्येक को एक-एक माषा ले और सब के बराबर त्रिकटु का मिलित चूर्ण मिलाकर

---

१ 'मरिचान्वितम्' र. र. पाठः। २ 'सर्वं' पा०।
३ 'चाङ्गेरीरसभावितम्' र. र. पाठः। ४ 'मर्दितन्तु' पा०।
५ 'मर्दनेनैव' र. र. पाठः। ६ 'दातव्या' पा०।
७ 'तप्ततोयेन संयुक्ताः' र. र. पाठः। ८ 'तथा' पा०।

जम्बीररस की भावना देवें। इसकी आधुनिक मात्रा २ रत्ती है। अनुपान–गरम जल है। यह भी अग्निमान्द्य को हटाता है ॥ ५६—५८ ॥

क्रव्यादो रसः—

पलं रसस्य द्विपलं बलेः स्याच्छुल्वायसी चार्द्धपलप्रमाणे ।
सञ्चूर्ण्य सर्वं द्रुतमग्नियोगादेरण्डपत्रेऽथ निवेशनीयम् ॥५९॥
कृत्वाऽथ तां पर्पटिकां विदध्याल्लौहस्य पात्रे त्ववपूतमस्मिन्[1] ।
जम्बीरजं पक्वरसं पलानां शतं नियोज्याग्निमथाल्पमल्पम्[2] ॥६०॥
जीर्णे रसे भावितमेतदेतैः सुपञ्चकोलोद्भववारिपूरैः ।
सवेतसाम्लैः शतमत्र योज्यं[3] समं रजष्टङ्कणजं सुभृष्टम् ॥६१॥
विडं तदर्द्धं मरिचं समञ्च तत् सप्तवारं[4] चणकाम्लकेन ।
क्रव्यादनामा भवति प्रसिद्धो रसस्तु मन्थानकभैरवोक्तः ॥६२॥
माषद्वयं सैन्धवतक्रपीतो[5] ह्यसौ सुधन्यः खलु भोजनान्ते ।
गुरूणि मांसानि पयांसि पिष्ट-घृतानि[6] सेव्यानि फलानि चापि६३
मात्रातिरिक्तान्यपि सेवितानि यामद्वयाज्जारयति प्रसिद्धः ।
निहन्त्यजीर्णान्यपि षट् प्रवृद्धमग्निं करोति क्रमसेवनेन ॥६४॥
कार्श्यस्थौल्यनिबर्हणो गरहरः सामार्त्तिनिर्णाशनः
गुल्मप्लीहनिसूदनो[7] ग्रहणिकाविध्वसंनः स्रंसनः ।
वातश्लेष्मनिबर्हणः श्रमहरः मूलार्त्तिशूलापहः
वातग्रन्थिमहोदरापहरणः क्रव्यादनामा रसः ॥ ६५ ॥

---

१ 'वरपूतमस्मिन्' पा० । २ 'अथाल्पमात्रम्' पा० ।
३ 'देयं' पा० । ४ 'सप्तधार्द्रं चणकाम्लवारा' पा० ।
५ 'सैन्धवतक्रपतिमेतस्य धन्यैः' पा० । ६ 'पिष्टी घृतानि' 'पिष्टाकृतानि' पा० ।
७ 'गुल्मप्लीहजलोदरादिशमनः शूलार्त्तिमूलापहः । वातश्लेष्मनिबर्हणो ग्रहणिकातीसाराविध्वंसनः ॥' पा० ।

शुद्ध पारा एक पल, शुद्ध गन्धक दो पल; दोनों की कज्जली करे। फिर ताम्रभस्म आधा पल, लौहभस्म आधा पल मिलावे। सब को खरल कर लोहे की कड़छी में डाल मृदु आग पर पिघलावे। पिघलने पर एरण्ड के पत्ते पर डालकर पर्पटी बनाले। पुनः इसे चूर्ण कर एक लोहे के पात्र में डाले और जम्बीरी का छना हुआ रस एक सौ पल भी डाले। इसे मन्द २ आग पर पकावे। जब सब रस सूख जावे तब उतार कर पीसे और पंचकोल के क्वाथ ५०पल (अर्थात् पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चीता और सोंठ इन पांचों के एकत्र क्वाथ) से उसे भावना देवे। फिर अम्लवेत के ५० पल क्वाथ से भावना देवे। सूख जाने पर सुहागे की खील चार पल, विड्लवण दो पल, मरिच का चूर्ण दस पल डाले (कई ४ पल लेते हैं परन्तु रसरत्नसमुच्चय आदि के अनुसार १० पल ही लेना उचित है)। फिर सब को पीसकर चणकाम्ल से सात बार भावित करे। यह प्रसिद्ध रस मन्थानभैरव का कहा हुआ है। इसका नाम क्रव्याद रस है। इसे दो माषा लेकर सेंधानमक मिले तक्र के अनुपान से भोजन के अन्त में पीवें तो बड़ा लाभ करता है। इसके सेवन के समय गुरुद्रव्य मांस, दूध, पीठी, घृत तथा फलों का सेवन करना चाहिये। यह रस मात्रा से अधिक खाये अन्न को भी दो पहर में अर्थात् छः घण्टों में पचा देता है। छः प्रकार के अजीर्ण को दूर करता है। क्रमशः मात्रा को बढ़ाकर सेवन से अग्नि को प्रवृद्ध करता है। कृशता तथा स्थूलता दोनों को दूर करके शरीर को समता में लाता है। संयोगजविष तथा आमदोष से उत्पन्न रोगों को दूर करता है। गुल्म, प्लीहा तथा ग्रहणी का नाशक है। स्रंसन है। वातश्लेष्म को हटाता है, श्रम हरता है, अर्श वा भगन्दर और शूल का नाशक है। यह क्रव्याद रस वातग्रन्थि तथा महोदर को दूर करता है।

विशेषवचन–इसकी प्रारम्भिक मात्रा २ रत्ती की पर्याप्त है। ८ रत्ती तक क्रमशः बढ़ाकर ले जासकते हैं।

---

१ मरिच ४पल लेने के लिये योगमहार्णव वा भावप्रकाश का पाठ उद्धृत किया जाता है—वहां 'भृष्टटङ्कणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत्।' इसके आगे 'मरिचेनापि तुल्येन तदर्धेन विडेन च' ऐसा पाठ किया है।

योगरत्नाकर में यह बृहत्क्रव्याद नाम से कहा गया है। वहां विडलवण के स्थान पर कालानमक है। पञ्चकोल के काढ़े और अम्लवेत के काढ़े से पृथक् पचास-पचास भावनायें देने को कहा है जब कि यहां पचास-पचास पल रस से भावनायें देने का विधान है।

'द्विपलं गन्धकं शुद्धं द्रावयित्वा विनिक्षिपेत्।
पारदं पलमानं तु मृतशुल्बायसी पृथक्॥[1]
पलार्धमाने संमिश्र्य पञ्चाङ्गुलदले क्षिपेत्।
ततो विचूर्ण्य यत्नेन लोहपात्रे विचक्षणः॥
निधापयेद्रसं तत्र जम्बीरस्य पलं शतम्।
वस्त्रपूतं ततः कृत्वा लोहपात्रे विनिक्षिपेत्॥[2]
मृद्वाग्निना पचेत्तत्र दर्व्या सञ्चालयेन्मुहुः।
सञ्चूर्ण्य पञ्चकोलोत्थैः कषायैः साम्लवेतसैः॥
भावनाः किल[3] दातव्याः पञ्चाशत्प्रमिताः पृथक्।
भृष्टटङ्कणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत्॥
तदर्धं कृष्णलवणं मरीचं सर्वतुल्यकम्।
सप्तधा भावयेत्पश्चाच्चणकक्षारवारिणा॥
ततः संशोष्य सम्पिष्य कूप्याश्च जठरे क्षिपेत्।
अत्यर्थं गुरुमांसानि गुरुभोज्यान्यनेकशः।
भुक्त्वा च कण्ठपर्यन्तं चतुर्वल्लमितो रसः॥
पट्वम्ल[4]तक्रसहितः पीतमात्रो हि पाचयेत्।

१ 'पलमानेन मृतशुल्बायसं पुनः। तोलमानेन संक्षिप्य' र. र.स. पाठः। तोलमानेनेत्यत्र 'पलमानेन' क्वचित्पाठः। २ 'निक्षिप्यायसभाजने। चुल्ल्यां निवेश्य यत्नेन ज्वालयेन्मृदुवह्निना। पात्रमात्रं हि जम्बीररसं सम्यग्विजारयेत्। सञ्चूर्ण्य' र. र. स. पाठः।

३ खलु कर्तव्याः पञ्चाशत्प्रमितास्ततः' र. र. स. पाठः।

४ 'पट्वम्लतक्रसहितं पिबेत्तदनुपानतः। क्षिप्रं तज्जीर्यते भुक्तं जायते दीपनं पुनः।' र. र. स. पाठः।

पुनर्भोजयति क्षिप्रं का पुनर्मन्दवह्निता ॥
रसः क्रव्यादनामायं प्रोक्तो मन्थानभैरवैः ।
सिंहलक्षोणिपालस्य भूरिमांसप्रियस्य च ॥
पुनर्भोजनकामस्य[1] भैरवानन्दयोगिना ॥
कुर्याद्दीपनमूद्ध्र्वं[2]जत्रुगदहृद्दुष्टामसंशोधनः
तुन्दस्थौल्यनिबर्हणो मदहरः शूलार्ति[3]मूलापहः ।
गुल्मप्लीहविनाशको बहुरुजां[4] विध्वंसनो वातहा
वातग्रन्थिमहोदरापहरणः क्रव्यादनामा रसः ॥'

यहां पर यह भी विशेष है कि पूर्व गन्धक को लोहपात्र में पिघलावें। पिघलते ही उसमें पारा डाल दें और अच्छीप्रकार घोटकर मिलादें। फिर शीघ्रता से वहीं लोहभस्म और ताम्रभस्म मिलाकर एरण्डपत्र पर डाल पर्पटी बना लें।

कहीं कहीं ताम्रभस्म और लोहभस्म एक-एक कर्ष डालने को कहे हैं। पल ४ तोला हो तो कर्ष १ तोला होता है। रसरत्नसमुच्चय में भी इन्हें तोला तोला डालने का विधान है। कहीं जम्बीर रस १ पात्र डालने को कहा है। पात्र ६४ पल का होता है। दुगुना करें तो १२८ पल होता है। किसी ग्रन्थ में 'पात्रं पात्रं' दो वार ही स्वयं पढ़ दिया है। कहीं बिड वा काले नमक के स्थान पांचों नमक कहे हैं। पाठान्तरों के अनुसार इसका प्रयोग कास श्वास जलोदर दुष्ट व्रण आदि में भी किया जा सकता है। कहीं इसका अनुपान सोंठ, हींग, बिडनमक; इनका चूर्ण कहा है। इस अनुपान से गुल्म प्लीहा और विद्रधि का नाश होता है ॥ ५६—६५ ॥

ज्वालानलो रसः—

क्षारद्वयं सूतगन्धौ पञ्चकोलमिदं समम् ।

---

१ 'दिष्टो ग्रामं समासाद्य' र. र. स. पाठः ।
२ 'दीपनमुद्धतं च पचनं दुष्टामसंशोषणम् ।' र. र. स. पाठः ।
३ 'मूलार्तिशूलापहम्' र. र. स. पाठः ।
४ 'ग्रहणिकाविध्वंसनं स्रंसनं' र. र. स. पाठः ।

सर्वतुल्या जया देया तदर्द्धं शिग्रुवल्कलम् ॥ ६६ ॥
एतत् सर्वं जयाशिग्रु-वह्निमार्कवजै रसैः ।
भावयेत् त्रिदिनं घर्मे ततो लघुपुटे पचेत् ॥ ६७ ॥
भावयेत् सप्तधा चार्द्र-द्रवैर्ज्वालानलो भवेत् ।
पाचनो दीपनो हृद्यश्चोदरामयनाशनः ॥ ६८ ॥
निष्कोऽस्य मधुना लीढोऽनुपानं गुडनागरैः ।
ज्वराजीर्णमतीसारं ग्रहणीं वह्निमार्दवम् ।
श्लेष्महृल्लासवमनमालस्यमरुचिं जयेत् ॥ ६९ ॥

यवक्षार, सज्जीक्षार, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चीता, सोंठ; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला ले। सारे चूर्ण के बराबर अर्थात् नौ तोला भांग का चूर्ण और सुहांजने (सहिजन) की (जड़की) छाल का चूर्ण उससे आधा आर्थात् साढ़े चार तोले ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिलाकर पीसे और भांग, सुहांजना (सहिजन), चीता और भांगरा; प्रत्येक के रस या क्वाथ से तीन २ दिन धूप में भावना देवे। सूखने पर लघुपुट में पाक कर ले (परन्तु जल ही न जाय)। फिर अदरक के रस से सात वार भावना देवे। इसे ज्वालानल रस कहते हैं। यह अग्नि को दीपन करता तथा पाचन है। हृदय के लिये हित है। उदरामय अर्थात् अतीसार को नाश करता है। इसे एक निष्क भर ले मधु से चाटकर ऊपर से गुड और सोंठ मिलाकर खावे। यह ज्वर, अजीर्ण, अतीसार, ग्रहणी, अग्निमान्द्य, कफ, हृल्लास, वमन, आलस्य और अरुचि को जीतता है।

विशेषवचन—आधुनिक सामान्य मात्रा-४रत्ती जानें।

भावप्रकाश में भी यह रस है। वहां लघुपुट से पूर्व भांगरे के रस की

१ 'भृष्टा तदर्द्धा शिग्रुजा जटा' भा. प्र. पाठः।

२ 'जयाशिग्रुवह्नीनां केवलैर्द्रवैः' भा. प्र. पाठः।

३ 'मार्कवस्य द्रवैर्घृष्टो रसः' भा. प्र. पाठः।

भावना नहीं है। लघुपुट के पश्चात् देने को कही है। अदरक के रस की भावना का विधान नहीं।

कफज अजीर्ण में इसका प्रयोग किया जाता है॥ ६६—६९॥

अमृतवटी—

अमृतवराटकमरिचैर्द्विपञ्चनवभागयोजितैः क्रमशः[1]।
वटिका मुद्गसमाना कफत्रिदोषानलमान्द्यहारिणी[2]॥ ७०॥

शोधित विष दो तोला, शुद्ध कौड़ीभस्म पांच तोला, काली मिरच का चूर्ण नौ तोला। सब को पीस जल से घोटकर मूंग के समान गोली बनावें। यह कफनाशक, त्रिदोषनाशक, तथा अग्निमान्द्यनाशक है।

विशेषवचन—यह ज्वर और ज्वरातिसार में भी दी जाती हैं। योगरत्नाकर में यही योग ज्वराधिकार में अमृतकलानिधि रस नाम से है—

'अमृतवराटकमरिचैर्द्विपञ्चनवमांशैः।
मुद्गप्रमाणवटको ज्वरपित्तकफाग्निमान्द्यहारी स्यात्॥'

कहीं कहीं शोधित विष ३ तोला भी कहा है। और पित्तघ्न के स्थान पर वातनाशक गुण भी है। इसका टोडरानन्द में त्रिपुरभैरव नाम है॥ ७०॥

बृहच्छङ्खपाकवटी—

अभ्रं पारदगन्धकौ सदरदौ ताम्रञ्च तालं शिला
वङ्गञ्च त्रिफला विषञ्च कुनटी भागास्त्रयो दन्तिनः।
भृङ्गी व्योषयमानिचित्रजलदं[3] द्वे जीरके टङ्कणं
एलापत्रलवङ्गहिङ्गुकटुकी जातीफलं सैन्धवम्॥ ७१॥
एतान्यार्द्रक-चित्रदन्ति-सुरसा-वासारसैर्[4]बिल्वजैः
पत्रोत्थैरपि[5] सप्तधा सुविमले खल्ले विभाव्यान्यतः।

१ 'नवभागिकैः क्रमशः' भै. र. पाठः।

२ 'कफपित्ताग्निमान्द्यहारिणी' भै. र. पाठः।

३ 'चित्रकजलं' पा०। ४ 'मूर्वारसैः' पा०।

५ 'प्रत्येकं दिनसंख्यया च सकलं गाढं विमर्द्यान्यतः' पा०।

खादेद्वल्लमितं तथा च सकलव्याधौ प्रयोज्यो बुधैः[1]
विड्बन्धे कफजे त्रिदोषजनिते ह्यामानुबन्धेऽपि च ॥ ७२ ॥
मन्देऽग्नौ विषमज्वरे च सकले शूले त्रिदोषोद्भवे।
हन्यात् तानपि भक्तपाकवटिका भूयश्च सामं जयेत्[2] ॥ ७३ ॥

अभ्रकभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल, ताम्रभस्म, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध मनशिल, वङ्गभस्म तथा हरड़, बहेड़ा, आंवला; इनके चूर्ण, शुद्ध विष, शुद्ध नैपाली मनसिल; प्रत्येक द्रव्य एक २भाग, दन्तीमूल का चूर्ण तीन भाग,काकड़ासिंगी, सोंठ, मिरच,पिप्पली,अजवायन, चीता, मोथा, श्वेत जीरा, काला जीरा, सुहागा शुद्ध, छोटी इलायची के बीज,तेजपत्र,लौंग, हींग, कुटकी, जायफल, सेंधानमक; इन सबके चूर्ण पृथक् एक-एक भाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर खरल करें। पश्चात् अदरक के रस से, चीता के क्काथ से, दन्तीमूल के क्काथ से, तुलसी के पत्तों के रस से, बांसा (अडूसा) के पत्तों के रस से, तथा बिल के पत्तों के रस से सात २ बार भावना दें। डेढ़ रत्ति के बराबर गोली बनालें। इसे सब रोगों में दे सकते हैं। यह भक्तपाकवटी कफज तथा त्रिदोषज मलबन्ध, आमयुक्त अग्निमान्द्य, सब प्रकार के विषमज्वर तथा तीनों दोषों से उपन्न शूलों में लाभ करती और आम को जीतती है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा-३ रत्ती से १ रत्ती तक है।

यहां शिला और कुनटी दो वार होने से कई शिला से शिलाजीत लेते हैं ॥ ७१—७३ ॥

लवङ्गादिवटी—

लवङ्गशुण्ठीमरिचानि भृष्ट-सौभाग्यचूर्णानि समानि कृत्वा।
भाव्यान्यपामार्गहुताशवारा प्रभूतमांसादिकजारणाय ॥ ७४ ॥

लौंग, सोंठ, मिरच, सुहागे की खील; इन सबका चूर्ण समभाग लेकर अपामार्ग के रस और चीते के रस से भावना दें। इसके सेवन से प्रभूत मात्रा

---

१ 'प्रयुञ्ज्याद् बुधः' पा०। २ 'सम्भोजयेत्' पा०।

में खाया मांस आदि गरिष्ठ भोजन भी पच जाता है।

विशेषवचन–आधुनिक मात्रा–२ रत्ती से ८ रत्ती तक। सामान्य नियम के अनुसार भावनायें सात-सात होनी चाहियें ॥ ७४ ॥

बृहल्लवङ्गादि वटी–

लवङ्गजातीफलधान्यकुष्ठं जीरद्वयं त्र्यूषणत्रैफलञ्च।
एलात्वचं टङ्गवराटमुस्तं वचाऽजमोदाविडसैन्धवञ्च ॥ ७५ ॥
तदर्द्धकं पारदगन्धमभ्रं लौहञ्च तुल्यं सुविचूर्ण्य सर्वम्।
तन्नागवल्लीदलतोयपिष्टं वल्लप्रमाणां वटिकाञ्च कृत्वा ॥ ७६ ॥
प्रातर्विदध्यादपि चोष्णतोयैरियं निहन्याद् ग्रहणीविकारम्।
आमानुबन्धं सरुजं प्रवाहं ज्वरं तथा श्लेष्मभवं सशूलम् ॥ ७७ ॥
कुष्ठाम्लपित्तं प्रबलं समीरं मन्दानलं कोष्ठगतञ्च वातम्।
वटी लवङ्गादि वसुप्रणीता तथा सवातं विनिहन्ति शीघ्रम् ॥ ७८ ॥

लौंग, जायफल, धनियां, कूठ, श्वेत जीरा, काला जीरा, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, छोटी इलायची, दारचीनी, शुद्ध सुहागा, कौड़ीभस्म, मोथा, वच, अजमोदा (अजवाइन), विडनमक, सेंधानमक; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला लें। शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, प्रत्येक द्रव्य आधा २ तोला, लौहभस्म एक तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर घोट लें। इसे पान के रस से खरल करके डेढ़ रत्ति प्रमाण की गोली बनावें। रोगी प्रातःकाल गरम पानी से खावे। आमानुबन्ध ग्रहणी, पीड़ायुक्त प्रवाहिका, श्लेष्मज्वर, शूल, कुष्ठ, अम्लपित्त, प्रबल वायुरोग, मन्दाग्नि, कोष्ठगतवात, तथा वायु के अनुबन्ध युक्त अन्य रोगों को यह वसुप्रणीत लवङ्गादिवटी दूर करती है।

विशेषवचन—आमानुबन्ध युक्त वायुजनित अजीर्ण में विशेषतः जब ज्वर आदि उपद्रव हों तो इसका प्रयोग किया जाता है ॥ ७५—७८ ॥

जातिफलादिवटी—

जातीफलं लवङ्गञ्च पिप्पली सिन्धुकामृतम्।

शुण्ठीधुस्तूरबीजञ्च दरदं टङ्कणं तथा ॥ ७९ ॥
समं सर्वं समाहृत्य जम्भनीरेण मर्दयेत् ।
वल्लमाना वटी कार्य्या चाग्निमान्द्यप्रशान्तये ॥ ८० ॥

जायफल, लौंग, पिप्पली, सेंधानमक, शुद्ध विष, सोंठ, शुद्ध धतूरे के बीज, शुद्ध हिंगुल, भुना हुआ सुहागा। प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग लेकर खरल करे और जम्बीरी के रस से मर्दन कर के डेढ़ रत्ति प्रमाण गोली बनावे। इसके खाने से अग्निमान्द्य रोग दूर होता है।

विशेषवचन—यह वटी अर्शोऽधिकार में पूर्व भी कही जा चुकी है। वहां 'सिन्धुकामृतं' के स्थान पर 'सैन्धवं तथा' पाठ है। अर्थात् यहां विष अधिक है। इसकी एक रत्ती की गोली पर्याप्त है ॥ ७९—८० ॥

शङ्खवटी-

सार्द्धकर्षं रसेन्द्रस्य गन्धकस्य तथैव च ।
विषं कर्षत्रयं दद्यात् सर्वतुल्यं मरीचकम् ॥ ८१ ॥
दग्धशङ्खञ्च तत्तुल्यं पञ्च कर्षाणि नागरात् ।
स्वर्जिका रामठकणा-सिन्धुसौवर्चलं विडम् ॥ ८२ ॥
सामुद्रमौद्भिदञ्चैव भावयेन्निम्बुकद्रवैः ।
वटी ग्रहण्यम्लपित्तशूलघ्नी वह्निदीपनी ।
वह्निमान्द्यकृतान् रोगान् सामदोषं विनाशयेत् ॥ ८३ ॥

शुद्ध पारा डेढ़ कर्ष, शुद्ध गन्धक डेढ़ कर्ष, शुद्ध विष तीन कर्ष, मिरच का चूर्ण छः कर्ष, शंखभस्म छः कर्ष, सोंठ का चूर्ण पांच कर्ष, सज्जी, हींग, पिप्पली, सेंधानमक, सौंचलनमक, विडनमक, सामुद्र लवण तथा औद्भिद नमक; प्रत्येक का चूर्ण पांच कर्ष लेकर पीसकर नीबू के रस से भावना देवे और (एक रत्ति भर की) गोली बनावे। इसके सेवन से ग्रहणी, अम्लपित्त,

१ 'वटी जातीफलाद्येयमर्शोऽग्निमान्द्यनाशिनी' इत्यर्शोऽधिकारे पाठः।
२ 'शिग्रु' पा०।

शूलरोग नष्ट होते हैं। यह अग्नि को दीप्त करती है। अग्निमान्द्य से होने वाले रोगों तथा आम दोष को भी हटाती है।

विशेषवचन—कई सज्जी आदि द्रव्यों को डेढ़-डेढ़ कर्ष लेना उचित समझते हैं। सामान्य भावना नियम के अनुसार नीबू के रस की सात भावनायें होती हैं अथवा जबतक वटी स्वाद में अम्लरस न हो तब तक नीबू के रस की भावनायें दी जाती हैं।

इस रस का साधारण अनुपान—गरम जल है। अतिसार में तण्डुलोदक वा शीतल जल आदि। यह विष्टब्धाजीर्ण में अत्यन्त हितकर है। यह संग्राही वा संकोचक भी है॥ ८१-८३॥

चिन्तामणिरसः—

रसं गन्धं मृतं ताम्रं[1] मृतमभ्रं फलत्रयम्।
त्र्यूषणं दन्तिबीजञ्च[2] सर्वं खल्ले विमर्दयेत्॥ ८४॥
द्रोणपुष्पीरसैश्चापि[3] भावयेच्च पुनः पुनः।
अस्य मात्रा प्रदातव्या गुञ्जैका वा द्विगुञ्जिका॥ ८५॥
चिन्तामणिरसो ह्येष चाजीर्णे शस्यते सदा।
आमवातं ज्वरं हन्ति सर्वशूलनिसूदनः॥ ८६॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म तथा हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली; इन सबके चूर्ण, शुद्ध दन्तीबीज; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर खरल करें। और द्रोणपुष्पी अर्थात् गूमा के रस से सात वार भावना दें। इस की एक रत्ति या दो रत्ति की मात्रा दें। यह चिन्तामणिरस अजीर्ण आमवात ज्वर तथा सब प्रकार के शूल में लाभ करता है।

विशेषवचन—यह रस थोड़े से पाठभेद से ज्वराधिकार में २३७ पृष्ठ पर कहा जा चुका है। उस पाठ में शुद्ध विष अधिक है॥ ८४-८६॥

---

१ 'मृतं शुल्वं' पा०। २ 'बीजजैपालं समं' पा०। ३ 'द्रोणपुष्पीरसैर्भाव्यं शुष्कं तद्वस्त्रगालितम्। चिन्तामणिरसो ह्येष अजीर्णे शस्यते सदा। ज्वरमष्टविधं हन्ति सर्वशूलहरः परः। गुञ्जमेकं द्विगुञ्जं वा आमवातहरं परम्॥' पा०।

प्रदीपनो रसः-

रसनिष्कं गन्धनिष्कं निष्कमात्रं प्रदीपनम्।
मानमर्द्धं[1] प्रदातव्यं चुल्लिकालवणं भिषक् ॥ ८७ ॥
मर्दयित्वा प्रदातव्यमथास्य माषमात्रकम्।
अजीर्णे चाग्निमान्द्ये च दातव्यो रसवल्लभः ॥ ८८ ॥

शुद्ध पारा एक निष्क, शुद्ध गन्धक एक निष्क, चीते का चूर्ण एक निष्क, चुल्लिकालवण अर्थात् नौशादर डेढ़ निष्क ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलावे। इसकी एक माषा (६ रत्ती) मात्रा देवे तो अजीर्ण तथा अग्निमान्द्य दूर होता है। इसका नाम रसवल्लभ है।

विशेषवचन--प्रदीपन का अर्थ यहां चीता है। कई विष लेने को कहते हैं क्योंकि एक विशेष प्रकार का लाल विष भी "प्रदीपन" कहाता है। रसेन्द्रचिन्तामणि में राजवल्लभ नाम से एक रस है-

'शुद्धसूतं गन्धकं च तोलकैकं प्रदीपनम्।
चतुर्गुणं प्रदातव्यं चुल्लिकालवणं ततः॥
खल्वेन मर्दयेत्तत्तु सूक्ष्मवस्त्रेण गालयेत्।
माषमात्रः प्रदातव्यो भक्तमांसादिजारकः॥
अजीर्णेषु त्रिदोषेषु देयोऽयं राजवल्लभः॥'

इसके अनुसार पारा, गन्धक तथा प्रदीपन एक-एक तोला है और नौसादर चार तोला। यही रस पाठभेद से रसराजसुन्दर में भी है वहां-

'रसनिष्कं गन्धकैकं निष्कमात्रं प्रदीपनम्।
सार्द्धं पलं प्रदातव्यं चूलिकालवणं ततः॥'

शेष पाठ रसेन्द्रचिन्तामणि के सदृश ही है। इसके अनुसार पारद एक निष्क, गन्धक एक निष्क, तथा प्रदीपन एक निष्क और नौशादर डेढ़ पल है।

प्रकृतग्रन्थ के मूलपाठ और इसकी एकसङ्गति करने से यह ज्ञात होता है कि 'निष्क' प्रमाण से यहां 'पल' ही ग्रहण है।

---

१ 'पलमर्द्धं' पा०।

जो प्रदीपनविष से इस योग को तय्यार करने को कहते हैं वे 'माषमात्रकम्' से उड़दभर गोली बनाते हैं। उसकी आधुनिक मात्रा उड़द से भी अल्प ही होनी चाहिये।

कई नौसादर को एक भाग से आधा लेने को कहते हैं तब तो विष सम्पादित इस योग की मात्रा और भी अल्प होगी और 'मानमर्द्धं' के स्थान 'पलमर्द्धं' पाठान्तर की एकसङ्गति हो जायगी। योग दोनों ही प्रकार से बनाया जाता है॥ ८७-८८॥

विजयरसः—

रसस्यैकं पलं दत्त्वा नागञ्च गन्धकं पलम् ।
क्षारत्रयं पलं देयं लवङ्गं पलपञ्चकम् ॥ ८९ ॥
दशमूली जयाचूर्णं तद्द्रवेण तु भावयेत् ।
चित्रकस्य रसेनाथ भृङ्गराजरसेन तु ॥ ९० ॥
शिग्रुमूलद्रवैश्चापि ततो भाण्डे निरुध्य च ।
याममात्रं पचेदग्नौ मर्दयेदार्द्रकद्रवैः ।
ताम्बूलीपत्रसंयुक्तं खादेन्निष्कमितं सदा ॥ ९१ ॥

शुद्ध पारा एक पल, शुद्ध गन्धक एक पल, दोनों की कज्जली करें। सीस-भस्म एक पल (कई शुद्ध वत्सनाभ विष एक पल लेते हैं), यवक्षार, सज्जी, भूना हुआ सुहागा; प्रत्येक द्रव्य एक पल, लौंग का चूर्ण पांच पल, दशमूल, भांग; प्रत्येक का चूर्ण पांच पल ले। सब को मिला दशमूलक्वाथ तथा भांग चीता भांगरा और सुहांजने (सहिजन) की जड़; इनके रसों से भावनायें दें। शुष्क होने पर एक पात्र में सारे भावित चूर्ण को डाल मुंह बंदकर एक पहर तक अग्नि पर पकावें। फिर अदरक के रस से मर्दन करें। पान के पत्ते में रखकर एक निष्क भर खावें तो अजीर्ण आदि रोग नष्ट होते हैं।

विशेषवचन—इसे वालुकायन्त्र में अथवा भूधर पुट में पकाना उत्तम है। आधुनिक मात्रा एक मासा पर्यन्त है। विष से प्रस्तुत इस योग की मात्रा २ रत्ती होनी चाहिये।

सामान्य नियम के अनुसार दशमूलकाथ आदि की सात २ भावनायें देनी होंगी । अदरक के रस से एक वार ही मर्दन करना है ॥ ८९—९१ ॥

महाभक्तपाकवटी—

माक्षिकं रसगन्धौ च हरितालं मनःशिला ।
गगनं कान्तलौहञ्च सर्वमेतच्च कार्षिकम् ॥ ९२ ॥
त्रिवृद्दन्तीवारिवाहं चित्रकञ्च महौषधम् ।
पिप्पलीं मरिचं पथ्यां यमानीं कृष्णजीरकम् ॥ ९३ ॥
रामठं कटुकां पाठां सैन्धवं साजमोदकम् ।
जातीफलं यवक्षारं समभागं विचूर्णयेत् ॥ ९४ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च ।
सूर्य्यावर्त्तरसेनैव ज्योतिष्मत्या रसेन च ॥ ९५ ॥
आतपे भावयेद्वैद्यः कृत्वा गुञ्जामितां वटीम् ।
भक्षयेत् तां वटीं प्राज्ञो लवङ्गेन नियोजिताम् ॥ ९६ ॥
भुक्तोत्तरीये बहुभोजनान्ते आमानुबन्धे चिरवह्निमान्द्ये ।
विड्विग्रहे वातकफानुबन्धे शोथोदरानाहगदेऽप्यजीर्णे ॥ ९७ ॥
शूले त्रिदोषप्रभवे ज्वरे च शस्ता वटी भक्तविपाकसंज्ञा ।
सुखं विरेच्याशु नरस्य कोष्ठं मुहुर्मुहुर्वाञ्छयतीप्सितान्नम् ॥९८

स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध मनसिल, अभ्रकभस्म, कान्तलोहभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष लें । पहले पारा गन्धक की कज्जली करें, फिर अन्य द्रव्य मिलायें । त्रिवी, दन्तीमूल, मोथा, चीता, सोंठ, पिप्पली, मिरच, हरड़, अजवायन, काला जीरा, हींग, कुटकी, पाठा, सेंधानमक, अजमोदा, जायफल, यवक्षार; प्रत्येक द्रव्य के चूर्ण को एक २ कर्ष लें । सबको मिलाकर अदरक के रस से, निर्गुण्डी (सम्भालू) के रस से, सूरजमुखी के रस से, मालकंगनी के रस से धूप में भावना देकर एक२ रत्तिभर की गोली बनावें । उसे बुद्धिमान वैद्य रोगी को लौंग के चूर्ण से खिलावे । बहुत भोजन

खा लेने पर, आमानुबन्धयुक्त पुराने अग्निमान्द्य में, कब्ज़ में, वातकफ के अनुबन्ध से युक्त शोथ उदररोग आनाह वा अजीर्ण में, शूल में, त्रिदोषज ज्वर में भक्तविपाक वटी को देवे। यह भोजन के बाद दी जाती है। मनुष्य के कोष्ठ को सुखपूर्वक विरेचन करके (मलमूत्र द्वारा दोषनिर्हरण करके) यह बार बार भूख लगाती है।

विशेषवचन—थोड़े से पाठ भेद से यह वटी पूर्व भी (५० से ५५ श्लोकों द्वारा) कही जा चुकी है॥ ९२—९८॥

रसराक्षसः—

ताम्रं पारदगन्धकं त्रिकटुकं तीक्ष्णञ्च सौवर्चलं।
खल्ले मर्द्य दिनं निधाय सिकताकुम्भेषु यामं ततः।
स्विन्नं तेष्वपि रक्तशाकिनिभवं क्षारं समं भावयेत्
एकीकृत्य च मातुलुङ्गकजलैर्नाम्ना रसो राक्षसः॥ ९९॥

ताम्रभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोंठ, मिरच, पिप्पली, तीक्ष्णलोहभस्म, सौंचल नमक; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर दिन भर घोटें। पश्चात् बालुकायन्त्र में एक पहरभर स्वेदन करें फिर निकाल कर उस में लाल पुनर्नवा के क्षार को समभाग (ताम्रभस्म आदि के एक भाग के बराबर) डाले और मातुलुंग (बिजौरा) के रस से (सात दिन) भावना दें। यह रस राक्षस है।

विशेषवचन—इसकी मात्रा एक रत्ति की है। यह अजीर्ण तथा अग्निमान्द्य को नष्ट करता है।

इस रसका पाठ रसरत्नसमुच्चय में भी है—

'ताम्रं पारदगन्धकौ त्रिकटुकं तीक्ष्णं च सौवर्चलं
खल्वे मर्द्य दृढं निधाय सिकताकुम्भेऽष्टयामं ततः।
स्विन्नं तस्य च रक्तशाकिनिभवं क्षारं समं मेलये
त्सर्वं भावितमातुलुङ्गजरसैर्नाम्ना रसो राक्षसः॥
मन्दाग्नौ सततं ददीत मुनये प्रातः पुरा शङ्करः
सख्येऽस्मै च्यवनाय मन्दहुतभुग्वीर्याय नष्टौजसे।

तेनादाय समस्तलोकगुरवे सूर्याय तस्मै नमो
मर्त्यानामपि चास्य दानसमये गुञ्जाष्टकं वर्धयेत् ॥'

इस पाठ के अनुसार आठ याम पाक करने का विधान है और लाल पुनर्नवा का क्षार पकाने के बाद प्राप्त हुए सम्पूर्ण द्रव्य के बराबर है। यहां बताया है कि शङ्कर ने यह रस च्यवनमुनि को प्रयोग कराया था जब कि उसका वीर्य और ओज नष्ट हो चुका था, अग्नि मन्द हो गई थी। इससे यह भी स्पष्ट है कि यदि राजयक्ष्मा रोग में रोगी की अग्नि मन्द हो और वह च्यवनप्राश आदि को पचा न सकता हो तो पूर्व इसका प्रयोग कराकर अग्नि का दीपन कर लेना चाहिये और पीछे च्यवनप्राश आदि का प्रयोग करावें। अग्नि के मन्द होने पर च्यवनप्राश से लाभ की आशा न करनी चाहिये। यह सम्भव है कि च्यवनमुनि को च्यवनप्राश देने से पूर्व इस रस का प्रयोग कराया गया हो ॥ ९९ ॥

त्रिफलालौहम्—

त्रिफला[1]मुस्तवेल्लैश्च सितया कणया समम्।
खरमञ्जरिबीजैश्च लौहं भस्मकनाशनम् ॥ १०० ॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला, मोथा, वायविडंग, मिश्री, पिप्पली, अपामार्ग के बीज; इन सब के चूर्ण समभाग ले। तथा इसमें मिलित चूर्ण के समान लौह-भस्म मिलावे। इस त्रिफलालौह की (बलानुसार २ रत्ती से चार रत्ति तक की) मात्रा लें तो भस्मक[2]रोग दूर होता है ॥ १०० ॥

अपामार्गाद्यञ्जनम्–

अपामार्गस्य पत्रञ्च मरिचञ्च समं समम्।
अम्लशेलीयुतं पिष्टमञ्जनात् सूचिकां जयेत् ॥ १०१ ॥

---

१ 'त्रिफलामुस्तविडङ्गैः कणया सितया समैः। स्यात्खरमञ्जरिबीजैर्लौहो भस्मकनाशनः।' र. चि. पाठः।

२ 'कफे क्षीणे यदा पित्तं स्वस्थाने मारुतानुगम्। तीव्रं प्रवर्तयत्यग्निं तदा तं भस्मकं वदेत्।' इति भस्मकनिदानम्।

अपामार्ग के पत्ते, मिरच का चूर्ण, दोनों समभाग ले चांगेरी के रस से अच्छीप्रकार पीसकर अञ्जन करें तो विसूचिका रोग नष्ट होता है ॥ १०१ ॥

अग्निकुमारः—

टङ्कणं रसगन्धौ च समं भागत्रयं विषात् ।
कपर्दशङ्खयोस्त्र्यंशं वसुभागं मरीचकम् ॥ १०२ ॥
दिनं जम्भाम्भसा पिष्टं वल्लमात्रं प्रदापयेत् ।
विसूचीशूलविष्टम्भ–वह्निमान्द्ये ज्वरे तथा ।
अजीर्णे सङ्ग्रहण्याञ्च सिद्धश्चाग्निकुमारकः ॥ १०३ ॥

सुहागे की खील, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला, शुद्ध विष तीन तोला, कौड़ीभस्म तीन तोला, शंखभस्म तीन तोला, मिरच का चूर्ण आठ तोला लें। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्यों को मिलाकर खरल करें और जम्बीरी के रस से पीसें। इसे डेढ़ रत्ति मात्रा में दे। विसूची, शूल, विष्टम्भ, अग्निमान्द्य, ज्वर, अजीर्ण, संग्रहणी; इन रोगों को दूर करने में यह अग्निकुमार सिद्ध है।

विशेषवचन–इस रस का निर्देश पूर्व (१४, १५ श्लोकों से) भी हो चुका है। वहां नेत्र का अर्थ दो करके इससे भिन्न माना है। रसेन्द्रचिन्तामणि में एक और इससे भिन्न किन्तु कुछ मिलता जुलता अग्निकुमार रस है वह इतना संग्राही नहीं यतः उसमें शङ्खभस्म नहीं है और कौड़ीभस्म भी एक भाग है। शङ्खभस्म के स्थान पर सार्जिक्षार पिप्पली और सोंठ; प्रत्येक एक भाग हैं।

'टङ्कणं रसगन्धौ च समभागं त्रयं विषात् ।
कपर्दं सर्जिकाक्षारं मागधी विश्वभेषजम् ॥
पृथक् पृथक् कर्षमात्रं वसुभागं मरीचकम् ।
जम्बीराम्लैर्दिनं पिष्टं भवेदग्निकुमारकः ॥
विषूचीशूलवातादिवह्निमान्द्यप्रशान्तये ॥' १०२–१०३ ॥

अपरा शङ्खवटी–

द्वौ क्षारौ रसगन्धकौ सलवणौ क्षारेणं तुल्यं विषं

१ 'व्योषञ्च' भै. र. पाठः ।

चिञ्चाशङ्खचतुर्गुणं रसवरैर्लिम्पाकजातैः कृतम् ।
वारं वारमिदं सुपाकरचितं लौहं क्षिपेद्धिङ्गुकं
भूयष्टङ्कसमं सुमर्दितमिदं गुञ्जाप्रमाणं भजेत् ॥ १०४ ॥
ख्याता शङ्खवटी महाग्निजननी शूलान्तकृत् पाचनी
कासश्वासविनाशिनी क्षयहरी मन्दाग्निसन्दीपनी ।
वातव्याधिमहोदरादिशमनी तृष्णामयोच्छेदिनी
सर्वव्याधिनिसूदनी क्रिमिहरी दुष्टामयध्वंसिनी ॥ १०५ ॥

सज्जी, यवक्षार, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सेंधानमक, शुद्धविष; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला, इमलीक्षार चार तोला, शंखभस्म चार तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर सबको इकट्ठा मिला पीस कर नींबू के रस से सातवार भावना देवें। फिर शतपुटी लौहभस्म एक तोला, हींग एक तोला, शुद्ध सुहागा एक तोला; सबको मिला घोटकर एक रत्ति के समान गोली बनावें। यह शंखवटी अग्नि का अत्यन्त दीपन करती है। शूल को हटाती है, पाचन है। खांसी तथा दमे को नाश करती है। क्षय को हरती है। मन्द अग्नि का सन्दीपन करती है। वातव्याधि एवं महोदर आदि रोगों का नाश करती है। तृष्णा को शान्त करती है तथा इसीप्रकार के अन्य सब रोगों को दूर करती है। क्रिमि नाश करती तथा दुष्ट रोगों को दूर करती है।

विशेषवचन—भैषज्यरत्नावली के इस योग के पाठ में त्रिकटुचूर्ण; प्रत्येक १ भाग अधिक है। सुहागा के स्थान पर वहां वङ्गभस्म है ॥ १०४—१०५ ॥

इति अजीर्णचिकित्सा।

---

१ 'भृष्टं वङ्गसमं' भै. र. पाठः ।

अथ क्रिमिचिकित्सा ।

क्रिमिकालानलो रसः—

विडङ्गं द्विपलञ्चैव विषचूर्णं तदर्द्धकम् ।
लौहचूर्णं तदर्द्धञ्च तदर्द्धं शुद्धपारदम् ॥ १ ॥
रसतुल्यं शुद्धगन्धं छागीदुग्धेन पेषयेत् ।
छायाशुष्कां वटीं कृत्वा खादेत् षोडशरक्तिकाम् ॥ २ ॥
धान्यजीरानुपानेन क्रिमिकालानलो[1] रसः ।
उदरस्थं क्रिमिं हन्याद् ग्रहण्यर्शःसमन्वितम् ॥ ३ ॥
अग्निदः शोथशमनो गुल्मप्लीहोदरान् जयेत् ।
गहनानन्दनाथेन भाषितो विश्वसम्पदे ॥ ४ ॥

वायविडंग का चूर्ण दो पल, शुद्ध विष एक पल, लौहभस्म आधा पल, शुद्ध पारा चौथाई पल, शुद्ध गन्धक चौथाई पल लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर बकरी के दूध से खरल करें और १६ रत्ती की बटी बना छाया में सुखाकर रखें। इसे धनिया और जीरे के अनुपान से सेवन करें। यह क्रिमिकालानल रस कहाता है। इसे खाने से पेट के कीड़े नष्ट होते हैं तथा ग्रहणी, बवासीर नाश होती है। यह अग्निवृद्धि करता है, शोथ को शान्त करता है, गुल्म प्लीहा तथा उदर रोगों को जीतता है। यह रस लोकोपकार के लिये गहनानन्द ने कहा है।

विशेषवचन—आधुनिकमात्रा—आधी रत्ती। सबल रोगी को विचार कर एक रत्ती तक दे सकते हैं ॥ १—४ ॥

क्रिमिविनाशो रसः—

शुद्धसूतं समं गन्धमभ्रं लौहं मनःशिला ।
धातकी त्रिफला लोध्रो विडङ्गं रजनीद्वयम् ॥ ५ ॥

---

१ 'नाम्ना कालानलो रसः' पा० ।

भावयेत् सप्तधा सर्वं शृङ्गवेरभवै रसैः ।
चणमात्रां वटीं कृत्वा त्रिफलारससंयुताम् ॥ ६ ॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय क्रिमिरोगोपशान्तये ।
वातिकं पैत्तिकं हन्ति श्लैष्मिकञ्च त्रिदोषजम् ।
नाम्ना क्रिमिविनाशोऽयं क्रिमिरोगकुलान्तकः ॥ ७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, शुद्ध मनसिल तथा धाय के फूल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, लोध, वायविडंग हल्दी, दारुहल्दी; इन सबके चूर्ण; प्रत्येक समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर पीसें और अदरक के रस से सात बार भावना देवें। चने के समान गोली बनावें। इसे प्रातःकाल त्रिफला के रस से खावें तो क्रिमिरोग शान्त होता है। वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, त्रिदोषज तथा सब प्रकार के क्रिमियों को यह क्रिमिविनाशरस नाश करता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा–½ रत्ती से अधिक से अधिक एक रत्ति तक है ॥ ५—७ ॥

क्रिमिरोगारिरसः—

सूतं गन्धं मृतं लौहं मरिचं विषमेव च ।
धातकी त्रिफला शुण्ठी मुस्तकं सरसाञ्जनम् ॥ ८ ॥
पाठा त्रिकटु मुस्ता च बालकं बिल्वमेव च ।
भावयेत् सर्वमेकत्र स्वरसैर्भृङ्गजैस्ततः ॥ ९ ॥
वराटिकाप्रमाणेन भक्षणीयो विशेषतः ।
क्रिमिरोगविनाशाय रसोऽयं क्रिमिनाशनः ॥ १० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म तथा मिरच, शुद्ध किया हुआ विष, धाय के फूल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मोथा, रसौंत, पाठा, सोंठ, मिरच, पिप्पली, मोथा, सुगन्धवाला, बेलगिरी; इन सबके चूर्ण; प्रत्येक समभाग लेकर भांगरे के रस की भावनायें देकर एक कौड़ी भर क्रिमिरोग के नाश के लिये खावें। यह क्रिमिनाशन रस है।

विशेषवचन–इसमें जो द्रव्य दो वार कहे गये हैं उनके दो-दो भाग होते हैं। आधुनिक मात्रा–२ रत्ती है ॥ ८–१० ॥

कीटमर्दो रसः—

शुद्धसूतं शुद्धगन्धो ह्यजमोदा विडङ्गकम् ।
विषमुष्टिः ब्रह्मबीजं क्रमाद् द्वित्रिगुणं भवेत् ॥ ११ ॥
चूर्णयेन्मधुना मिश्रं निष्कैकं क्रिमिजिद्भवेत् ।
कीटमर्दो रसो नाम मुस्ताक्वाथं पिबेदनु ॥ १२ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला ले कज्जली करें। फिर अजवायन का चूर्ण तीन तोला, विडंगका चूर्ण चार तोला, शुद्ध कुचला पांच तोला तथा ढाक के बीज छः तोला क्रम से लें। इन सब को पीसकर शहद के साथ मिला एक निष्क भर खावें तो यह क्रिमियों को नाश करता है। यह कीटमर्द रस कहाता है। इसे खाकर मोथे का क्वाथ पीवे।

विशेषवचन–यहां "क्रमाद्द्वित्रिगुणं भवेत्" के स्थान में "यथाक्रमगुणोत्तरम्" तथा "क्रमोत्तरगुणं भवेत्" तथा "क्रमाद्द्विगुणितं भवेत्" पाठ भी हैं। "ब्रह्मबीज" का अर्थ संस्कृत टीकाकार ने "भार्गी के बीज" किया है। वह ठीक नहीं, यहां ढाक के बीज ही लें।

यही का यही योग क्रिमिमुद्गर नाम से आगे कहा गया है। यदि 'ब्रह्मबीजं' के स्थान पर भैषज्यरत्नावली के अनुसार 'ब्रह्मदण्डी' पाठ हो तो कथंचित् ब्राह्मणयष्टी वा भारंगी ली जा सकती है। इसका व्यवहार्य भाग जड़ है। राजनिघण्टु में भारंगी को भी कृमिनाशक कहा है–

'भार्गी तु कटुतिक्तोष्णा कासश्वासविनाशिनी ।
शोफव्रणक्रिमिघ्नी च दाहज्वरनिवारिणी ॥'

और तब यह पृथक् योग हो सकता है। मोथा क्वाथ का अनुपान तब दिया जाता है जब रोगी को क्रिमियों के कारण आतिसार भी साथ हो। इसे सुधोदक (चूने के जल) के साथ भी आध्मान आदि होने पर दे सकते हैं। आधुनिक मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक ॥ ११–१२ ॥

---

१ 'ब्रह्मदण्डी' भै.र.पाठः। २ 'लेह्यं' पा०। ३ 'कीटभद्रः' पा०। ४ 'मुस्तातोयं' पा०।

क्रिमिघ्नो रसः-

क्रिमिघ्नकिंशुकारिष्ट-बीजं सुरसभस्मकम् ।
वल्लद्वयं चाखुपर्णी-रसैः क्रिमिविनाशनम् ॥ १३ ॥

वायविडंग, ढाक के बीज, नीम के बीज, और उत्तम रससिन्दूर ; प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर पीसकर तीन रत्तिभर की गोली बनावें और रोगी को मूषकपर्णी के रस से दें तो क्रिमि नाश होते हैं ॥ १३ ॥

क्रिमिमुद्गरो रसः—

क्रमेण वृद्धं रसगन्धकाजमोदाविडङ्गं विषमुष्टिका च ।
पलाशबीजश्च विचूर्णमस्य निष्कप्रमाणं मधुनाऽवलीढम् ॥ १४ ॥
पिबेत् कषायं घनजं तदूर्ध्वं रसोऽयमुक्तः क्रिमिमुद्गराख्यः ।
क्रिमिं निहन्यात् क्रिमिजांश्च रोगान् सन्दीपयत्यग्निमयं त्रिरात्रात् १५

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला, अजवायन तीन तोला, वायविडंग का चूर्ण चार तोला, शुद्ध कुचला पांच तोला, पलाश अर्थात् ढाक के बीज छः तोला लें । पहले पारा गन्धक की कज्जली करें । फिर अन्य द्रव्यों को मिलाकर पीसकर रखें । इसे क्रिमिमुद्गर रस कहते हैं । रोगी इसको एक निष्क भर लेकर शहद से चाटे और ऊपर से मोथे का क्वाथ पीवे । यह क्रिमिमुद्गर रस क्रिमि तथा क्रिमियों से उत्पन्न होने वाले रोगों का नाश करता है । तीन दिन प्रयोग करने से ही अग्नि को प्रदीप्त करता है ।

विशेषवचन—इस की मात्रा १ रत्ति से २ रत्ती तक है । इसे क्रिमिपातन के लिये अनन्नास के पत्तों के रस, नीम के पत्तों के रस वा फरहद के पत्तों के रस से देते हैं । थोड़े से भेद से क्रिमिघातिनी गुटिका तन्त्रान्तरों में कही है । यहां शुद्ध कुचला ५ भाग और ढाक के बीज ६ भाग हैं । वहां ढाक के बीज ५ भाग और शुद्ध कुचला ६ भाग है । शेष द्रव्यों का प्रमाण एक सा ही है—

'रसगन्धाजमोदानां कृमिघ्नब्रह्मबीजयोः ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्च तिन्दोबीजस्य[2] षट् क्रमात् ॥

१ 'सरसभस्मकम्' पा० । २ 'भागान् सविषतिन्दुकान्' र. र. स. पाठः ।

सञ्चूर्ण्यं मधुना सर्वं गुटिकां कृमिघातिनीम्[1] ।
खादेत्पिबासुस्तोयञ्च मुस्तानां कृमिशान्तये[2] ॥
आखुपर्णीकषायञ्च पिबेच्चानु सशर्करम्[3] ॥' १४-१५ ॥

क्रिमिधूलिजलप्लवो रसः—

पारदं गन्धकं शुद्धं वङ्गं शङ्खं समं समम् ।
चतुर्णां योजयेत् तुल्यं पथ्याचूर्णं भिषग्वरः ॥ १६ ॥
दण्डयन्त्रेण निर्मथ्य पटोलस्वरसं क्षिपेत् ।
कार्पासबीजसदृशीं कुर्य्याद्वै यत्नतो वटीम् ।
त्रिवटीं भक्षयेत् प्रातः शीततोयं पिबेदनु ॥ १७ ॥
केवलं पैत्तिके योज्यः कदाचित् वातपैत्तिके ।
श्रीमद्गहननाथोक्तः क्रिमिधूलिजलप्लवः ॥१८ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, वंगभस्म, शङ्खभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। सब के समान हरड़ का चूर्ण लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलावें और पटोलपत्र का स्वरस डालकर घोटें और कपास के बीज के समान गोली बनावें। प्रातः तीन गोली खाकर ऊपर से ठण्डा पानी पीवें। इसे केवल पित्तज क्रिमिरोग में प्रयोग करें। कदाचित् बातपित्तज क्रिमिरोग में भी प्रयोग करा सकते हैं। यह श्रीमान् गहनानन्द का कहा क्रिमिधूलिजलप्लव रस है।

विशेषवचन—यह रस गुदा के निकटस्थ अति क्षुद्र श्वेत क्रिमियों का नाश करता है ॥ १६—१८ ॥

क्रिमिकाष्ठानलो रसः—

विशुद्धं पारदं गन्धं वङ्गं तालं वराटकम् ।
मनःशिला कृष्णकाचं सोमराजी विडङ्गकम् ॥ १९ ॥

---

१ 'कृमिनाशिनीम्' र. र. स. पाठः ।
२ 'खादयित्वानु तोयं च' र. र. स. पाठः ।
३ 'शर्करां पिव सर्वथा' र. र. स. पाठः ।

दन्तीबीजञ्च जैपालं शिला टङ्कणचित्रकम् ।
कर्षमात्रन्तु प्रत्येकं वज्रीक्षीरेण मर्दयेत् ॥ २० ॥
कलायसदृशीं कृत्वा वटिकां भक्षयेत् ततः ।
क्रिमिकाष्ठानलो नाम रसोऽयं परिनिर्मितः ।
श्लैष्मिके श्लेष्मपित्ते च श्लेष्मवाते च शस्यते ॥ २१ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, बंगभस्म, शुद्ध हड़ताल, कौड़ी भस्म, शुद्ध मनसिल, काला नमक, सोमराजी के बीज (काली जीरी), वायविडंग, दन्ती के शुद्ध बीज, शुद्ध जमालगोटा, शुद्ध मनसिल, सुहागा, चीता; प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष लेकर थोहर (सेहुण्ड) के दूध से मर्दन करके छोटे मटर के समान गोली बना कर रखें। इसका नाम क्रिमिकाष्ठानलरस है। इसे श्लैष्मिक श्लेष्म-पित्तज श्लेष्मवातज क्रिमिरोग में देने से लाभ होता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा-आधी रत्ती।

मनःशिला के एक बार कहने से दुबारा 'शिला' से कई शिलाजीत लेते हैं। कोई 'शिला' के स्थान पर 'शिवा' पाठ चाहते हैं तब हरड़ लेनी चाहिये। यह रस क्रिमिरोग में मलबद्धता होने पर देना चाहिये ॥ १९–२१ ॥

लाक्षादिवटी—

लाक्षाभल्लातश्रीवास-श्वेतापराजिताशिफाः ।
अर्जुनस्य फलं पुष्पं विडङ्गं सर्जगुग्गुलू ॥ २२ ॥
एभिः[2] कीटाश्च शाम्यन्ते धूपितैश्च[3] गृहे सदा ।
भुजङ्गा मूषिका दंशाः घुणा[4] लूताश्च मत्कुणाः ।
दूरादेव पलायन्ते क्लिन्नकीटाश्च ये स्मृताः[5] ॥ २३ ॥

---

१ 'विडङ्गमजगुग्गुलुः' पा०।

२ 'एभिः कृतेन धूपेन शाम्यन्ति नियतं गृहे। भुजङ्गमूषिकालूताः पलायन्ते गृहात्सदा।' र. र. पाठः।

३ 'तिष्ठतापि' पा०। ४ 'सङ्घनामा मतङ्गजाः' पा०। ५ 'पराः' पा०।

लाख, भिलावा, बिरोज़ा, श्वेत विष्णुक्रान्ता की जड़, अर्जुन अर्थात् कौह वृक्ष के फल और फूल, वायविडंग, राल, गूगल; इन सबको समभाग पीसकर वटी बना रखें। अंगारों पर रख घर में धूप दें तो सब प्रकार के कीड़े नष्ट हो जाते हैं। सांप, चूहे, दंश (डांस, गोमाक्षिका), घुण, मकड़ी, खटमल, तथा क्लिन्न अर्थात् सील वाले स्थानों में उत्पन्न होने वाले सभी कीट इस धूप की गन्ध से दूर से ही भाग जाते हैं।

विशेषवचन — कमरा बन्द करके इस धूप का धूपन करे। इसके धुएं से आदमी को बचना चाहिये ॥ २२-२३ ॥

क्रिमिहरो रसः—

शुद्धसूतमिन्द्रयवमजमोदां मनःशिलाम् ।
पलाशबीजं[1] गन्धश्च देवदाल्या द्रवैर्दिनम् ॥ २४ ॥
सम्मर्द्य भक्षयेन्नित्यं[2] शालपर्णीकषायकम्[3][4] ।
सितायुक्तं पिबेच्चानु क्रिमिपातो भवत्यलम् ॥ २५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, इन्द्रजौ का चूर्ण, अजमोदा अर्थात् अजवायन का चूर्ण, शुद्ध मनसिल, ढाक के बीज; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलावें और बंदालडोडे के रस में एक दिन घोटकर सुखा लें। इसे (आधी रत्ति मात्रा में) खाकर ऊपर से मिश्री मिला शालपर्णी का क्वाथ पीवें। कीड़े अवश्य बाहिर निकल जाते हैं।

विशेषवचन— कहीं कहीं जैसे रसरत्नसमुच्चय में इस योग में गन्धक नहीं कही। परन्तु यतः गन्धक के विना शुद्ध पारद का प्रयोग हानिकर होता है। अतः गन्धक तो डालनी ही होगी। अथवा ऐसे स्थलों पर रससिन्दूर लिया जाता है। रसरत्नाकर में भी इस योग का गन्धकरहित पाठ करके नीचे कहा है कि गन्धकयुक्त भी यह योग है। यहां पर अनुपान में शालपर्णी का रस

१ 'तुल्यांशं' र. र. स पाठः। २ 'निष्कं' र. र. पाठः।
३ 'मुद्गपर्णीरसैः सह' भै. र. पाठः। 'आखुपर्णीकषायकम्' र. र. स. पाठः।
४ 'रसैः सह' प्रचलितः पाठः।

कहा है, भैषज्यरत्नावली प्रभृतिमें मुद्गपर्णी है। इनमें से शालपर्णी कृमि-नाशक नहीं है परन्तु तिक्तरस तथा शोफ एवं वात आदि दोष की नाशक होने से कुछ लाभ करेगी। मुद्गपर्णी को धन्वन्तरिनिघण्टु में कृमिघ्न कहा है—

'मुद्गपर्णी हिमा स्वादुर्वातरक्तविनाशिनी।
पित्तदाहज्वरान् हन्ति कृमिघ्नी कफशुक्रनुत्॥'

परन्तु यह भी अधिक लाभकर नहीं होती। वस्तुतः अनुपान का ठीक पाठ रसरत्नसमुच्चय में है। वहां आखुपर्णी (चूहाकन्नी) का क्वाथ कहा है। यह कृमिघ्न प्रसिद्ध है। वैद्यकनिघण्टु आदि में इसे कृमिघ्न कहा भी है। यह कृमिनाशक होने के साथ कृमिरोग में होने वाले शूल आनाह ज्वर आदि को भी हटाती है। पाचक भी है। क्रिमिघ्न रस में भी आखुपर्णीक्वाथ कहा जा चुका है। क्रिमिमुद्गर रस की टीका में उद्धृत कृमिघातिनी वटिका में भी खांड युक्त आखुपर्णी के क्वाथ का ही अनुपान बताया है।

भैषज्यरत्नावली में इस योग का नाम कीटारि रस है॥ २४-२५॥

विडङ्गलौहम्—

रसं गन्धश्च मरिचं जातीफललवङ्गकम्।
शुण्ठी टङ्कं कणा तालं प्रत्येकं भागसम्मितम्॥ २६॥
सर्वचूर्णसमं लौहं विडङ्गं सर्वतुल्यकम्।
लौहं विडङ्गकं नाम कोष्ठस्थक्रिमिनाशनम्॥ २७॥
दुर्नाम ह्यरुचिश्चैव मन्दाग्निश्च विसूचिकाम्।
शोथं शूलं ज्वरं हिक्कां श्वासं कासं विनाशयेत्॥ २८॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक तथा मिरच, जायफल, लौंग, सोंठ; इन सब के चूर्ण, शुद्ध सुहागा, पिप्पली का चूर्ण, शुद्ध हड़ताल; प्रत्येक एक२ भाग लें। सब के समान लोहभस्म लें। और इस सबके समान वायविडंग का चूर्ण होना चाहिये। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलायें। सब को पीसकर रखलें। इस विडंगलौह से कोष्ठ के क्रिमि नाश होते हैं। यह बवासीर, अरुचि, मन्दाग्नि, विसूचिका शोथ, शूल, ज्वर, हिचकी, श्वास, कास सब रोगों को हटाता है।

विशेषवचन-इसकी मात्रा एक रत्ती से चार रत्ती तक है। जब उदर में कृमि होने के कारण ज्वर श्वास कास भी हों तो इसे देते हैं। भैषज्यरत्नावली में टङ्क (सुहागा) के स्थान पर वङ्ग है ॥ २६-२८ ॥

अथ पाण्डु-कामला-चिकित्सा ।

निशालौहम्-

लौहचूर्णं निशायुग्मं त्रिफला-रोहिणीयुतम्[1] ।
प्रलिह्यात् मधुसर्पिर्भ्यां कामलापाण्डुशान्तये ॥ १ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कुटकी; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग लें। सब के बराबर लौहभस्म लें (लौहभस्म के अभाव में मण्डूर भस्म डालें)। सबको पीसकर घी और शहद से खावें तो कामला और पाण्डुरोग अच्छा होता है।

विशेषवचन—इसका नाम तन्त्रान्तर में द्विहरिद्राद्य लौह है। आधुनिक मात्रा-२ रत्ती। इसे मधु और गिलोय के रस के साथ देते हैं। ज्वरयुक्त कामला में अत्यन्त हितकर है ॥ १ ॥

धात्रीलौहम्—

धात्रीलौहरजोव्योष-निशाक्षौद्राज्यशर्कराः[2] ।
भक्षणाच्च[3] विनिघ्नन्ति कामलाञ्च हलीमकम् ॥ २ ॥

१ 'निशायुक्तं त्रिफला कटुरोहिणी। प्रलिह्य मधुसर्पिर्भ्यां कामलार्त्तः सुखी भवेत्' इति क्वचित्पाठः।

२ 'निशाक्षौद्राक्षशर्कराः' पा०।

३ 'लेहो निवारयत्याशु कामलामुद्धतामपि' भै. र. पाठः। 'लौहो निवारयेत्तस्य कामलां सहलीमकाम्' र. चि. पाठः। 'भक्षणाद्विनिहन्त्याशु' पा०। 'लीढा निवारयत्याशु कामलामुद्धतामपि' र. र. पाठः।

आंवले का चूर्ण, लौहभस्म, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हल्दी, इन के चूर्ण; इन्हें एकत्र मिला घी, शहद और खांड के साथ खावें तो कामला तथा हलीमक रोग नष्ट होता है।

विशेषवचन—लौह की प्रधानता होने से पूर्व योग के सदृश ही शेष ५ द्रव्यों के मिलित चूर्ण के समान लौहभस्म ली जायगी। मात्रा—२ रत्ती। इसे मधु घी और खांड में मिलाकर चाटना चाहिये ॥ २ ॥

पञ्चाननवटी—

शुद्धसूतं तथा गन्धं मृतताम्राभ्रगुग्गुलु।
जैपाल[1]बीजं तुल्यांशं घृतेन वटकीकृतम् ॥ ३ ॥
भक्षयेद्बदरास्थ्याभं शोथपाण्डुप्रशान्तये।
पञ्चाननवटी ख्याता पाण्डुरोगकुलान्तिका ॥ ४ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध गुग्गुल, शुद्ध जमालगोटा; प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर घी से झरबेरी के बेर की गुठली के समान गोली बनावें। इसके सेवन से शोथ और पाण्डुरोग दूर होता है। इसका नाम पञ्चाननवटी है। यह सब पाण्डुरोगों को नष्ट करती है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा-एक रत्तिभर। सब द्रव्यों के समान जमालगोटे का चूर्ण लें, ऐसा भी प्राचीन टीकाकारों ने लिखा है तब आधी रत्ती की गोली ही पर्याप्त है। इसमें अनुपानार्थ द्रोणपुष्पी (गोमा) का रस आदिष्ट है। यदि इस रस में से अभ्रकभस्म को निकाल दिया जाय तो पाण्डुसूदन रस होता है। वह आगे कहा ही जायगा ॥ ३—४ ॥

प्राणवल्लभो रसः—

हिङ्गुलसम्भवं सूतं काश्मीरोद्भव[2]गन्धकम्।
लौहं ताम्रं वराटश्च तुत्थं हिङ्गु फलत्रिकम् ॥ ५ ॥

---

१ 'जैपालबीजतुल्यञ्च' 'जैपालबीजतुल्यांशं' पा०।

२ 'गन्धं काश्मीरसम्भवम्' पा०।

स्नुहीक्षीरं[1] यवक्षारो जैपालः दन्तिकं[2] त्रिवृत् ।
प्रत्येकं शाणभागन्तु[3] छागीक्षीरेण पेषयेत् ॥ ६ ॥
चतुर्गुञ्जां वटीं खादेद् वारिणा मधुना सह ।
प्राणवल्लभनामायं गहनानन्दभाषितः ॥ ७ ॥
श्लेष्मदोषं समालोक्य युक्त्या च त्रुटिवर्द्धनम् ।
निहन्ति कामलां पाण्डुमानाहं श्लीपदं तथा ॥ ८ ॥
गलगण्डं गण्डमालां व्रणानि[4] च हलीमकम् ।
शोथं शूलमुरुस्तम्भं सङ्ग्रहग्रहणीं जयेत्[5] ॥ ९ ॥
वान्ति[6] मूर्च्छां भ्रमिं[7] दाहं कासं श्वासं गलग्रहम् ।
असाध्यं सन्निपातञ्च जीर्णज्वरमरोचकम् ॥ १० ॥
वातरक्तं[8] तथा शोषं कण्डूं विस्फोटकापचीम् ।
नातः परतरं किञ्चित्[9] कामलार्त्तिरुजापहम् ॥ ११ ॥

हिंगुल से निकाला हुआ पारा, काश्मीर देश में उत्पन्न हुई गन्धक या आमलासार शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, कौड़ीभस्म, शुद्ध नीलाथोथा (तूतिया), हींग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, थोहर (सेहुण्ड) का दूध, जौखार, शुद्ध जमालगोटा, दन्तीमूल, त्रिवी (निसोत); प्रत्येक द्रव्य एक २ शाण लेकर बकरी के दूध से पीसे। फिर चार रत्ति प्रमाण की गोली बनाकर जल से वा शहद से रोगी खावे। यह प्राणवल्लभ नामक रस गहनानन्द ने कहा है। श्लेष्मदोष बढ़ा हो तो युक्तिपूर्वक पूर्व अल्प मात्रा से प्रारम्भ कर थोड़ा थोड़ा बढ़ाते हुए पूर्ण मात्रा तक देना चाहिये। इससे कामला, पाण्डु, आनाह,

---

१ 'स्नुहीमूलं' भै. र. पाठः ।
२ 'टङ्कणं' भै. र. पाठः । ३ 'तु समं भागं छागीदुग्धेन भावयेत्' पा० ।
४ 'कृच्छ्राणि' भै. र. पाठः । ५ 'तथा' पा० ।
६ 'हन्ति' पा० । ७ 'वमिं हिक्कां' पा० ।
८ 'जलदोषभवं शोथं महोग्रञ्च जलोदरम्' भै. र. पाठः । ९ 'श्रेष्ठं' पा० ।

श्लीपद, गलगण्ड, गण्डमाला, व्रण, हलीमक, शोथ, शूल, ऊरुस्तम्भ, संग्रहग्रहणी, वमन, मूर्च्छा, श्रम, दाह, कास, श्वास, गलग्रह, असाध्य सान्निपात, जीर्णज्वर, अरोचक, वातरक्त, शोषरोग, कण्डूरोग, विस्फोटक, अपची आदि नाश होते हैं। इससे बढ़कर कामला रोग की और कोई औषध नहीं है।

विशेषवचन—"काश्मीरदेशोद्भव" का अर्थ काश्मीरी केसर भी है अतः कई उसे भी पारे के समान लेते हैं। आधुनिक सामान्य मात्रा—१रत्ती। अधिक से अधिक बढ़ाकर तीन रत्ति तक लेजा सकते हैं। वमन को रोकने के लिये तो इसे अत्यल्प मात्रा में देना चाहिये।

इस रस को शोथ और जलोदर में भी दिया जा सकता है। क्रूरकोष्ठ व्यक्ति के लिये ही यह रस उत्तम है ॥ ९—११ ॥

कामेश्वरो रसः—

पलं सूतं पलं गन्धं पथ्याचित्रकयोः पलम् ।
मुस्तैलापत्रकाणाञ्च प्रति सार्द्धपलं क्षिपेत् ॥ १२ ॥
त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं विषञ्चापि[1] पलं न्यसेत् ।
नागकेशरकं[2] कर्षमेरण्डस्य पलं तथा ॥ १३ ॥
पुरातनगुडेनैव तुल्येनैव विमिश्रयेत् ।
मर्दयेत् कनकद्रावैर्भावयेच्च[3] घृतान्वितम् ॥ १४ ॥
वटिकां बदरास्थ्याभां कारयेद् भक्षयेन्निशि ।
पाण्डुरोगहरः[4] सोऽयं रसः कामेश्वरः स्वयम् ॥ १५ ॥

शुद्ध पारा एक पल, शुद्ध गन्धक एक पल, दोनों की कज्जली करे। फिर हरड़ का चूर्ण एक पल, चीते का चूर्ण एक पल, मोथे का चूर्ण डेढ पल, छोटी इलायची का चूर्ण डेढ पल, तेजपात का चूर्ण डेढ पल, सोंठ का चूर्ण एक पल, मिरच का चूर्ण एक पल, पिप्पली का चूर्ण एक पल, पिप्पलीमूल का चूर्ण एक पल, शुद्ध विष का चूर्ण एक पल, नागकेशर का चूर्ण एक कर्ष, एरण्ड का चूर्ण

---

१ 'विषञ्चैव पलं पलम्' पा० । २ 'नागकेशरकर्षैकं' पा० ।
३ 'यामैकं वा' र. र. पाठ । ४ 'शोथपाण्डुहरः' र. र. पाठः ।

एक पल डालें। सबको खरल करके सारे चूर्ण के समान पुराना गुड मिलावें। फिर धतूरे के रस से मर्दन करें और शुष्क होने पर घी से भावित कर छोटे बेर की गुठली के बराबर गोली बना लें और रात को सोते समय रोगी को दें। यह पाण्डुरोग को नाश करने वाला है। स्वयं कामेश्वर है।

विशेषवचन—इसकी आधुनिक मात्रा–१ रत्ती से ३ रत्ती तक है। रसरत्नसमुच्चय में पाठभेद से यह रस है—

'पलं सूतं पलं गन्धं वज्री पथ्या त्रयं त्रयम्।
मुस्तैलापत्रकाणां च प्रति सार्धं पलं क्षिपेत्॥
त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं विषं चैव पलं पलम्।
नागकेसरकर्षैकं रेणुकार्धपलं तथा॥
पुरातनगुडेनैव तुलार्धेन विपाचयेत्।
मर्दयेत्कन्यकाद्रावैर्यामैकं तं घृतेन च॥
गुटिकां बदराभां तु कारयेद्भक्षयेन्निशि।
शोफपाण्डुहरः सोऽयं रसः कामेश्वरः स्वयम्॥'

यहां चित्रक के स्थान पर वज्री (सेहुण्ड) है। हरड़ और सेहुण्ड की जड़ का प्रमाण यहां तीन तीन पल है। एरण्ड के स्थान पर रेणुका है और इसका प्रमाण आधा पल कहा है। पुराना गुड ५० पल बताया है। गुड में कुछ जल देकर अग्नि पर पकाना है। ठीक पक जाने पर उक्त चूर्ण डालकर मिलाते हैं। पीछे घीकुमार के रस से एक प्रहर मर्दन करके घी से गुटिका बनानी है। इसे पाण्डु और उसमें उत्पन्न शोथ में प्रयुक्त कराते हैं।

एक योग और भी है जो प्रकृतग्रन्थोक्त कामेश्वर रस से मिलता जुलता है, उसका नाम वहां विजया वटिका है।

' पलत्रयं हरीतक्याश्चित्रकस्य पलत्रयम्।
एलात्वक्पत्रमुस्तानां भागोऽर्धपलिको मतः॥
रेणुकार्धपलं प्रोक्तं तदर्धं नागकेसरम्।
व्योषं च पिप्पलीमूलं विषं च पलमात्रकम्॥
रसः पलः पलो गन्धः सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।
पुरातने गुडे पक्वे तुलार्धे तद्विनिक्षिपेत्॥

हिमस्पर्शं तु मृद्नीयाद् घृतेनाक्त्वा करं बुधः।
बदरास्थिप्रमाणेन विजया गुटिका मता॥
निशायां खादयेदेनां शोफपाण्डुविनाशिनीम्॥'

इसमें वज्री (सेहुण्ड) नहीं, है तो चित्रक ही परन्तु प्रमाण हरड़ और चित्रक का तीन-तीन पल ही है। इसमें दालचीनी अधिक है। मोथा दालचीनी छोटी इलायची और तेजपत्र प्रत्येक का भाग आधा-आधा पल है। रेणुकाबीज आधा पल है, एरण्ड नहीं है। नागकेसर एक कर्ष ही है। त्रिकटु, पिप्पलीमूल और शोधित विष प्रत्येक द्रव्य एक पल ही हैं। पारा और गन्धक भी एक-एक पल ही लेने को कहे हैं। पुराना गुड आधी तुला (५० पल) लेकर पकाना है। गुड को पका कर प्रक्षेप काल में चूर्ण डाल मिला लें। पीछे ठण्डा होने पर हाथ को घी से चुपड़ औषध को अच्छी प्रकार मलें और गोलियां बना लें। रात्रि को सोते समय प्रयोग करावें। यह शोथ और पाण्डु का नाशक है। इसमें धतूरे वा घीक्वार से मर्दन नहीं करना है॥ १२—१५॥

त्रिकत्रयाद्यं लौहम्—

मलं लौहस्य किट्टस्य पलं गव्यस्य सर्पिषः।
सितायाश्च पलश्चैकं क्षौद्रस्यापि पलं तथा॥ १६॥
तोलकं कान्तलौहस्य त्रिकत्रयसुभावितम्[1]।
ततः पात्रे विधातव्यं लौहे च मृन्मये तथा॥ १७॥
हविषा[2] भावितश्चापि रौद्रे च शिशिरे तथा।
भोजनादौ तथा मध्ये चान्ते चापि प्रदापयेत्[3]॥ १८॥
अनुपानं प्रदातव्यं बुद्ध्वा दोषबलाबलम्।
कामलां पाण्डुरोगश्च सुदारुणंहलीमकम्[4]।

१ 'त्रिकत्रयसमन्वितम्' भै. र. पाठः।
२ 'भावितं मधुसर्पिर्भ्यां रौद्रे शिशिर एव च।' भै. र. पाठः।
३ 'चैव प्रयोजयेत्' पा०। ४ 'श्वयथुं च सुदारुणम्' भै. र. पाठः। अस्यानन्तरं च 'अम्लपित्तं तथा शूलं शूलञ्च परिणामजम्। कासं पञ्चविधं

निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १६ ॥

मण्डूरभस्म एक पल, गौ का घी एक पल, मिश्री एक पल, शहद एक पल, कान्तलोहभस्म एक तोला; इन्हें एकत्र लोहे या मिट्टी के पात्र में त्रिफला, त्रिकुटा तथा त्रिमद (विडंग, मोथा और चीता); इनके क्काथों से भली भांति भावनायें दें और घी से भावित कर धूप और शिशिर में रखें। इसे भोजन के आदि में मध्य में और अन्त में सेवन करें। दोष के बलाबल को देखकर अनुपान दें। इससे कामला, पाण्डु तथा भयंकर हलीमक रोग दूर होता है, इसमें सन्देह नहीं, जैसे सूर्य से अन्धकार दूर होता है।

विशेषवचन—अधुनिक मात्रा—तीन या चार रत्ती है। सबसे पूर्व गोमूत्र-शोधितमण्डूरभस्म और कान्तलौहभस्म को खरल में अच्छीप्रकार घोटें और त्रिफला क्काथ, त्रिकटु क्काथ तथा त्रिमद क्काथ की भावनायें (सात-सात) दें। सूख जाने पर खांड मिलावें और मर्दन करें। पीछे से घी और मधु मिलाकर घोटें और दिन में धूप में रखें और रात को बाहिर हिम में रखें। पुनः घी और मधु मिलाने की आवश्यकता नहीं। प्रतिदिन केवल घोटकर ही धूप में और रात्रि को बाहिर हिम में रखदें। ऐसा सात दिन करना चाहिये।

'त्रिकत्रयसुभावितम्' के स्थान पर 'त्रिकत्रयसमान्वितम्' पाठ भी है। और वही उचित भी प्रतीत होता है। तब त्रिकटु, त्रिफला और त्रिमद के प्रत्येक द्रव्य के चूर्ण को एक-एक तोला प्रमाण में लेकर औषध को तय्यार किया जाता है। तब मात्रा ३ रत्ती से ६ रत्ती तक जानें।

'पल' से इस योग में चार तोला लेना चाहिये। परन्तु उसे आठ तोला मान कर भी इस योग को वैद्य बनाते हैं॥

यह योग सिद्धफल है ॥ १६—१६ ॥

विडङ्गादिलौहम्—

विडङ्गमुस्तात्रिफला—देवदारुषड्रूषणैः।

श्वासं ज्वरं प्लीहानमेव च ॥ अपस्मारं तथोन्मादमुदरं गुल्ममेव च। अग्निमान्द्य-मजीर्णंच श्वयथुं च सुदारुणम् ॥' इत्यधिको गुणनिर्देशपाठः क्वचिदुपलभ्यते ॥

१ अस्यानन्तरं च 'त्रिकत्रयादिरित्येष वाग्भटेन प्रकाशितः' इत्यधिक उपलभ्यते भैषज्यरत्नावल्याम्।

तुल्यमात्रमयश्चूर्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥ २० ॥
तैरक्षमात्रां गुडिकां कृत्वा खादेद् दिने दिने।
कामलापाण्डुरोगार्त्तः सुखमाप्यतेऽचिरात् ॥ २१ ॥

वायविडंग, मोथा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, देवदार, सोंठ, पिप्पली, पीपलामूल, चव्य, चीता, मरिच (सोंठ आदि ६ द्रव्य षड्रूषण कहाते हैं); प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला लें। लौहभस्म बारह तोले डालें। फिर लौहभस्म से आठ गुणा अर्थात् ९६ तोले गोमूत्र डालकर पकावें। ठीक पाक होजाने पर एक अक्ष (कर्ष) भर की गोली बना लें। प्रतिदिन योग्य मात्रा में खाने से कामला और पाण्डुरोग के रोगी शीघ्र नीरोग होते हैं।

विशेषवचन—लोहे से आठ गुणा गोमूत्र लेकर केवल लोह को उसमें पकाना चाहिये अन्य द्रव्य पीछे से उस में मिलावें और वटी बना लें। विडङ्ग आदि के चूर्ण और लौहभस्म के मिलित प्रमाण से आठ गुना गोमूत्र लेकर भी बहुत से वैद्य पाक करते हैं। आधुनिक मात्रा—२ रत्ती की पर्याप्त है।

त्रिविक्रम आदि का मत है कि चूर्ण, लोहभस्म और गोमूत्र सब इकट्ठा ही डालकर पाक करना चाहिये ॥ २०—२१ ॥

अन्यविडङ्गादिलौहम्—

विडङ्गत्रिफला व्योषं शुद्धलौहन्तु तत्समम्।
पुरातनगुडेनाथ लेहयेद् दिनसप्तकम्।
श्वयथुं नाशयेत् शीघ्रं पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ २२ ॥

वायविडंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली; सब द्रव्यों के चूर्ण समभाग लें। सब के समान लौहभस्म मिलावें। पुराने गुड़ के साथ उचित मात्रा में चटाने से सातदिन में सूजन पाण्डुरोग तथा हलीमक रोग नष्ट होते हैं।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा–२ रत्ती ॥ २२ ॥

त्रैलोक्यसुन्दरो रसः—

मानश्चैकं ततः सूतं षडभ्रं वसुलौहकम् ।
गन्धकं त्रिफलाव्योष-चूर्णं मोचरसस्य च ॥ २३ ॥
मुषली चामृतासत्त्वं प्रत्येकं पञ्चभागिकम् ।
भावयेत् सर्वमेकत्र त्रिफलानां कषायके ॥ २४ ॥
भावना विंशतिर्देया दशरात्रं सुभावनाः ।
शिग्रुचित्रकमूलाभ्यामष्टधा च पृथक् पृथक् ॥ २५ ॥
सितया च समं क्षौद्रैः शोथपाण्डुक्षयापहः ।
ज्वरातिसारसंयुक्त-सर्वोपद्रवनाशनः ॥ २६ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, अभ्रक भस्म छः तोला, लोहभस्म आठ तोला, शुद्ध गन्धक, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, मोचरस, मूसली; इन सब के चूर्ण, गिलोय का सत; प्रत्येक द्रव्य पांच पांच तोले लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर त्रिफला क्वाथ से दस दिन में बीस भावनायें दें। फिर सुहांजने की तथा चीते की जड़ के क्वाथ की आठ २ भावना दें। यह त्रैलोक्यसुन्दर रस एक निष्क भर ले मिश्री तथा शहद के साथ खाने से शोथ, पाण्डु, क्षय तथा ज्वर और अतिसार से युक्त सब उपद्रवों को नष्ट करता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा तीन या चार रत्ति है। ज्वर तथा अतिसार युक्त पाण्डुरोग में यह विशेषतः प्रयुक्त होता है।

योगरत्नाकर में एक त्रैलोक्यनाथ रस है जिसमें लगभग द्रव्य यही हैं पर उनके प्रमाण में और भावनाओं में भेद है।

'पलानि चत्वारि रसस्य पञ्च गन्धस्य सत्त्वस्य गुडूचिकायाः ।
व्योषस्य चूर्णस्य च तालमूल्याः सशाल्मलस्येह पलत्रयं स्यात् ॥
पृथक् पृथक् षड् गगनस्य चाष्टौ लोहस्य सर्वं त्रिफलाजलेन ।
घृष्टं चतुःषष्टिदिनं तदर्धाः स्युर्भावना मार्कवजद्रवस्य ॥

शिग्रुत्थनीरेण च षोडशाष्टौ तथानलोत्थाद् गृहकन्यकायाः।
आर्द्रद्रवस्येति रसोऽयमुक्तः पाण्डुक्षयश्वासगदादिहर्त्ता॥
क्षौद्रेण वा शर्करया घृतेन कर्षार्धमेतस्य भजेत्प्रयत्नात्॥'

यहां शुद्ध पारद ४ पल, शुद्ध गन्धक २ पल, सत गिलोय, त्रिकटु, मूसली, मोचरस; प्रत्येक द्रव्य ३ पल, अभ्रकभस्म ६ पल, लौहभस्म ८ पल; इन्हें एकत्र यथाविधि मिला त्रिफलाक्वाथ से ६४ दिन, भांगरे के रससे ३२ दिन, सहिजन की जड़ के रस से १६ दिन, चित्रक क्वाथ, घीकुमार का रस और अदरक का रस; प्रत्येक से ८ दिन भावनायें दे। इसे मधु अथवा घी और खांड से दिया जाता है।

रसरत्नसमुच्चय में भी त्रैलोक्यसुन्दर रस है—

रसगन्धकलोहाभ्रगुडूचीसत्वसूकराः।
त्रिफलाशिग्रुमूलानि भृङ्गसारेण भावयेत्॥
त्रैलोक्यसुन्दरः सोयं सघृतक्षौद्रशर्करः।
मृगाङ्कवत्पथ्यभुजः पाण्डुशोषं नियच्छति॥'

इस उपलब्ध पाठ के अनुसार पारा, गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, सत गिलोय, वाराहीकन्द; प्रत्येक १ भाग, त्रिफला, सहिजन की जड़; प्रत्येक १ भाग लेकर भांगरे के रस से भावनायें देनी हैं। परन्तु शायद पाठ में कुछ प्रमाद हो—'त्रिफलाशिग्रुमूलाग्निभृङ्गसारेण भावयेत्' ऐसा पाठ हो तब वाराही कन्दपर्यन्त द्रव्यों को मिलाकर त्रिफलाक्वाथ, सहिजन की मूली (जड़) का रस, चित्रक क्वाथ और भांगरे की भावनायें देनी होंगी। इसे भी घी मधु और खांड के साथ पाण्डु वा शोष रोग में देते हैं। २३—२६॥

दार्व्यादिलौहम्—

दार्वीसत्रिफलाव्योष-विडङ्गान्ययसो रजः।
मधुसर्पिर्युतं लिह्यात् कामलापाण्डुरोगवान्॥ २७॥
शालिषष्टिकगोधूम-यवमुद्गादयो हिताः।
रसाश्च जाङ्गलभवा मधुराः पाण्डुरोगिणाम्॥ २८॥

१ 'अत्र सर्वचूर्णसमं लौहम्' इति रसरत्नाकरकारः।

दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, वायविडंग; इनका चूर्ण कर प्रत्येक को समभाग लें। सबके समान लौहभस्म मिला घोटकर रखें। इस दार्व्यादिलौह को शहद तथा घी से मिलाकर खावें तो पाण्डु और कामला रोग अच्छे होते हैं।

विशेषवचन—मात्रा-२ रत्ती। कहीं यह दार्व्यादिलेह नाम से भी है वहां लौहभस्म भी एक भाग ही लेते हैं। पाण्डु के रोगी के लिये शालिचावल, सांठी के चावल, गेहूं, जौ, मूंगी आदि तथा जांगल जीवों के मधुर रस पथ्य हैं॥ २७—२८॥

चन्द्रसूर्यात्मको रसः—

सूतकं गन्धको लौहमभ्रकञ्च पलं पलम्।
शङ्खं[1] वराटकञ्चैव प्रत्येकार्द्धपलं हरेत्॥ २९॥
गोक्षुरबीजचूर्णञ्च पलैकं तत्र दीयते।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं बाष्पयन्त्रे विभावयेत्॥ ३०॥
पटोलः पर्पटी भार्गी विदारी शतपुष्पिका।
दन्ती[2] वासा कुण्डली च काकमाचीन्द्रवारुणी॥ ३१॥
वर्षाभूः केशराजश्च शालिञ्ची द्रोणपुष्पिका।
प्रत्येकार्द्धपलैर्द्रावैर्भावयित्वा वटीं चरेत्[3]॥ ३२॥
चतुर्दशवटीं खादेत् छागीदुग्धानुपानतः।
गहनानन्दनाथोक्तश्चन्द्रसूर्य्यात्मको रसः॥ ३३॥
हलीमकं निहन्त्याशु पाण्डुरोगं सकामलम्।
जीर्णज्वरं सविषममम्लपित्तमरोचकम्[4]॥ ३४॥
शूलं प्लीहोदरानाहमष्ठीलागुल्मविद्रधीन्।

---

१ 'शङ्खटङ्कवराटञ्च' भै. र. पाठः। २ 'कुण्डली दण्डिनी वासा' पा०।
३ 'कुरु' पा०। ४ 'सविषमं रक्तपित्तमरोचकम्' पा०।

शोथं मन्दानलं हिक्कां कासं श्वासं वमिं भ्रमिम् ॥ ३५ ॥
भगन्दरोपदंशौ च दद्रुकण्डूव्रणापचीः ।
ऊरुस्तम्भमामवातं दाहं तृष्णां कटीग्रहम् ॥ ३६ ॥
युक्तो मण्डेन मद्येन मुद्गयूषेण वारिणा ।
गुडूचीत्रिफलावांसा–क्काथनीरेण वा क्वचित् ॥ ३७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ पल, शंखभस्म आधा पल, कौड़ीभस्म आधा पल, गोखरू के बीज का चूर्ण एक पल लें। पहिले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य उचित क्रम से मिलायें और घोटें। सबको पीसकर बाष्पयन्त्र में आगे लिखी औषधों के रस से भावित करें। पटोलपत्र, पित्तपापड़ा, भार्गी, विदारीकन्द, सोये, दन्तीमूल, बांसा, गिलोय, मकोय, इन्द्रायण, पुनर्नवा, केशराज, शालिञ्च शाक, गूमा; प्रत्येक का आधा आधा पल रस लेकर भावना दें और गोली बना लें। चौदह गोली सेवन करें। बकरी का दूध अनुपान है। यह चन्द्रसूर्यात्मक रस गहनानन्द ने कहा है। हलीमक, पाण्डु, कामला, जीर्णज्वर, विषमज्वर, अम्लपित्त, अरोचक, शूल, प्लीहा, उदररोग, आनाह, अष्ठीला, गुल्म, विद्रधि, शोथ, मन्दाग्नि, हिचकी, कास, श्वास, वमन, भ्रम, भगन्दर, उपदंश, दद्रु, कण्डू, व्रण, अपची, ऊरुस्तम्भ, आमवात, दाह, तृष्णा, कटीग्रह (कमरदर्द) सबको दूर करता है। इस रस को दोष आदि के अनुसार कहीं मण्ड से, मद्य से, मूंग के रस से, जल से, गिलोय के स्वरस से, त्रिफला के क्काथ से या बांसे (अडूसे) के रस से देते हैं।

विशेषवचन- इसकी गोली एक रत्ती से चार रत्ती पर्यन्त की बनायी जा सकती है।

बाष्पयन्त्र से अभिप्राय कइयों ने तप्तखल्व लिया है, परन्तु यह हमारी सम्मति में अयुक्त है। बाष्पयन्त्र से रसरत्नसमुच्चय में कहा गया वलभीयन्त्र लेना चाहिये।

---

१ 'रास्ना' भै. र. पाठः।

'यत्र लोहमये पात्रे पार्श्वयोर्वलयद्वयम् ।
तादृक् स्वल्पतरं पात्रं वलयप्रोतकोष्ठकम् ॥
पूर्वपात्रोपरि न्यस्य स्वल्पपात्रे परिक्षिपेत् ।
रसं सम्मूर्च्छितं स्थूलपात्रमापूर्य काञ्जिकैः ॥
द्वियामं स्वेदयेदेवं रसोत्थापनहेतवे ।
एतत्स्याद्वलभीयन्त्रं रससादूगुण्यकारकम् ।
सूक्ष्मकान्तमये पात्रे रसः स्याद्गुणवत्तरः ॥'

अर्थात् दो पात्र ले । एक बड़ा हो और दूसरा कुछ छोटा । बड़े पात्र के ऊपर के सिरे पर दो पार्श्वों में अन्दर की ओर आमने सामने स्थिर वलय (कुण्डे) होने चाहियें । इस पर छोटा पात्र टिक जायगा । छोटे पात्र को भी उठाने आदि के लिये बाहिर की ओर वलय होने चाहियें । नीचे के बड़े पात्र में जल भर दें और ऊपर के छोटे पात्र में जो चौड़ाई में थोड़ा सा छोटा होता है औषध और भावना का द्रव डाल दें । नीचे से आग दें । आग देने से नीचे के पात्र के जल से गरम भाप उठेगी और उस भाप से ऊपर का पात्र गरम होगा और भावनाद्रव का जलीयांश उड़ जायगा । एक द्रव के सूखने पर दूसरा द्रव डाल दें । इसप्रकार सब द्रवों को सुखा लें । इस में जहां भावना का जल शीघ्र सूख जाता है वहां औषध भी नहीं जलती ।

पाठान्तर के अनुसार शुद्ध सुहागा भी आधा पल डालते हैं । दन्ती के स्थान पर भावनाओं में भैषज्यरत्नावली में दण्डिनी है । इससे दण्डोत्पला लेते हैं । अनुपानों में गिलोय त्रिफला और अडूसा इन द्रव्यों को एकत्र मिलाकर भी क्वाथ बना सकते हैं । अडूसा के स्थान पर कहीं रास्ना भी है पर अडूसे का प्रयोग ही अधिक लाभकर है ॥ २९—३७ ॥

पाण्डुसूदनरसः—

रसं गन्धं मृतं ताम्रं जयपालञ्च गुग्गुलुम् ।
समांशमाज्यसंयुक्तां गुडिकां [1]कारयेद्भिषक् ॥ ३८ ॥
एकैकां [2]भक्षयेन्नित्यं पाण्डुशोथ[3]प्रशान्तये ।

---

१ 'कारयेन्मिताम्' र. चि. पाठः । २ 'खादयेद्वैद्यः' पा० ।
३ 'शोथपाण्ड्वपनुत्तये' पा० ।

शीतलञ्च जलं चाम्लं वर्जयेत् पाण्डुसूदने ॥ ३९ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, शुद्ध जमालगोटा, शुद्ध गुग्गुलु; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। गुग्गुलु को घी से कूट ले और पीछे से उसमें कज्जली तथा अन्य द्रव्य मिला कर पुनः कूटे और (एक रत्ति भर की) गोली बना ले। एक गोली नित्य खावे तो पाण्डुरोग, और शोथ दोनों शान्त होते हैं। इस रस के सेवनकाल में रोगी ठण्डा जल और खटाई त्याग दे।

रसरत्नसमुच्चय में यह जयपालरस नाम से है। 'शीतलञ्च' इत्यादि वहां नहीं पढ़ा ॥ ३८—३९ ॥

मण्डूरवज्रवटकः—

पञ्चकोलं समरिचं देवदारु फलत्रिकम्।
विडङ्गमुस्तयुक्ताश्च भागास्त्रिपलसम्मिताः ॥ ४० ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि मण्डूरं द्विगुणं[1] ततः।
पक्त्वा चाष्टगुणे मूत्रे घनीभूते तदुद्धरेत् ॥ ४१ ॥
ततो[2]ऽक्षमात्रान् वटकान् पिबेत् तक्रेण तक्रभुक्।
पाण्डुरोगं जयत्याशु मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ ४२ ॥
अर्शांसि ग्रहणी[3]दोषमूरुस्तम्भमथापि वा।
क्रिमिं प्लीहान[4]मानाहं गलरोगञ्च नाशयेत्।
मण्डूरवज्रनामायं रोगानीकप्रणाशनः ॥ ४३ ॥

पिप्पली, पिप्पलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, मिरच, देवदार, हरड़, बहेड़ा, आंवला, विडंग, मोथा; प्रत्येक का चूर्ण तीन २ पल ले। सब चूर्ण से दुगुना मण्डूरभस्म ले। मण्डूर से आठ गुणा गोमूत्र लेकर पहले गोमूत्र में मण्डूर

---

१ 'त्रिगुणं' यो. र. पाठः। २ 'तत्कर्षमात्रां वटिकां' र. र. पाठः।
३ 'ग्रहणीं शोफमूरुस्तम्भं हलीमकम्' इति योगरत्नाकरे पाठः।
४ 'प्लीहानमुदरं' पा०।

को पकावे। जब उचित गाढा हो जाये तो पिप्पली आदि का चूर्ण डाले। और मिलाकर एक अक्ष (कर्ष) बराबर वटक बना के छाछ के साथ खावे। छाछ का ही पथ्य लेवे। इससे पाण्डुरोग, मन्दाग्नि, अरोचक, बवासीर, ग्रहणीदोष, ऊरुस्तम्भ, क्रिमिरोग, प्लीहा, आनाह, गलरोग आदि सब रोग नष्ट होते हैं। यह मण्डूरवज्र नामक वटक अनेक रोगों का नाश करते हैं।

विशेषवचन—अन्यत्र इसके नीचे परिभाषार्थ एक श्लोक दिया है—

'निर्वाप्य बहुशो मूत्रे मण्डूरं ग्राह्यमिष्यते।
ग्राहयन्त्यष्टगुणितं मूत्रं मण्डूरचूर्णतः॥'

अर्थात् मण्डूर को तपा तपाकर गोमूत्र में बहुत वार बुझाना चाहिये जब तक कि वह चूर्णरूप में न होजाय। चूर्णरूप होजाने पर ही योग में बर्तें। परन्तु हमारी सम्मति में उसके पश्चात् भी गोमूत्र योग से ही पुटों द्वारा भस्म करली जाय तो अत्युत्तम है। इस योग में गोमूत्र मण्डूर से आठ गुना लिया जाता है। योग की आधुनिक मात्रा तीन या चार रत्ती की है। इसे शोथ युक्त पाण्डुरोग में अथवा प्लीहोदर वा यकृदुदर से उत्पन्न पाण्डु वा कामला में देते हैं॥ ४०—४३॥

लघ्वानन्दरसः—

पारदं गन्धकं लौहं विषमभ्रकमेव च।
समांशं[1] मरिचश्चाष्टौ टङ्कणश्च चतुर्गुणम्॥ ४४॥
भृङ्गराजरसैश्चाम्लवेतसैः सप्त भावनाः।
गुञ्जाद्वयं पर्णखण्डे खादेत् सायं[2] निहन्ति च॥ ४५॥
पाण्डुता[3]मरुचिश्चैव मन्दाग्निं ग्रहणीं ज्वरम्।
वातश्लेष्मभवान् रोगान् जयेदाचिरसेवनात्॥ ४६॥

---

१ 'भृङ्गराजरसैः सप्त भावनाश्चाम्लदाडिमैः' इत्यन्यत्र पाठः।
२ 'सोऽयं निहन्ति तान्' पा०।
३ 'वातश्लेष्मभवान् रोगान् मन्दाग्निं ग्रहणीं ज्वरान्। अरुचिं पाण्डुताश्चैव जयेदचिरसेवानात्॥ नष्टमग्निं करोत्येष कालभास्करतेजसम्। पर्वतोऽपि हि जीर्येत प्राशनादस्य देहिनः॥ गुर्वन्नमम्लमाषञ्च भक्षणादेव जीर्यति॥' पा०

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, शुद्ध विष, अभ्रकभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक तोला, मरिच चूर्ण आठ तोला, शुद्ध सुहागा चार तोला लें। पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य उचित क्रम से मिलाकर मर्दन करें और भांगरे के रस से, अम्लवेत के रस से पृथक् सात २ भावना देकर दो रत्तिभर की गोलियां बनालें। इसे पान के पत्ते में रखकर सायंकाल खावें। यह पाण्डु, अरुचि, मन्दाग्नि, ग्रहणी, ज्वर तथा वातश्लेष्मज रोगों को दूर करता है।

विशेषवचन—अम्लवेतस के स्थान पर (अम्लदाडिमैः) खट्टे अनार के रस से यह भी पाठ है। शहद आदि अन्य अनुपान भी दोषानुसार दिये जा सकते हैं। जब अग्नि अत्यन्त मन्द हो तब इसका प्रयोग होता है। 'रसेन्द्रचिन्तामणि' में तो यह लघ्वानन्द नाम से ही है, परन्तु अन्यत्र लब्धानन्द नाम भी है। 'भैषज्यरत्नावली' में इस योग का नाम आनन्दोदय है। लब्धानन्द और आनन्दोदय एकार्थ ही हैं॥ ४४—४६॥

सम्मोहलौहः—

त्रिकटु त्रिफला वह्निविडङ्गे लौहमभ्रकम्।
एतानि समभागानि घृतेन वटिकां कुरु॥ ४७॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च हृद्रोगं शोथमेव च।
भगन्दरं कोष्ठक्रिमिं[1] मन्दानलमरोचकम्॥ ४८॥
तान् सर्वान् नाशयेदाशु वलवर्णाग्निवर्द्धनः।
सम्मोहलौहनामाऽयं पाण्डुरोगे च पूजितः॥ ४९॥

सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चीता, वायविडंग, लोहभस्म, अभ्रकभस्म; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग लें। घी से मर्दन कर (दो रत्तिभर की) गोली बनालें। इससे कामला, पाण्डु, हृद्रोग, शोथ, भगन्दर, पेट के कीड़े, मन्दाग्नि, अरुचि; ये सब रोग दूर होते हैं। बल वर्ण और अग्नि बढ़ते हैं। यह सम्मोहलौह पाण्डुरोग में भी उत्तम है।

---

१ 'क्रिमिं कुष्ठं' पा०।

विशेषवचन—इसे चार पांच रत्ति तक देसकते हैं। इससे मिलता जुलता नवायसचूर्ण भी पाण्डु और कामला में अत्यन्त प्रसिद्ध योग है, उसमें अभ्रक के स्थान पर मोथा है और लौहभस्म सर्वसम है।

'त्र्यूषणत्रिफलामुस्तविडङ्गचित्रकाः समाः।
नवायोरजसो भागास्तच्चूर्णं मधुसर्पिषा॥
भक्षयेत्पाण्डुहृद्रोगकुष्ठार्शःकामलापहम्॥'४७—४९॥

त्र्यूषणादिमण्डूरम्—

स्विन्नमष्टगुणे मूत्रे लौहकिट्टं सुशोधितम्।
पाकान्ते त्र्यूषणं वह्नि-वरादार्वीसुरद्रुमान्॥ ५०॥
विडङ्गबीजचूर्णञ्च मुस्तं किट्टसमं क्षिपेत्।
प्रातः कर्षं भजेदस्य जीर्णे तक्रौदनं भजेत्॥ ५१॥
हलीमकं पाण्डुरोगमर्शांसि श्वयथुं तथा।
ऊरुस्तम्भं जयेदेतत् कामलां कुम्भकामलाम्॥ ५२॥

गोमूत्र एक सेर (८० तोला) लेकर उसमें दस तोला मण्डूरभस्म डालकर पकावें। पाकशेष काल में उस में सोंठ, मिरच, पिप्पली, चीता, हरड़, बहेड़ा, आंवला, दारुहल्दी, देवदारु, विडंग के बीज, मोथा; इन सबका चूर्ण (मिलित) दस तोला डालकर अच्छीप्रकार मिला वटक बना लें। इसे एक कर्ष भर प्रातःकाल खावें। पचने के बाद छाछ और चावल का भोजन रोगी करे। यह हलीमक, पाण्डुरोग, अर्शरोग, सूजन, ऊरुस्तम्भ, कामला, कुम्भकामला को दूर करता है।

विशेषवचन—इसे चार रत्ति मात्रा में आजकल दिया जाता है। मण्डूर की प्रधानता होने से मण्डूरभस्म अन्य द्रव्यों के चूर्णों के मिलित प्रमाण के समान होगी। इसे भी तक्र के साथ ही प्रयोग कराते हैं। कई मण्डूर के समान पृथक् चूर्णों को लेते हैं पर वह ठीक नहीं। एक और त्र्यूषणादिमण्डूर का योग है जो बहुधा पाण्डुरोग में प्रयुक्त कराया जाता है—

'त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकौ।
दार्वीत्वङ्माक्षिको धातुर्ग्रन्थिकं देवदारु च॥

एषां द्विपलिकान् भागांश्चूर्णं कृत्वा पृथक् पृथक् ।
मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाच्छुद्धमञ्जनसन्निभम् ॥
मूत्रे चाष्टगुणे पक्त्वा तस्मिंस्तु प्रक्षिपेत्ततः ।
उदुम्बरसमान् कृत्वा वटकांस्तान् यथाग्नि तु ॥
उपयुञ्जीत तक्रेण सात्म्यं जीर्णे च भोजनम् ।
मण्डूरवटका ह्येते प्राणदाः पाण्डुरोगिणाम् ॥
कुष्ठान्यरोचकं शोथमूरुस्तम्भं कफामयान् ।
अर्शांसि कामलां मेहान् प्लीहानं शमयन्ति च ॥'

इसमें त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, वायविडङ्ग, चव्य, चित्रक, दारुहल्दी की छाल (अथवा दारुहल्दी और दालचीनी), स्वर्णमाक्षिकभस्म, पिप्पलीमूल, देवदारु; प्रत्येक समभाग हैं और इनके मिलित चूर्ण से दुगुनी मण्डूरभस्म है, मण्डूरभस्म से आठगुना गोमूत्र है ।

इससे मिलता जुलता ही हंसमण्डूर नाम से भी एक योग है—

'गोमूत्रेऽष्टगुणे लोहकिट्टं प्राग्विपचेत्ततः ।
फलत्रयाम्बुदव्योषं विडङ्गं ग्रन्थिकाग्निकम् ॥
चव्यदार्वीन्द्रफलदान् समान् सञ्चूर्ण्य चूर्णकम् ।

१ रसरत्नसमुच्चय में भी यह योग है—'मण्डूरं मर्दयेच्छ्लक्ष्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् । त्र्यूषणं त्रिफला मुस्ता विडङ्गं चव्यचित्रकौ ॥ दार्वी ग्रन्थिर्देवदारु तुल्यं तुल्यं विचूर्णयेत् । घृतं मण्डूरतुल्यं च पाकान्ते मिश्रयेत्ततः ॥ भक्षयेत्कर्षमात्रं च जीर्णान्ते तक्रभोजनम् । पाण्डुरोगं हलीमं च ऊरुस्तम्भं च कामलाम् । अर्शांसि हन्ति नो चित्रं हंसमण्डूरकाह्वयम् ॥' यहां 'तुल्यं तुल्यं विचूर्णयेत्' का यही अभिप्राय है कि त्रिकुटा त्रिफला आदि द्रव्य परस्पर समान होने चाहियें । परन्तु इनका मिलित चूर्ण मण्डूरभस्म के समप्रमाण होगा । इसमें पाक के पश्चात् मण्डूरभस्म के समान घी मिलाने का विधान विशेष है । योगरत्नाकर में भी यह योग है वहां दारुहल्दी नहीं, पिप्पली के दो भाग हैं—'मण्डूरं चूर्णयेच्छ्लक्ष्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् । पञ्चकोलं देवदारु मुस्ता व्योषं फलत्रयम् । विडङ्गं स्यात्प्रतिपलं पाकान्ते चूर्णितं क्षिपेत् । भक्षयेत्कर्षमात्रं च तक्रे तक्रं च भोजनम् । पाण्डुं शोफं हलीमं च ऊरुस्तम्भं च कामलाम् । अर्शांसि हन्ति नो चित्रं हंसमण्डूरको ह्ययम् ॥'

तत्सर्वं तत्र तुल्यं च क्षिपेत्कर्षमितं तथा ।
भोक्तव्यमौषधे जीर्णे पथ्यं तक्रेण भोजनम् ॥
हंसमण्डूरनामायं रसः सर्वरसाग्रणीः ।
घ्नन्ति पाण्डुरुजः सर्वाः सहलीमककामलाः ॥
ऊरुस्तम्भं तथा शोथमुन्मूलयति मूलतः ॥ '

इसमें त्रिफला, मोथा, त्रिकटु, वायविडङ्ग, पिप्पलीमूल, चित्रक, चव्य, दारुहल्दी, इन्द्रफलद (इन्द्रद्रुम=देवदारु); ये सब एक एक भाग, मण्डूर-भस्म सर्वसम और गोमूत्र मण्डूर से आठ गुना है ॥ ४०—४२ ॥

कामला-चिकित्सा—

पाण्डुरोगोदिता योगा घ्नन्ति ते कामलामपि ॥ ५३ ॥

जो योग पाण्डुरोग में कहे हैं वे कामला रोग का भी नाश करते हैं ॥५३॥

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वा रसः ।
प्रातर्माक्षिकसंयुक्तः शीलितः कामलापहः ॥ ५४ ॥

त्रिफला का क्वाथ, गिलोय का स्वरस, दारुहल्दी का क्वाथ या नीम का रस; प्रातःकाल शहद मिलाकर पीवें तो कामलारोग नष्ट होता है ।

विशेषवचन—ये पृथक् स्वतन्त्र योग भी हैं परन्तु रसग्रन्थ में यह वचन कामला में केवल योगों के अनुपान का निदर्शक जानना चाहिये ॥ ५४ ॥

इति पाण्डुकामलाचिकित्सा ।

अथ रक्तपित्त-चिकित्सा ।

अर्केश्वरो रसः—

मृतार्कं मृतवङ्गञ्च[1] मृताभ्रञ्च समाक्षिकम् ।
अमृतास्वरसैर्[2] भाव्यं[3] पुटे त्रिःसप्तकं पचेत्[4] ॥ १ ॥

---

१ 'सूतवङ्गौ' पा० । २ 'अमृताम्बुरसैः' पा० ।
३ 'भाव्यमेकविंशतिवारकम्' पा० । ४ 'त्रिःसप्तकं पुटे पचेत्' पा० ।

वासाक्षीरविदारीभ्यां चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः।
भक्षणाद्विनिहन्त्याशु रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ २ ॥

ताम्रभस्म, बंगभस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। सब को मिलाकर गिलोय के स्वरस से भावना दे देकर इक्कीस बार पुट दें। फिर इसे निकालकर पीस रखें। इस अर्केश्वर रस की चार रत्ति की मात्रा लेकर बांसा (अडूसा) के या क्षीरविदारीकन्द के स्वरस के साथ दें तो शीघ्र ही भयंकर रक्तपित्त भी दूर होता है।

विशेषवचन—कई 'अमृतास्वरसैर्भाव्यं त्रिःसप्तकं पुटे पचेत्' ऐसा पाठ करके गिलोय के रस की २१ भावना देकर एक पुट दे देते हैं। इस रस की आधुनिक मात्रा २ रत्ती है। यदि रक्तपित्त में रोगी को ज्वर हो, प्लीहा वा यकृत् बढ़े हुए हों वा अपनी क्रिया ठीक न कर रहे हों तब इसका प्रयोग होता है ॥ १—२ ॥

सुधानिधिरसः—

सूतं गन्धं माक्षिकञ्चैव लौहं सर्वं घृष्ट्वा त्रैफलेनोदकेन।
लौहे पात्रे गोमयैः[1] पाचयित्वा रात्रौ दद्याद्रक्तपित्तप्रशान्त्यै ॥ ३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, स्वर्णमाक्षिकभस्म, लोहभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिलावे। लोहे के पात्र में इस चूर्ण को और त्रिफला के क्वाथ को डालकर उपलों की आग से पकावे। पक चुकने पर एक रत्ति की गोली बनाकर रखे। इसे रात्रि को देवे तो रक्तपित्त रोग शान्त होता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—२ रत्ती। रसराजसुन्दर में 'लौहे पात्रे गोमयाग्नौ पुटित्वा' ऐसा पाठ है। तब त्रिफलाक्वाथ से मर्दन करके लौहपात्र में बन्द कर पुट देते हैं। रसेन्द्रचिन्तामणि में—

'मूषामध्ये भूधरे तत्पुटित्वा दद्याद्गुञ्जां त्रैफलेनोदकेन।
लौहे पात्रे गोपयः पाचयित्वा रात्रौ दद्याद्रक्तपित्तप्रशुत्यै ॥'

---

१ 'गोमयाग्नौ पुटित्वा' पा०। 'गोपयःस्थं च कृत्वा' यो. र. पाठः।

ऐसा पाठ है। भैषज्यरत्नावली में भी यही पाठ मिलता है और यही ठीक है। कज्जली, स्वर्णमाक्षिकभस्म, लौहभस्म; इन्हें त्रिफलाक्काथ से घोटकर मूषा में बन्द करके भूधर पुट देनी है। इसकी मात्रा १ रत्ती होगी। अनुपान त्रिफलाक्काथ है। और रात्रि के समय लौहपात्र में गौ के दूध को उबाल कर रोगी को पिलाना चाहिये ॥ ३ ॥

आमलाद्यं लौहम्—

आमलापिप्पलीचूर्णं तुल्यया सितया सह।
रक्तपित्तहरं लौहं योगराजमिदं स्मृतम् ॥ ४ ॥
वृष्याग्निदीपनं बल्यमम्लपित्तविनाशनम्।
पित्तोत्थानपि वातोत्थान् निहन्ति विविधान् गदान् ॥ ५ ॥

आमला, पिप्पली, मिश्री; इन सब का चूर्ण प्रत्येक समभाग ले। और सबके समान लौहभस्म मिला पीसकर रखे। यह आमलाद्य लौह रक्तपित्त के नाश करने में योगों का राजा है। यह वृष्य, अग्निदीपक, बलदायक, अम्लपित्त-नाशक है, पित्तज तथा वातज अनेक रोगों को दूर करता है।

विशेषवचन—मात्रा दो रत्ति दें। भैषज्यरत्नावली में रक्तपित्तान्तक लौह नाम से एक योग है—

'धात्री च पिप्पलीचूर्णं तुल्यायः सितया सह।
रक्तपित्तहरं लौहमम्लपित्तं विनाशयेत् ॥'

उसमें आंवला, पिप्पली, लोहभस्म और खांड समभाग लेते हैं। यह भी रक्तपित्त और अम्लपित्त को नष्ट करता है ॥ ४—५ ॥

शतमूल्याद्यं लौहम्—

शतमूली सिताधान्य-नागकेशरचन्दनैः।
त्रिकत्रयतिलैर्युक्तं लौहं सर्वगदापहम्।[1]
तृष्णादाहज्वरच्छर्दि-रक्तपित्तविनाशनम् ॥ ६ ॥

शतावर, मिश्री, धनियां, नागकेसर, लालचन्दन, हरड़, बहेड़ा, आंवला,

१ 'रक्तपित्तहरं परम्' पा०

सोंठ, मिरच, पिप्पली, मोथा, विडंग, चीता, काले तिल; इन सब द्रव्यों के चूर्ण समभाग लें। सब के समान लोहभस्म लें। इन्हें मिला लें। यह शतमूल्याद्य लौह सर्वरोग-नाशक है। तृष्णा, दाह, ज्वर, वमन, रक्तपित्त; इन्हें नाश करता है।

विशेषवचन—मात्रा-२ रत्ती। ऊपर के गुणनिर्देश से यह स्पष्ट है कि इस रस का प्रयोग पित्तप्रधान रक्तपित्त में ज्वर दाह आदि उपद्रव होने पर कराया जाता है। अनुपान अडूसे का रस और मधु है॥ ६॥

रक्तपित्ते पिबेत् व्योमसहितं पर्पटीरसम् ॥ ७॥
वासाद्राक्षाऽभयानाञ्च क्वाथं वा शर्करान्वितम्।
योगवाहिरसान् सर्वान् रक्तपित्ते प्रयोजयेत् ॥ ८॥

- रसपर्पटी में अभ्रकभस्म मिलाकर रोगी रक्तपित्त में उचित अनुपान से पीवे। अथवा बांसा (अडूसा), मुनक्का, हरड़ इनके क्वाथ में चीनी मिलाकर पीने को दें तो रक्तपित्त दूर होता है। रक्तपित्त में सभी योगवाही रस दे सकते हैं।

विशेषवचन—पर्पटी रस (रसपर्पटी) योगवाही रस है। इसे भिन्न२ अनुपानों से बहुत से रोगों में दिया जाता है। रक्तपित्त में इसमें अभ्रकभस्म मिलाकर वासास्वरस आदि अथवा उक्त वासादिक्वाथ के अनुपान से देना चाहिये। कई इसका अर्थ यूं करते है कि अभ्रकभस्म को पित्तपापड़े के रस के साथ अथवा वासादि क्वाथ के साथ देवें। परन्तु 'योगवाहिरसान्' इत्यादि सामान्य नियम के आगे कहे जाने से 'पर्पटीरसम्' का अर्थ पित्तपापड़े का रस नहीं लेना चाहिये अपि तु योगवाही पर्पटीरस लेना चाहिये। यह योगवाही रस के उदाहरण रूप में कहा गया है।

रसराजसुन्दर में तो 'व्योम' के स्थान पर 'बोल' पाठ भी है—

'रक्तपित्ती पिबेद्बोलसहितं पर्पटीरसम्।
वासाद्राक्षाभयाक्वाथं पिबेत्पश्चात् सशर्करम् ॥'

अर्थात् पर्पटीरस में बोलचूर्ण मिलाकर रक्तपित्त के रोगी को देना चाहिये। अनुपान वही वासादिक्वाथ है। इससे लाभ भी शीघ्र होगा। योगरत्नाकर में भी बोलपर्पटी रस है—

' सूतगन्धकसुकज्जलिकायाः पर्पटी समयुता समभागम् ।
बोलचूर्णविहितं प्रतिवाप्यं स्याद्रसोऽयमसृगामयहारी ॥
वल्लयुग्मयुगलं प्रतिदेयं शर्करामधुयुतः किल दत्तः ।
रक्तपित्तगुदजस्रुतियोनिस्रावमाशु विनिवारयतीशः ॥ '

प्रतीत होता है कि लेखकदोष से बोल का व्योम हो गया है। वैसे तो अभ्रक भी रक्तपित्तनाशक है। बोल का एक पर्यायवाचक राजनिघण्टु में 'रक्तापह' भी है। धन्वन्तरिनिघण्टु में गुण इसप्रकार हैं—

' बोलं तिक्तं हिमं रक्तमुद्रिक्तं हन्ति योगतः ।
कफपित्तामयान् हन्ति प्रदरादिरुजापहम् ॥

भावप्रकाश में—

' बोलं रक्तहरं शीतं मेध्यं दीपनपाचनम् ।
मधुरं कटु तिक्तञ्च दाहस्वेदत्रिदोषजित् ॥
ज्वरापस्मारकुष्ठघ्नं गर्भाशयविशुद्धिकृत् ॥'

योगरत्नाकर के अनुसार पर्पटी रस और बोलचूर्ण दोनों समभाग मिलाकर देना चाहिये। यदि पर्पटीरस ३ रत्ती हो तो बोलचूर्ण भी ३ रत्ती मिलाकर रोगी को दें। बोल की मात्रा—२ रत्ती से ८ रत्ती तक होती है।

यदि आंतों में घाव आदि हो जाने के कारण भी खून आता हो तो भी यह अत्यन्त लाभकर है। यह जन्तुघ्न तथा धातुपूरक भी है। पेट से हवा को भी निकाल देता है। यदि बलगम के साथ खून आवे तो भी यह हितकर है। फंसी हुई बलगम को भी बाहिर निकालता है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि यह आर्त्तव को लाने वाला है। गर्भाशय की शुद्धि करके यह प्रदर आदि रोगों को हटाता है॥ ७—८ ॥

रक्तपित्तान्तको रसः—

मृताभ्रं मुण्डतीक्ष्णञ्च माक्षिकं रसतालकम् ।
गन्धकञ्च भवेत् तुल्यं यष्टिद्राक्षाऽमृताद्रवैः ॥ ९ ॥
दिनैकं मर्दयेत् खल्वे सिताक्षौद्रसमन्वितम् ।
माषमात्रं निहन्त्याशु रक्तपित्तं सुदारुणम् ।

ज्वरं दाहं क्षतक्षीणं तृष्णां शोषमरोचकम् ॥ १० ॥

अभ्रकभस्म, मुण्डलौहभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य इस में मिलायें और मुलहठी, किशमिश, गिलोय के क्वाथ वा रस से एक २ दिन मर्दन करें। इसे एक उड़द भर लेकर मिश्री और शहद मिलाकर रोगी खावे तो यह रस घोर रक्तपित्त को शान्त करता है। तथा ज्वर, दाह, क्षतक्षीण, तृष्णा, शोषरोग, अरुचि; इन्हें नाश करता है।

विशेषवचन—कई रसतालक से केवल हड़ताल लेते हैं, पारा नहीं। बहुधा आजकल पारा और हड़ताल से योग को बनाने लगे हैं। परन्तु रसतालक एक भिन्न वस्तु है। आत्रेयसंहिता में कहा है—

'रसो गन्धस्तालकञ्च रक्तशङ्खीसमागतम्।
सम्मर्द्य सिकतायन्त्रे पचेद्यामचतुष्टयम्॥
पीताभं जायते पाकाद् रसतालकसंज्ञितम्॥'

अर्थात् शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हड़ताल और शुद्ध लाल संखिया; इन्हें समभाग लें। पारा गन्धक की कज्जली कर हड़ताल और संखिये को उसमें अच्छीप्रकार घोट कर मिला दें। और वालुकायन्त्र में ४ प्रहर पकावें। जो पीले रंग की औषध प्रस्तुत हो वह रसतालक है।

रक्तपित्तान्तक रस को व्याधिप्रत्यनीक औषध समझा जाता है। इसे वासकपत्रस्वरस आदि के अनुपान से देते हैं॥ ९—१० ॥

रसामृतरसः—

रसस्य द्विगुणं गन्धं माक्षिकञ्च शिलाजतु।
गुडूची चन्दनं द्राक्षा मधुपुष्पञ्च धान्यकम्॥ ११ ॥
कुटजस्य त्वचं बीजं धातकी निम्बपत्रकम्।
यष्टीमधुसमायुक्तं मधुशर्करयाऽन्वितम्॥ १२ ॥
विधिना मर्दयित्वा तु कर्षमात्रन्तु भक्षयेत्।
धारोष्णपयसा युक्तं प्रातरेव समुत्थितः॥ १३ ॥

पित्तं तथाऽम्लपित्तञ्च रक्तपित्तं विशेषतः ।
निहन्ति सर्वदोषञ्च ज्वरं सर्वं न संशयः ।
रसामृतरसो नाम गहनानन्दभाषितः ॥ १४ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला; दोनों की कज्जली करे। फिर स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध शिलाजीत, गिलोय, लाल चन्दन, दाख, महुआ के फूल, धनियां, कुटज की छाल, इन्द्रजौ, धाय के फूल, नीम के पत्ते, मुलहठी; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक तोला ले कज्जली में मिला मधुशर्करा से घोट लें। इसे प्रातःकाल कर्ष भर खाकर ऊपर से धारोष्ण दूध पीवें। यह पित्तरोग, अम्लपित्त, विशेषतः रक्तपित्त तथा सब दोषों से उत्पन्न सम्पूर्ण ज्वरों को नष्ट करता है—इसमें संशय नहीं। यह रसामृत रस गहनानन्द ने कहा है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा एक माषा है। कई मधुशर्करा के स्थान पर मधु और खांड से औषध को मर्दन करके देते हैं ॥ ११—१४ ॥

खण्डकूष्माण्डकः—

कूष्माण्डकात् पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम् ।
पचेत् तप्ते घृतप्रस्थे शनैस्ताम्रमये दृढे ॥ १५ ॥
यदा मधुनिभः पाकः न्यस्येत् खण्डशतं तदा ।
पिप्पलीशृङ्गवेराभ्यां द्वे पले जीरकस्य च ॥ १६ ॥
त्वगेलापत्रमरिच–धान्यकानां पलार्द्धकम् ।
न्यस्येत् चूर्णीकृतं तत्र दर्व्या सङ्घट्टयेत् मुहुः ॥ १७ ॥
तत्पक्वं[1] स्थापयेद् भाण्डे दत्त्वा क्षौद्रं घृतार्द्धकम् ।
तद्यथाऽग्निबलं खादेद् रक्तपित्ती क्षतक्षयी ॥ १८ ॥

पके हुए पेठे के छिलके छील डाले और बीज निकाल दे। अब उसे एक पात्र में कुछ जल डालकर आग पर रख कुछ देर स्वेदन करे। शीतल होने पर पीस कर

१ 'लेहीभूते सुशीते च दद्यात्' यो. र. पाठः ।

कपड़े में से रस निचोड़ ले और निकले रस को सुरक्षित रखे। गूदे को कुछ देर धूप में सुखाकर सौ पल ले। इसमें एक प्रस्थ (द्रवद्वैगुण्यपरिभाषा के अनुसार २ प्रस्थ) घी डाल कर तांबे के पात्र में मन्द-मन्द पकावे। जब पकते २ शहद की तरह लाल रंग का पाक हो जाय तो उसमें वह सुरक्षित रखा रस और एक सौ पल खांड डाले। पुनः पाक करे। पाकशेष काल में पिप्पली, सोंठ, जीरा श्वेत; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण दो २ पल, दारचीनी, इलायची, तेजपात, मिरच, धनियां, प्रत्येक का चूर्ण आधा २ पल डाले और कड़छी से भली प्रकार मिलाकर उतार ले। ठण्डा होने पर घी से आधा (१ प्रस्थ) शहद मिलावे। इसे खण्डकूष्माण्डक कहते हैं। अग्निबल देखकर रक्तपित्त और क्षतक्षय के रोगी को दें।

विशेषवचन—इसकी आधुनिक मात्रा—१ तोले से २ तोला पर्यन्त है। इस योग के गुणनिर्देश के पश्चात् अन्यत्र परिभाषा पढ़ी है—

'खण्डामलकमानानुसारात् कूष्माण्डकद्रवात्।
पात्रं पाकाय दातव्यं यावान्वात्र रसो भवेत्॥
अत्रापि मुद्रया पाको निस्त्वचं निष्कुलीकृतम्॥'

अभिप्राय यह है खण्डामलक नामक योग के अनुसार पेठे का रस पात्र

खण्डामलक योग निम्न है—

स्विन्नपीडितकूष्माण्डात्तुलार्धं भृष्टमाज्यतः। प्रस्थार्धे खण्डतुल्यन्तु पचेदामलकीरसात्॥ प्रस्थे सुस्विन्नकूष्माण्डरसप्रस्थे विघट्टयन्। दर्व्या पाकं गते तस्मिश्चूर्णीकृत्य विनिक्षिपेत्॥ द्वे द्वे पले कणाजाजीशुण्ठीनां मरिचस्य च। पलं तालीशधन्याकचतुर्जातकमुस्तकम्॥ कर्षप्रमाणं प्रत्येकं प्रस्थार्द्धं माक्षिकस्य च। पक्तिशूलं निहन्त्येतद्दोषत्रयकृतश्च यत्॥ छर्द्यम्लपित्तमूर्च्छाश्च श्वासं कासमरोचकम्। हृच्छूलं पृष्ठशूलं च रक्तपित्तञ्च नाशयेत्। रसायनमिदं श्रेष्ठं खण्डामलकसंज्ञितम्॥'

यहां आधी तुला कूष्माण्ड का कल्क है और खांड भी आधी तुला है। आंवले का रस १ प्रस्थ (द्वैगुण्यपरिभाषा के अनुसार २ प्रस्थ) और पेठे का रस १ प्रस्थ (द्वैगुण्यपरिभाषा के अनुसार २ प्रस्थ) है, दोनों मिलाकर २ प्रस्थ (द्वैगुण्यपरिभाषा के अनुसार ४ प्रस्थ) है। कूष्माण्डखण्ड का योग इससे

(द्वैगुण्यपरिभाषा के अनुसार २ पात्र = ८ प्रस्थ) होना चाहिये। अथवा दूसरा पक्ष यह है कि जितना रस निकले उतने से ही पाक करें।

इसी योग का अन्यत्र दूसरा पाठ भी है वहां सब से पूर्व जब पेठे का स्वेदन करना होता है तब दुगुना जल डालने को कहा है।

' पुराणं पीनमानीय कूष्माण्डस्य फलं बृहत्।
तद्बीजाधारबीजत्वक्शिराशून्यं समाचरेत्॥
ततस्तस्य तुलां नीत्वा पचेज्जलतुलाद्वये।
तस्मिन्नीरेऽर्धशिष्टे तु यत्नतः शीतलीकृते॥
तानि कूष्माण्डखण्डानि पीडयेद् दृढवाससा।
यत्नतस्तज्जलं नीत्वा पुनः पाकाय धारयेत्।
कूष्माण्डं शोषयेद् घर्मे ताम्रपात्रे ततः क्षिपेत्॥
क्षिप्त्वा तत्र घृतप्रस्थं कूष्माण्डं तेन भर्जयेत्।
मधुवर्णं तदालोक्य तज्जलं तत्र निक्षिपेत्॥'

इत्यादि।

इससे यह स्पष्ट है कि त्वचा बीज शिरा आदि रहित पेठे को १०० पल लेकर २०० पल जल में स्वेदन करना चाहिये। जब जल १००पल रहजाय तो नीचे उतार लें और शीतल होने पर पेठे को पीसकर रस निचोड़ लें।

तन्त्रान्तरों में 'रक्तपित्ती क्षतक्षयी' के आगे भी बहुत सा गुणनिर्देश का पाठ है—

' कासश्वासतमश्छर्दितृष्णाज्वरनिपीडितः।
वृष्यं पुनर्नवकरं बलवर्णप्रसादनम्॥
उरःसन्धानकरणं बृंहणं स्वरवर्द्धनम्।
अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं कूष्माण्डकरसायनम्॥'

इस योग का रसग्रन्थ में कहना कुछ उचित नहीं। शायद ग्रन्थकार का यह अभिप्राय हो कि रक्तपित्त में रसौषधों से उतना लाभ नहीं होता जितना बूटियों से। अतः एक योग वैसा भी दे दिया है। यह ऊर्ध्वग रक्तपित्त में जब

दुगुना है। अतः एक तुला खांड के लिये ४ प्रस्थ (द्वैगुण्यपरिभाषा के अनुसार ८ प्रस्थ) होना चाहिये।

छाती से खून आता हो अधिक लाभकर है।

योगरत्नकर में एक और मतान्तर भी दिया है। ग्रन्थकर्ता ने बताया है कि कई लोग इसमें उक्त प्रमाण में खांड डालने के अतिरिक्त पीछे से मधु से आधी खांड और इस खांड से आधी द्राक्षा (मुनक्का वा किशमिश) और द्राक्षा से आधा लौंग का चूर्ण और एक कर्ष प्रमाण में कर्पूर चूर्ण भी डालते हैं। वहां 'दद्यात् क्षौद्रं घृतार्द्धकम्' के पश्चात् यह पाठ है—

'क्षौद्रार्धकां सितां केचिद् द्राक्षां केचित्सितार्धकाम्।
द्राक्षार्धानि लवङ्गानि कर्षं कर्पूरकं क्षिपेत्॥'

इसके आगे गुणनिर्देश का पाठ है॥ १४—१८॥

शर्कराद्यं लौहम्—

शर्करातिलसंयुक्तं त्रिकत्रय[1]युतन्त्वयः।
रक्तपित्तं निहन्त्याशु चाम्लपित्तहरं परम्[2]॥ १९॥

खांड, तिल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, विडंग, मोथा, चीता; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग लें। सब के समान लौहभस्म मिलावें। इससे रक्तपित्त और अम्लपित्त रोग शीघ्र अच्छे हो जाते हैं।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—२ रत्ती॥ १९॥

समशर्करलौहम्—

लौहाच्चतुर्गुणं क्षीरमाज्यं द्विगुणमुत्तमम्।
चूर्णं पादन्तु वैडङ्गं दद्यात् मधुसिते समे॥ २०॥
ताम्रपात्रे दृढे[3] पक्त्वा स्थापयेद् घृतभाजने।
माषकादिक्रमेणैव भक्षयेद् विधिपूर्वकम्॥ २१॥
अनुपानं प्रयुञ्जीत नारिकेलोदकादिकम्।
रक्तपित्तं जयेत् तीव्रमम्लपित्तं क्षतक्षयम्।

---

१ 'त्रिकत्रयसमन्वयात्' र. चि. पाठः।
२ 'सर्वरोगहरोऽपि सन्' र. चि. पाठः।
३ 'शुभे' पा०।

प्रहर्षकान्तिजननमायुष्यमुत्तमोत्तमम् ॥ २२ ॥

लौहभस्म ४ तोला, गौ का दूध १६ तोला, गौ का घी ८ तोला ले। सब को तांबे के पात्र में डालकर पकावें। गाढ़ा होने पर विडंग का चूर्ण एक तोला डाल दें। अच्छी प्रकार मिलाकर उतार लें। ठंडा होने पर शहद ४ तोला, और मिश्री ४ तोला मिलाकर घी से चिकने हुए पात्र में रखें। इस समशर्कर लौह को एक माषा (६ रत्ती) से आरम्भ कर क्रमशः बढ़ाते हुए (१२ रत्ती तक) सेवन करें। अनुपान में नारियल का जल आदि पीवें। यह तीव्र रक्तपित्त, अम्लपित्त तथा क्षतक्षय रोग को दूर करता है, प्रसन्नता देता है, कान्ति तथा आयु को बढ़ाता है ॥ २०—२२ ॥

कपर्दको रसः—

मृतं वा मूर्च्छितं सूतं कार्पासकुसुमद्रवैः।
मर्दयेद् दिनमेकन्तु तेन पूर्य्या वराटिका ॥ २३ ॥
निरुद्ध्य चान्धमूषायां भाण्डे रुद्ध्वा पुटे पचेत्।
उद्धृत्य चूर्णयेत् श्लक्ष्णं मारिचैर्द्विगुणैः सह ॥ २४ ॥
गुञ्जामात्रं घृतेनैव भक्षयेत् प्रातरुत्थितः।
उडुम्बरं घृतञ्चैव ह्यनुपानं प्रयोजयेत्।
कपर्दकरसो नाम्ना रक्तपित्तविनाशनः ॥ २५ ॥

पारदभस्म अथवा रससिन्दूर वा कज्जली को कपास के फूलों के रस से एक दिन घोटे। फिर इसे पीली कौड़ियों में भर ले। उन्हें अन्धमूषा में रखे। और उस मूषा को एक हांडी में रख मुंह बन्द करके पुट दे। स्वांगशीतल होने पर निकाल कौड़ियों समेत पीस ले। अब जितना यह चूर्ण हो उससे दुगुना

---

१ 'पुष्टिदं' पा०। २ 'वृष्यमुत्तमम्' पा०।

३ 'गुञ्जैकं घृतैर्लेह्यं रक्तपित्तं नियच्छति। कपर्दकरसो नाम साध्यं च साधयत्यलम्। उदुम्बरफलं पक्वं घृतैः पाच्यं सितायुतम्। भक्षयेन्मरिचैर्युक्तमतः स्याद्रक्तपित्तनुत्' र. र. पाठः।

काली मिरचों का चूर्ण मिला ले। इस कपर्दक रस को एक रत्ति भर लेकर घी में मिला प्रातःकाल सेवन करें और अनुपान में गूलर और घी खावें तो रक्तपित्त नाश होता है।

विशेषवचन—गूलर को घी में कुछ भून कर अनुपान में खाना चाहिये। यह बात टिप्पणी में उद्धृत रसरत्नाकर के पाठ से स्पष्ट है। वहां उसमें खांड और मरिचचूर्ण भी मिलाने को कहा है॥ २३—२५॥

नीलोत्पलसिताक्षौद्र-संयुक्तं पद्मकेशरम्।
तण्डुलोदकपानेन रक्तपित्तं नियच्छति॥ २६॥

नीलोत्पल, मिश्री, शहद; इन से मिलाकर कमलकेशर खाया जाये और ऊपर से तण्डुलोदक पिया जाये तो रक्तपित्त रोग शान्त होता हैं।

विशेषवचन—रसतन्त्र में इस योग को अनुपान रूप में प्रयुक्त कर सकते हैं। अर्थात् दोष आदि की विवेचना करके योग की मात्रा में नीलोत्पल और कमलकेसर का चूर्ण मिला मिश्री और शहद से उसे चाट लें और ऊपर से तण्डुलोदक पीवें। यह पित्ताधिक रक्तपित्त में अत्यन्त हितकर है॥२६॥

इति रक्तपित्तचिकित्सा।

अथ यक्ष्म-चिकित्सा।

रास्नादिलौहम्-

रास्नाऽश्वगन्धाकर्पूर-भेकपर्णीशिलाह्वयैः[1]।
त्रिकत्रयसमायुक्तैः लौहं यक्ष्मान्तकृन्मतम्॥ १॥
सर्वोपद्रवसंयुक्तमपि[2] वैद्यविवर्जितम्।
हन्ति कासं स्वराघातं राजयक्ष्मक्षतक्षयम्[3]।
बलवर्णाग्निपुष्टीनां वर्द्धनं[4] दोषनाशनम्॥ २॥

---

१ 'रास्नाकर्पूरतालीश०' र. र. पाठः। २ 'अपि शम्भोः सुदुर्जयम्' र. र. पाठः। ३ 'क्षयकासं क्षतक्षयम् र. र. पाठः। ४ 'साधनं' पा०।

रास्ना, असगन्ध, कर्पूर, मण्डूकपर्णी, शिलाजीत, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, विडंग, मोथा, चीता; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग ले, और सब के समान लौहभस्म मिलाकर घोटे। इस रास्नादि लौह के सेवन से यक्ष्मा नाश होता है। सब उपद्रवों से युक्त और वैद्यों से वर्जित खांसी, स्वराघात (स्वरभंग), राजयक्ष्मा तथा क्षतक्षय को भी यह दूर करता है। बल, वर्ण, अग्नि, पुष्टि को बढ़ाता है, दोषों का नाशक है।

विशेषवचन—रसरत्नाकर तथा भैषज्यरत्नावली में जो इसका पाठ है उसमें अश्वगन्धा (असगन्ध) नहीं है, तालीशपत्र है। कई 'शिलाह्वय' से मनःशिला लेते हैं। भैषज्यरत्नावली में यह यक्ष्मान्तकलौह नाम से है। आधुनिक मात्रा–२रत्ती। मनःशिलायुक्त योग की मात्रा ½ रत्ती से १रत्ती तक जानें ॥१–२॥

राजमृगाङ्को रसः—

रसभस्म त्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम्।
मृतं[1]तारस्य भागैकं शिलागन्धकतालकम् ॥ ३ ॥
प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकीकृत्य विचूर्णयेत्।
वराटिका तेन पूर्य्या चाजाक्षीरेण टङ्कणम् ॥ ४ ॥
पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भाण्डे तां निरोधयेत्[2]।
शुष्कं गजपुटे पाच्यं चूर्णयेत् स्वाङ्गशीतलम्[3][4] ॥ ५ ॥

---

१ 'मृतताम्रस्य' पा०। २ 'परिरोधयेत्' 'संनिधापयेत्' पा०। ३ 'श्लक्ष्णं' पा०।

४ 'अस्यानन्तरं रसो राजमृगाङ्कोऽयं चतुर्गुञ्जः क्षयापहः। दशपिप्पलिकाक्षौद्रैर्मरिचैकोनविंशतिः। सघृतैर्दापयेद्वाथ वातश्लेष्मोद्भवे क्षये' पा०। अत्र पिप्पलीदशकं क्षौद्रैर्मरिचैकोनविंशतिः' इति पाठान्तरेण रसरत्नाकरे। तथा 'सघृतैर्दापयेद्वैद्यो रोगराजप्रशान्तये' इति पाठान्तरेण रसरत्नसमुच्चये। 'घृतेन दापयेद्वातपित्तश्लेष्मोद्भवे क्षये' अनेन च भैषज्यरत्नावल्याम्। 'रसो राजमृगाङ्कोऽयं चतुर्गुञ्जः क्षयापहः। एकोनविंशन्मरिचैर्घृतेन सह भक्षयेत् ॥ दशानां पिप्पलीनां च चूर्णं दत्त्वा प्रदापयेत्। क्षये कासे ज्वरे पाण्डौ ग्रहण्यामतिसारके ॥' यो. र. पाठः। 'रसो राजमृगाङ्कोऽयं चतुर्गुञ्जः क्षयापहः। दशपिप्पलिकाक्षौद्रैरेकोनात्रिंशदूषणैः ॥ सघृतं दापयेत्पथ्यं

दशपिप्पलिकैः क्षौद्रैर्मरिचैर्वा घृतान्वितैः।
गुञ्जाचतुष्टयञ्चास्य क्षयरोगप्रशान्तये ॥ ६ ॥
सघृतैर्दापयेद्वाऽथ वातश्लेष्मभवे क्षये।
रसो राजमृगाङ्कोऽयं नानारोगानिसूदनः ॥ ७ ॥

रससिन्दूर तीन भाग, स्वर्णभस्म एक भाग, चांदीभस्म एक भाग, शुद्ध मनसिल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हड़ताल प्रत्येक द्रव्य दो भाग लेकर चूर्ण करके कौड़ियों में भर दें। बकरी के दूध से सुहागे को पीसकर उससे कौड़ियों के मुख को बन्द कर दें। उन कौड़ियों को एक हांडी में बन्द करके सन्धि लेप कर सुखाकर गजपुट में फूँक दें। स्वांगशीतल होने पर निकाल कर कौड़ी समेत चूर्ण कर रखें। इस रस की चार रत्ति की मात्रा लेकर दस पिप्पलियों का चूर्ण और शहद मिलाकर दें। अथवा कालीमिरच और घी मिलाकर दें तो क्षयरोग शान्त होता है। यदि वातश्लेष्मज क्षय हो तो इसे केवल घी से दें। यह राजमृगाङ्क रस नाना रोगों को शान्त करता है।

विशेषवचन—इस ग्रन्थ और रसराजसुन्दर के अतिरिक्त प्रायः सभी ग्रन्थों में चांदीभस्म के स्थान पर ताम्रभस्म का पाठ है। भैषज्यरत्नावली रसेन्द्र-चिन्तामणि रसरत्नसमुच्चय भावप्रकाश योगरत्नाकर रसरत्नाकर सभी में ताम्रभस्म है। रसप्रकाशसुधाकर में इसके स्थान पर अभ्रकभस्म कही है। पाक के लिये कौड़ियां पीली गांठदार और बड़ी होनी चाहियें। गजपुट अधिक होगी। लघुपुट वा वराहपुट ठीक है। इस रस की आधुनिक मात्रा १ रत्ती है। इसे २ रत्ती पिप्पलीचूर्ण और मधु के साथ देते हैं। मरिचचूर्ण को ४ रत्ती मात्रा में मिलाकर घी के साथ चटाया जाता है। यदि ज्वर प्रबल हो १०४° तक वा मध्यज्वर (१००° से १०२° तक) हो और खांसी के साथ केवल कफ निकलता हो, दम फूलता हो, पार्श्वशूल और सिर में पीड़ा हो, दस्त आते हों तो इसे देना चाहिये ॥ ३—७ ॥

स्त्रीकोपाग्निश्रमांस्त्यजेत्। पथ्यं च लघुमांसानि राजरोगप्रशान्तये'। इति शार्ङ्गधरे पाठः।

मृगाङ्को रसः—

स्याद्रसेन समं हेम मौक्तिकं द्विगुणं भवेत्[1] ।
गन्धकश्च समं तेन रसतुल्यन्तु[2] टङ्कणम् ॥ ८ ॥
तत्सर्वं गोलकं कृत्वा काञ्जिकेन च[3] पेषयेत् ।
भाण्डे[4] लवणपूर्णेऽथ पचेद् यामचतुष्टयम्[5] ॥ ९ ॥
मृगाङ्कसंज्ञको ज्ञेयो राजयक्ष्म[6]निकृन्तनः ।
गुञ्जाचतुष्टयं चास्य मरिचैः सह भक्षयेत् ॥ १० ॥
पिप्पलीदशकैर्वापि मधुना सह लेहयेत् ।
पथ्यन्तु[7] लघुभिर्मांसैः प्रयोगेऽस्मिन् प्रयोजयेत् ॥ ११ ॥
व्यञ्जनैर्घृतपक्वैश्च नातिक्षारै[8]र्हिङ्गुभिः ।
एलाऽजाजीमरीचैस्तु संस्कृतैरविदाहिभिः ॥ १२ ॥
वृन्ताकबिल्वतैलानि कारवेल्लञ्च वर्जयेत् ।
स्त्रियं परिहरेद् दूरं कोपञ्चापि विवर्जयेत् ॥ १३ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, स्वर्णभस्म एक तोला, मोतीभस्म दो तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला, शुद्ध सुहागा एक तोला। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य वस्तु मिलाकर कांजी से पीस कर एक मूषा में रखे। सन्धि बन्द कर दे। एक हांडी में नमक नीचे ऊपर भरकर बीच में इस मूषा को रख दे

---

१ 'ततः' पा०। २ 'रसपादन्तु' पा०। ३ 'विशोषयेत्' पा०। ४ 'यन्त्रे' पा०।
५ अस्यानन्तरं 'स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य देयं गुञ्जाचतुष्टयम्' इत्यधिकः क्वचित्।
६ 'रोगराजनिकृन्तनः' पा०। अस्यानन्तरं च 'रसस्य भस्मना हेम भस्मीकृत्य प्रयोजयेत्।' इत्यधिकः भैषज्यरत्नावल्याम्।
७ 'पथ्यं सुलघुमांसेन प्रायशोऽस्य प्रयोजयेत्। दध्याजं गव्यतक्रं वा मांसमाजं प्रयोजयेत्'॥ पा०।
८ 'नातिक्षारैश्च हिङ्गुभिः' भै. र. पाठः। 'नातिक्षारैर्न हिङ्गुलैः' र. चि. पाठः।

और बारह घण्टे की आंच दे। स्वांगशीतल होने पर निकाल रखे। यह राजयक्ष्मा का नाशक मृगाङ्क रस है। इस की चार रत्ति की मात्रा मिरचों के चूर्ण और मधु के साथ अथवा दस पिप्पलियों के चूर्ण और मधु में मिलाकर खावे। पथ्य में लघु मांस (तीतर आदि के), घी में पकी हुई नाना प्रकार की भाजियें—जिनमें अधिक क्षार न हो, हींग न डाली गई हो, जो इलायची जीरा तथा काली मिरच आदि अविदाही द्रव्यों से संस्कृत हों देनी चाहियें। रोगी बेंगन, बिल, तेल, करेला न खावे। स्त्री से दूर रहे तथा क्रोध को त्याग देवे।

विशेषवचन—इसे आजकल १ रत्ती मात्रा में प्रयुक्त कराया जाता है। अनुपान में पिप्पली वा मरिच का चूर्ण दो से चार रत्ती की मात्रा में मिलाया जासकता है।

यक्ष्मा यदि बहुत वर्षों का हो, कास हो, ज्वर हो, नेत्र वा हाथ पैर आदि में जलन हो तो देना चाहिये। यदि साथ ही आतिसार हो तो भी इसे दिया जा सकता है। दमे में भी इससे लाभ होता है। यह यक्ष्मा के ज्वर को शीघ्र कम करता है।

तन्त्रान्तर में इस योग को बनाने के लिये एक निर्देश है और वह यह है कि इसमें जो स्वर्णभस्म डाली जाय वह पारदभस्म के योग से की हुई होनी चाहिये।

रसेन्द्रचिन्तामणि में इसे महामृगाङ्क नाम से कहा है।

योगरत्नाकर में दो पाठ मृगाङ्क रस के दिये हैं। जिनमें से एक रसरत्नप्रदीप से उद्धृत है और दूसरा वैद्यविलास से। वहां गन्धक पारद के समान ही लेने को कहा है। यहां पर भी गन्धक को पारद के समान लेने का अभिप्राय निकल सकता है। परन्तु व्यवहार प्रायः मुक्ता के समान लेकर ही है।

'रसेन तुल्यं कनकं तयोस्तु साम्येन युञ्ज्यान्नवमौक्तिकानि ।
रसप्रमाणो बलिरङ्घ्रिभागः क्षारश्च सर्वं तुषवारिणा तु ॥
सम्मर्द्य घस्रं तु विधाय गोलं दिनं पचेत्तं लवणेन पूर्णे ।
भाण्डे मृगाङ्कोऽयमतिप्रगल्भः क्षयाग्निमान्द्यग्रहणीगदेषु ॥
साज्योषणाभिर्मधुपिप्पलीभिर्वल्लोऽस्य देयो न ततोऽधिकस्तु ।
पथ्यं हितं शीतलमेव योज्यं त्याज्यं सदा पित्तकरं विदाहि ॥'

यहां पर क्षार भी पारद से चतुर्थांश है। रसेन्द्रचिन्तामणि भैषज्यरत्नावली आदि में भी टङ्कण को पारद से चतुर्थांश लेने को ही कहा है। व्यवहार भी उसी से है। केवल यहां या रसराजसुन्दर में ही पारद के तुल्य टङ्कण को लेने का पाठ है। यहां कहे गये क्षार से सामान्य नियम के अनुसार यवक्षार भी लिया जा सकता है जैसा कि वैद्यविलास के निम्न उद्धरण से स्पष्ट हो जायगा। परन्तु यक्ष्मा में कास श्वास स्वरभेद आदि लक्षणों के निश्चित होने पर अन्य क्षारों की अपेक्षा सामान्यतः टङ्कणक्षार ही अधिक प्रशस्त है। इसके देर तक प्रयोग से भी हानि नहीं होती। थोड़े दिन के लिये प्रयोग कराना हो तो यवक्षार से प्रस्तुत योग दे सकते हैं।

'रसबलितपनीयं योजयेत्तुल्यभागं
तदनु युगलभागं मौक्तिकानां शुभानाम्।
यवजचरणयुक्तं मर्दयेत्सर्वमेत—
द्दिनमपि तुषवारा गोलकं लध्वसत्रे।
विधाय मुद्रां निदधीत भाण्डे चुल्ल्यां समुद्रे लवणेन पूर्णे।
दिनं पचेच्चारु मृगाङ्कनामा क्षयाग्निमान्द्यग्रहणीविकारे॥
योज्यः सदा वह्निजसर्पिषा वा कृष्णामधुभ्यां सततं त्रिगुञ्जः।
वर्ज्यं सदा पित्तकरं हि वस्तु लोकेशवत्पथ्यविधिर्निरुक्तः॥'

शार्ङ्गधर में मृगाङ्करस से मिलता जुलता मृगाङ्कपोटली रस है।

'भूर्जवत्तनुपत्राणि हेम्नः सूक्ष्माणि कारयेत्।
तुल्यानि तानि सूतेन खल्वे क्षिप्त्वा विमर्दयेत्॥
काञ्चनाररसेनैव ज्वालामुख्या रसेन वा।
लाङ्गल्या वा रसैस्तावद्यावद्भवति पिष्टिका॥
ततो हेम्नश्चतुर्थांशं टङ्कणं तत्र निक्षिपेत्।
पिष्टमौक्तिकचूर्णं च हेमद्विगुणमावपेत्॥
तेषु सर्वसमं गन्धं क्षिप्त्वा चैकत्र मर्दयेत्।
तेषां कृत्वा ततो गोलं वासोभिः परिवेष्टयेत्॥
पश्चान्मृदा वेष्टयित्वा शोषयित्वा च धारयेत्।
शरावसम्पुटस्यान्तस्तत्र मुद्रां प्रदापयेत्॥

लवणापूरिते भाण्डे धारयेत्तं च सम्पुटम् ।
मुद्रां दत्त्वा शोषयित्वा बहुभिर्गोमयैः पुटेत् ॥
ततः शीते समाहृत्य गन्धं सूतसमं क्षिपेत् ।
घृष्ट्वा च पूर्ववत् खल्वे पुटेद् गजपुटेन च ॥
स्वाङ्गशीतं ततो नीत्वा गुञ्जायुग्मं प्रयोजयेत् ।
अष्टभिर्मरिचैर्युक्तं कृष्णात्रययुतोऽथवा ॥
विलोक्य देयो दोषादीनेकैका रसरक्तिका ।
सर्पिषा मधुना वापि दद्याद्दोषाद्यपेक्षया ॥
लोकनाथसमं पथ्यं कुर्यात्स्वस्थमनाः शुचिः ।
श्लेष्माणं ग्रहणीं कासं श्वासं क्षयमरोचकम् ।
मृगाङ्कोऽयं रसो हन्यात्कृशत्वं बलहीनताम् ॥'

एक तोला सोने के वर्कों को तुल्य शुद्ध पारद के साथ खरल में कचनार, ज्वालामुखी, कलिहारी; इनमें से किसी एक के रस से तबतक घोंटे जब तक कि उसकी पिष्टी बन जाय। इस पिष्टी को सवा चार तोले गन्धक के साथ मर्दन करके कज्जली कर लें। पश्चात् शुद्ध सुहागा चौथाई तोला और मोती की पिष्टी दो तोला डालकर पूर्वोक्त रस से घोटकर गोला बना लें। शुष्क होने पर (केले आदि का पत्ता लपेट कर) उस पर लीरें लपेट दें और मिट्टी लीप कर धूप में सुखा लें। इसे शरावसम्पुट में बन्द कर लवणयन्त्र में रखें और महापुट दें। शीतल होने पर औषध को बाहिर निकाल एक तोला गन्धक डालकर पूर्ववत् खरल में घोटें और गजपुट दें। इसे एक रत्ति मात्रा में मरिचचूर्ण और घी वा पिप्पलीचूर्ण और मधु के साथ देते हैं॥

रसरत्नाकर में मृगाङ्करस इसप्रकार है—

'रसभस्म स्वर्णभस्म निष्कं निष्कं प्रकल्पयेत् ।
शङ्खगन्धकमुक्तानां द्वौ द्वौ निष्कौ तु चूर्णयेत् ॥
मुक्ताभावे वराटी वा रसपादं च टङ्कणम् ।
वह्निकाथारनाले च मर्दयेत्प्रहरद्वयम् ॥
तद्गोलकं विशोष्याथ भाण्डे लवणपूरिते ।
पचेद्यामचतुष्कं च मृगाङ्कोऽयं महारसः ॥

रोगराजनिवृत्त्यर्थं चतुर्गुञ्जामितं घृतैः।
दातव्यं मरिचैः सार्धं पिप्पलीमधुनापि वा ॥'

रससिन्दूर १ निष्क, स्वर्णभस्म १ निष्क, शङ्खभस्म २ निष्क, शुद्ध गन्धक २ निष्क, मुक्ताभस्म (अभाव में कौड़ीभस्म) २ निष्क, सुहागा चौथाई निष्क; इन्हें एकत्र चित्रकक्काथ और कांजी से दो दो पहर घोट कर गोला बनावें और मूषा में डाल लवणयन्त्र में ४ प्रहर पकावें और इसकी चार रत्ति की मात्रा (आधुनिक एक वा दो रत्ती) को मरिचचूर्ण और घी वा पिप्पलीचूर्ण और मधु से यक्ष्मा में दें ॥ ८—१३ ॥

रत्नगर्भपोट्टलीरसः—

रसं वज्रं हेम तारं नागं लौहञ्च ताम्रकम्।
तुल्यांशं [2]मरिचं देयं मुक्ताविद्रुममाक्तिकम्[3] ॥ १४ ॥
[4]शङ्खं तुत्थञ्च तुल्यांशं सप्ताहं चित्रकद्रवैः।
मर्दयित्वा विचूर्ण्याथ तेन[5] पूर्य्या वराटिका ॥ १५ ॥
टङ्कणं रविदुग्धेन [6]मुखं लिप्त्वा निरोधयेत्।
मृद्भाण्डे [7]तां निरुद्ध्याथ सम्यग्गजपुटे पचेत् ॥ १६ ॥
आदाय चूर्णयेत् [8]सर्वं निर्गुण्ड्या सप्त भावयेत्।
आर्द्रकस्य रसैः सप्त [9]चित्रकस्यैकविंशतिः ॥ १७ ॥

---

१ 'गन्धं' र. र. पाठः। २ 'मारितं' भै. र., यो. र. पाठः।

३ अस्यानन्तरं 'राजावर्तं च वैक्रान्तं गोमेदं पुष्परागकम्' इत्यधिकः पाठो योगरत्नाकर उपलभ्यते। ४ 'शङ्खञ्च तुल्यतुल्यांशं' यो. र. पाठः। 'शङ्खञ्च पूर्ववद्भागं' र. र. पाठः। ५ 'तेनापूर्य वराटकान्' यो. र. पाठः।

६ 'पिष्ट्वा तन्मुखमन्धयेत्' पा०। 'पिष्ट्वा तासां मुखं लिपेत्' र. र. पाठः। पिष्ट्वा तन्मुद्रणं चरेत्' यो. र. पाठः।

७ 'ताः' पा०। 'तान् सुसंयन्त्र्य' यो. र. पाठः।

८ 'सम्यङ् निर्गुण्ड्याः सप्तभावनाः' पा०।

९ 'चित्रकस्य च विंशतिः' र.रा. सु. पाठः।

द्रवैर्भाव्यं ततः शोष्यं देयं गुञ्जाचतुष्टयम्।
क्षयरोगं निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः ॥ १८ ॥
योजयेत् पिप्पलीक्षौद्रैः सघृतैर्मरिचैस्तथा।
महारोगाष्टके कासे श्वासे चैवातिसारके।
पोट्टलीरत्नगर्भोऽयं सर्वरोगकुलान्तकः ॥ १९ ॥

शुद्ध पारा, हीराभस्म, स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, सीसाभस्म, लौहभस्म, तांबाभस्म, मिरचों का चूर्ण, मोतीभस्म, मूंगाभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शंखभस्म, शुद्ध नीलाथोथा; प्रत्येक समभाग लें। इन्हें एकत्र मिलाकर चीते के क्वाथ से सात दिन मर्दन करे। फिर इसे चूर्ण कर कौड़ियों में भरें। सुहागे को आक के दूध से मर्दन करके उससे कौड़ियों के मुख को बन्द करदें। फिर इन कौड़ियों को एक मिट्टी के पात्र में डाल शराव से मुख को बन्द कर सन्धिबन्धन करके गजपुट में फूँक देवें। स्वांगशीतल होने पर निकाल कौड़ियों समेत सारे को चूर्ण कर सम्भालू के रस से सातवार, अदरक के रस से सातवार, और चीते के क्वाथ से इक्कीस भावना देवें। फिर सुखाकर चार रत्ति की मात्रा पिप्पलीचूर्ण और शहद से देवें अथवा मिरचों के चूर्ण तथा घी से देवें। इससे क्षयरोग साध्य हो या असाध्य नष्ट होता है। आठों महारोग, खांसी, श्वास, अतिसार; इन सब रोगों को रत्नगर्भपोट्टलीरस दूर करता है।

विशेषवचन—इस रस की आधुनिक मात्रा–१ रत्ती है।

इस योग में अनुक्त गन्धक भी एक भाग डालनी ही चाहिये। अथवा वैद्य शुद्ध पारा न लेकर रससिन्दूर लेते हैं। यदि शुद्ध पारा लें तो गन्धक भी डालनी होगी। गन्धक के योग से तुत्थ की भी भस्म हो जायगी।

---

१ 'शुष्कं' पा०

२ 'पिप्पलीदशकैः क्षौद्रैर्मरिचैकोनविंशतिः। सघृतैर्दापयेद्वाथ क्षयरोगनिवृत्तये' र. र. पाठः। 'क्षयरोगं निहन्त्याशु सत्यं शिव इवान्धकम्' यो. र. पाठः।

३ 'ज्वरे श्वासेऽतिसारके' पा०।

४ 'पोटली रत्नगर्भेयं सर्वरोगहरा मता' यो. र. पाठः।

५ 'योगवाहे नियोजयेत्' भै.र., र.र. पाठः।

योगरत्नाकर के पाठ में मरिच चूर्ण और तूतिया नहीं है परन्तु राजावर्त-(लाजवर्द)भस्म, वैक्रान्तभस्म, गोमेदभस्म, पुष्पराग(पुखराज)भस्म; प्रत्येक १ भाग अधिक हैं। रसरत्नाकर के पाठ में प्रकृतग्रन्थ के योग से तूतिया न होने की भिन्नता है और सीसाभस्म के स्थान पर विशुद्ध गन्धक का पाठ है। भैषज्यरत्नावली में केवल मरिचचूर्ण नहीं है। आठ महारोग निम्न श्लोकोक्त हैं—

'वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगन्दराः ।
अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः ॥'

इस रस को यदि रोगी अत्यन्त निर्बल हो, यकृत् और प्लीहा अपना कार्य सुचारुरूपेण न करते हों तथा रक्तहीनता, दम फूलना, खांसी, पतला और बदबूदार दस्त आना आदि लक्षण होने पर यक्ष्मा के रोगी को दिया जाता है॥१४-१९॥

लोकेश्वरपोट्टलीरसः—

[1]रसस्य भस्मना हेम पादांशेन प्रकल्पयेत् ।
द्विगुणं गन्धकं दत्त्वा मर्दयेत् चित्रकाम्बुना ॥ २० ॥
पूर्य्या[2] वराटिका तेन टङ्कणेन निरुद्ध्य च ।
भाण्डे चूर्णप्रलिप्तेऽथ क्षिप्त्वा रुद्ध्वा[3] च मृण्मये ॥ २१ ॥
शोषयित्वा गजपुटे[4] पुटेत् तु चापराह्णिके ।
स्वाङ्गशीतं[5] समुद्धृत्य चूर्णयित्वा तु[6] विन्यसेत् ॥ २२ ॥
एष लोकेश्वरो नाम वीर्य्यपुष्टिविवर्द्धनः ।

---

१ 'भस्मसूताच्चतुर्थांशं मृतं स्वर्णं प्रदापयेत्' र. रा. सु. पाठः ।

२ 'वराटकांश्च सम्पूर्य' पा० । 'चराचरास्ये सम्पूर्य' र. र. स. पाठः ।

३ 'रुन्धीत' पा० । रुन्धीत मृत्स्नया' र. र. स. पाठः ।

४ 'पुटेद्गर्त्तेऽरत्निमात्रेऽपराह्णिके' र. र. स., यो. र. पाठः । 'पुटेद्गर्त्तेऽरत्निमात्रे पराह्णिके' र. चि. पाठः । 'गजपुटे पुटयेत्तु पराह्णके' र. रा. सु. पाठः ।

५ 'स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य' पा० । ६ 'अथ' पा० ।

गुञ्जाचतुष्टयं चास्य पिप्पलीमधुसंयुतम् ॥ २३ ॥
मरिचैर्घृतयुक्तैश्च भक्षयेद्दिवसत्रयम् ।
अङ्गकार्श्येऽग्निमान्द्ये च कासे पित्ते क्षयेऽपि च ॥ २४ ॥
लवणं वर्जयेत् तत्र साज्यं दधि च योजयेत् ।
एकविंशद्दिनं यावत् सघृतं मरिचं पिबेत् ।
पथ्यं मृगाङ्कवद्देयं शयीतोत्तानपादतः ॥ २५ ॥
ये शुष्का विषमाशनैः क्षयरुजा व्याप्ताश्च येऽष्ठीलया
पाण्डुत्वेन हताः कुवैद्यविधिना ये चाधिना दुर्भगाः ।
ये तप्ता विविधैर्ज्वरैः श्रमभदोन्मादैः प्रमादं गताः
ते सर्वे विगतामया हतरुजः स्युः पोट्टलीसेवनात् ॥ २६ ॥

रससिन्दूर एक तोला (९६ रत्ती), स्वर्ण भस्म तीन माशे (२४ रत्ती), शुद्ध गन्धक दो तोला। पहिले रससिन्दूर और गन्धक को अच्छीप्रकार पीसे फिर स्वर्णभस्म मिला चीते के क्वाथ से घोटे। शुष्क होने पर पीली कौड़ियों में भर दे और सुहागे से कौड़ियों का मुंह बन्द करदे। एक मिट्टी की हांडी पर

---

१ 'साज्यं मरिचैश्च समन्वितम्' र. र. स. पाठः । २ 'खादेत्परमया भक्त्या लोकेशे सर्वदर्शिनि' र. र. स. पाठः । 'भक्षयेत्परया भक्त्या लोकेशः सर्वदाशनः' यो. र. पाठः । 'भक्षयेत्पयसा भक्त्या लोकेशः सर्वदर्शनः' र. चि. पाठः ।

३ 'कासे पित्ते रसस्त्वयम्' पा० । 'रसोऽयं कासहिक्कयोः' र. र. स. पाठः ।

४ अस्यानन्तरं रसरत्नसमुच्चयादौ 'मरिचैर्घृतसंयुक्तैः प्रदातव्यो दिनत्रयम्' इति पठितम् ।

५ 'सदधि भोजनम्' पा० ।

६ 'विषमानलैः' पा० । ७ 'ये कुष्ठिनः' यो. र. पाठः ।

८ 'वैद्यविधिना हीनाश्च ये दुर्भगाः' पा० । ९ 'शोषिणः' पा० ।

१० 'भ्रममदोन्मादैः' पा०

११ 'विगताभया हि परया स्युः पोटलीसेवया' यो. र. पाठः ।

जिसके अन्दर चूना फिरा हो कपड़ामिट्टी कर ले। सूख जाने पर हांडी में इन कौड़ियों को रख मुंह बन्द कर सन्धिबन्धन करे और सुखा ले। इसे सायंकाल गजपुट देवे। अगले दिन स्वांगशीतल होने पर निकाल कर कौड़ियों समेत चूर्ण कर शीशी में रख ले। यह लोकेश्वर रस वीर्यवर्धक और पुष्टिकारक है। इसको चार रत्ति मात्रा में लेकर पिप्पली चूर्ण और शहद अथवा काली मिरच का चूर्ण और घी मिलाकर देह की कृशता, अग्निमान्द्य, खांसी, पित्तरोग तथा क्षयरोग में तीन दिन सेवन करावें। इसके सेवनकाल में रोगी नमक न खावे। दही में घी डालकर खिलावें। रोगी इक्कीस दिन तक घी में काली मिरचों का चूर्ण मिलाकर पीवे। पथ्य मृगाङ्क के समान देवें। रोगी सीधा चित लेटा रहे। जो रोगी विषम भोजनों से सूख गये है, जो क्षयरोग से आक्रान्त हैं,जो अष्ठीला वा पाण्डुरोग से मारे जा रहे हैं, जो कुवैद्य के इलाज से वा चिन्ता शोक आदि मानसिक रोगों से कान्तिहीन हो गये हैं, जो विविध ज्वरों वा रोगों से तप रहे हैं तथा जो श्रम मद और उन्माद से प्रमाद को प्राप्त हो गये हैं; वे सभी इस लोकेश्वरपोटली रस के सेवन से रोगमुक्त और पीड़ारहित हो जाते हैं।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—आधी रत्ती। यहां पर जो गजपुट का विधान है यह अल्प द्रव्य के लिये ठीक नहीं है। उसके लिये तो तन्त्रान्तरों में कहे अनुसार अरत्निमात्र गढे में पुट देना ही ठीक है। रसरत्नसमुच्चय में यह रस लोकनाथ नाम से है। वहां इसके साथ ही इसके सेवनकाल में यक्ष्मा में होने वाले उपद्रवों की चिकित्सा भी कही है। बताया है कि यदि कै हो तो गिलोय के रस में मधु मिलाकर पिलाना चाहिये। खाने को बैंगन का भरता दें। अथवा घी में धनिये को भूनकर चूर्ण करलें, इसे छोटी इलायचीचूर्ण और मरिचचूर्ण को मिला शरबत में डाल पीने को दें। शीतल जल से स्नान करावें वा सिर पर शीतल जल की धारा डालें।

यदि कफविकार हो तो कफनाश के लिये केले को घी में भूनकर मरिचचूर्ण का अवधूलन कर खाने को दें। अथवा अदरक को मधु वा गुड़ के साथ दें।

अरुचि होने पर तुषरहित धनिये को हलका सा भूनकर चूर्ण कर लें और कुछ घी खांड मिला रोगी को सेवनार्थ दें।

यदि कृमिजन्य उपद्रव भी हों तो अजवाइन और वायविडंग के चूर्ण को छाछ के साथ पिलावें। अथवा एरण्डमूल और मोथा; इनका क्वाथ दें।

विरेचन होता हो तो दुग्धिका (दूधी) को अग्निपर संस्कृत करके (हलका भूनकर) दे। अथवा भांग के पत्तों के चूर्ण को थोड़ा भूनकर उचित मात्रा में मधु के साथ रात को सोते समय दें।

यदि अंगों में वेदना हो—अंग टूटते हों तो घी की मालिश करके रोगी को गरम जल से स्नान करा दें॥ २०—२६॥

कनकसुन्दरो रसः—

रसस्य तुर्यभागेण हेमभस्म प्रयोजयेत्।
मनःशिला गन्धकश्च तुत्थं माक्षिकतालकम्॥ २७॥
विषं टङ्कणकं सर्वं रसतुल्यं प्रदापयेत्।
मर्दयेत् सर्वमेकत्र खल्लपात्रे च निर्मले॥ २८॥
जयन्तीभृङ्गराजोत्थैः पाठाया वासकस्य च।
अगस्तिलाङ्गलाग्नीनां स्वरसैश्च पृथक् पृथक्॥ २९॥
भावयित्वा विशोष्याथ पुनश्चार्द्रकवारिणा।
सप्तधा भावयित्वा च रसः कनकसुन्दरः॥ ३०॥
गुञ्जाद्वयं त्रयं वाऽस्य राजयक्ष्मप्रशान्तये।
मधुना पिप्पलीभिर्वा मरिचैर्वा घृतान्वितम्॥ ३१॥
सन्निपाते प्रदातव्यमार्द्रकस्य रसेन वै।
जयपालरजोभिर्वा गुल्मिने शूलरोगिणे॥ ३२॥
अम्लवर्ज्जं चरेत् पथ्यं बल्यं हृद्यं रसायनम्।
वर्ज्जयेल्लवणं हिङ्गु तक्रं दधि विदाहि यत्॥ ३३॥

शुद्ध पारा एक तोला (९६ रत्ती), स्वर्णभस्म ३ माशा (२४ रत्ती), शुद्ध मनसिल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध नीलाथोथा (शोधनकरण में प्रथमविधि से

शुद्ध तथा मृत), स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध विष, शुद्ध सुहागा; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर पीसें और जयन्ती, भांगरा, पाठा, बांसा (अडूसा), अगस्त्य (अगस्तिया), लाङ्गली या कलिहारी, चीता; इन सब के रस से पृथक् २ भावना (तन्त्रान्तर के अनुसार एक २ दिन) देकर सुखाकर फिर अदरक के रस से सातवार भावना दें और सुखा लें। यह कनकसुन्दर रस कहाता है। इस रस की दो या तीन रत्ति की मात्रा पिप्पलीचूर्ण और शहद से या मरिचचूर्ण और घी से दें तो राजयक्ष्मा शान्त होता है। इसको सन्निपात ज्वर में अदरक के रस से देना चाहिये। गुल्म तथा शूलरोग में इसमें जमालगोटे का चूर्ण मिलाकर देवें। इसके प्रयोग के समय पथ्य ऐसा खावें जो बलदायक, हृदय को सुख देने वाला तथा रसायन हो। खटाई, नमक, हींग, छाछ, दही तथा विदाही पदार्थ न खावें॥

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१/४ रत्ती से १/२ रत्ती तक।

गुल्म वा शूल में शुद्ध जयपाल की मात्रा १/८ से १/४ रत्ती तक मिलायी जाती है। इसे यक्ष्मा की प्रथमावस्था में प्रयोग करना चाहिये। रसरत्नसमुच्चय में भी कनकसुन्दर रस है—

'रसस्य तुल्यभागेन हेमभस्म प्रकल्पयेत्।
तालकं गन्धकं तुत्थं माक्षिकं रसकं शिलाम्॥
रससाम्येन युञ्जीत, तुत्थं भस्मीकृतं न्यसेत्।
किञ्चिट्टङ्कणकं दत्त्वा मार्जारस्य विशा युतम्।
प्रथमं पुटयेद्दध्ना द्वितीयं मधुना सह॥
वह्नौ भस्मीकृतं चेत्थं मयूराख्यकतुत्थकम्।
तालकं शोधयेदग्रे कूष्माण्डक्षारपाचनात्॥
तैले पचेत्ततः सम्यक् चूर्णे वा परिशोधयेत्।
गन्धकं शोधयेद् दुग्धे रसकं नरवारिणा॥
माक्षिकं सिन्धुसंयुक्तं बीजपूररसे पचेत्।
जयन्तीद्रवसम्पिष्टां शिलां सुपाचितां न्यसेत्॥
एकीकृत्य ततः सर्वमर्कक्षीरेण मर्दयेत्।

जयन्तीभृङ्गराजाभ्यां वासापाठाकृशानुभिः ।
अगस्तिलाङ्गलीभ्यां च प्रत्येकं दिवसं शनैः ।
ततस्तु गोलकं बद्ध्वा पचेत्पूर्ववदादृतः ॥
चूर्णयित्वा ततः सम्यक् भावयेदार्द्रकाम्बुना ।
सप्तधा व्योषनिर्यासै रसः कनकसुन्दरः ॥
गुञ्जाद्वयं त्रयं वास्य राजयक्ष्मापनुत्तये ।
मधुना पिप्पलीभिश्च मरिचैर्वा घृतान्वितैः ॥
लेहयेद्रोगिणं वैद्यो बलावस्थाविशेषवित् ।
जयपालरजोभिर्वा शुण्ठ्या गव्यघृताक्तया ॥
ददीत शूलिने प्राज्ञो गुल्मिने च विशेषतः ।
कादिवर्जं चरेत्पथ्यं हृद्यं बल्यं च पूर्ववत् ॥
सन्निपाते ददीतैनमार्द्रकद्रवसंयुतम् ॥'

इसमें स्वर्णभस्म भी पारद के तुल्य ही है। टङ्कण और विष यहां नहीं। रसक (खर्पर) है। सब द्रव्यों को एकत्र मिलाकर आक (मदार) के दूध से मर्दन करना विशेष है। इसके पश्चात् यहां गोलक बनाकर पाक (मृगाङ्कवत्) का विधान विशेष है। तदनन्तर पूर्ववत् अदरक के रस की सात भावना हैं। यहां अन्त में त्रिकटु क्वाथ की भी सात भावनायें देने को अधिक कहा है। यह भी यहां बताया है कि योग में तुत्थ की भस्म डालनी चाहिये।

रसरत्नाकर में जो कनकसुन्दर है उसमें स्वर्णभस्म तो पारद से चतुर्थांश

---

१ रसः कनकभागिकः कनकमाक्षिकस्तालकः शिलारसकगन्धकाः रससमाः सतुत्था इमे। विमर्द्य पयसा रवेः सकलमेतदस्योपरि द्रवैः प्रतिदिनं पृथक् तदिति भावयेद् बुद्धिमान् ॥ जयामुनिकलिक्रियादहनभृङ्ग्यासोद्भवैर्विभाव्य च रसैस्ततः सुदृढगोलकं स्वेदयेत्। मृगाङ्कवदथार्द्रकद्रवभरेण तं सप्तधा विमर्द्य च कटुत्रयाम्बुभिरयं क्षयस्यान्तकृत् ॥ रसः कनकसुन्दरो भवति सन्निपातेऽप्ययं सदार्द्रकरसैस्तथा पवनगुल्मशूलप्रणुत्। सविश्वघृतयोजितः सकलमत्र पथ्यं हितं मृगाङ्कवदथापरं किमपि नैव योज्यं क्वचित् ॥ इति योगरत्नाकरे योगतत्त्वादुद्धृतः पाठः।

रसरत्नसमुच्चय के योग से इतनी ही भिन्नता है कि यहां पाठा के रस से मर्दन नहीं।

ही है परन्तु विष वहां भी नहीं, खर्पर है। टङ्कण (सुहागा) पारे से चतुर्थांश है। मदार के दूध से मर्दन का विधान भी है। पाक करने का आदेश नहीं।

'रसभस्म चतुर्थांशं हेमभस्म प्रकल्पयेत्।
तालकं रसकं तुत्थं माक्षिकं गन्धकं शिला ॥
रसमानानि युञ्जीत सूतपादं च टङ्कणम्।
दिनैकैकं क्रमेणैव तत्सर्वं मर्दयेद् दृढम् ॥
अर्कक्षीरं जयन्ती च भृङ्गो वासा च लाङ्गली।
अगस्तिचित्रकं पाठा मर्द्यमेषां द्रवैः पृथक्।
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यमनुपानं मृगाङ्कवत्।
क्षयं हन्ति महातीव्रं रसः कनकसुन्दरः ॥' २७—३३ ॥

हेमगर्भपोट्टली—

रसभस्म त्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम्।
मृतताम्रस्य भागैकं भागैकं गन्धकस्य च ॥ ३४ ॥
मर्दयेच्चित्रकद्रावैर्द्वियामान्ते समुद्धरेत्।
पूर्य्या वराटिका तेन टङ्कणेन विलेपयेत् ॥ ३५ ॥
वराटीं पूरयेद्भाण्डे रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्।
विचूर्णयेत् स्वाङ्गशीते पोट्टली हेमगर्भिका।
मृगाङ्कवच्चतुर्गुञ्जा-भक्षणाद्राजयक्ष्मनुत् ॥ ३६ ॥

रससिन्दूर तीन तोला, स्वर्णभस्म एक तोला, ताम्रभस्म एक तोला, शुद्ध गन्धक एक तोला; इन्हें मिला मर्दन कर चीते के क्वाथ से दो पहरों तक घोटे। शुष्क होने पर कौड़ियों में इसे भरे और मुख को सुहागे से बन्द कर दे। उन कौड़ियों को एक हांडी में रख कर शराव से मुख बन्द कर दे और सन्धिबन्धन करके गजपुट में फूंक देवे। स्वांगशीतल होने पर कौड़ियों सहित चूर्ण करले। इस हेमगर्भपोट्टली को मृगाङ्क के समान चार रत्ति भर देने से राजयक्ष्मा रोग दूर होता है।

१ 'तालैकं' पा०।

विशेषवचन—इसकी आधुनिक मात्रा एक रत्ति की है ॥ ३४—३६ ॥

सर्वाङ्गसुन्दरो रसः—

गन्धो रसश्च तुल्यांशं[1] द्वौ भागौ टङ्कणस्य च ।
मौक्तिकं विद्रुमं शङ्खभस्म[2] देयं समांशिकम् ॥ ३७ ॥
हेमभस्मार्द्धभागश्च सर्वं खल्ले विमर्दयेत् ।
निम्बुद्रवेण[3] सम्पिष्य पिण्डिकां कारयेत् ततः[4] ॥ ३८ ॥
पश्चाद् गजपुटं दत्त्वा[5] सुशीतश्च समुद्धरेत् ।
हेमभस्मसमं तीक्ष्णं तीक्ष्णार्द्धं दरदं मतम् ॥ ३९ ॥
एकीकृत्य समस्तानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
ततः पूजां प्रकुर्वीत रसस्य दिवसे शुभे ॥ ४० ॥
सर्वाङ्गसुन्दरो ह्येष राजयक्ष्मनिकृन्तनः[6] ।
वातपित्तज्वरे घोरे सन्निपाते सुदारुणे ॥ ४१ ॥
अर्शःसु ग्रहणीदोषे मेहे गुल्मे भगन्दरे ।
निहन्ति वातजान् रोगान् श्लैष्मिकांश्च विशेषतः ॥ ४२ ॥
पिप्पलीमधुसंयुक्तं[7] घृतयुक्तमथापि वा ।
भक्षयेत् पर्णखण्डेन सितया चार्द्रकेण वा ॥ ४३ ॥

शुद्ध गन्धक एक तोला (९६ रत्ती), शुद्ध पारा एक तोला, दोनों की कज्जली करे। फिर शुद्ध सुहागा दो तोला, मोतीभस्म एक तोला, मूंगाभस्म एक तोला, शंखभस्म एक तोला, स्वर्णभस्म आधा तोला (४८ रत्ती); सब द्रव्यों को मिलाकर खरल में पीसकर नीबू के रस से (अन्य पुस्तक में नीम के रस से

---

१ 'रसगन्धकतुल्यांशौ' र.र. पाठः । २ 'शङ्खं मारणीयाः प्रयत्नतः' र.र. पाठः ।
३ 'निम्बुद्रवस्य योगेन' पा० । ४ 'भिषक्' पा० ।
५ 'दद्याच्छीतलञ्च' पा० । ६ रोगराजनिकृन्तनः' र. र. पाठः ।
७ 'पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं घृतयुक्तमथापि च' पा० ।

घोटना लिखा है, वह ठीक भी है) घोट कर पिण्डी सी बनाकर शुष्क होने पर सम्पुट में रखकर गजपुट में फूँक देवे। फिर स्वांगशीतल होने पर उसको निकाल कर पीस लें। और तीक्ष्णलौह की भस्म आधा तोला और शुद्ध हिंगुल तीन माषा (२४ रत्ती) मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण कर लेवे। फिर शुभ दिन में इस रस की पूजा करें। यह सर्वाङ्गसुन्दर रस राजयक्ष्मा रोग को नाश करता है। वातपित्तज ज्वर, घोर सन्निपात, बवासीर, ग्रहणीदोष, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, वातजरोग, विशेषतः श्लैष्मिकरोग; इन सबको दूर करता है। पिप्पलीचूर्ण और मधु वा घी के साथ, पान के पत्ते में, मिश्री से या अदरक के रस के साथ इसे खावें।

विशेषवचन—यहां पर भी गजपुट के स्थान पर लघुपुट देना ही उत्तम है। इस रस की आधुनिक मात्रा—२ रत्ती है।

यक्ष्मा में जब कफ का निःसरण कष्ट से हो, कफ पूययुक्त हो, मृदुज्वर हो, पार्श्वशूल हो तो इसका प्रयोग कराया जाता है। यह बहु परीक्षित औषध है। यदि रोगी का मल पतला हो वा दस्त आते हों तो इसे न दें।

रसरत्नाकर में इस रस को गिलोय के सत के साथ प्रमेह में भी उत्तम माना है। वहां उक्त पाठ के पश्चात्—

'गुडूचीसत्त्वसंयुक्तं प्रमेहेऽपि विशेषतः।
रसरत्नाकरे प्रोक्तः सिद्धयोगे रसोत्तमः॥
राजिकातैलहिङ्ग्वम्ललवणाढ्यं च वर्जयेत्॥'

इसप्रकार कहा है। राई, तेल, हींग, खटाई (अचार आदि भी) तथा अधिक नमक त्याज्य बताये हैं॥ ३७—४३॥

लोकेश्वरो रसः—

पलं कपर्दचूर्णस्य पलं पारदगन्धयोः।
माषं[1]ञ्च टङ्कणस्यैव जम्बीराद्भिर्विमर्दयेत्।
पुटेत् लोकेश्वरो नाम्ना लोकनाथो[2]रसोत्तमः॥ ४४॥

---

१ 'माषष्टङ्कणकस्यैकः' पा०। 'कर्षञ्च टङ्कणस्यैव' पा०।
२ 'लोकनाथोऽयमुत्तमः' पा०।

ऋते कुष्ठं रक्तपित्तमन्यान् रोगान् बलाज्जयेत् ।
पुष्टिवीर्य्यप्रसादौजः—कान्तिलावण्यदः परः ॥ ४५ ॥
कोऽस्ति लोकेश्वरादन्यो नृणां शम्भुमुखोद्गतात् ।
पथ्यं शाल्योदनं सर्पिर्दधि शाकं सहिङ्गुकम् ॥ ४६ ॥

नित्यं यामद्वयादूर्ध्वं कार्य्यं वारत्रयं दिवा ।
त्र्यहाद्वान्तेऽरुचौ वापि लग्नः सूतो न चेत् पुनः ॥ ४७ ॥
अष्टमेऽह्नि प्रदातव्यः पूर्ववत् कार्य्यसिद्धये ।
प्रथमे सप्तके[1] देया लावशूरणमुद्गकाः ॥ ४८ ॥
द्वितीये माषगोधूमौ भक्ष्यौ पूर्वोदितश्च यत् ।
देयानि मत्स्यमांसानि तृतीये मर्दनादिकम् ॥ ४९ ॥
तैलबिल्वारनालानि कोपस्त्रीस्वप्नजागरान् ।
त्यजेत् कादीनि द्रव्याणि हृद्यं स्वादु च शीलयेत् ॥ ५० ॥
वायौ सेव्यं पयः कोष्णं पित्ते तु सासितं हितम् ।
अत्यग्नौ चोरबीजानि तिलेक्षुकदलीफलम् ॥ ५१ ॥
खर्जूरमांसमृद्वीका—सितादि सकलं भजेत् ।
वीर्य्यच्युतौ नारिकेलजलं तालफलानि च ॥ ५२ ॥
आनाहारुचिमूर्च्छार्त्तिधूमोद्गारविसूचिकाः ।
एतेषु लघु शाल्यन्नं केवलं सघृतं हितम् ॥ ५३ ॥
अतिवान्तौ पिबेच्छिन्नारसं क्षौद्रेण संयुतम् ।
सक्षौद्रं वासकं रक्तपित्ते, रुचिविपर्य्यये ॥ ५४ ॥
भृष्टधान्यं सितायुक्तमथवा क्षौद्रसंयुतम् ।

---

[1] 'सप्तमे' इति प्रचलितः पाठः ।

यवान्नं मधुसंयुक्तं पिबेद्वा माहिषं दधि ॥ ५५ ॥
घृतान्नं भक्षयेन्नित्यं सुखोष्णेन च वारिणा ।
छिन्नाऽम्बुसहितं देयं दाहेऽजीर्णे सुधाजलम् ॥ ५६ ॥
आर्द्रकं सर्षपं रम्भाफलं भृङ्गं कफोल्वणे ।
अन्येऽप्युपद्रवा ये स्युस्तत्तच्छान्त्यै यथौषधम् ॥ ५७ ॥
द्वात्रिंशद्दिवसे कार्य्यं स्नानमामलकैस्तिलैः ।
युक्तं सेव्यं बले जाते शनैरग्निबलादनु ॥ ५८ ॥

कौड़ीभस्म एक पल, शुद्ध पारा आधा पल, शुद्ध गन्धक आधा पल, शुद्ध सुहागा एक माषा लें । पहले पारा गन्धक की कज्जली करें । फिर अन्य द्रव्य मिलाकर जम्बीरी के रस से घोटकर सम्पुट में बन्द कर पुट दें । यह उत्तम लोकनाथ रस लोकेश्वर कहाता है । कुष्ठ और रक्तपित्त को छोड़ कर अन्य रोगों को बलपूर्वक जीतता है । पुष्टि, वीर्य, ओज, प्रसाद, कान्ति तथा लावण्य देता है । शम्भु मुख से कहे गये इस लोकेश्वर रस से बढ़कर और कौन उत्तम रस है । इसके सेवन करने वाले को पथ्य में शाली चावल, घी, दही तथा हींग युक्त शाक खाना चाहिये । नित्य छः छः घण्टे के बाद और दिन में तीन बार पथ्य देना चाहिये । यदि तीन दिन देने से रोगी को वमन हो जाय या अरुचि हो और यह रस ठीक अनुकूल न बैठे—लाभ न करे तो बीच में बन्द करके आठवें दिन कार्य्यसिद्धि के लिये पूर्ववत् पुनः देना चाहिये । पहले सप्ताह में लवा का मांस ज़मींकन्द और मूंग का पथ्य दिया जाता है । दूसरे सप्ताह में उड़द गेहूं तथा पूर्वोक्त पथ्य दें । तीसरे सप्ताह में मछली और मांस दें तथा तैल आदि के मर्दन की व्यवस्था करें । तेल, बिल, कांजी, क्रोध, स्त्रीसंग, दिन में सोना, रात को जागना, करेला ककड़ी आदि ककाराष्टक द्रव्य; इन्हें छोड़ देवे । जो हृदय के लिये हितकारी तथा स्वादु-मधुर द्रव्य हैं उन्हें सेवन करें । वायु के दोष में गरम दूध पीवे, पित्त के दोष में मिश्री सहित शीतल किया हुआ दूध पीवे । अत्यग्नि रोग अर्थात् भस्मक रोग में चोर के बीज

३ 'भङ्गं' पा० ।

(अपामार्ग के बीज), तिल, ऊख, केले का फल, खजूर, मांस, द्राक्षा, मिश्री आदि खावे । वीर्यपात हो तो नारियल का जल तथा ताड़ का फल खावे। आनाह, अरुचि, मूर्छा, धुएं के से डकार आना, विसूचिका; इन सब उपद्रवों में शाली चावलों का लघु भात घृत सहित दें। अति वमन होता हो तो गिलोय के स्वरस में शहद मिलाकर पिलावें। रक्तपित्त में बांसा के रस में शहद मिलाकर दें । अरुचि हो तो भुने हुए धनिये को मिश्री या शहद मिलाकर देना चाहिये या जौ के अन्न में शहद मिलाकर खावे अथवा भैंस का दही पीवे । घी मिला हुआ अन्न (भात) नित्य खावे और गरम जल पीवे । दाह रोग में गिलोय के रस के साथ दें और अजीर्ण में चूने के जल के साथ देवें । कफ की प्रधानता में अदरक, सरसों, केला का फल, दारचीनी देवें। अन्य भी जो उपद्रव हों उनमें उस २ की शान्ति के लिये उचित औषध देवें। बत्तीसवें दिन पर आमलों और तिल के उबटने के साथ स्नान करें। बल हो जाने पर अग्निबल के अनुसार शनैः जो उचित पथ्य हो वह करता रहे ।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—४ रत्ती । इस औषध का प्रयोग काल ३२ दिन का बताया है और इस औषध के सेवन काल का साप्ताहिक पथ्य भी ऊपर कह दिया है । इससे मिलता जुलता लोकनाथ रस अतिसाराधिकार में कहा जाचुका है वा लघुलोकेश्वर रस मूत्राघाताधिकार में कहा जायगा ।

कई यहां 'भृष्टधान्य' से धान की खील लेते हैं । परन्तु वह वान्ति में उत्तम होती है । अरुचि में उतना लाभ नहीं करती। ईषद्भृष्ट धनियां ही अरुचि में अच्छा रहता है । पूर्व कहे गये लोकेश्वरपोटली रस के विशेषवचन में रसरत्नसमुच्चय से उद्धृत लोकनाथ रस के उपद्रवशान्ति-प्रकरण में अरुचिनाशार्थ धनिये का प्रयोग कहा जा चुका है। पाठ इस प्रकार है—

'भृष्ट्वा कुस्तुम्बुरूनीषन्निस्तुषांश्चूर्णयेत्ततः ।
शर्कराघृतसंमिश्रान्दद्यादरुचिशान्तये ॥' ४४—२८ ॥

स्वल्पमृगाङ्कः—

रसभस्म हेमभस्म तुल्यं गुञ्जाद्वयं भजेत् ।

दोषं बुद्ध्वाऽनुपानेन मृगाङ्कोऽयं क्षयापहः ॥ ५८ ॥

रससिन्दूर और स्वर्णभस्म; दोनों को एक २ रत्ति लेकर मिलाकर दो रत्ति की मात्रा दोषानुसार उचित अनुपान से दे तो क्षयरोग का नाश होता है। इसका नाम स्वल्पमृगाङ्क रस है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा–आधी रत्ती।

इसे क्षयरोग में यकृत् के काम न करने पर और वात प्रबलता होने पर दिया जाता है। अनुपान-पिप्पलीचूर्ण २ रत्ती और मधु है। यह कास को भी कम करता है। काली खांसी (Whooping Cough) जिस में वात की प्रधानता रहती है। इसे कण्टकारी बीज के चूर्ण के साथ देते हैं।

रसेन्द्रचिन्तामणि में क्षय में बकरी के दूध का अनुपान बताया है ॥ ५८ ॥

काञ्चनाभ्र रसः—

काञ्चनं रससिन्दूरं मौक्तिकं लौहमभ्रकम्।
विद्रुमञ्चाभया तारं कस्तूरी च मनःशिला ॥ ६० ॥
प्रत्येकं बिन्दुमात्रन्तु सर्वं सम्मर्द्य यत्नतः।
वारिणा वटिका कार्य्या द्विगुञ्जाफलमानतः ॥ ६१ ॥
अनुपानं प्रयोक्तव्यं यथादोषानुसारतः।
क्षयं हन्ति तथा कासं श्लेष्मापित्तसमुद्भवम्[3] ॥ ६२ ॥
प्रमेहं विविधं[4]श्चैव दोषत्रयसमुत्थितम्।
कफ[5]जान् वातजान् रोगान् नाशयेत् सद्य एव हि ॥ ६३ ॥
बलवृद्धिं वीर्य्यवृद्धिं लिङ्गदार्ढ्यं करोति च[6]।

१ 'पूर्ववदनुपानेन' पा०।
२ 'अस्यानन्तरं नानारोगप्रशमनं सर्वोपद्रवसंयुतम्' इत्यधिकः अन्यत्र।
३ 'श्लेष्मपित्तहरं तथा' र. र. पाठः।
४ प्रमेहान् विंशतिश्चैव दोषत्रयसमुत्थितान्' पा०। ५ 'अशीतिं' पा०।
६ अस्यानन्तरं 'रसोऽयं सुश्रुतप्रोक्तो वाजीकरण उत्तमः' इत्यधिकः रसरत्नाकरे।

श्रीकरः पुष्टिजननः नानारोगनिसूदनः।
गहनानन्दनाथोक्तो रसोऽयं काञ्चनाभ्रकः॥ ६४॥

स्वर्णभस्म, रससिन्दूर, मोतीभस्म, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, मूंगाभस्म, हरड़-चूर्ण, चांदीभस्म, कस्तूरी, शुद्ध मनसिल; प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष लें। पीसकर जल से दो रत्ति की गोली बनालें। इस गोली को दोषानुसार भिन्न२ अनुपानों से देने पर क्षयरोग, पित्त एवं श्लेष्मा से उत्पन्न हुई खांसी तथा त्रिदोषज विविध प्रमेह नष्ट होते हैं। कफज तथा वातज सब रोगों को शीघ्र नाश करता है, बल बढ़ाता है, वीर्य बढ़ाता है, लिंग को दृढ़ करता है। यह सौन्दर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक और नानारोगनाशक है। यह गहनानन्द का कहा काञ्चनाभ्र रस है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—आधी रत्ती। यदि यक्ष्मा में ज्वर प्रबल हो वा मध्य हो, श्लेष्मा बहुत अधिक निकलती हो, हृदय निर्बल हो वा धातुक्षयज यक्ष्मा हो तो इसका प्रयोग किया जाता है॥ ६०—६४॥

बृहत्काञ्चनाभ्ररसः—

काञ्चनं रससिन्दूरं मौक्तिकं लौहमभ्रकम्।
विद्रुमं मृतवैक्रान्तं तारं ताम्रञ्च वङ्गकम्॥ ६५॥
कस्तूरिका लवङ्गञ्च जातीकोषैलवालुकम्।
प्रत्येकं बिन्दुमात्रञ्च सर्वं मर्द्यं प्रयत्नतः॥ ६६॥
कन्यानीरेण सम्मर्द्य केशराजरसेन च।
अजाक्षीरेण सम्भाव्यं प्रत्येकं दिवसत्रयम्॥ ६७॥
चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक्।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं यथा दोषानुसारतः[3]॥ ६८॥

१ 'काञ्चनस्य समा कान्तिर्मदनस्य समं वपुः। भक्ष्यस्तु प्रातरुत्थाय' भै. र., र. र. पाठः। २ 'रसं तु काञ्चनाभ्रकम्' र. र. पाठः।

३ अस्यानन्तरं 'नानारोगप्रशमनं सर्वोपद्रवसंयुतम्' अधिकः पाठोऽन्यत्र।

क्षयं हन्ति तथा कासं यक्ष्माणं श्वासमेव च ।
प्रमेहान् विंशतिश्चैव दोषत्रयसमुद्भवान् ।
[1]सर्वरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ६९ ॥

स्वर्णभस्म, रससिन्दूर, मोतीभस्म, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, मूंगाभस्म, वैक्रान्तभस्म, चांदीभस्म, ताम्रभस्म, बंगभस्म, कस्तूरी, लौंगचूर्ण, जावित्रीचूर्ण, एलवालुकचूर्ण; प्रत्येक द्रव्य एक२ कर्ष लेकर सबको मिला घीकुमार के रससे मर्दन करके केशराज का रस, बकरी का दूध; प्रत्येक की तीन २ दिन भावना देवे। इस रसकी चार रत्ति की गोली बनाकर दोषानुसार अनुपान से सेवन करावें। यह क्षय, खांसी, यक्ष्मा, श्वास रोग, तीनों दोषों से होने वाले बीसों प्रकार के प्रमेह; सब को ऐसे दूर करता है जैसे सूर्य अन्धकार को।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा-१ रत्ती। यह क्षयज वा साहसिक यक्ष्मा में आशानुरूप फल देता है ॥ ६५—६६ ॥

शिलाजत्वादिलौहम्—

शिलाजतु मधु व्योषं ताप्यं लौहरजस्[2]तथा ।
क्षीरे[3]ण लेहितस्याशु क्षयः क्षयमवाप्नुयात् ॥ ७० ॥

शिलाजीत, मुलहठी, सोंठ, मिरच, पिप्पली, स्वर्णमाक्षिकभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग लें और सबके समभाग (६ भाग) लौहभस्म मिलावें। सबको पीसकर रखें (चाहें तो दो रत्ति भर की गोली जल से घोट कर बना लें)। इसे दूध से खावें। क्षयरोग का नाश होता है।

विशेषवचन—'मधु' का अर्थ यहां शहद भी हो सकता है। तब शिलाजीत आदि पांच द्रव्यों के बराबर लौहभस्म होगी। इसे २ रत्ती मात्रा में लेकर मधु से चटाकर ऊपर बकरी वा गौ का दूध पीना चाहिये। 'लेहितस्य' कहने से तो मधु से शहद ही लेना चाहिये। व्यवहार 'मधु' से मुलहठी लेकर ही है।

शिलाजत्वादि लौह को साहसिक यक्ष्मा में अथवा जब श्लेष्मा के साथ

---

१ 'सर्वान् रोगान्' पा०। २ 'लोहरजांसि यः.' र. चि. पाठः।

३ 'क्षीरेणालोडितस्य' 'क्षीरेण लोहितस्य' 'क्षीरभुक् लेहितस्य' पा०। 'क्षीरभुगचिरेणैव' र. चि. पाठः।

रक्त वा पूय आती हो, उरःक्षत हो, हलका हलका ज्वर हो अथवा वीर्यक्षय से यक्ष्मा हुआ हो तब देना चाहिये। इससे शीघ्र दुर्बलता दूर होती है और क्षीण हुए रक्त आदि धातु पुनः पूर्ण हो जाते हैं।

इस रस से मिलता जुलता यक्ष्मारिलोह नाम से एक योग तन्त्रान्तरों में है—

'मधुताप्यविडङ्गाश्मजतुलोहघृताभयाः।
घ्नन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं सेव्यमाना हिताशिना॥'

यहां स्वर्णमाक्षिकभस्म, वायविडङ्ग का चूर्ण, विशुद्ध सूर्यतापी शिलाजीत तथा हरड़ का चूर्ण एक-एक भाग है और लोहभस्म ४ भाग। मात्रा-२ रत्ती। मधु और घी से चटाया जाता है। इसी का नाम 'राजरोगहर लोह' भी है॥

रसरत्नाकर में शिलाजत्वादिलोह नाम से एक और योग कहा है—

'शिलाजतुक्षौद्रविडङ्गसर्पिर्लोहाभयासूतकताप्यभक्षः।
आपूर्यते दुर्बलदेहधातुस्त्रिपञ्चरात्रेण यथा शशाङ्कः॥

पूर्वयोग से इतनी ही भिन्नता है कि यहां रससिन्दूर एक भाग अधिक है। अथवा इसमें कई लोहभस्म भी एक भाग ही डालते हैं। अन्यत्र यही योग वृष्यप्रकरण में है—

'तापीजधातुमधुपारदलोहचूर्ण-
पथ्याशिलाजतुविडङ्गघृतानि लिह्यात्।
एकाग्रविंशतिदिनानि गदार्दितोऽपि
सोऽशीतिकोऽपि रमयेत्प्रमदां युवेव॥"

यदि इसी योग में हरड़ को न डालकर उसके स्थान पर अभ्रकभस्म डाल दें तो पूर्णचन्द्र रस होता है। पूर्णचन्द्र रस वाजीकरणाधिकार में कहा जायगा।

लोहामृत नाम से भी यक्ष्मा में एक योग का प्रयोग होता है, परन्तु यह वही योग है जो पूर्व यक्ष्मारिलोह नाम से कहा है।

'शिलाजतु विडङ्गानि ह्यभया हेममाक्षिकम्।
मृतलोहसमं क्षौद्रैर्निष्कं भुक्तं क्षयापहम्॥
अयं लोहामृतो नाम्ना सन्निपातं नियच्छति॥'

शिलाजत्वादि लोह नाम से योगरत्नाकर में जो योग है उस में केवल शिलाजीत और लोहभस्म ही हैं।

'शिलाजतुयुतं लोहं वल्लं तु विधिमारितम्।
पथ्याशी सेवते यस्तु स यक्ष्माणं व्यपोहति ॥' ७० ॥

कुमुदेश्वरो रसः—

हेमभस्म रसभस्म गन्धकं मौक्तिकन्तु रसपाद[1]टङ्कणम्।
तारकं गरुडमत्र[2] तुल्यकं काञ्जिकेन परिमर्द्य गोलकम् ॥७१॥
मृत्स्नया च परिवेष्ट्य शोषितं भाण्डके लवणगेऽथ पाचयेत्।
एकरात्रमथ सम्पुटेन वा सिद्धिमेति कुमुदेश्वरो रसः।
वल्लमस्य मरिचैः घृताप्लुतै[3] राजयक्ष्मपरिशान्तये पिबेत् ॥७२॥

स्वर्णभस्म, रससिन्दूर, शुद्ध गन्धक, मोतीभस्म; प्रत्येक १ भाग, शुद्ध सुहागा चौथाई भाग, चांदीभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। कांजी से पीस गोला बनाकर एक छोटे मृत्पात्र में बन्द कर ऊपर कपड़ मिट्टी करे और सुखा कर लवण यन्त्र में दिन भर पाक करे। अथवा मृदुपुट से पाक करें तो कुमुदेश्वर रस सिद्ध हो जाता है। इसकी डेढ़ रत्ति की मात्रा को घी में मरिच चूर्ण डालकर उसके साथ राजयक्ष्मा की शान्ति के लिये पीना चाहिये।

विशेषवचन—इसे पुराने यक्ष्मा में जब रोगी को प्रबलज्वर हो, हृदय कमज़ोर हो–धड़कता हो, निद्रानाश हो, पेट में वायु की प्रबलता हो, पार्श्वशूल हो तब देना चाहिये।

इस रस के प्रचलित पाठ में प्रमाद है। 'रसपादटङ्कणम्' के स्थान पर 'रसटङ्कणं तथा' पाठ है जिस का कोई ठीक अर्थ नहीं जंचता। 'रस' का अर्थ 'पारद' होता है अतः कई उस पाठ में पारद भी डालते हैं। परन्तु रससिन्दूर पूर्व कहे जाने पुनः पारद का कहना कोई बहुत अच्छा नहीं। यद्यपि ऐसा

१ 'रसटङ्कणं तथा' इति प्रचलितः पाठः।
२ 'गरुडसर्वतुल्यंक' प्रचलितः पाठः। ३ 'घृतान्वितैः' पा०।

अन्यत्र कई योगों में भी मिलता है अथवा 'रस' का अर्थ 'विष' भी है। अनेकार्थकोष में कहा है—

'रसो जलं रसो हर्षो रसः शृङ्गारपूर्वकः ।
स्वाद्वादिषु च निर्यासे पारदेऽपि रसो विषे ॥'

विष के योग यक्ष्मा में प्रायः लाभकर नहीं समझे जाते। हां कभी कभी प्रारम्भ २ में उनका प्रयोग किया जाता है।

गरुड का अर्थ यहां स्वर्णमाक्षिक किया गया है परन्तु कोषों में कहीं इसका वाचक नहीं। गरुड़ का अर्थ स्वर्ण भी है परन्तु स्वर्णभस्म पूर्व ही कही गयी है। रसकल्पलता नामक पुस्तक में जो अभी अमुद्रित ही है तार्क्ष्य वा गरुड को यशद का वाचक देखा है। यशदभस्म यक्ष्मा में अत्यन्त हितकर भी है। यह हलके हलके ज्वर (९९° वा १००°) को कम करती है। कास श्वास पाण्डुता आदि में भी हितकर होती है। यक्ष्मा में होने वाले रात्रिस्वेद को तो यह तुरन्त दूर करती है। अतः यशदभस्म से इस योग को प्रस्तुत करना उत्तम है; विशेषतः यदि उक्त लक्षण विद्यमान् हों। आजकल व्यवहार स्वर्णमाक्षिकभस्म से ही है। तन्त्रान्तर में कुमुदेश्वर रस का निम्न पाठ है—

' हेमभस्म रसभस्म तुल्यकं मौक्तिकं तु रसपादटङ्कणम् ।
गन्धकं कुरुत सर्वतुल्यकं काञ्जिकेन परिपेष्य गोलकम् ॥
मृत्स्नया च परिवेष्ट्य शोषितं भाण्डके सलवणेऽथ पाचयेत् ।
एकरात्रमथ तं पुटेत वा सिद्धिमेति कुमुदेश्वरो रसः ॥
वल्लमस्य मरिचैर्घृतप्लुतं राजयक्ष्मपरिशान्तये पिबेत् ।
पिप्पलीभिरथवा मधुप्लुतैराज्यगव्यपयसा युतैस्तु वा ॥
पथ्यमस्य मधुमांसतश्चरेच्छालिमुद्गघृतदुग्धमस्तुभिः ।
व्यञ्जनैश्च घृतपाचितैरतिक्षारहिङ्गुरहितैर्घृतैरपि ॥
हृद्यमत्र बलदं हितं हिमं द्वित्रिवारमपि भोजयेद्भिषक् ।
तैलबिल्वमपि कारवेल्लकं राजिकादि रसमारकं त्यजेत् ॥
क्रोधकामपरिवर्जितः शिवं चिन्तयेद्धि करुणामृतार्णवम् ।
भग्नगात्रचिररोगिभोजनं सक्तुकञ्च परिवर्जयेद्भिषक् ॥
सत्त्वमस्ति यदि दैवयोगतस्तर्हि शुद्धवपुषो रसं ददेत् ॥'

इसमें स्वर्णभस्म, रससिन्दूर, मुक्ताभस्म; प्रत्येक १ भाग, शुद्ध सुहागा चौथाई भाग और गन्धक सब के समान है। इन्हें काञ्जिक से पीस गोला बना मृगाङ्करस के सदृश पाक करें वा पुट दें। इसे भी उन्हीं लक्षणों के होने पर प्रयुक्त करते हैं, जिनमें मृगाङ्करस किया जाता है। यह रस रसप्रकाशसुधाकर में भी है वहां इसे वालुकायन्त्र में पाक करने कहा है।

योगरत्नाकर में एक और कुमुदेश्वर है, वह इससे भिन्न है, परन्तु यतः अधिकतर प्रयोग कराया जाता है यहां हम उद्धृत कर देते हैं—

'पारदं शोधितं गन्धमभ्रकञ्च समं समम्।
तदर्धं दरदं दद्यात्तदर्धां च मनःशिलाम्॥
सर्वार्धं मृतलोहञ्च खल्वमध्ये विनिक्षिपेत्।
द्विःसप्त भावना देयाः शतावर्या रसेन च॥
ततः सिद्धो भवत्येष कुमुदेश्वरसंज्ञकः।
सितया मरिचेनाथ गुञ्जाद्वित्रिप्रमाणतः॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय पूजयित्वेष्टदेवताम्।
यक्ष्माणमुग्रं हन्त्येव वातपित्तकफामयान्॥
ज्वरादीनखिलान् रोगान् यथा दैत्यान् जनार्दनः।
सतताभ्यासयोगेन वलीपलितनाशनः॥'

यह ग्रन्थकार ने रसार्णव से उद्धृत किया है। शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म; प्रत्येक १ भाग, शुद्ध शिंगरफ़ आधा भाग, शुद्ध मनःशिला चौथाई भाग; और इस सारे से आधी लोहभस्म; इन्हें यथाविधि मिला शतावर के रस की १४ भावना दे। आधुनिक मात्रा १ रत्ती। इसे मरिच चूर्ण २ रत्ती और ८ रत्ती खांड के साथ मिलाकर दूध वा जल से देते हैं। यह यक्ष्मा की प्रथमावस्था में जब फेफड़े में गुटिकासञ्चय प्रारम्भ ही होता है, दिया जाता है॥ ७१—७२॥

---

१ 'सूतभस्म समहेमभस्मकं मौक्तिकं च रसपादटङ्कणम्। गन्धमत्र कुरु सर्वतुल्यकं चूर्णितं तुषजलेन गोलकम्॥ लेपयेन्मृदुमृदा विशोषितं पाचितं सिकतयन्त्रमध्यतः। वासरैकमथ शीतलीकृतश्चूर्णितो मरिचमाक्षिकैः प्लुतः॥ भक्षितो हि कुमुदेश्वरो रसो राजयक्ष्मपरिशान्तिकारकः॥'

क्षयकेसरीरसः—

त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवङ्गकैः।
नवभागोन्मितैस्तुल्यं लौहपारदसिन्दुरम्।
मधुना क्षयरोगांश्च हन्त्ययं क्षयकेशरी ॥ ७३ ॥

सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, छोटी इलायची, जायफल, लौंग; इन में से प्रत्येक द्रव्य का कपड़े से छना हुआ चूर्ण एक २ तोला लें। सारा चूर्ण नौ तोला हुआ। इसमें साढ़े चार तोला लौहभस्म तथा रससिन्दूर साढ़े चार तोला डालें। सबको पीसकर मात्रा में शहद के साथ चाटें तो क्षय रोग दूर होता है। इसका नाम क्षयकेशरी रस है।

विशेषवचन—तन्त्रान्तर के अनुसार इसे बकरी के दूध से पीसकर २ रत्ती की गोलियां बना लेनी चाहियें। जब यक्ष्मा में रोगी का मल पतला हो उस समय लाभ करता है।

भैषज्यरत्नावली के पाठ के अनुसार इसमें रससिन्दूर नहीं डाला जाता, लौहभस्म ही ९ तोले डालते हैं ॥ ७३ ॥

बृहच्चन्द्रामृतो रसः—

रसगन्धकयोर्ग्राह्यं कर्षमेकं सुशोधितम्।
अभ्रं निश्चन्द्रकं दद्यात् पलार्द्धञ्च विचक्षणः ॥ ७४ ॥
कर्पूरं शाणकं दद्यात् स्वर्णं तोलकसम्मितम्।
ताम्रञ्च तोलकं दद्याद् विशुद्धं मारितं भिषक् ॥ ७५ ॥
लौहं कर्षं क्षिपेत् तत्र वृद्धदारकजीरकम्।
विदारी शतमूली च क्षुरकश्च बला तथा ॥ ७६ ॥
मर्कट्यतिबला चैव जातीकोषफले तथा।
लवङ्गं विजयाबीजं श्वेतसर्जरसं तथा ॥ ७७ ॥

---

१ 'नवभागान्वितं लौहं समं सिन्दूरसन्निभम्। छागीदुग्धेन सम्पिष्य वल्लमस्य प्रयोजयेत्। मधुना' भै. र. पाठः।

शाणभागं समादाय चैकीकृत्य प्रयततः ।
मधुना मर्दयेत् तावत् यावदेकत्वमागतम् ॥ ७८ ॥
चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन वटीं कुर्य्यात् प्रयततः ।
भक्षयेद्वटिकामेकां पिप्पलीमधुना सह ॥ ७९ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष लेकर कज्जली करें। फिर अभ्रकभस्म आधा पल, कर्पूर एक शाण, स्वर्णभस्म एक तोला, ताम्रभस्म एक तोला, लौहभस्म एक कर्ष, विधारे के बीज, श्वेतजीरा, विदारीकन्द, शतावर, तालमखाना, बलामूल, कौंच के बीज, अतिबलामूल, जायफल, जावित्री, लौंग, भांग के बीज, सफेद राल; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ शाण लेकर शहद से मिलाकर पीसें। जब सब एक रस हो जाये तो चार रत्ति प्रमाण की गोली बना ले। एक गोली को पिप्पली चूर्ण और शहद से खावे तो क्षयरोग तथा खांसी आदि अच्छे होते हैं।

यहां पर रसरत्नसमुच्चय में कही मानपरिभाषा के अनुसार कर्ष से एक तोला (९६ रत्ती) ली जायगी। परन्तु बंगाल के वैद्य कर्ष को २ तोला, पल को ८ तोला और शाण को ४८ रत्ती लेकर योग को बनाते हैं। तोला ९६ ही रत्ती का होता है।

इस रस की आधुनिक मात्रा २ रत्ती है। फुप्फुसावरणशोथ (Pleurisy) से उत्पन्न यक्ष्मा में अथवा यक्ष्मा में ही यदि फुप्फुसावरणशोथ हो तब इसे प्रयोग करा सकते हैं। यह वीर्यक्षयज यक्ष्मा में भी अति लाभकर है॥

॥ ७४—७९ ॥

महामृगाङ्को रसः—

निरुत्थभस्म सौवर्णं द्विगुणं भस्मसूतकम् ।
त्रिगुणं भस्म मुक्तोत्थं शुकपुच्छं चतुर्गुणम् ॥ ८० ॥
मृतताप्यञ्च पञ्चांशं तारभस्म चतुर्गुणम् ।
सप्तभागं प्रवालञ्च रसतुल्यञ्च टङ्कणम् ॥ ८१ ॥

---

१ 'दद्यादत्र भिषक्सुधीः' भै. र. पाठः।

सर्वमेकत्र सम्मर्द्य त्रिदिनं लुङ्गवारिणा।
ततश्च गोलकं कृत्वा शोषयित्वा खरातपे ॥ ८२ ॥
लवणैः पात्रमापूर्य्य तन्मध्ये गोलकं क्षिपेत्।
तन्मुखन्तु मृदा रुद्ध्वा पचेद् यामचतुष्टयम् ॥ ८३ ॥
आकृष्य चूर्णयेत् सर्वं चतुःषष्टिविभागतः।
वज्रं वा तदभावे तु वैक्रान्तं षोडशांशिकम् ॥ ८४ ॥
महामृगाङ्कः खलु एष सिद्धः श्रीनन्दिनाथप्रकटीकृतोऽयम्।
वल्लोऽस्य सेव्यो मरिचाज्ययुक्तः सेव्योऽथवा पिप्पलिकासमेतः ८५
तत्रोपचाराः कर्त्तव्याः सर्वे क्षयगदोदिताः।
बल्यं वृष्यञ्च भोक्तव्यं त्यजेत् सूतविरोधि यत् ॥ ८६ ॥
यक्ष्माणं बहुरूपिणं ज्वरगणं गुल्मं तथा विद्रधिं
मन्दाग्निं स्वरभेदकासमरुचिं वान्तिञ्च मूर्च्छां भ्रमिम्।
अष्टावेव महागदान् गरगदान् पाण्ड्वामयान् कामलाः
पित्तोत्थांश्च समग्रकान् बहुविधानन्यांस्तथा नाशयेत् ॥ ८७ ॥

निरुत्थ स्वर्णभस्म एक तोला, रससिन्दूर दो तोला, मोतीभस्म तीन तोला, शुद्ध गन्धक चार तोला, स्वर्णमाक्षिकभस्म पांच तोला, चांदीभस्म चार तोला, प्रवालभस्म सात तोला, शुद्ध सुहागा दो तोला। सबको पीसकर मातुलुंग (बिजौरा) के रस से तीन दिन घोटकर गोला बना तीव्र धूप में सुखावे। फिर नमक से पात्र भरकर उसके मध्य में (लवणयन्त्र) इसका गोला (मूषा में बन्द किया हुआ) धर दे और मुख बन्द कर मिट्टी से सन्धि को

---

१ 'शुद्धं प्रदेयं पूर्वभागिकम्।' भै. र. पाठः।
२ 'तत्समांशकम्' भै. र. पाठः। ३ 'घृतञ्च' पा०।
४ 'श्वासञ्च' पा०। ५ 'गदगणान्' पा०।
६ 'पित्तार्तिं समलग्रहान्' भै. र. पाठः।

लीप दे । पश्चात् बारह घण्टे आग पर पकावे । स्वांगशीतल होने पर निकाल कर चूर्ण कर ले और उस में सारे चूर्ण का चौसठवां भाग हीराभस्म डाल दे । हीराभस्म न हो तो सोलहवां भाग वैक्रान्तभस्म डाले । अच्छी प्रकार घोटकर शीशी में रख ले । यह महामृगाङ्करस सिद्धफल है । इसे श्रीनन्दिनाथ ने प्रकाशित किया है । इस की डेढ़ रत्ति की मात्रा को मरिच और घी से मिलाकर सेवन करें अथवा पिप्पलीचूर्ण मिलाकर भी सेवन की जासकती है । इसके सेवन के समय क्षयाधिकार में कहे हुए पथ्य आदि सब उपचारों का पालन करना चाहिये। बलदायक तथा वृष्य भोजन करे। इसके सेवन के समय वे सब वस्तुएं सेवन न करें जो कि पारा के सेवन करने के समय अपथ्य कही हैं (ककाराष्टक आदि) । इससे अनेक रूपों से युक्त यक्ष्मा भी दूर होता है तथा ज्वर समूह, गुल्मरोग, विद्रधि, मन्दाग्नि, स्वरभेद, कास, अरुचि, वमन, मूर्च्छा, भ्रम, आठों महारोग, गर (संयोगज विष) रोग, पाण्डुरोग, कामला, पित्त से होने वाले सभी रोग तथा अन्य अनेक प्रकार के रोग दूर होते हैं ।

विशेषवचन—भैषज्यरत्नावली के पाठ के अनुसार हीराभस्म १ भाग और अभाव में वैक्रान्तभस्म १ भाग डाली जाती है । तब मात्रा $\frac{1}{2}$ रत्ती से १ रत्ती तक होती है ।

यह यक्ष्मा की उत्कृष्ट औषध है । इससे यक्ष्मा का ज्वर कास उरःक्षत तथा रक्तहीनता शीघ्र दूर होती है । इसे व्याधिविपरीत औषध समझना चाहिये ॥ ८०—८७ ॥

बृहत् क्षयकेसरी—

मृतमभ्रं मृतं सूतं मृतं लौहं तथा[1] रविः ।
मृतं नागश्च कांस्यश्च मण्डूरं विमलं शिला[2] ॥ ८८ ॥
वङ्गं खर्परकं तालं शङ्खटङ्कणमाक्षिकम् ।
वैक्रान्तं कान्तलौहश्च स्वर्णं विद्रुममौक्तिकम् ॥ ८९ ॥

१ 'च ताम्रकम्' पा० । २ 'तथा' भै. र. पाठः । 'मृतम्' पा० ।

वराटं मणिरागश्च राजपट्टश्च गन्धकः ।
सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य खल्लमध्ये विनिक्षिपेत् ॥ ६० ॥
मर्दयेत् त्वग्निभानुभ्यां प्रपुटेत् त्रिदिनं लघु ।
भावयेत् पुटयेदेभिर्वारांस्त्रींश्च पृथक् पृथक् ॥ ६१ ॥
मातुलुङ्गवरावह्नि-स्वम्लवेतसमार्कव-
हयमारार्द्रकरसैः पाचितो लघुवह्निना ॥ ६२ ॥
वातपित्तकफोत्क्लेशान् ज्वरान् संमर्दितानपि ।
सन्निपातं निहन्त्याशु सर्वाङ्गैकाङ्गमारुतान् ॥ ६३ ॥
सेवितश्च सितायुक्तो मागधीरजसायुतः ।
मधुकार्द्रकसंयुक्तस्तद्व्याधिहरणौषधैः ॥ ६४ ॥
रोगिणां सेवितो हन्ति व्याधिवारणकेशरी ।
क्षयमेकादशविधं शोषं पाण्डुं क्रिमिं जयेत् ॥ ६५ ॥
कासं पञ्चविधं श्वासं मेहमेदोमहोदरम् ।
अश्मरीं शर्करां शूलं प्लीहगुल्मं हलीमकम् ।
सर्वव्याधिहरो बल्यो वृष्यो मेध्यो रसायनः ॥ ६६ ॥

अभ्रकभस्म, रससिन्दूर, लौहभस्म, ताम्रभस्म, सीसकभस्म, कांस्यभस्म, मण्डूरभस्म, रौप्यमाक्षिकभस्म, शुद्ध मनसिल, वंगभस्म, खपरियाभस्म, शुद्ध हड़ताल, शंखभस्म, शुद्ध सुहागा, स्वर्णमाक्षिकभस्म, वैक्रान्तभस्म, कान्तलौहभस्म, स्वर्णभस्म, मूंगाभस्म, मोतीभस्म, कौड़ीभस्म, शुद्ध हिंगुल, कान्तपाषाणभस्म अर्थात् चुम्बकपत्थर की भस्म, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। सबको इकट्ठा कर खरल में चूर्ण करे और चीते के क्वाथ की भावना देकर लघुपुट देवे इस प्रकार तीन वार करे। इसीप्रकार आक की भावना देकर तीन पुट दे। फिर मातुलुङ्ग (बिजौरा), त्रिफला, चित्रक, अम्लवेत, भांगरा, कनेर, अदरक; इनके रसों से पृथक् पृथक् तीन तीन भावना दे। प्रत्येक

भावना के बाद लघुपुट दे। स्वांगशीतल होने पर पीसकर रखें। इसके खाने से वात पित्त कफ के रोग तथा बढ़े हुए ज्वर भी दूर हो जाते हैं। सन्निपात-ज्वर, सर्वाङ्गवात, एकाङ्गवात; इन सबको शीघ्र दूर करता हैं। इसे मिश्री और पिप्पली के चूर्ण के साथ खावें या शहद और अदरक के रस से चाटें। भिन्न२ रोगों की नाशक औषधों के साथ रोगियों के उन२ रोगों को दूर करता है। यह रोग रूपी हाथी के लिये सिंह के समान हैं। ग्यारह लक्षण युक्त क्षय, शोष, पाण्डु, क्रिमि, पांचों प्रकार की खांसी, श्वास, प्रमेह, मेदोरोग, महोदर, अश्मरी, शर्करा, शूल, प्लीहा, गुल्म, हलीमक आदि रोगों का नाश करता है, बल बढ़ाता है, वृष्य है, मेधावर्द्धक तथा रसायन है।

विशेषवचन—मात्रा—½ रत्ती से १ रत्ती तक।

यह यक्ष्मारोग की उत्कृष्ट औषध है। आंत्रशोष आदि में भी यह लाभकर है।

तन्त्रान्तरों में 'शिला' का पाठ नहीं है। कई शिला से यहां शिलाजीत लेते हैं। परन्तु पीछे से पुटपाक करना है अतः शिलाजीत लेना कोई उत्तम नहीं। मनःशिला ही ठीक है। भावनाद्रव्यों में 'वह्नि' से कई नीबू लेते हैं, क्योंकि चित्रक पूर्व कहा गया है। अथवा भल्लातक भी लिया जा सकता है।

बहुधा उक्तविधि से भिन्न प्रकार से भी इसे वैद्य बनाते हैं, वह विधि भैषज्यरत्नावली की टीका में दी गई है। अभ्रकभस्म आदि द्रव्यों को एकत्र मिला चित्रक क्काथ और आक के रस से क्रमशः मर्दन करके तीन दिन मन्द आंच से लघुपुट पाक करते हैं। इसप्रकार दोनों रसों से मर्दन और लघुपुट पाक तीन वार किया जाता है। पश्चात् औषध को पीस कर लोहे की कड़ाही में डाल मातुलुङ्ग का रस देकर मन्द आंच से पकाते हैं। जब वह सूख जाता है तब दूसरा रस डाल दिया जाता है। इसप्रकार उक्त सब रस सुखा लेते हैं और पीसकर प्रयोग कराते हैं॥ ८८—९६॥

क्षयारिः—

भस्मत्वं समुपागतं विकृतकं हेम्ना मृतेनान्वितं

पादांशेन कणाऽऽज्ययेवल्लसहितं गुञ्जोन्मितं सेवितम् ।
यक्ष्माणं ज्वर[1]रोगपाण्डुगुदजान् श्वासञ्च कासामयं ।
दुष्टाञ्च ग्रहणीं क्षत[2]क्षयमुखान् रोगान् जयेद् देहभृत्[3] ॥ ६७॥

वैक्रान्तभस्म चार तोले, स्वर्णभस्म एक तोला, दोनों को पीसकर रखे। इस क्षयारि रस की एक रत्ति की मात्रा को पिप्पलीचूर्ण (दो रत्ति) और घी मिलाकर या मरिचचूर्ण से खावें तो यक्ष्मा, ज्वर, पाण्डु, बवासीर, श्वास, कास, दुष्ट ग्रहणी तथा क्षतक्षय प्रधान रोग (छाती के रोग) दूर होते हैं।

विशेषवचन—आधुनिक मात्र–$\frac{1}{24}$ से $\frac{1}{12}$ रत्ती तक।

यह रसरत्नसमुच्चय तथा रसेन्द्रचूडामणि में वैक्रान्तरसायन नाम से है। उसे ही देखकर प्रचलित पाठ को शोधा है। 'भस्मत्वं समुपागतं विधिकृतं हेमामृतेनान्वितम्' यह इस ग्रन्थ में प्रचलित पाठ है। इसके अनुसार स्वर्णभस्म १ भाग और शुद्ध विष $\frac{1}{4}$ भाग मिलाने का अभिप्राय होता है॥ ६७॥

क्षयसंहारः—

लीढो व्योषवराऽन्वितो विमलको युक्तो घृतैः सेवितो
हन्यात् हृद्गदं[4]दुर्जयं श्वयथुकं पाण्डुप्रमेहारुचिम् ।
शूलार्त्तिं[5] ग्रहणीञ्च गुल्ममतुलं यक्ष्मामयं कामलाम् ।
सर्वान् पित्तमरुद्गदान् किमपरैर्योगैरशेषामयान् ॥ ६८॥

रौप्यमाक्षिक की भस्म लेकर उसे सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला; इन सब का चूर्ण तथा घी मिलाकर चाटें तो भयंकर हृदयरोग, सूजन, पाण्डु, प्रमेह अरुचि, शूल, ग्रहणी, गुल्म, यक्ष्मा, कामला; सब प्रकार के पित्त और वायु के रोग शान्त होते हैं। अन्य औषधों से क्या जब कि यही सब रोगों को नाश करता है।

विशेषवचन—रौप्यमाक्षिकभस्म की आधुनिक मात्रा—$\frac{1}{2}$ रत्ती से २ रत्ती तक है।

---

१ 'क्षरणं च' 'जरणं च' पा०। २ 'उरःक्षतमुखान्' पा०। ३ 'देहकृत्' पा०।
४ 'दुर्भगकृज्ज्वरान्' र. र. स. पाठः। ५ 'मूलार्त्तिं ग्रहणीं च शूलमतुलं' पा०।

यह श्लोक रसेन्द्रचूड़ामणि में योग का अनुपान और गुण बताने के लिये कहा है। योग यह है—

' तत्सत्त्वं सूतसंयुक्तं पिष्टीकृत्वा सुमर्दितम्।
विलीने गन्धके क्षिप्त्वा जारयेत् त्रिगुणालकम्॥
शिलां पञ्चगुणां चापि नलिकायन्त्रके खलु।
तारभस्म दशांशेन तावद्वैक्रान्तकं मृतम्॥
सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य पटेन परिगाल्य च।
निक्षिप्य कूपिकामध्ये परिपूर्य प्रयत्नतः॥'

इसके बाद प्रकृत ग्रन्थ का उक्त श्लोक है। यह वहां विमलरसायन नाम से है। रसरत्नसमुच्चय में भी यही विमलरसायन कुछ पाठभेद से मिलता है। वह पाठभेद प्रमाद पूर्ण ही है।

अर्थात् विमल के सत्त्व और शुद्ध पारद एक-एक भाग को एकत्र मर्दन करके पिष्टी बना लें। एक लोहपात्र में गन्धक को पिघलावें और उसमें उक्त पिष्टी डालकर अच्छीप्रकार घोट कर नीचे उतार लें। कज्जली हो जायगी। यह कज्जली, शुद्ध हड़ताल ३ भाग, शुद्ध मनःशिला ५ भाग एकत्र मिला नलिकायन्त्र में डाल पाक करें। पश्चात् जो औषध प्राप्त हो उससे दसवां भाग रजतभस्म और रजतभस्म के समान ही वैक्रान्तभस्म मिलाकर अच्छी प्रकार घोटें और कपड़े से छान कर शीशी में भर लें। इस विमलरसायन को त्रिकटु चूर्ण त्रिफला चूर्ण (अथवा उत्तम त्रिकटुचूर्ण यह भी अभिप्राय हो सकता है) तथा घी के साथ मिलाकर चटाया जाता है। मात्रा—आधी रत्ती।

यहां यतः विमल का सत्त्व कहा है अतः उसके सत्वपात की विधि का बताना भी आवश्यक है—

' सटङ्कलकुचद्रावैर्मेषशृङ्गस्य भस्मना।
पिष्टो मूषोदरे लिप्तः संशोष्य च निरुद्ध्य च॥
षट्सप्तकोकिलैर्ध्मातो विमलः शशिसन्निभम्।
सत्वं मुञ्चति तद्युक्तो रसः स्यात्तु रसायनः॥'

अर्थात् रजतमाक्षिक को सुहागा, बड़हर के रस तथा मेषशृङ्ग की भस्म के साथ पीस कर मूषा के अन्दर लीप दे पश्चात् सूखने पर मुख बन्द कर छह सात

कोयलों की आंच में धौंकनी से धौंकें तो उसका सत्त्व निकल आता है।

नलिकायन्त्र का नाम आया है अतः उसका लक्षण जानना भी आवश्यक है—

'लोहनालगतं सूतं भाण्डे लवणपूरिते।
निरुद्धं विपचेत्प्राज्ञो नालिकायन्त्रमीरितम्॥'

अर्थात् लोहे की नाली में पारद वा रसौषध को बन्द करके लवणयन्त्र में यदि पकाया जाय तो उसे नालिकायन्त्र कहते हैं। रसरत्नसमुच्चय में बालुकायन्त्र है। पता नहीं क्यों, शेष पाठ छोड़कर गुण और अनुपान के निर्देश करने वाले श्लोक को ही योगवाचक मानकर क्षयसंहार नाम दे दिया है। केवल रजतमाक्षिकभस्म से ही राजरोग में विशेष लाभ नहीं हो सकता। प्रकृतग्रन्थ में योग का पाठ लेखकप्रमाद से ही छूटा है—ऐसा समझना चाहिये॥ ६८॥

रजतादिलौहम्—

भस्मीभूतं रजतममलं तत्समं व्योमचूर्णं
सर्वैस्तुल्यं त्रिकटु सवरं साय आज्येन युक्तम्।
लीढं प्रातः क्षपयतितरां यक्ष्मपाण्डूदरार्शः।
श्वासं कासं नयनजरुजः पित्तरोगानशेषान्॥ ६९॥

चांदीभस्म एक तोला, अभ्रकभस्म एक तोला, त्रिकुटा अर्थात् सोंठ, मिरच, पिप्पली का चूर्ण मिला हुआ दो तोला, त्रिफला अर्थात् हरड़, बहेड़ा, आंवला का चूर्ण भी मिलाकर दो तोला लें। सब के बराबर लौहभस्म मिलावें। इसकी (एक रत्ति की) मात्रा घी से प्रातःकाल खाने से यक्ष्मा, पाण्डु, उदररोग, बवासीर, श्वास, कास, आंख के रोग तथा पित्त के सब रोग दूर होते हैं।

विशेषवचन—यह भी प्रमादपूर्ण पाठ है। प्रतीत होता है कि ग्रन्थकर्ता को इस योग का ठीक पाठ नहीं मिला। उसने अपनी बुद्धि से ही शोधन करके

---

१ 'त्रिकटुकवरं सर्वमाज्येन युक्तम्' र. रा. सु. पाठः।

रजतादिलौह नाम रख दिया है। वस्तुतः यह रौप्यरसायन नाम से रसरत्नसमुच्चय में है–और उसमें रसेन्द्रचूडामणि से उद्धृत है।

'भस्मीभूतं रजतममलं तत्समौ व्योमभानू।
सर्वैस्तुल्यं त्रिकटुकवरं सारघाज्येन युक्तम्॥'

अगला पाठ प्रकृत ग्रन्थ के मूल पाठ के सदृश ही है।

चांदीभस्म १ भाग, अभ्रकभस्म १ भाग, ताम्रभस्म १ भाग और सारे के समान त्रिकटुचूर्ण मिलाने से रौप्यरसायन तय्यार होता है। इसे मधु और घी के साथ चटाया जाता है। मात्रा–१ रत्ती॥ ९९॥

नित्योदयो रसः–

सुशुद्धं पारदं गन्धः प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम्।
ततः कज्जालिकां कृत्वा मर्दयेच्च पृथक् पृथक्॥ १००॥
बिल्वाग्निमन्थश्योणाकाः काश्मरी पाटला बला।
मुस्तं पुनर्नवा धात्री बृहती वृषपत्रकम्॥ १०१॥
विदारी बहुपुत्री च एषां कर्षं रसैर्भिषक्।
सुवर्णं रजतं ताप्यं प्रत्येकं शाणमानकम्॥ १०२॥
पलमात्रन्तु कृष्णाभ्रं[1] तदर्द्धञ्च शिलाह्वयम्।
जातीकोषफले मांसी तालीशैलालवङ्गकम्॥ १०३॥
प्रत्येकं कोलमानन्तु वासानीरैर्विमर्दयेत्।
शोषयित्वाऽऽतपे पश्चाद्विदारीरसमार्दितम्[2]॥ १०४॥
द्विगुञ्जाभां वटीं खादेत्[3] पिप्पलीमधुसंयुताम्।
नाम्ना नित्योदयश्चायं रसो विष्णुविनिर्मितः॥ १०५॥
पञ्च कासान् निहन्त्याशु चिरकालोद्भवानपि।

१ 'सिताभ्रकम्' पा०। २ 'विदार्याः पेषयेद्रसैः' पा०।
३ 'द्विगुञ्जां वटिकां कृत्वा पिप्पलीमधुना भजेत्' पा०।

राजयक्ष्माणमत्युग्रं जीर्णज्वरमरोचकम् ॥ १०६ ॥
धातुस्थं विषमाख्यञ्च तृतीयकचतुर्थकम् ।
अर्शांसि कामलां पाण्डुमग्निमान्द्यं प्रमेहकम् ।
सेवनादस्य कन्दर्परूपो भवति मानवः ॥ १०७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक दो २ कर्ष लेकर कज्जली करें। फिर बिल की छाल, अग्निमन्थ (अरणी) की छाल, श्योणाक (अरलू) की छाल, गाम्भारी की छाल, पाटला की छाल, बलामूल, नागरमोथा, पुनर्नवा, आंवला, बड़ी कटेरी (भटकटैया), बांसे (अडूसा) के पत्ते, विदारीकन्द, शतावर; इन सबके एक २ कर्ष रसों से पृथक् २ मर्दन करे। फिर स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ शाण, कृष्णाभ्रक की भस्म एक पल, मनसिल शुद्ध आधा पल, जावित्री, जायफल, जटामांसी (बालछड़), तालीशपत्र, छोटी इलायची के बीज तथा लौंग; प्रत्येक का चूर्ण एक २ कोल अर्थात् आधा २ कर्ष लेवे। फिर सबको एकत्र कर बांसे के रस से मर्दन करके धूप में सुखावे। पश्चात् इसे विदारीकन्द के रस से मर्दन करे और दो रत्ति भर की गोली बना ले। इसे पिप्पली के चूर्ण और शहद से खावे। यह नित्योदय रस विष्णु का बनाया हुआ है। इससे पांचों प्रकार की खांसी चाहे वे पुरानी भी हों दूर होती हैं। अति उग्र राजयक्ष्मा, जीर्णज्वर, अरुचि, धातुगत ज्वर, विषमज्वर, तृतीयक, चतुर्थक, बवासीर, कामला, पाण्डुरोग, अग्निमान्द्य तथा प्रमेह; इसके सेवन से दूर होते हैं। इसका सेवन करने वाला कामदेव के समान रूपवान् हो जाता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—आधी रत्ती ॥ १००—१०७ ॥

इति राजयक्ष्मचिकित्सा।

अथ कासचिकित्सा ।

बृहद्रसेन्द्रगुटिका—

कर्षं शुद्धरसेन्द्रस्य गन्धकस्याभ्रकस्य च ।
ताम्रस्य[1] हरितालस्य लौहस्य च विषस्य च ॥ १ ॥
मनःशिलायाः[2] क्षाराणां बीजस्य[3] कनकस्य च ।
मरिचस्य[4] च सर्वेषां समं[5] चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ २ ॥
जयन्ती[6] चित्रकं माणं[7] खण्डकर्णोऽथ मण्डुकी ।
शक्राशनं भृङ्गराजं[8] केशराजं तथाऽऽर्द्रकम् ॥ ३ ॥
निर्गुण्डी[9]स्वरसेनैषां कर्षमात्रेण मर्दयेत् ।
कलाय[10]परिमाणां तु वटिकां कारयेद्भिषक्[11] ।

---

१ 'लौहचूर्णस्य ताम्रस्य तालकस्य विषस्य च' भै. र., र. र. पाठः ।

२ रसेन्द्रचिन्तामणौ तु श्लोकपङ्क्तिरियं नास्ति ।

३ 'बीजं धुस्तूरकस्य च' भै. र., र. र. पाठः ।

४ 'मरिचस्यापि' भै. र., र.र. पाठः ।

५ 'चूर्णं तुल्यं' र. र. पाठः । 'श्लक्ष्णचूर्णं पृथक् पृथक्' र. चि. पाठः ।

६ 'जयन्तीचित्रकौ' र. र. पाठः । 'माणोल्लौ घण्टकर्णश्च निर्गुण्डी काकमाचिका । केशराजभृङ्गराजस्वरसेन सुभाविताम् ॥ कलायपरिमाणां' र. चि. पाठः ।

७ 'मानघण्टाकर्णोल्लमण्डुकी' भै. र. पाठः । ८ 'केशराजं भृङ्गापामार्गकस्य च' र. र. पाठः ।

९ 'निर्गुण्डीस्वरसेनापि' प्रचलितः पाठः । 'सिन्धुवारस्य च रसैः कर्षमात्रैश्च मर्दयेत्' र. र. पाठः । अयमेव कर्षमात्रैर्विभावयेदिति पाठान्तरेण भैषज्यरत्नावल्याम् ।

१० 'श्लोकपङ्क्तिरियं रसरत्नाकरे नास्ति ।

११ अस्यानन्तरं रसचिन्तामणौ–'कृत्वादौ शिवमभ्यर्च्य द्विजातीन् परितोष्य च । जीर्णान्नो भक्षयेत्पश्चात् क्षीरमांसरसाशनः । अपि वैद्यशतैस्त्यक्तमम्लपित्तं नियच्छति । कासं पञ्चविधं हन्ति श्वासं चैव सुदुर्जयम् ॥' अयं पाठोऽस्ति ।

आर्द्रकस्वरसेनैव पञ्चकासं व्यपोहति ॥ ४ ॥
हन्ति कासं तथा श्वासं यक्ष्माणं सभगन्दरम् ।
अग्निमान्द्यारुचिं शोथमुदरं पाण्डुकामलाम् ।
रसायनी च वृष्या च बलवर्णप्रसादनी ॥ ५ ॥
बृंहणं मधुरं स्निग्धं मत्स्यं मांसञ्च जाङ्गलम् ।
घृतपक्कं सदा भक्ष्यं रूक्षं तीक्ष्णं विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध हड़ताल, लौह-भस्म, शुद्ध विष, शुद्ध मनसिल, यवक्षार, सर्जिक्षार, सुहागा, शुद्ध धतूरे के बीज, कालीमिरच ; प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलावे और जयन्ती, चीता, माणकन्द, खण्डकर्ण, मण्डूकपर्णी, भांग, भांगरा, केशराज, अदरक तथा संभालू ; इन सब के एक २ कर्ष रस से पृथक् घोटकर मटर के समान गोली बना लें। इस गोली को अदरक के रस से खावें तो पांचों प्रकार की खांसी दूर होती है। यह गुटिका खांसी, श्वास, राजयक्ष्मा, भगन्दर, अग्निमान्द्य, अरुचि, शोथ, उदररोग, पाण्डु, कामला को दूर करती है। रसायन और वृष्य है, बल और वर्ण को बढ़ाती है। इस रस के सेवन काल में बृंहण, मधुर, स्निग्ध द्रव्य तथा मछली, जांगल मांस और घी से पके हुए पदार्थ सदा खाने चाहियें। रूखा और तीक्ष्ण आहार वर्जित है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—½ रत्ती से १ रत्ती तक।

भैषज्यरत्नावली के पाठ के अनुसार भावना द्रव्यों में ज़मींकन्द का रस अधिक होना चाहिये। रसेन्द्रचिन्तामणि के उपलब्ध पाठ में मनःशिला तीनों क्षार और धतूरे के बीज नहीं है। भावनाद्रव्यों में जयन्ती चित्रक

---

१ तन्त्रान्तरेऽष्वियं श्लोकपङ्क्तिर्नास्ति।

२ 'पञ्चविधं कासं श्वासं चैव सुदारुणम्। कफवातामयं रोग(कफवातामयानुग्रान्–' भै. र. पाठः)मानाहं विड्विबन्धताम्। अग्निमान्द्यारुचिश्चैव' र. र. पाठः।

३ 'बलवर्णप्रदायिनी' पा०। ४ 'वृष्यं' भै. र. पाठः।

मण्डूकपर्णी भांग अदरक नहीं और ज़मीकन्द और मकोय के रस विशेष हैं। उसे पृथक् योग माना जा सकता है ॥ १—६ ॥

अमृतार्णवो रसः—

पारदं गन्धकं शुद्धं मृतलौहञ्च टङ्कणम् ।
रास्ना विडङ्गं त्रिफला देवदारु च[1] चित्रकम् ॥ ७ ॥
अमृता पद्मकं क्षौद्रं विष[2]ञ्चैव विमर्दयेत् ।
द्वि[3]गुञ्जं वातकासार्त्तः सेवये[4]दमृतार्णवम् ॥ ८ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, शुद्ध सुहागा, रास्ना, वायविडंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, देवदारु, चीता, गिलोय, पद्माख, शुद्ध विष; सब समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर खरल करें। और पीसकर दो रत्ति भर की मात्रा मधु के साथ वातकास के नाश के लिये सेवन करावें। इसका नाम अमृतार्णव रस है।

विशेषवचन—'चित्रकं' के स्थान पर भैषज्यरत्नावली, रसरत्नाकर, शाङ्गधर प्रभृति में त्रिकटु ही मिलता है। अतः 'च चित्रकम्' के स्थान पर 'कटुत्रिकम्' पाठ कर लेना चाहिये। तब त्रिकटु का प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग लिया जायगा मुद्रित रसरत्नाकर में इस योग का निम्न पाठ है—

'रास्नाविडङ्गत्रिफलारसगन्धं कटुत्रयम् ।
अमृता पद्मकं क्षौद्रं विषतुल्यं सुचूर्णितम् ॥'

परन्तु यह प्रमादपूर्ण ही प्रतीत होता है। शाङ्गधर में 'विष' के स्थान पर 'विश्व' है। 'विश्व' से सोंठ ली जाती है परन्तु यह भी हृदयग्राही नहीं। क्योंकि त्रिकटु पूर्व कहा जा चुका है और सर्वत्र तन्त्रान्तरों 'विष' ही पढ़ा है नाम भी अमृतार्णव है, जिससे 'विश्व' लेखक के प्रमाद से ही होगया प्रतीत है। योगरत्नाकर में पारदादि रस नाम से योगरत्नावली से उद्धृत यही रस है। परन्तु वहां विषञ्चापि

१ 'कटुत्रिकम्' पा० । २ 'विश्वं तुल्यांशचूर्णितम्' शाङ्गधरपाठः ।
३ 'त्रिगुञ्जं सर्वकासार्त्तः' शाङ्गधरपाठः ।
४ 'संसेवेदमृतार्णवम्' र. रा. सु. पाठः ।

विचूर्णयेत्' के स्थान पर 'पिचुतुल्यानि चूर्णत्' यह पाठ हो गया है । चौथी श्लोक की पंक्ति वहां इसप्रकार है—

' त्रिगुञ्जः सर्वकासघ्नो ज्वरारोचकमेहनुत् ' ॥ ७—८ ॥

पित्तकासान्तको रसः

भस्म ताम्राभ्रकान्तानां कासमर्दत्वचो रसैः ।
मुनिजैर्[1]वेतसाम्लैश्च दिनं मर्द्यं सुपिण्डितम् ॥ ९ ॥
निष्कार्द्धं[2] पित्तकासार्त्तो[3] भक्षयेच्च दिनत्रयम्[4] ।
[5]कासश्वासाग्निमान्द्यश्च क्षयश्चापि निहन्त्यलम् ॥ १० ॥

ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, कान्तलौहभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर कसौंदी की छाल के रस से अगस्त के फूलों के रस से तथा अम्लबेत के रस से एक २ दिन मर्दन करे फिर अच्छीप्रकार गोली बांध रखे । इसकी आधे निष्क (२माषक=१२ रत्ती) की मात्रा खाने से पित्त कास तीन दिन में अच्छा होता है । कास, श्वास, अग्निमान्द्य तथा क्षयरोग को भी यह रस दूर करता है ।

विशेषवचन—यह रसरत्नाकर में 'त्रिनेत्र रस' नाम से है । वहां अगस्त्य के स्थान पर शाल पढ़ा है ।

' भस्मताम्राभ्रतीक्ष्णानां कासमर्दत्वचो रसैः ।
शालजैर्वेतसाम्लेन दिनं मर्द्यं सुपिण्डितम् ॥
द्विगुञ्जं पित्तकासार्त्तो भक्षयेच्च त्रिनेत्रकम् ॥'

रसरत्नसमुच्चय में ' कासनाशन रस ' नाम से यह योग है । उससे यह भी ज्ञात होता है कि ' कासमदर्त्वचो रसैः ' के स्थान पर 'कासमर्दवरारसैः' होना चाहिये ।

' सार्कतीक्ष्णाभ्रकोऽगस्त्यकासमर्दवरारसैः ।
मर्दितो वेतसाम्लेन पिण्डितः कासनाशनः ॥'

' वरा ' से 'त्रिफला' ली जाती है ।

---

१ 'शालजैः' र. र. पाठः । २ 'द्विगुञ्जं' र. र. पाठः । ३ 'पाण्डुकासार्त्तः' र.रा.सु. पाठः । ४ 'त्रिनेत्रकम्' र. र. पाठः । ५ 'रसरत्नाकरे श्लोकपङ्क्तिरियं नास्ति ।

इस रस की आधुनिक मात्रा—आधी रत्ती से एक रत्ती तक जानें ॥ ९-१० ॥

कासंसंहारभैरवो रसः—

रसगन्धकताम्राभ्र–शङ्खटङ्कणलौहकम्[1] ।
मरिचं कुष्ठतालीशं जातीफललवङ्गकम् ॥ ११ ॥
कार्षिकं चूर्णमादाय दण्डेनामर्द्य[2] भावयेत् ।
भेकपर्णी केशराज–निर्गुण्डी–काकमाचिकाः ॥ १२ ॥
द्रोणपुष्पी शालपर्णी[3] ग्रीष्मसुन्दरकस्तथा ।
भार्गी हरीतकी वासा कार्षिकैः पत्रजै रसैः ॥ १३ ॥
वटिकां कारयेद्वैद्यः पञ्चगुञ्जाप्रमाणतः ।
श्रीमद्गहननाथेन काससंहारभैरवः ।
रसोऽयं निर्मितो यत्नात् लोकरक्षणहेतवे ॥ १४ ॥
वासाशुण्ठीकण्टकारी–क्काथेन पाययेद् बुधः ।
वातजं पैत्तिकं कासं श्लैष्मिकं[4] चिरजं तथा ॥ १५ ॥
[5]कासं नानाविधं हन्ति श्वासमुग्रमरोचकम्[6] ।
बलवर्णकरः श्रीदः पुष्टिदः कान्तिवर्द्धनः[7] ॥ १६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, शंखभस्म, शुद्ध सुहागा, लौहभस्म, मिरच, कूठ, तालीशपत्र, जायफल, लौंग; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ कर्ष ले। पारा गन्धक की कज्जली करे। इसमें अन्य द्रव्य मिला भण्डूकपर्णी, केशराज, संभालू, मकोय, गूमा, शालपर्णी, ग्रीष्म-

---

१ 'ताम्रं च' भै. र. पाठः। 'ताम्राणां' र. र. पाठः।
२ 'द्रवैरेषां च मर्दयेत्' र. र. पाठः। ३ 'शालिञ्ची' र. र. पाठः।
४ 'द्वन्द्वजं चिरकालजम्। निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा' भै. र. पाठः। ५ 'कासनाशनवज्रोऽयं रसः सश्वासपाण्डुजित्' र. र. पाठः।
६ 'श्वासमुग्रं गरापहम्' भै. र. पाठः। ७ 'वह्निदीपनः भै. र. पाठः।

सुन्दरक, भार्गी, हरड़, बांसा (अड़ूसा); इनके पत्तों के एक २ कर्ष रससे भावना दें (घोटें)। पांच रत्ति प्रमाण की गोली बनावें। यह रस बड़े यत्न से लोकरक्षा के निमित्त श्रीमान् गहननाथ ने बनाया था। इसका नाम काससंहारभैरव है। इस रस को बांसा, सोंठ, छोटी कटेली; इन के एकत्र क्वाथ से पिलावें। यह वातज, पित्तज श्लेष्मज वा पुरानी खांसी तथा अन्य किसी भी प्रकार की खांसी को भी दूर करता है। उग्र श्वास तथा अरुचि को हटाता है। बल वर्ण को बढ़ाता है। श्रीदायक पुष्टिदायक है, कान्ति को बढ़ाने वाला है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—२ रत्ती।

रसरत्नाकर में शालपर्णी के स्थान पर 'शालिञ्च' कहा है। भैषज्यरत्नावली और रसरत्नाकर के पाठ में अभ्रकभस्म नहीं है ॥ ११—१६ ॥

लक्ष्मीविलासो रसः—

शुद्धसूतं सतालञ्च तालार्द्धं रसखर्परम्[1]।
वङ्गं ताम्रं घनं कान्तं कांस्यं गन्धं पलं पलम्[2] ॥ १७ ॥
केशराजरसेनैव भावयेद्दिवसत्रयम्।
कुलत्थस्य रसेनैव भावयेच्च पुनः पुनः ॥ १८ ॥
एलाजातीफलाख्यश्च तेजपत्रं लवङ्गकम्।
यमानी जीरकश्चैव त्रिकटु त्रिफला समम् ॥ १९ ॥
नतं भृङ्गं वंशगर्भं कर्षमात्रञ्च कारयेत्।
भावयेच्च[3] रसेनैव गोलयेत् सर्वमौषधम्।
छायाशुष्का वटी कार्य्या चणकप्रमिता शुभा ॥ २० ॥
शीताम्बुना पिबेद्धीमान् सर्वकासनिवृत्तये।
मत्स्यं मांसं तथा क्षीरं पथ्यं स्यात् स्निग्धभोजनम् ॥२१॥

---

१ 'तालाङ्कुरं सखर्परम्' भै. र. पाठः। २ 'पलं वङ्गं पलं कान्तं घनं ताम्रं च कांस्यकम्' भै. र. पाठः। ३ 'द्रावयित्वा' पा०।

क्षयं कासं तथा श्वासं सज्वरं वाऽथ विज्वरम्[1] ।
हलीमकं पाण्डुरोगं शोथं शूलं प्रमेहकम् ॥ २२ ॥
अर्शोनाशं करोत्येव बलवृद्धिश्च[2] कारयेत् ।
वर्जयेच्छाकमम्लश्च[3] भृष्टद्रव्यं हुताशनम्[4] ॥ २३ ॥

शुद्ध पारा एक पल, शुद्ध गन्धक एक पल; दोनों की कज्जली करे। फिर शुद्ध हड़ताल, बंगभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, कान्तलौहभस्म, कांस्यभस्म; प्रत्येक एक २ पल और खपरियाभस्म आधा पल ले। सबको मिलाकर पीसे और केशराज के रस से तीन दिन भावना देवे। फिर कुलथी के रस से बार बार (कम से कम तीन दिन) भावना देवे। सूख जाने पर इसमें छोटी इलायची, जायफल, तेजपात, लौंग, अजवायन, श्वेतजीरा, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, तगर, दारचीनी, वंशलोचन; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ कर्ष लेकर मिला दे। सबको पीसकर भांगरे और कुलथी की भावना देकर छाया में सुखाकर चने के समान गोली बनाकर शीतल जल से दे। सब प्रकार की खांसी निवृत्त होती है। मछली, मांस, दूध, तथा स्निग्ध भोजन इसमें पथ्य हैं। यह क्षय, खांसी, ज्वरसहित वा ज्वररहित श्वासरोग, हलीमक, पाण्डुरोग, शोथ, शूल, प्रमेह, तथा बवासीर का नाश करता है। बल बढ़ाता है। इसमें शाक, खटाई, भुने हुए चने आदि द्रव्य तथा आग सेकना वर्जित है।

विशेषवचन—भैषज्यरत्नावली में 'तालार्द्धं रसखर्परम्' के स्थान पर 'तालाङ्करं सखर्परम्' पाठ है। जिसके अनुसार शुद्ध मनसिल १ पल डाली जाती है और खपरियाभस्म भी एक पल ही ली जाती है। वहां गन्धक नहीं पड़ी। पारद होने से गन्धक तो डालनी ही चाहिये या वहां रससिन्दूर लिया

१ 'ज्वरं हन्ति न संशयः' भै. र. पाठः। २ 'बलपुष्टिश्च' पा०

३ 'वर्ज्यं शाकाम्लमादौ च' भै. र. पाठः।

४ 'अस्यानन्तरं 'रसो लक्ष्मीविलासोऽयं महादेवेन भाषितः' इति अन्यत्राधिकः पाठः।

जाता है। मनःशिलायुक्त योग की मात्रा-½ रत्ती से १ रत्ती तक जाननी चाहिये ॥ १७—२३ ॥

सर्वेश्वरो रसः—

रसगन्धकयोश्चूर्णमेकीकृत्याभ्रकं तथा।
हेमभिश्च समं कृत्वा मर्दयेद् यामकद्वयम् ॥ २४ ॥
त्र्यूषणानि लवङ्गैलाटङ्कणं हेमतुल्यकम्।
कण्टकार्य्या रसैर्भाव्यमेकविंशतिवारकम् ॥ २५ ॥
शिग्रुबीजार्द्रकरसैः सप्तधा भावयेत् पृथक्।
रसः सर्वेश्वरो नाम कासश्वासक्षयापहः।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं विभीतकफलत्वचः ॥ २६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक एक २ तोला लेकर दोनों की कज्जली करें। फिर अभ्रकभस्म, स्वर्णभस्म; प्रत्येक एक २ तोला डालकर इसे दो पहर मर्दन करें। फिर सोंठ, मिरच, पिप्पली, लौंग, छोटी इलायची, शुद्ध सुहागा; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला लेकर पूर्वोक्त द्रव्य में मिला खरल करें। और छोटी कटेरी के रस से इक्कीसवार भावना देवें। फिर सुहांजने के बीजों के रस से और अदरक के रस से पृथक् सात सात बार भावना दें। पश्चात् इसकी गोली (एक वा दो रत्ति भर की) बना लें। यह सर्वेश्वर रस खांसी, दमा तथा क्षयरोग का नाश करने वाला है। इसके साथ अनुपान में बहेड़े के फल के छिलके का चूर्ण देना चाहिये ॥ २४—२६ ॥

शृङ्गाराभ्रम्—

शुद्धं कृष्णाभ्रचूर्णं द्विपलपरिमितं शाणमानं यदन्यत्
कर्पूरं जातिकोषं सजलमिभकणा तेजपत्रं लवङ्गम्।
मांसी तालीशचोचे गजकुसुमगदं धातकी चेति तुल्यं
पथ्या धात्री बिभीतं त्रिकटुरथ पृथक् त्वर्द्धशाणं द्विशाणम् ॥२७॥
एलाजातीफलाख्यं क्षितितलविधिना शुद्धगन्धाश्मकोलं

कोलार्द्धं पारदस्य प्रतिपदविहितं पिष्टमेकत्र मिश्रम् ।
पानीयेनैव कार्य्याः परिणतचणकस्विन्नतुल्याश्च वट्यः
प्रातः खाद्याश्चतस्रस्तदनु च हि कियत् शृङ्गवेरं सपर्णम् ॥ २८ ॥
पानीयं पीतमन्ते ध्रुवमपहरति क्षिप्रमेतान् विकारान्
कोष्ठे दुष्टाग्निजातान् ज्वरमुदररुजो राजयक्ष्मक्षयश्च ।
कासं श्वासं सशोथं नयनपरिभवं मेहमेदोविकारान्
छर्दिं शूलाम्लपित्तं तृषमपि महतीं गुल्मजालं विशालम् ॥ २९ ॥
पाण्डुत्वं रक्तपित्तं गरलभवगदान् पीनसं प्लीहरोगं
हन्यादामानिलोत्थान् कफपवनकृतान् पित्तरोगानशेषान् ।
बल्यो वृष्यश्च योगस्तरुणतरकरः सर्वरोगे प्रशस्तः
पथ्यं मांसैश्च यूषैः घृतपरिलुलितैः गव्यदुग्धैश्च भूयः ॥ ३० ॥
भोज्यं योज्यं यथेष्टं ललितललनया दीयमानं मुदा यत्
शृङ्गाराभ्रेण कामी युवतिजनशताभोगयोगादतुष्टः ।
वर्ज्यं शाकाम्लमादौ दिनकतिपयाचित् स्वेच्छया भोज्यमन्यत्
दीर्घायुः काममूर्त्तिर्गतवलिपलितो मानवोऽस्य प्रसादात् ॥ ३१ ॥

काले अभ्रक की भस्म दो पल, कपूर, जावित्री, सुगन्धबाला, गजपीपल, तेजपात, लौंग, जटामांसी, तालीशपत्र, दारचीनी, नागकेशर, कूठ, धाय के फूल; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ शाण, हरड़, आंवला, बहेड़ा, सोंठ, मिरच, पिप्पली; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण आधा २ शाण, छोटी इलायची, जायफल चूर्ण दो २ शाण (कोल), भूधर यन्त्र से शुद्ध की गई गन्धक एक कोल, शुद्ध पारा आधा कोल लें । पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर जल से घोट कर ही भीगे चने के समान गोली बना लें । इसकी चार गोलियां प्रातः

---

१ 'भजतु वै शृङ्गवेरं' पा० । २ 'गरगरलगदान्' पा० ।
३ 'हन्यादामाशयोत्थान्' भै. र. पाठः । ४ 'भोग्यः' पा ० ।

काल खाकर ऊपर से अदरक और पान को चबावें। अन्त में जल पीवें। अग्नि के दूषित होने से कोष्ठ में जो विकार उत्पन्न हुए हों उन्हें, तथा ज्वर, उदररोग, राजयक्ष्मा, क्षय, कास, श्वास, सूजन, आंखों का लाल होना, प्रमेह, मेदरोग, वमन, शूल, अम्लपित्त, अत्यन्त प्यास, गुल्मरोग, पाण्डु, रक्तपित्त, विष से होने वाले रोग, पीनस, प्लीहा, आमवात से होने वाले रोग, कफ और वात से होने वाले रोग तथा सब प्रकार के पित्तरोग, इन्हें निश्चय से शीघ्र ही दूर करता है। यह रस बलदायक है, वृष्य है। इसके सेवन से मनुष्य तरुण हो जाता है। सभी रोगों में इसे प्रशस्त माना है। पथ्य में रोगी घी से मिला मांस का रस, मूंग आदि के यूष, गौ का दूध, तथा सुन्दर स्त्रियों से प्रसन्नता से दिये हुए यथेष्ट भोजन खावे। इसके सेवन से मनुष्य कामी होकर सौ स्त्री भोगने से भी सन्तुष्ट नहीं होता। इसके सेवन के समय प्रारम्भ में शाक, खटाई कुछ दिन के लिये छोड़ देनी चाहिये, फिर यथेष्ट भोजन कर सकते हैं। इससे मनुष्य दीर्घ आयु वाला, कामदेव के समान रूपवान और बलीपलित से रहित हो जाता है।

विशेषवचन—इसकी आधुनिक मात्रा एक से दो रत्ती पर्यन्त है। यह कफ की शोषक प्रसिद्ध औषध है। यदि कफ का निकालना अभीष्ट न हो और छाती में वेदना न हो तो दे सकते हैं। धातुक्षयजन्य कास में भी अतीव हितकर है ॥ २७—३१ ॥

सार्वभौमरसः—

जीर्णं सुवर्णं लौहं वा यद्यत्रैव प्रदीयते।
तदाऽयं सर्वरोगाणां सार्वभौमो न संशयः ॥ ३२ ॥

इसी शृङ्गाराभ्ररस में यदि स्वर्णभस्म वा लौहभस्म भी डाल दें तो यह सार्वभौम रस कहाता है, यह उपरोक्त तथा अन्य सब रोगों को नष्ट करता है।

विशेषवचन—स्वर्णभस्म वा लौहभस्म आधा कोल डाला जाता है। कई आधा शाण लेते हैं। मात्रा—१ रत्ती। यह रस राजयक्ष्मा में विशेष हितकर है ॥ ३२ ॥

तरुणानन्दरसः—

कपर्द्दयं रसेन्द्रस्य शुद्धस्य गन्धकस्य च।

कज्जलीकृत्य यत्नेन शुभे दृढशिलातले ॥ ३३ ॥
बिल्वाग्निमन्थः श्योणाकः काश्मरी पाटला बला ।
मुस्तं पुनर्नवा धात्री बृहती वृषपत्रकम् ॥ ३४ ॥
विदारी शतमूली च कैषरेषां पृथग् रसैः ।
मर्दयित्वा पुनर्वासा–स्वरसैर्दशतोलकैः ॥ ३५ ॥
मर्दयेत्तत्र शुद्धाभ्रं रसस्य द्विगुणं क्षिपेत् ।
रसस्यार्द्धञ्च कर्पूरं तत्रैव दापयेद्भिषक् ॥ ३६ ॥
जातीकोषफले मांसी तालीशैलालवङ्गकम् ।
चूर्णं कृत्वा प्रयत्नेन माषमात्रं क्षिपेत् पृथक् ॥ ३७ ॥
विदारीस्वरसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक् ।
राजयक्ष्माणमत्युग्रं क्षयञ्चोग्रमुरःक्षतम् ॥३८॥
कासं पञ्चविधं श्वासं स्वराघातमरोचकम् ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च प्लीहानं सहलीमकम् ॥ ३९ ॥
जीर्णज्वरं तृषां गुल्मं ग्रहणीमामसम्भवाम् ।
अतीसारञ्च शोथञ्च कुष्ठानि च भगन्दरम् ॥ ४० ॥
नाशयेदेष विख्यातस्तरुणानन्दसंज्ञितः ।
रसायनवरो वृष्यश्चक्षुष्यः पुष्टिवर्द्धनः ॥ ४१ ॥
सहस्रं याति नारीणां भक्षणादस्य मानवः ।
क्षीणता न च शुक्रस्य न च बुद्धिबलक्षयः ॥ ४२ ॥
द्विमासमुपयोगेन निहन्ति सकलान् गदान् ।
शुक्रसन्दीपनं कृत्वा ज्वरं हन्ति न संशयः ॥ ४३ ॥

---

१ 'कामलान्' प्रचलितः पाठः ।

नारिकेलजलेनैव भक्ष्योऽयञ्च रसायनः।
क्षीरानुपानाद्[1] वृष्योऽयं न क्वचित् प्रतिहन्यते ॥ ४४ ॥

स्वच्छ एवं दृढ़ पत्थर के खरल में शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक को दो २ कर्ष डालकर कज्जली करे। फिर इसे बिल, अरणी, श्योणाक, गम्भारी, पाटला (पाढ़ल), बला (खरैंटी), मोथा, पुनर्नवा आंवला, बड़ी कटेली (भटकटैया), बांसा के पत्ते, विदारीकन्द, शतावर; प्रत्येक के स्वरस वा क्वाथ को एक २ कर्ष लेकर पृथक् २ मर्दन करे। बांसा के दस तोला स्वरस से शुद्ध अभ्रकभस्म चार कर्ष को घोटे और सूखने पर कज्जली में मिलाकर घोट डाले। कर्पूर भी एक कर्ष डाले। जावित्री, जायफल, जटामांसी, तालीशपत्र, छोटी इलायची, लौंग; इन सब द्रव्यों का चूर्ण पृथक् २ एक २ माषा भर डाले और विदारीकन्द के रस से घोटकर (एक २ रत्ति भर की) गोली बना ले। इसके सेवन से अत्युग्र राजयक्ष्मा, क्षय भयंकर उरःक्षत, पांचों प्रकार की खांसी, श्वास, स्वरभंग, अरुचि, कामला, पाण्डुरोग, तिल्ली, हलीमक, जीर्णज्वर, प्यास, गुल्म, आम से उत्पन्न हुई ग्रहणी, अतीसार, शोथ, कुष्ठ, भगन्दर; ये सब नष्ट होते हैं। इसका नाम तरुणानन्द रस है। यह उत्तम रसायन है, वृष्य है, आंखों के लिये हितकारी है, पुष्टिवर्धक है। इसके सेवन से पुरुष एक हज़ार स्त्री तक भोग सकता है, वीर्य भी क्षीण नहीं होता, नांही बुद्धि और बल में कमी होती है। इस रस को दो मास तक उपयोग करने से सब रोग नष्ट होते हैं। यह अग्नि का दीपन कर ज्वर को निस्सन्देह नाश करता है। इस रसायन को नारियल के जल के साथ सेवन करना चाहिये। दूध के अनुपान से यह वृष्य है। यह कहीं पर व्यर्थ नहीं जाता।

विशेषवचन—रसरत्नसमुच्चय में कही मानपरिभाषा के अनुसार कर्ष से तोला (९६ रत्ती) और माष से ६ रत्ती लिया जाता है। अन्य कर्ष से २ तोला और माष से १२ रत्ती लेकर इसी योग को बनाते हैं। यह रस वातपैत्तिक कास में अधिक लाभकर है ॥ ३३—४४ ॥

---

१ 'क्षीरानुपानयुक्तोऽयं' पा०।

महोदधि रसः—

सूतकं गन्धकं लौहं विषञ्चैव वराङ्गकम्[1] ।
ताम्रकं वङ्गभस्मापि व्योमकञ्च समांशकम् ॥ ४५ ॥
त्रिकटु[2] भद्रमुस्तञ्च विडङ्गं नागकेशरम् ।
रेणुकामलकञ्चैव पिप्पलीमूलमेव च ॥ ४६ ॥
एषाञ्च द्विगुणं भागं मर्दयित्वा प्रयत्नतः ।
भावना तत्र दातव्या गजपिप्पलिकाम्बुभिः[3] ॥ ४७ ॥
मात्रा[4] चणकतुल्या तु वटिकेयं प्रकीर्त्तिता ।
कासं हन्ति तथा श्वासमर्शांसि च भगन्दरम् ॥ ४८ ॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कर्णरोगं कपालिकाम् ।
हरेत् संग्रहणीरोगानष्टौ च जाठराणि च ॥
प्रमेहान् विंशतिञ्चैव[5] चतुर्विधमजीर्णकम् ॥ ४९ ॥
न चान्नपाने परिहार्य्यमास्ति न[6] शीतवातातपमैथुनेषु ।
यथेष्टचेष्टाभिरतः प्रयोगे नरो भवेत् काञ्चनराशिगौरः ॥ ५० ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक एक तोला; दोनों की कज्जली करे। फिर लौहभस्म, शुद्ध विष, दारचीनी का चूर्ण, ताम्रभस्म, वंगभस्म, अभ्रकभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, नागरमोथा, विडंग, नागकेसर, रेणुका, आंवला, पिप्पलीमूल; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण दो २ तोला डालें। इन सब को मिलाकर पीसकर गजपिप्पली (अभाव में चव्य) के क्वाथ

---

१ 'वराटकम्' पा०। २ 'पत्रं त्रिकटु मुस्तञ्च' भै. र. पाठः।
३ 'जलपिप्पलिकाम्बुभिः' 'जलपिप्पालिनिम्बुभिः' पा०।
४ 'चणमात्रा वटी कार्या संग्रहग्रहणीं तथा।' पा०।
५ 'विंशतिञ्चैवाप्यश्मरीञ्च चतुर्विधाम्' भै. र. पाठः।
६ 'न चातपे चाध्वनि मैथुने च' भै. र. पाठः।

से भावना देकर चने के समान गोली बनाकर रखें। इसके सेवन से खांसी, दमा, बवासीर, भगन्दर, हृदय का शूल, पसलियों का दर्द, कान की पीड़ा, कपालिका[1], संग्रहणी, आठों उदर रोग, बीसों प्रमेह, चार प्रकार का अजीर्ण नाश होता है। इसके सेवन के समय खाने पीने में तथा सरदी, वायु, धूप एवं मैथुन में परहेज़ नहीं है। अपनी इच्छा के अनुकूल चेष्टाओं में लगा हुआ मनुष्य भी इसके सेवन से स्वर्णराशि के समान लाली लिये गोरा हो जाता है।

विशेषवचन—कहीं दारचीनी के स्थान पर वराटभस्म है। और कहीं त्रिकटु आदि द्रव्यों में तेजपत्र अधिक है। कहीं गजपिप्पली के स्थान पर जलपिप्पली से भावना है। इसका नाम गुणमहोदधि भी है ॥ ४९—५० ॥

जयागुडिका—

सूतकं गन्धको लौहं विषं वत्सकमेव[2] ।
विडङ्गं केसरं मुस्तमेलाग्रन्थिकरेणुकम् ॥ ५१ ॥
त्रिकटु त्रिफला चित्रं शुद्धं[3] जैपालबीजकम् ।
एतानि समभागानि द्विगुणो गुड उच्यते ॥ ५२ ॥
तिन्तिडीबीजमानेन प्रातःकाले च भक्षयेत् ।
कासं श्वासं क्षयं गुल्मं प्रमेहं विषमज्वरम् ॥ ५३ ॥
अजीर्णं ग्रहणीरोगं शूलं पाण्ड्वामयं जयेत् ।
अपाने हृदये शूले वातरोगे गलग्रहे ॥ ५४ ॥
अरुचावतिसारे च सूतिकाऽऽतङ्कपीडिते ।
जयाऽऽख्या निर्मिता ह्येषा भक्षणीया सुरैरपि ॥ ५५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, शुद्ध विष, इन्द्रजौ, विडंग, नागकेशर, मोथा, छोटी इलायची, पिप्पलामूल, रेणुका, सोंठ, मिरच, पिप्पली,

---

१ 'कपालेष्विव दीर्यत्सु दन्तेषु समलेषु च। कपालिकेति विज्ञेया दन्तच्छिद्दन्तशर्करा।' पॉं०। २ 'अभ्रकमेव च' इति पाठः साधीयान्। ३ 'शुल्वं' इति वा स्यात्।

हरड़, बहेड़ा, आंवला, चीता, शुद्ध जमालगोटे के बीज; प्रत्येक का चूर्ण समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिलाकर पीस ले। इसमें सब द्रव्यों से दुगुना गुड़ मिलाकर इमली के छोटे बीज के समान चपटी गोली बनाकर प्रातःकाल खावे। यह जयावटी खांसी, श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, अजीर्ण, ग्रहणी, शूल, पाण्डु, गुदा का शूल, हृदय का शूल, वातरोग, गलग्रह, अरुचि, अतीसार तथा सूतिकारोग में लाभ करती है। यह वटी देवताओं के भी सेवन योग्य है।

विशेषवचन—आधुनिकमात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक।

जब कास आदि के साथ मलबद्धता ज्वर आदि हो तो देना चाहिये। क्षय रोग में अत्यन्त आवश्यकता होने पर ही प्रयोग कराना उचित है। यदि कोष्ठबद्धता के कारण अतिसार हो तो सबल पुरुष को देसकते हैं। भैषज्यरत्नावली में विजयभैरव रस नाम से एक योग है—

'सूतकं गन्धकं लौहं विषमभ्रकतालकम्[1]।
विडङ्गं रेणुकं[2] मुस्तमेलाग्रन्थिककेशरम्॥
त्रिकटु त्रिफला चित्रं शुद्धं जैपालबीजकम्।
एतानि समभागानि गुडो द्विगुण उच्यते॥
तिन्तिडीबीजमानेन प्रातःकाले तु भक्षयेत्।
कासं श्वासं क्षयं गुल्मं प्रमेहं विषमज्वरम्॥
अजीर्णं[3] ग्रहणीदोषं हन्ति पाण्ड्वामयं तथा।
अपाने हृदये शूलं वातरोगं गलग्रहम्॥
ब्रह्मणा निर्मितो ह्येष रसो विजयभैरवः॥'

यहां 'इन्द्रजौ' नहीं और अभ्रकभस्म तथा शुद्ध हड़ताल है। प्रतीत होता

१ 'विषमभ्रकमेव च' र. र. पाठः। २ 'बिल्वकं' पा०।
३ 'अजीर्णग्रहणीदोषाञ्छूलं पार्श्वामयांस्तथा।
अपाने हृदये शूले वातरोगे गलग्रहे॥
अरुचौ चातिसारे च सूतिकाविषनाशनः।
जयाह्वो निर्मितो ह्येष ब्रह्मादित्रिदिवेश्वरैः' र. र. पाठः॥

है प्रकृतग्रन्थ के मूल पाठ में लेखकप्रमाद है। अथवा कम से कम रसरत्नाकर के अनुसार 'इन्द्रजौ' के स्थान पर अभ्रकभस्म तो होनी चाहिये। रसरत्नाकर में भी यह योग विजयभैरव रस नाम से है ॥ ५१—५५ ॥

विजया गुडिका—

सूतकं गन्धको लौहं विषं चित्रकपत्रकम्।
विडङ्गरेणुकामुस्तमेलाकेसरग्रन्थिकम् ॥ ५६ ॥
फलत्रिकं त्रिकटुकं शुल्वभस्म तथैव च।
एतानि समभागानि द्विगुणो दीयते गुडः ॥ ५७ ॥
कासे श्वासे क्षये गुल्मे प्रमेहे विषमज्वरे।
सूतायां ग्रहणीरोगे शूले पाण्ड्वामये तथा।
हस्तपादादिदाहे च गुडिकेयं प्रशस्यते ॥ ५८ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, शुद्ध विष, चीता, तेजपात, वायविडंग, रेणुका, मोथा, छोटी इलायची, नागकेशर, पिप्पलामूल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, ताम्रभस्म; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर खरल करे और सब द्रव्यों से दुगुना पुराना गुड़ डालकर (एक वा दो रत्ती की) गोली बना ले। खांसी, श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, सूतिकारोग, ग्रहणी, शूल, पाण्डु और हाथ पैर की जलन में यह गोली बहुत उत्तम है।

विशेषवचन—पूर्वोक्त गुडिका से इसमें थोड़ा ही भेद है। वहां तेजपत्र नहीं इन्द्रजौ वा अभ्रक है और यहां जैपालबीज के स्थान पर ताम्रभस्म है। इसे कोष्ठबद्धता से अतिरिक्त अवस्था में भी दे सकते हैं। यह यकृत से पित्त को भी बाहिर निकालता है ॥ ५६—५८ ॥

स्वच्छन्दभैरवो रसः—

रसमेकं द्विधा गन्धं गन्धतुल्यञ्च सैन्धवम्।
ज्वालामुखीरसैः पञ्च दिनानि परिमर्दयेत् ॥ ५९ ॥

मूषिकायां निरुद्ध्याथ पुटेद्रात्रौ च मध्यमम् ।
सर्वं भस्म यदा याति वल्लमेनं प्रयच्छति ॥ ६० ॥
ग्रहण्यां संग्रहण्यां च कासे श्वासे विशेषतः ।
उग्रासु ज्वरतन्द्रासु निद्रास्वल्पासु योजयेत् ॥ ६१ ॥
अन्यरोगेषु तं दद्याद्रसं स्वच्छन्दभैरवम् ।
तुष्टिं पुष्टिमसौ कुर्य्यात सौकुमार्य्यञ्च कारयेत् ॥ ६२ ॥

शुद्ध पारा एक तोला में शुद्ध गन्धक दो तोले मिलाकर कज्जली करे। फिर सेंधानमक दो तोले मिलावें। सबको ज्वालामुखी (कलिहारी) के रससे पांच दिन तक खरल करे। फिर मूषा में बन्द करके रात्रि समय मध्यपुट दे। जब सब भस्म हो जाये तो इसे पीसकर डेढ रत्ति की मात्रा में रोगी को दें। इससे ग्रहणी, संग्रहणी, विशेषकर खांसी तथा श्वास दूर होते हैं। जब ज्वर में उग्र तन्द्रा हो परन्तु नींद थोड़ी आवे तब इसको देवे। अन्य रोगों में भी स्वच्छन्दभैरव रस को दें तो लाभ होता है, यह तुष्टि, पुष्टि करता है तथा शरीर को सुकुमार करता है।

विशेषवचन—यहां ज्वालामुखी से कई भिलावा लेते हैं। परन्तु कोष-ग्रन्थों में कहीं परस्पर वाचक देखने में नहीं आये। कलिहारी और भिलावा दोनों ही वातकफ-नाशक हैं। ५९—६२ ॥

रसगुडिका—

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो मतः ।
त्रिभागा पिप्पली, पथ्या चतुर्भागा, विभीतकः ॥ ६३ ॥
पञ्चभागः, त्वामला च षड्गुणा, सप्तभागिका ।
भार्गी, सर्वमिदं चूर्णं भाव्यं बब्बोलजैर्द्रवैः ॥ ६४ ॥

१ 'पञ्चभागस्तथा वासा षड्गुणा' भै. र. पाठः।

एकविंशतिवारश्च मधुना गुडिका कृता।
बिभीतकप्रमाणेन प्रातरेकान्तु भक्षयेत्।
कासं श्वासं हरेत् क्षुद्रा-क्वाथं तदनु कृष्णया ॥ ६५ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला, दोनों की कज्जली बनावे। फिर पिप्पली का चूर्ण तीन तोला, हरड़ का चूर्ण चार तोला, बहेड़े का चूर्ण पांच तोला, आमले का चूर्ण छः तोला, भार्गी का चूर्ण सात तोला ले। सबके चूर्ण को कज्जली में मिलावे और बबूल के क्वाथ की इक्कीस भावना देवे। फिर शहद से मिला बहेड़े के फल के समान वा एक कर्ष भर की गोली बनावे। इसे प्रातःकाल खावे और ऊपर से छोटी कटेली के क्वाथ में पिप्पली के चूर्ण का प्रक्षेप दे कर पीवे तो खांसी तथा श्वास नष्ट होते हैं।

आधुनिक मात्रा—१ मासा। इसका नाम तन्त्रान्तरों में भागोत्तर गुटिका, सप्तोत्तरगुटिका, सप्तामृता गुटिका है। यहां पर भी पाठ में प्रमाद है। 'त्वामला च षड्गुणा' के स्थान पर 'तथा वासा षड्गुणा' यह पाठ चाहिये। भैषज्यरत्नावली तथा रसरत्नसमुच्चय आदि में ऐसा ही पाठ है। वासा (अडूसा) खांसी में आंवले की अपेक्षा अधिक लाभकर है। अतः आंवले के स्थान पर अडूसा ही डालकर इस योग को बनाना चाहिये। योगरत्नाकर में भी भागोत्तरगुटिका कही है, वहां भी वासा ही है—

'रसगन्धकणापथ्याकलिद्रुफलवासकाः।
भार्गी चेति क्रमाद् वृद्धैरेतद्बर्बूरजैर्द्रवैः ॥
पिष्टं विंशतिमेकान्तान् कुर्यात् क्षौद्रेण गोलकान्।
कर्षप्रमाणानेतस्य तमेकं प्रातरुत्थितः ॥
दद्यान्मासत्रयं क्षुद्राक्वाथं दशकणायुतम्।
पिबेत्तदनु कासाच्च श्वासाच्च परिमुच्यते ॥' ६३—६५ ॥

रसेन्द्रगुडिका—

माक्षिकञ्च शिखिग्रीवमभ्रकं तालकं तथा।
एतांस्तु मिलितान् सर्वान् भावयेदार्द्रकद्रवैः।

---

१ 'कृत्वा' पा०।

रक्तिद्वयप्रमाणान्तु कल्पयेत्[1] गुडिकां भिषक् ॥ ६६ ॥
जीर्णान्ने[2] भक्षयेदेकां क्षीरमांसरसाशनः ।
पञ्चकासं[3] क्षयं श्वासं रक्तपित्तं[4] विनाशयेत् ॥ ६७ ॥
पाण्डुक्रिमिज्वरहरी[5] कृशानां पुष्टिवर्द्धनी ।
शुक्रवृद्धिकरी[6] चैषा अम्लपित्तविनाशिनी ।
वह्निसन्दीपनी[7] श्रेष्ठा त्वरोचकविनाशिनी[8] ॥ ६८ ॥

स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध नीलाथोथा, अभ्रकभस्म, शुद्ध हड़ताल; इन सब द्रव्यों को समभाग पीसकर अदरक के रस से भावना देकर दो रत्ति भर की गोली बना लें। इसकी एक गोली अन्न के पच जाने पर खावें। दूध, मांसरस पथ्य हैं। यह पांच प्रकार की खांसी, क्षय, श्वास, रक्तपित्त, पाण्डु, क्रिमिरोग तथा ज्वर को नाश करती है। कृश पुरुषों को मोटा करती है, वीर्य बढ़ाती है, अम्लपित्त रोग को हटाती है, अग्नि का सन्दीपन करने में श्रेष्ठ है, अरुचि को नष्ट करती है।

विशेषवचन—उक्त पाठ के अनुसार इस योग की आधुनिक मात्रा—आधी रत्ती जाननी चाहिये।

वस्तुतः यह योग आधा ही यहां पढ़ा गया है। इस योग का पूर्वभाग रहगया है। तन्त्रान्तर से वह भाग हम नीचे देते हैं—

'कुमार्या त्रिफलाचूर्णैश्चित्रकस्य रसैः क्रमात् ।
शोधयित्वा पुना राजीगृहधूमहरिद्रया ॥
पक्वेष्टकारजोभिश्च वोह्लापत्ररसेन[9] च ।

---

१ 'कारयेत्' पा०। २ 'जीर्णान्नो' पा०।
३ 'हन्ति कासं' पा०। ४ 'रक्तपित्तमरोचकम्' पा०। ५ 'ज्वरहरं कृशानां पुष्टिवर्धनम्' पा०। ६ 'वाजीकरणनिर्दिष्टमम्लपित्तहरं परम्' पा०।
७ 'सन्दीपनं श्रेष्ठं' पा०। ८ 'अरोचकविनाशनम्' पा०। अस्यानन्तरं च 'नागार्जुनाख्यमुनिना भाषितं तत्त्ववेदिना' इत्यधिकोऽन्यत्र।
९ 'जलम्बूषरसेन च' र. र. पाठः।

शृङ्गवेररसेनापि[१] शोधयित्वा पुनः पुनः ॥
प्रक्षालयेत्पुनः पश्चाद् गालयेद्वसने घने ।
कर्षद्वयं रसेन्द्रस्य भावयेद्विजयाद्रवैः ॥
शिलायां खल्लयेच्चापि यावच्चूर्णत्वमागतम्[२] ।
जलकर्णाकाकमाचीरसाभ्यां भावयेत्पुनः ॥
सौगन्धिकपलं शुद्धमर्द्धं मरिचटङ्कणम् ।'

अर्थात् पूर्व पारद को घीकार के रस, त्रिफलाचूर्ण, चित्रक रस; इनसे क्रमशः शोधन करे। पुनः राई, गृहधूम, हल्दी, पकी ईंट का चूर्ण, धतूरे के पत्तों का रस तथा अदरक के रस से क्रमशः शोधन करके धो डाले और मोटे कपड़े से छान ले। इस शुद्ध पारद को २ कर्षप्रमाण में लेकर विजया रस (जयन्ती वा भांग) की भावनायें दे और खरल में खूब मर्दन करे जब तक वह चूर्णाकृति न हो जाय। पश्चात् जलकर्णा और मकोय के रस से पुनः भावनायें दे। उसमें शुद्ध गन्धक एक पल मिला कज्जली करे। इस कज्जली में मरिच चूर्ण, शुद्ध सुहागा; प्रत्येक २ कर्ष तथा स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध नीलाथोथा (तूतिया), शुद्ध हड़ताल, अभ्रकभस्म; प्रत्येक २ कर्ष मिलाकर अदरक के रस से भावित करे। सामान्य नियम के अनुसार भावना सातवार की जाती है। इसकी आधुनिक मात्रा-१ रत्ती है। पूरा योग यह है। प्रकृत ग्रन्थ में तो आधा ही पाठ मिलता है। पूर्व का भाग प्रमाद से नहीं लिखा गया। रसरत्नाकर में रसेन्द्रगुटिका नाम से है। भैषज्यरत्नावली में बृहद्रसेन्द्रगुडिका नाम है। विशेषवचन में कहा योग का पूर्व पाठ भैषज्यरत्नावली का है। रसरत्नाकर का पाठान्तर टिप्पणी में दे दिया है ॥ ६६—६८ ॥

पुरन्दरवटी—

सूतकाद् द्विगुणं गन्धमेकधा कज्जलीकृतम् ।
त्रिकटुत्रिफलाचूर्णं प्रत्येकं सूतसम्मितम् ॥ ६९ ॥

---

१ ' भृङ्गराजरसेनापि ' र. र. पाठः ।
२ ' यावत्पिण्डत्वमागतम् ' र. र. पाठः ।

अजाक्षीरेण संभाव्य वटिकां कारयेत् ततः ।
आर्द्रकस्य रसैः सेव्या शीततोयं पिबेदनु ॥ ७० ॥
कासश्वासप्रशमनी विशेषादग्निवर्द्धनी ।
इयं यदि सदा सेव्या तदा स्याद् योगवाहिका ।
वृद्धोऽपि तरुणः शक्तः स्त्रीशतेषु वृषायते ॥ ७१ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला; दोनों की कज्जली करें। फिर सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला मिलावें और बकरी के दूध में भावना (सामान्य नियम के अनुसार सात वार) देकर गोली (१ मासे की) बना लें। इस गोली को अदरक के रस से सेवन कर के ऊपर से ठंडा पानी पीवें तो खांसी और श्वास नष्ट होते है। विशेष करके यह अग्निवर्धक है। यदि इस गोली को सदा सेवन किया जाय तो योगवाही होती है। अर्थात् अन्य रोगों में भी उन २ रोगों की औषध के साथ मिलाकर दी जा सकती है। और तब यह औषध की उन २ रोगों की नाशक शक्ति को बढ़ा देगी। इसके सेवन से बूढ़ा भी जवान के समान शक्त होकर सौ स्त्री तक भोग सकता है ॥ ६९—७१ ॥

कासान्तको रसः—

सूतं गन्धो विषश्चैव शालपर्णी च धान्यकम् ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रं मरीचकम् ।
गुञ्जाचतुष्टयं खादेन्मधुना कासशान्तये ॥ ७२ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, शालपर्णी, धनियां; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला, मरिचचूर्ण पांच तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिला लें और पीसकर रखें वा जल से घोट कर गोली बना लें। इसे चार रत्ति मात्रा में शहद से खावें तो खांसी शान्त होती है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा एक रत्ती से दो रत्ति तक। इसे पैत्तिक कास में प्रयोग कराना चाहिये ॥ ७२ ॥

कासकुठारः—

हिङ्गुलं मरिचं गन्धो सव्योषं टङ्कणं तथा ।
द्विगुञ्जश्चार्द्रकद्रावैः सन्निपातं सुदारुणम्[1] ।
कासं नानाविधं हन्ति शिरोरोगं विनाशयेत् ॥ ७३ ॥

शुद्ध हिंगुल, मरिच, शुद्ध गन्धक, सोंठ, मिरच, पिप्पली, शुद्ध सुहागा; प्रत्येक द्रव्य के चूर्ण को समभाग ले कर अदरक के रस से दो रत्ति प्रमाण की गोली बनावें। इसके सेवन से दारुण सन्निपात, नाना प्रकार की खांसी तथा सिर के रोग नाश होते हैं।

विशेषवचन—यह कासरोग की प्रसिद्ध औषध है। इसे अदरक के रस और मधु के अनुपान से देते हैं। यह रस कफ का शोषक है। यदि कफ पतला हो और रोगी आराम से कफ को निकालता हो तो देना चाहिये। यदि गाढ़ा हो और कफ के निकालने में कष्ट हो तो उससमय वैद्य इसे नहीं देते।

रसरत्नाकर में इसी से मिलता जुलता कालान्तक रस है। भेद इतना ही है—यहां अदरक के रस से मर्दन करना है, वहां जम्बीर रस से।

'हिङ्गुलं मरिचं व्योषं टङ्कणं गन्धकं समम्।
जम्बीररससंयुक्तं मर्दयेद्यामसात्रकम् ॥
कासं श्वासमतीसारं ग्रहणीं सान्निपातकम् ॥
अपस्मारामयं मेहमजीर्णं चाग्निमान्द्यताम् ॥
गुञ्जामात्रप्रदानेन सर्वं नाशयति क्षणात्' ॥ ७३ ॥

श्रीचन्द्रामृतलौहम्—

त्रिकटु त्रिफला धान्यं चव्यं जीरकसैन्धवम् ।
दिव्यौषधिहतस्यापि तत्तुल्यमयसो रजः ॥ ७४ ॥
नवगुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ।
प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा चिन्तयित्वाऽमृतेश्वरीम् ॥ ७५ ॥

---

१ 'सुदुःसहम्' पा० ।

एकैकां वटिकां खादेद् रक्तोत्पलरसाप्लुताम् ।
नीलोत्पलरसेनैव कुलत्थस्वरसेन च ॥ ७६ ॥
निहन्ति विविधं कासं दोषत्रयसमुद्भवम् ।
वातिकं पैत्तिकञ्चैव गरदोषसमुद्भवम् ॥ ७७ ॥
सरक्तमथ नीरक्तं ज्वरं श्वाससमन्वितम् ।
भ्रमतृड्दाहशूलघ्नं रुच्यं वह्निप्रदीपनम् ॥ ७८ ॥
बलवर्णकरं वृष्यं जीर्णज्वरविनाशनम् ।
इदं चन्द्रामृतं लौहं चन्द्रनाथेन निर्मितम् ॥ ७९ ॥

सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, धनियां, चव्य, श्वेत जीरा, सेंधानमक; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला और मनसिल से भस्म किया हुआ लौह दस तोला लें। इन सब को पीसकर नौ रत्तिभर की गोली बनालें। रोगी प्रातःकाल पवित्र होकर अमृतेश्वरी का चिन्तन कर लाल कमल के रस नीले कमल के रस वा कुलथी के स्वरस से गोली का सेवन करे। यह तीनों दोषों से होनेवाली विविध प्रकार की खांसियों को दूर करता है। वातिक, पैत्तिक, गर (संयोगजविष) दोष से उत्पन्न रक्तसहित वा रक्तरहित कास श्वास युक्त ज्वर इससे दूर होता है। भ्रम, तृष्णा, दाह, शूल नष्ट होते हैं। यह रुचिवर्द्धक, अग्निप्रदीपक, बलवर्द्धक, वर्णकर तथा वृष्य है। जीर्णज्वर को नष्ट करता है। यह चन्द्रामृतलौह चन्द्रनाथ ने बनाया है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा–२ रत्ती। यह जीर्णज्वरयुक्त कास में विशेष लाभकर है ॥ ७४—७९ ॥

श्रीचन्द्रामृतो रसः—

रसगन्धकलौहानां प्रत्येकं कार्षिकं क्षिपेत् ।
टङ्कणस्य पलं दत्त्वा मरिचस्य पलार्द्धकम् ॥ ८० ॥
त्रिकटु त्रिफला चव्यं धान्यजीरकसैन्धवम् ।
प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यं छागीदुग्धेन पेषयेत् ।

नवगुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ८१ ॥
प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा चिन्तयित्वाऽमृतेश्वरीम् ।
एकैकां वटिकां खादेद् रक्तोत्पलरसेन च ॥ ८२ ॥
नीलोत्पलरसेनापि कुलत्थस्वरसेन च ।
छागीक्षीरेण मण्डेन केशराजरसेन च ॥ ८३ ॥
निहन्ति विविधं कासं वातरक्तसमुद्भवम् ।
वातश्लेष्मज्वरं कासं पित्तश्लेष्मज्वरं तथा ।
वातिकं पैत्तिकं वाऽपि गरदोषसमन्वितम् ॥ ८४ ॥
वासा गुडूचिका भार्गी मुस्तकं कण्टकारिका ।
समभागकृतं क्वाथं प्रत्यहं पाययेदनु ॥ ८५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष, शुद्ध सुहागा एक पल, मिरच का चूर्ण आधा पल, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़ बहेड़ा, आंवला, चव्य, धनियां, श्वेत जीरा, सेंधानमक; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला लें। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य

---

१ 'रक्तोत्पलरसप्लुताम्' पा०। २ 'पिप्पल्या मधुना वापि शृङ्गवेररसेन वा' भै. र. पाठः। ३ 'कैरवस्य रसेन वा' र. र. पाठः। ४ 'हन्ति पञ्चविधं' भै. र. पाठः। ५ 'वातपित्तसमुद्भवम्' भै. र., र. र. पाठः।

६ 'वातश्लेष्मोद्भवं दोषं पित्तश्लेष्मोद्भवं तथा' भै. र. पाठः। वातश्लेष्मोत्थितं दुष्टं पित्तश्लेष्मभवं चिरम्' र. र. पाठः।

७ 'नानादोषसमुद्भवम्' भै. र. पाठः। अस्यानन्तरं 'सरक्तमथ नीरक्तं ज्वरश्वाससमन्वितम्। तृड्दाहभ्रमशूलघ्नी रुच्या वह्निप्रदीपनी। बलवर्णकरी वृष्या प्लीहगुल्मोदरापहा। आनाहकृमिपाण्डुघ्नी जीर्णज्वरविनाशिनी। इयं चन्द्रामृता नाम चन्द्रनाथेन निर्मिता।' र. र. पाठः। स्वल्पेन पाठान्तरेणायमेव भैषज्यरत्नावल्यामपि।

८ 'भोजनान्ते प्रकर्तव्या गुडिका वीर्यधारिणी' भै. र. पाठः। 'भोजनान्ते प्रकर्तव्या वटिका वीर्यवर्द्धिनी' र. र. पाठः। ९ 'भक्षयेदनु' प्रचलितः पाठः।

मिलाकर बकरी के दूध से पीसकर नौ रत्ति की गोली बना लें। प्रातःकाल पवित्र हो भगवती अमृतेश्वरी का चिन्तन कर रोगी इसे लाल कमल के रस, नीले कमल के रस, कुलथी के क्वाथ, बकरी के दूध, चावलों की मांड अथवा केशराज के रस से सेवन करे। इससे विविध कास, वात रक्त से उत्पन्न कास, वातश्लेष्मज्वर, वातश्लेष्मज खांसी, पित्तश्लेष्मज्वर और पित्तश्लेष्मज कास, वातिक पैत्तिक, गर दोष से हुए ज्वर कास आदि रोग दूर होते हैं। इस गोली के साथ अनुपान में बांसा, गिलोय, भारंगी, मोथा, छोटी कटेली; इन सब औषधों को समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर पीवें।

विशेषवचन–आधुनिक मात्रा–४ रत्ती। यह भी कास में प्रसिद्ध औषध है। जब कफ गाढ़ा हो और कष्ट से निकलता हो तब इसे देते हैं। यह दुष्ट कफ को पतला कर के आराम से निकाल देता है।

रसरत्नसमुच्चय की परिभाषा के अनुसार कर्ष एक तोले के बराबर है और पल ४ तोले के। परन्तु आजकल यहां कर्ष से २ तोला और पल से ८ तोला मानकर इसे बनाया जाता है ॥८०—८५॥

अमृतमञ्जरी—

हिङ्गुलश्च विषश्चैव कणा मरिचटङ्कणम् ।
जातीकोषं समं सर्वं जम्बीररसमर्दितम् ॥ ८६ ॥
रक्तिमानां वटीं कुर्य्यादार्द्रकद्रवसंयुताम् ।
वटीद्वयं त्रयं खादेत् सन्निपातं सुदारुणम् ॥ ८७ ॥
अग्निमान्द्यमजीर्णञ्च सामवातं सुदारुणम् ।
उष्णतोयानुपानेन सर्वं व्याधिं नियच्छति ॥ ८८ ॥
कासं पञ्चविधं श्वासं सर्वाङ्गग्रहमेव च ।
जीर्णज्वरं क्षयं चापि हन्यादमृतमञ्जरी ॥ ८९ ॥

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध विष, पिप्पली का चूर्ण, मिरच का चूर्ण, शुद्ध सुहागा, जावित्री का चूर्ण; सब द्रव्य समभाग लेकर जम्बीरी के रस से खरल

१ 'कासं' प्रचलितः पाठः।

कर एक रत्ति भर की गोली बना लें। दो तीन गोली अदरक के रस से खावें तो भयंकर सन्निपात, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, घोर आमवात नष्ट होता है। गरम पानी के अनुपान से सब रोगों का नाश करता है। पांच प्रकार की खांसी, श्वास, सर्वाङ्गग्रह (सर्वाङ्गवेदना), जीर्णज्वर, क्षय आदि नाश होते हैं। इसका नाम अमृतमञ्जरी है।

विशेषवचन—यह योग पूर्व भी ज्वरप्रकरण में (१९४ पृष्ठ पर) आचुका है। इस की १ रत्ती की वटी एक बार के लिये है। दिन में यह रस दो या तीन बार प्रयोग करा सकते हैं ॥ ८६—८९ ॥

कासान्तकः—

त्रिफला व्योपचूर्णश्च समभागं प्रकल्पयेत्।
मधुना सह पानात् तु दुष्टकासं नियच्छति ॥ ९० ॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली; प्रत्येक द्रव्य के चूर्ण को समभाग लेकर मिलावें। इसे एक माषा भर लेकर शहद से मिला सेवन करें तो दुष्ट खांसी दूर होती है ॥ ९० ॥

बृहच्छृङ्गाराभ्रम्—

पारदं गन्धकश्चैव टङ्कणं नागकेशरम्।
जातीकोषश्च कर्पूरं लवङ्गं तेजपत्रकम् ॥ ९१ ॥
सुवर्णश्चापि प्रत्येकं कर्षमात्रं प्रकल्पयेत्।
शुद्धकृष्णाभ्रचूर्णन्तु चतुष्कर्षं प्रयोजयेत् ॥ ९२ ॥
तालीशं घनकुष्ठश्च मांसी त्वक् धातकी तथा।
एलाबीजं त्रिकटुकं त्रिफला करिपिप्पली ॥ ९३ ॥
कर्षद्वयं वा चैतेषां पिप्पलीक्वाथमर्दितम्।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं चोचं क्षौद्रसमायुतम् ॥ ९४ ॥
अग्निमान्द्यादिकान् रोगानरुचिं पाण्डुकामलाम्।
उदराणि तथा शोथमानाहं ज्वरमेव च ॥ ९५ ॥

ग्रहणीं श्वासकासञ्च हन्याद् यक्ष्माणमेव च ।
नानारोगप्रशमनं बलवर्णाग्निकारकम् ॥ ९६ ॥
बृहच्छृङ्गाराभ्रनाम विष्णुना परिकीर्त्तितम् ।
एतस्याभ्यासमात्रेण निर्व्याधिर्जायते नरः ॥ ९७ ॥

शुद्ध पारा एक कर्ष, शुद्ध गन्धक एक कर्ष लें। दोनों की कज्जली करें। फिर शुद्ध सुहागा, नागकेसर, जावित्री, कर्पूर, लौंग, तेजपात, स्वर्णभस्म; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ कर्ष, शुद्ध कृष्णाभ्रक की भस्म चार कर्ष, तालीश-पत्र, मोथा, कूठ, जटामांसी, दारचीनी, धाय के फूल, छोटी इलायची के बीज, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, गजपीपल; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण दो २ कर्ष मिलावें और पिप्पली के क्वाथ से सबको मर्दन कर (चार रत्ति भर की) गोली बना लें। इसको दारचीनी के चूर्ण तथा शहद से मिलाकर सेवन करना चाहिये। यह अग्निमान्द्य आदि रोग तथा अरुचि, पाण्डु, कामला, उदररोग, शोथ, आनाह, ज्वर, ग्रहणी, श्वास, कास और यक्ष्मा आदि नाना रोगों को नाश करता है, बल अग्नि और वर्ण को बढ़ाता है। यह बृहच्छृङ्गाराभ्र रस विष्णु ने कहा है। इस रस के अभ्यास अर्थात् नित्य सेवन से मनुष्य व्याधिरहित हो जाता है।

विशेषवचन – यह रस कास वा कफ का शोषक है। यदि खांसते हुए छाती वा हृदय में वेदना हो कफ गाढ़ा हो और आसानी से न निकले तो

---

१ —इस के पश्चात् कई इस योग को पढ़ते हैं—

‘ भृङ्गराजस्य पत्रन्तु चूर्णितं मधुना सह ।
गोलकं धारयेदास्ये कासविष्टम्भशान्तये ॥’

परन्तु असली ग्रन्थ में यह योग नहीं है। नांही रसग्रन्थ से सम्बन्ध है। हां अनुपान रूप में यहां प्रयोग कराया जा सकता है। भांगरे के पत्तों के चूर्ण में मधु मिला गुटिका बना लें। रोगी गुटिका को मुख में रखकर चूसता रहे। कास और विष्टम्भ नष्ट होता है।

यह योग रसरत्नसमुच्चय में है।

इसे न दें। यह रस क्षय में भी कास श्वास के निवारण के लिये प्रयुक्त होता है ॥ ८१—८७ ॥

इति कास-चिकित्सा।

अथ हिक्का-श्वास-चिकित्सा।

सूर्यावर्त्तो रसः।

गन्धकं[1] सूतकं मर्द्यं यामैकं[2] कन्यकाद्रवैः।
द्वयोस्तुल्यं ताम्रपत्रं[3] पूर्वकल्केन लेपयेत् ॥ १ ॥
दिनैकं[4] हण्डिकायन्त्रे[5] पचेच्छीतं समुद्धरेत्।
सूर्य्यावर्त्तरसो नाम द्विगुञ्जः श्वासकासनुत्[6] ॥ २ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक एक तोला; दोनों की कज्जली करे। फिर घीकुमार के रस से उसे एक पहर खरल करे। शुद्ध तांबे के पतले पत्र दो तोला लेकर उस पर वह पीठी लेप दे और एक हांडी में डाल मुंह बन्द कर दिन भर पकावे। स्वांगशीतल होने पर उतार ले। इसे दो रत्ति भर मात्रा में प्रयोग करावें। यह श्वास और कास को दूर करता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा $\frac{1}{8}$ रत्ती से आधी रत्ती तक। ज्वर मन्दाग्नि शोथ युक्त श्वास में भी यह हितकर है।

भैषज्यरत्नावली में वालुकायन्त्र में इसे पकाने को कहा है। रसरत्नाकर रसेन्द्रचिन्तामणि शार्ङ्गधर रसरत्नसमुच्चय रसप्रकाशसुधाकर आदि में पारद १ भाग और गन्धक २ भाग है। और तब ताम्रपत्र ३ भाग होंगे। पाक भी तभी ठीक होगा। रसरत्नसमुच्चय के उपलब्ध पाठान्तर (ताम्रभस्म पूर्व-

---

१ 'सूतार्द्धं गन्धकं मर्द्यं' र. र., र. र. स. पाठः। 'सूतार्द्धो गन्धको मर्द्यः' र.चि., शार्ङ्गधरपाठः। २ 'माषैकं कनकाम्बुना' र.चि. पाठः प्रमादकृत एव।

३ 'ताम्रभस्म पूर्वकल्केन मेलयेत्' र. र. स. पाठः। ४ 'दिनार्द्धं वालुकायन्त्रे पक्वमादाय चूर्णयेत्' र. चि. पाठः। ५ 'वालुकायन्त्रे पाच्यमादाय चूर्णयेत्' भै. र. पाठः। 'स्थालिकायन्त्रे पक्वमादाय चूर्णयेत्' शा० पाठः। ६ 'श्वासजिद्भवेत्' पा०

कल्केन मेलयेत्) में तो ताम्रपत्र के स्थान पर ताम्रभस्म है। कज्जली-कल्क और ताम्रभस्म मिलाकर हांडी में पकाना है। इसप्रकार वान्ति आदि दोष की सर्वथा आशङ्का न रहेगी ॥ १—२ ॥

इन्द्रवारुणिकामूलं देवदारु कटुत्रयम् ।
शर्करासहितं खादेदूर्ध्वश्वासनिवृत्तये ॥ ३ ॥

इन्द्रायण की जड़, देवदार, सोंठ, मिरच, पिप्पली; प्रत्येक द्रव्य सम-भाग लेकर सर्वसम खांड मिला यथाबल खावें तो ऊर्ध्वश्वास निवृत्त होता है। इसे अनुपान रूप में प्रयुक्त कर सकते हैं। अथवा अनुपान में कई इनका क्वाथ बना खांड मिला पीने को देते हैं ॥ ३ ॥

विजयवटी—

गन्धकं सूतकं लौहं विषमभ्रकमेव च ।
विडङ्गं रेणुकं मुस्तमेला ग्रन्थिक-केशरम् ॥ ४ ॥
त्रिकटु त्रिफला ताम्रं शुद्धं जैपालचित्रकम् ।
एतानि समभागानि द्विगुणो दीयते गुडः ॥ ५ ॥
कासे श्वासे क्षये गुल्मे प्रमेहे विषमज्वरे ।
सूतायां ग्रहणीदोषे शूले पाण्ड्वामये तथा ।
हस्तपादादिदाहेषु वटिकेयं प्रशस्यते ॥ ६ ॥

शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, लौहभस्म, शुद्ध विष, अभ्रकभस्म, विडंग, रेणुका, मोथा, छोटी इलायची, पिप्पलामूल,नागकेशर, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, ताम्रभस्म, शुद्ध जमालगोटा, चीता; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग ले। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर, सब से दुगुना गुड मिलावें। इसकी मात्रा यथाबल (दो तीन रत्ति की) खावें तो कास, श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, सूतिकारोग, ग्रहणी, शूल, पाण्डु, हाथ पैरों की दाह आदि सब रोग निवृत्त होते हैं।

कासाधिकार में भी ऐसे योग आचुके हैं। वहां जयागुडिका नाम से जो योग है उसमें और इसमें थोड़ा सा भेद है। वहां 'इन्द्रजौ' पठित है, यहां अभ्रकभस्म। ताम्रभस्म यहां अधिक है। उसी अधिकार में ही विजयागुडिका का जो पाठ है उसका गुणनिर्देश पाठ तो यही है परन्तु योग के पाठ में थोड़ी सी भिन्नता है। वहां तेजपत्र है, यहां अभ्रकभस्म है। वहां जमालगोटा नहीं, यहां जमालगोटा है ॥४—६॥

घृतेन पाचयेन्मूलं पत्रञ्च वासकस्य च।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय कासे श्वासे क्षये तथा ॥ ७ ॥

वांसे (अडूसा) के पत्ते और जड़ के चूर्ण को घी में पकाकर कास, श्वास तथा क्षयरोग में प्रातःकाल प्रयोग कराना चाहिये।

विशेषवचन—इसे अनुपान रूप में भी दिया जाता है ॥ ७ ॥

देवदारु पिप्पली च शुण्ठीचूर्णं समं तथा।
ऊर्ध्वश्वासं सदा हन्ति पिबेदुष्णजलेन च ॥ ८ ॥

देवदारु, पिप्पली, सोंठ, सब के चूर्णों को समभाग लेकर मात्रा में (१ मासा) गरम जल से पीवें तो ऊर्ध्वश्वास नाश होता है।

विशेषवचन—यह भी अनुपान रूप में प्रयुक्त कराया जाता है ॥ ८ ॥

लौहपर्पटी रसः—

भागौ रसस्य गन्धस्य द्वावेको लौहभस्मतः।
एतद्घृष्टं द्रवीभूतं मृद्वग्नौ कदलीदले ॥ ९ ॥
पातयेद् गोमयगते तथैवोपरि योजयेत्।
ततः पिष्ट्वा द्रवैरेभिः सप्तधा भावयेत् पृथक् ॥ १० ॥
भार्गी-मुण्डी-मुनि-वरा जया निर्गुण्डिका तथा।
व्योषवासककन्यार्द्र-द्रवैस्तस्मात् पुटे पचेत् ॥ ११ ॥

---

१ 'मर्दयेत्' र.चि. पाठः। २ 'चातिबलारसैश्च विजयाद्रवैः। घोषारसैः कन्याद्रवैः शुष्कं शुष्कं पुटेल्लघु। आगन्धं खर्परे नाम्ना' र. चि. पाठः।

आगन्धं खर्परे ताम्रे पर्पट्याख्यो रसो भवेत् ।
सर्वरोगहरस्तैस्तैरनुपानैर्हि माषकैः ॥ १२ ॥
ताम्बूलीपत्रसहितः श्वासकासहरः परः ।
सकणः सुरसाक्वाथोऽनुपानं वासकाजलम् ॥ १३ ॥
अम्लिकातैलवार्त्ताकु-कूष्माण्डं कदलीफलम् ।
वर्ज्यं मांसरसं सर्वं पथ्यं दद्याद् विचक्षणः ।
वर्जयेच्च विशेषेण कफकृत् स्त्रीसुखादिकम् ॥ १४ ॥

शुद्ध पारा दो तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला, लौहभस्म एक तोला ले। पहले कज्जली करे फिर लौहभस्म मिलाकर खरल में मर्दन कर लोहे की कड़छी में रख मन्द आग पर पिघलावे। पिघलते ही गोबर पर रखे हुए केले के पत्ते पर उलटा देवे और ऊपर से केले के पत्ते को रख दे। इस प्रकार लोहपर्पटी बना ले। फिर इसका चूर्ण करे और भारंगी, मुण्डी, अगस्त्य, त्रिफला, जया (जयन्ती), निर्गुण्डी, त्रिकुटा, बांसा, घीकुमार, अदरक; प्रत्येक के रस या क्वाथ से सात २ वार भावना दे। फिर सुखाकर तांबे के पात्र में डाल सम्पुट कर छोटा पुट दे। जब गन्धक की गन्ध निकलने लगे तभी निकाल ले और स्वांगशीतल होने पर खोलकर पीस ले और शीशी में डाल रखे। इस लौहपर्पटी रस को उचित मात्रा में रोगानुसार भिन्न २ (चूर्णों के) एक माषा भर अनुपान से दें तो सब रोग नाश होते हैं। पान के पत्तों के रस के साथ दें तो श्वास तथा कास रोग नाश होता है। अनुपान में रोगी निर्गुण्डी के क्वाथ में पिप्पली का चूर्ण डालकर पीवे। अथवा बांसे का रस पीवे। इमली, तेल, बैंगन, पेठा, केला; ये पदार्थ वर्जित हैं। मांसरस तथा अन्य पथ्य वस्तुएं पथ्य हैं। विशेषकर कफवर्द्धक वस्तु न देवे। तथा स्त्रीसम्भोग आदि से बचा रहे।

---

१ 'सर्वरोगहरश्चैव कान्तिलावण्यवीर्यदः' र. चि. पाठः। २ 'अन्यांश्च विविधान् रोगान् नाशयेन्मासमध्यतः' र. चि. पाठः। ३ 'सुषवीफलम्' र. चि. पाठः। ४ 'मासत्रयं सर्वं कफकृत् स्त्रीसुखादिकम्' र. चि. पाठः।

आधुनिक सामान्य मात्रा—२ से ४ रत्ती तक। अथवा अन्य पर्पटियों के सदृश वृद्धिह्रासक्रम से १० रत्ती तक प्रयोग करा सकते हैं। यह पाण्डु और शोथजन्य श्वास में अधिक लाभकर होगा।

रसरत्नसमुच्चय में एक पर्पटीरस का योग है—

'रसं द्विगुणगन्धेन मर्दयित्वा सभृङ्गकम्।
लोहपात्रे घृताभ्यक्ते द्रावितं बदराग्निना॥
ऊर्ध्वाधो गोमयं दत्त्वा कदल्याः कोमले दले।
स्निग्धया लोहदर्व्या च पर्पटाकारतां नयेत्॥
लोहपात्रे विनिक्षिप्ता लोहपर्पटिका भवेत्।
ताम्रपात्रे विनिक्षिप्ता ताम्रपर्पटिका भवेत्॥
विषपादं च युञ्जीत तत्साध्येष्वामयेषु च।
सुरसाया जयन्त्याश्च कन्यकाटकरूषयोः॥
त्रिफलाया मुनेर्भार्ङ्ग्या मुण्ड्यास्त्रिकटुचित्रयोः।
भृङ्गराजस्य वह्नेश्च प्रत्यहं द्रवभावितम्।
आर्द्रकस्य रसेनापि सप्तधा भावयेत्पुनः॥
अङ्गारैः स्वेदयेदीषत्पर्पटीरसमुत्तमम्।
गुञ्जाष्टकं ददीतास्य ताम्बूलीपत्रसंयुतम्॥
पिप्पलीदशकैः क्वाथं निर्गुण्ड्याश्चानुपाययेत्।
स्वरभङ्गे कफे श्वासे प्रयोज्यः सर्वदा रसः॥
त्रिकण्टकस्य मूलानि शुण्ठीं सङ्क्षुद्य निक्षिपेत्।
अजाक्षीरे सनीरार्धे यावत्क्षीरं विपाचयेत्॥
तत्क्षीरं पाययेद्रात्रौ सकणं भोजनेऽपि च।
कूष्माण्डं वर्जयेच्चिञ्चां वृन्ताकं कर्कटीमपि॥
आरनालं च तैलं च संसर्गं च विवर्जयेत्।
मासत्रयं च सेवेत कासश्वासनिवृत्तये॥
सजीरहिङ्गुकव्योषः शमयेद् ग्रहणीं रसः।
दशमूलाम्भसा वातज्वरं त्रिकटुना कफम्॥

ज्वरं मधुकसारेण पञ्चकोलेन सर्वजम् ।
यक्ष्माणं मधुपिप्पल्या गोमूत्रेण गुदाङ्कुरान् ॥
शूलमेरण्डतैलेन पाण्डुशोफे सगुग्गुलुः ।
कुष्ठानि भृङ्गभल्लातबाकुचीपञ्चनिम्बकैः ॥
धत्तूरबीजसंयोगान्महोन्मादविनाशनः ।
अपस्मारं निहन्त्याशु व्योषनिम्बुदलैः सह ॥
स्तनन्धयशिशूनां तु रसोऽयं नितरां हितः ।
पथ्याद्यचूर्णादिवशाद्व्याधींश्चान्यान् सुदुस्तरान् ॥
सजातीफलशीतोदं योजयेत्पर्पटीरसम् ।
पित्ताजीर्णे शिरश्चास्य शीततोयेन सेचयेत् ॥
नस्यं निष्ठीवनं धूमं तीक्ष्णं वमनरेचनम् ।
अन्नं रूक्षाल्पतीक्ष्णोष्णं कटुतिक्तकषायकम् ॥
चिरकालस्थितं मद्यं योजयेत्कफरोगिणे ॥'

यहां 'सभृंगकम्' के स्थान पर 'सलोहकम्' पाठ ठीक रहेगा। अर्थात् पारा १ भाग, गन्धक २ भाग (प्रकृतग्रन्थ के मूल पाठ में शायद 'भागो रसस्य' ऐसा ही पाठ हो), लोहभस्म १ भाग; इन्हें एकत्र मिला घी से चुपड़ी लोहे की कड़छी में पिघला यथानियम पर्पटी बना लें। लोहपात्र पर यदि पर्पटी बनायेंगे तो लोहपर्पटी कहायगी। यदि ताम्रपात्र में बनायेंगे तो ताम्रपर्पटी होगी परन्तु लोहभस्म के स्थान पर ताम्रभस्म भी डालनी होगी। अथवा उपलब्ध पाठ के अनुसार तो पारद गन्धक की कज्जली को भृंगराज के रससे मर्दन कर सुखालें और पिघलाकर लोहपात्र पर पर्पटी बनायगे तो लोहपर्पटी और यदि ताम्रपात्र पर पर्पटी बनायगे तो ताम्रपर्पटी कहायगी। लोहभस्म वा ताम्रभस्म नहीं डालनी। यदि ज्वर अतिसार आदि रोगों में विष का उपयोग अभीष्ट हो तो एक भाग से चतुर्थांश शुद्ध विष मिला सकते हैं। अन्यथा आवश्यक नहीं। पश्चात् सुरसा (प्रकृतग्रन्थ के अनुसार निर्गुण्डी), जयन्ती, घीक्वार, अड़ूसा, त्रिफला, अगास्तिया, भारंगी, मुण्डी, त्रिकटु, चित्रक, भांगरा, वह्नि (भल्लातक); इनके द्रवों की भावनायें (सात सात) दें पश्चात् अदरक के रस की सात भावना देकर

(यहां भांगरा भल्लातक और चित्रक की भावना अधिक है) लोहपात्र में डाल अङ्गारों पर मन्द आंच से कुछ स्वेदन करें। अर्थात् गन्धक की गन्ध उठते ही उतार लें। यह पर्पटी रस है। अनुपान ये हैं-स्वरभंग कफ और श्वास में—पान के पत्ते में इसे चबाकर रोगी निर्गुण्डीकाथ में पिप्पलीचूर्ण का प्रक्षेप देकर पीवे (प्रकृत ग्रन्थ में अतएव ही सुरसा से तुलसी न लेकर निर्गुण्डी-सम्भालू लिया है)। रात्रिको सोते समय गोखरू की जड़ और सोंठ से साधित बकरी के दूध में पिप्पलीचूर्ण का प्रक्षेप देकर पिलावें। तीन मास तक श्वास के समूल नाश के लिये इसका सेवन करना उचित है। पेठा, इमली, बैंगन, ककड़ी, कांजी, तैल; ये भोजन में अपथ्य हैं। स्त्रीभोग भी त्याज्य है।

ग्रहणी में अनुपान—श्वेत जीरा चूर्ण, हींग और त्रिकटु चूर्ण। वातज्वर में—दशमूल क्वाथ। कफरोग में त्रिकटु चूर्ण। ज्वर में मुलहठी क्वाथ। सन्निपात में—पञ्चकोल क्वाथ। क्षय में-पिप्पलीचूर्ण और मधु। अर्श में—गोमूत्र। शूल में—एरण्डतैल। पाण्डु शोथ में-गुग्गुलु। कुष्ट में-भांगरा, भिलावा, बाकुची (बावची वा कालीजीरी), नीम का पञ्चाङ्ग। उन्माद में—धत्तूरबीज। अपस्मार में त्रिकटु और नीबू के पत्ते (निम्बदलैः पाठ होने से नीम के पत्ते)।

दूधपीते बच्चों के लिये यह रस अत्यन्त हितकर है। हरड़ बहेड़ा आदि भिन्न २ द्रव्यों के चूर्णों के साथ यह बहुत से दुस्तर रोगों को नष्ट करता है। पित्ताजीर्ण में-जायफल का चूर्ण और शीतल जल अनुपान है। शीतल जल से रोगी को स्नान भी कराना होता है। कफ में तीक्ष्ण नस्य धूम आदि कफनाशक द्रव्यों का विधान है॥ ९—१४॥

ताम्रपर्पटी—

लौहस्थाने ताम्रयोगात् ताम्रपर्पटिका भवेत्॥ १५॥

पूर्वोक्त कज्जली में लौहभस्म के स्थान में ताम्रभस्म डालें तो ताम्रपर्पटी बन जाती है इससे भी कास श्वास (तथा हिचकी) नाश होते हैं।

योगरत्नाकर में भी एक 'ताम्रपर्पटी रस' कासश्वासाधिकार में कहा है—

'मृतं ताम्रं त्रिभागं च रसं गन्धं च तत्समम् ।
भागमेकं वत्सनाभं कज्जली खल्वमध्यगम् ॥
गोघृतेन कृतं कल्कं लोहपात्रे विपाचयेत् ।
ढालयेदर्कपत्रस्थां पर्पटीं रससिद्धये ॥
गुञ्जाद्वयं त्रयं चैव पिप्पलीमधुसंयुतम् ।
त्रिसप्तरात्रयोगेन रोगराजं च नाशयेत् ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव सन्निपातं नियच्छति ।
त्रिफलारससंयुक्ता सर्वपाण्डुं विनाशयेत् ॥
वातारितैलसंयुक्ता सर्वशूलनिवारिणी ।
कुमारीरसयोगेन वातपित्तोपशान्तिकृत् ॥
बाकुचीरससंयुक्ता सर्वदद्रुविनाशिनी ।
त्रिफलामधुसंयुक्ता सर्वमेहनिवारिणी ॥
खदिरक्वाथपानेन कुष्ठाष्टादशनाशिनी ।
मन्थानभैरवेणोक्ता लोकानां हितकाम्यया ॥'

ताम्रभस्म ३ भाग, पारद ३ भाग, गन्धक ३ भाग; इन्हें एकत्र मिला कुछ गोघृत डालकर मर्दन करें और लोहे की कड़छी में पिघलाकर आक (मदार) के पत्ते पर पर्पटी बना लें। इसमें १ भाग शुद्ध वत्सनाभविष मिला लें। दो या तीन रत्ती मात्रा में (आजकल १ रत्ती मात्रा में) लेकर यक्ष्मा में पिप्पली चूर्ण और मधु के साथ दें। सन्निपात में अदरक के रस के साथ। पाण्डुरोगों में त्रिफला क्वाथ के साथ। सब शूलों में एरण्डतैल के साथ। वात पित्त के रोगों में ग्वारपाठे के रस के साथ। दद्रु में बाकुची (काली जीरी) के क्वाथ से। सब मेहों में त्रिफलाक्वाथ और मधु के साथ। अठारहों कुष्ठ में खैर की लकड़ी के क्वाथ से ॥ १५ ॥

पिप्पल्याद्यं लौहम्—

पिप्पल्यामलकी द्राक्षा कोलास्थि मधुशर्करा ।
विडङ्गपुष्करैर्युक्तं लौहं हन्ति सुदारुणाम्[१] ।

---

१ 'सुदुर्जयाम्' पा० ।

छर्दिं हिक्कां तथा तृष्णां त्रिरात्रेण न संशयः ॥ १६ ॥

पिप्पली का चूर्ण, आंवले का चूर्ण, किशमिश; बेर की गुठली की गिरी, मुलहठी, खांड, वायविडंग, पुष्करमूल; प्रत्येक द्रव्य समभाग और सबके तुल्य लौहभस्म मिलाकर खरल करें। इसकी उचित मात्रा खाने से भयंकर वमन, हिचकी तथा तृष्णा तीन दिन में निःसन्देह नाश हो जाते हैं।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—२ रत्ती। यह हिक्का में अत्यन्त प्रशस्त है। 'मधु' से शहद भी लिया जा सकता है। वस्तुतः मधुशर्करा से मधुशर्करा ही लीं जानी चाहिये। राजनिघण्टु में पर्याय और गुण इसप्रकार कहे हैं—

'सितजान्या शर्करजा माधवी मधुशर्करा।
माक्षीकशर्करा प्रोक्ता सिताखण्डश्च खण्डकः॥
सिताखण्डोऽतिमधुरश्चक्षुष्यश्छर्दिनाशनः।
कुष्ठ-व्रण-कफ-श्वास-हिक्का-पित्तास्रदोषनुत्' ॥ १६ ॥

श्वासकुठारो रसः—

टङ्कणं पारदं गन्धं शिलां विषकटुत्रिकम्।
निष्पिष्य वटिका कार्य्या वाणगुञ्जाप्रमाणतः॥ १७ ॥
उष्णोदकं पिबेच्चानु क्षुद्राक्काथमथापि वा।
कासं पञ्चविधं हन्ति श्वासं श्लेष्मसमुद्भवम्।
शिरोरोगं निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा॥ १८ ॥

शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग दोनों की कज्जली करे। इसमें शुद्ध सुहागा, शुद्ध मनसिल, शुद्ध विष, सोंठ का चूर्ण, मिरच का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य एक भाग मिला जल से घोटकर पांच रत्ति भर की गोली बनावें। इसे खाकर ऊपर से छोटी कटेली का क्काथ या गरम जल पीवें। यह रस पांचों प्रकार की खांसी, कफ से होने वाले श्वासरोग तथा शिरोरोग को ऐसे नाश करती है जैसे बिजली वृक्षों को।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा–आधी रत्ती। इससे मिलता जुलता एक श्वासकुठार आगे (२२ श्लोक से) कहा जायगा। विशेषता उसमें यही है कि एक भाग मरिचचूर्ण अधिक है॥ १७—१८॥

श्वासकासचिन्तामणिः—

पारदं माक्षिकं स्वर्णं समांशं परिकल्पयेत् ।
पारदार्द्धं मौक्तिकञ्च सूताद् द्विगुणगन्धकः ॥ १९ ॥
अभ्रञ्चैव तथा योज्यं व्योम्नो द्विगुणलौहकम् ।
कण्टकारीरसेनैव छागीदुग्धेन च पृथक् ॥ २० ॥
यष्टीमधुरसेनैव पर्णपत्ररसेन च ।
भावयेत् सप्तवारञ्च द्विगुञ्जां वटिकां भजेत् ।
पिप्पलीमधुसंयुक्तां श्वासकासविमर्दिनीम् ॥ २१ ॥

शुद्ध पारा, स्वर्णमाक्षिकभस्म, स्वर्णभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लें। मोतीभस्म आधा तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला, अभ्रकभस्म दो तोला, लौहभस्म चार तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर खरल करें और छोटी कटेली के रस से, बकरी के दूध से, मुलहठी के क्वाथ से, पान के रस से पृथक् सात २ बार भावना देकर दो रत्ति भर की गोली बनावें। इसे पिप्पलीचूर्ण और शहद मिलाकर रोगी खावे तो श्वास तथा कास दोनों नष्ट होते हैं।

विशेषवचन—जिस समय दमे का दौरा हो उस समय इसका प्रयोग कराया जाता है। यह शीघ्र ही दौरे को हटा देता है। इससे मिलता जुलता श्वासचिन्तामणि रस है उसमें केवल स्वर्णभस्म की मात्रा इससे आधी है—

'द्विकर्षं लौहचूर्णस्य तदर्धं गन्धमभ्रकम् ।
तदर्धं पारदं ताप्यं पारदार्धेन मौक्तिकम् ॥
शाणमानं हेमचूर्णं सर्वं सम्मर्द्य यत्नतः ।
कण्टकारीरसैश्चापि शृङ्गवेररसैस्तथा ॥
छागीक्षीरेण मधुकैः क्रमेण मतिमान् भिषक् ।
गुञ्जाद्वयमितञ्चास्य बिभीतकसमन्वितम् ॥
भक्षयेत् श्वासकासार्त्तो राजयक्ष्मनिपीड़ितः ॥'

यहां छोटी कटेरी आदि के रसों से भी एक २ बार ही मर्दन करना है। पान के रस के स्थान पर यहां अदरक का रस है। बहेड़े के चूर्ण के साथ इसे

सेवन कराना चाहिये ॥ १६—२१ ॥

अन्यः श्वासकुठारः—

रसं गन्धो विषं टङ्कं शिलोपणकटुत्रयम् ।
सर्वं सम्मर्द्य दातव्यो रसः श्वासकुठारकः ।
वातश्लेष्मसमुद्भूतं श्वासं कासं क्षयं जयेत् ॥ २२ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, शुद्ध सुहागा, शुद्ध मनसिल, मिरच का चूर्ण, सोंठ का चूर्ण, मिरच का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य को समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्यों को मिला जल से घोट कर (आधी रत्ति की) गोली जल से बनालें। इस श्वासकुठार रस को उचित अनुपान से दें तो वातश्लेष्म से उत्पन्न श्वास कास तथा क्षयरोग नाश होते हैं।

विशेषवचन—इस रस को मधु और अदरक के रस के साथ दिया जाता है। यहां मरिचचूर्ण के दो बार कहने से दो भाग लिये जाते हैं।

यदि इस योग में मनःशिला और सुहागे को निकाल कर उनके स्थान पर चव्य और चित्रक के चूर्ण डाल दें और अदरक के रस से घोटकर गोलियां बनालें तो उसका नाम श्वासभैरव है—

'रसं गन्धं विषं व्योषं मरिचं चव्यचित्रकम् ।
आर्द्रकस्य रसेनैव सम्मर्द्य वटिकां ततः ॥
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन खादेत्तोयानुपानतः ।
स्वरभेदं निहन्त्याशु श्वासं कासं सुदुर्जयम् ॥'

मनःशिलायुक्त योग तब दिये जाते हैं जब दुष्ट कफ सुगमता से निकलता हो और श्वास रोध न होता हो, वा जब कफ का बाहिर निकालना अभीष्ट न हो। यदि कफ कठिनता से निकलती हो और उसी से रोगी को बहुत बेचैनी हो तो मनःशिलायुक्त योग न देना चाहिये। तब श्वासभैरव आदि दिये जा सकते हैं। यह रस 'भैरव रस' नाम से प्रकृत ग्रन्थ में स्वरभेदचिकित्सा में कहा है ॥ २२ ॥

---

१ 'स्वरक्षयम् । नाशयेन्नात्र सन्देहो वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥' भै. र. पाठः ।

श्वासकुठारो रसः—

रसं गन्धो विषश्चैव टङ्कणं समनःशिलम् ।
एतानि समभागानि मरिचं तच्चतुर्गुणम् ॥ २३ ॥
त्रिभागं त्र्यूषणं ज्ञेयं खल्ले सर्वं विचूर्णयेत् ।
रसः श्वासकुठारोऽयं द्विगुञ्जः श्वासकासजित् ॥ २४ ॥
गता संज्ञा यदा पुंसां तदा नस्यं प्रदापयेत् ।
घ्रापयेन्नासिकारन्ध्रे संज्ञाजननमुत्तमम् ॥ २५ ॥
प्रतिश्यायं क्षतक्षीणमेकादशविधं क्षयम् ।
हृद्रोगं श्वासशूलञ्च स्वरभेदं सुदारुणम् ।
सन्निपातं तथा घोरं तन्द्रामोहान्वितं जयेत् ॥ २६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लें। दोनों की कज्जली करें। फिर शुद्ध विष, शुद्ध सुहागा, शुद्ध मनसिल; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला, मिरच का चूर्ण चार तोला, सोंठ चूर्ण तीन तोला, मिरच का चूर्ण तीन तोला, पिप्पली का चूर्ण तीन तोला लेकर सब द्रव्यों को एकत्र मिला खरल कर रखें। इस के दो रत्ति मात्रा में देने से श्वास तथा कास-रोग नष्ट होजाता है। जब रोगी संज्ञारहित हो जावे तो इसकी नस्य दे सकते हैं। इसे नाक में सुंघाने से शीघ्र होश आ जाती है। प्रतिश्याय (जुकाम), क्षतक्षीण, ग्यारह लक्षणयुक्त क्षयरोग, हृदय का रोग, श्वास, शूल, भयंकर स्वरभेद तथा तन्द्रा एवं मोहयुक्त घोर सन्निपात को यह दूर करता है।

विशेषवचन—मरिच चूर्ण चार तोला और तीन तोला मिलाकर ७ तोला लिया जायगा। इससे मिलते जुलते एक और श्वासकुठार के योग का पाठ निम्न है—

'रसं विषं समं गन्धं टङ्कणं समनःशिलम् ।
एतानि समभागानि मरिचञ्चाष्ट टङ्कणात् ॥

टङ्कषट्कं द्विकटुकं खल्ले कृत्वा विचूर्णयेत् ।
रसः श्वासकुठारोऽयं विषमश्वासकासजित् ॥
प्रतिश्यायञ्च यक्ष्माणमेकादशविधं क्षयम् ।
हृद्रोगं पार्श्वशूलञ्च स्वरभेदञ्च दारुणम् ॥
सन्निपातं तथा तन्द्रां प्रमोहांश्च विनाशयेत् ॥
गता संज्ञा यदा पुंसां तदा नस्यं प्रदापयेत् ।
घ्रापयेन्नासिकारन्ध्रे संज्ञाकरणमुत्तमम् ॥
सूर्यावर्त्तार्द्धभेदौ च दुःसहाञ्च शिरोव्यथाम् ।
अनुपानं पर्णरससमार्द्रकस्य रसं तथा ॥'

यहां मरिच चूर्ण ८ भाग (८ तोला) है । शेष प्रकृत ग्रन्थ के योग के तुल्य ही है । यदि पिप्पली और सोंठ के पृथक् छह भाग लें—जैसा कि आजकल व्यवहार है तो यह भी भिन्नता है । यहां पर अनुपान में पान का रस वा अदरक का रस बताया है ।

योगरत्नाकर में जो श्वासकुठार है, उसका पाठ निम्न है—

'रसो गन्धो विषश्चैव टङ्कणं च मनःशिला ।
एतानि टङ्कमात्राणि मरिचञ्चाष्टटङ्ककम् ॥
एकैकं मरिचं दत्त्वा खल्वे सूक्ष्मं विमर्दयेत् ।
त्रिकटु टङ्कमात्रं च दत्त्वा पश्चाद्विचूर्णयेत् ॥
सर्वमेकत्र संयोज्य काचकूप्यां विनिक्षिपेत् ।
कासे श्वासे च मन्दाग्नौ वातश्लेष्मामयेषु च ॥
गुञ्जामात्रं प्रदातव्यं पर्णखण्डेन धीमता ।
सन्निपाते च मूर्च्छायामपस्मारे तथा पुनः ॥
अतिमोहत्वमापन्ने नस्यं दत्त्वा विचक्षणः ।
रसः श्वासकुठारोऽयं सर्वश्वासविकारहा ॥'

इस के अनुसार मरिचचूर्ण ९ भाग होता है और पिप्पलीचूर्ण और सोंठ चूर्ण पृथक् एक-एक भाग ।

भावप्रकाश में जो श्वासकुठार है उस में मरिच १० भाग है और पिप्पली एवं सोंठ दो-दो भाग हैं—

'रसो गन्धो विषश्चापि टङ्कणश्च मनःशिला ।
एतानि कर्षमात्राणि मरिचश्चाष्टकर्षकम् ॥
कटुत्रयं कर्षयुग्मं पृथगत्र विनिःक्षिपेत् ।
रसः श्वासकुठारोऽयं सर्वश्वासनिवारणः ॥'

इस प्रकार त्रिकटुचूर्ण के मान के भेद से ही कितने प्रकार का श्वास-कुठार हो गया है ॥ २३—२६ ॥

इति हिक्का-श्वास-चिकित्सा ।

अथ स्वरभेद-चिकित्सा

भैरवो रसः—

रसं गन्धं विषं टङ्कं मरिचं चव्यचित्रकम् ।
आर्द्रकस्वरसेनैव सम्मर्द्य वटिकां ततः ॥ १ ॥
गुञ्जात्रय[1]प्रमाणेन खादेत् तोयानुपानतः ।
स्वरभेदं निहन्त्याशु श्वासं कासं सुदुस्तरम् ॥ २ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, शुद्ध सुहागा, मिरच का चूर्ण, चव्य का चूर्ण और चीते का चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। सब से पहले पारे गन्धक की कज्जली बनायें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर अदरक के स्वरस से मर्दन कर तीन रत्ति प्रमाण की गोली बनावें। इसकी एक गोली को जल से प्रयोग करें। स्वरभेद, भयंकर खांसी और दमा भी शीघ्र नाश होता है।

विशेषवचन—इसकी आधुनिक मात्रा एक रत्तिभर की है। इसका नाम "श्वासभैरव" भी है ॥ १—२ ॥

चव्यादिचूर्णम्—

चव्याम्लवेतसकटुत्रयतिन्तिडीक-

---

१ 'गुञ्जाद्वयप्रमाणेन' पा० ।

तालीशजीरकतुगादहनैः समांशैः ।
चूर्णं गुडप्रमृदितं त्रिसुगन्धियुक्तं
वैस्वर्य्यपीनस—कफारुचिषु प्रशस्तम् ॥ ३ ॥
अनेनैवानुपानेन भस्मसूतं प्रयोजयेत् ।
योगवाहिरसञ्चापि योजयन्ति भिषग्वराः ॥ ४ ॥

चव्य, अम्लवेत, सोंठ, मिरच, पिप्पली, तिन्तिडीक (विषांबिल अथवा इमली), तालीशपत्र, श्वेत जीरा, वंशलोचन, चीता, इलायची, दालचीनी, तेजपात; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग लेकर, सारे द्रव्यों के बराबर पुराना गुड़ मिला (एक माषा भर की) गोली बनालें। इसे मुख में रखकर चूसें तो स्वरभंग, पीनस, कफ तथा अरुचि आदि रोग ठीक होते हैं। इसी के अनुपान से यदि रससिन्दूर (एक रत्ति) का सेवन करें तो शीघ्र लाभ होता है। इसी अनुपान से ही अन्य योगवाही रसों का प्रयोग भी स्वरभंग को ठीक करता है।

विशेषवचन—पर्पटीरस आदि योगवाही रस हैं। उन्हें पिप्पलीचूर्ण आदि के साथ वा इस चूर्ण के साथ मिलाकर स्वरभङ्ग में दिया जाता है। इस रसग्रन्थ में चव्यादि चूर्ण को अनुपान के तौर पर प्रयोग के लिये ही पढ़ा है ॥ ४ ॥

सशर्करं शुण्ठिचूर्णं क्षौद्रेण सह योजितम् ।
कोकिलस्वर एव स्याद् गुडिकाभुक्तमात्रतः ॥ ५ ॥

यदि सोंठ के चूर्ण में खांड मिला शहद के साथ चाटें वा शहद के साथ गुडिका बना मुख में रख चूसें तो उसी समय कोयल के समान स्वर हो जाता है ॥ ५ ॥

इति स्वरभेद-चिकित्सा ।

१ 'बीजक' र. र. पाठः ।

अथ अरोचक-चिकित्सा ।

सुधानिधि रसः

रसगन्धौ समौ शुद्धौ दन्तीक्काथेन भावयेत् ।
जम्बीरस्य रसेनैव आर्द्रकस्य रसेन च ॥ १ ॥
मातुलुङ्गस्य तोयेन तथा मज्जरसेन च ।
पश्चाद्विशोष्य सर्वांशं टङ्कणश्चावचारयेत् ॥ २ ॥
देवपुष्पं बाणमितं रसपादं मृतामृतम् ।
माषमात्रश्च तत्सर्वं नागरेण गुडेन वा ॥ ३ ॥
सर्वारोचकशूलार्त्तिमामवातं सुदारुणम् ।
विसूचीश्चाग्निमान्द्यश्च भक्तद्वेषश्च दारुणम् ।
रसोऽयं वारयत्याशु केशरी करिणं यथा ॥ ४ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक एक २ भाग लेकर कज्जली करे और दन्तीमूल के क्काथ से भावना दे। फिर जम्बीर, अदरक, मातुलुङ्ग अर्थात् बिजौरा तथा बिजौरे की मज्जा के रस से पृथक् भावना देकर सुखा ले। शुद्ध सुहागा दो भाग, लौंग का चूर्ण पांच भाग तथा शुद्ध विष (समभाग टङ्कण के साथ पीसा हुआ) चौथाई भाग ले; इन सबको पूर्वोक्त द्रव्य में मिलायें। इसकी एक माषा भर मात्रा लेकर सोंठ के चूर्ण वा गुड से सेवन करें ("नागरेण की जगह "नागवल्ल्या" पाठ भी है, अर्थात् पान के रस से खावें) तो सब प्रकार की अरुचि, शूल, भयंकर आमवात, विसूची, अग्निमान्द्य, भयंकर भक्तद्वेष अर्थात् भोजन की इच्छा न होना; इन सब विकारों को यह रस ऐसे दूर करता है जैसे सिंह हाथी को।

विशेषवचन—इसकी आधुनिक मात्रा दो रत्ति से चार रत्ति तक है।

यहां गुणनिर्देश में अरोचक और भक्तद्वेष का नष्ट करना बताया है। सामान्यतः अरोचक से भक्तद्वेष का भी ग्रहण होता ही है। परन्तु इन दोनों में थोड़ा सा भेद है—

' प्रक्षिप्तन्तु मुखे चान्नं जन्तोर्न स्वदते मुहुः ।
अरोचकः स विज्ञेयो भक्तद्वेषमथो शृणु ॥
चिन्तयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा श्रुत्वा तु भोजनम् ।
द्वेषमायाति यो जन्तुर्भक्तद्वेषः स उच्यते ॥ '

अर्थात् अरुचि में तो पुरुष मुख में अन्न डाल तो लेता है परन्तु उसे स्वाद नहीं आता और वह खाना नहीं चाहता । भक्तद्वेष में तो भोजन की ओर ख्याल करने से ही वा देख वा सुनकर ही भोजन की इच्छा नहीं होती । इन दो के अतिरिक्त तीसरा अभक्तच्छन्द होता है । जिसमें रोगी को भोजन में प्रबल इच्छा नहीं होती । मिलगया तो खा लिया नहीं तो न सही—

' यस्यान्ने न भवेच्छ्रद्धा सोऽभक्तच्छन्द उच्यते ॥ '

इस रस के पाठ की दूसरी तीसरी और चौथी पङ्क्ति को न पढ़कर भैषज्यरत्नावली में " रसकेशरी " नाम दिया है । अर्थात् कज्जली को जम्बीर आदि के रसों की भावना नहीं है तथा सुहागा भी नहीं डालना ।

अमृतसुन्दर रस नाम से जो योग मिलता है उसमें भी भावनाद्रव्य नहीं हैं । सुहागा २ भाग ही डाला जाता है । तथा ' मृताम्रृतम् ' के स्थान पर ' तथा मदम् ' पाठ है । 'मद' से कस्तूरी का ग्रहण होता है । उसके अनुसार कस्तूरी चौथाई भाग डाली जायगी । हो सकता है वहां लेखक प्रमाद से ' तथामृतम् ' के स्थान पर ' तथा मदम् ' लिखा गया हो ॥ १—४ ॥

सुलोचनाभ्रम्—

पलं सुजीर्णं गगनन्तु वज्रकं तेजोवतीकोलमुशीरदाडिमम् ।
धात्र्यम्लरोलीरुचकं पृथग्दशपलोन्मितं मर्दितमेव सेवितम् ॥५॥
अरोचकं वातकफत्रिदोषजं पित्तोद्भवं गन्धसमुद्भवं नृणाम् ।
कासं स्वराघातमुरोग्रहं रुजं श्वासं बलासञ्च यकृद् भगन्दरम् ॥६॥
प्लीहाग्निमान्द्यं श्वयथुं समीरणं मेहं भृशं कुष्ठमसृग्दरं कृमिम् ।
शूलाम्लपित्तक्षयरोगमुद्धतं सरक्तपित्तं वमिदाहमश्मरीम् ।
निहन्ति चार्शांसि सुलोचनाभ्रकं बलप्रदं वृष्यतमं रसायनम् ॥७॥

वज्राभ्रकभस्म (कम-से-कम १०० पुटी) १ पल, चव्य, बेर की गुठली की गिरी (वा खट्टा बेर), खस, अनारदाना; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ पल ले। इन्हें एकत्र मिला ताज़े आंवले के रस, चाङ्गेरी के रस तथा बिजौरे के रस; प्रत्येक १० पल से क्रमशः खरल करके गोली बनावे। इसके सेवन से वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज तथा अप्रिय गन्ध से होने वाली अरुचि नाश होती है। खांसी, स्वर बैठ जाना, उरोग्रह (छाती में वातिक वेदना), पीड़ा, श्वास, कफ, यकृत् रोग, भगन्दर, तिल्ली, अग्निमान्द्य, सूजन, वातरोग, प्रमेह, कुष्ठ, रक्तप्रदर, कृमि, शूल, अम्लपित्त, बढ़ा हुआ क्षय रोग, रक्तपित्त, वमन, दाह, पथरी, बवासीर; इन सब रोगों का नाश होता है। बलदायक है, वृष्यतम और रसायन है। इसका नाम सुलोचनाभ्र है।

विशेषवचन—इसकी आधुनिक मात्रा दो रत्ति की है। इस रस के द्रव्यों के प्रमाण में टीकाकारों का मतभेद है। कई चव्य आदि प्रत्येक द्रव्य को दस-पल प्रमाण में लेते हैं। परन्तु इस प्रकार अभ्रक की प्रधानता नहीं रहती। 'वज्रकं' से कई हीराभस्म और कई कान्तलौहभस्म लेने को कहते हैं और इन्हें अभ्रक के समप्रमाण ही डालने को बताते हैं। परन्तु यहां 'वज्रक' अभ्रक का विशेषण ही है।

अन्य आमलकी के रस से घोटने को नहीं कहते अपितु आमलकीचूर्ण डालते हैं और आंवला पर्यन्त द्रव्य एक-एक पल ही लेते हैं। कहीं 'धात्र्यम्ल एला' ऐसा पाठ करते हैं और अम्लवेतस छोटी इलायची और सौंचर नमक का चूर्ण डालने को कहते हैं॥ ५—७॥

शुद्धसूतयोगः—

ससूतमरुचिघ्नं स्यात् तिन्तिडीकगुडोषणम्।
मृद्वीका जीरकं कृष्णा मातुलुङ्गाम्लवेतसम्॥ ८॥

रसासिन्दूर, तिन्तिडीक (विषांबिल वा इमली), पुराना गुड़, कालीमिरच का चूर्ण, किशमिश, श्वेत जीरे का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, अम्लवेत; प्रत्येक द्रव्य को समभाग लेकर विजौरे के रस से खरल करके चार रत्ति मात्रा में खाने से अरुचि नष्ट होती है॥ ८॥

इत्यरोचके-चिकित्सा।

अथ छर्दिरोगचिकित्सा।

छर्दिसंहारो रसः

अजाजीधान्यपथ्याभिः सक्षुद्राभिः कटुत्रिकैः।
एभिः सार्द्धं भस्मसूतः सेव्यो वान्तिप्रशान्तये ॥ १ ॥

रससिन्दूर, जीरा, धनियां, हरड़, सोंठ, मिरच, पिप्पली, छोटी कटेली; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग लेकर (चार रत्ति मात्रा में) वमन (कै) की शान्ति के लिये खाना चाहिये।

विशेषवचन—'सक्षुद्राभिः' के स्थान पर तन्त्रान्तरों में 'सक्षौद्राभिः' पाठ है। तब छोटी कटेरी का चूर्ण न डालकर शेष द्रव्यों को मिला शहद के साथ चटाया जाता है। भैषज्यरत्नावली में इस योग का नाम 'रसेन्द्र' दिया है। योगरत्नाकर में यही रस योगरत्नावली से उद्धृत किया गया है और नाम 'जीरकादि रस' है। वहां पर भी छोटी कटेरी का पाठ नहीं, मधु है—

'अजाजीधान्यपथ्याभिः सक्षौद्रैः सकटुत्रिकैः।
एतैः सार्धं सूतभस्म सद्यो वान्तिं विनाशयेत् ॥' १ ॥

इति छर्दिरोग-चिकित्सा।

---

१ अत्र केचित् 'चन्दनादिचूर्णं गुडूचीरसप्रयोगश्च' अधिकौ पठन्ति—
'चन्दनं मधुकं क्षीरं पीतं रुधिरवान्तिजित्।
पिबेद्वान्तिप्रशान्त्यर्थं क्षौद्रैश्छिन्नरुहारसम् ॥'

अर्थात् लालचन्दन और मुलहठी के चूर्ण को दूध के साथ पीने से रक्त की कै शान्त होती है। गिलोय के रस में मधु डाल पीने से वमन शान्त होता है।

परन्तु ये योग प्रकृत ग्रन्थ के नहीं हैं।

अथ तृष्णारोगचिकित्सा ।

महोदधि रसः—

ताम्रचक्रिकया वङ्गं सूतं तालं सतुत्थकम् ।
वटाङ्कुररसैर्भाव्यं तृष्णाहृद् वल्लमात्रतः ॥ १ ॥

ताम्रभस्म, वंगभस्म, रससिन्दूर, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध नीलाथोथा; प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर बड़ के अंकुरों के रस से भावना दे। इसकी डेढ़ रत्ति की मात्रा खाने से तृष्णा रोग दूर होता है।

विशेषवचन—सामान्य नियम के अनुसार वटाङ्कुर के रस की सात भावना देनी होंगी। आधुनिक मात्रा—$\frac{1}{4}$ रत्ती से $\frac{1}{2}$ रत्ती तक। भैषज्यरत्नावली में इस पाठ को बदल कर 'ताम्रञ्च वङ्गकञ्चैव' ऐसा कर दिया है। वस्तुतः रसेन्द्रचिन्तामणि का पाठ ठीक है, वहां—

'ताम्रचक्रिकया बद्धं सूतं तालं सतुत्थकम् ।'

यह पाठ है। अर्थात् शुद्ध तांबे की चक्रिका से बद्ध पारद शुद्ध हड़ताल और शुद्ध नीला थोथा को वटाङ्कुर रस की भावनायें देकर चौथाई रत्ती की मात्रा में रोगी को दें। पारद, हड़ताल, नीलाथोथा (और पारद होने से गन्धक भी); इन की कज्जली करके मूषा में डाल दें और मूषा के मुख पर विशुद्ध तांबे के पत्र की चक्रिका रखकर अच्छीप्रकार मुख बन्द कर दें। पश्चात् पुट दे दें वा वालुकायन्त्र में पाक कर लें। पाक हो जाने पर मूषा में स्थित औषध के साथ ही तांबे की चक्रिका को भी, जो कि भस्म होगई होगी, पीस लें। इसे वटाङ्कुर के रस की सात भावनायें देकर तृष्णा की शान्ति के लिये मात्रा में दें ॥ १ ॥

सक्षौद्रमाम्रजम्बूत्थं पिबेत् क्वाथं पलोन्मितम् ।
सकृष्णमधुना कुर्य्यात् गण्डूषं शीतले स्थितः ॥ २ ॥

आम और जामुन के पत्तों के (वा गुठली की गिरी के) पल भर क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से तृष्णा नष्ट होती है।

अथवा शीतल स्थान में बैठा हुआ तृष्णा का रोगी मधु में पिप्पली चूर्ण डालकर गण्डूषधारण करे। अथवा उक्त क्वाथ में ही मधु और पिप्पलीचूर्ण डालकर गण्डूष करे।

विशेषवचन—अन्यत्र भी कहा है—

'आम्रजम्बूकषायं वा पिबेन्माक्षिकसंयुतम्।
छर्दिं सर्वां प्रणुदति तृष्णाञ्चैवापकर्षति॥'

परन्तु यहां पर यह प्रधान औषध के रूप में बताने के लिये नहीं कहा। यहां अनुपानार्थ है। महोदधिरस का इसे अनुपान समझ सकते हैं। तन्त्रान्तर में तृष्णा की शान्ति के लिये रससिन्दूर को इसी अनुपान से सेवन करने को कहा है। और लोकेश्वर रस नाम दिया है–

'सक्षौद्रमाम्रजम्बूत्थं पिबेत्क्वाथं रसान्वितम्।
सतृष्णो मधुना कुर्याद् गण्डूषं शीतले स्थितः॥'

यहां गण्डूषधारण में पिप्पली चूर्ण डालने का भी पाठ नहीं है। गण्डूष धारण की मात्रा–

'असञ्चार्या तु या मात्रा गण्डूषे सा प्रकीर्तिता॥'

अर्थात् मुख में इतना द्रव भर लेना कि जो मुख में संचरित न होसके–हिलाया जुलाया न जा सके वह गण्डूष की मात्रा जाननी चाहिये॥ २॥

कुमुदेश्वरो रसः—

**मृतताम्रस्य भागौ द्वौ भागैकं वङ्गभस्मकम्।
यष्टीमधुरसैर्भाव्यं शुष्कं माषार्द्धकं शुभम्।
सेवयेच्चानुपानेन वक्ष्यमाणेन बुद्धिमान्॥ ३॥
चन्दनं शारिवां मुस्तं क्षुद्रैलां नागकेशरम्।
सर्वतुल्यां तथा लाजां पचेत् षोडशिकैर्जलैः॥ ४॥
अर्द्धशेषं हरेत् क्वाथं सिताक्षौद्रयुतन्तु तत्।
छर्दिं तृष्णां निहन्त्याशु रसोऽयं कुमुदेश्वरः॥ ५॥**

ताम्रभस्म दो तोला, वंगभस्म एक तोला, दोनों को खरल कर मुलहठी के क्वाथ से भावना देकर सुखा लें। इसे रोगी आधा माषा मात्रा में सेवन करे और आगे कहा अनुपान पीवे तो वमन तथा प्यास शीघ्र ही शान्त होती है। अनुपान के लिये लालचन्दन, शारिवा, (अनन्तमूल), मोथा, छोटी इलायची, नागकेशर; इन सब द्रव्यों का एक २ भाग ले और सब के समान धान की खीलें लेकर, सबसे सोलह गुणा जल डाल कर पकावे। आधा बचने पर उतार ले और निर्मल वस्त्र से छान ले। उसमें मिश्री तथा शहद मिलाकर रोगी पीवे। इस रस का नाम कुमुदेश्वर रस है।

विशेषवचन—कुमुदेश्वर रस की आधुनिक मात्रा-$\frac{१}{४}$ रत्ती से $\frac{१}{२}$ रत्ती तक। सामान्यनियम के अनुसार मुलहठी की भावना सात वार होनी चाहिये। अनुपानार्थ क्वाथ के लिये लालचन्दन आदि द्रव्य मिलाकर १ तोला, लाजा (धान की खील) १ तोला डालकर ३२ तोला जल में काढ़ें। १६ तोले रहने पर उतार लें ॥ ३—४ ॥

इति तृष्णा-चिकित्सा।

अथ मूर्च्छारोग-चिकित्सा।

सुधानिधि रसः—

कणामधुयुतं सूतं मूर्च्छायामनुशीलयेत्।
शीतसेकावगाहादि सर्वं वा शीतलं भजेत्।
सुधानिधिरसो नाम मदमूर्च्छाविनाशनः ॥ १ ॥

रससिन्दूर को पिप्पली का चूर्ण और शहद के साथ मिलाकर सेवन करें तो मूर्च्छारोग दूर होता है। देह पर शीतल जल छिड़कना शीतल जल में घुसकर स्नान आदि सब शीतल क्रियाओं का नित्य सेवन करना चाहिये। यह सुधानिधि रस मद तथा मूर्च्छा को नाश करता है।

विशेषवचन—रससिन्दूर की मात्रा-$\frac{१}{२}$ रत्ती से १ रत्ती तक। इसे त्रिफला जल के साथ भी सेवन कराते हैं यदि पैत्तिक लक्षण हों ॥ १ ॥

इति मूर्च्छा-चिकित्सा।

अथ मदात्यय-चिकित्सा।

मदात्ययभञ्जनो रसः—

सचव्यहिङ्गुरुचकं धन्याकं विश्वदीप्यकम्।
चूर्णं ससूतं मद्येन पीतं पानात्ययं जयेत्॥ १॥

रससिन्दूर, चव्य, हींग, सौंचल लवण, धनियां, सोंठ, अजवायन; प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर मिला मात्रा में मद्य से सेवन करे तो मदात्यय रोग दूर होता है।

विशेषवचन—इस योग की आधुनिक मात्रा–३ रत्ती से ६ रत्ती तक है॥ १॥

अष्टाङ्गलवणम्—

सौवर्चलमजाज्यश्च वृक्षाम्लं साम्लवेतसम्।
त्वगेलामरिचार्द्धांशं शर्कराभागयोजितम्[2]॥ २॥
हितं[3] लवणमष्टाङ्गमग्निसन्दीपनं परम्।
मदात्यये कफप्राये दद्यात् स्रोतोविशोधनम्॥ ३॥

सौंचल लवण, काला जीरा, वृक्षाम्ल अर्थात् विषांबिल, अम्लबेत; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला, दारचीनी, इलायची, मिरच; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण आधा २ तोला, खांड १ तोला; सबको एकत्र मिला लें। यह अष्टाङ्ग लवण परम अग्निदीपक है। इसे कफप्रधान मदात्यय रोग में देना चाहिये। इससे स्रोत विशुद्ध हो जाते हैं।

विशेषवचन— मात्रा–१ मासे से ४ मासे तक।

प्रकृत ग्रन्थ में 'शर्करामधुयोजितम्' यह प्रचलित पाठ है। तब अभिप्राय यह है कि अष्टाङ्गलवण को खांड और मधु के साथ मिला कर रोगी को

१ 'पूरकं हिङ्गु रुचकं सचव्यं' पा०।
२ 'शर्करामधुयोजितम्' प्रचलितः पाठः।
३ 'एतल्लवणमष्टाङ्ग०' पा०। ४ 'कफोत्थे तु' पा०।

चटायें। भैषज्यरत्नावली तथा योगरत्नाकर आदि के अनुसार यहां 'शर्कराभाग योजितम्' यह पाठ कर दिया है ॥ २—३ ॥

इति मदात्यय-चिकित्सा।

अथ दाह-चिकित्सा।

दाहान्तको रसः—

सूतात् पञ्चार्कतश्चैकं कृत्वा पिण्डं सुशोभनम्।
जम्बीरस्वरसैर्मर्द्यं सूततुल्यश्च गन्धकम् ॥ १ ॥
नागवल्लीदलैः पिष्ट्वा ताम्रपत्रीं प्रलेपयेत्।
प्रपुटेद् भूधरे यन्त्रे यावद् भस्मत्वमाप्नुयात् ॥ २ ॥
द्विगुञ्जमार्द्रकद्रावैस्त्र्यूषणेन च योजयेत्।
निहन्ति दाहसन्तापं मूर्च्छां पित्तसमुद्भवाम् ॥ ३ ॥

शुद्ध पारा पांच तोला, शुद्ध गन्धक पांच तोला; दोनों की कज्जली कर जम्बीर के रस से घोटें। फिर पान के रस से घोटकर एक तोला शुद्ध ताम्रपत्र पर कज्जली का लेप करें और भूधर यन्त्र में पुट देते जांय जब तक ताम्र भस्म न हो जाये। इसे दो रत्ति भर लेकर अदरक के रस तथा त्रिकुटा चूर्ण से मिलाकर सेवन करें तो दाह, सन्ताप तथा पित्तजन्य मूर्च्छा दूर होती है।

विशेषवचन—पुट देने में प्रतिवार ५ तोला पारद और ५ तोला गन्धक की कज्जली को दोनों रसों से पीसकर ताम्र के साथ मिलाना है। आधुनिक मात्रा—$\frac{1}{2}$ रत्ती से आधी रत्ती तक है ॥ १-३ ॥

इति दाहचिकित्सा।

अथोन्मादरोगचिकित्सा ।

उन्मादगजाङ्कुशो रसः ।

त्रिदिनं कनकद्रावैर्महाराष्ट्रीद्रवैः पुनः ।
विषमुष्टिजलैः सूतं समुत्थाप्यार्कचक्रिकाम् ॥ १ ॥
कृत्वा तप्तां सगन्धां तां युक्त्या बन्धनमाचरेत् ।
तत्समं कानकं बीजमभ्रकं गन्धकं विषम् ॥ २ ॥
मर्दयेत् त्रिदिनं सर्वं वल्लमात्रं प्रयोजयेत् ।
दोषोन्मादं द्रुतं हन्ति भूतोन्मादं विशेषतः ॥ ३ ॥

उपर्युक्त प्रमाण में पारा लेकर उसे धतूरे के रस से, जलपिप्पली के रस से तथा कुचले के रस से एक २ दिन घोट कर ऊर्ध्वपातन करे। फिर उस पारे के समभाग शुद्ध गन्धक मिलाकर कज्जली करे। और इसको एक शराव वा मूषा में रखकर ऊपर ताम्रचक्रिका रख मुख बन्द कर लघुपुट देवे। पश्चात् ताम्रचक्री (भस्मीभूत) को पीस कर उसके साथ शुद्ध धतूरे के बीज, अभ्रक-भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष समभाग मिला तीन दिन तक (जल से) मर्दन कर डेढ़ रत्ति भर की गोली बनावे। इसके सेवन से वात पित्त कफ से उत्पन्न उन्माद तथा विशेष करके भूतोन्माद नष्ट होता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा-आधी रत्ती से एक रत्ती तक। इस योग को भैषज्यरत्नावली में शोधित पाठ के अनुसार भी बना सकते हैं। वहां 'कृत्वा इत्यादि' श्लोकपंक्ति को इस प्रकार कर दिया है—

---

१ महाराष्ट्री तु संप्रोक्ता शारदी तोयपिप्पली। मत्स्यादनी मत्स्यगन्धा लाङ्गली शकुलादनी। अग्निज्वाला चित्रपर्णी प्राणदा जलपिप्पली। तृणशीता बहु (वह्नि) शिखा स्यादित्येतास्त्रयोदश। महाराष्ट्री कटुस्तिक्ता कषाया मुखशोधनी। व्रणकीटादिदोषघ्नी रसदोषनिबर्हणी। इति राजनिघण्टौ महाराष्ट्र्याः पर्यायाः गुणाश्च।

'विधायोपर्यधो गन्धं दत्त्वा सप्तपुटैः पुटेत् ।'

अर्थात् उक्त प्रकार से ही पारद का ऊर्ध्वपातन करके सूक्ष्म ताम्रचूर्ण के साथ पिष्टी कर लें। इस पिष्टी की टिकियां बना ऊपर नीचे गन्धक डालकर पुट दे दें। इस प्रकार सात पुट दें। पश्चात् पीसकर धतूरे के बीज आदि के चूर्ण मिलावें और जल से घोट कर गोलियां बना लेवें। इस विधि में ताम्र के कच्चा रहने की आशङ्का जाती रहती है।

इस रस का विशेष उपयोग कफसंसृष्ट उन्माद में होता है ॥ १—३ ॥

भूताङ्कुशो रसः—

सूतायस्ताम्रमभ्रञ्च[1] मुक्ता चापि समं समम् ।
सूतपादोत्तमं[2] वज्रं शिलागन्धकतालकम् ॥ ४ ॥
तुत्थं रसाञ्जनं[3] शुद्धमब्धिफेनं[4] शिलाञ्जनम् ।
पञ्चानां लवणानाञ्च प्रतिभागं रसोन्मितम् ॥ ५ ॥
भृङ्गराजचित्रवज्रिदुग्धेनापि[5] विमर्दयेत् ।
दिनान्ते पिण्डिकां[6] कृत्वा रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ॥ ६ ॥
भूताङ्कुशरसो नाम नित्यं[7] गुञ्जाद्वयं लिहेत् ।
आर्द्रकस्य रसेनापि[8] भूतोन्मादनिवारणम् ॥ ७ ॥
पिप्पल्याक्तं पिबेच्चानु दशमूलकषायकम् ।
स्वेदयेत् कटुतुम्ब्या[9] च तीक्ष्णं रूक्षञ्च वर्जयेत् ॥ ८ ॥

---

१ सूतायस्तारताम्रञ्च' पा० ।

२ 'सूतपादं तथा वज्रं तालं गन्धं मनःशिला' पा० ।

३ 'शिलाञ्जनं सीसमब्धिफेनं रसान्वितम्' र. र. पाठः । ४ 'शुद्धमहिफेनं' पा० ।

५ 'चित्रकं मूलकं चैव वज्रीदुग्धेन मर्दयेत्' र. र. पाठः ।

६ 'गोलकं' पा० । ७ 'ततः' पा० ।

८ 'रसेनैव भूतोन्मादसमीराजित्' पा० ।

९ 'कटुतुम्बीनां रसे शीतञ्च गोलयेत्' प्रमादकृतः पाठः ।

माहिषं च घृतं क्षीरं गुर्वन्नमपि भक्षयेत्।
अभ्यङ्गः कटुतैलेन हितो भूताङ्कुशे रसे ॥ ९ ॥

शुद्ध पारा, लौहभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, मोतीभस्म; प्रत्येक द्रव्य चार २ तोला, हीराभस्म एक तोला, शुद्ध मनसिल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध नीलाथोथा, रसौंत, शुद्ध समुद्रफेन, सौवीराञ्जन, (अथवा शुद्ध मनःशिला और अञ्जन), पांचों नमक; प्रत्येक द्रव्य चार २ तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिला के भांगरा के रस, चीता के क्वाथ तथा डण्डा थोहर (सेहुण्ड) के दूध से पृथक् एक २ दिन मर्दन करे। फिर पिण्ड बनाकर सुखा ले और सम्पुट में रख गजपुट में फूंक दे। यह भूतांकुश रस नित्य दो रत्ति लेकर अदरक के रस से खावे। इस से भूतोन्माद नष्ट होता है। अनुपान में दशमूल के क्वाथ में पिप्पली का चूर्ण डालकर रोगी पीवे। कड़वी तुम्बी से शरीर का स्वेदन करें। रोगी तीक्ष्ण तथा रूखी वस्तु न खावे। भैंस का घी, भैंस का दूध, तथा भारी अन्न पथ्य है। इस भूतांकुश रस के सेवन के समय रोगी के देह पर कड़वे तेल की मालिश भी करें ॥ ४—९ ॥

उन्मादभञ्जिनी—

शुद्धं मनःशिलाचूर्णं सैन्धवं कटुरोहिणी।
वचा शिरीषबीजश्च हिङ्गु च श्वेतसर्षपः ॥ १० ॥
करञ्जबीजं त्रिकटु मलं पारावतस्य च।
एतानि समभागानि गोमूत्रैः वटिकां कुरु ॥ ११ ॥
गिरिमल्लीबीजसमां छायाशुष्कांश्च कारयेत्।
प्रातःसन्ध्यानिशाकाले चक्षुषोरञ्जनं हितम् ॥ १२ ॥
मधुरादिरसेनाञ्ज्यं रात्रावपि जलेन च।

१ 'भक्षयेच्च ततः परम्। सघृतं क्वथितं क्षीरं शुष्कशाकं विवर्जयेत्। अभ्यङ्गं कटुतैलेन गुर्वन्नं भोजने हितम्।' र. र. पाठः।

वटिकैका समाख्याता नाम्ना चोन्मादभञ्जिनी ।
चातुर्थकमपस्मारमथोन्मादं विनाशयेत् ॥ १३ ॥

शुद्ध मनसिल, सेंधानमक, कुटकी, बच, सिरस के बीज, हींग, श्वेत सरसों, करंज के बीज, सोंठ, मिरच, पिप्पली, कबूतर की बीट; प्रत्येक द्रव्य समभाग पीसकर गोमूत्र से मर्दन करे और इन्द्रजौ के समान वर्त्तियां बनाकर छाया में सुखा लें। इसे प्रातः रात को सन्ध्या समय आंखों में आंजें। एक वर्त्ति को मधुर आदि रसों से और रात को जल में घिसकर अञ्जन करे। इस वर्त्ति का नाम उन्मादभंजिनी है। यह चातुर्थक ज्वर, अपस्मार तथा उन्मादरोग को नष्ट करती है ॥ १०—१३ ॥

त्रिकत्रयादिलौहम्—

त्रिकत्रयसमायुक्तं जीवनीययुतं त्वयः ।
हन्त्यपस्मारमुन्मादं वातव्याधिं सुदुस्तरम् ॥ १४ ॥

त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला), त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पिप्पली), त्रिमद (विडंग, चीता, मोथा) और जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा काकोली, क्षीरकाकोली मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलहठी); प्रत्येक द्रव्य के चूर्ण को समभाग लें और सब के समान लौहभस्म मिलावें। इस से उन्माद, अपस्मार और भयंकर वातव्याधि दूर होती है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—२ रत्ती ॥ १४ ॥

उन्मादभञ्जनो रसः—

त्रिकटु त्रिफला चैव गजपिप्पलिका तथा ।
देवदारु विडङ्गञ्च किरातः कटुकी तथा ॥ १५ ॥
कण्टकारी च यष्टीन्द्र-यवं चित्रकमेव च ।
बला च पिप्पलीमूलं मूलञ्च वीरणस्य च ॥ १६ ॥
शोभाञ्जनस्य बीजानि त्रिवृता चेन्द्रवारुणी ।
वङ्गं रूप्यमभ्रकञ्च प्रवालं समभागिकम् ॥ १७ ॥

सर्वचूर्णसमं लौहं सलिलेन विमर्दयेत् ।
उन्मादमपि भूतोत्थमुन्मादं वातजं तथा ॥ १८ ॥
अपस्मारं तथा कार्श्यं रक्तपित्तं सुदारुणम् ।
नाशयेदविकल्पेन रसश्चोन्मादभञ्जनः ॥ १९ ॥

सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, गजपीपल, देवदारु, वायविडंग, चिरायता, कुटकी, छोटी कटेली, मुलहठी, इन्द्रजौ, चीता, बलामूल, पिपलामूल, खस, सुहांजने (सहिजन) के बीज, त्रिवी (निसोत), इन्द्रायण, वंगभस्म, चांदीभस्म, अभ्रकभस्म, मूंगाभस्म; इन सब द्रव्यों का चूर्ण समभाग ले, और सब के बराबर लौहभस्म मिलाकर जल से घोट गोली बनाले। यह रस भूतोन्माद, वातज उन्माद, अपस्मार, कृशता तथा घोर रक्तपित्त; इन सबको निश्चय से नाश करता है। इसका नाम उन्मादभञ्जन रस है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा-२ रत्ती ॥ १५—१९ ॥

चतुर्भुजरसः--

मृतसूतस्य भागौ द्वौ भागैकं हेमभस्मकम् ।
शिला कस्तूरिका तालं प्रत्येकं हेमतुल्यकम् ॥ २० ॥
सर्वं खल्लतले क्षिप्त्वा कन्यया[1] मर्दयेद्दिनम् ।
एरण्डपत्रैरावेष्टय धान्यगर्भे[2] दिनत्रयम् ॥ २१ ॥
संस्थाप्य च तदुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत् ।
एतद्रसायनवरं त्रिफलामधुमर्दितम् ॥ २२ ॥
तद् यथाग्निबलं खादेत् वलीपलितनाशनम् ।
अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्दानले क्षये ॥ २३ ॥

१ 'कन्याया मर्दयेद्रसैः' पा० ।
२ 'धान्यराशौ' पा० ।

हस्तकम्पे शिरःकम्पे गात्रकम्पे विशेषतः ।
वातपित्तसमुत्थांश्च कफजान् नाशयेद् ध्रुवम् ॥ २४ ॥
सर्वौषधिप्रयोगैर्ये व्याधयो न प्रसाधिताः ।
कर्मभिः पञ्चभिश्चैव मन्त्रौषधिप्रयोगतः ॥ २५ ॥
सर्वांस्तान् नाशयत्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।
चतुर्भुजरसो नाम महेशेन प्रकाशितः ॥ २६ ॥

रससिन्दूर दो तोला, स्वर्णभस्म एक तोला, शुद्ध मनशिल, कस्तूरी, शुद्ध हड़ताल; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लें। सब को खरल में घोट कर घीकुमार के रस से दिनभर खूब मर्दन करें। फिर गोला बनावें। सूखने पर उसके ऊपर एरण्ड के पत्तों को लपेट कर धान्य के ढेर में तीन दिन रखें। पश्चात् पत्ते खोलकर फेंक दें और अन्दर से औषध निकालकर पीस लें। इसे सब रोगों में प्रयोग करा सकते हैं। त्रिफला और शहद के साथ इसका सेवन रसायन है। अग्निबल के अनुसार मात्रा में खायें तो वली और पलित दूर होता है। अपस्मार, ज्वर, खांसी, शोष, मन्दाग्नि, क्षयरोग, हाथ कांपना, सिर कांपना, तथा सब अंगों का कांपना; इन रोगों में विशेषकर देवे। वात पित्त कफ से उत्पन्न हुए रोगों को यह रस निश्चय से नाश करता है। सब औषध देने से भी जो रोग दूर न हुए हों, जो वमन विरेचन आदि पंचकर्म और मन्त्रौषधि वा दैवव्यापाश्रय चिकित्सा से भी सिद्ध न हुए हों उन्हें यह औषध ऐसे नष्ट करती है जैसे बिजली वृक्ष को। यह चतुर्भुज रस महेश ने प्रकाशित किया है।

विशेषवचन--मात्रा-$\frac{1}{4}$ रत्ती। यद्यपि मूलपाठ में उन्माद रोग का नाशक गुण नहीं कहा तो भी उन्मादधिकार में कहे जाने से इस योग का अपस्मारनाशक गुण के सदृश ही उन्माद-नाशक होना भी समझना ही चाहिये। यह वातप्रधान उन्माद में विशेषतः व्यवहार किया जाता है॥ २०—२६॥

उन्मादपर्पटी रसः—

कृष्णधुस्तूरजैर्बीजैः पञ्चभिः पर्पटीरसः ।

सम्प्रयोज्यः प्रशमयेदुन्मादं भूतसम्भवम् ॥ २७ ॥

काले धतूरे के पांच बीज, रसपर्पटी के साथ मिलाकर खाने से भूतोन्माद रोग दूर होता है।

विशेषवचन—धतूरे के बीजों की मात्रा-आधी रत्ती तक है। रसरत्नसमुच्चय में भी उन्माद के सामान्योपाय में कहा है—

'पर्पटीरसगुञ्जाष्टौ धत्तूराद्बीजपञ्चकम्।
गोघृतेन च संयोज्य खादेदुन्मादशान्तये ॥'

अर्थात् ८ रत्ती पर्पटी रस तथा शुद्ध धतूरे के बीज संख्या में ५; इन्हें एकत्र पीसकर गौ के घी (पुराने) से उन्माद की शान्ति के लिये देना चाहिये। पर्पटी रस से जो टीकाकार पित्तपापड़े का रस लेते हैं उनका भी इससे निराकरण हो जाता है। अपस्मार में भी पर्पटी रस का प्रयोग वहीं कहा गया है—

'पर्पटीरसगुञ्जे द्वे ब्राह्मीरससमन्विते।
खादयेद्रोगिणं वैद्योऽपस्मारानिलशान्तये ॥'

ऐसे स्थानों पर पित्तपापड़े का रस नहीं लिया जा सकता। श्वासप्रकरण में उक्त लोहपर्पटी रस के विशेष वचन में उद्धृत पर्पटीरस के गुणनिर्देश में भी कहा जा चुका है—

'धत्तूरबीजसंयोगान्महोन्मादविनाशनः ॥' २७ ॥

इति उन्मादचिकित्सा।

अथापस्मार-चिकित्सा।

भूतभैरवो रसः—

मृतसूतार्कलौहञ्च[1] शिलागन्धकतालकम्[2]।
रसाञ्जनञ्च[3] तुल्यांशं नरमूत्रेण मर्दयेत् ॥ १ ॥

---

१ 'मृतसूताभ्रलौहञ्च' इति केचित्पठन्ति।
२ 'तालं गन्धं मनःशिला' पा०।
३ 'स्रोतोऽञ्जनं' र. र. पाठः।

तद्गोलद्विगुणं गन्धं लौहपात्रे क्षणं पचेत् ।
पञ्चगुञ्जामितं खादेदपस्मारहरं परम् ॥ २ ॥
हिङ्गु सौवर्चलं [1]व्योपं नरमूत्रेण सर्पिषा ।
कर्षमात्रं पिबेच्चानु रसोऽयं भूतभैरवः ॥ ३ ॥

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, लौहभस्म, शुद्ध मनशिल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हड़ताल, रसौंत; प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर पुरुष के मूत्र में खरल करें और गोला बनालें। फिर इस गोले से दुगुना गन्धक मिलाकर लोहे के पात्र में थोड़ी देर आग पर पकावे। पश्चात् पीसकर पांच रत्ति मात्रा में सेवन करावें। यह अपस्मार रोग को नाश करता है। इसके साथ हींग, सौंचल नमक, त्रिकुटा, पुरुष का मूत्र तथा घी, इन सब को मिलाकर एक कर्ष भर अनुपान में पीवे। इस रस का नाम भूतभैरव रस है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ रत्ती। यदि इसमें नरमूत्र के स्थान पर गोमूत्र कर दें और अनुपान में 'व्योषं' (त्रिकटु) के स्थान पर 'कुष्टं' (कूठ) कर दें तो यही 'चण्डभैरव' नाम से तन्त्रान्तर में मिलता है। 'नरमूत्र' के घृणाजनक होने से भूतभैरव को गोमूत्र से ही प्रस्तुत करते हैं।

रसरत्नाकर और योगरत्नाकर में 'रसाञ्जन' (रसौंत) के स्थान पर स्रोतोऽञ्जन है। योगरत्नाकर का पाठ निम्न है—

'रसः सतालः सशिलः सलोहः स्रोतोऽञ्जनं सार्कमिदं हि गन्धम् ।
पिष्टं नृमूत्रेण समं समन्ताद्देयो द्विभागोऽथ बलिः पचेच्च ॥
लौहे क्षणं हन्ति घृतेन माषोऽपस्मारमप्युन्मदमानसत्वम् ।
पिबेदनु त्र्यूषणहिङ्गुयुक्तं सर्पिर्नृमूत्रं रुचकेन सार्धम् ॥
भूतोन्मादेषु सर्वेषु रसोऽयं भूतभैरवः ।
स्वर्णजैः पञ्चभिर्बीजैर्देयः सर्पिर्विमिश्रितः ॥'

यहां रससिन्दूर के स्थान पर शुद्ध पारद ही है। यहां यह भी बताया है कि इस रस की एक मात्रा में पांच धतूरे के बीज मिलाकर घी के साथ सेवन कराना चाहिये।

---

१ 'त्र्यूषं' पा०।

इस रस को कफप्रधान अपस्मार में दिया जाता है । अनुपान में आजकल हींग १ रत्ती, सौंचरनमक १ रत्ती, त्रिकुटा का प्रत्येक द्रव्य २ रत्ती लेकर गोमूत्र में पीसकर घी मिलाकर देते हैं ॥ १—३ ॥

सूतभस्मप्रयोगः—

शङ्खपुष्पीवचाब्राह्मीकुष्ठकैलारसैः सह ।
सूतभस्मप्रयोगोऽयं रक्तिकाद्वयमानतः ।
सर्वापस्मारनाशाय महादेवेन भाषितः ॥ ४ ॥

शंखपुष्पी (संखाहुली), वच, ब्राह्मी, कूठ, छोटी इलायची; इनको समभाग ले क्वाथ बनावे । इसके साथ रससिन्दूर दो रत्ति खावे तो सब प्रकार के अपस्मार नष्ट होते हैं—ऐसा महादेव जी ने कहा है ।

विशेषवचन—रससिन्दूर को आजकल १ रत्ती मात्रा में ही देते हैं ॥४॥

इन्द्रब्रह्मवटी—

मृतसूताभ्रकं तीक्ष्णं तारं ताप्यं विषं समम् ।
पद्मकेशरसंयुक्तं दिनैकं मर्दयेद् द्रवैः ॥ ५ ॥
स्नुह्यग्निविजयैरण्ड-वचानिष्पावशूरणैः ।
निर्गुण्ड्याश्च द्रवैर्मर्द्यं तद्गोलं पाचयेत् पुनः ॥ ६ ॥
कङ्गुनीसर्षपोत्थेन तैलेन गन्धसंयुतम् ।
ततः पक्त्वा समुद्धृत्य चणमात्रा वटी कृता ॥ ७ ॥
इन्द्रब्रह्मवटी नाम भक्षयेदार्द्रकद्रवैः ।
दशमूलकषायश्च कणायुक्तं पिबेदनु ।
अपस्मारं जयत्याशु यथा सूर्योदयस्तमः ॥ ८ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, रौप्यभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध विष, पद्मकेशर (कमलकेसर); प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर खरल

१ 'कर्णिका' पा०

करे। फिर इसे डण्डा थोहर (सेहुण्ड), चीता, भांग, एरण्ड, बच, सेम, ज़मीकंद, संभालू; इन सब द्रव्यों के रस में क्रमशः एक २ दिन घोटकर गोला बनावें। उस गोले में एक भाग गन्धक मिलावें अब उसे कुछ मालकंगनी के तेल और सरसों के तेल के साथ मर्दन करके लोहे की कड़ाही में डाल मन्द आंच से पकावें। जब गन्धक पिघल कर उस में एक सा मिल जाय और उस की गन्ध आने लगे, नीचे उतार लें और पुनः खरल कर चने के समान गोली बनावें। इस रस का नाम इन्द्रब्रह्मवटी है। इसे अदरक के रस के साथ रोगी खावे। दशमूल के क्वाथ में पिप्पली का चूर्ण डाल कर अनुपान करे तो अपस्मार ऐसे ही शीघ्र नाश होता है, जैसे सूर्योदय से अन्धकार।

विशेषवचन—दोनों तैल इतने ही डालने चाहियें जितने से कुछ देर पकने पर ठीक गोली बन सके। अधुनिक मात्रा—१ रत्ती।

एक ग्रन्थ में 'मृतसूताभ्रकं तीक्ष्णमारं कास्यं मृतं समम्' ऐसा पाठ है। अर्थात् रौप्य, स्वर्णमाक्षिक और विष के स्थान पर पीतल और कांसे की भस्म है। परन्तु अन्यत्र मूलोक्त पाठ ही है ॥ ५—८ ॥

वातकुलान्तकः—

मृगनाभिः शिला नागकेशरं कलिवृक्षजम् ।
पारदः गन्धको जातीफलमेला लवङ्गकम् ॥ ९ ॥
प्रत्येकं कार्षिकश्चैव श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
जलेन मर्दयित्वा तु वटीं कुर्य्यात् द्विरक्तिकाम् ।
यथाव्याध्यनुपानेन योजयेच्च चिकित्सकः ॥ १० ॥
अपस्मारे महाघोरे मूर्च्छारोगे च शस्यते ।
वातजान् सर्वरोगांश्च हन्यादचिरसेवनात् ॥ ११ ॥
नातः परतरं श्रेष्ठमपस्मारेषु वर्त्तते ।
ब्रह्मणा निर्मितः पूर्वं नाम्ना वातकुलान्तकः ॥ १२ ॥

कस्तूरी, शुद्ध मनशिल, नागकेशर, बहेड़ा, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, जायफल, छोटी इलायची, लौंग; प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष ले। पहले पारे गन्धक की कज्जली कर फिर अन्य द्रव्य मिला खरल करे और जल से घोट कर दो रत्ति भर की गोली बनाले। रोगानुसार विविध अनुपानों से इसे खिलावें तो यह महाघोर अपस्मार तथा मूर्च्छारोग में लाभ करती है। सब वात रोगों को कुछ ही दिनों में आराम कर देती है। इससे श्रेष्ठ औषध अपस्मार के लिये कोई नहीं है। इसे ब्रह्मा ने पहले बनाया था। इस का नाम वातकुलान्तक रस है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा-आधी रत्ती। इसे ब्राह्मी रस वा वचा के चूर्ण के साथ प्रयोग कराया जाता है॥ ९—१२॥

इति अपस्मार-चिकित्सा।

अथ वातव्याधि-चिकित्सा

द्विगुणाख्यो रसः—

गन्धकाद् द्विगुणं[1] सूतं शुद्धं मृद्वग्निना चणम्।
पक्त्वाऽवतार्य्य सञ्चूर्ण्य चैतत्[2] तुल्याऽभयाऽन्वितम्॥ १॥
सप्तगुञ्जामितं खादेद् वर्द्धयेच्च दिने दिने।
गुञ्जैकैकक्रमेणैव यावत् स्यादेकविंशतिः॥ २॥
क्षीराज्यशर्कराभिश्च[3] शाल्यन्नं पथ्यमाचरेत्।
कम्पवातप्रशान्त्यर्थं निर्वाते निवसेत् सदा।
द्विगुणाख्यो[4] रसो नाम त्रिपक्षात् कम्पवातजित्॥ ३॥

शुद्ध गन्धक एक तोला, शुद्ध पारा दो तोला; दोनों को घोटकर कज्जली

---

१ 'गन्धकाष्टगुणं सूतं' र. चि., र. र. पाठः।
२ 'चूर्णतुल्याभयान्वितम्' र. चि. पाठः। 'चूर्णतुल्याभयायुतम्' र. र. पाठः।
३ 'शर्करामिश्रं' पा०। ४ 'त्रिगुणाख्यः' र. चि. पाठः।

बना मन्द २ अग्नि से तप्त खल्ल में कुछ देर पकाकर उतार लें। फिर हरड़ का चूर्ण तीन तोला मिलाकर खरल करें और इस चूर्ण से शीशी भर रखें। पहले दिन सात रत्ति खावें, दूसरे दिन आठ रत्ति। इसप्रकार एक-एक रत्ति बढ़ा कर एक दिन में इक्कीस रत्ति तक खावें। खाने को दूध घी खांड के साथ शालि चावल का पथ्य दें। इससे कम्पवात नष्ट होता है। कम्पवात रोग में रोगी को सदा निर्वात स्थान में रहना चाहिये। यह रस तीन पक्षों अर्थात् पैंतालीस दिन में कम्पवात रोग को दूर कर देता है। इस का नाम द्विगुणाख्य रस है।

विशेषवचन—यह तन्त्रान्तर में 'त्रिगुणाख्य रस' नाम से मिलता है। यह नाम इस योग में तीन द्रव्यों के होने के कारण ही है। अन्यत्र पारद एक भाग और गन्धक ८ भाग कही है—रसेन्द्रचिन्तामणि और रसरत्नाकर में—'गन्धकाष्टगुणं सूतं' ऐसा पाठ है। जिसका अर्थ यह होता है 'गन्धक है आठ गुना जिसे से ऐसा पारद'। अर्थात् पारद १ भाग और गन्धक ८ भाग। इसका समर्थन रसरत्नसमुच्चय में कहे 'गन्धाश्मगर्भ रस' के पाठ से हो जायगा—

'गन्धकं चूर्णितं कृत्वा सूक्ष्मवस्त्रेण बद्ध्य च।
भाण्डे गोदुग्धकं दत्त्वा प्रावृतं खर्परेण च॥
अग्निं प्रज्वालयेदूर्ध्वं पश्चाच्छीतं समुद्धरेत्।
गन्धकाष्टकभागेन रसं दत्त्वा ऽथ पाचयेत्॥
मृद्वग्निना शीतमुभावुत्तार्योत्तार्य यत्नतः।
यावद्गन्धकरूपस्य पूर्वस्य ह्यन्यथा भवेत्॥
सप्तगुञ्जं ददीतास्य यावत्स्यादेकविंशतिः।
प्रत्यहं तु हरीतक्या गुञ्जा देयैकविंशतिः॥
सक्षीरं सघृतं चान्नं भोजयीत सशर्करम्।
निर्वाते चावतिष्ठेत कम्पस्पर्शापनुत्तये॥
गन्धाश्मगर्भसंज्ञोऽयं योगिभिः परिकीर्तितः॥'

यह वही योग है जो त्रिगुणाख्य रस नाम से मिलता है। प्रकृत ग्रन्थ में और एक आध अन्य तन्त्र में भी 'द्विगुणाख्य रस' नाम है। पारद

गन्धक की कज्जली को एक मानकर शायद द्विगुणाख्य रस नाम रख दिया हो, वा प्रमादवश लिखा गया हो। उक्त अभिप्राय को न समझकर इसी नाम की सार्थकता करने के लिये सम्भवतः 'गन्धकाद् द्विगुणं सूतं' पाठ कर दिया गया हो।

द्विगुणाख्य रस के पाठ के अनुसार बहुधा वैद्य कज्जली को लोहपात्र में मन्द आंच पर पिघलाकर पूर्व पर्पटी बना लेते हैं। पश्चात् पीसकर हरीतकी-चूर्ण मिलाया जाता है ॥ १—३ ॥

वातगजाङ्कुशः—

सूतं सूतं मृतं लौहं ताप्यं गन्धकतालकम् ।
पथ्या शृङ्गी विषं व्योपमग्निमन्थश्च टङ्कणम् ॥ ४ ॥
तुल्यं खल्ले दिनं मर्द्यं मुण्डीनिर्गुण्डिकाद्रवैः ।
द्विगुञ्जां वटिकां खादेत् सर्ववातप्रशान्तये ॥ ५ ॥
कणाचूर्णयुतश्चैव जिङ्गीक्काथं पिबेदनु ।
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु रसो वातगजाङ्कुशः ॥ ६ ॥
सप्ताहाद् गृध्रसीं हन्ति दारुणं सान्निपातिकम् ।
क्रोष्टुशीर्षकवातश्चाप्यवबाहुकसंज्ञकम् ॥ ७ ॥
ऊरुस्तम्भं हनुस्तम्भं मन्यास्तम्भं विनाशयेत् ।
पक्षाघातादिरोगेषु कथितः परमोत्तमः ॥ ८ ॥

रससिन्दूर, लौहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हड़ताल, हरड़, काकड़ासिंगी; शुद्ध विष, सोंठ, मिरच, पिप्पली, अरणी की छाल, शुद्ध सुहागा; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग लेकर सबको मिला मुण्डी के रस और संभालू के रस से पृथक् एक-एक दिन खरल करके दो रत्तिभर की गोली बनावे। इस के सेवन से सब वातरोग प्रशान्त होते हैं। मंजीठ के क्काथ में पिप्पली का चूर्ण डाल कर अनुपान पीवे। यह वातगजाङ्कुश रस साध्य असाध्य वातरोगों को नष्ट करता है। एक सप्ताह में गृध्रसी को हटाता

१ 'मन्यास्तम्भमुरुस्तम्भं वातरोगं विनाशयेत्' पा०।

है। दारुण सान्निपातिक रोग, क्रोष्टुशीर्षकवात, अवबाहुक, ऊरुस्तम्भ, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ को दूर करता है। पक्षाघात आदि रोगों में परम उत्तम है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा-१ रत्ती से २ रत्ती तक।

यहां पर कई 'श्रृङ्गीविष' से केवल सिंगिया विष लेते हैं। परन्तु 'श्रृङ्गी' (काकड़ासिंगी) को भी पृथक् लेने में कोई हानि नहीं। यह भी उष्ण और वातनाशक होती है। यह योग रसरत्नसमुच्चय में 'वातगजाङ्कुश' नाम से ही है। वहां यही का यही योग स्वच्छन्दभैरव रस नाम से भी है। योगरत्नाकर में भी स्वच्छन्दभैरव है।

'शुद्धं सूतं मृतं लोहं ताप्यगन्धकतालकम्।
पथ्याग्निमन्थनिर्गुण्डीत्र्यूषणं टङ्कणं विषम्॥
तुल्यांशं मर्दयेत्खल्वे दिनं निर्गुण्डिकाद्रवैः।
मुण्डीद्रावैर्दिनैकं तं द्विगुञ्जं वटकीकृतम्॥
भक्षयेत्सर्ववातार्तो नाम्ना स्वच्छन्दभैरवम्॥'

यही रसरत्नाकर में भी है। यहां 'श्रृङ्गी' नहीं कहा, 'विष' ही कहा है। योगरत्नाकर में अनुपान के तौर पर निम्न क्वाथ बताया है—

'रास्नामृतादेवदारुशुण्ठीवातारिजं श्रृतम्।
सगुग्गुलुं पिबेत्कोष्णमनुपानं सुखावहम्॥'

अर्थात् रास्ना, गिलोय, देवदारु, सोंठ, एरण्डमूल; इनके क्वाथ में शुद्ध गुग्गुलु का प्रक्षेप देकर अनुपान पीवे।

इससे मिलता जुलता एक और स्वच्छन्दभैरव रस भी है—

'तीक्ष्णायस्कान्तगोदन्तमाक्षिकैर्मर्दितो रसः।
समांशगन्धकः पक्वो हण्डिकायन्त्रमध्यगः॥
व्योषाग्निमन्थसुरसाकन्दश्रृङ्ग्यभयाविषैः।
समैः समं त्र्यहं मुण्डीनिर्गुण्डीरसपिण्डितः॥
सेवितः शमयेद्वातान्नाम्ना स्वच्छन्दभैरवः।
विशेषाद्वातरक्तं च द्विवल्लं चार्द्रकैर्ददेत्॥'

तीक्ष्णलोहभस्म, कान्तलोहभस्म, शुद्ध हड़ताल, स्वर्णमाक्षिकभस्म, पारद, गन्धक; इन्हें समपरिमाण में लेकर हण्डिका में मन्द आंच से कुछ

देर पकावें। जब गन्धक अच्छी प्रकार मिल जाय—जले नहीं, नीचे उतार लें। औषध को खरल में डाल पीसलें और त्रिकटु, अरणी छाल, सम्भालू की जड़, काकड़ासिंगी, हरड़ और शुद्ध विष; प्रत्येक का चूर्ण १ भाग मिला लें इसे मुण्डी-क्वाथ और सम्भालू के रस से पृथक् तीन-तीन दिन मर्दन करें। यह स्वच्छन्दभैरव रस वातरोगों को नष्ट करता है, विशेषतः वातरक्त को। अनुपान—अदरक का रस। यहां काकड़ासिंगी पृथक् पढ़ी गई है ॥४-८॥

रसोऽम्बुशोषणो ह्यत्र युक्तो ऽन्यो योगवाहिकः ॥ ९ ॥

इन पक्षाघात आदि वातव्याधियों में योगवाही वारिशोषण आदि अन्य रस भी देनें चाहिये।

विशेषवचन—वारिशोषण रस उदरचिकित्सा में कहा जायगा ॥ ९ ॥

बृहद्वातगजाङ्कुशः—

सूताभ्रतीक्ष्णकान्तानि ताम्रतालकगन्धकम्।
स्वर्णं शुण्ठी बला धान्यं कट्फलञ्चाभया विषम्।
पथ्या शृङ्गी पिप्पली च मरिचं टङ्कणं तथा ॥ १० ॥
तुल्यं खल्ले दिनं मर्द्यं मुण्डीनिर्गुण्डिजैर्द्रवैः।
द्विगुञ्जां वटिकां खादेत् सर्ववातप्रशान्तये।
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु बृहद्वातगजाङ्कुशः ॥ ११ ॥

शुद्ध पारा, अभ्रकभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, कान्तलौहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध गन्धक, स्वर्णभस्म, सोंठ, बलामूल, धनियां, कायफल, हरड़, शुद्ध विष, हरड़, काकड़ासिगी, पिप्पली, मिरच, शुद्ध सुहागा; इन सब द्रव्यों का चूर्ण समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिला कर मुण्डी और निर्गुण्डी के रस से क्रमशः एक२ दिन घोटकर दो रत्तिभर की गोली बनावें। इससे सब प्रकार के वातरोग शान्त होते हैं। यह साध्य वा असाध्य भी वातरोगों को नष्ट करता है। इस का नाम बृहद्वातगजाङ्कुश रस है।

विशेषवचन—हरड़ के दो वार पढ़े जाने से २ भाग लिये जायंगे १०-११

महावातगजाङ्कुशः—

मृताभ्रतीक्ष्णताम्रञ्च सूततालकगन्धकम्[1] ।
भार्गी शुण्ठी बला धान्यं कट्फलञ्चाभया विषम् ॥ १२ ॥
संपिष्य चपलाद्रावैः निष्कैकां भक्षयेद्वटीम् ।
वातश्लेष्महरो[2] ह्येष महावातगजाङ्कुशः[3] ॥ १३ ॥

अभ्रकभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध गन्धक, भार्गी, सोंठ, बलामूल, धनियां, कायफल, हरड़, शुद्ध विष; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर खरल करें। पिप्पली के क्वाथ से निष्कभर की गोली बनावें। इस के सेवन से वातरोग तथा श्लेष्मरोग नाश होते हैं। इसका नाम महावातगजाङ्कुश है।

विशेषवचन—इसकी मात्रा एक रत्ति की दे। सबल पुरुष को २ रत्ती भी दे सकते हैं ॥ १२—१३ ॥

वातनाशनो रसः—

सूतहाटकवज्राणि ताम्रं लौहञ्च माक्षिकम् ।
तालं नीलाञ्जनं तुत्थं सिन्धुफेनं समांशिकम् ॥ १४ ॥
पञ्चानां लवणानाञ्च भागैकं सुविमर्दयेत् ।
वज्रीक्षीरैर्दिनैकन्तु रुद्ध्वा तं भूधरे पचेत् ॥ १५ ॥
माषैकमार्द्रकद्रावैः लिह्याद् वातविनाशनम् ।
पिप्पलीमूलकक्वाथं सकृष्णमनुपाययेत् ।
सर्वान् वातविकारांश्च निहन्त्याक्षेपकादिकान् ॥ १६ ॥

---

१ 'मर्द्यञ्च' र. र. पाठः ।

२ 'वातश्लेष्महरा ह्येषा गुरु०' र. र. पाठः ।

३ 'गुरुवातगजाङ्कुशः' भै. र. पाठः ।

रससिन्दूर, स्वर्णभस्म, हीराभस्म, ताम्रभस्म, लौहभस्म, स्वर्णमाक्षिक-भस्म, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध नीला सुरमा (सौवीराञ्जन), शुद्ध नीलाथोथा, शुद्ध समुद्रफेन; प्रत्येक द्रव्य पांच २ तोले लें। पांचों नमक मिलित पांच तोला लें। सबको मिलाकर एक दिन डण्डा थोहर (सेहुण्ड) के दूध में घोटें। फिर मूषा में बन्द करके भूधरयन्त्र में पुट दें। इसे एक उड़द भर लेकर अदरक के रस से खावें तो वात नष्ट होता है। अनुपान में पिप्पलामूल के क्वाथ में पिप्पली का चूर्ण मिलाकर पीवें। यह सब प्रकार के आक्षेपक आदि वातविकारों को नाश करता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—$\frac{1}{3}$ रत्ती। रसप्रकाशसुधाकर में जो 'वातनाशन रस' है उसमें पांच नमक नहीं हैं। वहां इसके स्थान पर लहसन डालने को कहा है—

'सूतं स्वर्णं ताम्रकं वज्रमेव
लोहं ताप्यं तालकं तुत्थमेव।
अब्धेः फेनं शुद्धसौवीरकं हि
कृत्वा सम्यक् सर्वमेवं समांशम्॥
भागं चैकं कारयेद्वै रसोनं
वज्रीक्षीरैर्मर्दितं तद्दिनैकम्।
रुद्ध्वा सम्यग्भूधरे तं विपाच्य
माषं चैकं भक्षयेदार्द्रकेण॥
लिह्यादेवं पिप्पलीमाक्षिकेण
कृष्णामूलक्वाथ अत्रानुपेयः।
सर्वान् वातान् वातजान् वै विकारान्
हन्यात्सत्यं भाषितं भैरवेण॥'

रसरत्नसमुच्चय तथा रसरत्नाकर में यह 'वडवानल रस' नाम से है—

'सूतहाटकवज्रार्ककान्तभस्म समाक्षिकम्।
तालं नीलाञ्जनं तुत्थम[1]ब्धिफेनं समांशिकम्॥

1 'तुत्थमहिफेनं' पा०।

पञ्चानां लवणानां च भागैकैकं विमर्दयेत् ।
वज्रीक्षीरैर्दिनैकं तु रुद्ध्वा तं भूधरे पुटेत् ॥
माषैकं चार्द्रकद्रावैर्लेहयेद्वडवानलम् ।
पिप्पलीमूलजं क्वाथं सपिप्पल्यनु[1] पाययेत् ॥
धनुर्वातं दण्डवातं शृङ्खलाकम्पवातनुत्[2] ॥'

प्रकृत ग्रन्थ के मूलपाठ के अनुसार तो पांचों नमकों का मिलाकर एक भाग है। परन्तु इस पाठ के अनुसार पांचों नमकों में से प्रत्येक का एक भाग होना चाहिये। तब मात्रा २ रत्ती तक दी जा सकेगी ॥ १४-१६ ॥

वातारि रसः-

रसभागो भवेदेको द्विगुणो गन्धको मतः ।
त्रिगुणा त्रिफला ग्राह्या चतुर्भागन्तु चित्रकम् ॥१७॥
गुग्गुलोः पञ्चभागश्चैरण्डतैलेन मर्दयेत् ।
क्षिप्त्वाऽत्र पूर्वकं चूर्णं पुनस्तेनैव मर्दयेत् ॥ १८ ॥
गुडिकां कर्षमात्रान्तु भक्षयेत् प्रातरुत्थितः ।
नागरैरण्डमूलानां क्वाथं तदनु पाययेत् ॥ १९ ॥
अभ्यज्यैरण्डतैलेन[3] स्वेदयेत् पृष्ठदेशकम् ।
विरेके तेन सञ्जाते स्निग्धमुष्णञ्च भोजयेत् ।
वातारिसंज्ञको ह्येष रसो निर्वातसेवितः[4] ॥ २० ॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक दो भाग, हरड़ बहेड़ा, आंवला; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण तीन भाग, चीता का चूर्ण चार भाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें और अन्य सब द्रव्यों का चूर्ण उस में मिला घोट लें। फिर

---

१ 'पिप्पल्या सह पाययेत्' र. र. पाठः ।
२ 'शृङ्खलावातकं जयेत्' र. र. पाठः ।
३ 'अङ्गमेरण्डतैलेन स्वेदयेत् पृष्ठदेशतः' पा० ।
४ अस्यानन्तरं 'मासेन सुखयत्येव ब्रह्मचर्यपुरःसरम्' इत्यधिकोऽन्यत्र ।

शुद्ध गुग्गुल पांच भाग लेकर उसे एरण्ड के तेल से खूब कूटे। फिर उसमें शेष द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर मर्दन करे। इसकी एक कर्षभर की गोली बनाकर प्रातःकाल रोगी खावे। ऊपर से सोंठ और एरण्ड की जड़ का क्वाथ पीवे। रोगी की पीठ पर एरण्ड के तेल को चुपड़ स्वेदन करें। जब विरेचन हो जाये तो वह स्निग्ध और गरम भोजन करे। यह वातारि नामक रस है। इस के प्रयोग के समय रोगी वातरहित स्थान में रहे।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा–१ मासा। इसे वातव्याधि के अतिरिक्त अमवात में और आन्त्रवृद्धि रोग में भी प्रयोग कराया जाता है। आमवात में एरण्डतैल और गरम जल के साथ, अन्त्रवृद्धि में एरण्डतैल और गौ के दूध के साथ इसे देने का विधान है।

'रसो वातारिनामा यः सोऽत्र देयः पिबेदनु।
एरण्डतैलकर्षैकं गवां क्षीरं पलद्वयम्॥
अण्डवृद्धिहरं ख्यातं मासमात्रान्न संशयः॥'

तथा– 'एरण्डतैलसंयुक्तं वातारिरसमेव च।
आमवातप्रशान्त्यर्थं ददीतोष्णेन वारिणा॥' रसरत्नसमुच्चय॥

कई वैद्य वातारिरस के योग-पाठ में मान की प्रधानता स्वीकार करते हुए त्रिफलाचूर्ण मिलित तीन भाग लेते हैं और यह ठीक भी है॥१७—२०॥

अनिलारिरसः—

रसेन गन्धं द्विगुणं विमर्द्य वातारिनिर्गुण्डिरसैर्दिनैकम्।
निवेशयेत् ताम्रमये पुटे तत्सर्वं मृदावेष्ट्य च वालुकाख्ये॥२१॥
यन्त्रे पुटेद् गोमयचूर्णवह्नौ स्वभावशीते तु समुद्धरेत् तत्।
निर्गुण्डिकावातहराग्नितोयैः सञ्चूर्ण्य यत्नेन विभावयेत् तत्॥२२॥
रसोऽनिलारिः कथितोऽस्य वल्लमेरण्डतैलेन ससैन्धवेन।
मरीचचूर्णेन ससर्पिषा वा निर्गुण्डिचित्रैश्च कटुत्रिकैर्वा॥२३॥

१ 'निवेशयेत्सूतसमे च ताम्रपुटे' पा०। २ 'सगन्धकेन' पा०।

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक दो भाग; दोनों की कज्जली कर एरण्ड की जड़ के क्वाथ और निर्गुण्डी के रस से एक २ दिन घोटे। फिर एक भाग तांबे के पत्र से बने सम्पुट में बन्द करके (उसे भी एक मृत्पात्र में डाल बन्द करलें और) कपड़मिट्टी करके बालुकायन्त्र में गोबर के चूर्ण की आग में पुट देवे। स्वांगशीतल होने पर उसे निकाले और ताम्रसम्पुट को चूर्णकर सम्भालू के रस, एरण्ड की जड़ के क्वाथ और चीते के क्वाथ से यत्नपूर्वक भावित (सात-सात वार) करे। इसे अनिलारि रस कहते हैं। इसकी डेढ़ रत्ति की मात्रा एरण्डतैल और सेंधानमक से अथवा मिरचों के चूर्ण और घी से, अथवा सम्भालू और चीते के क्वाथ से अथवा त्रिकुटा चूर्ण से खावे तो वात-रोग शान्त होता[1] है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा– $\frac{3}{2}$ रत्ती ॥२१-२३॥

वातकण्टको रसः—

वज्रमृ[2]ताभ्रहेमार्क–तीक्ष्णमुण्डं क्रमोत्तरम्।
म[3]रिचं मर्दयेदम्ल–वर्गेण दिवसत्रयम् ॥ २४ ॥
द्वि[4]क्षारं पञ्चलवणं म[5]र्दितं स्यात् समं समम्।
त[6]तो निर्गुण्डिकाद्रावैः मर्दयेद् दिवसत्रयम् ॥ २५ ॥

---

१ रसरत्नसमुच्चय में अनिलारिरस नाम से योग का पाठ हमें नहीं मिला परन्तु वहीं आमवात में उसके प्रयोग का विधान है—

'आमानिलस्यास्य रसोऽनिलारिश्चैरण्डतैलेन सकौशिकेन।
कटुत्रयेणापि सगन्धकेन वल्लैकमानं परिषेवयेत् ॥'

अर्थात् अनिलारिरस को एरण्डतैल और गुग्गुलु के साथ वा त्रिकटुचूर्ण और गन्धक के साथ आमवात में सेवन कराना चाहिये।

२ 'वज्रसुताभ्र०' र. चि. पाठः।

३ 'मारितं' र. चि. पाठः। ४ 'त्रिक्षारं' र. चि. पाठः।

५ 'मर्दितस्य समं मतम्' र. चि. पाठः। ६ 'दत्त्वा' पा०।

शुष्कमेतद्विचूर्ण्याथ विषञ्चास्याष्टमांशतः ।
टङ्कणं विषतुल्यांशं दत्त्वा जम्बीरजद्रवैः ॥ २६ ॥
भावयेद् दिनमेकन्तु रसोऽयं वातकण्टकः[1] ।
दातव्यो वातरोगेषु सन्निपाते विशेषतः ॥ २७ ॥
द्विगुञ्जमार्द्रकद्रावैः घृतैर्वा वातरोगिणे[2] ।
निर्गुण्डीमूलचूर्णन्तु महिषाक्षञ्च गुग्गुलुम् ॥ २८ ॥
समांशं मर्दयेदाज्ये तद्वटी कर्षसम्मिता ।
अनुयोज्या घृतैर्नित्यं स्निग्धमुष्णञ्च भोजयेत्[3] ॥ २९ ॥
[4]मण्डलं नाशयेत् सर्वं वातरोगं विशेषतः ।
सन्निपाते पिबेच्चानु रविमूल[5]कषायकम् ॥ ३० ॥

हीरा भस्म एक तोला, अभ्रकभस्म दो तोला, स्वर्णभस्म तीन तोला, ताम्रभस्म चार तोला, तीक्ष्णलौहभस्म पांच तोला, मुण्डलौहभस्म छह तोला, मरिचचूर्ण सात तोला; सब एकत्र लेकर पीसे और अम्लवर्ग से तीन दिन भावना देवे। फिर यवक्षार, सज्जी, पांचों नमक; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लेकर मिलावें और निर्गुण्डी के रस से तीन दिन घोटे। सूखने पर शुद्ध विष सारे का अष्टमांश, तथा शुद्ध सुहागा भी विष के समान ही डाले। फिर जम्बीरी के रससे एक दिन भावना दे। इसका नाम वातकण्टक-रस है। वातरोगों में तथा विशेषतः सन्निपातों में देवे। इसकी दो रत्ति की मात्रा अदरक के रससे या घी से वातरोगी को दें। निर्गुण्डी की जड़ का चूर्ण और शुद्ध भैंसा गुग्गुलु दोनों को समभाग लेकर मिला घी से मर्दन कर एक कर्ष की गोली बनाकर नित्य ही इस रस के पीछे घी से खावे तथा स्निग्ध और उष्ण भोजन करे। इसके सेवन से मण्डल तथा सब प्रकार

१ 'कालकण्टकः' र. चि. पाठः । २ 'वातरोगिणाम्' पा० ।
३ 'भोजनम्' पा० । ४ मण्डलान्नाशयेत् सर्वान् वातरोगान्न संशयः' पा० ।
५ 'तालमूलीकषायकम्' प्रचलितः पाठः ।

के वातरोग विशेषतः दूर होते हैं। इसे सन्निपात में आक (मदार) की जड़ के क्वाथ से पीवे।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा–१ रत्ती। मूल के पाठ के अनुसार शुद्ध विष का भाग पांचों नमक पर्यन्त द्रव्यों के मान से $\frac{1}{2}$ (अर्थात् प्रचलित मान के अनुसार ४तोला ४मासे ४ रत्ती)लेना चाहिये। शुद्ध सुहागा भी इतना ही डालना चाहिये। परन्तु प्रचलित टीकाओं में दोनों द्रव्यों को एक भाग का आठवां भाग लेने को कहा है। जो हमारी समझ में ठीक नहीं।

रसेन्द्रचिन्तामणि में यह कालकण्टक नाम से है। उसके पाठ के अनुसार यह योग इस प्रकार होता है।

हीराभस्म १ तोला, रससिन्दूर २ तोला, अभ्रकभस्म ३ तोला, स्वर्णभस्म ४ तोला, ताम्रभस्म ५ तोला, तीक्ष्णलौहभस्म ६ तोला, मुण्डलौहभस्म ७ तोला; इन्हें एकत्र अम्लवर्ग से ३ दिन भावना दे। फिर यवक्षार, सज्जीक्षार, शुद्ध सुहागा तथा पांचों नमक मिलाकर २८ भाग डाले और सम्भालू के रस से ३ दिन मर्दन करे। शुष्क होने पर सारे का अष्टमांश अर्थात् ७ तोले शुद्ध विष और ७ तोले ही शुद्ध सुहागा और डालकर जम्बीर के रस की एक दिन भावना दे।

अनुपान की आधुनिक मात्रा–४ रत्ती से ८ रत्ती तक जाननी चाहिये। अनुपान को तय्यार करने में पूर्व गूगल को घी से कुटवाना चाहिये। पश्चात् सम्भालू की जड़ का चूर्ण डालकर खूब कूटें। मण्डल से यहां स्पर्शवात नामक रोग का ग्रहण है। स्पर्शवात रोग में देह पर मण्डल (चकते) दिखाई देते हैं। स्पर्शवात का लक्षण रसरत्नसमुच्चय में इस प्रकार है—

'अङ्गेषु तोदनं प्रायो दाहः स्पर्शं न विन्दति।
मण्डलानि च दृश्यन्ते स्पर्शवातस्य लक्षणम्॥'

अर्थात् स्पर्शवात नामक रोग में अङ्गों में तोद (पीड़ा) और दाह होता है, स्पर्शज्ञान नहीं होता और मण्डल (चकते) दिखाई देते हैं।

'मण्डलान्नाशयेत्' पाठ होने पर ४८ दिन में वातरोगों को हटाता है। यह अर्थ भी हो सकता है॥ २४—३०॥

लघ्वानन्दो रसः—

पारदः गन्धको लौहमभ्रकं विषमेव च।
समांशं मरिचस्याष्टौ टङ्कणन्तु चतुर्गुणम् ॥ ३१ ॥
भृङ्गराजरसेनैव दातव्याः सप्तभावनाः।
तथा दाडिमतोयेन वटीं कुर्य्यात् समाहितः।
निहन्ति वातजान् रोगान् भ्रमदाहपुरःसरान् ॥ ३२ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध विष; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला ले। पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिलावे और मिरच का चूर्ण आठ तोला और शुद्ध सुहागा चार तोला डालकर घोट ले। फिर भांगरे के रस तथा अनार के रससे सात-सात भावनायें दे और गोली बनाये। इस सेवन से भ्रम (सिर में चक्कर आने) तथा दाह से युक्त वातरोग दूर होते हैं।

विशेषवचन—यह रस पूर्व पाण्डुकामला-चिकित्सा में आचुका है। वहां अनार के स्थान पर अम्लवेत की भावनायें हैं। मात्रा—२ रत्ती ॥ ३१—३२ ॥

चिन्तामणि रसः—

कर्षैकं रससिन्दूरं तत्समं मृतमभ्रकम्।
तदर्द्धं मृतलौहञ्च स्वर्णं शाणं क्षिपेद् बुधः ॥ ३३ ॥
कन्यारसेन सम्मर्द्य गुञ्जामानां वटीं चरेत्।
अनुपानादिकं दद्याद् बुद्ध्वा दोषबलाऽबलम् ॥ ३४ ॥
हन्ति श्लेष्मान्वितं वातं केवलं पित्तसंयुतम्।
हृल्लासमरुचिं दाहं वान्तिं भ्रान्तिं शिरोग्रहम् ॥ ३५ ॥
प्रमेहं कर्णनादञ्च ज्वरगद्गदमूकताम्।
बाधिर्य्यं गर्भिणीरोगमश्मरीं सूतिकाऽऽमयम् ॥ ३६ ॥
प्रदरं सोमरोगञ्च यक्ष्माणं ज्वरमेव च।

बलवर्णाग्निदः सम्यक् कान्तिपुष्टिप्रसाधकः ।
चिन्तामणिरसश्चायं चिन्तामणिरिवापरः॥ ३७ ॥

रससिन्दूर एक कर्ष, अभ्रकभस्म एक कर्ष, लौहभस्म आधा कर्ष, स्वर्ण-भस्म एक शाण (चौथाई कर्ष); सब द्रव्यों को पीसकर घीकुमार के रससे खरल कर एक रत्ति प्रमाण की गोली बनावे । दोषों के बलाबल को देख कर इसे उचित अनुपान से दें । इससे श्लेष्मयुक्त वातरोग, केवल वातरोग, तथा पित्तयुक्त वातरोग नाश होते हैं । यह हृल्लास (जी का मिचलाना), अरुचि, दाह, वमन, भ्रम, शिरोग्रह (सिरका जकड़ा जाना), प्रमेह, कर्णनाद, ज्वर, गद्गदवाणी, गूँगापन, बहरापन, गर्भिणी रोग, अश्मरी (पथरी), सूतिकारोग, प्रदर, सोमरोग, राजयक्ष्मा, ज्वर आदि सब रोगों को दूर करता है । बल, वर्ण और अग्नि का वर्धक है । सौन्दर्य और पुष्टि देने वाला है । यह चिन्तामणि रस मानो दूसरा चिन्तामणि (ब्रह्मा) ही है ।

विशेषवचन—यह रस बहुत प्रसिद्ध है और वातरोगों में शीघ्र लाभ करता है । जब मस्तिष्क सम्बन्धी वात रोग हों, हृदय धड़कता हो, आध्मान और अजीर्ण हो तब यह अत्यन्त लाभकर है ।

चिन्तामणि के प्रसिद्ध दो अर्थ हैं–१ ब्रह्मा, २ स्पर्शमणि—जिसके छूने से लोहा सोना हो जाता है ॥ ३३—३७ ॥

चतुर्मुखो रसः—

रसगन्धकलौहाभ्रं समं सूताङ्घ्रि हेम च ।
सर्वं खल्लतले क्षिप्त्वा कन्यास्वरसमर्दितम् ॥ ३८ ॥
एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ दिनत्रयम् ।
संस्थाप्य च तदुद्धृत्य त्रिफलारससंयुतम् ॥ ३९ ॥
एतद्रसायनवरं सर्वरोगेषु योजयेत् ।
तद्यथाग्निबलं खादेद् वलीपलितनाशनम् ॥ ४० ॥

---

१ 'सर्वरोगेषु योजयेत् । एतद्रसायनवरं त्रिफलामधुयोजितम् । तद्यथा' पा० ।

पौष्टिकं बल्यमायुष्यं पुत्रप्रसवकारकम् ।
क्षयमेकादशविधं कासं पञ्चविधं तथा ॥ ४१ ॥
कुष्ठमेकादशविधं पाण्डुरोगान् प्रमेहकान् ।
शूलं श्वासञ्च हिकाञ्च मन्दाग्निञ्चाम्लपित्तकम् ॥ ४२ ॥
(व्रणान् सर्वान् आढ्यवातं विसर्पं विद्रधिं तथा ।)
अपस्मारं महोन्मादं सर्वार्शांसि त्वगामयान् ।
क्रमेण शीलितं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ४३ ॥
जगताञ्च हितार्थाय चतुर्मुखमुखोदितः ।
रसश्चतुर्मुखो नाम चतुर्मुख इवापरः ॥ ४४ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लें, सोने की भस्म तीन माषा (प्रचलित मान के अनुसार अर्थात् २४ रत्ती) लें। पहले कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर घीकुमार के रस से घोटकर गोला बनावें। इस गोले पर एरण्ड के पत्ते लपेट कर धान्यों के ढेर में रख दें। तीन दिन के बाद इसे निकालें। पत्ते उतार अन्दर की औषधि को पीसकर जल से एक रत्ति भर की गोली बनायें। इसे त्रिफला के रस से रोगी को सेवन करावें। यह रसायन है। इसे सब रोगों में दे सकते हैं। अग्नि बल देखकर मात्रा में खाने से वली और पलित दूर होता है। यह रस पौष्टिक, बलदायक, आयुवर्धक है और पुत्र देता है। ग्यारह लक्षण युक्त क्षयरोग, पांचों प्रकार की खांसी, ग्यारह प्रकार का कुष्ठरोग, पाण्डु, प्रमेह, शूल, श्वास रोग, हिचकी, मन्दाग्नि, अम्लपित्त, अपस्मार, महोन्माद, सब प्रकार की बवासीर, त्वचा के रोग, ("सब प्रकार के व्रण, आढ्यवात, विसर्प, विद्रधि।" भी अन्य पुस्तक में

---

१ 'पाण्डुरोगं प्रमेहकम्। श्वासं शूलञ्च मन्दाग्निं हिकाञ्चैवाम्लपित्तकम्' पा०।

२ 'तन्त्रान्तरे अस्यानन्तरं पौष्टिकमित्याद्युक्तम्। 'पौष्टिकं धन्यमायुष्यं स्त्रीणां प्रसवकारणम्।' इति पाठेन। अस्मादनन्तरं च 'चतुर्मुखेन देवेन कृष्णात्रेयस्य सूचितम्।' इति पाठेन योगसमाप्तिः।

पाठ है) इन में विधिपूर्वक सेवन से उन्हें ऐसे नाश करता है जैसे बिजली वृक्ष को। जगत के हित के लिये भगवान चतुर्मुख (ब्रह्मा जी) ने (कृष्णात्रेय को) यह योग बताया था। इसका नाम चतुर्मुख रस है। यह साक्षात् दूसरा चतुर्मुख (ब्रह्मा) ही है।

विशेषवचन—यह भी चिन्तामणिरस के सदृश ही गुणकारक है। इसमें भेद इतना ही है कि यहां रससिन्दूर १ भाग के स्थान पर पारा (१ भाग), गन्धक (१ भाग) की कज्जली २ भाग है। इसे कृष्ण चतुर्मुख भी कहते हैं। इस में कज्जली, लोहभस्म, अभ्रकभस्म तथा स्वर्णभस्म; ये चार होने से चतुर्मुख नाम रखा गया है ॥ ३८—४४ ॥

लक्ष्मीविलासो रसः—

पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदर्द्धौ रसगन्धकौ।
बलानागबलाभीरु-विदारीकन्दमेव च ॥ ४५ ॥
कृष्णधुस्तूरनिचुलं गोक्षुरवृद्धदारयोः।
बीजं शक्राशनस्यापि जातीकोषफले तथा ॥ ४६ ॥
कर्पूरश्चैव कर्षांशं श्लक्ष्णचूर्णं पृथक् पृथक्।
गृहीत्वा चाष्टमांशेन स्वर्णं पर्णरसेन च ॥ ४७ ॥
वटिकां स्विन्नचणकप्रमाणां कारयेद्भिषक्।
रसो लक्ष्मीविलासोऽयं पूर्ववद् गुणकारकः ॥ ४८ ॥

अभ्रकभस्म एक पल, शुद्ध पारा आधा पल, शुद्ध गन्धक आधा पल, बला, नागबला, शतावर, विदारीकन्द, काले धतूर के शोधित बीज, समुद्रफल, गोखरू, विधारे के शुद्ध बीज, शुद्ध भांग के बीज, जायफल, जावित्री, कर्पूर; प्रत्येक का चूर्ण एक २ कर्ष, और एक कर्ष का आठवां भाग स्वर्णभस्म ले। पारा गन्धक की कज्जली करके यथाक्रम शेष द्रव्यों को मिला पान के पत्तों के स्वरस में घोटकर उबले चने जितनी गोली बनावें। यह लक्ष्मीविलास रस पूर्वोक्त चतुर्मुख के समान गुणदायक है।

विशेषवचन—इसी से मिलता जुलता 'नारदीय लक्ष्मीविलास' रसायन-वाजीकरणाधिकार में कहा जायगा। वहां स्वर्णभस्म नहीं है।

कई पारद और गन्धक की की गई कज्जली को अभ्रकभस्म से आधा लेते हैं। यहां 'पूर्ववद् गुणकारकः' पाठ जैसा का तैसा किसी ग्रन्थ से उद्धृत है। यह नहीं पता लग सकता कि उस ग्रन्थ में इससे पूर्व कौन सा योग था। यहां यतः चतुर्मुख रस इससे पूर्व संगृहीत है अतः यही अभिप्राय लेते हैं कि चतुर्मुख रस के समान ही इस लक्ष्मीविलास के गुण हैं। परन्तु दोनों योगों के द्रव्यों के अनुसार तो गुणों में बहुत अन्तर होता है। जहां चतुर्मुख रस का प्रयोग होता है वहां इस लक्ष्मीविलास का नहीं हो सकता। हां मोटे तौर पर यह कह सकते हैं कि दोनों ही रस वातव्याधियों के नाशक हैं। लक्ष्मीविलास के गुणों का विशेष ज्ञान प्रकृत ग्रन्थ के रसायनाधिकारोक्त नारदीय लक्ष्मीविलास के गुणनिर्देश से स्पष्ट होगा। यह लक्ष्मीविलास स्वर्णयुक्त होने से उस नारदीय लक्ष्मीविलास से उत्कृष्ट ही है। यह रस ऊर्ध्वजत्रुगत वायुरोगों में तथा मांसगत वायु में अधिक लाभ करता है। वीर्यक्षय से कुपित वात में भी अतीव हितकर है।

आधुनिक मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक ॥ ४५—४८ ॥

रोगेभसिंहश्रीखण्डवट्यौ—

सूताद् द्वयो घनवराऽनलवेल्लभागी—
तिक्ताकटुत्रयवरैः सवचैः समांशैः।
रोगेभसिंह इति वातकफामयघ्नः
सान्द्रोऽयमल्पपटुतो विहितो द्विगुञ्जः ॥ ४९ ॥

एतैर्गुडप्रमृदितै रसवर्जितैः स्यात्
श्रीखण्डनाम गुडिका विहिता द्विगुञ्जा।
शैत्याद्यजीर्णकफवातभवान् विकारान्।
हन्त्यार्द्रकेण सहिताप्यथ केवला वा ॥ ५० ॥

रससिन्दूर १ भाग, लौहभस्म २ भाग, मोथा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चीता, विडंग, भार्गी, कुटकी, सोंठ, मिरच, पिप्पली, बच; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ भाग। सब को मिलाकर दो रत्ति भर की गोली जल से घोट कर बनावे। इसे अल्प नमक मिलाकर खावे तो यह वातकफरोगों को नाश करता है। इसका नाम रोगेभसिंह है।

यदि इस योग में रससिन्दूर न डालें और शेष द्रव्यों के समान (वा 'वटीषु द्विगुणो गुडः' इस परिभाषा के अनुसार दुगुना) पुराना गुड मिला कर गोली बनालें तो यही श्रीखण्ड वटी कहाती है। गोली दो रत्ति की बनावें। इसे अदरक के रस से अथवा अकेला ही खावें तो शीतवात आदि रोग, अजीर्ण तथा कफवात के रोग दूर होते हैं।

विशेषवचन—शीतवात रोग का लक्षण आगे कहा जायगा ॥ ५० ॥

पिण्डीरसः—

सूतात् पञ्चार्कतश्चैकं कृत्वा पिण्डं सुगन्धकम्[1]।
सूतांशं नागवल्ल्याश्च द्रवैः पिष्ट्वा प्रलेपयेत् ॥ ५१ ॥
ताम्रपत्रीं प्रलिप्तां तां रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्।
द्विगुञ्जस्त्र्यूषणेनार्द्धवपुर्वातं[2] सकम्पकम्।
निहन्ति दाहसन्ताप-मूर्च्छापित्तसमन्वितम् ॥ ५२ ॥

शुद्ध पारा पांच तोला, ताम्र के पत्र एक तोला, शुद्ध गन्धक पांच तोला। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें फिर पान के रस से घोटकर तांबे के कण्टकवेधी पत्तों पर लेप कर उसे सम्पुट कर गजपुट में पकावे। स्वांगशीतल होने पर निकालकर पीस रखे। इसकी दो रत्ति की मात्रा को सोंठ, मिरच, पिप्पली के चूर्ण से मिलाकर दें। इसके सेवन से दाह सन्ताप मूर्च्छा तथा पित्तयुक्त अर्धाङ्गवात और कम्पवात नष्ट होता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—आधी रत्ती। इसे ही अर्धाङ्गवातारि रस, कम्पवातारि रस तथा त्र्यम्बकेश्वर रस नाम से तन्त्रान्तरों में कहा है।

---

१ 'मुखे दत्त्वा' पा०। २ 'त्र्यूषणेनार्धधनुर्वातं' पा०।

'सूतकस्य पलं पञ्च पलैकं ताम्रचूर्णकम्।
जम्बीराणां द्रवैः पिष्टं सूततुल्यञ्च गन्धकम्॥
नागवल्लीदलैः पिष्टं ताम्रपिष्टं प्रकल्पयेत्।
रुद्ध्वा लघुपुटैः पचयाद् भूधरे यामपञ्चकम्॥
आदाय चूर्णयेत्तुल्यैस्त्र्यूषणैः सममिश्रितैः।
अर्धाङ्गकम्पवातार्तो भक्षयेच्च द्विगुञ्जकम्॥' रसरत्नसमुच्चय।

अर्थात् पूर्व ताम्रचूर्ण १ भाग और पारद ५ भाग को जम्बीर के रस के साथ घोटकर पिष्टी बनालें। पश्चात् गन्धक को मिला अच्छी प्रकार मर्दन कर कज्जलाकृति कर लें और पान के रस से पीस लें। इसे भूधर पुट में लघुपुट द्वारा पांच प्रहर पका लें। शीतल होने पर निकाल समभाग त्रिकटु चूर्ण मिलावें। त्रिकटुचूर्ण मिले रस की मात्रा—१ रत्ती।

रसेन्द्रचिन्तामणि में पिष्टीरस नाम से यह योग है, केवल भेद यही है कि जहां पिण्डीरस में गन्धक पारद के समान है, वहां दुगुना है—

'वाणभागं शुद्धसूतं द्विगुणगन्धमिश्रितम्।
नागवल्लीद्रवैः पिष्टं ततस्तेन प्रलेपयेत्॥
ताम्रपत्रीं प्रलिप्यैतां रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्।
द्विगुञ्जं त्र्यूषणेनार्धवपुर्वातं सकम्पकम्॥
निहन्ति दाहसन्तापमूर्च्छापित्तसमन्वितम्॥'

प्रकृत ग्रन्थ का पिण्डीरस वा रसरत्नसमुच्चय का उक्त त्र्यम्बकेश्वर रस ही यहां दाहाधिकार में "दाहान्तक रस" नाम से भी कहा जा चुका है। उस के पाठ को वहीं देख सकते हैं।

दाह, सन्ताप, मूर्च्छा आदि वातयुक्त पित्त के लक्षण हैं। रसरत्नाकर में अर्धाङ्गवातारि रस के वा रसरत्नसमुच्चय में त्र्यम्बकेश्वर के पाठ में दाह सन्ताप आदि लक्षण नहीं कहे। परन्तु रसरत्नाकर में उक्त योग के पाठ के बाद ही पित्तयुक्त वात के लक्षण कहे हैं—

१ 'सूतस्य च पलात्पञ्च पलैकं मृतताम्रकम्' र. र. पाठः।
२ 'स्थित्वा मूषां विलेपयेत्' र. र. पाठः प्रमादकृतः।
३ 'गजपुटे' पा०। ४ 'त्र्यूषणेन समन्वितम्। अर्धाङ्ग०' र. र. पाठः।

'दाहसन्तापमूर्च्छाः स्युर्वाते १पित्तसमन्विते ।'

और इसके पश्चात् ही वहां वातपित्तारि रस पढ़ा है ॥ ५१—५२ ॥

कुब्जविनोदो रसः—

रसगन्धौ समौ शुद्धौ चाभया तालकं तथा ।
विषं कटुकिव्योषश्च बोलजैपालकौ समौ ॥ ५३ ॥
भृङ्गराजरसैर्मर्द्य स्नुह्यर्कस्वरसैस्तथा ।
गुञ्जाद्वयं भक्षयेच्च हृच्छूलं पार्श्वशूलकम् ॥ ५४ ॥
आमवाताढ्यवातादीन् कटिशूलञ्च नाशयेत् ।
अग्निञ्च कुरुते दीप्तं स्थौल्यञ्चाप्यपकर्षति ।
रसः कुब्जविनोदोऽयं गहनानन्दभाषितः ॥ ५५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, हरड़ का चूर्ण, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध विष, कटुकी का चूर्ण, सोंठ, मिरच, पिप्पली, बोल या मरमकी का चूर्ण, शुद्ध जमालगोटा; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिलाकर खरल करे और भांगरे के रस, डण्डाथोहर (सेहुण्ड) के रस तथा आक (मदार) के रस से घोटकर दो रत्ति भर की गोली बनावे। यह रस हृदय का शूल, पसली का शूल, आमवात, आढ्यवात (वातरक्त वा ऊरुस्तम्भ) तथा कटिशूल को नष्ट करता है। अग्नि का दीपन करता है, स्थूलता को कम करता है। यह कुब्जविनोद रस गहनानन्द ने कहा है ॥ ५३—५५ ॥

शीतवातलक्षणम्—

हिमवन्ति हि गात्राणि रोमाणि स्फुरितानि च ।
शिरोऽक्षिवेदनाऽऽलस्यं शीतवातस्य लक्षणम् ॥ ५६ ॥

सारे अंग बर्फ़ के समान ठण्डे हो जांय, रोमाञ्च हो, सिर आंख आदि में पीड़ा हो तथा आलस्य हो; ये शीतवात के लक्षण हैं ॥ ५६ ॥

१ 'रोमाञ्चज्वरितानि', 'रोमाञ्चोद्धुरितानि' पा० ।

शीतारिरसः—

रसेन गन्धं द्विगुणं प्रगृह्य पुनर्नवाऽग्निस्वरसैर्विभाव्य ।
पक्वार्कपत्रस्य रसेन पश्चाद्विपाचयेदष्टगुणेन यत्नात् ॥ ५७ ॥
रसार्द्धभागञ्च विषञ्च दत्त्वा विपाचयेदग्निजले क्षणं तत् ।
शीतारिसंज्ञस्य[1] रसायनस्य वल्लञ्च सार्द्धं मरिचार्द्रकेण ।
मरीचचूर्णेन घृताप्लुतेन सेवेत मांसञ्च[2] घृतञ्च पथ्यम् ॥ ५८ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला; दोनों की कज्जली करे। फिर पुनर्नवा और चीते के रस से क्रमशः भावना (सात-सात) दे। फिर पके हुए आक के पत्तों के चौबीस तोला स्वरस में कज्जली को डालकर कड़ाही में (वा चीनी के पात्र में) पकावे। जलीयांश सूख जाने पर नीचे उतार कर शोधित विष का चूर्ण आधा तोला डालकर मिला ले। फिर चीते के रस में इस सारे औषध को डालकर कुछ क्षण पकावे। उतारकर पीस रखे। इसे शीतारि रस कहते हैं। इस रसायन औषध की डेढ़ रत्ति की मात्रा अदरक के रस और मिरच चूर्ण के साथ खावे, अथवा घी युक्त मरिचचूर्ण के साथ सेवन करे। मांस तथा घी इस में पथ्य है। इससे शीतवात दूर होता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—$\frac{1}{2}$ रत्ती से १ रत्ती तक।

चित्रकक्काथ का यहां मान नहीं दिया। हमारी समझ में आक के पत्तों के रस के सदृश ही इसे भी औषध से आठगुना लेना चाहिये। पकाने पर जब जलीयांश सूखकर गोली योग्य हो जाय तो उतार लें और अच्छीप्रकार खरल कर गोली बना लें।

रसप्रकाशसुधाकर में भी 'शीतारि रस' दिया है। वहां पुनर्नवा और चित्रक के क्काथ से भावना देने को नहीं कहा, पकाने का ही आदेश है। चित्रकक्काथ से भी एक वार ही पकाना है, दो वार नहीं।

---

१ 'शीतारिसंज्ञो हि रसोऽयमस्य वल्लं तदर्धं यदि वार्द्रकेण' र. र. स. पाठः।

२ 'मांसं सघृतञ्च' पा०।

'एकं रसं गन्धकमेव शुद्धं द्विभागमुक्तं च विमर्द्य खल्वे ।
पक्कार्कपत्रोत्थरसेन यत्नात्पुनर्नवावह्निरसैश्च पाचयेत् ॥
तस्या (रसा) र्धभागेन विषं प्रदत्त्वा चूर्णीकृतं वल्लमितं लिहेच्च ।
शीतारिनामा च रसोत्तमोऽयं शीतस्य वातस्य निवारणाय' ॥२७-२८॥

वातविध्वंसनो रसः—

सूतमभ्रकसत्त्वञ्च कांस्यं शुद्धञ्च माक्षिकम्
गन्धकं तालकं सर्वं भागोत्तरविवर्द्धितम् ॥ ५९ ॥
कज्जलीकृत्य तत्सर्वं वातारिस्नेहसंयुतम् ।
सप्ताहं मर्दयित्वा तु गोलकीकृत्य यत्नतः ॥ ६० ॥
निम्बुद्रवेण संपीड्य तिलकल्केन लेपयेत् ।
अर्द्धाङ्गुलदलेनैव परिशोष्य प्रयत्नतः ॥ ६१ ॥
प्रपचेद् वालुकायन्त्रे द्वादशप्रहरं ततः ।
जठरस्य रुजः सर्वास्तथा च मलविग्रहम् ॥ ६२ ॥
आध्मानकं तथाऽऽनाहं विसूचीं वह्निमान्द्यकम् ।
आमदोषमशेषञ्च गुल्मं छर्दिञ्च दुर्जयाम् ॥ ६३ ॥
ग्रहणीं श्वासकासौ च कृमिरोगं विशेषतः ।
हन्यात् सर्वाङ्गशूलञ्च मन्यास्तम्भं तथैव च ॥ ६४ ॥
ज्वरे चैवातिसारे च शूलरोगे त्रिदोषजे ।
पथ्यं रोगानुसारेण देयमस्मिन् भिषग्वरैः ।
कथितो नन्दिनाथेन वातविध्वंसनो रसः ॥ ६५ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, अभ्रकसत्त्व (अभ्रकभस्म) दो तोला, कांस्यभस्म तीन तोला, स्वर्णमाक्षिकभस्म चार तोला, शुद्ध गन्धक पांच तोला, शुद्ध हड़ताल छः तोला ले । पहले पारे गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिलाकर सबको घोट ले । इसे एरण्ड के तेल से एक सप्ताह तक निरन्तर मर्दन करे । फिर

नीबू के रससे पीसकर एक गोला बनावे। उसपर तिलों के कल्क को आधा २ अंगुल चारों ओर चढ़ादे। फिर सारे को सुखाकर वालुकायन्त्र में रख बारह पहर तक पकावे। इससे पेटके सभी रोग, कब्ज़, आध्मान आनाह, विसूची, अग्निमान्द्य, सब प्रकार के आमदोष, गुल्म, भयंकर वमन, ग्रहणी, श्वास, कास, विशेष करके क्रिमिरोग, सर्वांगशूल, मन्यास्तम्भ, ज्वर, अतिसार, त्रिदोषज शूलरोग; ये सब नष्ट होते हैं। रोगानुसार वैद्य पथ्य देवे। इस वातविध्वंसन रस को नन्दिनाथ ने कहा है।

विशेषवचन — इस योग का पाठ प्रमादपूर्ण है। रसरत्नसमुच्चय में इस योग का ठीक पाठ है—

'मृतमभ्रकसत्त्वञ्च कांस्यं शुल्बं हि माक्षिकम्।
गन्धकं तालकं सूतं भागोत्तरविवर्धितम्॥
तत्सर्वं कज्जलीकृत्य वातारिस्नेहसंयुतम्।
मर्दयेत्सप्तदिवसं गोलीकृत्य तु यत्नतः॥
निम्बुद्रावेण सम्पिष्टतालकल्केन लेपयेत्।
अर्धाङ्गुलदलं चैव परिशोष्य प्रयत्नतः॥
प्रपचेद्वालुकायन्त्रे यामानां द्वादशावधि।
पटचूर्णं विधायैतद्भावयेत्तदनन्तरम्॥
पञ्चकोलकचित्राब्धिवरुणादिकषायतः।
दशमूलकषायेण शृङ्गवेररसेन च॥
रक्तामृतं कलांशेन दत्त्वा निष्पिष्य यत्नतः।
स्थूलकोलास्थितुलितां छायाशुष्कां वटीं कुरु॥
तत्तद्रोगहरैर्द्रव्यैर्नृणां देया सदा हिता।
हन्यादशीतिधा भिन्नान्वातजातान्महागदान्॥
गुल्मानष्टविधांश्चापि शूलानष्टविधानपि।
जठरस्य रुजः सर्वास्तथा च मलनिग्रहम्॥
आध्मानकमथानाहं विषूचीं मन्दवह्निताम्।
आमदोषानशेषांश्च गुल्मं छर्दिं च दुर्धराम्॥

१ 'सर्वं' पा०।

५ ग्रहणीं श्वासकासौ च कृमिरोगमशेषतः ।
हन्यात्सर्वाङ्गसदनं मन्यास्तम्भं च वाजिनाम् ॥
ज्वरे चैवातिसारे च मूलरोगे त्रिदोषजे ।
पथ्यं रोगानुरूपेण दापनीयं भिषग्वरैः ॥
श्रीमता नन्दिना प्रोक्तो वातविध्वंसनो रसः ।
क्षुधार्थिभिः सदा सेव्यः सर्वाहारपरैर्नरैः ॥

इसके अनुसार अभ्रकसत्त्वभस्म (अभाव में अभ्रकभस्म) १ भाग, कांस्यभस्म २ भाग, ताम्रभस्म ३ भाग, स्वर्णमाक्षिकभस्म ४ भाग, शुद्ध गन्धक ५ भाग, शुद्ध हड़ताल ६ भाग, शुद्ध पारद ७ भाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिला एरण्डतैल से सात दिन घोट कर गोला बना ले। इस गोले के ऊपर नीबू के रस से पीसे शुद्ध हड़ताल के कल्क का आधा अङ्गुल मोटा लेप करे। इसे धूप में सुखालें। जब सूख जाय तब मूषा में डाल वालुकायन्त्र में बारह प्रहर पकावे। शीतल होने पर औषध को बाहिर निकाल पीसकर वस्त्र से छान लें। तदनन्तर पञ्चकोलक्वाथ, चित्रकमूलक्वाथ, वरुणादिगण के क्वाथ, दशमूल के क्वाथ तथा अदरक के रस से पृथक् भावना (सात-सात) दें। और इस में १ भाग का सोलहवां भाग शुद्ध हिंगुल और शुद्ध विष पृथक्२ मिलाकर अच्छी प्रकार घोटकर मोटे बेर की गुठली के बराबर गोली बना छाया में सुखा लें। इसे भिन्न२ रोगों में उन२ रोग-नाशक अनुपान से देना हितकर है। इसके प्रयोग से ८० प्रकार के वातज महारोग, आठ प्रकार का गुल्म, आठ प्रकार का शूल, उदर के सब रोग, कब्ज़, आध्मान, आनाह, विसूचिका, मन्दाग्नि, सब आमदोष, गुल्म, कै, ग्रहणी, श्वास, कास, सब कृमिरोग, सम्पूर्ण देह की शिथिलता, घोड़ों का मन्यास्तम्भ, ज्वर, अतिसार, त्रिदोषज अर्श वा भगन्दर नष्ट होता है। चिकित्सक को चाहिये कि रोग के अनुसार विचार कर अनुपान दे। यह नन्दि का कहा हुआ वातविध्वंसन रस है। सब कुछ (बिना सोचे विचारे) खाने वाले लोगों को चाहिये कि यदि उन्हें भूख न लगती हो तो उसे जगाने के लिये इस रस का सेवन करे। आधुनिक मात्रा-दो या तीन रत्ती ॥ ५६—६५ ॥

पलाशादिवटी—

पलाशबीजोत्थरसेन सूतं गन्धेन युक्तं त्रिदिनं विमर्द्य ।
श्लक्ष्णीकृतं तद्विपतिन्दुबीजं संयोजयेदस्य कलाप्रमाणम् ।
मासद्वयं निष्कमितं प्रयत्नादर्शांसि हन्त्याशु नियोजनीयम् ॥६६॥
वातरक्तं तथा शोथमस्पर्शाख्यानिलामयम् ।
वातवत्पित्तरोगेऽपि तत्र पित्तेन भावयेत् ।
पलाशादिवटी ख्याता वातरोगकुलान्तिका ॥ ६७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक समभाग ले। दोनों की कज्जली करे। फिर ढाक के बीजों के क्वाथ से इसे तीन दिन तक घोटता रहे। पश्चात् इसमें शोधित कुचले का चूर्ण पारे से सोलहवां भाग डालकर घोट रखे। इसकी एक निष्क भर की मात्रा दो मास तक निरन्तर खाने से बवासीर शीघ्र ही दूर होती है। इससे वातरक्त, शोथ तथा वायु का अस्पर्शाख्य रोग (जिस में छूने से ज्ञान नहीं होता–सुप्तिवात) दूर होता है। यदि वात युक्त पित्त रोगों को दूर करना हो तो इस रस को पांच पित्तों से भावना दे ले। यह पलाशादिवटी वातरोगों के कुल का अन्त करने वाली है।

विशेषवचन—इसकी मात्रा दो रत्ति दें। कई कज्जली का सोलहवां भाग शोधित कुचला डालते हैं। यह कोष्ठाश्रित वात में भी अत्यन्त हितकर है। कृमिजन्य वायु के शूल आध्मान आदि उपद्रवों को भी हटाती है। वातनाडियों के बल को बढ़ाती है। अर्दित पक्षाघात आदि में भी इसका प्रयोग किया जाता है। परन्तु यदि सुप्तिवात पक्षाघात आदि रोगों में मांसपेशी कठोर होगई हों या क्षीण हो रही हों तब इसका प्रयोग न कराना चाहिये।

पांच पित्त पूर्व कहे जा चुके हैं ॥ ६६—६७ ॥

दशसारवटी—

यष्टिं धात्रीं बलां द्राक्षामेलां चन्दनवालकम् ।

---

१ 'श्लक्ष्णीकृते तद्विषमुष्टिबीजं संयोजनीयं च कलाप्रमाणम्। मासत्रयं निष्कमितं प्रयत्नात् स्पर्शप्रणुत्यै खलु सेवयेत ॥' र. र. स. पाठः।

मधूकपुष्पं खर्जूरं दाडिमं पेषयेत् समम् ॥ ६८ ॥
सर्वतुल्या सिता योज्या पलार्द्धं भक्षयेत् सदा ।
दशसारवटी ख्याता सर्ववातविकारनुत् ॥ ६९ ॥

मुलहठी, आंवला, बलामूल, दाख, छोटी इलायची; चन्दन लाल, सुगन्ध बाला, महुए के फूल, पिण्ड खजूर, अनारदाना (मीठे अनार का); सब के चूर्णों को समभाग ले । सारे के समान खांड डाले और वटी बनालें। इसे नित्य आधा पल (२ तोला) खावे तो यह दशसारवटी सब वातरोगों को दूर करती है ।

विशेषवचन—'बालकम्' (सुगन्धवाला) के स्थान में 'वालुकम्' (एलवालुक) पाठ भी है । इस योग को यहां अनुपान में प्रयोग के लिये ही समझना चाहिये । आधुनिक मात्रा—२ मासे से ४ मासे तक ।

रसरत्नसमुच्चय में दशसारचूर्ण पित्तविकारों की शन्ति के लिये कहा है और वही उचित है ।

वहां 'सर्ववातविकारनुत्' के स्थान पर 'सर्वपित्तविकारजित्' पाठ है। और इसके आगे —

'मेहतृष्णारतीश्चैव दाहं मूर्च्छां ज्वरं जयेत् ॥'

यह भी गुणनिर्देश है । प्रकृत ग्रन्थ में 'सर्ववातविकारनुत्' किस प्रकार हो गया–यह नहीं कहा जा सकता । शायद पित्तनाश के साथ वातनाश के भी कुछ करने से यहां पढ़ा गया हो । परन्तु इस में मुख्यता पित्तनाश के गुण की ही है । पित्तवात-जन्यविकारों में इसे प्रयोग करा सकते हैं ॥६८-६९॥

गगनादिवटी—

मृतगगनरसार्कं मुण्डतीक्ष्णं सताप्यं
सवालिसममिदं स्याद् यष्टितोयप्रपिष्टम् ।
तदनुसलिलजातैर्वासकैर्गोस्तनीभिः

---

१ अत्र केचित् 'अथ दाडिममित्यत्र गणमिच्छन्ति चापरे' इत्यूचुः ।

मृदितमनु विदारीवारिणा घस्रमेकम् ॥ ७० ॥
घृतमधुसहितेयं निष्कमात्रा वटीति
क्षपयति गुरुवातं पित्तरोगं क्षयञ्च ।
भ्रममदकफशोषान् दाहतृष्णासमुत्थान्
मलयजमिह पेयश्चानुपानं सचन्द्रम् ॥ ७१ ॥

अभ्रकभस्म, शुद्ध पारा, तांबाभस्म, मुण्डलौहभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिला खरल करें। इसे मुलहठी के काढ़े से दिन भर खरल करके शैवाल (अथवा कमलपुष्प), बांसा, मुनक्का और विदारीकन्द के रसों से क्रमशः एक २ दिन घोटे और वटी बनावे। इसे घी और शहद से मिलाकर एक निष्क भर खावें। इससे बढ़ा हुआ वात, पित्तरोग, क्षय, भ्रम, मद, कफरोग, शोषरोग, दाह तथा तृष्णा दूर होते हैं। इसके पीछे अनुपान में श्वेत चन्दन को जल में घिस कर और कर्पूर मिलाकर पीना चाहिये।

विशेषवचन—मात्रा–एक रत्ति से २ रत्ती तक। यह पित्तवात में विशेष हितकर है। कई यहां शुद्ध पारा न लेकर रससिन्दूर लेते हैं।

गगनादिवटी नाम से जो योग यहां कहा है–इससे बहुत मिलता जुलता ही "पित्तान्तक रस" रसरत्नसमुच्चय में है। वस्तुतः गगनादि वटी का भी मुख्य गुण पित्तनाश ही है। पित्तान्तकरस का पाठ इस प्रकार है—

'मृतसूताभ्रमुण्डार्कतीक्ष्णमाक्षिकतालकम्।
गन्धकं च भवेत्तुल्यं यष्टीद्राक्षामृताद्रवैः॥
जल[1]मण्डपिकावासाद्रवैः क्षीरविदारिजैः।
दिनैकं मर्दयेत्खल्वे सिताक्षौद्रयुता वटी॥
निष्कमात्रं निहन्त्याशु पित्तं पित्तज्वरं क्षयम्।
दाहं तृष्णां भ्रमं शोषं वेगात्पित्ता[2]न्तको रसः॥

---

१ 'धात्रीशतावरीद्रावैः' र. र पाठः।
२ 'वातपित्तान्तको रसः' र. र. पाठः।

सितां क्षीरं पिबेच्चानु यष्टीं सितान्वितां जलैः ।
पिबेद्वा पित्तशान्त्यर्थं शीततोयेन चन्दनम् ॥'

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, मुण्डलौहभस्म, ताम्रभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक समभाग; इन्हें एकत्र पीसकर मुलहठी, दाख, गिलोय, जलमण्डपिका (शैवाल), वासा तथा क्षीरविदारी; इनके रसों से पृथक् पृथक् खरल में मर्दन कर के खांड और मधु मिला वटी बनावें। यह रस पित्त, पित्तज्वर, क्षय, दाह, तृष्णा, भ्रम, शोष; इन्हें शीघ्र नष्ट करता है। अनुपान–मिसरी मिला दूध, मुलहठी चूर्ण खांड और जल। अथवा श्वेतचन्दन को शीतल जल में घिस कर पीना चाहिये। इससे पित्त की शान्ति होती है।

इस रस में भाव्य द्रव्यों में हड़ताल अधिक है। भावना द्रवों में गिलोय का रस अधिक है। घी के स्थान पर यहां खांड है।

पित्त के साथ जब वात कुपित होता है तब पित्त के लक्षण भी तीव्र हो जाया करते हैं। ऐसी अवस्था में भी इस का प्रयोग करा सकते हैं। अत एव ज्वराधिकार में तो इस का नाम वातपित्तान्तक रस ही है और यही कारण है कि इसे यहां वाताधिकार में पुनः पढ़ दिया है। भेद इतना ही है कि वहां शैवाल के स्थान पर आंवला और शतावर के रस से मर्दन है। ऊपर यतः पलाशादि वटी के गुणनिर्देश में 'वातवत्पित्तरोगेऽपि' (अर्थात् वातयुक्त पित्त रोग में) कहा गया है अत एव वातपित्त का बीच में प्रसङ्ग आजाने से उस में प्रयोगार्थ दशसारवटी और गगनादि वटी के योग भी कह दिये हैं ॥ ७०--७१ ॥

सर्वाङ्गसुन्दरो रसः--

शुद्धसूताभ्रताम्रायो हिङ्गुलं कार्षिकं समम् ।
गन्धकश्चैकभागः स्यात् सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ ७२ ॥
सप्तपर्णार्कस्नुक्क्षीर–वासा–वातारि–वारिणा ।

१—'यष्टिक्वाथं सितायुतम्' र. र. पाठः ।

विषमुष्टिसमं सर्वं पेष्यं तद्गोलकीकृतम् ॥ ७३ ॥
विपचेद् वालुकायन्त्रे द्वियामान्ते समुद्धरेत् ।
पिप्पलीविषसंयुक्तो रसः सर्वाङ्गसुन्दरः ।
सर्ववातविकारघ्नः सर्वशूलनिसूदनः ॥ ७४ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लौहभस्म, शुद्ध हिंगुल; प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष लें। शोधित कुचले का चूर्ण भी एक कर्ष लें। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलावे और सतौना के दूध, आक के दूध, थोहर के दूध, बांसा के रस तथा एरण्डमूल के क्वाथ से क्रमशः मर्दन करके, गोला बनाकर, वालुकायन्त्र में विधिपूर्वक दो पहर पकावें। पश्चात् निकालकर पिप्पली का चूर्ण एक कर्ष और शुद्ध विष एक कर्ष मिलाकर पीस रखें (वा जल से गोली बना लें)। यह सर्वांगसुन्दर रस सब प्रकार के वातरोगों को दूर करता है तथा सब प्रकार के शूलरोगों को हटाता है।

विशेषवचन--आधुनिक मात्रा-१ रत्ती।

कई यहां पारदादि छह द्रव्यों के मिलित चूर्ण के समभाग (छह कर्ष) कुचला लेने को कहते हैं।

इस रस से मिलता जुलता सर्वेश्वर नामक रस रसरत्नसमुच्चय में है—

'कर्षमात्रं रसस्य स्याल्लोहहिङ्गुलयोरपि ।
भास्वद्गगनयोश्चपि गन्धकस्य पलं मतम् ॥
व्योषगन्धकताराणां[1] प्रत्येकं तु पलं पलम् ।
निम्बुद्रवेण सम्मर्द्य भावयेत्सप्तधा पृथक् ॥
हेमार्कस्नुक्पयोवासाहयारिविषमुष्टिभिः ।
पिण्डितं वालुकायन्त्रे स्वदेयेद्दिवसत्रयम् ॥
कर्षमात्रं तु पिप्पल्या निष्कमात्रं विषस्य च ।
सञ्चूर्ण्य दापयेदत्र रसे सर्वेश्वराभिधे ॥
गुञ्जामात्रं ददीतास्य स्पर्शवातापनुत्तये ॥'

---

१ 'व्योषगन्धकताम्राणां' पा० ।

अर्थात् शुद्ध पारद १ कर्ष, लौहभस्म १ कर्ष, शुद्ध हिङ्गुल १ कर्ष, ताम्रभस्म १ कर्ष, अभ्रकभस्म १कर्ष, शुद्ध गन्धक १ पल, त्रिकटु; प्रत्येक१पल, गन्धक १पल, रजतभस्म १पल; इन्हें एकत्र नीबू के रस से मर्दन करे। पश्चात् सत्यानाशी के दूध (वा धतूरे के रस), आक के दूध तथा सेहुण्ड के दूध, वासारस, कनेर के रस तथा कुचले से पृथक् सात-सात भावना दें और गोला बनाकर तीन दिन वालुकायन्त्र में स्वेदन करे। पश्चात् स्वाङ्गशीतल होने पर औषध को निकाल पीस ले और उस में पिप्पलीचूर्ण १ कर्ष तथा शुद्ध विष का चूर्ण १ निष्क (शाण) मिला ले। इसे १ रत्ती मात्रा में स्पर्शवात के नाश के लिये रोगी को प्रयोग कराना चाहिये।

कुचले की भावना क्वाथ बनाकर नहीं दी जाती अपि तु एक भाग कुचला मिलाया जाता है—यही सम्प्रदाय है।

एक सर्वेश्वर रस रसरत्नसमुच्चय के कुष्ठाधिकार में भी कहा गया है और वह भी इससे थोड़ा सा ही भिन्न है। इसे सुप्तिवात वा सुप्तिकुष्ठ आदि में प्रयोग करा सकते हैं।

'शुद्ध सूतं चतुर्गन्धं खल्वे यामं विमर्दयेत्।
मृतताम्राभ्रलोहानि हिङ्गुलं च पलं पलम्॥
सुवर्णं रजतं चैव प्रत्येकं दशनिष्ककम्।
माषैकं मृतवज्रं च तालसत्त्वं पलद्वयम्।
जम्बीरोन्मत्तवासाभिः स्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः।
मर्द्यं हयारिजैर्द्रावैः प्रत्येकेन दिनं दिनम्॥
एवं सप्तदिनं मर्द्यं तद्गोलं वस्त्रवेष्टितम्।
वालुकायन्त्रगं स्वेद्यं त्रिदिनं लघुनाग्निना॥
आदाय चूर्णयेत्सूक्ष्मं पलैकं योजयेद्विषम्।
द्विपलं पिप्पलीचूर्णं मिश्रं सर्वेश्वरो रसः।
द्विगुञ्जं भक्षयेत्क्षौद्रैः सुप्तमण्डलकुष्ठनुत्॥
बाकुचीं देवदारुं च कर्षमात्रं सुचूर्णितम्।
लिहेदेरण्डतैलेन ह्यनुपानं सुखावहम्॥

इसमें शुद्ध पारा १ पल (४ तोला), शुद्ध गन्धक ४ पल, ताम्रभस्म

१ पल, अभ्रकभस्म १ पल, लोहभस्म १ पल, शुद्ध हिंगुल १ पल, स्वर्णभस्म १० शाण (४० मासा=२४० रत्ती), रौप्यभस्म १० शाण, हीराभस्म १ मासा (६ रत्ती), तालसत्त्व (वा हड़तालभस्म) २ पल; इन्हें एकत्र मिला जम्बीर, धतूरा, अडूसा, सेहुण्ड, मदार, कुचला, कनेर की जड़; इनके रसों से पृथक् एक-एक दिन मर्दन करे । इस प्रकार सात दिन घोटे जाने पर गोला बना ले और एक शराव में डाल कपड़मिट्टी कर वालुकायन्त्र में तीन दिन तक मन्द २ आंच से स्वेदन करे । पश्चात् बारीक चूर्णकर १ पल शोधित विष और २ पल पिप्पलीचूर्ण मिला ले । २ रत्ती मात्रा में मधु के साथ सुप्तिकुष्ठ और मण्डल कुष्ठ में प्रयोग करावे । कुष्ठ में बाकुची (कालीजीरी) और देवदार के चूर्ण को एरण्डतैल से अनुपान में चाटना चाहिये ।

एक सर्वेश्वर रस और भी है जो सुप्तिवात वा सुप्तिकुष्ठ में प्रयोग होता है।

'पालिकं ताम्रगन्धाभ्रं कर्षांशं लोहपारदम् ।
स्नुह्यर्कक्षीरवातारिजम्बरीरोशीरवारिभिः ॥
मर्दितं वालुकायन्त्रे स्वेदयेद्दिवसत्रयम् ।
कर्षं कणाया निष्कं च विषस्यास्मिन् विनिक्षिपेत् ॥
एष सर्वेश्वरः सद्यो गुञ्जामात्रः प्रसुप्तिजित् ॥'

ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म; प्रत्येक १ पल, लोहभस्म १ कर्ष, शुद्ध पारद १ कर्ष ले । पारा गन्धक की कज्जली कर अन्य द्रव्य मिला सेहुण्ड का दूध, मदार का दूध, एरण्डमूल-क्वाथ, जम्बीररस तथा खस के क्वाथ से पृथक् मर्दन करके वालुकायन्त्र में तीन दिन स्वेदन करे । पश्चात् पीसकर १ कर्ष पिप्पलीचूर्ण और १ निष्क शुद्ध विष मिला घोट ले । इसे १ रत्ति मात्रा में प्रयुक्त कराया जाता है ।

कुचला-सेवन के जो नियम हैं उन सब का यहां ध्यान रखना चाहिये ॥ ७२--७४ ॥

तालकेश्वरो रसः—

एकभागो रसस्य स्यात् शुद्धतालैकभागिकः ।

अष्टौ स्युर्विजयायाश्च गुडिकां गुडतश्चरेत् ॥ ७५ ॥
एकैकां भक्षयेत् प्रातश्छायायामुपवेशयेत् ।
तालकेश्वरनामायं रोगश्चास्पर्शनाशनः ॥ ७६ ॥

रससिन्दूर एक तोला, शुद्ध हड़ताल एक तोला, शुद्ध भांग आठ तोला; सबको पीसकर बीस तोला गुड़ मिला गोली बनावे। इसे प्रातःकाल खावे और खाकर छाया में बैठा रहे। इससे अस्पर्श वातरोग नाश होता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा-१ मासा।

रसरत्नसमुच्चय में इस योग का नाम स्पर्शवातघ्न रस है। पाठ इसप्रकार है-

'तालं रसेनाष्टगुणं जयांशं
विमर्द्य यत्नाद् गुलिकां गुडेन।
निबद्ध्य तां सेवय मासयुग्मं
दिनोदये स्पर्शविकारशान्त्यै ॥' ७५—७६ ॥

त्रैलोक्यचिन्तामणि रसः—

हीरं सुवर्णं सुमृतञ्च तारमेषां समं तीक्ष्णरजश्चतुर्णाम् ।
समं मृताभ्रं रससिन्दुरञ्च निष्पिष्य तीक्ष्णस्य तथाऽश्मनो वा ७७
खल्ले द्रवेणैव कुमारिकाया गुञ्जाप्रमाणां वटिकां प्रकुर्यात् ।
त्रैलोक्यचिन्तामणिरेष नाम्ना सम्पूज्य सम्यक् गिरिजां दिनेशम् ७८
हन्त्यामयान् योगशतैर्विवर्ज्यानथ प्रणाशाय मुनिप्रणीतः ।
अस्य प्रसादेन गदानशेषान् जरां विनिर्जित्य सुखं विभाति ७९
स्निग्धे श्लेष्मण्यार्द्रकस्य रसेन पाययेत् सुधीः ।
शुष्के च माक्षिकेणैव पित्ते घृतसितायुतम् ॥ ८० ॥

---

१ 'गुडतः शुभाम्' पा०।

२ 'तारशब्देनात्र मौक्तिकमेव, हीरं स्वर्णं सुशुद्धं च मौक्तिकमिति पाठान्तरदर्शनात्' इति।

श्लेष्मणि मारुते सम्यग् दुष्टे च समतां गते ।
कणाचूर्णं क्षौद्रयुतं प्रमेहे दुग्धसंयुतम् ॥ ८१ ॥
बलवर्णाग्निजननः कासघ्नः कफवातजित् ।
आयुःपुष्टिकरो वृष्यः सर्वरोगनिसूदनः ॥ ८२ ॥

हीराभस्म, स्वर्णभस्म, तारभस्म (मोतीभस्म); प्रत्येक १ तोला, तीक्ष्ण-लौहभस्म ३ तोला, अभ्रकभस्म चार तोला तथा रससिन्दूर चार तोला ले। सबको मिलाकर फौलाद के या अति दृढ़ पत्थर के खरल में पीसे। फिर घीकुमार के रस से घोट कर एक रत्ति प्रमाण की गोली बनावे। यह त्रैलोक्यचिन्तामणि रस गिरिजा (पार्वती) और सूर्य भगवान् की पूजा करके खाया जाय तो सैकड़ों योगों से जो रोग नाश नहीं हुए उन सब को भी नाश करता है। यह मुनि का बनाया हुआ है। इसके प्रसाद से सब रोग तथा बुढ़ापा दूर हो कर देह नीरोग रहता है। यदि रोगी में श्लेष्मा स्निग्ध हो तो इसे अदरक के रस से, यदि सूख गया हो तो शहद से देवे। पित्तरोग में मिश्री और घी से देवे। श्लेष्मा और वायु दुष्ट होकर समान भाव से विकृत हों तो इसे शहद और पिप्पली के चूर्ण से मिलाकर देवे। प्रमेह में दूध से दें। यह रस बलवर्धक, वर्णवर्धक, अग्निवर्धक, कास-नाशक, कफवात-नाशक, आयुवर्धक, पुष्टिवर्धक, वृष्य तथा सर्वरोग-नाशक है।

विशेषवचन—कई मोतीभस्म के स्थान पर तारभस्म से रजतभस्म ही लेते हैं। कई तीक्ष्णलोहभस्म भी एक भाग ही लेते हैं।

आधुनिक मात्रा—$\frac{1}{2}$ रत्ती से $\frac{3}{4}$ रत्ती तक ॥ ७७—८२ ॥

इति वातरोगचिकित्सा ।

अथ कफरोगचिकित्सा ।

श्लेष्मकालानलो रसः—

रसस्य द्विगुणो गन्धः गन्धकाद् द्विगुणं विषम् ।
विषात्तु द्विगुणं देयं चूर्णं त्रिकटुसम्भवम् ॥ १ ॥
रसतुल्या प्रदातव्या चाभया सविभीतकी ।
धात्री पुष्करमूलञ्च चाजमोदाऽजगन्धिका ॥ २ ॥
विडङ्गं कट्फलं चव्यं पञ्चैव लवणानि च ।
लवङ्गं त्रिवृता दन्ती सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ३ ॥
भावयेत् सप्तधा रौद्रे स्वरसैः सुरसोद्भवैः ।
हन्ति सर्वं कफोद्भूतं व्याधिं कालानलो रसः ॥ ४ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला; दोनों की कज्जली करे । फिर शुद्ध विष चार तोला, सोंठ मिरच पिप्पली का चूर्ण मिलित आठ तोला, हरड़ एक तोला, बहेड़ा, आंवला, पुष्करमूल, अजमोदा, अजगन्धिका (बाबुई तुलसी), विडंग, कायफल, चव्य, पांचों नमक, लौंग, त्रिवी, दन्तीमूल; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लेकर चूर्ण करे और सब द्रव्यों को एकत्र मिलाकर तुलसी के रस से धूप में सात भावना दे । यह रस कफज रोगों को नाश करता है । इस का नाम श्लेष्मकालानल रस है ।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा $\frac{1}{2}$ रत्ती से १ रत्ती तक । यहां 'अजगन्धिका' से अजवाइन भी ली जासकती है । 'अजमोदा' से भी अन्तःप्रयोगों में अजवाइन ही लेते हैं । तब २ तोले अजवाइन हो जायगी । सुरसा से निर्गुण्डी (सम्भालू) भी ली जा सकती है । निर्गुण्डी भी कफनाशक प्रसिद्ध है—

' सिन्दुवारः कटुस्तिक्तः कफवातक्षयापहः ।
कुष्ठकण्डूतिशमनः शूलहृत्कासासिद्धिदः ॥' १—४ ॥

श्लेष्मशैलेन्द्रो रसः—

पारदः गन्धको लौहं त्र्यूषणं जीरकद्वयम् ।

शटी शृङ्गी यमानी च पौष्करं चार्द्रकं तथा ॥ ५ ॥
गैरिकं यावशूकश्च टङ्कणं गजपिप्पली।
जातीकोषाऽजमोदा च वरा यासलवङ्गकम् ॥ ६ ॥
कनकारुणबीजानि कट्फलं चव्यकं तथा।
प्रत्येकं तोलकश्चैषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ७ ॥
पाषाणे विमले खल्ले घृष्टं पाषाणमुद्गरैः।
बिल्वमूलरसं दत्त्वा चार्कचित्रफलत्रिकाः ॥ ८ ॥
निर्गुण्डी-गणिका-वासा चेन्द्राशनं प्रचोदनी।
धुस्तूरः कृष्णजीरश्च पिप्पलीपारिभद्रके ॥ ९ ॥
एतेषाञ्च रसैर्सर्वैर्समार्द्रकैश्च विभावयेत्।
उष्णतोयानुपानेन सर्वव्याधिं विनाशयेत् ॥ १० ॥
विंशतिं श्लैष्मिकान् रोगान् सन्निपातभवान् गदान्।
उदराष्टकदुर्नामसामवातञ्च दारुणम् ॥ ११ ॥
पञ्च पाण्ड्वामयान् दोषान् क्रिमिं स्थौल्यमथो नृणाम्।
यथा शुष्केन्धने वह्निस्तथैवाग्निविवर्द्धनः ॥ १२ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, सोंठ, मिरच, पिप्पली, जीरा श्वेत, काला जीरा, कचूर, काकड़ासिंगी, अजवायन, पुष्करमूल, अदरक (सोंठ), शुद्ध उत्तम गेरू, यवक्षार, सुहागा, गजपीपल, जावित्री, अजमोदा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, जवासा, लौंग, धतूरे के शुद्ध बीज, तालमखाना, कायफल, चव्य; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलादे और पत्थर के खरल में पीसे। इसे बिल की जड़ के क्वाथ तथा आक (मदार), चीता, त्रिफला, संभालू, अग्निमन्थ, (कई श्वेत जूही लेते हैं), बांसा, भांग, छोटी कटेली, धतूरा, कालाजीरा, पिप्पली

१ 'कनकस्य च बीजानि', 'धुस्तूरबीजं जैपालं' पा०।

(यहां संस्कृत टीकाकार पिप्पली से गजपीपल लेता है, पर प्रमाण कोई नहीं), नीम (अथवा फरहद); इन सब के रस या क्वाथ से क्रमशः सब द्रव्यों को मर्दन करे। फिर अदरक के रससे भावना (सात) देवे। इस रसका नाम, श्लेष्मशैलन्द्र रस है। इस रस को गरम जल से खावे तो सब रोग नष्ट होते हैं। बीस प्रकार के कफ के रोग, सन्निपातज रोग, आठों प्रकार के उदर रोग, बवासीर, भयंकर आमवात, पांच प्रकार के पाण्डुरोग, क्रिमि, स्थौल्य (मुटापा); ये सब रोग दूर होते हैं। जैसे सूखे ईंधन में अग्नि डालने से आग बढ़ती है इसी प्रकार इस रससे जठराग्नि दीप्त होती है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा-४ रत्ती से ८ रत्ती तक।

भैषज्यरत्नावली के ज्वराधिकार में भी श्लेष्मशैलेन्द्ररस है—

'गन्धकं पारदं चाभ्रं त्र्यूषणं जीरकद्वयम्।
शटी शृङ्गी यमानी च पुष्करं रामठं तथा॥
सैन्धवं यावशूकञ्च टङ्कणं गजपिप्पली।
जातीकोषाजमोदे च लौहं यासलवङ्गकम्॥
धुस्तूरबीजं जैपालं कट्फलं चित्रकं तथा।
प्रत्येकं कार्षिकं चैषां श्लक्ष्णचूर्णं प्रकल्पयेत्॥
पाषाणे विमले पात्रे घृष्टं पाषाणमुद्गरैः।
बिल्वमूलरसं दत्त्वा चार्कचित्रकदन्तिकाः॥
शिखरी काञ्जिका वासा निर्गुण्डी गणिकारिका।
धुस्तूरं कृष्णजीरञ्च पारिभद्रकपिप्पली॥
कण्टकार्यार्द्रयोश्चैव मूलान्येतानि दापयेत्।
एषां मूलरसं दत्त्वा घृष्टमातपशोषितम्॥
गुञ्जाप्रमाणां वटिकां कारयेत् कुशलो भिषक्।
चतुर्विधवटीं खादेन्नित्यमार्द्रकवारिणा॥
उष्णतोयानुपानेन श्लेष्मव्याधिं व्यपोहति।
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव शिरोरोगांश्च दारुणान्॥
प्रमेहान् विंशतिञ्चैव पञ्चगुल्मनिषूदनः।
उदराण्यन्त्रवृद्धिञ्चाप्यामवातविनाशनः॥

पञ्च पाण्ड्वामयान् हन्ति क्रिमिस्थौल्यामयापहः।
सोदावर्तं ज्वरं कुष्ठं गात्रकण्ड्वामयापहः॥
यथा शुष्केन्धने वह्निस्तथा वह्निविवर्धनः।
श्लेष्मामये कृपाहेतो रसेन्द्रो मुनिभाषितः॥
श्लेष्मशैलेन्द्रको नाम रसेन्द्रगुटिका स्मृता॥'

इस पाठ में अभ्रकभस्म अधिक है। सोंठ के स्थान पर हींग, गेरू के स्थान पर सेन्धानमक है। त्रिफला नहीं है। अरुणबीज (तालमखाना) के स्थान पर जैपाल बीज, चव्य के स्थान पर चित्रक है। मर्दनार्थ द्रवों में त्रिफला के स्थान पर दन्तीमूल, भांग के स्थान पर शिखरी (अपामार्ग) है। जीवन्ती की भावना अधिक है॥ ९—१२॥

महाश्लेष्मकालानलो रसः

हिङ्गूलसम्भवं सूतं शिला-गन्धक-टङ्कणम्।
ताम्रं वङ्गं तथाऽभ्रञ्च स्वर्णमाक्षिकतालकम्॥ १३॥
धुस्तूरं सैन्धवं कुष्ठं पिप्पली हिङ्गु कट्फलम्।
दन्तीबीजं सोमराजी वनराजफलं त्रिवृत्॥ १४॥
वज्रीक्षीरेण सम्मर्द्य वटिकां कारयेद्भिषक्।
कलायपरिमाणान्तु खादेदेकां यथाबलम्॥ १५॥
सन्निपातं निहन्त्याशु वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा।
मत्तसिंहो यथारण्ये मृगाणां कुलनाशनः।
तथाऽयं सर्वरोगाणां सद्यो नाशकरो महान्॥ १६॥

हिंगुल से निकाला हुआ पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मनसिल, शुद्ध सुहागा, ताम्रभस्म, वंगभस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध धतूरे के बीज, सेन्धानमक, कूठ, पिप्पली, हींग, कायफल, शुद्ध दन्ती-बीज, कालीजीरी, वनराजफल (अमलतास का गूदा वा लाल सहिजन के बीज), त्रिवी (निसोत) सब द्रव्यों को समभाग लें। पहले पारा गन्धक

की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्यों के चूर्ण मिला खरल करें और डण्डा थोहर (सेहुण्ड) के दूध से घोटकर मटर के समान गोली बनाले। इसे अग्निबल देखकर दें तो शीघ्र सन्निपात को ऐसे नाश करती है जैसे बिजली वृक्ष को। जिस प्रकार से मत्त सिंह जंगल में सब मृगों को नाश करता है। वैसे ही यह रस सब रोगों को तुरन्त नाश करता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ रत्ती।

क्रूरकोष्ठ कफरोगी को इसका सेवन कराना चाहिये। तन्त्रान्तर में थोड़े से भेद से श्लेष्मकालानल रस है—

हिङ्गुलसम्भवं सूतं गन्धकं मृतताम्रकम्।
तुत्थं मनोह्वा तालञ्च कट्फलं धूर्त्तबीजकम्॥
हिङ्गु समाक्षिकं कुष्ठं त्रिवृद्दन्ती कटुत्रिकम्।
व्याधिघातफलं वङ्गं टङ्कणं समभागिकम्॥
स्नुहीक्षीरेण वटिकां कारयेत्कुशलो भिषक्।
विज्ञाय कोष्ठं कालं च योजयेद्रक्तिकां क्रमात्।
वातश्लेष्मणि मन्दाग्नौ पित्तश्लेष्माधिकेऽपि च॥
जीर्णज्वरे च श्वयथौ सन्निपाते कफोल्बणे।
बलासप्रबलं त्यक्त्वा धातुं वातात्मकं नयेत्।
सेवनात्सर्वरोगघ्नः श्लेष्मकालानलो रसः॥'

यहां शुद्ध तुत्थ तथा त्रिकटु चूर्ण अधिक है। व्याधिघातफल अमलतास को कहते हैं। अतः मूल के पाठ में 'वनराजफल' से अमलतास ही लेना योग्य है॥ १३—१६॥

महालक्ष्मीविलासः—

पलं वज्राभ्रचूर्णस्य तदर्द्धो गन्धको भवेत्।
तदर्द्धं वङ्गभस्मापि तदर्द्धः पारदस्तथा॥ १७॥

---

१ 'तदर्द्धौ गन्धपारदौ' पा०।

२ 'तदर्धं तारकं तथा' पा०।

तत्समं हरितालश्च[1] तदर्द्धं ताम्रभस्मकम् ।
रसतुल्यश्च[2] कर्पूरं जातीकोषफले तथा ॥ १८ ॥
वृद्धदारकबीजश्च बीजं स्वर्णफलस्य च ।
प्रत्येकं कार्षिकं भागं मृतस्वर्णश्च[3] शाणकम् ॥ १९ ॥
निष्पिष्य वटिका कार्य्या द्विगुञ्जाफलमानतः ।
निहन्ति सन्निपातोत्थान् गदान् घोरान् सुदारुणान् ॥ २० ॥
गलोत्थानन्त्रवृद्धिश्च[4] तथाऽतीसारमेव च ।
कुष्ठमेकादशविधं प्रमेहान् विंशतिं तथा ॥ २१ ॥
श्लीपदं कफवातोत्थं चिरजं कुलजं तथा ।
नाडीव्रणं व्रणं घोरं गुदामयभगन्दरम् ॥ २२ ॥
कासपीनसयक्ष्मार्शः-स्थौल्यदौर्गन्ध्यरक्तनुत् ।
आमवातं सर्वरूपं जिह्वास्तम्भं गलग्रहम् ॥ २३ ॥
उदरं कर्णनासाक्षिमुखवैजात्यमेव[5] च ।
सर्वशूलं शिरःशूलं स्त्रीरोगश्च विनाशयेत् ॥ २४ ॥
वटिकां प्रातरेकैकां खादेन्नित्यं यथाबलम् ।
अनुपानमिह प्रोक्तं मांसं पिष्टं पयो दधि ॥ २५ ॥
वारिभक्तं[6] सुरासीधुसेवनात् कामरूपधृक् ।
वृद्धोऽपि तरुणस्पर्द्धी न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥ २६ ॥

---

१ 'माक्षिकञ्चैव' पा० । २ 'रससाम्यं' पा० ।
३ 'मृतस्वर्णं द्विशाणकम्' पा० ।
४ 'गलोत्थानराडवृद्धिश्च' पा० ।
५ 'मुखानां जाड्यमेव च' ।'मुखवैजाड्यमेव च' पा० ।
६ 'वारि तक्रं' पा० ।

न च लिङ्गस्य शैथिल्यं न केशा यान्ति पक्कताम् ।
नित्यं गच्छेत् शतं स्त्रीणां मत्तवारणविक्रमः ॥ २७ ॥
द्विलक्षयोजनी दृष्टिर्जायते पौष्टिकं तथा ।
प्रोक्तः प्रयोगराजोऽयं नारदेन महात्मना ॥ २८ ॥
महालक्ष्मीविलासोऽयं वासुदेवो जगत्पतिः ।
प्रसादादस्य भगवान् लक्षनारीषु वल्लभः ॥ २९ ॥

वज्राभ्रक की भस्म एक पल, शुद्ध गन्धक आधा पल, वंगभस्म एक कर्ष, शुद्ध पारा आधा कर्ष, शुद्ध हड़ताल आधा कर्ष, ताम्रभस्म चौथाई कर्ष, कर्पूर आधा कर्ष, जायफल एक कर्ष, जावित्री एक कर्ष, शोधित विधारे के बीज एक कर्ष, शुद्ध धतूरे के बीज एक कर्ष, स्वर्णभस्म एक शाण ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य सब द्रव्य मिलाकर खरल करे और जल से पीसकर दो रत्ति भर की गोली बना ले। यह रस सन्निपात से उत्पन्न महा भयंकर रोगों को नाश करता है। गले के रोग, अन्त्रवृद्धि, अतीसार, ग्यारह प्रकार के कुष्ठ, बीस प्रकार के प्रमेह, कफवात से उत्पन्न पुराना वा कुलक्रमागत श्लीपदरोग, नासूर, घोर व्रण, गुदा के रोग, भगन्दर, खांसी पीनस, राजयक्ष्मा, बवासीर, स्थूलता, देह का दुर्गन्ध युक्त होना, रक्तदोष, सब प्रकार का आमवात, जिह्वास्तम्भ, गलग्रह, उदररोग, कर्णरोग, नाक के रोग, आंख के रोग, मुख के रोग, सब प्रकार के शूल, सिरदर्द, स्त्रीरोग, इन सब रोगों को नाश करता है। इसकी एक गोली नित्य प्रातःकाल बलानुसार खाने और ऊपर से मांस, पिष्ट (चावल के आटे के पदार्थ), दूध, दही, वारिभक्त (ओदन को पकाकर तत्काल शीतलजल में डालने से वह ओदन वारिभक्त कहाता है), सुरा, सीधु का अनुपान सेवन करने से कामदेव के समान रूप हो जाता है। वृद्ध भी युवा के समान शक्त हो जाता है। वीर्य्य का क्षय नहीं होता। लिंग शिथिल नहीं होता। बाल पकते नहीं नित्य सौ स्त्रियों को भोग सकता है। मस्त हाथी के समान विक्रमी हो जाता है। दो लाख योजन की दृष्टि हो जाती है। यह अत्यन्त पौष्टिक है।

यह योगराज महात्मा नारद ने कहा था। इसके प्रभाव से श्रीकृष्ण भगवान लाखों स्त्रियों के प्रिय हो गये थे। इसका नाम महालक्ष्मीविलास है।

विशेषवचन—इसे पान के रस से घोटकर भी बनाते हैं। जो पाठान्तर टिप्पणी में दिये हैं उसके अनुसार यह योग इसप्रकार होता है—

वज्राभ्रकभस्म १ पल, पारा आधा पल, गन्धक आधा पल, वङ्गभस्म १ कर्ष, रजतभस्म आधा कर्ष, स्वर्णमाक्षिकभस्म आधा कर्ष, ताम्रभस्म, चौथाई कर्ष, कर्पूर आधा पल, जावित्री, जायफल, विधारे के बीज, धतूरे के बीज; प्रत्येक १ कर्ष, स्वर्णभस्म २ शाण (१ कोल=आधा कर्ष)।

यह भी नारदीय महालक्ष्मीविलास है। जो यहां रसायनाधिकार में नारदीय लक्ष्मीविलास कहा है वह इससे भिन्न है। गुणनिर्देश एक ही है ॥ १७—२६ ॥

कफकेतु रसः—

टङ्कणं मागधी शङ्खं वत्सनाभं समं समम् ।
आर्द्रकस्य रसेनैव भावयेद्दिवसत्रयम् ॥ ३० ॥
गुञ्जामात्रं प्रदातव्यमार्द्रकस्य रसेन वै ।
पीनसं श्वासकासञ्च गलरोगं गलग्रहम् ॥ ३१ ॥
दन्तरोगं कर्णरोगं नेत्ररोगं सुदारुणम् ।
सन्निपातं निहन्त्याशु कफकेतुरसोत्तमः ॥ ३२ ॥

शुद्ध सुहागा, पिप्पली का चूर्ण, शंखभस्म, शुद्ध वत्सनाभ विष; प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर सबको एकत्र खरल करे और अदेरक का रस डालकर तीन दिन भावना देवे। इसे कफकेतु रस कहते हैं। इसे एक रत्ति भर लेकर अदरक के रस से देवे तो पीनस (प्रतिश्याय), श्वास, कास, गलरोग, गलग्रह, दांत के रोग, कान के रोग, नेत्ररोग तथा सान्निपात के रोग दूर होते हैं।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—आधी रत्ती। 'कफकेतु' नाम से एक और रस भी है जो कफरोगों में दिया जाता है—

१ 'शुद्धं' पा०।

'दग्धशङ्खं त्रिकटुकं टङ्कणं समभागकम् ।
विषञ्च पञ्चभिस्तुल्यमार्द्रतोयेन मर्दयेत् ॥
वारत्रयं रक्तिकाञ्च वटीं कुर्याद्विचक्षणः ।
प्रातः सायं च वटिकाद्वयमार्द्रकवारिणा ॥
कफकेतुः कण्ठरोगं शिरोरोगञ्च नाशयेत् ।
पीनसं कफसङ्घातं सन्निपातं सुदारुणम् ॥'

शङ्खभस्म, सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली, सुहागा; प्रत्येक १ भाग, शुद्ध वत्सनाभ ५ भाग। अदरक के रस से तीन वार मर्दन करके वटी बनावें। दिन में दो वार दें। अनुपान अदरक का रस। इसकी आधुनिक मात्रा-$\frac{3}{4}$ रत्ती।

इसके अतिरिक्त कफकेतु रस के तीन चार योग और भी हैं। परन्तु अधिकतर इन्हीं दो का आजकल व्यवहार है ॥ ३०—३२ ॥

कफचिन्तामणि रसः—

हिङ्गुलेन्द्रयवं टङ्कं त्रैलोक्यबीजमेव च ।
मरिचञ्च समं सर्वं भस्मसूतं त्रिभागिकम्[1] ॥ ३३ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव मर्दयेद् याममात्रकम् ।
चणकाभा वटी कार्य्या सर्ववातप्रशान्तये ।
कफरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३४ ॥

शुद्ध हिंगुल, इन्द्रजौ, शुद्ध सुहागा, भांग के शुद्ध बीज, मिरच; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला, रससिन्दूर तीन तोला ले। सब द्रव्यों को एकत्र पीसकर अदरक के रस से एक पहर घोटकर चने के समान गोली बनावें। इसके सेवन से सब प्रकार के वातरोग शान्त होते हैं। यह कफचिन्तामणि रस कफरोग को ऐसे नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकार को।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ रत्ती ॥ ३३—३४ ॥

इति कफरोग-चिकित्सा ।

---

१ 'त्रिभागं रससिन्दुरम्' पा० ।

अथ पित्तरोगचिकित्सा ।

गुडूच्यादिलौहम्—

गुडूचीसारसंयुक्तं त्रिकत्रययुतं[1] त्वयः ।
वातरक्तं निहन्त्याशु सर्ववातहरं[2] परम् ॥ १ ॥

गिलोय का सत, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, विडंग, मोथा, चीता; इन सब द्रव्यों के चूर्ण को समभाग लेकर, और इस मिले चूर्ण के समान लौहभस्म मिलाकर खरल करके रखे। इसका नाम गुडूच्यादि लौह है। यह वातरक्त को शीघ्र नाश करता है तथा सब प्रकार के वातरोग (और पित्त रोगों को भी) दूर करता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—२ रत्ती। यह वातरक्त की व्याधिविपरीत औषध समझी जाती है। पित्त के कारण हाथ पैर आदि में जलन हो तो इसे धनियां के जल वा पटोलपत्र के क्वाथ से दिया जाता है ॥ १ ॥

धात्रीलौहम्—

धात्रीचूर्णस्याष्टौ पलानि चत्वारि लोहचूर्णस्य ।
यष्टीमधुकरजश्च द्विपलं दद्यात् पटे घृष्टम् ॥ २ ॥
अमृता[3]क्काथेनैतद्[4]भाव्यं चूर्णन्तु सप्ताहम् ।
चण्डातपे सुशुष्कं भूयः पिष्ट्वा[5] नवे घटे स्थाप्यम् ॥ ३ ॥
घृते[6]न मधुना युक्तं भोजनाद्यन्तमध्यतः ।

१ 'त्रिकत्रयसमायुतम्' 'त्रिकत्रयसमन्वयात्' पा० ।
२ 'सर्वरोगहरं ह्ययः' पा० । 'सर्वरोगहरोऽपि सन्' पा० ।
३ अत्र अमृता आमलकीति भानुदासः । अन्ये गुडूचीमाहुः ।
४ ' अमृताक्काथेन तच्चूर्णं भाव्यं च सप्त सप्ताहम् । ' पा० ।
५ 'पिष्टं घटे स्थितम्' पा० ।
६ 'मधुघृतमधुना संयुक्तं भक्तादौ मध्यतोन्तेन' र. र. पाठः ।

त्रीन्[1] वारान् भक्षयेन्नित्यं पथ्यं दोषानुबन्धतः ॥ ४ ॥
भक्तस्यादौ[2] नाशयेच्च दोषान् पित्तकृतानपि ।
मध्ये चानाहविष्टब्धं तथान्ते चाग्निमान्द्यताम् ।
रक्तपित्तसमुद्भूतान् रोगान् हन्ति न संशयः ॥ ५ ॥

आंवले का चूर्ण आठ पल, लौहभस्म चार पल, मुलहठी का कपड़ छान किया चूर्ण दो पल; सब को मिला पीसकर, गिलोय के स्वरस से एक सप्ताह तक भावना देवे। फिर तेज़ धूप में सुखा, पीसकर नये मर्तबान वा शीशी में रखले। रोगी इसे घी और शहद से मिलाकर भोजन के आदि, मध्य और अन्त में तीन वार नित्य खावे और दोषानुसार पथ्य देवें। इसे भोजन के आदि में खाने से पित्त के दोष दूर होते हैं। भोजन के मध्य में खाने से आनाह तथा विष्टम्भ दूर होता है। अन्त में खाने से यह अग्निमान्द्य को हटाता है। यह रक्तपित्त से उत्पन्न हुए रोगों को दूर करता है—इस में संशय नहीं।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा–३ रत्ती से ६ रत्ती तक। तन्त्रान्तरों में यह रस शूलाधिकार में है। यह शूल तथा अम्लपित्त को विशेषतः नष्ट करता है।

रसरत्नाकर के पाठ के अनुसार भोजन के आदि में मधु से, भोजन के मध्य में घी से, और भोजन के अन्त में मधु से देना चाहिये। भोजन के आदि में खाने से पित्त तथा वायु के रोग शान्त होते हैं। मध्य में सेवन से विष्टम्भ नहीं होता और अन्न का विदाह भी नहीं होता। अन्त में सेवन से भोजन के बाद जल आदि द्रवों के पीने से उत्पन्न दोष नहीं होने पाते। यह योग नेत्रों के लिये भी हितकर है। अकाल पलित को हटाता है। कफपित्तज

---

१ 'त्रीनपि वारान् खादेत्पथ्यं दोषानुबन्धेन ।' र. र., भै. र. पाठः ।

२ 'भक्तादौ नाशयति रोगान् पित्तानिलोद्भूतान् । मध्येऽन्नं विष्टम्भं जयति च च नृणां विदह्यते नान्नम् ॥ पानान्तु ('पानान्न' भै. र.) कृतान् भुक्तान्ते शीलितो जयति । एवं जीर्यति चान्नं शूलं नृणां सुकष्टमुपहन्ति ॥

हरति च सहसा युक्तो योगश्चायं जरत्पित्तम् ।
चक्षुष्यः पलितघ्नः कफपित्त-समुद्भवान् जयेद्रोगान् ।
प्रसादयत्यपि रक्तं पाण्डुत्वं कामलां जयति ॥' र. र. पाठः ।

रोग, पाण्डु और कामला भी नष्ट होते हैं। रक्त को निर्मल करता है।

कई यहां 'अमृता' से आंवला लेते हैं और उसी के रस की ७ भावना देते हैं॥ २—५॥

पित्तान्तको रसः—

जातीकोषफले मांसी कुष्ठं तालीशपत्रकम्।
माक्षिकं मृतलौहञ्च अभ्रं दिव्यं समांशिकम्॥ ६॥
सर्वतुल्यं मृतं तारं समं निष्पिष्य वारिणा।
द्विगुञ्जाभा वटी कार्य्या पित्तरोगविनाशिनी॥ ७॥
कोष्ठाश्रितञ्च यत् पित्तं शाखाश्रितमथापि वा।
शूलञ्चैवाम्लपित्तञ्च पाण्डुरोगं हलीमकम्॥ ८॥
दुर्नाम-भ्रान्तिवान्ती च क्षिप्रमेव विनाशयेत्।
रसः पित्तान्तको ह्येष काशिराजेन भाषितः॥ ९॥

जावित्री, जायफल, जटामांसी, कुष्ठ, तालीशपत्र, स्वर्णमाक्षिकभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध मनशिल; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग ले। सब चूर्ण के बराबर चांदीभस्म ले। फिर इन सब को पीसकर पानी से दो रत्ति भर की गोली बनाले। इसके सेवन से पित्तरोग शान्त होते हैं। कोष्ठाश्रित वा शाखाश्रित (रक्त आदि धातु गत) पित्त, शूल, अम्लपित्त, पाण्डु, हलीमक, बवासीर, भ्रम, वमन; इन सब रोगों को यह पित्तान्तक रस शीघ्र नाश करता है। इसे काशीराज ने कहा है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ रत्ती।

अथवा यहां 'अभ्रं दिव्यं' से दिव्याभ्ररसायन नाम से उक्त अभ्रसत्त्वभस्म लेनी चाहिये। तब मनःशिला न ली जायगी।

'सत्त्वस्य गोलकं ध्मातं सस्यसंयुक्तकाञ्जिके।
निर्वाप्य तत्क्षणेनैव कुट्टयेल्लोहपारया॥
संप्रताप्य घनस्थूलकणान् क्षिप्त्वाथ काञ्जिके।
तत्क्षणेन समाहृत्य कुट्टयित्वा रजश्चरेत्।

गोघृतेन च तच्चूर्णं भर्जयेत् पूर्ववत् त्रिधा ।
धात्रिफलरसैस्तद्वत् धात्रीपत्ररसेन वा ॥
भर्जने भर्जने कार्यं शिलापट्टेन पेषणम् ।
ततः पुनर्नवावासारसैः काञ्जिकमिश्रितैः ॥
प्रपुटेद्दशवाराणि दशवाराणि गन्धकैः ।
एवं संशोधितं व्योमसत्त्वं सर्वगुणोत्तरम् ॥
यथेष्टं विनियोक्तव्यं जारणे च रसायने ॥
वेल्लव्योषसमन्वितं घृतयुतं वल्लोन्मितं सेवितं
दिव्याभ्रं क्षयपाण्डुरुग्ग्रहणिकाशूलामकुष्ठामयम् ।
ऊर्ध्वश्वासगतं प्रमेहमरुचिं कासामयं दुर्धरं
मन्दाग्निं जठरव्यथां विजयते योगैरशेषामयान् ॥'

अभ्रकसत्त्व के गोलक को अग्नि में लालकर धानयुक्त कांजी में बुझाये और लोहदण्ड से कूट ले । जो मोटे कण हों उन्हें पुनः गरम करके कांजी में बुझाते जांय । पश्चात् कूटकर चूर्ण कर लें । पुनः गौ के घी से तर करके कड़ाही में रख तीव्र आग दें जिससे अंगारों के सदृश लाल हो जाय । भूनने में पूर्व लोहे की कड़छी से हिलाते भी रहना चाहिये । पुनः इसे उतार कर ठण्डा होने पर कूटें । दुबारा फिर घी मिलाकर पूर्ववत् आग पर लाल करें । ऐसा ही तीसरी वार भी करके आंवले के रस से भी तीन वार भर्जन करे । इसके बाद आंवले के पत्तों के रस से भी तीन वार भर्जन करे । प्रत्येक वार भूनने के वाद उसे पीस वा कूट लेना चाहिये । फिर पुनर्नवा के रस और कांजी से एकत्र घोट२ कर १० पुट दें । इसी प्रकार कांजी मिश्रित बांसे के रस से दस पुटें द । अन्त में समभाग शुद्ध गन्धक मिला दस पुट दें । यह अभ्रसत्त्व-भस्म दिव्याभ्र कहाती है । इसका जारणकर्म और रसायन में उपयोग करना चाहिये ॥ ६—९ ॥

महापित्तान्तको रसः—

यद्यत्र माक्षिकं त्यक्त्वा सुवर्णमपि दीयते ।
महापित्तान्तको नाम सर्वपित्तविनाशनः ॥ १० ॥

यदि पूर्वोक्त पित्तान्तक रस में स्वर्णमाक्षिकभस्म के स्थान में स्वर्णभस्म

डालदी जाय तो इसे महापित्तान्तक रस कहते हैं। और यह सब प्रकार के पित्तरोगों का विनाश करता है ॥ १० ॥

इति पित्तरोग-चिकित्सा ॥

——:०:——

अथ वातरक्तचिकित्सा

लाङ्गलाद्यं लौहम्—

विशुद्धलाङ्गलीमूल-त्रिकटुत्रिफलैस्तथा[1]।
द्राक्षागुग्गुलुभिस्तुल्यं लौहचूर्णं नियोजयेत् ॥ १ ॥
मातुलुङ्गरसेनैव त्रिफलाया रसेन च।
विमृद्य यत्नतः पश्चात् गुडिकां कोलसम्मिताम् ॥ २ ॥
भक्षयेन्मधुना सार्द्धं करोति शृणु यान् गुणान्।
आजानु[2] स्फुटितं घोरं सर्वाङ्गस्फुटितं तथा।
तत्सर्वं नाशयत्याशु साध्यासाध्यश्च शोणितम् ॥ ३ ॥

शुद्ध कलिहारी की जड़, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, मुनक्का, शुद्ध गुग्गुल; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग लें और सबके समभाग लौहभस्म लें; इन सबको मिला पीसकर मातुलुङ्ग अर्थात् बिजौरे के रस से तथा त्रिफला के रस से मर्दन करके बेर के समान गोली बनाले। इसे शहद से मिलाकर सेवन करना चाहिये। घुटनों तक फटे हुए वा सर्वाङ्ग फटे हुए साध्य या असाध्य घोर वातरक्त को दूर करता हैं।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—२ रत्ती।

रसरत्नाकर के पाठ के अनुसार गिलोय का चूर्ण भी १ भाग डालना चाहिये। इस के साथ ही लौहभस्म का भी एक भाग बढ़ जायगा। गिलोय वातरक्त में अत्यन्त हितकर है।

---

१ 'लाङ्गल्या मूलमुद्धृत्य त्रिकटुत्रिफलामृता' र. र. पाठः।

२ 'पादस्फोटं महाघोरं सर्वगात्रस्य स्फोटनम्' र. र. पाठः।

शुद्ध गुग्गुल को बिजौरे के रस वा त्रिफलाक्काथ में भिगो कर शिला पर पीस लेना चाहिये। पश्चात् अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलायें ॥ १—३ ॥

वातरक्तान्तको रसः—

गन्धकं पारदं लौहं शिलां तालं घनं तथा।
शिलाजतु पुरं शुद्धं समभागं विचूर्णयेत् ॥ ४ ॥
श्वेतापराजिता दार्वी वागुजी चित्रकं तथा।
पुनर्नवा देवकाष्ठं त्रिफला व्योषवेल्लकम् ॥ ५ ॥
चूर्णमेषां पृथक् तुल्यं सर्वमेकत्र कारयेत्।
त्रिफलाभृङ्गराजस्य रसेनैव त्रिधा त्रिधा ॥ ६ ॥
भावयेत् भक्षयेत् पश्चात् चणमात्रं दिने दिने।
ततोऽनुपानं निम्बस्य पत्रं पुष्पं त्वचं समम् ॥ ७ ॥
शाणमात्रं घृतैः कुर्य्यात् सर्ववातविकारनुत्।
वातरक्तं महाघोरं गम्भीरं सर्वजश्च यत् ॥
सर्वोपद्रवसंयुक्तं साध्यासाध्यं निहन्त्यलम् ॥ ८ ॥

शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा; प्रत्येक एक २ तोला लेकर कज्जली करे। फिर लौहभस्म, शुद्ध मनसिल, शुद्ध हड़ताल, अभ्रकभस्म, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध गुग्गुल; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला। विष्णुक्रान्ता, दारुहल्दी, कालीजीरी, चीता, पुनर्नवा, देवदार, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, वायविडंग; प्रत्येक का चूर्ण एक २ तोला लें। सब द्रव्यों को एकत्र मिला कर त्रिफला और भांगरे के रस से तीन २ वार भावना देवें। फिर चने के

---

३ 'विडङ्गं त्रिफला व्योषमब्धिफेनं पुनर्नवा। देवदारु चित्रकञ्च दार्वी श्वेतापराजिता।' र. र. पाठः।

१ 'भावना खलु दातव्या ततः सञ्चूर्ण्य भक्षयेत्। मधुना माषमात्रञ्च प्रातःकाले दिने दिने। कृत्वानुपानं' र. र. पाठः। 'सम्भाव्य भक्षयेत्पश्चान्माषमात्रं दिने दिने। कृत्वानुपानं' भै. र. पाठः।

समान गोली बनावें। रोगी इसे प्रतिदिन सेवन करे। अनुपान में नीम के पत्ते फूल और छाल; प्रत्येक का चूर्ण समभाग लेकर कुल एक शाणभर ले और उस में घी मिलाकर खावे तो सब प्रकार के वातरोग दूर होते हैं। यह रस महा-घोर गम्भीर सर्वांगगत तथा सर्व उपद्रवयुक्त साध्य तथा असाध्य वातरक्त को नष्ट करता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा-१ रत्ती। अनुपान की मात्रा-१ मासा।

रसरत्नाकर वा भैषज्यरत्नावली में इस योग में काली जीरी नहीं है। उसके स्थान पर समुद्रफेन है ॥ ४—८ ॥

तालभस्म—

हरितालं पलं शुद्धं तथा कर्षं विषस्य च।
श्वेताङ्कोठरसेनैव द्वयमेकत्र खल्लयेत् ॥ ९ ॥
पलाशभस्म द्विपलं निधाय स्थालिकोपरि।
तद्भस्मोपरि तालस्य गोलकं स्थापयेत् सुधीः ॥ १० ॥
तस्योपरि ह्यपामार्गभस्म दद्यात् पलत्रयम्।
स्थालीमुखे शरावञ्च दद्याद् यत्नेन लेपयेत् ॥ ११ ॥
लेपयित्वा ततश्चुल्ल्यामहोरात्रं पचेद् भिषक्।
ततस्तु जायते भस्म शुद्धकर्पूरसन्निभम् ॥ १२ ॥
गुञ्जात्रयं ततो भक्ष्यमनुपानविशेषतः।
कटिग्रहश्च कुष्ठञ्च दद्रुविस्फोटकापचीन् ॥ १३ ॥
विचर्चिकां चर्मदलं वातरक्तञ्च[1] शोणितम्।
रक्तपित्तं तथा शोषं[2] गलत्कुष्ठं विनाशयेत्।
हलीमकं तथा शूलमग्निमान्द्यमरोचकम् ॥ १४ ॥

शुद्ध हड़ताल एक पल, शुद्ध विष एक कर्ष; दोनों को पीस के श्वेत अङ्कोल के रस से खूब खरल करे। पश्चात् गोलक वा टिकिया बना

१ 'वातरक्तञ्च' पा०। २ 'शोथं' पा०।

धूप में सुखा ले। एक हांडी में ढाक की भस्म दो पल रखकर ऊपर हड़ताल की टिकिया रखे। फिर ऊपर से अपामार्ग की भस्म तीन पल रख दे और हांडी का मुख एक शराव से बन्दकर यत्नपूर्वक लीप देवे। सूख जाने पर एक दिन रात (२४ घण्टे) चूल्हे पर पकावे। इसप्रकार शुद्ध कर्पूर के समान श्वेत भस्म हो जाती है। इसको तीन रत्ति मात्रा में सेवन करना चाहिये। अनुपान की भिन्नता से यह भस्म कटिग्रह (कमरदर्द), कुष्ठ, दद्रु, विस्फोटक, अपची, विचर्चिका, चर्मदल, वातरक्त, खून के अन्य रोग, रक्तपित्त, शोष, गलत्कुष्ठ, हलीमक, शूल, अग्निमान्द्य और अरोचक; इन रोगों को नष्ट करती है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा-चौथाई रत्ती से आधी रत्ती तक।

ढाक वा अपामार्ग की भस्म पूर्ण रूप से की हुई हो। भस्म में कोयले का अंश न होना चाहिये। भस्मों को वस्त्र से छान लें। हांडी में नीचे जो ढाक की भस्म रखनी है, वह दबाकर रखें जिससे थड़ी दृढ़ बने। उस पर हड़ताल की टिकिया रखें। ऊपर से अपामार्ग की भस्म दबा के देनी चाहिये। हांडी इतनी होनी चाहिये जिसमें उसके मुख तक यह सब कुछ दबकर भर जाय। पश्चात् मुख पर शराव देकर सन्धिलेप कर दें। हांडी पर पूर्व ही कपड़मिट्टी कर रखनी चाहिये। सन्धिलेप के सूख जाने पर आराम से हांडी को चूल्हे पर रख दें, बहुत हिलायें जुलायें नहीं। जिससे कहीं अन्दर दबाकर रखी भस्म ढीली न होजाय। नीचे से मन्द २ आंच दें। ताल की श्वेत भस्म होजायगी। शीतल होने पर इसे निकाल लें और वातरक्त आदि में उन २ रोगनाशक अनुपानों से प्रयोग करावें।

इस योग को 'तालकेश्वर' नाम से तन्त्रान्तर में कहा है॥ ९—१४॥

महातालेश्वरो रसः—

तथा सिद्धेन तालेन गन्धतुल्येन मेलयेत्।
द्वयोस्तुल्यं जीर्णताम्रं वालुकायन्त्रगं पचेत्॥ १५॥
अयं तालेश्वरो नाम रसः परमदुर्लभः।
हन्यात् कुष्ठानि सर्वाणि वातरक्तमथापि वा॥ १६॥

शूलमष्टविधं श्वित्रं रसस्तालेश्वरो महान् ॥ १७ ॥

उपर्युक्त तालभस्म एक तोला, शुद्ध गन्धक एक तोला, ताम्रभस्म दो तोला; सब को खरल करके बालुकायन्त्र में पकावे। यह तालेश्वर रस परम दुर्लभ है। इससे सब प्रकार के कुष्ठ, वातरक्त, आठों प्रकार के शूल, तथा श्वेत कुष्ठ दूर होते हैं।

विशेषवचन—आजकल आधी रत्ती मात्रा में यह रस प्रयुक्त कराया जाता है।

यहां पर यतः उक्त तालभस्म के पश्चात् इस योग को कहा है अतः वही तालभस्म ली जाती है। परन्तु यह योग अन्य विधि से प्रस्तुत तालभस्म से भी तयार किया जा सकता है, जैसे रसेन्द्रचिन्तामणि में तालेश्वर रस है—

'सम्यक् पत्रीकृतं तालं कूष्माण्डसलिले शनैः।
चूर्णोदके पृथक् तैले दोलायन्त्रे दिनं दिनम् ॥
शोधयित्वा तदम्लेन दध्नालोड्य विमर्दयेत्।
खल्वे लौहमये वापि गाढं यामद्वयं पुनः ॥
पुनर्नवायाः क्षारेण संयोज्य घनतां नयेत्।
दधि किञ्चित्पुनर्दत्त्वा घनीभूतं निवेशयेत् ॥
स्थाल्यां दृढतरायाञ्च क्षारे पौनर्नवे पुनः।
रोटिकासदृशं कृत्वा शरावेण पिधापयेत् ॥
पचेत्तावद्भवेत्तारं शङ्खकुन्देन्दुसन्निभम्।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य पुनरग्नौ परीक्षयेत् ॥
क्षिप्तमग्नौ च निर्धूमं दृश्यते न निलीयते।
तदा सिद्धिं विजानीयाद् योजयेत्सर्वकर्मसु ॥
एवं सिद्धेन तालेन गन्धतुल्येन मेलयेत्।
द्वयोस्तुल्यं जीर्णताम्रं वालुकायन्त्रपाचितम् ॥
अयं तालेश्वरो नाम रसः परमदुर्लभः।
हन्यात्कुष्ठान्यशेषाणि वातशोणितनाशनः ॥
वातमण्डलमत्युग्रं स्फुटितं गलितं तथा।
कुष्ठरोगं सर्वजातं नाशयेदविकल्पतः ॥

दुष्टव्रणं च वीसर्पं त्वग्दोषानाशु नाशयेत् ।
वातमण्डलकुष्ठानामौषधं नास्त्यतः परम् ॥
दृष्टो योगशतासाध्यरोगवारणकेसरी ॥'

यहां पर पूर्व पेठे का रस, चूने का पानी तथा तिलतैल से दोलायन्त्र द्वारा हड़ताल के शोधन की विधि बता कर खट्टी दही से मर्दन करने को कहा है, पुनः उसमें पुनर्नवा का क्षार समभाग मिलाकर कुछ खट्टी दही पुनः डाल मर्दन करके टिकिया बनानी है। इसे पश्चात् ऊपर नीचे पुनर्नवा का क्षार देकर पाक करना है। श्वेत रंग की भस्म होगी। इसके पश्चात् प्रकृतग्रन्थ के महातालेश्वर के योग का पाठ वैसा का वैसा ही है। गुणनिर्देश उससे विस्तृत है। प्रकृत ग्रन्थ के योग का पाठ यहीं से लिया प्रतीत होता है।

भैषज्यरत्नावली में भी[1] कुष्ठाधिकार में महातालेश्वर रस है। वहां भी भावना और मर्दन द्वारा शोधन विधि कह कर पलाशक्षार में टिकिया को रख भस्म करने को कहा है। योग का असली पाठ (एवं सिद्धेन तालेन) इत्यादि प्रकृतग्रन्थ के समान ही है।

इसके अतिरिक्त यह भी जान लेना चाहिये कि यदि ताम्र की भस्म हड़ताल के योग से की जाय तो वह भी वातरक्त में प्रयोगार्थ अत्युत्तम मानी गई है।

---

१ 'सम्मर्द्य तालकं क्षुण्णं वंशपत्राख्यमुच्चकैः । कूष्माण्डनीरे सम्भाव्य त्रिदिनं शोषयेत्पुनः ॥ घृतकन्याद्रवैर्भूयो भावयेच्च दिनत्रयम् । सम्मर्द्य काञ्जिकेनैव दध्नाम्लेन विमर्दयेत् ॥ सम्मर्द्य चूर्णसलिले रसे पौनर्णवे पुनः । त्रिदिनं मर्दयित्वा तु कारयेद्रोटिकाकृतिम् ॥ स्थाल्यां दृढतरायां तु पलाशक्षारसञ्चयम् । उपर्यधस्तालकस्य क्षारं दत्त्वा शरावकैः ॥ पिधाय लेपयेद्यत्नात्पूरयेत्क्षारसञ्चयम् । पुना रुद्धं शरावेण लेपयेत्तद् दृढं ततः ॥ द्वात्रिंशद्यामपर्यन्तं वह्निज्वाला प्रदीयते । एवं सिद्धेन तालेन गन्धतुल्येन मेलयेत् ॥ द्वयोस्तुल्यं जीर्णताम्रं वालुकायन्त्रगं पचेत् । अयं तालेश्वरो नाम रसः परमदुर्लभः ॥ हन्त्यष्टादशकुष्ठानि वातशोणितनाशनः । रक्तमण्डलमत्युग्रं स्फुटितं गलितं तथा । बहुरूपं सर्वजातं नाशयेदविकल्पतः ॥ दुष्टव्रणञ्च वीसर्पं त्वग्दोषञ्च विनाशयेत् । दृष्टो वारसहस्रञ्च रोगवारणकेशरी ॥ इति भैषज्यरत्नावल्यां महातालेश्वरो रसः ।

'तालेन निहतं ताम्रं रसगन्धकसंयुतम् ।
बहुधा पुटितं तालं वातरक्ते महौषधम् ॥' १६—१७ ॥

विश्वेश्वरो रसः—

रसाद्दश विषात्पञ्च गन्धकाद्दश शोधितात् ।
तुत्थाद्दश पलाशस्य बीजेभ्यः पञ्च कारयेत् ॥ १८ ॥
क्षुद्राश्वमारधुस्तूर—नीलीतः करहाटकात् ।
दशकं दशकं कुर्यात् शोषयित्वा जटात्वचः ॥ १९ ॥
दशकं दशकं दत्त्वा कुचिलाद्दश नूतनात् ।
भल्लातकाच्च दशकं चूर्णयित्वा भिषक् ततः ॥ २० ॥
सुदिने च बलिं दत्त्वा वैद्यः पूजापरायणः ।
रक्तिकाद्वितयं दद्यात् सहते यदि वा त्रयम् ॥ २१ ॥
वातरक्तं ज्वरं कुष्ठं खरस्पर्शमसौख्यदम् ।
आजानुस्फुटितं हन्ति विषजं वास्थिनिःसृतम् ॥ २२ ॥
कुष्ठमष्टादशविधमग्निमान्द्यमरोचकम् ।
विश्वेश्वरो रसो नाम विश्वनाथेन भाषितः ॥ २३ ॥

शुद्ध पारा दस तोला, शुद्ध विष पांच तोला, शुद्ध गन्धक दस तोला, शुद्ध नीलाथोथा दस तोला, ढाक के बीज पांच तोला ले । छोटी कटेली, कनेर, धतूरा, नीली (नील), अकरकरा; इन सब की जड़ों का छिलका सुखाकर पृथक्-पृथक् दस-दस तोला ले। शुद्ध कुचला दस तोला, शुद्ध भिलावा दस तोला ले । सब से पूर्व पारा गन्धक की कज्जली करके, शेष द्रव्यों का चूर्ण उक्त प्रमाण में उचित क्रम से मिला ले (और जल से घोट कर गोली बना ले)। उत्तम दिन बलि देकर पूजातत्पर वैद्य इस रस को दो रत्ति मात्रा में यदि रोगी सह सके तो तीन रत्ति मात्रा में देवे । यह वातरक्त, ज्वर, कुष्ठ, कठोर स्पर्शवाले, दुःख देने वाले, घुटनों तक फटे हुए, विष से उत्पन्न अथवा हड्डी निकल रही हो तो भी ऐसे, सब प्रकार के वात-

रक्त को यह रस अच्छा करता है। अठारह प्रकार के कुष्ट, अग्निमान्द्य, अरुचि; इन सब को भी यह विश्वनाथ का कहा हुआ विश्वेश्वर रस दूर करता है।

विशेषवचन—सामान्य मात्रा–१ रत्ती।

कई यहां 'जटात्वचः' से बालछड़ और दालचीनी भी दस-दस तोला लेते हैं; परन्तु वास्तव में यह ठीक नहीं। 'करहाट' से कई 'हाथजोड़ी लता' लेने को कहते हैं। और इसीप्रकार कई कुचिला और भिलावे संख्या में १० लेना बताते हैं।

अनुपान के तौर पर पीपलवृत्त की छाल का क्वाथ दे सकते हैं। भल्लातक होने के कारण औषध से पूर्व कुछ घी मुख में रख लेना चाहिये ॥१८–२३॥

वक्ष्यते कुष्ठरोगे यदौषधं भिषजां वरैः।
वातरक्ते प्रयुञ्जीत कुर्य्याच्च रक्तमोक्षणम् ॥ २४ ॥

जो जो औषध कुष्ठरोग में कही जांयगी उन का भी वातरक्त में प्रयोग करावें। वातरक्त में खून निकलवाने से भी लाभ होता है ॥ २४ ॥

इति वातरक्त-चिकित्सा।

अथोरुस्तम्भचिकित्सा।

गुञ्जाभद्ररसः—

निष्कत्रयं शुद्धसूतं निष्कद्वादश गन्धकम्।
गुञ्जाबीजश्च[1] षरिणष्कं जयन्ती निम्बबीजकम् ॥ १ ॥
प्रत्येकं निष्कमात्रन्तु निष्कं जैपालबीजकम्।
जया[2]जम्बीरधुस्तूर–काकमाचीद्रवैर्दिनम् ॥ २ ॥

१ 'गुञ्जाबीजं विषं निष्कं निम्बबीजं जया तथा' यो. र. पाठः।
२ 'जातीजम्बीर०' यो. र. पाठः।

भावयित्वा वटीं कुर्य्यात् चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः।
गुञ्जाभद्ररसो नाम हिङ्गुसैन्धवसंयुतः।
शमयत्युल्वणं दुःखमूरुस्तम्भं सुदारुणम्॥ ३॥

शुद्ध पारा तीन निष्क, शुद्ध गन्धक बारह निष्क, शुद्ध श्वेत रत्ति के बीज छः निष्क, जयन्ती के बीज एक निष्क, नीम के बीज एक निष्क, शुद्ध जमालगोटा एक निष्क; प्रत्येक द्रव्य को पीसकर जयन्ती, जम्बीरी, धतूरा और मकोय; इनके स्वरस से एक २ दिन भावित करके चार रत्ती प्रमाण की गोली बनावें। इस गुञ्जाभद्र रस को शुद्ध हींग और सेंधानमक से खावे तो भयंकर दुःखदायी ऊरुस्तम्भ रोग नष्ट होता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—२ रत्ती। अनुपान में घी का प्रयोग अवश्य करना चाहिये। अन्यथा रत्ती तीव्र विदाह करती है।

भैषज्यरत्नावली के पाठ में 'जयन्ती निम्बबीजकम्। प्रत्येकं निष्कमात्रन्तु' इतना पाठ नहीं है और उसी के अनुसार व्यवहार भी होने लगा है; परन्तु वह ठीक नहीं।

योगरत्नाकर में गुञ्जागर्भ नाम से रस है। उसके पाठ के अनुसार—

शुद्ध पारद १ निष्क, गन्धक १२ निष्क, शोधित गुञ्जाबीज (घुंघची-रत्ती), १ निष्क, शोधित विष १ निष्क (४ मासा=२४ रत्ती), शुद्ध जमाल गोटा १ मासा (६ रत्ती) लेकर चमेली के पत्तों का रस, जम्बीर का रस, धतूरे का रस, तथा मकोय का रस; इनसे पृथक् एक-एक दिन मर्दन करके दो रत्ती की गोली बनानी है। अनुपान वही हींग और सेन्धानमक है। घी से चाटना है। पथ्य में मण्ड देना चाहिये।

रसेन्द्रचिन्तामणि में गुञ्जागर्भ का पाठ इस प्रकार है—

'निष्कत्रयं रसस्यास्य गन्धकस्तुर्यभागिकः।
गन्धकेन जयाचूर्णं निम्बबीजं समानकम्॥

---

१ 'मर्द्य सर्वं वटीं कुर्याद् घृतैर्गुञ्जाद्वयं लिहेत्। गुञ्जागर्भो रसो नाम' यो.र.पाठः।

२ 'घृतैर्गुञ्जाचतुष्टयम्' पा०

३ 'समण्डं दापयेत्पथ्यमूरुस्तम्भप्रशान्तये' यो. र. पाठः।

गुञ्जाबीजं तदर्द्धं स्यात्तदर्द्धं जयपालकम् ।
निम्बुद्रवेण सम्मर्द्य काकमाच्या दिनान्तकम् ॥
धत्तूरकजयन्तीभ्यां गुटिकां कारयेत्सुधीः ।
गुञ्जागर्भरसो नाम्ना दातव्यो घृतसंयुतः ।
हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं मण्डं पथ्याय दापयेत् ॥'

जिसका अभिप्राय यह है कि पारद ३ निष्क (७२ रत्ती), गन्धक पारद का चतुर्थांश (१८ रत्ती), जयन्तीमूल चूर्ण १८ रत्ती, नीम के बीज १८ रत्ती, शोधित गुञ्जाबीज ६रत्ती, जयपाल ४॥ रत्ती लेकर इन्हें नीबू , मकोय, धतूरा, जयन्ती;इनके रसों से एक २ दिन घोटकर गुटिका बनावें । इसे घी से चटायें। पथ्य में हींग और सेन्धानमकयुक्त मण्ड दें ।

ये रस कफ और मेद के नाशक हैं । कफ वा मेद के आवरण के हटजाने पर ऊरुस्तम्भ की चिकित्सा सुगम हो जाती है ॥ १—३ ॥

शिलाजतु गुग्गुलुं वा पिप्पलीमथ नागरम् ।
ऊरुस्तम्भे पिबेत् मूत्रैर्दशमूलीरसेन वा ॥ ४ ॥

ऊरुस्तम्भ रोग में शुद्ध शिलाजीत अथवा शुद्ध गुग्गुल को अथवा पिप्पली को वा सोंठ को मात्रा में गौमूत्र से अथवा दशमूल के क्वाथ से पीवे।

विशेषवचन—ये सभी द्रव्य कफ मेद और वात के नाशक हैं ॥ ४ ॥

प्लीहाधिकारे कथितं रसेन्द्रं वारिशोषणम् ।
ऊरुस्तम्भे प्रयुञ्जीत चान्यद्वा योगवाहिकम् ॥ ५ ॥

आगे प्लीहाधिकार में जो वारिशोषण नाम का रस कहा जायगा उसे ऊरुस्तम्भ रोग में प्रयोग करे। इसी प्रकार अन्य योगवाही रस भी दिये जा सकते हैं ॥ ५ ॥

इति ऊरुस्तम्भ-चिकित्सा ।

अथामवातचिकित्सा ।

आमवातारिवटिका—

रसगन्धकलौहा[1]भ्रं तुत्थं टङ्कणसैन्धवम् ।
समभागं विचूर्ण्याथ चूर्णाद् द्विगुणगुग्गुलुः ॥ १ ॥
गुग्गुलोः पादिकं देयं त्रिवृतामूल[2]वल्कलम् ।
तत्समं चित्र[3]कं देयं घृतेन परिमर्दयेत् ॥ २ ॥
खादेत् माषद्वयञ्चास्य त्रिफलाचूर्ण[4]योगतः ।
आमवातारिवटिका पाचिका भेदिका मता ॥ ३ ॥
आमवातं निहन्त्याशु गुल्मशूलोदराणि च ।
[5]यकृत्प्लीहोदराष्ठीला—कामलापाण्ड्वरोचकान् ॥ ४ ॥
ग्रन्थिशूलं शिरःशूलं वातरोग[6]श्च गृध्रसीम् ।
गलगण्डं गण्डमालां क्रिमिकुष्ठ[7]भगन्दरान् ॥ ५ ॥
विद्रधिश्चान्त्रवृद्धिश्च ह्यर्शांसि गुदजानि च ।
आमवातारिवटिका पुरेशानेन चोदिता ॥ ६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध नीलाथोथा,

---

१ लौहार्कतुत्थटङ्कणसैन्धवान्' र. चि. पाठः ।

२ ' त्रिफलाचूर्णमुत्तमम् ' र. चि. पाठः ।

३ 'चित्रकस्याथ घृतेन वटिकां कुरु' र. चि. पाठः ।

४ 'त्रिफलाजलयोगतः' र. चि., भै. र. पाठः ।

५ 'यकृत्प्लीहानमष्ठीलां कामलां पाण्डुमुग्रकम् । हलीमकाम्लपित्ते च श्वयथुं श्लीपदार्बुदौ । ग्रन्थिशूलं' र. चि. पाठः ।

६ 'गृध्रसीं वातरोगहा । गलगण्डं गण्डमालां कृमिकुष्ठविनाशिनी । आध्मान-विद्रधिहरी चोदरव्याधिनाशिनी । आमवाते ह्यतीवोग्रे दुग्धं मुद्गांश्च वर्जयेत् ॥' पा० ।

७ ' कृमिकुष्ठं च नाशयेत् । विद्रधिं गर्दभानाहावन्त्रवृद्धिञ्च दारुणम्' भै.र. पाठः ।

शुद्ध सुहागा, सेंधानमक; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलायें। इसे सब चूर्ण से दुगुना अर्थात् चौदह तोले शुद्ध गूगल, गूगल का चौथाई भाग अर्थात् साढ़े तीन तोला त्रिवी की जड़ (मध्यकाष्ठरहित) का चूर्ण लें, चीते का चूर्ण भी साढ़े तीन तोला लें। पूर्व गुग्गुलु को घी के साथ कूटें। पश्चात् शेष चूर्ण मिलाकर अच्छी प्रकार कूट पीस रखें। इस को दो माशाभर लेकर त्रिफला के चूर्ण से खावें। यह आमवातारि वटी पाचक और भेदक है। आमवात को शीघ्र नाश करती है। गुल्म, शूल, उदररोग, यकृत, प्लीहारोग, अष्ठीला, कामला, पाण्डु, अरोचक, ग्रन्थिशूल, शिरःशूल, वातरोग, गृध्रसी, गलगण्ड, गण्डमाला, क्रिमि, कुष्ठ, भगन्दर, विद्रधि, अन्त्रवृद्धि तथा बवासीर, को नष्ट करती है। यह वटी पहले ईशानदेव ने बताई थी।

विशेषवचन – आधुनिक मात्रा–४ रत्ती।

भैषज्यरत्नावली रसेन्द्रचिन्तामणि प्रभृति तन्त्रों में अभ्रकभस्म के स्थान पर ताम्रभस्म है।

आमवात यदि भयंकर हो तो दूध तथा मूंग आदि दालों का त्याग करना आवश्यक है ॥ १—६ ॥

अपराऽऽमवातारि वटिका—

रसगन्धौ वरावह्नी गुग्गुलुः क्रमवर्धिताः।
एतदेरण्डतैलेन मर्दयेदतिचिक्कणम्[1] ॥ ७ ॥
कर्षोऽस्यैरण्डतैलेन हन्त्युष्णजलपायिनः।
आमवातमतीवोग्रं दुग्धं मुद्गादि वर्जयेत् ॥ ८ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला, त्रिफला मिलित तीन तोला, चीता का चूर्ण चार तोला, शुद्ध गुग्गुलु पांच तोला ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलावे और एरण्ड के तेल से मर्दन करके रखे। इसे एक कर्ष भर लेकर एरण्ड के तेल से खावे और अनुपान में गरम जल पीवे। अतीव उग्र आमवातरोग को यह वटी नष्ट करती है। रोगी

१ 'श्लक्ष्णचूर्णं प्रपेषयेत्' पा०।

दूध और मूंग आदि न खावे ॥ ७—८ ॥

आमवातेश्वरो रसः—

शुद्धगन्धः पलार्द्धश्च मृतताम्रश्च तत्समम् ।
ताम्रार्द्धः पारदः शुद्धो रसतुल्यं मृतायसम् ॥ ९ ॥
सर्वं पञ्चाङ्गुलेनैव[1] भावयेच्च पुनः पुनः ।
सञ्चूर्ण्य पञ्चकोलोत्थैः[2] क्वाथैः सर्वं विभावयेत् ॥ १० ॥
रौद्रे विंशतिवारांश्च गुडूचीनां रसैर्दश ।
भृष्टटङ्कणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत् ॥ ११ ॥
टङ्कणार्द्धं विडं देयं मरिचं विडतुल्यकम् ।
तिन्तिडीक्षारतुल्यश्च[3] सूततुल्यश्च दन्तिकम् ॥ १२ ॥
त्रिकटु त्रिफलश्चैव लवङ्गश्चार्द्धभागिकम् ।
आमवातेश्वरो नाम विष्णुना परिकीर्त्तितः ॥ १३ ॥
महाग्निकारको ह्येष आमवातान्तको[4] मतः ।
स्थूलानां कर्षणः[5] श्रेष्ठः कृशाणां स्थौल्यकारकः ॥ १४ ॥
अनुपानविशेषेण सर्वरोगविनाशनः[6] ।

---

१ 'सर्वं पञ्चाङ्गलदले ढालयेन्निपुणः कर्ता' भै. र. पाठः ।

२ 'सञ्चूर्ण्य पञ्चकोलस्य सर्वं क्वाथे विमर्दयेत्' भै. र. पाठः ।

३ 'तत्तुल्यं तिन्तिडीक्षारः' इति पाठः साधुः । तिन्तिडीबीजचूर्णान्तु' भै.र. पाठः

४ 'आमवातकुलान्तकः' पा० ।

५ 'कुरुते कार्श्यं' पा० । ६ 'सर्वरोगकुलान्तकः । साध्यासाध्यं निहन्त्याशु आमवातं सुदारुणम् । गुरुवृष्यान्नपानानि पयो मांसरसा हिताः ॥ भोजयेत्कण्ठपर्यन्तं चतुर्गुञ्जामितं रसम् । कट्वम्लतिक्तरहितं पिबेत्तदनुपानकम् । शीघ्रं जीर्यति तत्सर्वं जायते दीपनः परः । अनेन' भै. र. पाठः ।

अनेन सदृशो नास्ति वह्निदीप्तिकरो[1] महान् ।
गुल्मार्शोग्रहणीदोषशोथपाण्डुरुजापहः ॥ १५ ॥

शुद्ध गन्धक आधा पल, ताम्रभस्म आधा पल, शुद्ध पारा चौथाई पल, लौहभस्म चौथाई पल। इन में से पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर एरण्ड की जड़ के क्वाथ से सातवार भावना देवे। सूख जाने पर पुनः उसे चूर्ण करके पंचकोल (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) के क्वाथ से धूप में बीस वार भावना देवे। फिर गिलोय के स्वरस से दस भावना देवे। पश्चात् भुने हुए सुहागे का चूर्ण सारे चूर्ण के बराबर डाले, सुहागे से आधा विडलवण और विडलवण के समान ही मिरच का चूर्ण और इतना ही इमली का क्षार डाले। दन्तीमूल का चूर्ण चौथाई पल ले। सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला और लौंग; सब द्रव्यों का चूर्ण एक-एक कोल डालकर घोट लें। यह आमवातेश्वर रस विष्णु भगवान ने कहा है। यह आमवात-नाशक, अत्यन्त अग्निवर्धक, स्थूल शरीर को पतला करने वाला तथा पतले शरीर को स्थूल करने वाला है। अनुपान भेद से सब रोगों को दूर करता है। इस के समान अन्य अग्निवर्धक रस नहीं। यह गुल्म, बवासीर, ग्रहणी दोष, शोथ तथा पाण्डुरोग को दूर करता है।

विशेषवचन—मात्रा-२ रत्ती से ४ रत्ती तक।

भैषज्यरत्नावली में एरण्डमूल के क्वाथ की भावना नहीं है। वहां एरण्डपत्र पर पर्पटी बनाने को कहा है। तिन्तिडीक्षार (इमलीक्षार) के स्थान पर तिन्तिडीबीज का चूर्ण पढ़ा है। इसका नाम तन्त्रान्तर में "सर्वतोभद्र" भी है॥ ९—१५॥

वृद्धदाराद्यं लौहम्—

वृद्धदारत्रिवृद्दन्तीगज[2]पिप्पलिमाणकैः।

---

१ 'वह्निसन्दीपनो रसः' भै. र. पाठः। २ 'करिकर्णाग्निमानकैः' पा०।

त्रिकत्रयसमायुक्तैरामवातान्तकं त्वयः ।
सर्वानेव गदान् हन्ति केशरी करिणो यथा ॥ १६ ॥[1]

विधारा, त्रिवी (निसोत), दन्तीमूल, गजपीपल, पुराना माणकन्द, हरड़, बहेड़ा, आंवला (त्रिफला), सोंठ, मिरच, पिप्पली (त्रिकटु), विडंग, चीता, मोथा (त्रिमद); इन सब के चूर्ण समभाग ले और इस मिलित चूर्ण के समभाग लोहभस्म ले। सबको एकत्र मर्दन कर ले। यह आमवात-नाशक है और सब रोगों को ऐसे मारता है जैसे शेर हाथियों को।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा–२ रत्ती।

कई 'त्रिमद' के स्थान पर त्रिजात (दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपात) लेना चाहते हैं। पर व्यवहार त्रिमद से ही है।

रसेन्द्रचिन्तामणि तथा रसरत्नाकर में 'गजपिप्पलिमाणकैः' के स्थान पर 'करिकर्णाग्निमानकैः' पाठ है। अर्थात् गजपिप्पली नहीं है और एरण्डमूल (वा हस्तिकर्ण पलाश की जड़) और चित्रक है। लेख में 'करिकर्णाग्नि' में शिरोवर्ती र के रहजाने से 'करिकणा' होजाने पर गजपिप्पली पाठ कर दिया गया प्रतीत होता है ॥ १६ ॥

शिवागुग्गुलुः—

शिवाबिभीतामलकीफलानां प्रत्येकशो मुष्टिचतुष्टयञ्च ।
तोयाढके तत् क्वथितं विधाय पादावशेषे त्ववतारणीयम् ॥ १७॥
एरण्डतैलं द्विपलं निधाय पिचुत्रयं गन्धकनामकस्य ।
पचेत् पुरस्यात्र पलद्वयञ्च पाकावशेषे च विचूर्ण्य दद्यात् ॥ १८॥
रास्ना विडङ्गं मरिचं कणा च दन्तीजटानागरदेवदारु ।
प्रत्येकशः कोलमितं तथैषां विचूर्ण्य निक्षिप्य नियोजयेच्च ॥ १९॥
आमवाते कटीशूले गृध्रस्यां क्रोष्टुशीर्षके ।
न चान्यदस्ति भैषज्यं यथाऽयं गुग्गुलुः स्मृतः ॥ २० ॥

---

१ 'आमवातं निहन्त्ययः' पा० ।

हरड़, बहेड़ा, आंवला, प्रत्येक ४ पल लेकर अधकुटा कर एक आढक (द्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार २ आढक=८ प्रस्थ) जल में डालकर उबालें। चौथाई जल (२ प्रस्थ) शेष बचने पर उतार कर छान लें। अब इस क्वाथ में एरण्ड का तेल दो पल, शुद्ध गन्धक ३ कर्ष, शुद्ध गुग्गुलु दो पल; इन सबको मिलाकर पकावें। पाकशेष के समय रास्ना, विडंग, मिरच, पिप्पली, दन्तीमूल, जटामांसी, सोंठ, देवदारु; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ कोल लेकर उस में डालें और सबको मिला लें। इसे उचित मात्रा में खावें तो आमवात, कमर का दर्द, गृध्रसी, क्रोष्टुशीर्षक; ये रोग दूर होते हैं। इन रोगों को दूर करने के लिये ऐसी उत्तम कोई दूसरी औषध नहीं है।

विशेषवचन—मात्रा–६ रत्ती से ४ मासे तक।

कई "दन्तीजटा" से केवल दन्तीमूल लेते हैं। जटामांसी (बालछड़) नहीं डालते।

यदि आमवात में रोगी को मलबन्ध रहता हो तो यह योग अतीव लाभकर है॥ १७—२०॥

आमवातगजसिंहमोदकः—

शुण्ठीचूर्णस्य प्रस्थैकं यमान्याश्च पलाष्टकम्।
जीरकस्य पले द्वे च धन्याकस्य पलद्वयम्॥ २१॥
पलैकं शतपुष्पाया लवङ्गस्य पलं तथा।
टङ्कणस्य पलं भृष्टं मरिचस्य पलानि च॥ २२॥
त्रिवृतात्रिफलाक्षार-पिप्पलीनां पलं तथा।
शठ्येलातेजपत्राणां चविकानां पलं तथा॥ २३॥
अभ्रं लौहं तथा वङ्गं प्रत्येकञ्च पलं पलम्।
एतेषां सर्वचूर्णानां खण्डं दद्यात् गुणत्रयम्॥ २४॥
घृतेन मधुना मिश्रं कर्षमात्रन्तु मोदकम्।
एकैकं भक्षयेत् प्रातः घृतञ्चानुपिबेत् पयः॥ २५॥

शूलघ्नो रक्तपित्तघ्नश्चाम्लपित्तविनाशनः।
आमवातकुलध्वंसी केशरी विधिनिर्मितः ॥ २६ ॥

सोंठ का चूर्ण एक प्रस्थ(१६पल), अजवायन का चूर्ण आठ पल, श्वेत जीरा चूर्ण दो पल, धनियां चूर्ण दो पल, सौंफ (वा सोये) का चूर्ण एक पल, लौंग चूर्ण एक पल, सुहागे की खील एक पल, मिरच का चूर्ण एक पल, त्रिवी (निसोत), हरड़, बहेड़ा, आंवला, यवक्षार, पिप्पली, कचूर, छोटी इलायची, तेजपात, चव्य; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ पल, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, बंगभस्म; प्रत्येक एक २ पल लें। सबके चूर्णों को भली प्रकार मिलाकर खूब खरल करलें। सब चूर्ण से तिगुनी खांड मिला घी तथा शहद से (मोदक बनने योग्य प्रमाण में मिलाकर) एक-एक कर्ष भर के मोदक बना लें। रोगी प्रातःकाल एक लड्डू खावे और ऊपर से दूध में घी डालकर पीवे। विधिपूर्वक बनाये गये ये मोदक शूल, रक्तपित्त, अम्लपित्त, सब प्रकार का आमवात; इन्हें दूर करते हैं। जैसे सिंह वनराज है वैसे ही यह औषधों का राजा है। जैसे सिंह मृगों को मार देता है वैसे ही यह उक्त रोगों को दूर करता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—२ मासा।

इस मोदक को तय्यार करने के लिये सब से पूर्व खांड की चाशनी बनानी चाहिये। ठीक चासनी बन जाने पर शेष द्रव्यों का मिश्रित चूर्ण डाल कर अच्छीप्रकार मिलादें। शीतल होने पर मधु और घी मिला लड्डू बनावें।

चाशनी बनाने में जहां खांड को निर्मल कर लिया जाता है वहां साथ ही औषध भी लघुपाकी होजाती है ॥ २१—२६ ॥

रामवाणरसो देयो योगवाहिरसेन्द्रकाः।
आमवाते विधीयन्ते सानुपानैः प्रयत्नतः ॥ २७ ॥

आमवात में रामबाण रस का प्रयोग कराना चाहिये। अन्य योगवाही रसों को भी उचित अनुपानों के साथ प्रयोग कराने से आमवात रोग शान्त होता है।

विशेषवचन–रामवाण रस अजीर्णचिकित्सा में कहा जा चुका है। योगवाही रसों में पर्पटी रस आदि का ग्रहण है ॥ २७ ॥

इति आमवातचिकित्सा।

अथ शूलरोगचिकित्सा ।

सप्तामृतलौहम्—

मधुकं त्रिफलाचूर्णमयोरजः समं लिहन् ।
मधुसर्पिर्युतं सम्यक् गव्यक्षीरं पिबेदनु ॥ १ ॥
छर्दिं सतिमिरं शूलमम्लपित्तं ज्वरारुचिम् ।
मूत्रकृच्छ्रं तथा मेहं हन्यादेतन्न संशयः ॥ २ ॥

मुलहठी, हरड़, बहेड़ा, आंवला; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक२ तोला, लौहभस्म चार तोला ले। सबको पीसकर रखे। इसे उचित मात्रा में शहद और घी से रोगी खावे और ऊपर से गौ का दूध पीवे तो वमन, तिमिर रोग, शूल, अम्लपित्त, ज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह; ये सब रोग निःसन्देह नष्ट होते हैं।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा–२ रत्ती। पैत्तिक शूल में यह विशेष हितकर है। पाण्डु, कामला और शोथ में भी लाभकर है। सात द्रव्य होने से नाम 'सप्तामृत' है। शूल के योगों में १०० पुटों से कम की लोहभस्म कदापि न डालें ॥ १—२ ॥

त्रिफलालौहम्—

तीक्ष्णायश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफलाचूर्णमुत्तमम् ।
क्षीरेण पाययेद्धीमान् सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ३ ॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला लें, लौहभस्म तीन तोला लें। सब को मिलाकर रखें। इसे उचित मात्रा में दूध से पिलावें तो यह शूल को तुरन्त दूर करता है।

विशेषवचन—मात्रा–दो रत्ती।

इसी प्रकार दो छोटे २ योग और भी जान लें जो परिणामशूल में दिये जाते हैं।

---

१ 'अयोभस्म समं लिहेत्' पा०। २ 'ज्वरं क्लमम्। आनाहं मूत्रसङ्गञ्च शोथञ्चैव निहन्ति सः।' भै. र. पाठः।

१–पथ्यालौह—

'पथ्या लौहरजः शुण्ठी तच्चूर्णं मधुसर्पिषा।
परिणामरुजं हन्ति वातपित्तकफान्वितम्॥'

हरड़ और सोंठ के चूर्णों को समभाग में मिला दोनों के समान लोह-भस्म डाल २ रत्ती मात्रा में मधु और घी से चटावें।

२–कृष्णाद्यलौह—

कृष्णाभयालौहचूर्णं लहेयेन्मधुसर्पिषा।
परिणामभवं शूलं हन्ति सर्वं त्रिदोषजम्॥'

यहां सोंठ के स्थान पर पिप्पली की ही भिन्नता है॥ ३॥

चतुःसमलौहम्—

अभ्रं[1] ताम्रं[2] रसं लौहं गन्धकं[3] संस्कृतं पलम्।
सर्वमेतत् समाहृत्य यत्नतः[4] कुशलो भिषक्॥ ४॥
आज्ये पले द्वादशके दुग्धे[5] वत्सरसंख्यके।
पक्त्वा तत्र क्षिपेच्चूर्णं सुपूतं घनवाससा[6]॥ ५॥
विडङ्गत्रिफलावह्नि-त्रिकटूनां तथैव[7] च।
पिष्ट्वा पलोन्मितानेतानथ संमिश्रितान्[8] नयेत्॥ ६॥
ततः पिष्ट्वा शुभे भाण्डे स्थापयेच्च विचक्षणः।
आत्मनः शोभने चाह्नि[9] पूजयित्वा रविं[10] गुरुम्॥ ७॥

---

१ 'गन्धं' यो. र. पाठः। २ 'गन्धं' भै. र. पाठः।
३ 'प्रत्येकं मारितं' यो. र. पाठः। 'प्रत्येकं संस्कृत' र. र., भै. र. पाठः।
४ 'गृह्णीयात्' र. चि., र. र. पाठः। 'विपचेत्' यो. र. पाठः।
५ 'दुग्धे शतपले वरे' यो. र. पाठः। 'दुग्धेऽपि घृतसंख्यके' र. र. पाठः।
६ 'घनतन्तुना' र. चिं. पाठः। 'घनतां नयेत्' यो. र. पाठः।
७ 'यथा' पा०। ८ 'यथा संमिश्रतां' यो. र. पाठः। ९ 'घस्रे' पा०।
१० 'परं' पा०।

घृतेन मधुना[1]लोड्य भक्षयेत् माषका[2]दिकम् ।
अष्टौ माषान्[3] क्रमेणैव वर्द्धयेच्च समाहितः ॥ ८ ॥
अनुपा[4]नं प्रयोक्तव्यं नारिकेलजलं पयः ।
[5]जीर्णे लोहितशाल्यन्नं मुद्गमांसरसं तथा ॥ ९ ॥
भक्ष[6]येद् घृतसंयुक्तं सद्यः शूलाद् विमुच्यते ।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च सामवातं कटीग्रहम् ।
गुल्मशूलं शिरःशूलं योगे[7]नानेन नाशयेत् ॥ १० ॥

अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ पल ले। पहले पारे गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिला दे। इसे गौ का घी १२ पल और गौ का दूध १२ पल डालकर पकावे। पाकशेष के समय विडंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चीता, सोंठ, मिरच, पिप्पली; प्रत्येक द्रव्य का घने कपड़े में से छना चूर्ण एक पल उस में मिला देवे। सबको भलीप्रकार मर्दन कर के उत्तम पात्र में रखे। शुभ दिन सूर्य भगवान तथा अपने गुरु की पूजा करके इसे एक माषा प्रमाण में सेवन प्रारम्भ कर आठ माशा तक क्रमशः बढ़ा घी और शहद से मिला कर खावे। ऊपर से नारियल का जल वा दूध पीवे। औषध के पचने पर घी से युक्त लाल शालि चावल का भात, मूंग का यूष, मांसरस खावे। इससे शूल तुरन्त नाश होता है। हृदय का शूल, पसलियों का शूल, आम-

१ 'मधुना मर्द्य' भै. र. पाठः । २ 'माषकोन्मितान्' पा०

३ 'अष्टमाषाः क्रमाद्यावन्मात्रां संस्तम्भयेत्ततः' यो. र. पाठः ।

४ 'अनुपानं (अन्नपानं' यो. र.) च दुग्धेन नारिकेलोदकेन वा' पा० ।

५ 'जीर्णशाल्यन्नमुद्गाश्च सितामांसरसादयः' यो. र. पाठः ।

६ 'रसायनाविरुद्धानि चान्यान्यपि च कारयेत्' भै. र. पाठः । रसानामविरुद्धानि पानान्नान्यपि भक्षयेत् ।' यो. र. पाठः ।

७ 'यकृत्प्लीहानमेव च। अग्निमान्द्यं क्षयं कुष्ठं कासं श्वासं विचर्चिकाम्। अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च योगेनानेन साधयेत्' भै. र. पाठः ।

वात, कटिग्रह, गुल्मशूल तथा शिरःशूल नष्ट होता है।

विशेषवचन—यहां कई आचार्य चार पल लौहभस्म भी डालते हैं। क्योंकि "चतुःसम लौह" नाम तभी सार्थक होता है। यह मत समादरणीय है। परन्तु आजकल व्यवहार १ पल से ही है। भैषज्यरत्नावली के पाठ में ताम्रभस्म नहीं है। रसरत्नाकर और रसेन्द्रचिन्तामणि में गन्धक नहीं। वहां 'रस' से रससिन्दूर लेते हैं। अथवा पारद कहने से अनुक्त गन्धक भी डालनी ही होगी और प्रकृतग्रन्थ के पाठ के तुल्य ही कज्जली करेंगे। योगरत्नाकर में अभ्रकभस्म नहीं है। जहां पारद आदि चार ही द्रव्य हैं वहां 'चतुःसम लौह' का अर्थ 'चारों द्रव्य ही समभाग हैं जहां' ऐसा अर्थ होगा। तब लौहभस्म १ पल होता है।

'वत्सर' बारह मास का वाचक होने से दूध १२पल लेते हैं। व्यवहार इसी से है। परन्तु योगरत्नाकर में दूध १०० पल है। प्रतीत होता है ग्रन्थकर्ता ने वत्सर से पुरुषायुष (१००वर्ष) का ग्रहण कर नवीन योगपाठ किया है। १००पल दूध के साथ पाक करने से योग की मात्रा १ मासे से ८ मासे तक की ठीक रहती है, परन्तु औषध गुरु हो जायगी। १२ पल दूध से योग को तय्यार करने पर आधुनिक मात्रा ४ रत्ती से २ मासे तक की जाननी चाहिये। दूध के पाक के समय औषध को निरन्तर खज से हिलाते रहना चाहिये।

कई टीकाकार वायविडङ्ग आदि आठ द्रव्यों के मिलित चूर्ण को १ पल लेने को कहते हैं। परन्तु इसप्रकार के योग में घी १२ पल का प्रमाण बहुत होगा॥ ४—१०॥

पञ्चात्मको रसः—

मृतसूताभ्रकं चाम्लवेतसं ताम्रगन्धकम्।
विषं फलत्रयाच्चूर्णं तुल्यं मर्द्यं दिनावधि॥ ११॥
जयन्ती मुण्डिरी वासा बृहती च गुडूचिका।
महाराष्ट्री[1] जम्बुरसैस्तथा नीलोत्पलस्य च॥ १२॥

---

१ महाराष्ट्री ब्रह्मदण्डीति केचित्।

प्रतिद्रावैर्दिनं भाव्यं ततः संशोष्य यत्नतः ।
अर्द्धांशं पञ्चलवणं दत्त्वाऽऽर्द्रकरसेन च ॥ १३ ॥
दिनं पेष्यं ततः कुर्याद् वटिकां चणसम्मिताम् ।
प्रातर्मध्याह्नरात्रौ च भक्षयेद् वटिकात्रयम् ॥ १४ ॥
माषेक्षुपिष्टगुर्वन्नं गोपयश्च हितं तथा ।
सेवेत वातशूलार्त्तो रसं पञ्चात्मकं शुभम् ॥ १५ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, अम्लवेत, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, हरड़, बहेड़ा, आंवला; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला लेकर सबको दिन भर खरल करे। फिर जयन्ती, मुण्डी, बांसा, बड़ी कटेली, गिलोय, जलपिप्पली, जामुन, नीला कमल; इनके स्वरस से क्रमशः एक २ दिन भावना देवे । सूखने पर सब चूर्ण से आधा भाग पांचों लवणों का मिलित चूर्ण डाले । फिर अदरक के रस से दिन भर मर्दन कर चने के समान गोली बनावे। प्रातः मध्याह्न और रात को तीन गोली खावे। अर्थात् एक बार एक ही गोली खानी है। २४ घण्टे में ३ गोली खानी चाहियें। पथ्य में उड़द, ऊख, पीठी, भारी अन्न, गौ का दूध दे । यह पञ्चात्मक रस वातशूल को नाश करता है ।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा–१ रत्ती से २ रत्ती तक ।

इस रससे मिलता जुलता अग्निमुख रस आगे कहा ही जायगा ॥११-१५॥

धात्रीलौहम्—

कुडवं शुद्धमण्डूरं यवश्च कुडवं तथा ।
पाकार्थञ्च जलं प्रस्थं चतुर्भागावशेषितम् ॥ १६ ॥
शतावरीरसस्याष्टावामलक्या रसस्य च ।
तथा दधिपयोभूमिकूष्माण्डस्य चतुःपलम् ॥ १७ ॥

---

१ 'षट्पलं' भै. र. पाठः । २ 'पाकाय नीरप्रस्थार्द्धं दद्यात्पादावशेषितम् ।' भै. र. पाठः ।

चतुःपलमिक्षुरसं दद्यात् तत्र विचक्षणः ।
प्रक्षिपेत् जीरकं धान्यं त्रिजातं करिपिप्पलीम् ॥ १८ ॥
मुस्तं हरीतकीश्चैव अभ्रं लौहं कटुत्रयम् ।
रेणुका त्रिफला चैव तालीशं स्वर्णकेशरम् ॥ १९ ॥
कटुकं मधुकं रास्ना चाश्वगन्धा च चन्दनम् ।
एतेषां कार्षिकं भागं चूर्णयित्वा विनिक्षिपेत् ॥ २० ॥
भोजनाद्यवसाने च मध्ये चैव समाहितः ।
तोलैकं भक्षयेन्नित्यमनुपानं पयस्तथा ॥ २१ ॥
शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ।
वातिकं पैत्तिकश्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ २२ ॥
परिणामसमुत्थश्च ह्यन्नद्रवभवं तथा ।
द्वन्द्वजानपि शूलांश्च ह्यम्लपित्तं सुदारुणम् ।
सर्वशूलहरं श्रेष्ठं धात्रीलौहमिदं शुभम् ॥ २३ ॥

जौ एक कुड़व (४ पल) लेकर उसमें एक प्रस्थ (द्वैगुण्यपरिभाषा के अनुसार २ प्रस्थ=३२ पल) जल डालकर पकावे। चौथाई (८ पल) रहने पर उतार ले। इस क्वाथ में एक कुड़व भर शुद्ध मण्डूर (मण्डूरभस्म) डाले तथा शतावर का स्वरस आठ पल, आंवले का स्वरस आठ पल, दही चार पल, दूध चार पल, विदारीकन्द का स्वरस चार पल, गन्ने का रस चार पल डालकर पकावे। पाकशेष काल में जीरा, धनियां, छोटी इलायची, तेजपात, दारचीनी, गजपीपल, मोथा, हरड़, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, सोंठ, मिरच, पिप्पली, रेणुका, हरड़, बहेड़ा, आंवला, तालीशपत्र, नागकेशर, कुटकी, मुलहठी, रास्ना, असगन्ध, लालचन्दन; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक कर्ष लेकर उस में मिलावे।

---

१ 'चतुःपलं सर्पिरिक्षुरसं दद्याद्विचक्षणः' भै. र. पाठः ।

२ 'नागकेशरम्' पा० ।

इसे भोजन के पूर्व मध्य तथा अन्त में एक तोला तक खावे। अनुपान में दूध पीवे। यह साध्य वा असाध्य आठों प्रकार के शूल को नष्ट करता है। वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, परिणामज, अन्नद्रवज तथा द्वन्द्वज शूल और भयंकर अम्लपित्त को दूर करता है। सब प्रकार के शूलों को हरने के लिये यह धात्रीलौह उत्तम औषध है।

विशेषवचन—भैषज्यरत्नावली में मण्डूर ६ पल है। जौ के क्वाथ के लिये जल आधा प्रस्थ (द्वैगुण्यपरिभाषा के अनुसार १ प्रस्थ) है। वहां प्रक्षेप्य चूर्णों में कटुकी आदि चन्दन पर्यन्त के द्रव्य नहीं पड़े। पाक काल में घी ४ पल विशेष कहा है।

यह धात्रीलौह पैत्तिक शूल में विशेष लाभकर है। वस्तुतः इसका नाम 'धात्रीलौह' न रख कर 'धात्रीमण्डूर' रखना चाहिये। यतः यहां मण्डूर की प्रधानता है।

आधुनिक सामान्य मात्रा–४ रत्ती से ८ रत्ती तक ॥ १६—२३ ॥

शूलराजलौहम्—

कर्षैकं कान्तलौहस्य शुद्धमभ्रं पलं तथा।
सितायाश्च पलञ्चैकं मधु सर्पिस्तथैव च ॥ २४ ॥
सर्वमेकीकृतं पात्रे लौहदण्डेन मर्दयेत्।
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकम् ॥ २५ ॥
प्रत्येकं तोलकं मानं चूर्णितं तत्र दापयेत्।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय शिशिराम्ब्वनुपानतः ॥ २६ ॥
सर्वदोषभवं शूलं कुक्षिशूलञ्च यद् भवेत्।
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च अम्लपित्तञ्च नाशयेत् ॥ २७ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषं प्रमेहांश्च विसूचिकाम्।
शूलराजमिदं लौहं हरेण परिनिर्मितम् ॥ २८ ॥

कान्तलौहभस्म एक कर्ष, अभ्रकभस्म एक पल, मिश्री एक पल, शहद एक पल, घी एक पल; इन्हें एक लोहे के खरल में डाले और लौहदण्ड से खरल करे। फिर सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, मोथा, विडंग, चीता, चव्य; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला लेकर उसमें मिलावे। इसे उचित मात्रा में प्रातःकाल ठण्डे जल के साथ सेवन करे। यह वात पित्त और कफ सब दोषों से उत्पन्न शूल, कुक्षिशूल, हृदय का शूल, पसली का शूल, अम्लपित्त, बवासीर, ग्रहणीदोष, प्रमेह, विसूचिका; इन सब रोगों को दूर करता है। यह शूलराज लौह महादेव ने बनाया था।

विशेषवचन—रसरत्नसमुच्चय की मानपरिभाषा के अनुसार 'कर्ष' एक तोले के बराबर और 'पल' ४ तोले का होता है। परन्तु अधिकतर वैद्य यहां 'कर्ष' को २ तोला, पल को ८ तोला मानकर योग को बनाते हैं। आधुनिक मात्रा-४ रत्ती से ८ रत्ती तक॥ २४—२८॥

विद्याधराभ्रम्—

विडङ्गमुस्तत्रिफलागुडूची-दन्तीत्रिवृद्वह्निकटुत्रिकञ्च[1]।
प्रत्येकमेषां पिचुभागचूर्णं पलानि चत्वार्य्ययसो मलस्य॥ २९॥
गोमूत्रशुद्धस्य पुरातनस्य यद्वा[2]ऽयसस्तानि चिराटिकायाः।
कृष्णाभ्रचूर्णस्य पलं विशुद्धं निश्चन्द्रकं शुद्धं[3]मतीव सूतात्॥ ३०॥
पादोनकर्षं स्वरसेन खल्लशिलातले मन्युंमणीदलस्य[4]।
सम्मर्द्य[5] पश्चादतिशुद्धगन्ध-पाषाणचूर्णेन पिचून्मितेन[6]॥ ३१॥

---

१ 'त्रिवृच्चित्रकट्वानि चैव। प्रत्येकमेषां पलभागचूर्णं' र. चि. पाठः।

२ 'यद्वायसो भस्म विशोधितस्य' इति वा पाठः कार्यः। 'किं वास्य देयानि भिषग्वरैश्च' र. चि. पाठः। ३ 'श्लक्ष्णमतीव' पा०।

४ 'वा तण्डुलीयकस्य' र. चि. पाठः।

५ 'संशोष्य' पा०।

६ 'पलसम्मितेन' र. चि. पाठः। 'विचूर्णितेन' पा०।

युक्त्या ततः पूर्वरजांसि दत्त्वा सर्पिर्मधुभ्यामवमर्द्य यत्नात् ।
निधापयेत् स्निग्धविशुद्धभाण्डे ततः प्रयोज्यास्य[1] रसायनस्य ॥ ३२॥
प्राङ्माषको द्वावथवा त्रयो वा गव्यं[2] पयो वा शिशिरं जलं वा ।
पिबेदयं योगवरः प्रभूत-कालप्रनष्टानलदीपकश्च ॥ ३३ ॥
रोगं[3] निहन्यात् परिणामशूलं शूलं तथाऽन्नद्रवसंज्ञकञ्च ।
यक्ष्माऽम्लपित्तं ग्रहणीं प्रवृद्धां जीर्णज्वरं लोहितपित्तमुग्रम्[4] ।
न सन्ति ते यान्न निहन्ति रोगान् योगोत्तमः सम्यगुपास्यमानः ३४

मण्डूकपर्णी के स्वरस में घोटा गया शुद्ध पारा पौना कर्ष, अति शुद्ध गन्धक १ कर्ष; दोनों की कज्जली करे। फिर गोमूत्र में शुद्ध किया हुआ मण्डूर अथवा लौहपत्रभस्म चार पल, कृष्णाभ्रकभस्म एक पल, विडंग, मोथा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, गिलोय, दन्ती, त्रिवी, चीता, सोंठ, मिरच, पिप्पली; इन में से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक एक कर्ष ले। इन सब द्रव्यों को एकत्र मिलाकर घी और शहद डालकर घोटे। इसे घी से चिकने एक स्वच्छ पात्र में रखे। इसे एक दो वा तीन माषक (उड़द) मात्रा में खावे और ऊपर से गौ वा दूध वा ठण्डा जल पीवे। यह श्रेष्ठ योग बहुत पुरानी मन्द हुई अग्नि को प्रदीप्त करता है। परिणामशूल, अन्नद्रवशूल, राजयक्ष्मा, अम्लपित्त, बढ़ा हुआ ग्रहणी रोग, जीर्णज्वर, तथा बढ़े हुए रक्त-पित्त को दूर करता है। ऐसा कोई रोग नहीं जिसे यह रस यथाविधि सेवन करने पर दूर न कर सके।

विशेषवचन—इसे ४ रत्ती तक सेवन कराया जाता है। यह योग परिणामशूल में अत्यन्त प्रशस्त माना गया है ॥ २९—३४ ॥

---

१ 'प्रयोज्योऽस्य रसायनस्य। प्राङ्माषकौ द्वावथ वा त्रयो वा' र. चि. पाठः। 'प्रयोज्याऽस्य रसायनस्य प्राङ्माषको वाप्यथवा द्वितीयः' पा०। २ 'गव्यञ्च पथ्यं' र. र. पाठः।

३ 'योगः' पा०।

४ 'लोहितकं च कुष्ठम्' र. चि. पाठः। 'लोहितपित्तकुष्टे' र. र. पाठः।

बृहद्विद्याधराभ्रम्—

शुद्धसूतं तथा गन्धः फलत्रयकटुत्रयम् ।
विडङ्गं मुस्तकं दन्ती त्रिवृता चित्रकं तथा ॥ ३५ ॥
आखुपर्णी ग्रन्थिकञ्च प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ।
पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य मृतायश्च चतुर्गुणम् ॥ ३६ ॥
घृतेन मधुना पिष्ट्वा वटिकां कोलसम्मिताम् ।
एकैकां वटिकां खादेत् प्रातरुत्थाय नित्यशः ॥ ३७ ॥
अनुपानं गवां क्षीरं नीरं वा नारिकेलजम् ।
सर्वशूलं निहन्त्याशु वातपित्तभवं तथा ॥ ३८ ॥
एकजं द्वन्द्वजञ्चैव तथैव सान्निपातिकम् ।
परिणामोद्भवं शूलमामवातोद्भवं तथा ॥ ३९ ॥
कार्श्यं वैवर्ण्यमालस्यं तन्द्राऽरुचिविनाशनम् ।
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ४० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, प्रत्येक एक-एक कर्ष लेकर कज्जली करें। फिर हरड़, आंवला, बहेड़ा, सोंठ, मिरच, पिप्पली, वायविडंग, मोथा, दन्तीमूल, त्रिवी (निसोत), चीता, मूषकपर्णी, पिप्पलामूल; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक-एक कर्ष, अभ्रकभस्म एक पल (४ कर्ष), लौहभस्म चार पल (१६ कर्ष); सब को मिलाकर घी और शहद से घोटकर बेर के समान गोली बना ले। रोगी नित्य प्रातः एक-एक गोली खावे और ऊपर से गौ का दूध वा नारियल का जल पीवे। यह सब वातपित्त के शूलों को नष्ट करता है। एकज, द्वन्द्वज, सान्निपातिक, परिणामशूल, आमवात से हुआ शूल, कृशता, विवर्णता, आलस्य, तन्द्रा और अरुचि; इन सबका नाश करता है। साध्य वा असाध्य कैसा ही शूल हो यह ऐसे नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकार को।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा-२ रत्ती से ४ रत्ती तक ॥ ३५—४० ॥

सर्वाङ्गसुन्दरो रसः—

शुद्धसूतं तथा ताम्रं शिलामाक्षिकतालकम् ।
रजतं स्वर्णवङ्गञ्च लौहमभ्रं सनागरम् ॥ ४१ ॥
चूर्णयेत् पञ्चलवणं देयं सर्वन्तु तुल्यकम् ।
गन्धकं मिश्रयेत् सर्वं रसैरेषां विभावयेत् ॥ ४२ ॥
शुण्ठी-जयन्ती-विजया-महाराष्ट्रिकधूर्त्तजैः ।
सर्वाङ्गसुन्दरो नाम्ना रसोऽयं विष्णुनिर्मितः ॥ ४३ ॥
खादेदेरण्डशुण्ठीभ्यां माषमात्रं दिने दिने ।
कफवातामयं हन्ति चानुपानं वदाम्यहम् ॥ ४४ ॥
व्योषं सौवर्च्चलं हिङ्गु करञ्जबीजसंयुतम् ।
पिबेदुष्णाम्बुना चानु सर्वशूलनिकृन्तनम् ॥ ४५ ॥

शुद्ध पारा, ताम्रभस्म, शुद्ध मनसिल, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध हड़ताल, रौप्यभस्म, स्वर्णभस्म, वंगभस्म, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, सोंठ का चूर्ण, पांचों लवण, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर सब को सोंठ क्वाथ (वा अदरक का रस), जयन्ती, भांग, जलपिप्पली, धतूरा; इनके रसों से पृथक् भावना दें। यह विष्णु का बनाया हुआ सर्वांगसुन्दर रस है। इसे एरण्ड मूल और सोंठ के चूर्ण वा क्वाथ के साथ एक उड़द भर प्रतिदिन खाया जाये तो कफवात के रोगों को नाश करता है। अनुपान में त्रिकुटा, सोंचलनमक, हींग, करंज के बीज; इनका चूर्ण गर्म पानी से सेवन करे। यह चूर्ण सभी शूलों को दूर करता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा–१ रत्ती पर्यन्त। अनुपानोक्त व्योषादि चूर्ण की मात्रा–४ रत्ती से ८ रत्ती तक। सामान्य नियम के अनुसार भावना सात सात होनी चाहियें। इसे कफज वा कफवातज शूल में प्रयुक्त कराया

जाता है। रसरत्नाकर में भी एक सर्वाङ्गसुन्दर रस कहा है, जो कफशूल में ही दिया जाता है। परन्तु उसे इससे भिन्न ही जानें—

'शुद्धसूतं मृतं ताम्रं शिलामाक्षिकतालकम् ।
चूर्णयेल्लवणं पञ्च एतद्दशकतुल्यकम् ॥
सूततुल्यं वत्सनाभं चूर्ण्यं भाव्यं दिनावधि ।
विषमुष्टया जयन्त्या वा विजया रक्तशाकिनी।
शोभाञ्जनमहाराष्ट्रीद्रवैर्धुस्तूरजैस्तथा ॥
रुद्ध्वा तु सम्पुटे पच्यात् समुद्धृत्य विचूर्णयेत् ।
सर्वाङ्गसुन्दरो नाम रसो गुञ्जाचतुष्टयम् ।
भक्षयेद्धिङ्गुशुण्ठीभ्यां कफशूलोग्रगुल्मनुत् ॥
व्योषं सौवर्चलं हिङ्गु करञ्जबीजसंयुतम् ।
पिबेदुष्णाम्बुना चानु कफशूलहरं परम् ॥'

अर्थात् शुद्ध पारद, ताम्रभस्म, शुद्ध मनःशिला, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध हड़ताल, पांचों नमक; दसों द्रव्य समभाग ले। पारद होने से शुद्ध गन्धक भी एक भाग लेनी चाहिये। शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण पारद के समान अर्थात् एक भाग ले। पूर्व पारा गन्धक की कज्जली कर शेष द्रव्य मिला कुचला, जयन्ती, भांग, लाल पुनर्नवा, सहिजन की जड़, जलपिप्पली, धतूरा; इनके रसों से एक-एक दिन भावना दे। सूखजाने पर सम्पुट में बन्द कर पुट दे। स्वाङ्गशीतल होने पर औषध को निकाल पीस ले। इसे चार रत्ती मात्रा में (२ रत्ती मात्रा पर्याप्त है) लेकर हींग और सोंठ के चूर्ण के साथ दें। कफशूल और गुल्म नष्ट होता है। आगे अनुपान वही का वही है, जो प्रकृतग्रन्थ के सर्वाङ्गसुन्दर में कहा है ॥ ४१—४५ ॥

शूलवज्रिणी वटिका—

रसगन्धकलौहानां पलार्द्धेन समन्वितम् ।
त्रिफला रामठं शुल्वं शठी त्रिकटु टङ्कणम् ॥ ४६ ॥

१ 'रसगन्धकलोहाभ्रं प्रत्येकञ्च पलार्द्धकम्', 'पलार्द्धं लौहमभ्रञ्च कर्षञ्च रसगन्धकम्' पा० । २ 'टङ्कणं रामठं शुण्ठी त्रिकटु त्रिफला शटी' र. र. पाठः ।

पत्रं त्वगेला तालीश-जातीफललवङ्गकम् ।
यमानी जीरकं धान्यं प्रत्येकं तोलकं मतम्[1] ॥ ४७ ॥
माषैका वटिका कार्य्या छागीदुग्धेन[2] वा पुनः ।
एकैका भक्षिता चेयं वटिका शूलवज्रिणी ॥ ४८ ॥
शूलमष्टविधं हन्ति प्लीहगुल्मोदरं तथा[3] ।
अम्लपित्तामवातश्च पाण्डुत्वं कामलां तथा ॥ ४९ ॥
शोथं गलग्रहं वृद्धिं श्लीपदं सभगन्दरम्[4] ।
वृद्धे बलकरी[5] चैव मन्दाग्नेरपि दीपनी ॥ ५० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, प्रत्येक आधा २ पल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, हींग, ताम्रभस्म, कचूर, सोंठ, मिरच, पिप्पली, शुद्ध सुहागा, तेजपात, दारचीनी, छोटी इलायची, तालीशपत्र, जायफल, लौंग, अजवायन, श्वेत जीरा, धानियां; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक२ तोला ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलावे। इन सबको पीसकर एक-एक माशे की गोली बना लें। इसे रोगी बकरी के दूध से पीवे। यह शूलवज्रिणी वटी आठ प्रकार के शूल, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अम्लपित्त, आमवात, पाण्डु, कामला, शोथ, गलग्रह, अन्त्रवृद्धि, श्लीपद, भगन्दर को नाश करती है। वृद्धों को बल देती तथा मन्दाग्नि का दीपन करती है।

---

१ 'शुभम्' पा० ।

२ 'छागीदुग्धप्रपेषिता । गणेशयोगिनीशम्भुहरिसूर्यान्प्रपूज्य च । शीतनीरानुपानेन छागीदुग्धेन वा पुनः ॥' र. र. पाठः ।

३ 'ज्वरम् । अष्ठीलानाहमेहांश्च मूत्ररोगं हलीमकम् । अम्लपित्तामवातं' र. र. पाठः ।

४ अस्यानन्तरं ' कासं श्वासं व्रणं कुष्ठं कृमिहिक्कामरोचकम् । अर्शांसि ग्रहणीं दुष्टां सर्वातीसारनाशनम् । विषूचीं कण्डुमन्दाग्निं पिपासां पीनसं गदम् । एकजं द्वन्द्वजं वापि दोषत्रयसमुद्भवम् । बुद्धिकान्तिप्रदा नित्यं सेविता च चिरायुषी । गुरुणा चन्द्रनाथेन मह्यमेषा प्रकीर्तिता । संसारलोकरक्षार्थं विचिन्त्य परिनिर्मिता ॥' इति रसरत्नकरोक्तः पाठः ॥ ५ ' वृद्धबालकरी' पा० ।

विशेषवचन—यहां रसतन्त्रोक्त मानपरिभाषा के अनुसार आधे पल से २ तोला लेना चाहिये, परन्तु आजकल ४तोला लेकर योग को बनाने लगे हैं। 'शुल्ब' (ताम्रभस्म) के स्थान पर भैषज्यरत्नावली तथा रसरत्नाकर आदि में 'शुण्ठी' (सोंठ) है। वटिका बनाने के लिये बकरी के दूध से पीसना चाहिये। भैषज्यरत्नावली और रसरत्नाकर दोनों में इसका निदर्शक वचन भी है। यहां लेखक प्रमाद से रह गया प्रतीत होता है। रसरत्नाकर का पाठ टिप्पणी में दे दिया गया है। इस वटिका को साधारणतौर पर आजकल ४ रत्ती प्रमाण का बनाते हैं। मूलपाठ में कहे १ माशा मान में भी प्रयोग करा सकते हैं। रसतन्त्र की मानपरिभाषा के अनुसार माशा=६ रत्ती का होता है।

यह रस वात वा कफ के शूल में जब उसके साथ ही अतिसार भी हो लाभ करता है ॥ ४६-५० ॥

त्रिपुरभैरवो रसः—

भागो रसस्याश्महेम्नो भागो ग्राह्योऽतियत्नतः।
तयोर्द्वादशभागानि ताम्रपत्राणि लेपयेत् ॥ ५१ ॥
पचेत् शूलहरः सूतो भवेत् त्रिपुरभैरवः।
माषो मध्वाज्यसंयुक्तो देयोऽस्य परिणामजे।
अन्येष्वेरण्डतैलेन[१] हिङ्गुत्रययुतो रसः ॥ ५२ ॥

शुद्ध पारा १ भाग (छह तोला), शुद्ध गन्धक १ भाग (छह तोला); दोनों की कज्जली करे। शुद्ध तांबे के सूक्ष्म पत्र कज्जली का बारहवां भाग (एक तोला) ले। पत्रों पर कज्जली का लेप करके पाक करे। यह त्रिपुरभैरव रस शूलनाशक है। इसे एक माष (उड़द) भर लेकर शहद और घी से खावें तो परिणामशूल नाश होता है। इसे अन्य शूलों में एरण्डतेल तथा हिंगुत्रय से भी मिलाकर देते हैं।

विशेषवचन—इस रस को बहुधा या तो वालुकापुट द्वारा पकाते हैं। या वालुकायन्त्र में पकाते हैं। कई सामन्य गजपुट देकर भी इसे पकाने

---

१ 'अन्ये त्वैरण्डतैलेन' पा०।

को कहते हैं। कई औषध को हांडी में बन्द कर ऐसे ही मन्द आंच द्वारा पका लेते हैं। इनमें वालुकापुट वा वालुकायन्त्र में पाक सर्वोत्तम रहेगा।

हिङ्गुत्रय से हींग, श्वेतजीरा और सेन्धानमक लिया जाता है।

कई पारा १भाग, गन्धक १भाग और १२भाग ताम्रपत्र लेकर योग बनाने को कहते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं। ताम्र का पाक ठीक नहीं होगा। और 'तयोर्द्वादशभागानि' का भी यह अर्थ नहीं हो सकता।

योगरत्नाकर में भी एक 'त्रिपुरभैरव रस' है, उसे इससे भिन्न ही मानना चाहिये—

'भागौ रसस्य भागश्च हेम्नः पिष्टं विधाय च।
तथा द्वादशभागानि ताम्रपत्राणि लेपयेत् ॥
ऊर्ध्वाधो गन्धकं दत्वा पलमात्रं समन्ततः।
क्षारस्य मृगश्रृङ्गस्य चूर्णं योज्यं समन्ततः ॥
सिञ्चेन्मत्स्याक्षिनीरेण रुद्ध्वा यामचतुष्टयम्।
पचेच्छूलहरः सूतो भवेत्त्रिपुरभैरवः ॥
माषो मध्वाज्यसंयुक्तो देयोऽस्य परिणामजे।
अन्येष्वैरण्डतैलेन कटुत्रययुतो हितः ॥'

शुद्ध पारद २ भाग (२ तोला), सुवर्णभस्म १ भाग (१ तोला); दोनों की पिष्टी कर जल से घोट कर १२वां भाग ताम्रपत्र पर लेप करें। पश्चात् एक पल शुद्ध गन्धक लेकर इसके ऊपर नीचे रखे और एक पल ही मृगश्रृङ्गभस्म ऊपर डाले। मछेछी के रससे इस सारे को सींचे। फिर ऊपर शराव देकर सन्धिलेप कर दें और चार पहर तक पकावें। यह त्रिपुरभैरव शूलनाशक है। इसे एक उड़दभर लेकर मधु और घी के साथ परिणामशूल में दें। अन्यत्र शूलों में एरण्डतैल और त्रिकटु चूर्ण के साथ देना हितकर है।

कई यहां भी १२ भाग ताम्रपत्र लेते हैं ॥ ५१—५२ ॥

अग्निमुखो रसः—

रसबलिगगनार्कं वेतसाम्लं विषं स्यात्

सवरमिह पृथक् स्याद् भावयेद् घस्रमेतैः ।
कनकभुजगवल्ली–कण्टकारीजयाद्भिः
कमलसलिलवासा–मुष्टिवज्रयम्बुपूरैः ॥ ५३ ॥
अरुणसदृशपाकैर्मातुलुङ्गैश्च योज्यः
पटुगण इह तुल्यो भावयेदार्द्रकाद्भिः ।
दहनवदननाम्ना वल्लमात्रो निहन्ति
प्रबलसकलशूलं तद्विकारानशेषान् ॥ ५४ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, अम्लवेत का चूर्ण, शुद्ध विष, हरड़चूर्ण, बहेड़ाचूर्ण, आंवलाचूर्ण; प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिला खरल करें। और क्रमशः धतूरा, पान, छोटी कटेली, जया (जयन्ती वा भांग), कमल, सुगन्धबाला, बांसा (अडूसा), शुद्ध कुचला, थोहर (सेहुण्ड), पक कर लाल हुआ मातुलुङ्ग (बिजौरा); इनके रसों से पृथक् एक-एक दिन भावना दें। पश्चात् पांचों नमक मिलाकर सारे के समान डालें और सब को अदरक के रस से भावना (सात) देवें। यह अग्निमुख रस डेढ़ रत्ति मात्रा में खाने से सब प्रकार के प्रबल शूलों को दूर करता है तथा शूल सम्बन्धी सब विकारों को हटाता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा–आधी रत्ती से एक रत्ती तक।

'अम्बुपूर' का अभिप्राय प्रचुर रस से है। 'पूर' का अर्थ गुग्गुलु नहीं होता। जो छन्दोऽनुरोध से 'पुर' का 'पूर' करते हैं वह व्यर्थ की खींचातानी है। 'अम्बुपूर' का स्पष्ट अर्थ ही प्रचुर रस है।

यहां पर भी कुचले के क्वाथ की भावना न दें अपितु एक भाग कुचले का चूर्ण ही मिलावें।

रसरत्नसमुच्चय में भी एक अग्निमुख रस है, वह इसी से मिलता जुलता है, भावना में भिन्नता है।

'मृतसूताभ्रकं ताम्रं गन्धकं चाम्लवेतसम् ।

विषं फलत्रयं तुल्यं सर्वं मर्द्यं दिनावधि ॥
विषमुष्टिर्जया[1] वासा विजया रक्तशाकिनी ।
बृहती च महाराष्ट्री धत्तूरः पद्मपत्रकः ॥
नागवल्ली[2] शमी जम्बूर्भाव्यमेभिर्द्रवैस्त्र्यहम् ॥
समांशं पञ्चलवणं दत्त्वार्द्रकरसेन च ॥
दिनं पेष्यं ततः कुर्याद्वटिकां चणमात्रिकाम्[3] ॥
भक्षयेद्वातशूलार्तः सोऽयमग्निमुखो रसः ॥
हरीतकी प्रतिविषा हिङ्गु सौवर्चलं वचा ।
कलिङ्गेन्द्रयवास्तुल्यं पाययेदुष्णवारिणा ॥
कर्षैकमनुपानं स्याद्वातशूलहरं परम् ॥'

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक, अम्लवेत, शुद्ध विष, त्रिफला; प्रत्येक द्रव्य एक भाग। इन्हें दिन भर मर्दन कर कुचला, जयन्ती अडूसा, भांग, लाल पुनर्नवा, बड़ी कटेरी, जलपिप्पली, धतूरा, कमलपत्र, पान, शमी (छोंकर, जएड), जामुन; इनके रसों से पृथक् तीन-तीन दिन मर्दन करे। पश्चात् सूखजाने पर सम्पूर्ण के समान पांचों नमक मिला अदरक के रस से दिन भर घोटे और चने बराबर (आजकल १ रत्ती) की गोली बना ले। इसे वातशूल के नाशार्थ रोगी को सेवन करावें। अनुपानार्थ-हरड़ अतीस, हींग, सौंचर नमक, वच, कुटज की छाल, इन्द्रजौ; सब के चूर्ण समभाग में मिला १ कर्ष (आजकल ४ रत्ती से ८ रत्ती तक) मात्रा में गरम जल से दें।

यहां पर भी कुचले के क्वाथ की भावनायें न देकर एक भाग उसका चूर्ण मिलावें।

अग्निमुख रस से मिलता जुलता पञ्चात्मक रस पूर्व कहा ही जा चुका है ॥ ४३—४४ ॥

---

१ ' विप्रमुण्डातिका ' र. र. पाठः ।

२ ' अन्तमत्स्यमृताजम्बुगव्यनीलोत्पलद्रवैः ' र. र. पाठः ।

३ ' अस्यानन्तरं ' प्रातर्मध्याह्नरात्रौ च भक्षयेद्वटिकात्रयम् । मांसेक्षुपिष्टगुर्वन्नं गोपयश्च पिबेच्छनैः । भक्षयेद् ' र. र. पाठः ।

शूलगजकेशरी—

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं यामैकं मर्दयेद् दृढम् ।
द्वयोस्तुल्यशुद्धताम्रसम्पुटे सन्निवेशयेत् ॥ ५५ ॥
ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा मृद्भाण्डे स्थापयेद् भिषक् ।
रुद्ध्वा गजपुटं दत्त्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ५६ ॥
सम्पुटं चूर्णयेत् श्लक्ष्णं पर्णखण्डे द्विगुञ्जकम् ।
भक्षयेत् सर्वशूलार्त्तो सशुण्ठीहिङ्गुजीरकम् ॥ ५७ ॥
वचामरिचजं चूर्णं कर्षमुष्णजलैः पिबेत् ।
असाध्यं नाशयेत् शूलं श्रीशूलगजकेशरी ॥ ५८ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला; दोनों को एक पहर घोटकर कज्जली करे। शुद्ध ताम्रपत्र से निर्मित सम्पुट तीन तोला ले। कज्जली को ताम्रसम्पुट में डाल दे। फिर इस सम्पुट को लवणयन्त्र में रख हांडी का मुँह बंद करदे और गजपुट में फूंके। स्वांगशीतल होने पर इसमें से ताम्रसम्पुट को निकाल बारीक पीस ले। इसे दो रत्ती भर ले पान के पत्ते में रखकर खावे तो सब प्रकार का शूल दूर होता है। अनुपान में हींग, सोंठ, जीरा, बच, मरिच; इन सब के चूर्णों को समभाग में मिला एक कर्षभर गर्म पानी के साथ पीवे। इस रस से असाध्य शूल भी नष्ट होता है। इसका नाम शूलगजकेशरी रस है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—चौथाई रत्ती से आधी रत्ती तक। अनुपान की मात्रा-३ रत्ती से ६ रत्ती तक। इसका नाम कहीं कहीं शूलकेसरी है।

रसरत्नाकर में एक शूलगजकेसरी और है—

'तोलकांश्चतुरः सूतादष्टौ गन्धाश्मनस्तथा ।

---

१ 'द्वयोस्तुल्यशुल्बपत्रसम्पुटे' र. र. पाठः ।
२ 'हिंगु शुण्ठी च जीरकम्' पा० ।
३ 'रसः स्याच्छूलकेसरी' पा० ।

समादाय ततः कार्यं पलं ताम्रस्य सम्पुटम् ॥
एकस्मिन्नथ पात्रे द्वौ कृत्वा गन्धकपारदौ ।
अनेन ताम्रपात्रेण पिधातव्यं दृढं ततः ॥
क्षिप्त्वा स्थाल्याञ्च लवणं पुटेद् गजपुटेन च ।
स्वाङ्गशीतलतां ज्ञात्वा सम्पुटं परिचूर्ण्य च ॥
निहन्त्यष्टविधं शूलं गुल्मप्लीहयकृद्गदम् ।
मन्दाग्निं ग्रहणीं पाण्डुं कामलाञ्च हलीमकम् ॥
श्लेष्मवातोत्थरोगांश्च ज्वरानपि तथाविधान् ।
हरीतक्यनुपानेन दातव्योऽयं भिषग्वरैः ॥
पथ्यं दोषानुसारेण शास्त्रप्रोक्तं प्रदापयेत् ॥'

यहां पर ४ तोला शुद्ध पारा और ८ तोला शुद्ध गन्धक की कज्जली करके एक पल ताम्रसम्पुट को लवणपुट द्वारा ही भस्म करना है। नीचे एक मृत्पात्र में कज्जली डालकर ताम्रसम्पुट से बन्द कर दिया जाता है और लवणपुट दिया जाता है। इसीप्रकार रसरत्नसमुच्चय में एक और भी शूलगजकेसरी है-

'पलप्रमाणसूतेन बलिना द्विगुणेन च ।
शुद्धत्रिपलतालेन कृत्वा कज्जलिकां त्र्यहम् ॥
पलमानेन कर्तव्यं शुद्धताम्रस्य सम्पुटम् ।
कज्जलीं सम्पुटस्यान्तर्निदध्यात् तदनन्तरम् ।
अधस्तादुपरिष्टाच्च संपुटस्याक्षिपेत्खलु ॥
आकण्ठं पटुचूर्णं तु निधाय च निरुद्ध्य च ।
विशोष्य गजसंज्ञेन पुटेन पुटयेत्ततः ॥
पटचूर्णं विधायाथ सिन्धुमध्ये विनिक्षिपेत् ।
पथ्यार्द्रकरसोपेतो वल्लमानेन सेवितः ॥
रसो निःशेषशूलघ्नः स्याच्छूलगजकेसरी ॥'

यहां १ पल शुद्ध पारा, २ पल शुद्ध गन्धक, तथा ३ पल शुद्ध हड़ताल की कज्जली से १ पल शुद्ध ताम्र के सम्पुट को ऊपर नीचे लवण देकर गजपुट देनी है। अनुपान हरड़ का चूर्ण और अदरक का रस है।

इसप्रकार के ताम्र के अन्य योग भी रसतन्त्रों में बहुत मिलते हैं। रसरत्नसमुच्चय में क्षारताम्र रस, उदयभास्कर रस आदि इसीप्रकार के हैं। उनके पाठ वहीं देखें।

क्षारताम्र में तो पारद १ भाग गन्धक २ भाग और ताम्रपत्र १ भाग है। उन्हें वस्त्र में लपेट ऊपर सामुद्रलवण और त्रिक्षार से वेष्टन कर मिट्टी से लीपकर पुट देनी है। पश्चात् ताम्रपत्र को पीसकर धतूरा, चित्रक और त्रिकटु; इनके चूर्ण पृथक् ताम्रभस्म से तिगुने डालकर मर्दन करना है। अन्त में सोलहवां भाग शुद्ध विष मिलाना है। वातशूल में इसका प्रयोग होता है।

उदयभास्कर में १ तोला पारा, ४ तोला गन्धक की कज्जली को नीबू के रस से घोट कल्क बना लेते हैं। फिर २ तोले सूचीवेध्य ताम्रपत्र के साथ उसे खरल में घोटकर बहुत सा नीबू का रस डालकर तीव्र धूप में रख छोड़ते हैं। पश्चात् पिण्डाकृति कर के मूषा में डाल कुक्कटपुट देते हैं—ऐसा तीन वार करने का आदेश है। पश्चात् पीसकर शीशी में रख लिया जाता है। इसे पान के पत्ते में ही शूलनाश के लिये दिये जाने को कहा है।

रसप्रकाशसुधाकर में जो शूलगजकेसरी है वहां पारद गन्धक समभाग हैं; दोनों के समान ताम्रपत्र है। इनका गोलक बना सामुद्रलवणयुक्त लवण-यन्त्र में डाल गजपुट देने को कहा है। पान के पत्ते में ही सेवन करना है। अनुपान प्रकृतग्रन्थ का ही हिङ्ग्वादिचूर्ण है—केवल उसमें वचाचूर्ण नहीं है।

ताम्र का जिगर तिल्ली आदि पर उत्तेजक प्रभाव होता है। अतः इनके ठीक कार्य न करने से जो अग्नि की विकृति होती है और अतएव जो शूल होते हैं उनमें ये सब योग अत्यन्त हितकर हैं॥ ५५-५८॥

त्रिगुणाख्यो रसः—

टङ्कणं हारिणं[1] शृङ्गं स्वर्णं गन्धः मृतं रसम्।
दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्य[2] रुद्ध्वा पुटे पचेत्॥ ५९॥

---

१ 'हरिणशृङ्गं स्वर्णं शुद्धं मृतं रसम्' र.र.पाठः।

२ 'आर्द्रकस्य रसैश्चाह्नि' पा०।

त्रिगुणाख्यो रसो नाम्ना[1] माषकं मधुसर्पिषा ।
सैन्धवं जीरकं हिङ्गु मध्वाज्याभ्यां लिहेदनु ।
पक्तिशूलहरः ख्यातो याममात्रान्न[2] संशयः ॥ ६० ॥

शुद्ध सुहागा, हिरण के सींग की भस्म, स्वर्णभस्म, शुद्ध गन्धक, रस-सिन्दूर; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले चूर्ण कर अदरक के रस से दिन भर मर्दन करे। शुष्क होने पर सम्पुट में रख पुट दे। यह त्रिगुणाख्य रस होता है। इसे एक उड़द भर लेकर घी और शहद से खावे। पीछे से अनुपान में सैन्धव, हींग, जीरा; इन्हें घी और शहद से चाटे। एक पहर में परिणामशूल नष्ट होता है।

विशेषवचन—तन्त्रान्तरों में गन्धक नहीं है। गन्धक के स्थान पर ताम्र-भस्म है। जैसे रसप्रकाशसुधाकर में—

'स्वर्णं टङ्कणमेव हारिणभवं शृङ्गं तथा शुल्वकं
सूतं वै समभागकं दिनमहो मर्द्यं रसैश्चार्द्रजैः ।
खल्वे मर्द्य च वेष्टितं दृढपटे गोलं पुटेद्वह्निना
योगोऽयं गुदकीलहा निगदितो मध्वाज्यकैः सेवितः ॥'

यहां ताम्रभस्म स्पष्ट कही है। यतः यहां पारद कहा है अतः कई गन्धक भी डालते हैं। परन्तु तन्त्रान्तरों के अनुसार पारदभस्म (वा रस-सिन्दूर) भी लिया जा सकता है। यहां पर तो इसे अर्श के नाश के लिये कहा है। परन्तु रसरत्नाकर में भी यह योग है, वहां शूलाधिकार में है और प्रकृत ग्रन्थ के सदृश ही पाठ है। वहां भी 'गन्धः' के स्थान पर 'शुद्धं' पाठ छपा है जो प्रमाद से 'शुल्बं' के स्थान 'शुद्धं' होगया प्रतीत होता है। रस-रत्नसमुच्चय में भी यह योग है, परन्तु वहां 'टङ्कण' पाठ के स्थान पर 'खण्डित' मुद्रित है। यह भी प्रमाद से हो सकता है। परन्तु गन्धक के स्थान पर तो वहां भी ताम्रभस्म का ही पाठ है। रसप्रकाशसुधाकर आदि

१ 'ह्येष', 'नाम' पा० ।
२ 'मासमात्रान्न' र. र. पाठः ।

तीनों ग्रन्थों में इस योग का नाम "त्रिनेत्र रस" है। रसरत्नसमुच्चय का पाठ इसप्रकार है—

'खण्डितं (टङ्कणं) हारिणं श्रृङ्गं स्वर्णं शुल्बं मृतं रसम्।
दिनैकं चार्द्रकद्रावैर्मर्द्यं रुद्ध्वा पचेत्पुटे॥
त्रिनेत्राख्यो रसः सोऽयं माषं मध्वाज्यकैर्लिहेत्।
सैन्धवं जीरकं हिङ्गु मध्वाज्याभ्यां लिहेदनु॥
पक्तिशूलहरं ख्यातं मासमात्रान्न संशयः॥'

ताम्रभस्म युक्त यह योग अधिक लाभकर होगा॥ ५९-६०॥

शूलहरणयोगः—

हरीतकी त्रिकटुकं कुचिलं हिङ्गु सैन्धवम्।
गन्धकश्च समं सर्वं वटीं कुर्यात् सुखावहाम्॥ ६१॥
लघुकोलप्रमाणान्तु शस्यते प्रातरेव हि।
एकैका वटिका ग्राह्या गुल्मशूलविनाशिनी॥ ६२॥
ग्रहण्यामतिसारे च साजीर्णे मन्दपावके।
योजयेदुष्णपयसा सुखमाप्नोति निश्चितम्।
सुवर्णश्च भवेद् देहं सदोत्साहयुतं नृणाम्॥ ६३॥

हरड़, सोंठ, मिरच, पिप्पली, शुद्ध कुचला, हींग, सैन्धानमक, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग ले (जल से) घोटकर छोटे बेर के समान गोली बना ले। एक गोली प्रातःकाल खावे तो गुल्म तथा शूल को वा गुल्म के शूल को नाश करती है। ग्रहणी, अतिसार, अजीर्ण, मन्दाग्नि में गरम दूध से देवे तो सुखदायक होती है। इसके प्रयोग से देह सदा उत्साहयुक्त एवं सुन्दरवर्ण हो जाता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा-२ रत्ती।

इसे प्रातःकाल खाली पेट देना हो तो गरम दूध के साथ ही दें। 'पय'

---

१ 'सत्वोत्साहयुतं' पा०।

का अर्थ जल भी है । कइयों ने यहां जल का ही अभिप्राय लिया है । परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि यहां कुचिला है । जिसका खाली पेट में बिना आहार द्रव्य के प्रयोग हानिकर हो सकता है । दूध के साथ किसी प्रकार की हानि की सम्भावना नहीं । यदि भोजन के पांच दस मिनट बाद ही सेवन कराना हो तो गरम पानी के साथ भी दे सकते हैं । यह कफप्रधान शूल में बहुधा दिया जाता है । इसका नाम अन्यत्र गुल्मशूलविनाशिनी वटी है ॥६१—६३॥

शर्करालोहम्—

त्रिफलायास्तथा धात्र्याश्चूर्णं वा काललौहजम् ।
शर्कराचूर्णसंयुक्तं सर्वशूलेषु योजयेत् ॥ ६४ ॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला; प्रत्येक का चूर्ण एक २ तोला, लौहभस्म तीन तोला ले । इस में ६ तोला मिश्री मिला उचित मात्रा में खाने से सब शूल दूर होते हैं ।

अथवा आंवला १ भाग, लोहभस्म १ भाग; मिश्री २ भाग मिलाकर मात्रा में प्रयोग करावें ।

यदि इसे दो योग न मान कर एक योग ही स्वीकार किया जाय, जैसा कि रसरत्नाकरकार ने किया है तो हरड़, बहेड़ा; एक-एक भाग, आंवला २ भाग, लौहभस्म ४ भाग, और मिश्री वा खांड ८ भाग मिलायी जायेगी ।

विशेषवचन—तीनों योगों की मात्रा–२ रत्ती ॥ ६४ ॥

शङ्खादिचूर्णम्—

शङ्खचूर्णस्य च पलं पञ्चैव लवणानि च ।
क्षारं टङ्कणकं जाती शतपुष्पा यमानिका ॥ ६५ ॥
हिङ्गु त्रिकटुकञ्चैव सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।
आमवातं यकृच्छूलं परिणामसमुद्भवम् ।

अन्नद्रवकृतं शूलं शूलञ्चैव त्रिदोषजम् ॥ ६६ ॥

शंखभस्म, पांचों नमक, यवक्षार, शुद्ध सुहागा, जायफल, सोये, अजवायन, हींग, सोंठ, मिरच, पिप्पली; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ पल लेकर मिला ले। इसकी उचित मात्रा खाने से आमवात, यकृच्छूल अर्थात् जिगर का शूल, परिणामशूल, अन्नद्रवशूल तथा त्रिदोषज शूल दूर होता है।

विशेषवचन—मात्रा—८ रत्ती।

रसरत्नाकर में एक छोटा सा शङ्खादिचूर्ण का योग दिया है—

'शङ्खचूर्णं सलवणं सहिङ्गुव्योषसंयुतम्।
उष्णोदकेन तत्पीतं शूलं हन्ति त्रिदोषजम्॥'

शङ्खभस्म, सेन्धानमक, हींग और त्रिकटु; प्रत्येक द्रव्य को समभाग में मिला (३ रत्ती मात्रा में) गरम पानी के साथ दें। तीनों दोषों से उत्पन्न शूल नष्ट होता है॥ ६५—६६ ॥

व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणानि कटूनि च।
वेगरोधं शुचं क्रोधं वर्जयेत् शूलवान् नरः॥ ६७ ॥

व्यायाम, मैथुन, मद्य, लवण, कटु पदार्थ, वेगों का रोकना, शोक, क्रोध; इन सबको शूल रोग वाला त्याग देवे।

विशेषवचन—रसरत्नाकर के पाठ के अनुसार वर्ज्य द्रव्यों में दालों का भी परिगणन करना चाहिये। दालें प्रायः सारी ही वायु को कुपित करती हैं। मलवात को बढ़ाकर आध्मान शूल आदि को बढ़ा देती हैं॥ ६७ ॥

इति शूलचिकित्सा।

१ 'लवणं कटु वैदलम्' इति रसरत्नाकरोक्तः पाठः साधुतरः।

अथोदावर्त्तानाहचिकित्सा ।

वैद्यनाथ वटी—

पथ्या त्रिकटु सूतश्च द्विगुणं कानकं तथा ।
मन्युमंगणीरसैरम्ल–लोणिकाया रसैः कृता ॥ १ ॥
गुडिकोदरगुल्मादि–पाण्ड्वामयविनाशिनी ।
क्रिमिकुष्ठगात्रकण्डू–पिडकांश्च निहन्ति च ।
गुडी सिद्धफला चेयं वैद्यनाथेन भाषिता ॥ २ ॥

हरड़, सोंठ, मिरच, पिप्पली, रससिन्दूर; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला ले । शुद्ध जमालगोटे के बीज दो तोला ले । सब को एकत्र पीसकर मण्डूकपर्णी तथा चाङ्गेरी के रस से पृथक् घोटकर गोली बनावे । इससे उदररोग, गुल्म आदि तथा पाण्डुरोग, क्रिमिरोग, कुष्ठरोग, देह की खाज, पिड़का; ये रोग नष्ट होते हैं । यह सिद्धफल है । इसे वैद्यनाथ ने कहा है ।

विशेषवचन—मात्रा–½ रत्ती से १ रत्ती तक ।

गुल्म आदि कहने से उदावर्त और आनाह का भी ग्रहण होता है। उदार्वत में वायु की ऊर्ध्वगति होने से मल मूत्र आदि का रोध होता है, अतएव विरेचक तथा वायु की अनुलोमक औषध दी जाती है ॥ १—२ ॥

बृहद् इच्छाभेदी रसः—

शुद्धं पारदटङ्कणं समरिचं गन्धाश्म तुल्यं त्रिवृत्
विश्वा च द्विगुणा ततो नवगुणं जैपालचूर्णं क्षिपेत् ।
खल्ले दण्डयुगं विमर्द्य विधिना चार्कस्य पत्रे ततः
स्वेदं गोमयवह्निना च मृदुना स्वेच्छावशाद्भेदकः ॥ ३ ॥
गुञ्जैकप्रमितो रसो हिमजलैः संसेवितो रेचयेत्
यावन्नोष्णजलं पिबेदपि वरं पथ्यञ्च दध्योदनम् ।

---

१ 'थानकूनीरसैः' र. चि. पाठः ।

आमं सर्वभवं सुजीर्णमुदरं गुल्मं विशालं हरेत्
वह्नेर्दीप्तिकरो बलासहरणः सर्वामयध्वंसनः ॥ ४ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध सुहागा एक तोला, मिरच एक तोला, शुद्ध गन्धक एक तोला, त्रिवी (निसोत) एक तोला, सोंठ दो तोला; शुद्ध जमालगोटे के बीज नौ तोला ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलावे। फिर दो दण्ड काल तक सारे चूर्ण को मर्दन कर आक के पत्तों में लपेट कर उपलों की मन्द २ अग्नि से स्वेदन करे। इस रस की एक रत्ति भर की मात्रा रोगी ठण्डे जल से पीवे तो दस्त आने आरम्भ हो जाते हैं। जब बन्द करने हों तो गरम जल पीवे। पथ्य में दही चावल खावे। आम, त्रिदोषजन्य पुराना उदररोग तथा बहुत बढ़े हुए गुल्मरोग को यह रस ठीक करता है। अग्नि को दीप्त करता है, कफ को हरता है तथा सब रोगों का नाश करता है।

विशेषवचन—विरेकाधिकार में जो प्रथम इच्छाभेदी रस बताया है। वह इस से मिलता जुलता है। वहां (१३३ पृष्ठ पर) भी यही योग विशेषवचन में रसेन्द्रचिन्तामणि से उद्धृत करके लिखा है। प्रयोग आदि की विधि वहीं देख लें।

इसमें कई गन्धक पर्यन्त के द्रव्य १ भाग लेकर सोंठ २ भाग और इस के साथ ही निसोत भी २ भाग लेते हैं। बहुधा व्यवहार २ भाग निसोत से ही है। मर्दन भी कई आक के (मदार) के पत्तों के रस से करते हैं ॥३-४॥

योगवाहिरसान् सर्वान् रेचके कथितानपि।
प्लीहाधिकारे कथितं रसेन्द्रं वारिशोषणम्।
उदावर्त्ते तथाऽऽनाहे प्रयुञ्जीतानुपानतः ॥ ५ ॥

योगवाही रस, विरेकाधिकार में कहे हुए सब रस, प्लीहाधिकार में कहा वारिशोषण रस; इन सबको अनुपान भेद से उदावर्त्त और आनाह रोग में देवे।

पुटितं भावितं लौहं त्रिवृत्क्वाथैरनेकशः।

उदावर्त्तहरं युञ्ज्यात् ससितं वा यथाबलम् ॥ ६ ॥

लौहभस्म को त्रिवी के क्वाथ से सात भावना देकर रोगी के बल के अनुसार (½ रत्ती से २ रत्ती तक की मात्रा में) मिश्री से दें तो उदावर्त नाश होता है ॥ ६ ॥

उदावर्त्ते प्रयोक्तव्या उदरोक्ता रसाः खलु ॥ ७ ॥

उदररोगाधिकार में कहे हुए रस भी उदावर्त्त रोग में दे सकते हैं ॥ ७ ॥

इत्युदावर्त्तानाह–चिकित्सा ।

अथ गुल्मरोग-चिकित्सा ।

महानाराचरसः—

ताम्रं सूतं समं गन्धं जैपालञ्च फलत्रिकम्[1] ।
कटुकं पेषयेत् क्षारैर्निष्कं[2] गुल्महरं पिबेत् ।
उष्णोदकं पिबेच्चानु नाराचोऽयं महारसः[3] ॥ १ ॥

ताम्रभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध जमालगोटे के बीज, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, यवक्षार, सुहागा, सज्जीक्षार; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर पीस ले। इसे एक निष्क मात्रा में खाने को दे, साथ में गरम जल पिलावे। गुल्म नाश होता है। इसका नाम महानाराच रस है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—२ रत्ती।

'क्षारैर्निष्कं गुल्महरं पिबेत्' के स्थान पर 'क्षौद्रैर्निष्कं गुल्महरं लिहेत्' यह रसरत्नाकर में पाठ है और योगरत्नाकर का पाठ भी इसी अभिप्राय को

१ 'त्रिफला समम् । त्रिकटुं पेषयेत्क्षौद्रमिश्रं गुल्मं लिहन् हरेत् ।' यो. र. पाठः ।
२ 'क्षौद्रैर्निष्कं गुल्महरं लिहेत्' पा० ।
३ 'रसोत्तमः' पा० ।

बताता है। अर्थात् त्रिकटुपर्यन्त सब द्रव्यों को समभाग में मिला मधु के साथ मर्दन कर रोगी को चटावें और अनुपान में गरम जल पीने को दें।

परन्तु चारों के मिलाने से गुल्मरोग में अधिक लाभ की ही आशा है। प्रकृत ग्रन्थ में रसेन्द्रचिन्तामणि का पाठ उद्धृत है ॥ १ ॥

पञ्चाननरसः—

पारदं[1] शिखितुत्थञ्च गन्धजैपालपिप्पलीः।
आरग्वधफलान्मज्जां वज्रीक्षीरेण पेषयेत् ॥ २ ॥
धात्रीरसयुतं खादेद्रक्तगुल्मप्रशान्तये।
चिञ्चाफल[2]रसञ्चानु पथ्यं दध्योदनं हितम् ॥ ३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध नीलाथोथा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध जमालगोटा, पिप्पली, अमलतास के फल का गूदा; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर थोहर के दूध से पीसे। आंवले के रससे इसकी उचित मात्रा खाकर रोगी ऊपर से इमली के फल का पानी पीवे तो रक्तगुल्म नाश होता है। पथ्य में दही चावल दें।

विशेषवचन—मात्रा-आधी रत्ती से १ रत्ती तक। यह योग मल को निकालने वाला है तथा रक्त के बन्ध को भी तोड़ देता है। यदि साथ ही ज्वर भी हो तो उसे भी कम करेगा ॥ २-३ ॥

गुल्मवज्रिणी वटिका-

रसगन्धकताम्रञ्च कांस्यं टङ्कणतालकम्।
प्रत्येकं पलिकं ग्राह्यं मर्दयेदतियत्नतः ॥ ४ ॥
तद्यथाऽग्निबलं खादेद्रक्तगुल्मप्रशान्तये।
निर्मिता नित्यनाथेन वटिका गुल्मवज्रिणी ॥ ५ ॥

---

१ 'पारदांशकतुत्थञ्च' पा०।

२ 'चिञ्चादलरसञ्चानु' भै. र. पाठः।

गुल्मप्लीहोदराष्ठीला–यकृदानाहनाशिनी ।
कामलापाण्डुरोगघ्नी ज्वरशूलविनाशिनी ॥ ६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, कांस्यभस्म, शुद्ध सुहागा, शुद्ध हड़ताल; प्रत्येक द्रव्य एक २ पल ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिला खरल करे (और एक रत्ति की गोली जल से बना ले)। इसे अग्निबल देखकर खावे तो रक्तगुल्म दूर होता है। यह गुल्मवज्रिणी वटी नित्यनाथ ने बनाई है। इससे गुल्म, प्लीहा, उदररोग, अष्ठीला, यकृत रोग, आनाह, कामला, पाण्डुरोग, ज्वर तथा शूल नष्ट होते हैं ॥ ४—६ ॥

गुल्मकालानलो रसः—

सूतं[1] लौहकं ताम्रं तालकं गन्धकं समम् ।
तोलद्वयमितं भागं यवक्षारश्च तत्समम् ॥ ७ ॥
मुस्तकं मरिचं शुण्ठीं पिप्पलीं गजपिप्पलीम् ।
हरीतकीं वचां कुष्ठं तोलैकं चूर्णयेद् बुधः ॥ ८ ॥
सर्वमेकीकृतं पात्रे क्रियन्ते भावनास्ततः ।
[2]पर्पटं मुस्तकं शुण्ठ्यपामार्गं पापचेलिकम् ॥ ९ ॥
तत्पुनश्चूर्णयेत् पश्चात् सर्वगुल्मनिवारणम् ।
गुञ्जाचतुष्टयं खादेद्धरीतक्यनुपानतः ॥ १० ॥
वातिकं पैत्तिकं गुल्मं तथा चैव त्रिदोषजम् ।
द्वन्द्वजं श्लैष्मिकं हन्ति वातगुल्मं विशेषतः ।
गुल्मकालानलो[4] नाम सर्वगुल्मकुलान्तकृत् ॥ ११ ॥

---

१ 'पारदं गन्धकं तालं ताम्रकं टङ्कणं समम्' भै. र. पाठः ।
२ 'पर्पटं हस्तिशुण्डी च ह्यपामार्गं पटोलकम्' पा० ।
३ 'सम्यक्' पा० ।
४ 'श्रीमद्‌गहननाथेन निर्मितो विश्वसम्पदे' भै. र. पाठः ।

शुद्ध पारा, लोहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य दो २ तोला, यवक्षार दस तोला, मोथा, मरिच, सोंठ, पिप्पली, गजपीपल; हरड़, बच, कूठ; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिलाये और पित्तपापड़ा, मोथा सोंठ, अपामार्ग, पाठा; प्रत्येक के रस वा क्वाथ की सात २ भावना देवे। फिर सुखाकर चूर्ण कर रखे। इसकी चार रत्ती प्रमाण की मात्रा खाकर ऊपर से हरड़ का क्वाथ वा चूर्ण अनुपान में पीवे तो सब प्रकार के गुल्म शान्त होते हैं। यह वातिक पैत्तिक त्रिदोषज द्वन्द्वज वा श्लैष्मिक गुल्म सब को नष्ट करता है, विशेष करके वातगुल्म में उत्तम है। इसका नाम गुल्मकालानल रस है।

विशेषवचन—लौहभस्म के स्थान पर भैषज्यरत्नावली में सुहागा डालने को कहा है ॥ ७—११ ॥

बडवानलो रसः—

पारदं गन्धकं ताप्यं यवक्षारार्कमभ्रकम् ।
अग्न्यम्बुनाऽहिपत्रेण संमर्द्याथ द्विगुञ्जकम् ॥ १२ ॥
भक्षयेत् पर्णखण्डेन हिङ्गुसिन्धुसुवर्चलैः ।
दाडिमञ्च तथा बिल्वं कार्षिकं भृङ्गजैर्द्रवैः ॥ १३ ॥
पिष्ट्वा तु सुरया युक्तं देयं स्यादनुपानकम् ।
सर्वगुल्मं निहन्त्याशु शूलञ्च परिणामजम् ॥ १४ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, स्वर्णमाक्षिकभस्म, यवक्षार, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर चीते के क्वाथ से तथा पान के स्वरस से मर्दन करके दो रत्ती की गोली बनावें। इसे पान के पत्ते में रखकर रोगी चबावे। इसके खाने के पीछे हींग, सेंधानमक, कालानमक, अनारदाना; बिल की जड़ की छाल; इन सब को एक २ कर्ष लेकर भांगरे के रस से पीसकर उचित मात्रा

ले सुरा में मिला पीवे। यह सब प्रकार के गुल्म और परिणामशूल को दूर करता है

विशेष वचन—अनुपान चूर्ण की मात्रा—२ रत्ती से ६ रत्ती तक। बडवानल रस वातिक गुल्म में दिया जाता है। यही रस तन्त्रान्तरों में "शिखिबाडव रस" नाम से है—

'मारितं ताम्रसूताभ्रं गन्धकं माक्षिकं समम्।
मर्दयेच्चित्रकद्रावैर्यवक्षारयुतं दिनम्॥
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं नागवल्लीदलेन च।
वातगुल्महरः ख्यातो रसोऽयं शिखिबाडवः।
हिङ्गुसौवर्चलत्र्यूषसिन्धुदाडिमदीप्यकैः।
प्रतिचूर्णं कर्षमात्रं प्रस्थं प्रस्थं घृतं दधि॥
पाच्यं घृतावशेषं तं कर्षार्द्धमनुपानतः।
वातगुल्मञ्च शूलञ्च आनाहञ्च विनाशयेत्॥'

यहां पारद के स्थान पर रससिन्दूर कहा है। पान के पत्तों के रस से मर्दन नहीं करना। इसे भी पान के पत्ते में रखकर सेवन करना है। यह भिन्नता न के बराबर ही है। अनुपान में हिङ्ग्वादिघृत कहा है। २ प्रस्थ घी को २ प्रस्थ दही, हींग, सौंचलनमक, त्रिकुटा, सेन्धानमक, अनारदाना, अजवाइन; प्रत्येक द्रव्य के १ कर्ष चूर्ण (कल्क) से पकाना है। मात्रा आधा तोला (आजकल चौथाई तोला पहले देते हैं)॥ १२—१४॥

महानाराचरसः—

सूतं टङ्कण[1]तुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम्।
गन्धकं पिप्पलीशुण्ठ्योः[2] द्वौ द्वौ भागौ विमिश्रयेत्॥ १५॥
सर्वतुल्यं क्षिपेद् दन्तीबीजं[3] निर्स्तुषमेव च।

१ 'टङ्कणकं तुल्यं' शार्ङ्गधरपाठः।
२ 'पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत्' र. चि., शा. पाठः।
३ 'दन्तीबीजानि निस्तुषाणि' र. चि. पाठः।
४ 'निस्तुषितं भिषक्' शा. पाठः।

द्विगुञ्जं रेचनं सिद्धं नाराचाख्यो महारसः ॥ १६ ॥

शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध सुहागा, मिरच; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक तोला, शुद्ध गन्धक, पिप्पली, सोंठ; प्रत्येक का चूर्ण दो तोला, शुद्ध दन्तीबीज नौ तोला ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे, फिर अन्य द्रव्य उसमें मिलाकर दो रत्ती की गोली बनावे। इस गोली से विरेचन होता है। इसका नाम महानाराच रस है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—आधी रत्ती है।

योगरत्नाकर में जो नाराचरस है उसमें गन्धक, पिप्पली और सोंठ भी एक-एक भाग ही हैं।

'जैपालेन समैः सूतव्योषटङ्कणगन्धकैः।
नाराचः स्याद्रसो ह्येष माषः सर्पिः सितायुतः ॥
हन्त्युदावर्तमानाहमुदराणि च गुल्मकम् ॥'

आजकल प्रायः महानाराच रस को इच्छाभेदी के सदृश ही एक मात्रा में उतनी ही खांड मिलाकर जल से अथवा एक मात्रा को खांड के शरबत के साथ देते हैं। रसेन्द्रचिन्तामणि में गरम जल और योगरत्नाकर में नाराच रस में घी और खांड का अनुपान बताया है ॥ १५—१६ ॥

विद्याधर रसः—

पारदं गन्धकं तालं ताप्यं स्वर्णं मनःशिलाम्।
कृष्णाक्काथैः स्नुहीक्षीरैर्दिनैकं मर्दयेत् सुधीः ॥ १७ ॥
निष्कार्द्धं श्लैष्मिकं गुल्मं हन्ति मूत्रानुपानतः।
रसो विद्याधरो नाम गोदुग्धश्च पिबेदनु ॥ १८ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हड़ताल, स्वर्णमाक्षिकभस्म, स्वर्णभस्म, शुद्ध मनसिल; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे

---

१ 'नाराचोऽयं महारसः' र. चि., शा. पाठः। अस्यानन्तरं रसेन्द्रचिन्तामणौ 'गुल्मं प्लीहोदरं हन्ति पिबेत्तु चोष्णवारिणा' इति, शार्ङ्गधरसंहितायां च 'आध्मानं मलविष्टम्भानुदावर्त्तं च नाशयेत्' इत्यधिकः पाठः।

फिर अन्य द्रव्य मिलावे। सबको पिप्पली के क्वाथ तथा डण्डाथोहर के दूध से दिन भर मर्दन करे। इसको आधा निष्क भर खाकर गोमूत्र का अनुपान करे तो श्लैष्मिक गुल्म का नाश होता है। इस रस का नाम विद्याधर रस है। पीछे से गौ का दूध भी पी सकते हैं।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा-चौथाई रत्ती से आधी रत्ती तक।

इस विद्याधर के अतिरिक्त रसेन्द्रचिन्तामणि में दूसरा भी विद्याधर रस कहा है—

'गन्धकं तालकं ताप्यं मृतताम्रं मनःशिला।
शुद्धसूतं च तुल्यांशं मर्दयेद्भावयेद्दिनम् ॥
पिप्पल्याः सुकषायेण वज्रीक्षीरेण भावयेत्।
निष्कार्धं भक्षयेत्क्षौद्रैर्गुल्मप्लीहादिकं जयेत् ॥
रसो विद्याधरो नाम गोदुग्धं[1] च पिबेदनु ॥'

यह योग रसरत्नाकर में भी है। वहां अनुपान में दूध के स्थान पर गोमूत्र कहा है। प्रकृत ग्रन्थ के योग और इस योग में भेद इतना है कि वहां स्वर्णभस्म है और यहां ताम्रभस्म ॥ १७—१८ ॥

महागुल्मकालानलो रसः—

गन्धकं तालकं ताम्रं तथैव तीक्ष्णलौहकम्।
समांशं मर्दयेद् गाढं कन्यानीरेण यत्नतः ॥ १९ ॥
सम्पुटं कारयेत् पश्चात् सन्धिलेपञ्च कारयेत्।
ततो गजपुटं दत्त्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ २० ॥
द्विगुञ्जां भक्षयेद् गुल्मी शृङ्गबेरानुपानतः।
सर्वगुल्मं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ २१ ॥

शुद्ध गन्धक, शुद्ध हड़ताल, ताम्रभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर घीकुमार के रस से खूब घोटे। सूख जाने पर सम्पुट में रख

---

१ 'गोमूत्रं च पिबेदनु' र. र. पाठः।

सन्धिबन्धन करके गजपुट में फूंक दे और स्वांगशीतल होने पर निकाले। इसको दो रत्ती मात्रा में अदरक के रस के अनुपान से सेवन करे तो सब प्रकार के गुल्मरोग ऐसे नष्ट होते हैं जैसे सूर्य से अन्धकार।

विशेषवचन--आधुनिक मात्रा--आधी रत्ती से एक रत्ती तक॥१६–२१॥

अभयावटी—

अभया मरिचं कृष्णा टङ्कणञ्च समांशिकम्।
सर्वचूर्णसमञ्चैव दद्यात् कानकजं फलम्॥ २२॥
स्नुहीक्षीरैर्वटी कार्य्या धीरैः स्विन्नकलायवत्।
वटीद्वयं शिवामेकां पिष्ट्वा चोष्णाम्बुना पिबेत्॥ २३॥
उष्णाद्विरेचयेदेषा शीते स्वास्थ्यमुपैति च।
जीर्णज्वरं पाण्डुरोगं प्लीहाष्ठीलोदराणि च।
रक्तपित्ताम्लपित्तादि सर्वाजीर्णञ्च नाशयेत्॥ २४॥

हरड़, मिरच, पिप्पली, शुद्ध सुहागा; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला तथा जमालगोटे के शुद्ध बीज चार तोला लेकर डण्डा थोहर (सेहुण्ड) के दूध में घोंट ले और उबले मटर के समान गोली बनावे। इस रस की दो गोलियां और हरड़ एक का चूर्ण दोनों को एकत्र मिला गरम जल से पीवे। गरम जल पीने और गर्म क्रिया करने से यह विरेचन करेगी और ठण्डा जल पीने वा शीतल क्रिया से दस्त बन्द हो जांयगे। इससे जीर्णज्वर, पाण्डु-रोग, प्लीहा, अष्ठीला, उदररोग, रक्तपित्त, अम्लपित्त आदि तथा सब प्रकार के अजीर्ण नष्ट होते हैं।

विशेषवचन—आजकल इस योग की आधी रत्ती की वटी पर्याप्त जाननी चाहिये॥ २२--२४॥

गोपीजलः—

जैपालाष्टौ द्विको गन्धः शुण्ठी मरिचचित्रकम्।
एकः सूतः ससौभाग्यो गोपीजल इति स्मृतः॥ २५॥

१ 'समो भागः' प्रमादकृतं पाठान्तरम्।

शूलव्याध्याश्रयान् गुल्मान् कोष्ठादौ दश पैत्तिकान् ।
भगन्दरादिहृद्रोगान् नाशयेदेव भक्षणात् ॥ २६ ॥

शुद्ध जमालगोटा के बीज ८ तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला, सोंठ मिरच, चीता, शुद्ध पारा, सुहागा; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिलाकर घोटे। इस का नाम गोपीजल है। इसे सेवन करने से शूल व्याधि के आश्रय गुल्मरोग तथा कोष्ठ आश्रित दस पित्त के रोग एवं भगन्दर आदि तथा हृदय के रोग नष्ट होते हैं।

विशेषवचन—मात्रा—आधी रत्ती।

यह योग विरेकाधिकारोक्त द्वितीय इच्छाभेदी रस (१३३ पृष्ठोक्त) का पाठान्तरमात्र है। वहां सोंठ ३ भाग और मरिच २ भाग है। यहां दोनों एक-एक भाग हैं और चित्रक चूर्ण १ भाग अधिक है।

'कोष्ठादौ दश पैत्तिकान्' यह पाठ यहां प्रमादपूर्ण है। इच्छाभेदी का पाठ ठीक प्रतीत होता है। उसके अनुसार 'कुष्ठैकादश पैत्तिकान्' यह पाठ होना चाहिये ॥ २५—२६ ॥

काङ्कायनगुडिका—

शटीं पुष्करमूलञ्च दन्तीं चित्रकमाढकीम् ।
शृङ्गवेरं वचाञ्चैव पलिकानि समाहरेत् ॥ २७ ॥
त्रिवृतायाः पलञ्चैव कुर्य्यात् त्रीणि च हिङ्गुनः ।
यवक्षारात् पले द्वे च द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥ २८ ॥
यमान्यजाजी मरिचं धान्यकञ्चेति[1] कार्षिकम् ।
उपकुञ्च्यजमोदाभ्यां पृथगर्द्धपलं[2] भवेत् ॥ २९ ॥
मातुलुङ्गरसेनैव गुडिकां कारयेद्भिषक् ।

१ 'धान्यकञ्च त्रिकार्षिकम्' र. चि. पाठः ।
२ 'तथा चाष्टमिकामपि' पा० ।

तासामेकां पिबेद् द्वे वा तिस्रो वाऽथ सुखाम्बुना ॥ ३० ॥
अम्लैर्मद्यैश्च यूषैश्च घृतेन पयसाऽथवा ।
एषा काङ्कायनेनोक्ता गुडिका गुल्मनाशिनी ॥ ३१ ॥
अर्शोहृद्रोगशमनी क्रिमीणाञ्च विनाशिनी ।
गोमूत्रयुक्ता शमयेत् कफगुल्मं चिरोत्थितम् ॥ ३२ ॥
क्षीरेण पित्तगुल्मञ्च मद्यैरम्लैश्च वातिकम् ।
त्रिफलारसमूत्रैश्च नियच्छेत् सान्निपातिकम् ।
रक्तगुल्मेषु नारीणामुष्ट्रीक्षीरेण पाययेत् ॥ ३३ ॥

कचूर, पुष्करमूल (अभाव में कूठ), दन्तीमूल, चीता, अरहर की जड़, अदरक (वा सोंठ), बच, त्रिवी (निसोत); प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक पल, हींग तीन पल, यवक्षार दो पल, अम्लवेत चूर्ण दो पल, अजवायन, श्वेत-जीरा, मिरच, धनियां; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक कर्ष, कालाजीरा, अजमोदा (अन्तःप्रयोग है अतः अजवायन); प्रत्येक का चूर्ण आधा पल ले। सब को एकत्र मिला बिजौरे नीबू के रस घोट कर गोली बनावें। इस की एक, दो वा तीन गोली कोसे पानी, कांजी आदि अम्ल, मद्य, यूष, घृत अथवा दूध से खावे तो गुल्म नाश होते हैं। यह काङ्कायनगुडिका बवासीर तथा हृद्रोग को शान्त करती है, क्रिमिनाशक है। गोमूत्र के साथ सेवन से पुराने श्लैष्मिक गुल्म को, गौ के दूध के साथ पित्तगुल्म को, मद्य वा कांजी आदि से वातगुल्म को हटाती है। त्रिफला के क्वाथ वा गोमूत्र के साथ सेवन से सान्निपातिक गुल्म को शान्त करती है। स्त्रियों के रक्तगुल्म में इसे ऊंटनी के दूध के साथ सेवन कराना चाहिये।

विशेषवचन—मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक।

यह दिन में एक दो अथवा तीन वार रोग और रोगी के बल आदि के अनुसार सेवन करायी जाती है। शार्ङ्गधर के गुल्माधिकार में जो काङ्कायन-गुटिका है उसका योग इससे कुछ भिन्न है—

'यवानी जीरकं धान्यं मरिचं गिरिकर्णिका ।
अजमोदोपकुञ्ची च चतुःशाणाः पृथक् पृथक् ॥
हिङ्गु षट्शाणिकं कार्यं क्षारौ लवणपञ्चकम् ।
त्रिवृच्चाष्टमितैः शाणैः प्रत्येकं कल्पयेत्सुधीः ॥
दन्ती शटी पौष्करं च विडङ्गं दाडिमं शिवा ।
चित्रोऽम्लवेतसः शुण्ठी शाणैः षोडशभिः पृथक् ॥
बीजपूररसेनैषां गुटिकां कारयेद् बुधः ।
घृतेन पयसा मद्यैरम्लैरुष्णोदकेन वा ॥[1]
पिबेत्काङ्कायनप्रोक्तां गुटिकां गुल्मनाशिनीम् ।
मद्येन वातिकं गुल्मं गोक्षीरेण च पैत्तिकम् ॥
मूत्रेण कफगुल्मं च दशमूलैस्त्रिदोषजम् ।
उष्ट्रीदुग्धेन नारीणां रक्तगुल्मं निवारयेत् ॥
हृद्रोगं ग्रहणीं शूलं कृमीनर्शांसि नाशयेत् ॥'

अजवाइन, श्वेतजीरा, धनियां, कालीमिरच, गिरिकर्णिका (अपराजिता), अजवाइन, कालाजीरा; प्रत्येक ४ शाण, हींग ६ शाण, यवक्षार, सर्जिक्षार, पांचों नमक, निसोत; प्रत्येक ८ शाण, दन्तीमूल, कचूर, पुष्करमूल, वायविडङ्ग, अनारदाना, हरड़, चित्रक, अम्लवेत, सोंठ; प्रत्येक १६ शाण; इन्हें एकत्र मिला बिजौरे के रस से घोटकर गोलियां बनावे। इसे घी, दूध, मद्य, कांजी आदि अम्लद्रव तथा गरमजल; इनमें से दोषानुसार किसी एक के साथ सेवन करे। मद्य से वातज गुल्म, गौ के दूध से पैत्तिक गुल्म, गोमूत्र से कफगुल्म, दशमूल क्वाथ से सान्निपातिक गुल्म तथा ऊंटनी के दूध से स्त्रियों के रक्तगुल्म को हटाती है। यह गुटिका हृद्रोग, संग्रहणी, शूल, कृमिरोग तथा बवासीर को भी दूर करती है ॥ २७—३२ ॥

गुल्मशार्दूलो रसः—

रसं गन्धं शुद्धलौहं गुग्गुलोः[2] पिष्टितं पलम् ।

१ 'चाम्लै रसैरुष्णोदकेन' यो. र. पाठः ।
२ 'गुग्गुलुः पिप्पलं'पा० । 'पिप्पली गुग्गुलुः पलम् । त्रिवृता वालकं' भै.र.पाठः ।

त्रिवृता पिप्पली शुण्ठी शठी धान्यकजीरकम् ॥ ३४ ॥
प्रत्येकं पलिकं ग्राह्यं पलार्द्धं कानकं फलम् ।
सञ्चूर्ण्य वटिका कार्य्या घृतेन वल्लमानतः ॥ ३५ ॥
वटीद्वयं भक्षयेच्चार्द्रकोष्णाम्बु पिबेदनु ।
हन्ति प्लीहयकृद्गुल्म-कामलोदरशोथकम् ॥ ३६ ॥
वातिकं पैत्तिकं गुल्मं श्लैष्मिकं रौधिरं तथा ।
गहनानन्दनाथोक्तो[1] रसोऽयं गुल्मशार्दुलः[2] ॥ ३७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, शुद्ध गुग्गुल; प्रत्येक द्रव्य एक एक पल, त्रिवी, पिप्पली, सोंठ, कचूर, धनियां, श्वेत जीरा; प्रत्येक का चूर्ण एक-एक पल, जमालगोटे के शुद्ध बीज आधा पल लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर खरल करें और घी से डेढ़ रत्ती की गोली बनालें। दो गोली खाकर ऊपर से अदरक का रस या गरम जल पीवे तो तिल्ली, जिगर, गुल्म, कामला, उदररोग, शोथ, वातिक पैत्तिक श्लैष्मिक तथा रुधिर का गुल्म; ये सब रोग नाश होते हैं। यह गुल्मशार्दूलरस गहनानन्द ने कहा है।

विशेषवचन—शुद्ध गुग्गुलु को पूर्व पृथक् घी से कूट लेना चाहिये। पश्चात् कज्जली तथा अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर और अच्छीप्रकार कूट कर गोलियां बनानी चाहियें।

रसेन्द्रचिन्तामणि के पाठ में इस योग में पीपल वृक्ष की छाल १ पल अधिक है। भैषज्यरत्नावली में पीपल वृक्ष की छाल तो नहीं परन्तु उसके स्थान पर सुगन्धबाला है। यह योग वातिक और कफज गुल्म में अधिक हितकर है ॥ ३४—३७ ॥

---

१ 'रसोऽयं गुल्मशार्दूलो गहनानन्दभाषितः' इति पाठः कार्यः।

२ 'गुल्मनाशनः' पा०।

प्राणवल्लभो रसः—

लौहं ताम्रं वराटश्च तुत्थं हिङ्गु फलत्रिकम् ।
स्नुहीमूलं यवक्षारं जैपालं टङ्कणं त्रिवृत् ॥ ३८ ॥
प्रत्येकं पलिकं ग्राह्यं छागीदुग्धेन पेषयेत् ।
चतुर्गुञ्जां वटीं खादेद् वारिणा मधुनाऽपि वा ॥ ३९ ॥
प्राणवल्लभनामाऽयं गहनानन्दभाषितः ।
निहन्ति कामलां पाण्डुं मेहं हिक्कां विशेषतः ॥ ४० ॥
असाध्यं सन्निपातश्च गुल्मं रुधिरसम्भवम् ।
वातरक्तश्च कुष्ठश्च कण्डूविस्फोटकापचीः ॥ ४१ ॥

लौहभस्म, ताम्रभस्म, कौड़ीभस्म, शुद्ध नीलाथोथा, हींग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, थोहर (सेहुण्ड)की जड़, यवक्षार, शुद्ध जमालगोटा, शुद्ध सुहागा, त्रिवी (निसोत); प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ पल लेकर, बकरी के दूध से पीसे। फिर चार रत्तिभर की गोली बनाले। इसे जल या शहद से सेवन करें। यह प्राणवल्लभ नामक रस गहनानन्द ने कहा है। कामला, पाण्डु, प्रमेह, हिचकी को विशेष करके नाश करता है। असाध्य सन्निपात, रक्तगुल्म, वातरक्त, कुष्ठ, कण्डू, विस्फोटक, अपची; इन रोगों का भी नाशक है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—½ रत्ती से १ रत्ती पर्यन्त। यहां पाठ रसेन्द्रचिन्तामणि से उद्धृत है। यह योग पूर्व भी कामलाप्रकरण में (४०१ पृष्ठ पर) आचुका है। इस योग की प्रथम पंक्ति 'हिङ्गुलसम्भवं सूतं काश्मीरोद्भवगन्धकम्' यहां नहीं पढ़ी। अर्थात् हिङ्गुलोत्थ पारद और गन्धक

---

१ 'अस्यानन्तरं रसेन्द्रचिन्तामणौ 'दोषं रोगं च संवीक्ष्य युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम्' इत्यधिकः पाठः।

२ 'पाण्डुमानाहं श्लीपदार्बुदम्'। गलगण्डं गण्डमालां व्रणानि च हलीमकम्। अपचीं वातरक्तञ्च कण्डूं विस्फोटकुष्ठकम्। नातः परतरं श्रेष्ठं कामलार्तिभयेष्वपि।' र. चि. पाठः।

की कज्जली नहीं कही। एवं गुणपाठ को संक्षिप्त कर दिया है। प्रतीत होता है कि पूर्व पंक्ति का पाठ प्रमाद से रह गया है। अथवा कामलाप्रकरण में इस योग की शक्ति को बढ़ाने के लिये कज्जली का विशेष विधान किया है। कामलाधिकारोक्त पाठ के अनुसार शोधन करने पर इसमें पारा १ पल और गन्धक १ पल की कज्जली भी डालनी चाहिये॥ ३८—४१॥

सर्वेश्वरो रसः—

ताम्रं दशगुणं स्वर्णात् स्वर्णपादं कटुत्रिकम्।
त्रिफला त्रिकटोस्तुल्या त्रिफलाऽर्द्धमयो रजः॥ ४२॥
अयसोऽर्द्धं विषश्चैव सर्वं सम्मर्द्य यत्नतः।
सर्वेश्वररसो नाम रक्तगुल्मविनाशनः॥ ४३॥

स्वर्णभस्म चार तोला, ताम्रभस्म चालीस तोले, त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पिप्पली; प्रत्येक समभाग) का चूर्ण मिलित एक तोला, त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला; प्रत्येक समभाग) का चूर्ण मिलित एक तोला, लौहभस्म आधा तोला, शुद्ध विष चौथाई तोला ले। सबको मिलाकर यत्न से मर्दन करके रखे। इसे मात्रा में खावे तो यह सर्वेश्वर रस रक्तगुल्म का नाश करता है।

विशेषवचन—मात्रा-आधी रत्ती से एक रत्ती तक॥ ४२—४३॥

इति गुल्मरोग-चिकित्सा।

अथ हृद्रोगचिकित्सा।

हृदयार्णवो रसः—

शुद्धसूतसमं गन्धं मृतताम्रं तयोः समम्।
मर्दयेत् त्रिफलाक्काथैः काकमाचीद्रवैर्दिनम्॥ १॥
चणमात्रां वटीं खादेद् रसोऽयं हृदयार्णवः।

१ 'रौधिरं गुल्ममाहरेत्' पा०।

काकमाचीफलं कर्षं त्रिफलाफलसंयुतम् ॥ २ ॥
द्वात्रिंशत्तोलकं तोयं क्वाथमष्टावशेषितम् ।
अनुपानं पिबेच्चात्र हृद्रोगे च कफोत्थिते ॥ ३ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक एक तोला; दोनों की कज्जली करे। फिर ताम्रभस्म दो तोला मिलादे। सबको पीसकर त्रिफला के क्वाथ और मकोय के स्वरस से पृथक् दिनभर घोट कर चने के समान गोली बना ले। इसे हृदयार्णव रस कहते हैं। इसे खाकर ऊपर से त्रिफला और मकोय के फल; मिलित एक कर्ष लेकर बत्तीस तोले जल में पकाकर आठवां भाग शेष बच जाने पर उतार छानकर अनुपान में पीवे। यह कफज हृदय रोग में लाभ करता है।

विशेषवचन—मात्रा—आधी रत्ति से एक रत्ती तक।

वस्तुतः रसरत्नाकरोक्त अनुपान का पाठ प्राचीन है। उस के अनुसार सूखी मकोय १ पल और त्रिफला मिलित १ पल ले कर ३२ पल जल में क्वाथ कर ४ पल बचने पर पिलाया जाता है। परन्तु इस मात्रा के आजकल प्रयुक्त न होने के कारण गोपालकृष्ण ने पाठ को बदल दिया है। अतः उक्त पाठ में बङ्गाल में प्रसिद्ध मान के अनुसार कर्ष से दो तोला लिया जाता है। काकमाची (मकोय) के फल १ तोला तथा त्रिफला (मिलित) १ तोला लेकर ३२ तोला जल में क्वाथ करने का विधान है। अष्टमांश बचने पर छान कर रोगी को पिलाया जाता है। काकमाचीफल और त्रिफलाफल से यह बात स्पष्ट है कि यहां पल के स्थान पर फल कर दिया है। वस्तुतः काकमाची का फल ही लेना अभीष्ट नहीं। त्रिफला से तो तीनों फल ही लिये जाते हैं ॥ १–३ ॥

नागार्जुनाभ्रम्—

सहस्रपुटनैः शुद्धं वज्राभ्रमर्जुनत्वचः ।
सत्त्वैर्विमर्दितं सप्तदिनं खल्ले विशोषितम् ॥ ४ ॥

---

१ 'काकमाची पलं शुष्कं त्रिफला पलसंयुतम्। 'द्वात्रिंशच्च पलं तोयं क्वाथमष्टावशेषकम्' र. र. पाठः। २ 'पिबेच्छान्त्यै' र. र. पाठः।

छायाशुष्का वटी कार्य्या नाम्नेदमर्जुनाह्वयम् ।
हृद्रोगं सर्वशूलार्शो-हृल्लासच्छर्द्यरोचकान् ॥ ५ ॥
अतीसारमग्निमान्द्यं रक्तपित्तं क्षतक्षयम् ।
शोथोदराम्लपित्तञ्च विषमज्वरमेव च ।
हन्त्यन्यान्यपि रोगाणि बल्यं वृष्यं रसायनम् ॥ ६ ॥

सहस्रपुटि अभ्रकभस्म को अर्जुन की छाल के क्वाथ से सात दिन खरल करके सुखावें। पश्चात् (एक रत्ती भर की) गोली बना छाया में सुखा लें। इसके सेवन से हृद्रोग, सब प्रकार के शूल, बवासीर, हृल्लास अर्थात् जीमतलाना, वमन, अरुचि, अतीसार, अग्निमान्द्य, रक्तपित्त, क्षतक्षय, शोथ, उदररोग, अम्लपित्त, विषमज्वर तथा अन्य रोग भी नष्ट होते हैं। यह बलदायक वृष्य तथा रसायन है ॥ ४—६ ॥

पञ्चाननरसः—

सूतगन्धौ द्रवैर्धात्र्या मर्दयेद् गोस्तनीद्रवैः ।
यष्टिखर्जूरसलिलैर्दिनञ्च[1] परिमर्दयेत् ।
धात्रीचूर्णं सिताञ्चानु पिबेद् हृद्रोगशान्तये[2] ॥ ७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; दोनों समभाग लेकर कज्जली करे। इसे आंवले का रस, द्राक्षा का रस वा क्वाथ, मुलहठी क्वाथ, तथा खजूर का क्वाथ; इनसे एक २ दिन घोटे (और एक रत्ति भर की गोली बना ले)। इसे खाकर ऊपर से आंवला का चूर्ण और मिश्री मिलाकर जल से पीवे तो हृद्रोग शान्त होता है।

विशेषवचन—यह योग पैत्तिक हृद्रोग में हितकर है। रसरत्नाकर में इस योग का नाम पञ्चसार रस है—

'शुद्ध सूतं समं गन्धं धात्रीफलद्रवैर्दिनम् ।
यष्टीखर्जूरद्राक्षाणां क्वाथेन मर्दयेद्दिनम् ॥
पञ्चसाररसो नाम भक्षयेन्माषमात्रकम् ।

---

१ 'दिनं हृद्रोगजिद्रसः' र. चि. पाठः । २ 'रोगापनुत्तये' र. चि. पाठः ।

धात्रीचूर्णं सितां चानु पित्तहृद्रोगजिद् भवेत् ॥'

यहां भावनार्थ मुलहठी, पिण्डखजूर और द्राक्षा का इकट्ठा ही क्वाथ करने को बताया है ॥ ७ ॥

इति हृद्रोग-चिकित्सा।

अथ मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा।

त्रिनेत्राख्यो रसः—

वङ्गं सूतं गन्धकं भावयित्वा लौहे पात्रे मर्दयेदेकवस्त्रम् ।
दूर्वायष्टीगोक्षुरैः शाल्मलीभिः मूषामध्ये भूधरे पाचयित्वा ॥१॥
तत्तद्द्रावैर्भावयित्वाऽस्य वल्लं दद्याच्छीतं पायसं वक्ष्यमाणम् ।
दूर्वायष्टीशाल्मलीतोयदुग्धैस्तुल्यैः कुर्यात् पायसं तद्दीत ।
प्रातःकाले शीतपानीयपानात् मूत्रे जाते स्यात् सुखी च क्रमेण ॥२॥

वंगभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले लोहे के खरल में पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिलाकर घोटे। पश्चात् दूब के रस, मुलहठी के क्वाथ, गोखरू के क्वाथ तथा सेमर (सिम्बल) की मूसली के रस से एक २ दिन क्रमशः भावना देकर सुखा के एक मूषा में रख भूधरयन्त्र में पकावे। पाक हो जाने पर औषध को निकाल कर दूब, गोखरू, मुलहठी और सेमर की जड़ के रस से पृथक् २ भावना देकर सुखाकर डेढ वा दो रत्ति प्रमाण की गोली बनावें। इस औषध को खाकर ऊपर से आगे कही जानेवाली खीर खावे। दूब, मुलहठी और सेमर का रस (क्वाथ) एक भाग तथा दूध एक भाग दोनों को मिला कर खीर बनावे। इस खीर को ठण्डा करके इस रस के पीछे खावे। प्रातःकाल शीतल जल पीवे। इससे मूत्र होकर मनुष्य क्रम से नीरोग हो जाता है। यह मूत्रकृच्छ्र को नाश करता है ॥ १—२ ॥

वरुणाद्यं लौहम्--

द्विपलं वरुणं धात्र्यास्तदर्द्धं धात्रिपुष्पकम्[1]।
हरीतक्याः पलार्द्धश्च पृश्निपर्णी तदर्द्धकम् ॥ ३ ॥
कर्षमानश्च लौहाभ्रं चूर्णमेकत्र कारयेत्।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय शाणमानं विधानवित् ॥ ४ ॥
मूत्राघातं तथा घोरं मूत्रकृच्छ्रश्च दारुणम्।
अश्मरीं विनिहन्त्याशु प्रमेहं विषमज्वरम् ॥ ५ ॥
बलपुष्टिकरश्चैव वृष्यमायुष्यमेव च।
वरुणाद्यमिदं लौहं चरकेण विनिर्मितम् ॥ ६ ॥

वरुण की छाल दो पल, आंवला दो पल, धाय के फूल एक पल, हरड़ आधा पल, पृष्टपर्णी चौथाई पल (एक कर्ष), लौहभस्म एक कर्ष, अभ्रकभस्म एक कर्ष; प्रत्येक का चूर्ण यथाविधि लेकर एकत्र खरल करे। इसे एक शाण भर मात्रा में प्रातःकाल खावे तो घोर मूत्राघात, भयंकर मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह, विषमज्वर; ये रोग शीघ्र दूर होते हैं। यह बलकारक पुष्टिवर्धक, वृष्य तथा आयुष्य है। इस वरुणाद्य लौह को चरक ने बनाया था।

विशेषवचन--आधुनिक मात्रा-१ मासे से २ मासे तक ॥ ३--६ ॥

मूत्रकृच्छ्रान्तकयोगौ—

अयोरजः श्लक्ष्णपिष्टं मधुना सह योजयेत्।
मूत्राघातं निहन्त्याशु मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम् ॥ ७ ॥

लौहभस्म को बारीक पीस कर शहद मिलाकर चाटें तो मूत्राघात तथा भयंकर मूत्रकृच्छ्र शीघ्र दूर होते हैं।

विशेषवचन—यह योग अश्मरीप्रकरण में भी कहा जायगा। लौहभस्म की मात्रा-$\frac{1}{2}$ रत्ती से २ रत्ती तक। तन्त्रान्तरों में तो यह लिखा है कि यह योग तीन बार चाटने से ही मूत्रकृच्छ्र वा मूत्राघात को हटा देता है।

---

१ 'धातकीसुमम्' इति वा पाठः कार्यः।

'अयोभस्म श्लक्ष्णपिष्टं मधुना सह योजितम् ।
मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु त्रिभिर्लेहैर्न संशयः ॥' ७ ॥

रसगन्धयवक्षारं सितातक्रयुतं पिबेत् ।
मूत्रकृच्छ्राण्यशेषाणि निहन्ति नियतं नृणाम् ॥ ८ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, यवक्षार; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर यवक्षार मिला ले। प्रयोग के समय इसमें खांड वा मिश्री मिला छाछ से पीवे तो सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र निश्चय दूर होते हैं।

विशेषवचन--मात्रा--४ रत्ती। यदि कज्जली के स्थान पर रससिन्दूर का व्यवहार करें तो भी यही कार्य सिद्ध होता है। रससिन्दूर और यवक्षार को समभाग में मिलाया जाता है। यवक्षार को केवल खांड के साथ भी मूत्रकृच्छ्र में देने का तन्त्रों में विधान है ॥ ८ ॥

भैषज्यैरश्मरीप्रोक्तैर्मूत्रकृच्छ्रमुपाचरेत् ।
योगवाहिरसैर्वापि चानुपानविशेषतः ॥ ९ ॥

अश्मरी अधिकार में कही औषधें भी मूत्रकृच्छ्र में दी जा सकती हैं। अथवा उचित अनुपानों सहित योगवाही रसों को देवे तो भी मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ ९ ॥

मूत्रकृच्छ्रान्तको रसः—

शतावरीरसैः पिष्ट्वा मृतसूतश्च ताम्रकम्[1] ।
शिखितुत्थश्च तुल्यांशं दिनैकं मर्दयेद् दृढम् ॥ १० ॥
तद्गोलं सार्षपे तैले पाच्यं यामश्च चूर्णयेत् ।
मूत्रकृच्छ्रान्तकश्चास्य क्षौद्रैर्गुञ्जाचतुष्टयम् ॥ ११ ॥
भक्षणान्नात्र सन्देहो मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्यलम् ।
तुलसीतिलपिण्याकं बिल्वमूलं तुषाम्बुना ।
कर्षैकं वाऽनुपानेन सुरया वा सुवर्चलैः ॥ १२ ॥

१ 'तालकम्' प्रचलितः पाठः । रसेन्द्रचिन्तामणावपि तालकमेव ।

रसासिन्दूर, ताम्रभस्म, शुद्ध नीलाथोथा; इन सबको समभाग लेकर शतावर के रस से एक दिन दृढ़ता से पीसें। इसका गोला बना कर सरसों के तेल में एक पहर तक पकावें और फिर चूर्ण कर लें। इस रसकी चार रत्ती की मात्रा लेकर शहद से खावें तो निस्सन्देह मूत्रकृच्छ्र दूर होता है। इसे मूत्रकृच्छ्रान्तक रस कहते हैं। अनुपान में तुलसी, तिलकी खली, बिल की जड़; इन सबको मिलित एक कर्ष लेकर तुषोदक (कांजी) से दें। अथवा सुरा और सौंचल नमक (अथवा सूरजमुखी के बीज चूर्ण.) से दें।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—चौथाई रत्ती।

ताम्रभस्म के स्थान पर तालक (शुद्ध हड़ताल) प्रचलित पाठ है। रसेन्द्रचिन्तामणि में भी तालक है और वहीं से इस ग्रन्थ में उद्धृत किया गया प्रतीत होता है। परन्तु रसरत्नाकर में 'तालकं' के स्थान पर 'ताम्रकम्' पाठ ही है। रसरत्नसमुच्चय में भी यह योग है और वहां ताम्रभस्म ही लेने को कहा है। पाठ इसप्रकार है—

'शतावरीरसे पिष्ट्वा तुत्थसूतार्कपिष्टिका।
पाचिता कटुतैलेन मूत्रकृच्छ्रे प्रशस्यते॥'

अतः मूल में ही हमने भी 'ताम्रकम्' पाठ कर दिया है। इस योग में सुवर्चल से जहां मुख्यार्थ सौंचर नमक लेते हैं वहां सूरजमुखी भी लिया जा सकता है। इस का मूत्रकृच्छ्र में प्रयोग भी है—

'सूर्यावर्त्तभवं बीजं श्लक्ष्णं दृषदि पेषितम्।
व्युषितोदकसम्पीतं कृच्छ्रं हन्ति सुदारुणम्॥' १०—१२॥

इति मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा।

अथ मूत्राघातचिकित्सा ।

तारकेश्वरो रसः—

मृतसूताभ्रगन्धञ्च मर्दयेन्मधुना दिनम् ।
तारकेश्वरनामायं गहनानन्दभाषितः ॥ १ ॥
माषमात्रं भजेत् क्षौद्रैर्बहुमूत्रप्रशान्तये ।
औडुम्बरफलं पक्कं चूर्णितं कर्षमात्रकम् ।
संलिह्यान्मधुना सार्द्धमनुपानं सुखावहम् ॥ २ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक समभाग लें । सबको पीसें। फिर शहद से दिनभर पीसकर गोली बनावें । यह तारकेश्वर रस गहनानन्द ने कहा है । इसे शहद से एक माषा प्रमाण में खावें तो बहुमूत्र रोग दूर होता है । इस रस के सेवन के पश्चात् पके हुए गूलर फल का चूर्ण भी एक कर्ष भर लेकर शहद से मिला चाटना चाहिये । इस से शीघ्र बहुमूत्र (तथा मूत्राघात) रोग दूर होता है ।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा-१ रत्ती से ३ रत्ती तक ।

इस योग को बहुधा बहुमूत्र में ही प्रयोग कराते हैं । मूत्राघात में जो तारकेश्वर बहुधा प्रयुक्त होता है, वह निम्न है—

'शुद्धसूतं समं गन्धं लौहं वङ्गं मृताभ्रकम् ।
दुरालभा यवक्षारं बीजं गोक्षुरजं शिवा ॥
समांशं भावयेत्सर्वं कूष्माण्डफलवारिणा ।
पञ्चतृणभवक्वाथे रसे गोक्षुरजे तथा ॥
सम्पिष्य वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः ।
मधुनामर्द्य विलिहेन्मूत्रकृच्छ्रविनाशनः ॥
उडुम्बरफलं पक्कं चूर्णितं कर्षमात्रकम् ।
लेहयेन्मधुना सार्द्धमनुपानं सुखावहम् ।
अजाक्षीरं भवेत्पथ्यं शर्करेक्षुरसो हितः ॥'

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म, धमासा, यवक्षार, गोखरूबीज, हरड़; इन्हें समभाग में मिला, पेठे के रस से, पञ्चतृण-मूल के क्वाथ से तथा गोखरू के रस से पृथक् मर्दन कर २रत्ती की गोली बनावें। मधु के साथ दें। मूत्रकृच्छ्र दूर होता है। अनुपानार्थ गूलर के पके फल के चूर्ण को कर्षप्रमाण में मधु के साथ चाटे। पथ्य में बकरी का दूध, खांड और ईख का रस हितकर है ॥ १—२ ॥

लघुलोकेश्वरो रसः—

शुद्धसूतस्य भागैकं चतुरः शुद्धगन्धकात्।
पिष्ट्वा वराटिका पूर्या रसपादेन टङ्कणम् ॥ ३ ॥
[1]क्षीरैः पिष्ट्वा मुखं लिप्त्वा भाण्डे रुद्ध्वा पुटे पचेत्।
स्वाङ्गशीतं [2]विचूर्ण्याथ लघुलोकेश्वरो मतः ॥ ४ ॥
चतुर्गुञ्जा[3]प्रमाणन्तु मरिचेन तथैव च।
जातीमूल[4]फलैर्युक्तमजाक्षीरेण पाययेत्।
शर्कराभावितश्चा[5]नु पिबेत् कृच्छ्रहरं परम् ॥ ५ ॥

शुद्ध पारा एक तोला (९६ रत्ती), शुद्ध गन्धक चार तोला, दोनों की कज्जली बना के कौड़ियों में भर दे। फिर सुहागा तीन माषा (२४ रत्ती) को दूध से पीसकर कौड़ियों के मुंह को बन्द करदे। फिर सब कौड़ियों को एक हांडी में डाल उसका मुंह बन्द कर गजपुट में फूंक दे। स्वांगशीतल होने पर निकाल कर चूर्ण कर ले। यह लघुलोकेश्वर रस चार रत्ती प्रमाण में

---

१ ' क्षीरपिष्टेन रुद्धास्यं भाण्डे रुद्ध्वा पुटे पचेत्। ' र. र. पाठः।

२ ' रुद्ध्वा वराटांश्चांध्रयेत्पुटेत् ' र. र. स. पाठः।

३ ' चतुर्गुञ्जारसश्चायं मरिचैकोनविंशतिः ' र. र. स. पाठः। 'चतुर्गुञ्जाघृतैर्देयं मरिचैः सह बुद्धिमान् ' र. र. पाठः। ४ ' जातीमूलपलैकन्तु अजाक्षीरेण पेषयेत्' र. र. स.पाठः। 'धात्रीमूलफलैः कल्कमजाक्षीरेण पाययेत्' र. र. पाठः। 'जातीमूल-पलञ्चैकमजाक्षीरेण पाचयेत् ' यो. र. पाठः।

५ ' वा तु ' र. र. पाठः।

लेकर मिरच और चमेली की जड़ तथा त्रिफला के चूर्ण से मिलाकर रोगी खावे। और उसके पीछे खांड मिला हुआ बकरी का दूध पीवे। मूत्रकृच्छ्र अवश्य दूर होता है।

विशेषवचन—यह योग लोकनाथ रस नाम से अतिसाराधिकार में भी कहा जा चुका है। शुद्ध पारद के स्थान पर उसके अनुसार ही वैद्य भी रससिन्दूर डालना पसन्द करते हैं। यहां अनुपान की भिन्नता ही है।

यहां मूल में अनुपान के पाठ में प्रमाद है। 'जातीमूलफलैर्युक्तं' के स्थान पर 'जातीमूलपलैकन्तु' होना चाहिये। योगरत्नाकर और रसरत्नसमुच्चय में ऐसा ही है। 'पाययेत्' के स्थान पर रसरत्नसमुच्चय में 'पेषयेत्' और योगरत्नाकर में 'पाचयेत्' है। अर्थात् चमेली की जड़ को १ पल (आधुनिक मात्रा आधा तोला) प्रमाण में लेकर बकरी के दूध से पीस वा पकाये। पकाना ही उत्तम है। पश्चात् उस दूध में खांड मिला रोगी अनुपान करे। आजकल चूर्ण प्रयोग में चमेली की जड़ के चूर्ण को २ मासा प्रमाण में देते हैं ॥३-५॥

क्षुद्रयोगाः—

येनौषधेन मतिमान् मूत्रकृच्छ्रमुपाचरेत्।
तेनौषधेन श्रेष्ठेन मूत्रघातानुपाचरेत् ॥ ६ ॥

जिन योगों से मूत्रकृच्छ्र दूर होता है उन ही श्रेष्ठ औषधों से मूत्राघात की भी चिकित्सा की जा सकती है ॥ ६ ॥

लवणाम्लवरायुक्तं घृतञ्चापि पिबेन्नरः।
तस्य नश्यन्ति वेगेन मूत्राघातास्त्रयोदश ॥ ७ ॥

सेंधानमक, कांजी और त्रिफला से युक्त घी को पीने से तेरह प्रकार के मूत्राघात शीघ्र अच्छे होते हैं।

विशेषवचन—भैषज्यरत्नावली में 'घृतं' के स्थान पर 'सूतं' पाठ है और रससिन्दूर लिया जाता है। भैषज्यरत्नावली के पाठ का ही अधिक व्यवहार है ॥ ७ ॥

पक्वैर्वारुकबीजानामक्षमात्रं ससैन्धवम्[1]।

---

१ 'कल्कमेर्वारुबीजानां' पा०।

धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्राघाताद् विमुच्यते ॥ ८ ॥

पकी हुई ककड़ी के बीज एक अक्ष (कर्ष) भर लेकर उस में सेंधानमक मिला कांजी से पीवे तो तुरन्त ही मूत्राघात रोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

त्रिकण्टकैरण्डशतावरीभिः सिद्धं पयो वा तृणपञ्चमूलैः ।
गुडप्रगाढं सघृतं पयो वा रोगेषु कृच्छ्रादिषु शस्तमेतत् ॥ ९ ॥

गोखरू, एरण्डमूल, शतावर; इनसे सिद्ध किया हुआ अथवा पंचतृणमूल (कुश, काश, शर, दर्भ, गन्ना इनकी जड़ों को पंचतृणमूल कहते हैं) से सिद्ध किया हुआ दूध अथवा में दूध में गौ का घी और प्रचुर गुड़ मिलाकर पिलाना मूत्रकृच्छ्र मूत्राघात आदि में प्रशस्त है ॥ ९ ॥

इति मूत्राघात-चिकित्सा ।

अथाश्मरी-चिकित्सा ।

पाषाणवज्रको रसः—

शुद्धसूतं द्विधा[1] गन्धं रसैः[2] श्वेतपुनर्नवैः ।
मर्दयित्वा दिनं खल्ले रुद्ध्वा तद् भूधरे पचेत् ॥ १ ॥
दिनान्ते[3] तत् समुद्धृत्य मर्दयेद् गुडसंयुतम् ।
अश्मरीं बस्तिशूलञ्च हन्ति पाषाणवज्रकः ॥ २ ॥

१ 'त्रिधा' यो. र. पाठः । २ 'द्रावैः' पा० ।

३ 'पाषाणभेदचूर्णं तु समयुक्तं द्विमाषकम् । भक्षयेदश्मरीं हन्ति रसः पाषाणवज्रकः । गोपालकर्कटीमूलक्वाथं तदनु पाययेत्' यो. र. पाठः ।

४ 'चूर्णयेदतिचिक्कणम् । पाषाणभेदसंयुक्तं चूर्णतुल्यं द्विमाषकम् । भक्षणादश्मरीं हन्ति रसः पाषाणवज्रकः । गोपालकर्कटीमूलक्वाथं मधुयुतं पिबेत् । गोकण्टकशुभा-(सदा)भद्रामूलक्वाथं पिबेन्निशि' र. र. पाठः ।

गोरक्षकर्कटीमूल-क्वाथं कौलत्थकं तथा ।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं बुद्ध्वा दोषबलाबलम् ॥ ३ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला, दोनों की कज्जली करे। फिर श्वेत पुनर्नवा के रस से दिन भर खरल में घोट कर मूषा में रख भूधरयन्त्र में पकावे। दिन के अन्त में निकाल पीसकर रखे। यह पाषाणवज्रक रस है। इसे गुड से मिलाकर खावे तो पथरी तथा बस्तिशूल, नष्ट होते हैं। अनुपान में इन्द्रायण की जड़ का क्वाथ अथवा कुलथी का काढा दोषों तथा बल को देखकर पीना चाहिये।

विशेषवचन—मात्रा—१ रत्ती।

रसरत्नाकर तथा योगरत्नाकर में गुड़ नहीं है। गुड़ के स्थान पर पाषाणभेद का चूर्ण औषध के समभाग मिलाने को कहा है।

रसरत्नसमुच्चय में इस योग का नाम पाषाणभेदी रस है—

'रसेन सितवर्षाभ्वा रसं द्विगुणगन्धकम्।
घृष्टं पचेच्च मूषायां द्वौ माषौ तस्य भक्षयेत् ॥
गोपलकर्कटीमूलकुलत्थोदैः पिबेदनु ।
गोकण्टकसदाभद्रामूलक्वाथं पिबेन्निशि ॥
अयं पाषाणभिन्नामा रसः पाषाणभेदकः ॥'

यहां अनुपान में इन्द्रायण की जड़ के चूर्ण को कुलत्थ-क्वाथ में डाल पीने को कहा है। रात को सोते समय गोखरू और गाम्भारी की जड़ का क्वाथ पीने का आदेश है ॥ १—३ ॥

त्रिविक्रमो रसः—

मृतताम्रमजाक्षीरैः पाच्यं तुल्यं गते द्रवे ।
तत्ताम्रं शुद्धसूतश्च गन्धकश्च समं समम् ॥ ४ ॥
निर्गुण्डीस्वरसैर्मर्द्यं दिनं तद्गोलकीकृतम् ।

१ 'तुल्यैः' र. र. पाठः । २ 'घृते पचेत्' यो. र. पाठः ।
३ 'निर्गुण्ड्युत्थद्रवैर्मर्द्यं दिनं तद्गोलमन्ध्रयेत्' र. र. स. पाठः ।
४ 'तद्गोलमाहरेत्' यो. र. पाठः । 'तद्गोलमुद्धरेत्' र. र. पाठः ।

यामैकं वालुकायन्त्रे पक्त्वा योज्यं द्विगुञ्जकम् ॥ ५ ॥
बीजपूरस्य मूलञ्च सजलञ्चानुपाययेत्[1] ।
रसस्त्रिविक्रमो नाम[2] शर्करामश्मरीं जयेत् ॥ ६ ॥

ताम्रभस्म में उतना ही बकरी का दूध डालकर पकावे। द्रव भाग के सूख जाने पर उस ताम्रभस्म के समान शुद्ध पारा और उतना ही शुद्ध गन्धक ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर वह ताम्रभस्म मिला दे। अब इस में निर्गुण्डी का रस डालकर दिन भर मर्दन करे और गोला बना ले। इसे एक मूषा में बन्द कर बालुकायन्त्र में एक पहर तक पकावे। इसे दो रत्ति मात्रा में रोगी सेवन करे। अनुपान में बिजौरे की जड़ के चूर्ण को जल से पीवे। यह त्रिविक्रम रस शर्करा और अश्मरी रोग को जीतता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—आधी रत्ती ॥ ४—६ ॥

लौहप्रयोगः—

अयोरजः श्लक्ष्णपिष्टं मधुना सह योजितम्।
अश्मरीं विनिहन्त्याशु मूत्रकृच्छ्रञ्च दारुणम् ॥ ७ ॥

अत्यन्त महीन पीसे हुए लौहभस्म को मधु के साथ चाटने से शीघ्र ही पथरी और भयंकर मूत्रकृच्छ्र दूर होता है।

विशेषवचन—यह योग मूत्रकृच्छ्राधिकार में भी कहा जा चुका है ॥७॥

क्षुद्रयोगौ—

इन्द्रवारुणिकामूलं मरिचं क्षीरपाचितम्।
पर्पटीरससंयुक्तं सप्ताहादश्मरीं जयेत् ॥ ८ ॥

इन्द्रायण की जड़ और मरिच; इन दोनों के कल्क से यथाविधि क्षीरपाक (दूध का पाक) कर के उसके साथ रसपर्पटी का सेवन करें तो एक सप्ताह में अश्मरी (पथरी) का नाश होता है।

---

१ 'पिष्ट्वा तच्चानुपाययेत्' र. र. पाठः।

२ 'नाम्ना मासैकेनाश्मरीप्रणुत्' र. र. स., र. र. पाठः। 'नाम्ना सिकतां चाश्मरीं जयेत्' पा०।

विशेषवचन—रसेन्द्रचिन्तामणि में 'मरिचं' (कालीमिर्च) के स्थान पर 'सवचं' (वचा) पाठ है। मरिच की अपेक्षा वचा ही अधिक उपयुक्त है। यह जहां वात कफ और शूल को नष्ट करती है वहां मल तथा मूत्र को लाने वाली भी है। धन्वन्तरिनिघण्टु में कहा है—

'वमनी कटुतिक्तोष्णा वातश्लेष्मरुजापहा।
कण्ठ्या च मेध्या कृमिहृत् विबन्धाध्मानशूलनुत्॥
वचाद्वयं तु कटुकं रूक्षोष्णं मलमूत्रलम्।
दीपनं कफवातघ्नं मेध्यायुष्यं च पाचनम्॥
जन्तुघ्नं चोग्रगन्धं स्याल्लघु कण्ठास्यरोगजित्॥' ८॥

गन्धको जीरकं क्षुद्रा-फलं टङ्कद्वयं सदा।
अश्मरीं शर्करां मूत्रकृच्छ्रं क्षपयति ध्रुवम्॥ ९॥

शुद्ध गन्धक, जीरा, छोटी कटेली के बीज; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग ले एकत्र मिलायें। इस चूर्ण को सदा दो टङ्क भर खाने से पथरी, शर्करा, और मूत्रकृच्छ्र अवश्य दूर होते हैं।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ माषा॥ ९॥

इति अश्मरी-चिकित्सा।

अथ प्रमेहचिकित्सा।

हरिशङ्करो रसः—

मृतसूताभ्रकं तुल्यं[1] धात्रीफलनिशाद्रवैः[2]।
सप्ताहं भावयेत् खल्ले योगोऽयं हरिशङ्करः।

---

१ 'तुत्थं' प्रमादकृतः पाठः।

२ 'धात्रीफलनिजद्रवैः' र. चि., र. र., र. र. स. पाठः।

माषमात्रां वटीं खादेत् सर्वमेहप्रशान्तये ॥ १ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म; दोनों समभाग लेकर पीस लें और आंवले तथा हल्दी के रस से पृथक् एक सप्ताह तक भावित करें। यह हरिशंकर रस एक उड़द भर खाने से सब प्रमेहों को शान्त करता है।

विशेषवचन—मात्रा—आधी रत्ती से एक रत्ती तक।

यहां 'धात्रीफलनिशाद्रवैः' के स्थान पर रसरत्नसमुच्चय, रसरत्नाकर तथा रसेन्द्रचिन्तामणि आदि में 'धात्रीफलनिजद्रवैः' पाठ है। यही पाठ बहुसम्मत होने से प्रामाणिक है। परन्तु ताज़ी हल्दी के रस की भावना से कोई हानि नहीं अपि तु उसकी भावना प्रमेहनाश में अधिक हितकर ही है।

योगरत्नाकर का पाठ निम्न है—

'सूताभ्रमामलजलैः सप्तवारं विभावयेत्।
हरिशङ्करसंज्ञः स्याद्रसः सर्वप्रमेहनुत् ॥'

इस में भी हल्दी की भावना नहीं है। रसरत्नाकर और रसरत्नसमुच्चय में इस योग को विशेषतः नीलमेह वा कालमेह में प्रयोगार्थ कहा है। अनुपान में बकायन (धेक) के बीजों को पीसकर तण्डुलोदक में मिला घी डाल कर पीना बताया है। यह अनुपान प्रकृत ग्रन्थ में मेहवज्ररस में भी बताया गया है ॥ १ ॥

इन्द्रवटी—

मृतं सूतं मृतं वङ्गमर्जुनस्य त्वचान्वितम्।
तुल्यांशं मर्दयेत् खल्वे शाल्मल्या मूलजैः द्रवैः ॥ २ ॥
दिनान्ते वटिका कार्य्या माषमात्रा प्रमेहहा।
एषा इन्द्रवटी नाम्ना मधुमेहप्रशान्तकृत् ॥ ३ ॥

रससिन्दूर, वंगभस्म, अर्जुन की छाल; सब द्रव्य तुल्य भाग लेकर

---

१ 'माषमेकां वटीं खादेन्नीलकालप्रशान्तये' र. र. पाठः। 'माषमेकां वटीं खादेन्नीलमेहप्रशान्तये' र. र. स. पाठः।

२ 'त्वचं सिताम्' र. र. पाठः।

सेमल की जड़ के रस से एक दिन भर घोटें। फिर एक माष भर की गोली बनाकर खावे तो प्रमेह तथा मधुमेह शान्त होते हैं। इसका नाम इन्द्रवटी है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—२ रत्ती पर्यन्त।

रसेन्द्रचिन्तामणि में ऐसा ही पाठ है। रसरत्नाकर के पाठ में इस योग में खांड एक भाग अधिक है। मधुमेह में खांड के अहित कर होने के विचार से उसे निकाल दिया गया प्रतीत होता है। यद्यपि आयुर्वेद में मधुमेह के अन्य कई योगों में भी खांड का प्रयोग देखा जाता है। यह वटी जहां हृद्दौर्बल्य युक्त मधुमेह में हितकर है वहां अन्य प्रमेहों में भी इसका प्रयोग होता है। शुक्रमेह में भी इस से विशेष लाभ होता है। पूयमेह में भी इसे दे सकते हैं। रसरत्नाकरकार ने हारिद्रमेह में भी इसका विशेष प्रयोग कहा है।

शुक्रमेह मधुमेह आदि में इसके सेवन के पश्चात् अनुपान के तौर पर सेमल की मूसली के रस को शहद मिला पीने के लिये बताया है॥ २—३॥

वङ्गावलेहः—

वङ्गभस्म द्विवल्लश्च लेहयेन्मधुना सह।
ततो गुडसमं गन्धं भक्षयेत् कर्षमात्रकम्॥ ४॥
गुडूचीसत्त्वमथवा शर्करासहितं तथा।
सर्वमेहहरो वङ्गावलेह उत्तमः स्मृतः॥ ५॥

वङ्गभस्म को तीन रत्ति मात्रा में शहद से चाटे और ऊपर से शुद्ध गन्धक और गुड समभाग लेकर एक कर्षभर खाये अथवा गिलोय के सत में चीनी मिला रोगी खा सकता है। यह वङ्गावलेह सब प्रमेहों को दूर करता है।

विशेषवचन—वङ्गभस्म की आधुनिक मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक है। विशुद्ध गन्धक की मात्रा—१ रत्ती से ८ रत्ती तक। समभाग गुड युक्त गन्धक को २ रत्ती से १६ रत्ती तक मात्रा में प्रयोग कराया जाता है। वङ्गभस्म वीर्य के पतलेपन को हटाता है। शुक्रमेह और स्वप्नमेह में अति लाभकर है। यहां अनुपान रूप में प्रयुक्त की जाने वाली गन्धक भी वीर्य को अति शीघ्र गाढ़ा कर देती है। यदि वीर्य निर्गन्ध हो गया हो तो उसे स्वाभाविक गन्ध पर ले आती है। वीर्य के शुक्राणुओं की संख्या को भी

बढ़ा देती है। यदि शुक्राणु मृत हों अपनी स्वाभाविक गति न करते हों तो ये पुनः उन्हें स्वस्थ गति युक्त कर देती है जिससे गर्भोत्पत्ति की आशा भी हो जाती है। कामोद्दीपक भी है। प्रमेहपिड़काओं को भी नहीं होने देती। गिलोय के सत का व्यवहार तो प्रमेह में प्रसिद्ध ही है। वङ्गावलेह का योग शुक्रमेह और स्वप्नमेह में विशेष लाभ करता है॥ ४--५॥

प्रमेहसेतुः—

सूताभ्रञ्च वटक्षीरैर्मर्दयेत् प्रहरद्वयम्।
विशोष्य पक्वं मूषायां सर्वरोगे प्रयोजयेत्॥ ६॥
विशेषान्मेहरोगेषु त्रिफलामधुसंयुतम्।
युञ्जीत वल्लमेकन्तु रसेन्द्रस्यास्य वैद्यराट्॥ ७॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म; दोनों को समभाग लेकर बड़ के दूध से दो पहर मर्दन करे। फिर सुखा कर मूषा में डाल (भूधरयन्त्र में) पकावे। पश्चात् निकाल कर पीस ले। इसे सब रोगों में प्रयुक्त करे। विशेष करके प्रमेह रोगों में इसे डेढ़ रत्ति भर लेकर त्रिफला का चूर्ण और शहद मिला प्रयोग करे तो यह प्रमेहसेतु रस बड़ा लाभ करता है।

विशेषवचन—यदि रससिन्दूर न लेकर शुद्ध पारा ही डालना हो तो पारे के समान शुद्ध गन्धक भी डालते हैं। जीवानन्द तो 'सूत' से रससिन्दूर लेकर भी रससिन्दूर और अभ्रकभस्म दोनों के समान अर्थात् २ भाग गन्धक डालने को बताता है।

यह रस वातनाडियों वा मूत्राशय के विक्षोभ से उत्पन्न प्रमेह या पैत्तिक प्रमेहों में अधिक लाभकर है।

कई प्रमेहसेतु रस को सेवन कर त्रिफला क्वाथ में मधु मिला अनुपान करने का अभिप्राय लेते हैं।

उदकमेह में इस रस को किसी उदकमेहनाशक क्वाथ के साथ दिया जाता है॥ ६—७॥

विडङ्गाद्यलौहः—

विडङ्गत्रिफलामुस्तैः कणया नागरेण च।

जीरकाभ्यां युतो हन्ति प्रमेहानातिदारुणान् ।
लौहो मूत्रविकारांश्च सर्वानेव विनाशयेत् ॥ ८ ॥

वायविडंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, मोथा, पिप्पली, सोंठ, श्वेत जीरा, काला जीरा; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग ले। लौहभस्म सारे चूर्ण के समान ले। एकत्र घोट लें। इसे विडङ्गाद्यलौह कहते हैं। इससे अतिदारुण प्रमेह तथा सब मूत्रदोष दूर होते हैं।

विशेषवचन—मात्रा—२ रत्ती।

रसरत्नाकर में 'जीरकाभ्यां युतः' के स्थान पर 'जीवकाद्ययुतः' पाठ है। जीवकाद्य गण से चरकोक्त शुक्रजनन गण लेना चाहिये।

'जीवकर्षभककाकोलीक्षीरकाकोलीमुद्गमाषपर्णीमेदावृद्धरुहाजटिलाकुलिङ्गा इति दशेमानि शुक्रजननानि भवन्ति।'

जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा, वृद्धरुहा (शतावर), जटिला (बालछड़), कुलिङ्ग (उच्चटा); इन दस द्रव्यों से शुक्रजनन गण होता है। ये द्रव्य वीर्योत्पादक हैं।

कई जीवनीयगण अर्थात् जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मुलहठी; ये दस द्रव्य लेते हैं।

राजनिघण्टु में अष्टवर्ग, मुद्गपर्णी और माषपर्णी से जीवकादिगण कहा है।

दोनों जीरा के स्थान पर शुक्रजननगण वा अन्य उक्त गणों में से किसी एक के साथ इस योग को बनाना शुक्रप्रमेह में अधिक हितकर है ॥ ८ ॥

बृहद्धरिशङ्करो रसः—

रसगन्धकलौहश्च स्वर्णं वङ्गश्च माक्षिकम् ।
समभागन्तु सम्पिष्य वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ९ ॥
सप्ताहमामलाद्रावैर्भावितोऽयं रसेश्वरः ।
हरिशङ्करनामायं गहनानन्दभाषितः ।
प्रमेहान् विंशतिं हन्ति सत्यं सत्यं न संशयः ॥ १० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, बंगभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर आंवले के रससे एक सप्ताह तक भावना दे और गोली बनाले। इस हरिशंकर रस को सेवन करने से बीसों प्रमेह नाश होते हैं, इस में सन्देह नहीं। यह नितान्त सत्य है। इसे गहनानन्द ने कहा है।

विशेषवचन—मात्रा-एक रत्ती।

यह रस विशेषकर रक्तमेह वा वातिक एवं पैत्तिक प्रमेहों में अधिक लाभकर है॥ ९—१०॥

आनन्दभैरवो रसः—

वङ्गभस्म मृतं स्वर्णं रसं क्षौद्रैर्विमर्दयेत्।
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं हन्ति मेहं चिरोद्भवम्।
गुञ्जामूलं तथा क्षौद्रैरनुपानं प्रशस्यते॥ ११॥

वङ्गभस्म, स्वर्णभस्म, रससिन्दूर; सब को समभाग ले मर्दन करे। इसकी दो रत्ती की मात्रा शहद से मिलाकर चाटें तो पुराना प्रमेह दूर होता है। अनुपानार्थ गुञ्जामूल (घुंघची की जड़, रत्तियों की बेल की जड़) के चूर्ण को शहद से चाटें।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा-आधी रत्ती। गुञ्जामूल के गुण मुलहठी से मिलते हैं। इस रस को विशेषतः तब प्रयुक्त किया जाता है जब चिरकालीन शुक्रमेह में प्रसादसंज्ञक वात के कोप से होने वाले कम्प हृद्दौर्बल्य अर्धाङ्गवात अपस्मार मस्तिष्कदौर्बल्य वातनाडीदौर्बल्य आदि उपद्रव हों॥ ११॥

विद्यावागीशो रसः—

मृतसूताभ्रनागञ्च स्वर्णं तुल्यं प्रकल्पयेत्।
महानिम्बस्य चूर्णन्तु चतुर्भिः सममाहरेत्॥ १२॥
मधुना लेहयेन्माषं लालामेहप्रशान्तये।
सक्षौद्रं रजनीचूर्णं लेह्यं निष्कद्वयं तथा।
असाध्यं नाशयेन्मेहं विद्यावागीशको रसः॥ १३॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, सीसाभस्म, स्वर्णभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। और चारों के समान बकायन बीज का चूर्ण ले। सबको मिलाकर घोट रक्खे। इसे उड़द भर मात्रा में शहद से सेवन करे तो लालामेह शान्त होता है। इसके सेवन के पश्चात् अनुपान में हल्दी का चूर्ण २ शाण लेकर शहद से मिलाकर चाटे। यह विद्यावागीशरस असाध्य प्रमेहों का नाश करता है।

विशेषवचन—इस योग को १ रत्ती पर्यन्त सेवन करा सकते हैं। अनुपान में हल्दी चूर्ण २ मासा दिया जाता है॥ १२—१३॥

मेहमुद्गरो रसः—

रसाञ्जनं विडं दारु बिल्वगोक्षुरदाडिमम्।
भूनिम्बः पिप्पलीमूलं त्रिकटु[1] त्रिफला त्रिवृत्॥ १४॥
प्रत्येकं तोलकं देयं लौहचूर्णन्तु तत्समम्।
पलैकं गुग्गुलुं दत्त्वा घृतेन वटिकां कुरु॥ १५॥
[2]माषैका निर्मिता चेयं मेहमुद्गरसंज्ञिनी।
श्रीमद्गहननाथेन लोकनिस्तारकारिणा॥ १६॥
अनुपानं प्रकर्त्तव्यं छागीदुग्धं जलञ्च वा।
विंशन्मेहं निहन्त्याशु मूत्रकृच्छ्रं हलीमकम्॥ १७॥
अश्मरीं कामलां पाण्डुं मूत्राघातमरोचकम्।
[3]अर्शांसि व्रणकुष्ठञ्च वातरक्तं भगन्दरम्॥ १८॥

शुद्ध रसौंत, विडलवण, देवदारु, बिल की जड़ की छाल (कई बेलगिरी डालते हैं), गोखरू बीज, अनार का छिलका (कई अनारदाना लेते हैं),

---

१ 'त्रिकण्ट' र. र. पाठः। २ 'प्रमेहान् विंशतिं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा। मूत्रकृच्छ्रं तथा पाण्डुं धातुस्थञ्च ज्वरं जयेत्। हलीमकं रक्तपित्तं वातपित्तकफोद्भवम्। ग्रहणीमामदोषञ्च मन्दाग्नित्वमरोचकम्। एतान् सर्वान्निहन्त्याशु वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा॥' भै. र. पाठः॥ ३ 'षडर्शांसि व्रणं कुष्ठं भगन्दरमसूरिका। सुखिने यदि कर्त्तव्या त्रिसुगन्धिसमन्विता।' र. र. पाठः।

चिरायता, पिप्पलामूल, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, त्रिवी; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक-एक तोला लें। लौहभस्म सब के समान (पन्द्रह तोले) डालें। शुद्ध गुग्गुल एक पल लें। सबको पीसकर घी से मिला एक-एक मासे की गोली बनायें। इसका नाम मेहमुद्गर रस है। यह रस लोकोपकारी गहननाथ ने बनाया था। अनुपान में बकरी का दूध या जल पीना चाहिये। इस से बीस प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, हलीमक, अश्मरी, कामला, पाण्डु, मूत्राघात, अरुचि, बवासीर, व्रण, कुष्ठ, वातरक्त, भगन्दर; ये सब दूर होते हैं।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—४ रत्ती। यह श्लैष्मिक प्रमेहों में लाभकर है। कई टीकाकार 'दारु' से दारुहल्दी लेते हैं। शनैर्मेह और लालामेह में इसका विशेष प्रयोग है। यदि मूत्रमार्ग में स्थित पौरुषग्रन्थि में शोथ हो और वह बढ़गई हो तो वहां भी इस के निरन्तर प्रयोग से लाभ होता है॥ १४—१८॥

मेघनादो रसः—

भस्मसूतं समं कान्तमभ्रकन्तु शिलाजतु।
शुद्धताप्यं शिलाव्योष-त्रिफलाऽङ्कोठजीरकम्॥ १९॥
कार्पासबीजं रजनीचूर्णं भाव्यञ्च वह्निना।
विंशद्वारं विशोष्याथ लिह्याच्च मधुना सह।
माषमात्रो हरेन्मेहं मेघनादरसो महान्॥ २०॥

रससिन्दूर, कान्तलौहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध शिलाजीत, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध मनसिल, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, अङ्कोलबीज, श्वेतजीरा, कपास के बीज (बिनौले), हल्दी का चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर चीते के रससे बीसवार भावना देकर सुखा ले। इसे एक उड़द भर ले शहद से खावें। यह मेघनाद रस प्रमेह का नाश करता है।

विशेषवचन—मात्रा—१ रत्ती पर्यन्त दे सकते हैं। यह रस आगे कहे जाने वाले मेहवज्र रस का पाठान्तर-मात्र ही है। इस ग्रन्थ में उक्त

मेघनाद रस और मेहवज्र दोनों के पाठों में ही लेखक का प्रमाद दिखायी देता है। यहां 'अङ्कोठजीरकम्' के स्थान पर 'अङ्कोठबीजकम्' चाहिये। अर्थात् अङ्कोठ का बीज डाला जायगा। श्वेत जीरा नहीं डाला जाता। इसी प्रकार 'कार्पासबीजं रजनीचूर्णं भाव्यञ्च वह्निना' के स्थान पर 'कपित्थं चैव रजनी-चूर्णं भाव्यञ्च भृङ्गिणा' ऐसा पाठ होना चाहिये। जिसके अनुसार बिनौले न डाल कर कैथ का चूर्ण डाला जाता है और भावना भांगरे के रस से दी जाती है। शुद्ध पाठ रसरत्नाकर से लिये गये हैं। वहां इस रस का नाम मेघबन्ध दिया है। इसका नाम कहीं मेहबद्ध रस भी है। योगरत्नाकर में भी मेघनाद रस का पाठ है—

'सूतं कान्तं गन्धतीक्ष्णं ताप्यं व्योषं फलत्रिकम्।
शिलाजतु शिलाङ्कोलबीजं रात्रिकपित्थकम्॥
त्रिःसप्तकृत्वो भृङ्गाद्भिर्भावयेन्निष्कमानकः।
मधुना मेघनादोऽयं सर्वमेहान्विनाशयेत्॥'

यहां पर रससिन्दूर नहीं उसके स्थान पर पारा है। कज्जली करने के लिये गन्धक भी एक भाग कही है। अभ्रकभस्म के स्थान पर तीक्ष्णलौह-भस्म है। शेष द्रव्य रसरत्नाकर के शुद्ध पाठ के सदृश ही हैं। अनुपान में रसरत्नाकर और योगरत्नाकर दोनों में ही बकायन के बीजों के चूर्ण को घृत युक्त तण्डुलोदक में मिला पिलाने का आदेश है। रसरत्नाकर में इसे उदकमेह-प्रसङ्ग में कहा गया है॥ १९—२०॥

चन्द्रप्रभा वटिका —

मृतसूताभ्रकं लौहं नागं वङ्गं समं समम्।
एलाबीजं लवङ्गञ्च जातीकोषफलं तथा॥ २१॥
मधुकं मधुयष्टीञ्च धात्रीञ्च समशर्कराम्।
कर्पूरं खादिरं सारं शताह्वां कण्टकारिकाम्॥ २२॥
अम्लवेतसकं तुल्यं दिनैकं लाङ्गलीद्रवैः।
भावयेत् मेषदुग्धेन नागवल्ल्या रसैर्दिनम्॥ २३॥

वटिका बदरास्थ्याभा कार्य्या चन्द्रप्रभा परा ।
भक्षयेद् वटिकामेकां सर्वमेहकुलान्तिकाम् ॥ २४ ॥
धात्रीपटोलपत्राणां कषायं वाऽमृतायुतम् ।
सक्षौद्रं पाययेच्चानु सर्वमेहप्रशान्तये ॥ २५ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, नागभस्म, वंगभस्म, छोटी इलायची के बीज, लौंग, जायफल, जावित्री, महुआ, मुलहठी, आंवला, खांड, कपूर, कत्था, सौंफ, छोटी कटेली, अम्लवेत; इन सबका चूर्ण एक-एक तोला लेकर लाङ्गली (कलिहारी) के रस से एक दिन भावना देवे । फिर भेड़ के दूध से एक दिन और पान के रस से एक दिन भावित करे । बेर की गुठली के समान गोली बनावे । इस चन्द्रप्रभा गोली को खाने से सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं । सब प्रमेहों को शान्त करने के लिये अनुपान में आंवला, पटलोपत्र, गिलोय इनके काढ़े को शहद मिलाकर पीवे ।

विशेषवचन—मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक ।

रसरत्नाकर में चन्द्रप्रभा वटी का पाठ निम्नोक्त है—

मृतसूतञ्च काशीशमेला जातीफलं जटा ।
मधुकं मधुयष्टी च धात्री दाडिमशर्करा ॥'

इसके आगे का पाठ 'चन्द्रप्रभा परा' तक का मूलग्रन्थ के पाठ के सदृश ही है । पश्चात्--

भक्षयेत्तीव्रमेहार्त्तो मेहान्हन्ति सुदुस्तरान् ।
धात्रीपटोलपत्राणां कषायं वा घृतान्वितम् ॥
सक्षौद्रं पाययेच्चानु सर्वमेहप्रशान्तये ॥'

यह पाठ है । इसे वहां क्षारमेह के प्रसङ्ग में कहा है । यही पाठ रस-कामधेनु में भी है । इसके अनुसार रससिन्दूर, शुद्ध कासीस (वा कासीस-भस्म), छोटी इलायची, जायफल, बालछड़, महुआ, मुलहठी, आंवला, अनारदाना, खांड तथा कपूर आदि द्रव्य हैं । अनुपानार्थ क्वाथ में गिलोय

---

१ 'वा घृतान्वितम् । सक्षौद्रं पाययेच्चानु' पा० ।

नहीं। आंवला और पटोलपत्र के क्वाथ में घी और मधु डालकर पीना बताया है। सम्भवतः रसरत्नाकर के योगपाठ में त्रुटि हो वा उसे इससे भिन्न योग माना जाय। परन्तु अन्य तन्त्रों में जहां, यहां मूल में कहे पाठ के समान ही है, वहां 'धात्रीञ्च समशर्करास्' के स्थान पर 'धात्री दाडिमशर्कराम्' पाठ है। अतः अनारदाना डालना ही चाहिये ॥ २१—२५ ॥

इक्षुमेहे वङ्गेश्वरो रसः—

रसभस्मसमायुक्तं वङ्गभस्म प्रकल्पयेत् ।
अस्य माषद्वयं हन्ति मेहान् क्षौद्रसमन्वितम् ॥ २६ ॥

रससिन्दूर और बंगभस्म दोनों को मिलाकर दो उड़द भर शहद से खावें तो सब प्रमेह (विशेषतः इक्षुमेह) नाश होते हैं।

विशेषवचन—इसे वातमेह पिष्टमेह तथा चिरकालीन शुक्रमेह में भी दिया जाता है। इसी रस को मेहारि रस मेहानल रस नाम से तन्त्रान्तरों में कहा है। सूज़ाक में शीतल चीनी के चूर्ण के साथ इसका प्रयोग विशेष लाभ करता है।

कहीं शुक्रमेह आदि में इसका अनुपान गुञ्जामूल (घुंघची की जड़) के चूर्ण को दूध में डाल कर पीना बताया है ॥ २६ ॥

बृहद्वङ्गेश्वरोरसः—

वङ्गभस्म रसं गन्धः रौप्यं कर्पूरमभ्रकम् ।
कर्षं कर्षं मानमेषां सूताङ्घ्रि हेम मौक्तिकम् ॥ २७ ॥
केशराजरसैर्भाव्यं द्विगुञ्जाफलमानतः ।
प्रमेहान् विंशतिश्चैव साध्यासाध्यमथापि वा ॥ २८ ॥
मूत्रकृच्छ्रं तथा पाण्डुं धातुस्थञ्च ज्वरं जयेत् ।
हलीमकं रक्तपित्तं वातपित्तकफोद्भवम् ॥ २९ ॥
ग्रहणीमामदोषञ्च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
एतान् सर्वान् निहन्त्याशु वृत्तमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ३० ॥

बृहद्वङ्गेश्वरो नाम सोमरोगं निहन्त्यलम् ।
बहुमूत्रं बहुविधं मूत्रमेहं सुदारुणम् ॥ ३१ ॥
मूत्रातीसारं कृच्छ्रञ्च क्षीणानां पुष्टिवर्द्धनः ।
ओजस्तेजस्करो नित्यं स्त्रीषु सम्यक् वृषायते ।
बलवर्णकरो रुच्यः शुक्रसंजननः परः ॥ ३२ ॥
छागं वा यदि वा गव्यं पयो वा दधि निर्मलम् ।
अनुपानं प्रयुञ्जीत बुद्ध्वा दोषगतिं भिषक् ॥ ३३ ॥
दद्याच्च बाले प्रौढे च सेवनार्थं रसायनम् ॥ ३४ ॥

वंगभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, चांदीभस्म, कपूर, अभ्रकभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लें। स्वर्णभस्म तीन माशे (२४ रत्ती), मोतीभस्म तीन माशे लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर केशराज के रस से भावित (सातवार) कर दो रत्ति प्रमाण की गोली बनावें। इससे बीस प्रकार के प्रमेह साध्य हों या असाध्य दूर होते हैं। मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुस्थ ज्वर, हलीमक, रक्तपित्त, वात पित्त कफ से उत्पन्न होने वाले रोग, ग्रहणी, आमदोष, मन्दाग्नि, अरुचि; इन सब रोगों को यह ऐसे नाश करता है जैसे बिजली वृक्ष को नाश करती है। यह बृहद्वङ्गेश्वर रस सोमरोग, बहुमूत्र, बहुत प्रकार के घोर मूत्रमेह, मूत्रातिसार, मूत्रकृच्छ्र को नाश करता है। क्षीण मनुष्यों को पुष्ट करने वाला है, ओज तथा तेज को बढ़ाता है। इसके सेवन से मनुष्य मैथुन में पूर्ण समर्थ होता है। यह बलदायक, वर्णकारक, रुचिवर्धक तथा परम वीर्योत्पादक है। दोषों की गति को जानकर बकरी के दूध, गौ के दूध वा निर्मल दही का अनुपान करे। इस रसायन को बालक और प्रौढ़ सब खा सकते हैं।

विशेषवचन—इस रस का प्रयोग पुराने सूज़ाक में भी जब मूत्र के साथ धागे धागे से आते हैं किया जाता है। यह शीघ्र लाभ करता है। पुराने शुक्रमेह में भी हितकर है। मधुमेह में भी जब इसके साथ ही ओजोविस्रंस भी हो इससे विशेष लाभ देखा गया है ॥ २७—३४ ॥

वङ्गादियोगाः—

वङ्गाभ्रमथ नागाभ्रं नागं वङ्गञ्च केवलम् ।
मेहरोगे प्रयोक्तव्यं शिलाजतुसमन्वितम् ॥ ३५ ॥

वंगभस्म और अभ्रकभस्म को वा नागभस्म और अभ्रकभस्म को, वा केवल नागभस्म को, केवल बंगभस्म को, अथवा केवल शुद्ध शिलाजीत को, अथवा वंगभस्म, अभ्रकभस्म और शुद्ध शिलाजीत को अथवा नागभस्म, अभ्रकभस्म और शिलाजीत को अथवा नागभस्म और शुद्ध शिलाजीत को अथवा वङ्गभस्म और शुद्ध शिलाजीत को प्रमेह रोग में (अवस्थानुसार) प्रयोग कराना चाहिये ।

विशेषवचन—उक्त प्रकार से ये ६ योग होते हैं । ये साधारणतः सब प्रमेह रोगों में प्रयुक्त होते हैं । जो योग यहां शिलाजतुयुक्त हैं उनका प्रयोग प्रायः वहां नहीं किया जाता जहां मूत्रस्राव अधिक परिमाण में हो । इन्हें आंवले के रस और मधु के साथ प्रयोग कराया जाता है । इन सब का विशेष प्रयोग प्रायः शुक्रमेह और स्वप्नमेह में देखा जाता है । रक्तमेह में इन नौ योगों को ही मधु के साथ देसकते हैं । मधुमेह में वङ्गभस्म को अर्जुनवृक्ष की छाल और भुई आंवला के चूर्ण के साथ देते हैं । शुक्रमेह में हल्दी के चूर्ण के साथ भी प्रयोग कराया जाता है । योगरत्नाकर में वङ्गशिलाजतु के विषय में कहा है—

'वङ्गं शिलाजतुयुतं तु मतं प्रमेहे धातुक्षये दुर्बलनष्टशुक्रयोः ।

वङ्गाभ्र के विषय में—

'अभ्रेण युक्तं तु सुतप्रदं स्याज्जातीफलार्ककरहाटलवङ्गयुक्तम् ।'

अर्थात् वङ्गाभ्र को जायफल अकरकरा और लौंग के चूर्ण के साथ प्रयोग कराने से वीर्य पुत्रोत्पत्ति में समर्थ होता है । नागभस्म भी इसीप्रकार गुणकारक है । नागभस्म को भी हल्दी चूर्ण और आमलकी चूर्ण के साथ मधु से चाटने से सब प्रमेह नष्ट होते हैं । यह मूत्राधिक्य को भी कम करता है ।

अकेली शिलाजीत को दूध के साथ प्रयोग करने से भी रोगी प्रमेह से मुक्त होता है—यह प्रसिद्ध ही है ॥ ३५ ॥

कस्तूरीमोदकः—

कस्तूरी वनिता क्षुद्रा त्रिफला जीरकद्वयम् ।
एलाबीजं त्वचं यष्टिमधुकं मिषिवालकम् ॥ ३६ ॥
शतपुष्पोत्पलं धात्री मुस्तकं भद्रसंज्ञकम् ।
खर्जूरं कृष्णतिलकं सुपक्वं कदलीफलम् ॥ ३७ ॥
कोकिलाक्षस्य बीजञ्च माषमात्रं समं समम् ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि द्विगुणा सितशर्करा ॥ ३८ ॥
धात्रीरसेन पयसा कूष्माण्डस्वरसेन च ।
विपचेत् पाकविद् वैद्यो मन्दमन्देन वह्निना ॥ ३९ ॥
अवतार्य सुशीते च यथालाभं विनिक्षिपेत् ।
अक्षमात्रं प्रयुञ्जीत सर्वमेहप्रशान्तये ॥ ४० ॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
सोमरोगं बहुविधं मूत्रातीसारमुल्बणम् ॥ ४१ ॥
मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु मूत्राघातं तथाश्मरीम् ।
ग्रहणीं पाण्डुरोगञ्च कामलां कुम्भकामलाम् ॥ ४२ ॥
वृष्यो बलकरो हृद्यः शुक्रवृद्धिकरः परः ।
कस्तूरीमोदकश्चायं चरकेण च भाषितः ॥ ४३ ॥

कस्तूरी, प्रियंगु, छोटी कटेली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, श्वेत जीरा, काला जीरा, छोटी इलायची के बीज, दारचीनी, मुलहठी, सौंफ़, सुगन्धबाला, सोये, नीला कमल, आंवला, नागरमोथा, खजूर, काले तिल, पका हुआ केला, तालमखाना; प्रत्येक द्रव्य एक-एक माषा लेकर पीसे। सब से दुगुनी श्वेत खांड ले और आंवले का रस, पेठे का रस, गौ का दूध प्रत्येक को कस्तूरी आदि तालमखाना पर्यन्त चूर्ण से चारगुणा ले। द्रवों को एकत्र कर उस में स्वच्छ खांड घोल दे। अब पाकविधि को जानने वाला वैद्य मन्द अग्नि पर पकाये। ठीक पक चुकने

पर उतार ले और शीतल होने पर कस्तूरी आदि का चूर्ण मिला अच्छी प्रकार आलोडित कर एक अक्ष (कर्ष) भर के मोदक बनाले। सब प्रकार के प्रमेह शान्त होते हैं। यह वातिक पैत्तिक श्लैष्मिक सान्निपतिक प्रमेह, अनेक प्रकार के सोमरोग, भयंकर मूत्रातिसार, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी, ग्रहणी, पाण्डुरोग, कामला तथा कुम्भकामला रोगों को नाश करता है। वृष्य, बलदायक, हृदय के लिये हितकारी तथा परम वीर्यवर्धक है। यह कस्तूरीमोदक चरक ने बताया है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—चौथाई तोला से आधा तोला तक।

इस मोदक का पाक करने में कई प्रथम दूध का मावा कर लेते हैं। और थोड़ा सी घी में भून लेते हैं पश्चात् पेठे का रस और आंवले का रस एकत्र कर खांड डाल मन्द आंच पर चाशनी बनाते हैं। ठीक चाशनी बन जाने पर मावा डाल अच्छी प्रकार मिला देते हैं। शीतल होने पर उस में चूर्ण मिला मोदक बनाते हैं। मावे को घी में भून लेने से औषध अपेक्षया अधिक दिन टिक जाती है। यह योग हस्तिमेह में विशेष लाभ करता है।

कई 'उत्पल' से नीलोत्पल न लेकर कूठ का ग्रहण करते हैं॥ ३६-४३॥

मेहवज्रः—

भस्मसूतं मृतं कान्तं[1] लौहभस्म[2] शिलाजतु।
शुद्धताप्यं शिलाव्योषं त्रिफला[3] बिल्वजीरकम्॥ ४४॥
कपित्थं रजनीचूर्णं भृङ्गराजेन भावयेत्।
त्रिंशद्वारं[4] विशोष्याथ लिह्याच्च मधुना सह॥
निष्कमात्रं हरेन्मेहान् मूत्रकृच्छ्रं[5] सुदारुणम्॥ ४५॥

१ 'कान्तलौहभस्म' प्रचलितः पाठः
२ 'मुण्डभस्म' शा., र. र. स. पाठः। तीक्ष्णभस्म' र. र. पाठः।
३ 'त्रिफलाङ्कोलबीजकम्' इति पाठस्तन्त्रान्तरदर्शनात् कार्यः।
४ 'विंशद्वारं' र. र. पाठः।
५ 'मेहवद्धो रसो महान्' शा.,र.र.स.पाठः। 'मेघवन्धो रसो महान्' र.र. पाठः।

महानिम्बस्य बीजञ्च परिशुष्कं पेषितञ्च यत्।
पलतण्डुलतोयेन घृतनिष्कद्वयेन च।
एकीकृत्य पिबेच्चानु हन्ति मेहं चिरोत्थितम् ॥ ४६ ॥

रससिन्दूर, कान्तलोहभस्म, लोह (मुण्ड वा तीक्ष्ण) भस्म, शुद्ध शिलाजीत, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध मनसिल, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा,आंवला, बिल की जड़ की छाल, श्वेत जीरा, कैथ, हल्दी का चूर्ण; सब द्रव्य समभाग लेकर भांगरे के रस से तीस बार भावना देकर सुखा ले। इसे एक निष्क (शाण) भर लेकर शहद से खावे, तो प्रमेह और दारुण मूत्रकृच्छ्र दूर होते हैं। इसके पीछे बकायन के बीज के चूर्ण छः निष्क को एक पल तण्डुलोदक तथा दो निष्क घी से मिलाकर पीवें तो पुराना प्रमेह भी दूर होता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा--३ रत्ती। अनुपान में महानिम्ब (बकायन, धेक) के बीज १२ रत्ती, तण्डुलोदक २ तोले तथा घी २४ रत्ती मिलाकर देते हैं।

इसे मधुमेह की प्रारम्भिक अवस्था तथा उदकमेह में प्रयोग कराया जाता है।

इस योग में 'मृतं कान्तलौहभस्म' यह प्रमादयुक्त पाठ है। रसरत्नाकर आदि के अनुसार मृतं कान्तं लौहभस्म' ऐसा पाठ करना ही ठीक है। इसी प्रकार 'बिल्वजीरकम्' के स्थान पर 'अङ्कोलबीजकम्' होना चाहिये।

शार्ङ्गधर में बकायन के बीज संख्या में छह लेने को कहे हैं। तीस भावना के स्थान पर रसरत्नाकर में २० भावना हैं। इसका नाम तन्त्रान्तरों में मेहबद्ध रस भी है। रसरत्नाकर में मेघबन्ध रस है।

पाठान्तर होने मात्र से ही मेघनाद और यह रस संग्रहकर्ता ने पृथक् दे दिये हैं। वस्तुतः यदि दोनों के प्रमाद-पाठों को ठीक कर दिया जाय तो एक ही रस है। रसेन्द्रचिन्तामणि से ही ये दोनों योग उद्धृत प्रतीत होते हैं।

---

१ 'बीजानि पिष्ट्वा षट् सम्मितानि च' शा. पाठः।

रसप्रकाशसुधाकर में मेहबद्ध रस का पाठ निम्न है—

'भस्मसूतमृतकान्तलोहकं माक्षिकं च कुनटीं शिलाजतु ।
व्योषमेव त्रिफलां कपित्थकं रात्रियुग्ममथ कुष्ठबीजकम् ॥
भृङ्गराजरसकेन भावयेदेकविंशतिदिनानि वै बुधः ।
निष्कमात्रमथ माक्षिकेण वै लेहितः सकलरोगहृत्सदा ॥
मेहबद्धरस एष वै बुधाः सर्वमेहहरणो मयोदितः ।
महानिम्बस्य बीजानि पिष्ट्वा षट्सम्मितानि च ।
पलतन्दुलतोयेन घृतनिष्कद्वयेन च ॥
एकीकृत्य पिबेच्चानु हन्ति मेहं चिरन्तनम् ॥'

यहां 'अङ्कोलबीज के स्थान पर कुष्ठबीज (कुष्ठबीजकम्)' है । जो प्रमाद-पूर्ण है । यहां दारुहल्दी भी डालने का आदेश है ।

अङ्कोलबीज के योग वहां दिये जाते हैं जहां प्रमेहों में कोष्ठबद्धता भी हो ॥ ४४—४६ ॥

कुमारी केवला देया चेषल्लवणसंयुता ।
प्रमेहं हन्ति सकलं सप्ताहात् परतो नृणाम् ॥ ४७ ॥

केवल घीकुमार को थोड़ा सेंधानमक लगा कर सात दिन खाने से सब प्रमेह नाश होजाते हैं ।

विशेषवचन—जब शुक्रच्युति वा अन्य प्रमेहों में मलबद्धता कारण हो तो इस के प्रयोग से विशेष लाभ हो सकता है ॥ ४७ ॥

मेहकेशरी—

मृतं वङ्गं सुवर्णञ्च कान्तलौहञ्च पारदम् ।
मुक्तां गुडत्वचञ्चैव सूक्ष्मैलानागकेशरम्[1] ॥ ४८ ॥
समभागं विचूर्ण्याथ कन्यानीरेण भावयेत् ।
द्विमाषां वटिकां खादेद् दुग्धान्नं प्रपिबेत् ततः ॥ ४९ ॥
प्रमेहं नाशयत्याशु केशरी करिणं यथा ॥ ५० ॥

---

१ 'पत्रकेशरम्' पा० ।

शुक्रप्रवाहं शमयेत् त्रिरात्रान्नात्र संशयः।
चिरजातं प्रवाहञ्च मधुमेहञ्च नाशयेत् ॥ ५१ ॥

वंगभस्म, स्वर्णभस्म, कान्तलौहभस्म, पारदभस्म (वा रससिन्दूर), मोतीभस्म, दारचीनी, छोटी इलायची, नागकेशर; प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर चूर्ण करे और घीकुमार के रस से भावित (सात वार) करे। दो माष (उड़द) भर इसे खाकर ऊपर से दूध भात खावे। यह प्रमेह को वैसे ही शीघ्र नष्ट करता है जैसे शेर हाथी को। यह तीन दिन में वीर्य के प्रवाह अर्थात् शुक्रमेह को शान्त करता है—इसमें कोई संशय नहीं। पुराने शुक्रप्रवाह तथा मधुमेह को भी हटाता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—२ रत्ती पर्यन्त है। भैषज्यरत्नावली रसेन्द्रचिन्तमाणि प्रभृति में तेजपत्र भी एक भाग डालने का पाठ है ॥४८-५१॥

योगेश्वरो रसः

सूतकं गन्धको लौहः नागश्चापि वराटिका।
ताम्रकं वङ्गभस्मापि व्योमकञ्च समांशिकम् ॥ ५२ ॥
सूक्ष्मैलापत्रमुस्तञ्च विडङ्गं नागकेशरम्।
रेणुकाऽऽमलकश्चैव पिप्पलीमूलमेव च ॥ ५३ ॥
एषाञ्च द्विगुणं भागं मर्दयित्वा प्रयत्नतः।
भावना तत्र दातव्या धात्रीफलरसेन च ॥ ५४ ॥
मात्रा चणकतुल्या च गुडिकेयं प्रकीर्त्तिता।
प्रमेहं बहुमूत्रञ्च अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रकम् ॥ ५५ ॥
व्रणं हन्ति महाकुष्ठं ह्यर्शांसि च भगन्दरम्।
योगेश्वरो रसो नाम महादेवेन भाषितः ॥ ५६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, नागभस्म, कौड़ीभस्म, ताम्रभस्म, वंगभस्म, अभ्रकभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलाये। छोटी इलायची, तेजपत्र, मोथा,

वायविडंग, नागकेशर, रेणुका, आंवला, पिप्पलीमूल; प्रत्येक का चूर्ण दो तोला लेकर मिला दे। अब सब को मर्दन कर आंवले के रस की भावना (सात) देवे। फिर चने के समान गोली बनाले। इसके सेवन से प्रमेह, बहुमूत्र, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, व्रण, महाकुष्ठ, बवासीर, भगन्दर रोग नष्ट होते हैं। इस योगेश्वर रस को महादेव जी ने कहा है ॥ ५२-५६ ॥

इति प्रमेहचिकित्सा।

अथ सोमरोगचिकित्सा।

तालकेश्वरो रसः—

तालं सूतं समं गन्धं मृतलौहाभ्रवङ्गकम्।
मर्दयेन्मधुना चैव रसोऽयं तालकेश्वरः ॥ १ ॥
माषमात्रं भजेत् क्षौद्रैर्बहुमूत्रप्रशान्तये।
उडुम्बरफलं पक्वं चूर्णितं कर्षमानतः।
संलेह्य मधुना सार्द्धमनुपानं सुखावहम् ॥ २ ॥

शुद्ध हड़ताल, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, बंगभस्म; प्रत्येक समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलावे और शहद से घोट कर गोली बना ले। इसे एक उड़द भर लेकर शहद से चाटे। अनुपान में पके हुए गूलर के चूर्ण को एक कर्ष ले उस में शहद मिला चाटे। यह बहुमूत्र को दूर करता है।

विशेषवचन—मात्रा—३ रत्ती पर्यन्त। सामान्यतः एक रत्ती मात्रा में प्रयुक्त कराया जाता है। यह बहुमूत्र के अतिरिक्त मधुमेह में भी लाभ करता है। मूत्र में शर्करा की मात्रा को भी कम कर देता है। देह की दुर्बलता को हटाता है ॥ १-२ ॥

गगनादिलौहम्—

गगनं त्रिफला लौहं कुटजं कटुकत्रयम्।

पारदः गन्धकश्चैव विषटङ्कणसर्जिकाः ॥ ३ ॥
त्वगेला तेजपत्रञ्च वङ्गं जीरकयुग्मकम् ।
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ४ ॥
तदर्द्धं चैत्रकं चूर्णं कर्षैकं मधुना लिहेत् ।
अवश्यं विनिहन्त्याशु मूत्रातीसारसोमकम् ॥ ५ ॥

अभ्रकभस्म, हरड़, बहेड़ा, आंवला, लौहभस्म, कुटजछाल, सोंठ, मिरच, पिप्पली, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, शुद्ध सुहागा, सज्जीखार, दारचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, बंगभस्म, श्वेत जीरा, काला जीरा; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिलाये। पश्चात् सारे चूर्ण का आधा चीते का चूर्ण मिलाये। इस गगनादिलौह की मात्रा एक कर्ष लेकर शहद से खावे तो मूत्रातिसार और सोमरोग अवश्य ही शीघ्र नष्ट होता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक। इस रस का यकृत पर बहुत उत्तम प्रभाव होता है। यकृत की विकृति के कारण होने वाले बहुमूत्र और मधुमेह में शीघ्र लाभ करता है। यदि मूत्रातिसार के साथ अतिसार भी हो तो यह रस दूसरे कहे गये रसों से अधिक लाभकर सिद्ध होता है ॥ ३—५ ॥

सोमनाथ रसः—

कर्षं जारितलौहञ्च तदर्द्धं रसगन्धकम् ।
एलापत्रं निशायुग्मं जम्बुवीरणगोक्षुरम् ॥ ६ ॥
विडङ्गं जीरकं पाठा धात्रीदाडिमटङ्कणम् ।
चन्दनं गुग्गुलुः लोध्रशालार्जुनरसाञ्जनम् ॥ ७ ॥
छागीदुग्धेन वटिकां कारयेद् दशरक्तिकाम् ।
निर्मितो नित्यनाथेन सोमनाथरसस्त्वयम् ॥ ८ ॥
सोमरोगं बहुविधं प्रदरं हन्ति दुर्जयम् ।

योनिशूलं मेढ्रशूलं सर्वजं चिरकालजम् ।
बहुमूत्रं विशेषेण दुर्जयं हन्त्यसंशयम् ॥ ६ ॥

लौहभस्म एक कर्ष,शुद्ध पारा,शुद्ध गन्धक, छोटी इलायची,तेजपात,हल्दी, दारुहल्दी, जामुन की गुठली, खस, गोखरू, विडंग, श्वेत जीरा, पाठा, आंवला, अनारदाना, सुहागा, चन्दन लाल, शुद्ध गुग्गुलु, लोध, शाल की छाल, अर्जुन छाल, रसौंत; प्रत्येक आधा कर्ष लेकर बकरी के दूध से घोट कर दस रत्ति की गोली बनावें। यह सोमनाथ रस नित्यनाथ ने बनाया था। यह अनेक प्रकार के सोमरोग, घोर प्रदर, योनिशूल, लिङ्गशूल, त्रिदोषज तथा पुराने दुर्जय बहुमूत्र रोग को विशेष करके नष्ट करता है।

विशेषवचन--मात्रा--५ रत्ती से १० रत्ती तक। यह योग उदकमेह में भी अत्यन्त हितकर है। इससे मूत्र की मात्रा शीघ्र कम होती है। यदि वस्ति वा मूत्रसंस्थान के किसी भाग में वातज कफज वा वातकफज पुराना शोथ हो तो यह उसे कम कर देता है। यह मूत्र के वेग को धारने की शक्ति को भी उत्पन्न करता है ॥ ६--६ ॥

बृहत्सोमनाथरसः—

हिङ्गूलसम्भवं सूतं पालिधारसमर्दितम् ।
रण्डाशोधितगन्धश्च तेनैव कज्जलीकृतम् ॥ १० ॥
तद्द्वयोर्द्विगुणं लौहं कन्यारसविमर्दितम् ।
अभ्रकं वङ्गकं रौप्यं खर्परं माक्षिकं तथा ॥ ११ ॥
सुवर्णञ्च समं सर्वं प्रत्येकञ्च रसार्द्धकम् ।
तत्सर्वं कन्यकाद्रावैर्मर्दयेद् भावयेत् ततः ॥ १२ ॥
भेकपर्णीरसेनैव गुञ्जाद्वयवटीं ततः ।
मधुना भक्षयेच्चापि सोमरोगनिवृत्तये ॥ १३ ॥
प्रमेहान् विंशतिं हन्ति बहुमूत्रञ्च सोमकम् ।
मूत्रातीसारं कृच्छ्रञ्च मूत्रघातं सुदारुणम् ॥ १४ ॥

बहुदोषं बहुविधं प्रमेहं मधुसंज्ञकम्।
हस्तिमेहमिक्षुमेहं लालामेहं विनाशयेत् ॥ १५ ॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सोमसंज्ञकम्।
नाशयेद् बहुमूत्रञ्च प्रमेहमविकल्पतः ॥ १६ ॥

हिंगुल से निकाले हुए पारे को पारिभद्र (फरहद) के रस से घोट ले। और मूषाकर्णी के रस से शुद्ध किया हुआ गन्धक ले। इन पारा और गन्धक दोनों को एक २ तोला लेकर कज्जली करे। फिर उसमें घीकुमार के रस से घुटा हुआ लौहभस्म चार तोला, अभ्रकभस्म, बंगभस्म, चांदीभस्म, खर्परभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, स्वर्णभस्म; प्रत्येक आधा २ तोला डालकर घीकुमारी के रस से घोटें और मण्डूकपर्णी के रस की भावना (सात) देकर दो रत्ती की गोली बनालें। इसे शहद से खावें तो सोमरोग नष्ट होता है। यह बीसों प्रमेह, बहुमूत्र, सोमरोग, मूत्रातिसार, मूत्रकृच्छ्र, भयंकर मूत्राघात, बहुत दोषों वाले तथा अनेक प्रकार के प्रमेह, मधुमेह, हस्तिमेह, इक्षुमेह, लालामेह, वातिक,पैत्तिक, श्लैष्मिक प्रमेह; इन सबको निश्चय से नाश करता है।

विशेषवचन—मात्रा—आधी रत्ती से दो रत्ती पर्यन्त। इसे अरहर के पत्तों के रस से वा केले की जड़ के रस से दे सकते हैं ॥ १०—१६ ॥

सोमेश्वरो रसः—

शालार्जुनं लोध्रकञ्च कदम्बागुरुचन्दनम्[1]।
अग्निमन्थो निशायुग्मं धात्रीदाडिमगोक्षुरम् ॥ १७ ॥
जम्बुवीरणमूलञ्च भागमेषां पलार्द्धकम्।
रसगन्धकधान्याब्दमेलापत्रं तथाऽभ्रकम् ॥ १८ ॥
लौहं रसाञ्जनं पाठा विडङ्गं टङ्गजीरकम्।
प्रत्येकं पलिकं[2] भागं पलार्द्धं गुग्गुलोरपि ॥ १९ ॥

१ 'च पद्मकम्' भै. र. पाठः। २ 'शाणकं' भै. र पाठः

घृतेन वटिकां कृत्वा खादेत् षोडशरक्तिकाम् ।
गहनानन्दनाथेन रसो यत्नेन निर्मितः ॥ २० ॥
सोमेश्वरो महातेजाः सोमरोगं निहन्त्यलम् ।
एकजं द्वन्द्वजञ्चैवं सन्निपातसमुद्भवम्[२] ।
मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं कामलाञ्च हलीमकम् ॥ २१ ॥
भगन्दरोपदंशौ च विविधान् पिडकाव्रणान् ।
विस्फोटार्बुदकण्डूश्च[३] सर्वमेहं विनाशयेत् ॥ २२ ॥

शाल-सार (अन्तःकाष्ठ), अर्जुन की छाल, लोध, कदम्ब की छाल, अगर, लाल चन्दन, अरणी की छाल, हल्दी, दारुहल्दी, आंवला, अनारदाना, गोखरू, जामुन की गुठली की गिरी, खस; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण आधा २ पल । शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक १ पल । धनियां, नागरमोथा, छोटी इलायची, तेजपात, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, रसौंत, पाठा, वायविडङ्ग, सुहागा, श्वेत जीरा; प्रत्येक का चूर्ण एक २ पल ले । पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिला ले । गुग्गुल शुद्ध आधा पल को घी से कूट कर चूर्ण मिला सोलह रत्ति की गोली बनावें । यह सोमेश्वर रस गहनानन्द ने बड़े प्रयत्न से बनाया था । यह अति वीर्यवान है । सोमरोग को दूर करता है । एक-दोषज, द्वन्द्वज, त्रिदोषज, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, कामला, हलीमक, भगन्दर, उपदंश, विविध पिडकायें, विस्फोटक, अर्बुद, कण्डू तथा सब प्रमेहों को दूर करता है ।

---

१ 'चोग्रं' पा० ।

२ अस्यानन्तरं 'उपद्रवसमायुक्तं चिरकालसमुद्भवम्' इत्यधिको भैषज्यरत्नावल्याम् ।

३ 'विस्फोटार्बुदकण्डूश्च वातपित्ताम्लपित्तके । यकृत्प्लीहोदरं गुल्मं शूलार्शःकासविद्रधीः । सोमरोगं निहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनम् । बलवर्णाग्निजननो ग्रहवैगुण्यनाशनः । छागीदुग्धानुपानेन नारिकेलोदकेन वा । शीतेन पाकतैलेन यवयूषादियोगतः । युक्त्या प्रयोज्यो भिषजा रसो दोषविदाह्ययम् ॥' भै. र. पाठः ।

विशेषवचन--मात्रा—४ रत्ती से १६ रत्ती तक। यह रस पूर्वोक्त सोमनाथ रस का थोड़ा परिवर्तित और परिवर्धित रूप है। इसे बकरी के दूध के अनुपान से प्रयोग कराया जाता है।

भैषज्यरत्नावली में पारद से लेकर जीरा पर्यन्त द्रव्यों का मान एक-एक शाण कहा है ॥ १७—२२ ॥

इति सोमरोगचिकित्सा।

अथ स्थौल्य-चिकित्सा।

त्र्यूषणाद्यं लौहम्—

त्र्यूषणं विजया चव्यं चित्रकं विडमौद्भिदम्।
वागुजी सैन्धवश्चैव सौवर्चलसमन्वितम् ॥ १ ॥
अयश्चूर्णेन संयुक्तं भक्षयेन्मधुसर्पिषा।
स्थौल्यापकर्षणं श्रेष्ठं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ २ ॥
मेहघ्नं कुष्ठशमनं सर्वव्याधिहरं परम्।
नाहारे यन्त्रणा कार्य्या न विहारे तथैव च।
त्र्यूषणाद्यमिदं लौहं रसायनवरोत्तमम् ॥ ३ ॥

सोंठ, मिरच, पिप्पली, भांग, चव्य, चीता, विडनमक, औद्भिद नमक, काली जीरी (कई बावची लेते हैं), सेंधानमक, सौंचल नमक; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग और इस सारे चूर्ण के बराबर लौहभस्म लें। सबको एकत्र पीस रखें। शहद और घी मिलाकर इसे उचित मात्रा में खावें तो स्थूलता कम होती है। बल वर्ण और अग्नि की वृद्धि होती है। यह प्रमेहनाशक कुष्ठनाशक तथा सर्वव्याधिविनाशक है। इसके सेवन काल में आहार विहार में कुछ वर्जित नहीं है। यह त्र्यूषणादि लौह उत्तम रसायन है।

विशेषवचन--मात्रा--१ रत्ती से ४ रत्ती तक।

रसरत्नाकर में स्थूलता के नाश के लिये एक और त्र्यूषणादि लोह कहा है—

'त्र्यूषणं त्रिफला चव्यं चतुर्लवणमभ्रकम्।
वाकुचीलौहचूर्णञ्च भक्षयेन्मधुसर्पिषा॥
परं स्थौल्यहरं बह्निबलवर्णविवर्द्धनम्।
श्रेष्ठं रसायनं मेहकुष्ठघ्नं यन्त्रणां विना॥'

त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, चारनमक (सेंधा, सौंचर, विड और सामुद्र), अभ्रकभस्म, कालीजीरी, प्रत्येक का चूर्ण समभाग और लौहभस्म; इस सारे के समान लें। एकत्र मिला स्थूलता के नाश के लिये मधु और घी के साथ रोगी को चटायें। इस योग में अभ्रकभस्म के स्थान पर वायविडङ्ग का पाठ भी है॥ १—३॥

वडवाग्निलौहम्--

सूतभस्म सतालञ्च लौहं ताम्रं समं समम्।
मर्दयेत् सूर्य्यपत्रेण चास्य वल्लं प्रयोजयेत्॥ ४॥
मधुना स्थूलरोगे च शोथे शूले तथैव च।
मध्वाज्यमनुपानञ्च देयं वाऽपि कफोल्वणे॥ ५॥

रससिन्दूर, शुद्ध हड़ताल, लौहभस्म, ताम्रभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। सबको पीसकर आक के पत्तों के रस से मर्दन करके डेढ़ रत्ति प्रमाण की गोली बनावें। इसे शहद से खावें तो स्थूलता, शोथ तथा शूलरोग नष्ट होते हैं। कफ प्रधान हो तो शहद और घी मिलाकर अनुपान देवे॥४-५॥

बडवाग्नि रसः--

शुद्धसूतं समो गन्धः ताम्रं तालं समं समम्।
अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्यं क्षौद्रैर्लेह्यं त्रिगुञ्जकम्[1]।

---

१ 'द्विगुञ्जकम्' पा०। अस्यानन्तरं च 'पलं क्षौद्रं पलं तोयमनुपानं पिबेत्सदा' इत्यधिको रसरत्नाकरे।

बडवाग्निरसो नाम्ना स्थौल्यमाशु नियच्छति ॥ ६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, हड़ताल शुद्ध; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलायें और आक के दूध से एक दिन पीसकर तीन रत्ति की गोली बनालें। इसे शहद से मिलाकर चाटें तो यह बडवाग्नि रस स्थूलता को शीघ्र दूर करता है।

विशेषवचन—मात्रा—आधी रत्ती से २ रत्ती तक। रसरत्नाकर में इस का अनुपान-शहद में समभाग जल मिलाकर बनाया शरबत बताया है। योगरत्नाकर और रसरत्नसमुच्चय में इस योग में बोल (Myrrh) अधिक है।

'शुद्धसूतं मृतं ताम्रं तालं बोलं समं समम्।
अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्यं क्षौद्रैर्लेह्यं द्विगुञ्जकम्॥
बडवाग्निरसो[1] नाम स्थौल्यं तुन्दं नियच्छति।
पलं क्षौद्रं पलं तोयमनुपानं पिबेत्सदा॥'

यहां पर शुद्ध पारद कहने से अनुक्त गन्धक तो डाली ही जायगी। बोल का पाठ यहां विशेष है। बोल अग्निदीपक है। यह आमाशय के रस को उत्तेजित करता है। वायु का अनुलोमक है। आमाशय और आंतों की स्वाभाविक गति में सहायता देता है। स्थूलता के नाश में ऐसे द्रव्यों का होना लाभ ही करता है॥ ६ ॥

इति स्थौल्यचिकित्सा।

अथ उदररोग-चिकित्सा।

त्रैलोक्यसुन्दरो रसः—

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं ताम्राभ्रं[2] सैन्धवं विषम्।
कृष्णजीरं विडङ्गञ्च गुडूचीसत्वचित्रकम्॥ १ ॥

---

१ 'वडवाग्निमुखः' र. र. स. पाठः।
२ 'मृताभ्रं' र. र., र. र. स. पाठः।

उग्रगन्धा यवक्षारं प्रत्येकं कर्षमात्रकम्[2] ।
निर्गुण्डिकाद्रवैरग्नि[3]-बीजपूरद्रवैर्दिनम् ॥ २ ॥
मर्दयेत् शोषयेत् सोऽयं रसस्त्रैलोक्यसुन्दरः ।
गुञ्जाद्वयं घृतैर्लेह्यं वातोदरकुलान्तकम् ॥ ३ ॥
वह्निचूर्णं[4] यवक्षारं प्रत्येकञ्च पलद्वयम् ।
घृतप्रस्थं विपक्तव्यं गोमूत्रैश्च चतुर्गुणैः ॥
घृतावशेषं कर्त्तव्यं कर्षमात्रं पिबेदनु ॥ ४ ॥

शुद्ध पारा एक कर्ष, शुद्ध गन्धक दो कर्ष; दोनों की कज्जली करे। फिर ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, सेंधानमक, शुद्ध विष, काला जीरा, विडंग, गिलोय का सत, चीता, वच, यवक्षार; प्रत्येक का चूर्ण एक २ कर्ष ले। सब को मिलाकर सम्भालू के रस से, चीते के रस से तथा बिजौरे के रस से एक २ दिन घोटकर सुखावे। यह त्रैलोक्यसुन्दर रस कहाता है। इसे दो रत्ति लेकर घी से खावे तो वातोदर शान्त होता है। इसके साथ आगे लिखे अनुपान को पीवे। चीते का चूर्ण दो पल, यवक्षार दो पल, दोनों को पीस कल्क बनायें। इस कल्क और चार प्रस्थ गौमूत्र से एक प्रस्थ घी को पकावें। ठीक पकजाने पर घी को छान लें। इस घी को एक कर्ष भर पूर्वोक्त रस के सेवन के पीछे अनुपान में पीवे।

विशेषवचन—मूलपाठ में यहां प्रमाद है। ताम्रभस्म आदि के लिये तो

---

१ 'वचा चैव' र. र. पाठः। 'एला चैव' र. र.स. पाठः।

२ 'स्याद्रसार्द्धकम्' र. र., र. र. स. पाठः।

३ 'द्रवैश्चाह्नि' र. र. पाठः। 'दिनं निर्गुण्डिका द्रवैः' र. र. स. पाठः।

४ 'पलैकं चित्रकं श्लक्ष्णं द्विगोमूत्रशकृज्जलैः। पाच्यं पादावशेषञ्च घृतप्रस्थं विपाचयेत्। पलैकञ्च यवक्षारं पिष्ट्वा पक्त्वावतारयेत्। तत्कार्षिकं पिबेच्चानु स्निग्धमुष्णं च भोजयेत्।' र.र.पाठः। 'पलमेकं चित्रमूलं द्विगोमूत्रैश्चतुर्जलैः। पाच्यं यावद्भवेत्कल्कं घृतं कल्कं च योजयेत्। पलैकं च यवक्षारं क्षिप्त्वा पक्त्वावतारयेत्। तत्कर्षैकं पिबेच्चानु स्निग्धमुष्णं च भोजयेत्।' र. र. स. पाठ।

कर्ष मान बताया है। परन्तु पारद और गन्धक का मान नहीं कहा। उक्त पाठ के अनुसार तो टीका में बताया अभिप्राय ही सङ्गत हो सकता है। परन्तु रसरत्नाकर और रसरत्नसमुच्चय के देखने से पता चलता है कि 'कर्ष-मात्रकम्' पाठ के स्थान पर 'रसार्द्धकम्' पाठ चाहिये। तब पारा १ भाग, गन्धक २ भाग और शेष द्रव्य आधा-आधा भाग लिये जांयगे। और यही बात आगे कहे जाने वाले त्रैलोक्योडुम्बर रस से भी स्पष्ट हो जाती है। वह इसी का रूपान्तर-मात्र है।

वचा के स्थान पर रसरत्नसमुच्चय में छोटी इलायची है। त्रैलोक्योडुम्बर में त्रिकटु है। रसरत्नाकर और रसरत्नसमुच्चय में ताम्रभस्म नहीं है। त्रैलो-क्योडुम्बर में भी ताम्रभस्म नहीं। भावना द्रव्यों में 'अह्नि' के स्थान पर 'अग्नि' हो गया है। रसरत्नाकर और रसरत्नसमुच्चय में चीते के क्वाथ की भावना नहीं और नाही इस ग्रन्थ में आगे कहे जाने वाले त्रैलोक्योडुम्बर रस में है। वैसे चीते के क्वाथ तथा ताम्रभस्म के योग से कुछ गुण बढ़ ही जायेंगे ॥ १—४ ॥

वैश्वानरी वटी—

शुद्धसूतं द्विधा[1] गन्धं मृतां[2]कार्यः शिलाजतु।
रसमानं प्रदातव्यं रसस्य द्विगुणं विषम् ॥ ५ ॥
त्रिकटु चित्रकं वीरा[3] निर्गुण्डी मूषलीरजः।
अजमोदा विषां[4]शेन प्रत्येकञ्च नियोजयेत् ॥ ६ ॥
निम्बपञ्चा[5]ङ्गकक्काथैर्भावना चैकविंशतिः।
भृङ्गराजरसैः सप्त दत्त्वा क्षौद्रैर्विलोडयेत् ॥ ७ ॥

---

१ 'समं' र. र. पाठः। २ 'मृतायः सशिलाजतु' र. र. पाठः।

३ 'कुष्ठं' र. र. पाठः

४ 'दशांशेन' र. र. पाठः।

५ 'पञ्चाङ्गनिम्बक्काथेन' र. र. पाठः। अत्र 'निम्बपञ्चाङ्गुलक्काथै' रिति प्रचलितः पाठः।

भक्षयेद्बदरास्थ्याभां[1] वटिकां तां दिवा[2] निशि ।
श्लेष्मोदरं निहन्त्याशु नाम्ना वैश्वानरी वटी ॥ ८ ॥
देवदारुवह्निमूलकल्कं क्षीरेण पाययेत् ।
भोजनं मेषदुग्धेन[3] कुलत्थानां रसेन तु ॥ ९ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला, ताम्रभस्म, लौहभस्म, शुद्ध शिलाजीत; प्रत्येक एक २ तोला, शुद्ध विष दो तोला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, चीता, काकोली, निर्गुण्डी (सम्भालू), मूसली, अजमोदा (अन्तःप्रयोगार्थ अजवाइन); प्रत्येक का चूर्ण दो २ तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली बनायें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर खरल करें। इसे नीम के पञ्चाङ्ग के क्वाथ से इक्कीस भावना और भांगरे के रस से सात भावना दें। पश्चात् शहद मिलाकर बेर की गुठली के बराबर गोली बनावें। इसे दिन में और रात के समय खायें। यह श्लेष्मोदर को शीघ्र नाश करती है। इसका नाम वैश्वानरी वटी है। अनुपान में देवदारु, चीते की जड़; इन दोनों को समभाग लेकर कल्क बना दूध के साथ पीवें। भोजन भेड़ के दूध या कुलथी के रस से करें।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा–१ रत्ती से २ रत्ती तक।

रसरत्नसमुच्चय में थोड़ी सी भिन्नता से वैश्वानर रस है—

'रस[4]गन्धकताम्राणि शिलाजित्कान्तलौहकम् ।
त्रिकटुश्चित्रकं कुष्ठं निर्गुण्डी मुसली विषम् ॥
अजमोदा च सर्वेषां द्वौ द्वौ भागौ प्रकल्पयेत् ।
चूर्णीकृत्य ततः सर्वं निम्बक्काथेन भावयेत् ॥
एकविंशतिवारेण भृङ्गराजेन सप्तधा ।
मधुना गुटिकां शुष्कां रजन्यां तु प्रदापयेत् ।
वैश्वानराभिधो योगो जलोदरविशोषणः ॥'

---

१ भक्षयेद्बदरीमात्रां' र. र. पाठः ।
२ 'सदा निशि' इति वा पाठः साधीयान् । ३ 'व्योषदुग्धं' च पा० ।
४ 'रसकं गन्धकं चाभ्रं' र. चि. पाठः ।

इसमें यही भिन्नता है कि यहां गन्धक एक भाग है। रसरत्नाकर में भी वैश्वानरी वटी में एक ही भाग गन्धक लेने को कही है। वहां 'द्विधा गन्धं' के स्थान पर 'समं गन्धं' ही है। 'द्विधा' कैसे हुआ यह नहीं कहा जा सकता। वीरा (काकोली) के स्थान पर यहां 'कुष्ठ' है। परन्तु हमें तो 'वीरा' यह पाठ प्रामादिक ही प्रतीत होता है। रसरत्नाकर में 'वैश्वानरी वटी' नाम से ही यह योग है और वहां कुष्ठ ही पढ़ा है।

रसरत्नसमुच्चय के पाठ में 'द्वौ द्वौ भागौ प्रकल्पयेत्' (दो दो भाग ले) यह कहने से पारद से लेकर कान्तलौहभस्म पर्यन्त द्रव्यों का एक एक भाग ही लेने का अभिप्राय है, अन्यथा 'समं भागं प्रकल्पयेत्' यह पाठ किया जाता और इसी के अनुसार प्रकृत ग्रन्थ की वैश्वानरी वटी में विष से लेकर अजमोदा पर्यन्त के द्रव्य दो दो भाग ही लिये जाने चाहियें। 'विषांशेन' का का अर्थ–विष के प्रमाण तुल्य–ऐसा ही स्पष्ट है। विष दो भाग (दो तोला) हैं अतः त्रिकटु आदि प्रत्येक द्रव्य दो भाग (दो-दो तोला) ही लिये जांयगे। जो 'विषांशेन' से विष से आधा भाग यह अर्थ करते हैं–वह ठीक नहीं।

रसेन्द्रसारसंग्रह में वैश्वानरी वटी का पाठ रसेन्द्रचिन्तामणि से ही उद्धृत किया है। वैश्वानरी वटी वा वैश्वानर रस जलोदर में जल के शोषण के लिये प्रयोग कराया जाता है॥ ४--६॥

जलोदराररिसः—

पिप्पली मरिचं ताम्रं रजनीचूर्णसंयुतम्[1]।
स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं तुल्यं जैपालबीजकम्।
निष्कं खादेद्विरेकः[2] स्यात् सद्यो हन्ति जलोदरम्॥ १०॥
रेचनानाञ्च सर्वेषां दध्यन्नं[3] स्तम्भने हितम्।
दिनान्ते च प्रदातव्यमन्नं वा मुद्गयूषकम्॥ ११॥

---

१ 'काञ्चनीचूर्णसंयुतम्' यो. र. पाठः।
२ 'भुक्तं विरेकेण सत्यं हन्ति जलोदरम्।' यो. र. पाठः।
३ 'दध्यम्लं' भै. र. पाठः।

पिप्पलीचूर्ण, मिरचचूर्ण, ताम्रभस्म, हल्दी का चूर्ण; इन सबको समभाग ले सेहुण्ड (डण्डा थोहर) के दूध से दिन भर घोटे। सब के समान शुद्ध जमालगोटे के बीजों का चूर्ण (४ भाग) मिलावें। इसे घोटकर एक निष्क भर खावें तो विरेचन होने से शीघ्र ही जलोदर का नाश होता है।

सभी विरेचनों के बन्द करने के लिये दही भात हितकर हैं। दिन के अन्त में (सायंकाल) भात और मूंग का रस दे।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—आधी रत्ती। यह रस तीव्र विरेचक है। देह के जलीयांश को बहुत अधिक मात्रा में मलमार्ग से निकाल देता है और अतएव जलोदर में जमा हुए जल में कमी होजाती है। इस रस को प्रतिदिन न देना चाहिये। आवश्यकतानुसार पांच सात दिन बाद पुनः देना उत्तम है। शिरस्तोय नामक रोग में भी इससे लाभ होता है ॥१०—११॥

महावह्निरसः[6]—

चतुः[1]सूतस्य गन्धाष्टौ रजनीत्रिफलाशिला[2]: ।
प्रत्येकञ्च द्विभागं स्यात् त्रिवृत् जैपालचित्रकम् ॥ १२ ॥
प्रत्येकञ्च[3] त्रिभागं स्याद् दन्ती त्र्यूषणजीरकम् ।
प्रत्येकमष्टभागं[4] स्यादेकीकृत्य विचूर्णयेत् ॥ १३ ॥
जयन्तीस्नुक्पयोभृङ्ग[5]वह्निवातारितैलकैः ।
प्रत्येकेन क्रमाद्भाव्यं सप्तवारं पृथक् पृथक् ॥ १४ ॥
महावन्हिरसो नाम्ना निष्कमुष्णजलैः पिबेत् ।
विरेचनं भवेत् तेन तक्रभक्तं[7] ससैन्धवम् ॥ १५ ॥

१ 'सूतस्य गन्धकस्याष्टौ' र. चि., भै. र. पाठः ।
२ 'शिवा' पा० । ३ 'प्रत्येकञ्चैकभागं स्याद्' र. र. पाठः ।
४ 'प्रत्येकं सप्तभागं' र. चि., भै. र. पाठः ।
५ 'भृङ्गी तथा चैरण्डतैलकैः' र. र. पाठः ।
६ 'वह्निवीर्यरसः' र. र. पाठः । ७ 'तक्रं भुक्तं' प्रचलितः पाठः ।

दिनान्ते दापयेत् पथ्यं वर्जयेच्छीतलं जलम्[1]।
सर्वोदरहरः प्रोक्तः श्लेष्मवातहरः परः ॥ १६ ॥

शुद्ध पारा चार तोला, शुद्ध गन्धक आठ तोले; दोनों की कज्जली करे। फिर हल्दी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, शुद्ध मनाशिल; प्रत्येक का चूर्ण दो २ तोला, त्रिवी, शुद्ध जमालगोटा, चीता; प्रत्येक का चूर्ण तीन २ तोला, दन्तीमूल, सोंठ, मिरच, पिप्पली, श्वेत जीरा; प्रत्येक का चूर्ण आठ २ तोला ले। सबको एकत्र करके जयन्ती के रस, थोहर के दूध, भांगरा के रस, चीता के क्वाथ और एरण्ड के तेल से क्रमशः पृथक् सात २ वार भावना देवे। यह महावह्नि नामक रस है। इसे एक निष्क भर लेकर रोगी गरम जल से पीवे। विरेचन होगा। दिन के अन्त में सेंधानमकयुक्त छाछ और भात का पथ्य दे। शीतल जल न पीवे। यह सब उदररोगों को नाश करता है तथा श्लेष्मवात को हरने वाला है।

आधुनिक मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक।

रसरत्नाकर में यह वह्निवीर्य रस नाम से है। परन्तु वहां त्रिवी, जमालगोटा और चित्रक; इनके चूर्णों को एक-एक भाग लेने को कहा है। रसेन्द्रचिन्तामणि और भैषज्यरत्नावली के पाठ के अनुसार पारद ८ भाग (८ तोला) लिया जाता है और दन्तीमूल आदि ४ द्रव्यों को सात-सात भाग (७ तोले) लेते हैं। परन्तु रसरत्नाकर और रसरत्नसमुच्चय में प्रकृतग्रन्थ के अनुसार ही इन द्रव्यों के भाग हैं। जलोदर में ही इस रस का विशेष प्रयोग होता है ॥ १२—१६ ॥

त्रैलोक्योडुम्बरो रसः—

द्वौ भागौ शिवबीजस्य गन्धकस्य चतुष्टयम्।
अभ्रवह्निविडङ्गानां गुडूचीसत्त्वनागयोः ॥ १७ ॥
कृष्णजीरकटूनाञ्च लवणक्षारयोरपि।

---

१ अस्यनन्तरं 'नाभ्युत्तरे जलस्रावं कुर्याद्धन्ति जलोदरम्। सर्वोदरहरं योज्यं गुडनागरयोः पलम्' इति रसरत्नसमुच्चये पाठः।

प्रत्येकं भागमादाय मर्दयेत् सुरसाद्रवैः ॥ १८ ॥
बीजपूररसैर्भूयो मर्दयित्वा विशोषयेत् ।
त्रैलोक्योडुम्बरो नाम वातोदरकुलान्तकः ॥ १९ ॥
गुञ्जाद्वयं ततश्चास्य ददीत घृतसंयुतम् ।
भोजयेत् स्निग्धमुष्णञ्च पायसञ्च विवर्जयेत् ॥ २० ॥

शुद्ध पारा दो तोला, शुद्ध गन्धक चार तोला; दोनों की कजली करें। फिर अभ्रकभस्म, चीता, वायविडंग, गिलोय का सत, शुद्ध विष, काला जीरा, सोंठ, मिरच, पिप्पली, सेन्धानमक, यवक्षार; प्रत्येक का चूर्ण एक २ तोला लेकर उस में मिलावे और निर्गुण्डी (सम्भालू) के रस तथा विजौरे के रस से पृथक् मर्दन करके सुखा लेवे। यह त्रैलोक्योडुम्बर रस सब वातोदरों को नाश करता है। इसको दो रत्ति भर लेकर घी से खावे। स्निग्ध और उष्ण भोजन पथ्य है। दूध तथा खीर आदि न खावे।

विशेषवचन—यह योग वस्तुतः त्रैलोक्यसुन्दर ही है। केवल थोड़ा पाठ-भेद हो जाने से उससे पृथक् पढ़ा गया है। यहां त्रिकटु और त्रैलोक्य-सुन्दर में वचा है। 'ताम्राभ्रं' के स्थान पर 'मृताभ्रं' पाठान्तर है ही। अतः ताम्रभस्म नहीं भी डालते। उसी के पाठ से यह भी ज्ञात होता है कि यहां 'नाग' से सीसाभस्म नहीं लेना अपि तु शुद्ध बछनाग लेना है। एवं 'सुरसा' से भी तुलसी का ग्रहण नहीं, सम्भालू लेना चाहिये। आजकल व्यवहार नागभस्म और तुलसी से हो रहा है ॥ १७—२० ॥

इच्छाभेदी रसः—

शुण्ठीमरिचसंयुक्तं रसगन्धकटङ्कणम् ।
जैपालो द्विगुणः[1] प्रोक्तः सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ २१ ॥
इच्छाभेदी द्विगुञ्जः स्यात् सितया सह दापयेत् ।
पिबेत्तु चुल्लुकान् यावत् तावद्वारान् विरेचयेत् ।

१ 'त्रिगुणः' योगरत्नाकरे भैषज्यरत्नावल्यां च ।

तक्रौदनश्च[1] दातव्यं पथ्यमत्र विजानता ॥ २२ ॥

सोंठ, मिरच, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागा; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला, शुद्ध जमालगोटा २ तोला ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिला और जल से घोट कर दो रत्ती की गोली बना ले। एक गोली में कुछ खांड मिला शीतल जल से दें। रोगी जितने चुल्लू पानी पीवेगा उतनी वार ही विरेचन होगा। खाने को छाछ और चावल पथ्य में देवे।

विशेषवचन—यह योग पूर्व भी विरेकाधिकार में (१३६ पृष्ठ पर) कहा जा चुका है। भेद इतना ही है कि वहां जमालगोटा ३ भाग है। दस्त बन्द करने हों तो गरम जल पीना चाहिये। जयपाल के योग कृश एवं निर्बल व्यक्तियों को न देने चाहियें। बवासीर, आमाशय वा आंतों में शोथ, बद्धगुदोदर, प्रवाहिका, गुदभ्रंश आदि से पीड़ित पुरुषों को कदापि प्रयोग न करावें। बच्चों और गर्भिणी स्त्रियों को भी इसका प्रयोग निषिद्ध है ॥२२॥

पिप्पल्याद्यं लौहम्—

पिप्पलीमूलचित्रा[2]भ्र-त्रिकत्रयेन्दु-सैन्धवम्।
सर्वचूर्णसमं लौहं हन्ति सर्वोदरामयम् ॥ २३ ॥

पिप्पलामूल, चीता, अभ्रकभस्म, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, विडंग, चीता, मोथा, कपूर, सेन्धानमक; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग ले। सबके समान लौहभस्म मिलाकर खरल करे। उचित मात्रा में इसे खावे तो सब प्रकार के उदररोग शान्त होते हैं।

विशेषवचन—मात्रा—२ रत्ती। यहां कई त्रिकत्रय में त्रिमद न गिनकर त्रिजात (दारचीनी, इलायची, तेजपत्र) लेते हैं। त्रिमद लेने से चित्रक दो वार हो जाता है और उसके २ भाग लिये जाते हैं। रसरत्नाकर में चित्रक १ भाग और अभ्रक १ भाग के स्थान पर बोल १ भाग है।

'पिप्पलीमूलपिण्डाभत्रिकत्रयेन्दुसैन्धवैः।
योजितो नियतं हन्ति लौहः सर्वोदरामयम् ॥'

---

१ 'तक्रौदनं खादितव्यं इच्छाभेदी यथेच्छया' पा०।
२ 'पिण्डाभ०' र. र. पाठः। पिण्डाभो गन्धरसः।

यह पाठ रसरत्नाकर में है। 'पिण्डाभ' बोल को कहते हैं। यह वहीं कहा है। बोल आमाशय के रस और आमाशय आन्त्र आदि की स्वाभाविक तरङ्गगति के लिये उत्तेजक तथा वायु का अनुलोमक होने के कारण उदर-रोगों में लाभ करता है ॥ २३ ॥

उदराररिसः—

पारदं शिखितुत्थञ्च[1] जैपालं पिप्पलीसमम् ।
आरग्वधफलान्मज्जा वज्रीक्षीरेण मर्दयेत् ॥ २४ ॥
माषमात्रां[2] वटीं खादेत् स्त्रीणां जलोदरं जयेत् ।
चिञ्चाफलरसश्चानु पथ्यं दध्योदनं हितम् ।
दकोदरहरश्चैव[3] तीव्रेण रेचनेन च ॥ २५ ॥

रससिन्दूर, शुद्ध नीलाथोथा, शुद्ध जमालगोटा, पिप्पली, अमलतास, का गूदा; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले खरल करे। फिर थोहर के दूध से मर्दन कर एक उड़द भर की गोली बनाकर सेवन कराने से स्त्रियों का जलोदर नाश होता है। इसका अनुपान इमली के फल का रस है। विरेचन होने के पश्चात् पथ्य में दही चावल देवे। तीव्र विरेचन होने से दकोदर दूर होता है।

विशेषवचन—रसरत्नसमुच्चय में इस योग का नाम 'रक्तोदरकुठार रस' है। रसेन्द्रचिन्तामणि और भैषज्यरत्नावली में 'शिखितुत्थं' के स्थान पर 'शुक्तितुत्थं' पाठान्तर है। जिसके अनुसार वहां शुक्तिभस्म भी डालते हैं ॥२५॥

वङ्गेश्वरो रसः—

सूतभस्म वङ्गभस्म भागैकं सम्प्रकल्पयेत्[4] ।
गन्धकं मृतताम्रञ्च[5] प्रत्येकञ्च चतुःपलम् ॥ २६ ॥

---

१ 'शुक्तितुत्थञ्च' र. चि., भै. र. पाठः। २ 'सूक्ष्ममात्रां' र. र. स. पाठः।
३ 'रक्तोदरकुठारोऽपि कठिनं रेचयत्ययम्' र. र. स. पाठः।
४ 'पलैकैकं प्रकल्पयेत्' र. र. स. पाठः। पलैकैकं विमर्दयेत्' र. र. पाठः।
५ 'त्रिफलाताम्रं' र. र. पाठः।

अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्यं सर्वं तद्गोलकीकृतम्।
रुद्ध्वा तद् भूधरे पक्त्वा पुटकेन समुद्धरेत् ॥ २७ ॥
एष वङ्गेश्वरो नाम प्लीहगुल्मोदरान् जयेत् ।
घृतैर्गुञ्जाद्वयं लेह्यं निष्कां श्वेतपुनर्नवाम् ॥ २८ ॥
गवां मूत्रैः पिबेच्चानु रजनीं वा गवां जलैः ॥ २९ ॥

रससिन्दूर, बंगभस्म; प्रत्येक एक २ पल, शुद्ध गन्धक और ताम्रभस्म; प्रत्येक चार २ पल ले। सबको पीसकर आक के दूध से एक दिन मर्दन करे और गोला बना सम्पुट में रख भूधरयन्त्र में पुट दे। इसे स्वांगशीतल होने पर निकाले। यह वङ्गेश्वर रस प्लीहा गुल्म और उदररोग को नष्ट करता है इसे दो रत्ति मात्रा में ले घी से मिला चाटे। ऊपर से एक निष्क (शाण) भर श्वेत पुनर्नवा का चूर्ण गोमूत्र से पीवे। अथवा हल्दी के चूर्ण को गोमूत्र से पीवे।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—½ रत्ती। रसेन्द्रचिन्तामणि में इसका नाम महावङ्गेश्वर है। रससिन्दूर के स्थान पर पारा डालने से यही योग वहां वङ्गेश्वर नाम से कहा है—

'रसवङ्गकयोरेकश्चत्वारस्ताम्रगन्धयोः।
अर्कक्षीरेण सम्मर्द्य पुटयेन्मृदुवह्निना ॥
एष वङ्गेश्वरो नाम गुल्मप्लीहानिकृन्तनः।
गुञ्जाद्वयं ददीतानु वसुचूर्णं घृताप्लुतम् ॥'

परन्तु दोनों के गुणों में कोई विशेष भेद नहीं होता।

रसरत्नसमुच्चय के उपलब्ध पाठ (गन्धकं मृतताम्रं च प्रत्येकं च पलं पलम्।) में गन्धक और ताम्रभस्म एक-एक पल कही है। अन्य तन्त्रों में वासुकिभूषण रस नाम से जो योग है वहां भी गन्धक और ताम्रभस्म एक-एक पल है। परन्तु वहीं वङ्गेश्वर नाम के योग में चार-चार पल ही है।

---

१ 'पीतो गुल्मोदरं जयेत' पा०।

'सूतेन वङ्गन्तु समं नियोज्य तत्तुल्यशुल्वेन च गन्धकेन ।
विमर्दयेदर्करसेन यामं मृदा च संलिप्य पुटं ददीत ॥
वासारसैस्तं परिभावयेच्च रसो भवेद्वासुकिभूषणोऽयम् ।
प्लीह्नश्च गुल्मस्य च शान्तयेऽस्य वल्लञ्च दद्याद्वसुचूर्णयुक्तम् ॥'

अर्थात् पारद, गन्धक, वङ्गभस्म, ताम्रभस्म; इन्हें समभाग में मिला, आक (मदार) के रस से एक प्रहर मर्दन कर मूषा में डाल कपड़मिट्टी कर पुट देनी है । पश्चात् औषध को निकाल पीसकर वासा (अडूसा) की भावना (सात) देनी हैं । इसे भी श्वेतपुनर्नवा के चूर्ण से प्लीहा (तिल्ली) और गुल्म की शान्ति के लिये दिया जाता है ॥ २६—२६ ॥

इति उदररोग-चिकित्सा ।

अथ प्लीहरोगचिकित्सा ।

रोहीतकलौहम्—

रोहीतकसमायुक्तं त्रिकत्रययुतन्त्वयः ।
प्लीहानमग्रमांसञ्च यकृतञ्च[1] विनाशयेत् ॥ १ ॥

रोहेड़े की छाल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, विडंग, मोथा, चीता; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग ले । सबके समान लौहभस्म मिलावे । इसे उचित मात्रा में खावे तो प्लीहा यकृत् तथा अग्रमांस रोग अच्छा होता है ।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा–२ रत्ती ॥ १ ॥

लोकनाथो रसः—

पारदं गन्धकञ्चैव समभागं विमर्दयेत् ।
मृताभ्रं रसतुल्यञ्च पुनस्तत्रैव मर्दयेत् ॥ २ ॥

---

१ 'यकृद्धन्ति च दारुणम्' र. चि. पाठः । 'शोथं हन्ति न संशयः' भै. र. पाठः ।

रसाद् द्विगुण[1]लौहञ्च लौहतुल्यञ्च ताम्रकम् ।
भस्म वराटिकायाश्च ताम्रतास्त्रिगुणं[2] कुरु ॥ ३ ॥
नागवल्लीरसेनैव मर्दयेद् यत्नतो भिषक् ।
पुटेद् गजपुटे विद्वान् स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ४ ॥
यकृत्प्लीहोदरं गुल्मं श्वयथुञ्च विनाशयेत् ।
पिप्पलीमधुसंयुक्तां[3] सगुडां वा हरीतकीम् ।
गोमूत्रञ्च[4] पिबेच्चानु गुडं वा जीरकान्वितम् ॥ ५ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक एक तोला; दोनों की कज्जली करे। फिर अभ्रकभस्म एक तोला, लौहभस्म दो तोला, ताम्रभस्म दो तोला, कौड़ीभस्म छह तोला। इन सबको एकत्र कर पानके रससे घोटकर गजपुट में फूक देवे। स्वांगशीतल होने पर, निकाल पीसकर रखे। इसे खाने से यकृत्, प्लीहा, उदर, गुल्म, श्वयथु (सोज) नाश होता है। अनुपान में पिप्पलीयुक्त हरड़ के चूर्ण को शहद से अथवा हरड़ चूर्ण को गुड़ से खावे अथवा गोमूत्र पीवे, अथवा जीरा और गुड का अनुपान करे।

विशेषवचन—मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक।

'पिप्पलीं मधुसंयुक्तां' यह पाठ हो तो पिप्पलीचूर्ण और मधु यह अभिप्राय होगा। आजकल पिप्पलीचूर्ण २ रत्ती और मधु के साथ इसे चटाते हैं। यह शीघ्र बढ़ी हुई तिल्ली वा जिगर को स्वाभाविक अवस्था में ले आता है। यदि तिल्ली वा जिगर के बढ़े होने से ज्वर रहता हो अथवा जीर्णज्वर जिसमें तिल्ली वा जिगर बढ़गये हों यह अपूर्व लाभ करता है।

---

१ 'त्रिगुणलौहञ्च' इति क्वचित्पाठः।

२ 'पारदात् त्रिगुणं' भै. र. पाठः।

३ 'मधुना पिप्पलीचूर्णं' भै. र. पाठः।

४ 'अजाजीं वा गुडेनैव भक्षयेदनुपानतः। यकृद्गुल्मोदरहरः प्लीहश्वयथुनाशनः। जीर्णज्वरं तथा पाण्डुं कामलाञ्च विनाशयेत्। अग्निमान्द्यं च शमयेल्लोकनाथो रसोत्तमः।' भै. र. पाठः।

भैषज्यरत्नावली में एक लोकनाथ रस में कौड़ीभस्म का प्रमाण पारद से तिगुना (अर्थात् तीन तोला) कहा है। तब मात्रा—आधी रत्ती जानें। वहीं दूसरे लोकनाथ में ताम्रभस्म से दुगुना (४ तोला) है। इसकी मात्रा—२ रत्ती तक है।

आजकल तीनों प्रकार से ही लोकनाथ रस बनाया जाता है। सब से उत्तम पारद से तिगुनी कौड़ीभस्म से प्रस्तुत लोकनाथ रस है।

गजपुट देने की अपेक्षा लघुपुट देना चाहिये। अथवा औषध को मूषा में बन्द कर लवणयन्त्र में रख गजपुट दें। इसप्रकार लोकनाथ रस अधिक लाभकर होगा ॥ २—५ ॥

बृहल्लोकनाथो रसः—

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं खल्ले कृत्वा तु कज्जलम्।
सूततुल्यं जारिताभ्रं मर्दयेत् कन्यकाम्बुना ॥ ६ ॥
ततो द्विगुणितं दद्यात् ताम्रं लौहं प्रयत्नतः।
काकमाचीरसेनैव सर्वं तत् परिमर्दयेत् ॥ ७ ॥
सूतान्नवगुणं[1] दद्याद् वराटीसम्भवं रजः।
पिष्ट्वा जम्बीरनीरेण मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥ ८ ॥
तन्मध्ये गोलकं क्षिप्त्वा यत्नेन छादयेद् भिषक्।
शरावसम्पुटं कृत्वा मृद्भस्मलवणाम्बुभिः ॥ ९ ॥
शरावसन्धिमालिप्य चातपे शोषयेत् क्षणम्।
ततो गजपुटं दत्त्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ १० ॥
पिष्ट्वा तु सर्वमेकत्र स्थापयेद् भाजने शुभे।
खादेद् वल्लद्वयञ्चास्य मूत्रञ्चानुपिबेन्नरः ॥ ११ ॥
मधुना पिप्पलीचूर्णं सगुडां वा हरीतकीम्।

१ 'सूताच्च द्विगुणं गन्धं' पा०।

अजाजीं वा गुडेनैव भक्षयेत् तुल्ययोगतः ॥ १२ ॥
यकृत्प्लीहोदरोगश्च श्वयथुश्च विनाशयेत् ।
वाताष्ठीलाञ्च कमठीं प्रत्यष्ठीलां तथैव च ॥ १३ ॥
कांस्यक्रोडाग्रमांसश्च शूलश्चैव भगन्दरम् ।
वह्निमान्द्यश्च कासश्च लोकनाथरसोत्तमः ॥ १४ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला लेकर कज्जली करे। फिर उसमें अभ्रकभस्म एक तोला मिलाकर घीकुमारी के रस से घोटे। सूख जाने पर ताम्रभस्म दो तोला, लौहभस्म दो तोला उसी में मिलाकर मकोय के स्वरस से घोटे और गोला बनाले। फिर पृथक् कौड़ीभस्म नौ तोला लेकर जम्बीरी नीबू के रस से घोटकर उसकी दो मूषा बनावें और उन मूषाओं में औषध का गोलक रख सन्धि को यत्न से उसी कौड़ीभस्म से बन्द कर दे। पश्चात् इसे शरावसम्पुट में रखे। मिट्टी, राख, नमक और पानी चारों को मिलाकर इसकी सन्धि बन्द कर दे। इसे धूप में कुछ देर सुखा गजपुट में फूंक दे। स्वांगशीतल होने पर निकाल कर कौड़ीभस्म सहित पीसले और सुरक्षित रखे। इसे तीन रत्ती खाकर ऊपर से गौ का मूत्र पीवे। अनुपान में पिप्पली चूर्ण को शहद से, या हरड़ चूर्ण को गुड़ से समभाग में मिला अथवा जीरे के चूर्ण को गुड़ से समभाग में मिला खावे। इस से उग्र यकृत्, प्लीहा, उदररोग, सोजा, वाताष्ठीला, कमठी (कछुए के सदृश उदर में जब तिल्ली बढ़ जाती है, कमठी कहते हैं), प्रत्यष्ठीला, कांस्यक्रोड, अग्रमांस, शूल, भगन्दर, अग्निमान्द्य तथा खांसी; ये सब नष्ट होते हैं। इस का नाम बृहल्लोकनाथ रस है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ रत्ती से ३ रत्ती तक। सामान्यतः व्यवहार २ रत्ती से है। भैषज्यरत्नावली में जो लोकनाथ रस है उसका पाठ 'ताम्रं लौहं प्रयत्नतः' के बाद निम्न है—

'सूतान्नवगुणं देयं वराटीसम्भवं रजः ।
काकमाचीरसेनैव सर्वं तद् गोलकीकृतम् ॥
ततो गजपुटे पच्यात्स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।

शिवं सम्पूज्य यत्नेन द्विजातीन् परितोष्य च ॥
भक्षयेदस्य चूर्णस्य द्विगुञ्जं मधुना सह ।
प्लीहानमग्रमांसञ्च यकृतं सर्वरूपिणम् ॥
जीर्णज्वरं तथा गुल्मं कामलां हन्ति दारुणाम् ॥'

कज्जली और अभ्रकभस्म को पूर्ववत् ग्वारपाठे के रस से मर्दन कर ताम्रभस्म लौहभस्म कौड़ीभस्म को मिला मकोय के रस से घोट कर शरावसम्पुट में बन्द कर गजपुट देते हैं। स्वाङ्गशीतल होने पर निकाल कर पीस लेते हैं। यहां कौड़ीभस्म को जम्बीर के रस से पीस कर मूषा बनाने का विधान नहीं।

यदि प्रकृत ग्रन्थ के बृहत् लोकनाथ रस में भी कौड़ीभस्म को अन्य द्रव्यों के साथ ही मिला जम्बीर के रस से घोटकर गोला बना शरावसम्पुट में बन्द कर पुट दे दें तो भी कोई हानि नहीं प्रतीत होती। व्यवहार भी इसीप्रकार है अर्थात् कौड़ीभस्म से मूषा नहीं बनाते।

'सूतान्नवगुणं दद्यात्' के स्थान पर 'सूताच्च द्विगुणं गन्धं' यह पाठ भी प्रचलित है। इसके अनुसार तो मकोय के रस से मर्दन के बाद २तोला गन्धक और २तोला ही कौड़ीभस्म लेकर जम्बीर के रस से घोटते हैं।

यहां पर भी सामान्यतः गजपुट देना ठीक नहीं। लघुपुट देना चाहिये। अथवा औषध को लवणयन्त्र में रख गजपुट दे सकते हैं। कई वैद्य तो लवणयन्त्र में लकड़ियों की आंच पर ४ पहर पकाते हैं। लवणयन्त्र में पाक से विशेष फलोदय होता है ॥ ६—१४ ॥

ताम्रेश्वरवटी—

हिङ्गु त्रिकटुकश्चैवापामार्गस्य च पत्रकम् ।
अर्कपत्रं स्नुहीपत्रं तथा च समभागिकम् ॥ १५ ॥
सैन्धवं तत्समं ग्राह्यं लौहं ताम्रञ्च तत्समम् ।
प्लीहानं यकृतं गुल्ममामवातं सुदारुणम् ॥ १६ ॥
अर्शांसि घोरमुदरं मूर्च्छां पाण्डुं हलीमकम् ।

ग्रहणीमतिसारञ्च यक्ष्माणं शोथमेव च ॥ १७ ॥

हींग, सोंठ, मिरच, पिप्पली, अपामार्ग के पत्ते, आक के पत्ते, थोहर (सेहुण्ड) के पत्ते; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला, सैंधानमक, लौहभस्म, ताम्रभस्म; प्रत्येक सात २ तोला ले। सब को एकत्र पीस रखे। इसे उचित मात्रा में खाने से प्लीहा, यकृत, गुल्म, भयकंर आमवात, बवासीर, घोर उदररोग, मूर्च्छा, पाण्डुरोग, हलीमक, ग्रहणी, अतीसार, यक्ष्मा और शोथरोग दूर होते हैं।

विशेषवचन—मात्रा—१ रत्ती। अपामार्ग थोहर आदि के पत्तों के स्थान में इन का क्षार डालने का प्रचार है ॥ १५—१७ ॥

अग्निकुमारलौहम्—

तुत्थ[1]रामठटङ्कानि सैन्धवं धान्यजीरकम्।
यमानी मरिचं शुण्ठी लवङ्गैला विडङ्गकम् ॥ १८ ॥
प्रत्येकं तोलकं चूर्णं लौहचूर्णन्तु तत्समम्।
रसस्य गन्धकस्यापि पलैकं कज्जलीकृतम् ॥ १९ ॥
घृतेन मधुना खाद्यं लौहमग्निकुमारकम्[2]।
यकृ[3]त्प्लीहोदरहरं गुल्मश्चापि हलीमकम् ॥ २० ॥
बलवर्णाग्निजननं कान्तिपुष्टिविवर्द्धनम्[4]।
श्रीमद्गहननाथेन निर्मितं विश्वसम्पदे ॥ २१ ॥

शुद्ध पारा एक पल, शुद्ध गन्धक एक पल; दोनों की कज्जली करे। फिर शुद्ध नीलाथोथा, हींग, सुहागा, सैंधानमक, धनियां, जीरा, अजवायन,

---

१ 'गुल्मरामठ' र. र. पाठः।

२ 'रसो वह्निकुमारकः' र. र. पाठः।

३ 'यकृत्प्लीहोदरानाहं हन्ति गुल्मं हलीमकम्' र. र. पाठः।

४ अस्यानन्तरं 'माषमेकं प्रकर्तव्यं युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम्' इत्यधिकः पाठो रसरत्नाकरे।

मिरच, सोंठ, लौंग, छोटी इलायची, वायविडंग; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक तोला और लौहभस्म बारह तोले मिलावे। सबको एकत्र पीसकर रखे। इसे उचित मात्रा में ले घी और शहद मिलाकर खावे। यह अग्निकुमार लौह यकृत्, प्लीहा, उदररोग, गुल्म, हलीमक; इनको नाश करता है। बल वर्ण और अग्नि की वृद्धि करता है। कान्ति तथा पुष्टि देता है। यह रस श्रीमान् गहननाथ ने संसार की भलाई के लिए बनाया है।

विशेषवचन—मात्रा—२ रत्ती।

यहां पर रसतन्त्र की परिभाषा के अनुसार पल को चार तोला मानना चाहिये। कई पल को आठ तोला मानकर इस योग को बनाते हैं ॥१८-२१॥

प्राणवल्लभो रसः—

लौहं ताम्रं वराटश्च तुत्थं हिङ्गु फलत्रिकम्।
स्नुहीमूलं यवक्षारः जैपालं टङ्कणं त्रिवृत् ॥ २२ ॥
प्रत्येकञ्च पलं ग्राह्यं छागीदुग्धेन पेषितम्।
चतुर्गुञ्जां वटीं खादेद्वारिणा मधुनाऽपि वा ॥ २३ ॥
प्राणवल्लभनामाऽयं गहनानन्दभाषितः।
दोषं रोगञ्च संवीक्ष्य युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम् ॥ २४ ॥
निहन्ति कामलां पाण्डुमानाहं श्लीपदार्बुदम्।
गलगण्डं गण्डमालां व्रणानि च हलीमकम् ॥ २५ ॥
अपचीं वातरक्तञ्च कण्डूं विस्फोटकुष्ठकम्।
नातः परतरः श्रेष्ठः कामलाऽर्त्तिभयेष्वपि ॥ २६ ॥

लौहभस्म, ताम्रभस्म, कौड़ीभस्म, शुद्ध नीलाथोथा, हींग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, थोहर की जड़, यवक्षार, शुद्ध जमालगोटा, शुद्ध सुहागा, त्रिवी; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ पल ले। सब को बकरी के दूध से घोटकर चार रत्ति प्रमाण की गोली बना लें। इसे शहद या जल से खावे। यह प्राणवल्लभ रस गहनानन्द ने कहा था। रोग को तथा दोष को देख कर अल्प मात्रा में

प्रारम्भ करा क्रमशः मात्रा को बढ़ा भी सकते हैं। इस से कामला, पाण्डु, आनाह, श्लीपद, अर्बुद, गलगण्ड, गण्डमाला, व्रण, हलीमक, अपची, वातरक्त, कण्डू, विस्फोटक, कुष्ठ; ये सभी रोग दूर होते हैं। कामला रोग के लिये इस से बढ़कर कोई दूसरा योग नहीं है।

विशेषवचन—यह योग पूर्व भी कामला और गुल्म के प्रकरण में कहा जा चुका है। सामान्य मात्रा—½ रत्ती से १ रत्ती तक ॥ २२--२६ ॥

यकृदरिलौहम्—

द्विकर्षं लौहचूर्णस्य चाभ्रकस्य पलार्द्धकम् ।
कर्षं शुद्धं मृतं ताम्रं लिम्पाकाङ्घ्रित्वचं पलम् ॥ २७ ॥
मृगाजिनभस्मपलं सर्वमेकत्र कारयेत्
नवगुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद् भिषक् ॥ २८ ॥
यकृत्प्लीहोदरश्चैव कामलाश्च हलीमकम् ।
कासं श्वासं ज्वरं हन्याद् बलवर्णाग्निकारकम् ।
यकृदरि त्विदं लौहं वातगुल्मविनाशनम् ॥ २९ ॥

लौहभस्म दो कर्ष, अभ्रकभस्म दो कर्ष पल, ताम्रभस्म एक कर्ष, पाती लेमू (कागज़ी नीबू) की जड़ की छाल एक पल, मृगचर्म भस्म एक पल। सब को पीसकर एकत्र करे। फिर नौ रत्ति प्रमाण की गोली बनावे। इस से यकृदुदर प्लीहोदर, कामला, हलीमक, कास, श्वास, ज्वर नष्ट होते हैं। बल, वर्ण तथा अग्नि की वृद्धि होती है। यह यकृदरि लौह वातगुल्म को नाश करता है।

विशेषवचन—मात्रा-२ से ४ रत्ती तक।

मृगचर्म कच्चा ही सुखाकर लेना चाहिये। जो बैठने आदि के लिये तय्यार किया जाता है उसका औषध में प्रयोग उत्तम नहीं। कच्चे शुष्क मृगचर्म के टुकड़े करके शरावसम्पुट में बन्दकर पुट दे दें। पश्चात् पीस लें ॥ २७—२९ ॥

मृत्युञ्जयलौहम्—

शुद्धसूतं समं गन्धो जारिताभ्रं समं समम्
गन्धकाद् द्विगुणं लौहं मृतताम्रं चतुर्गुणम् ॥ ३० ॥

द्विक्षारं टङ्कणंविडं वराटमथ शङ्खकम् ।
चित्रकं कुनटी तालं कटुकी रामठं तथा ॥ ३१ ॥
रोहीतकं त्रिवृच्चिश्वा विशालाधवलाङ्कठम्[2] ।
अपामार्गःताललण्डमम्लिका[3] च निशायुगम्[4] ॥ ३२ ॥
कानकं तुत्थकञ्चैव यकृन्मर्द रसाञ्जनम् ।
एतानि समभागानि चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥ ३३ ॥
आर्द्रकस्वरसेनैव गुडूच्याः स्वरसेन च ।
मधुनः कुडवैर्भाव्यं वटिका माषमात्रतः ॥ ३४ ॥
अनुपानं प्रदातव्यं बुद्ध्वा दोषानुसारतः ।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय सर्वरोगकुलान्तकम् ॥ ३५ ॥
प्लीहानं ज्वरमुग्रञ्च कासञ्च विषमज्वरम्[5] ।
चिरजं कुलजञ्चैव श्लीपदं हन्ति दारुणम् ॥ ३६ ॥
रोगानीकविनाशाय धन्वन्तरिकृतं पुरा ।
मृत्युञ्जयमिदं लौहं सिद्धिदं शुभदं नृणाम् ॥ ३७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म; प्रत्येक एक २ तोला, लौहभस्म दो तोला, ताम्रभस्म चार तोला लें । यवक्षार, सज्जी, सुहागा, बिडलवण, कौड़ी-भस्म, शंखभस्म, चीता, शुद्ध मनसिल, शुद्ध हड़ताल, कुटकी, हींग, रोहेड़े

---

१ 'सैन्धवविडं' पा० । २ 'धवमङ्कठम्' पा० । ३ 'तालकं च मल्लिका' पा० ।

४ 'अस्यानन्तरं प्रियङ्ग्विन्द्रयवं पथ्या चाजमोदा यमानिका । तुत्थकं शरपुङ्खा च यकृन्मर्दो रसाञ्जनम् । प्रत्येकं शाणमानेन भावयेदार्द्रकद्रवैः । गुडूच्याः स्वरसेनापि मधुनः कुडवार्द्धकम् । वटिकां कारयेद्वैद्यो गुञ्जाषट्प्रमितां पुनः' भै. र. पाठः ।

५ अस्यानन्तरं च 'आमवातं यकृच्छूलं श्वासमर्शः शिरोरुजम् । गुल्मशोथोदराग्निमांसं यकृत्क्षयम् । सकामलं पाण्डुरोग मुदरञ्च सुदारुणम् । रोगानीकविनाशाय केशरी करिणे यथा । मृत्युञ्जयो महालौहः प्लीहगुल्मविनाशनः ॥'

की छाल, त्रिवी, इमली की छाल की भस्म, इन्द्रायण की जड़, श्वेत अंकोल, अपामार्गभस्म, तालजटाभस्म, अम्लवेत (वा पुरानी इमली), हल्दी, दारुहल्दी, शुद्ध जमालगोटे के बीज, शुद्ध नीलाथोथा, लाल रोहेड़े की छाल, रसौंत; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलावें। सब को एकत्र मिलाकर अदरक के स्वरस से तथा गिलोय के स्वरस से भावित (सात बार) करें। फिर एक कुडव शहद से भावित करके एक माषा (८ रत्ती) भर की गोली बनावे। प्रातःकाल इसे खाकर दोषानुसार अनुपान पीवे तो सब रोग नष्ट होते हैं। प्लीहा, उग्रज्वर, खांसी, विषमज्वर; पुराना तथा कुलक्रमागत श्लीपद रोग; ये सब नष्ट होते हैं। यह धन्वन्तरि जी का बनाया हुआ मृत्युञ्जय लौह अनेक रोगों को नाश करता है और सिद्धि एवं आरोग्य देता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा–दो रत्ती।

इसे मधु और बेलपत्री के रस से प्रयोग कराया जाता है। भैषज्यरत्नावली में महामृत्युञ्जय लौह का योग कहा है। वहां दारुहल्दी पर्यन्त तो ये ही द्रव्य हैं, परन्तु उसके बाद वहां प्रियङ्गु, इन्द्रजौ, हरड़, अजमोदा, अजवाइन, शुद्ध नीलाथोथा, सरफोंका, लाल रोहीतक (रोहेड़ा) की छाल, रसौंत; ये द्रव्य कहे हैं। जमालगोटा नहीं है। भावना अदरक और गिलोय के रस से ही है। पश्चात् मधु से भी एक भावना देनी है॥ ३०–३७॥

प्लीहार्णवो रसः—

हिङ्गुलो गन्धकष्टङ्कमभ्रकं विषमेव च।
प्रत्येकं पालिकं भागं चूर्णयेदतिचिक्कणम्॥ ३८॥
पिप्पलीमरिचञ्चैव प्रत्येकञ्च पलार्द्धकम्।
मर्दयित्वा वटीं कुर्य्यात् वल्लमात्रां प्रयत्नतः॥ ३९॥
सेव्या शेफालिदलजैर्वटी माक्षिकसंयुता।
प्लीहानं षट्प्रकारञ्च हन्ति शीघ्रं न संशयः॥ ४०॥

ज्वरं मन्दानलञ्चैव कासं श्वासं वमिं भ्रमिम् ।
प्लीहार्णव इति ख्यातो गहनानन्दभाषितः ॥ ४१ ॥

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, अभ्रकभस्म, शुद्ध विष; प्रत्येक द्रव्य का महीन चूर्ण एक २ पल, पिप्पली तथा मिरच प्रत्येक का चूर्ण आधा पल ले। इन्हें एकत्र मिला मर्दन कर (जल से) डेढ़ रत्ति भर की गोली बनावे। रोगी इसे प्रयोग के समय पीस कर शहद से चाट हारसिंगार के पत्तों का रस पीवे तो निस्सन्देह छः प्रकार की तिल्ली शीघ्र नष्ट होती है। ज्वर, मन्दाग्नि, खांसी, श्वास, वमन और भ्रम दूर होते हैं। यह गहनानन्द का कहा हुआ प्लीहार्णव रस है ॥ ३८—४१ ॥

प्लीहशार्दूलो रसः—

सूतकं गन्धकं व्योषं समभागं पृथक् पृथक् ।
एभिः समं ताम्रभस्म योजयेच्चैव बुद्धिमान् ॥ ४२ ॥
मनःशिला वराटश्च तुत्थं रामठलौहकम् ।
जयन्ती रोहितश्चैव क्षारटङ्कणसैन्धवम् ॥ ४३ ॥
विडं चित्रं कानकञ्च रसतुल्यं पृथक् पृथक् ।
भावयेत् त्रिदिनं यावत् त्रिवृच्चित्रकणार्द्रकैः ॥ ४४ ॥
गुञ्जामात्रां वटीं खादेत् सद्यः प्लीहविनाशिनीम् ।
पिप्पलीमधुसंयुक्तां द्विगुञ्जां वा प्रयोजयेत् ॥ ४५ ॥
प्लीहानमग्रमांसञ्च यकृद्गुल्मं सुदुस्तरम् ।
आमाशयेषु सर्वेषु चोदरे शोथविद्रधौ ॥ ४६ ॥
अग्निमान्द्ये ज्वरे चैव प्लीह्नि सर्वज्वरेषु च ।
श्रीमद्गहननाथेन भाषितः प्लीहशार्दुलः ॥ ४७ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक एक तोला; दोनों की कज्जली करे। सोंठ का चूर्ण, मिरच का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य एक २

तोला, ताम्रभस्म पांच तोले, शुद्ध मनशिल, कौड़ीभस्म, शुद्ध नीलाथोथा, हींग, लौहभस्म, जयन्तीमूल, रोहेड़ा की छाल, यवक्षार, सुहागा, सेंधा-नमक, विडनमक, चीता, शुद्ध जमालगोटा; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला ले। सब द्रव्य एकत्र मिला दे और त्रिवी, चीता, पिप्पली और अदरक; इन के रस वा क्वाथ से पृथक् तीन २ दिन भावना देवे और एक रत्ती भर की गोली बना ले। इसके सेवन से प्लीहा शीघ्र नष्ट होती है। अथवा (अधिक-से-अधिक) दो रत्ती भर लेकर पिप्पली के चूर्ण और शहद से मिलाकर दे। इससे प्लीहा, अग्रमांस, यकृत, गुल्म, आमाशय के सब प्रकार के रोग, उदररोग, शोथरोग, विद्रधि, अग्निमान्द्य, ज्वर तथा प्लीहा युक्त सब प्रकार के ज्वर नष्ट होते हैं। यह गहनानन्द का कहा हुआ प्लीहशार्दूल रस है।

विशेषवचन—"त्रिवृच्चित्रकणार्द्रकैः" के स्थान में "त्रिवृच्चित्रार्द्रधुस्तुरैः" पाठ भी है। वहां पिप्पली की जगह धतूरे का रस लेना चाहिये ॥४२–४७॥

प्लीहारिरसः—

द्विकर्षं लौहभस्मापि कर्षं ताम्रं प्रदापयेत्।
शुद्धसूतं तथा गन्धं कर्षमानं भिषग्वरः ॥ ४८ ॥
मृगाजिनभस्मपलं लिम्पाकाङ्घ्रित्वचः पलम्।
एवं भागक्रमेणैव कुर्य्यात् प्लीहारिकां वटीम् ॥ ४९ ॥
नवगुञ्जामितां खादेच्चाथ नित्यं हि पूतवाक्।
प्लीहानं यकृतं गुल्मं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ ५० ॥

लौहभस्म दो कर्ष, ताम्रभस्म एक कर्ष, शुद्ध पारा एक कर्ष, शुद्ध गन्धक एक कर्ष, मृगचर्म की भस्म एक पल, लिम्पाक अर्थात् पाती नींबू की जड़ की छाल एक पल ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे, फिर अन्य द्रव्य मिलाकर नौ रत्ति भर की गोली बनायें। इसे नित्य खायें तो प्लीहा, यकृत और गुल्मरोग अवश्य ही नाश होते हैं।

विशेषवचन—मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक ॥ ४८—५० ॥

अपरः प्लीहारिरसः--

कर्षैकं तालचूर्णस्य तत्पादांशं सुवर्णकम् ।
पलार्द्धं मृतताम्रञ्च तत्समं शुद्धमभ्रकम् ॥ ५१ ॥
मृगाजिनस्य भस्मापि कर्षमात्रं प्रदापयेत् ।
लिम्पाकाङ्घ्रित्वचस्तद्वत् सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ ५२ ॥
रसगुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेत् ततः ।
मधुना वह्निचूर्णेन खादेन्नित्यं यथाबलम् ॥ ५३ ॥
असाध्यमपि प्लीहानं हन्त्यवश्यं न संशयः ।
यकृतं पाण्डुरोगञ्च गुल्मादिकभगन्दरम् ॥ ५४ ॥

शुद्ध हड़ताल एक कर्ष, स्वर्णभस्म चौथाई कर्ष, ताम्रभस्म आधा पल, अभ्रकभस्म आधा पल, मृगचर्म की भस्म एक कर्ष, लिम्पाक या पाती नीबू के जड़ की छाल एक कर्ष। सब को एकत्र करके छः रत्ति प्रमाण की गोली बनावे। इसे चीते के चूर्ण और शहद से नित्य यथाशक्ति खावे। यह असाध्य प्लीहा को भी अवश्य नाश करता है। यकृत्, पाण्डु, भगन्दर तथा गुल्म आदि रोगों को भी यह दूर करता है।

विशेषवचन—मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक ॥ ५१—५४ ॥

लौहमृत्युञ्जयो रसः—

रसगन्धकलौहाभ्रं कुनटी मृतताम्रकम् ।
विषमुष्टिवराटञ्च तुत्थं शङ्खं रसाञ्जनम् ॥ ५५ ॥
जातीफलञ्च कटुकी द्विक्षारं कानकं तथा ।
व्योषं हिङ्गु सैन्धवञ्च प्रत्येकं सूततुल्यकम् ॥ ५६ ॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वमेकत्र भावयेत् ततः ।
सूर्य्यावर्त्तरसेनैव बिल्वपत्ररसेन च ।
सूर्यावर्त्तेन मतिमान् वटिकां कारयेत् ततः ॥ ५७ ॥

प्लीहानं यकृतं गुल्ममष्ठीलाञ्च विनाशयेत् ।
अग्रमांसं तथा शोथं तथा सर्वोदराणि च ।
वातरक्तञ्च कमठं चान्तर्विद्रधिमेव च ॥ ५८ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक एक तोला; दोनों की कज्जली करे। फिर लोहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध मनसिल, ताम्रभस्म, शुद्ध कुचला, कौड़ीभस्म, शुद्ध नीलाथोथा, शंखभस्म, रसौत, जायफल, कुटकी, यवक्षार, सज्जी, शुद्ध जमालगोटा, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हींग, सेंधानमक; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला लेकर एकत्र सब को मिला कर पीसे। इसे सूर्यमुखी के रस से (सात) तथा बिल्व के पत्तों के रस से (सात) भावना दे। पश्चात् सूर्यमुखी के रस से घोट कर उचित मात्रा की गोली बना ले। इस के सेवन से प्लीहा, गुल्म, अष्ठीला, अग्रमांस, शोथ, सब प्रकार के उदररोग, वातरक्त, कमठ (अति प्रवृद्ध प्लीहा) तथा अन्तर्विद्रधि नष्ट होते हैं।

विशेषवचन—मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक ॥ ५५—५८ ॥

महामृत्युञ्जयो रसः—

रसगन्धकलौहाभ्रं कुनटीतुत्थताम्रकम् ।
सैन्धवञ्च वराटञ्च वागुजी विडशङ्खकम् ॥ ५९ ॥
चित्रकं हिङ्गु कटुकी द्विक्षारं कट्फलं तथा ।
रसाञ्जनं जयन्ती च टङ्कणं समभागिकम् ॥ ६० ॥
एतत्सर्वं विचूर्ण्याथ दिनमेकं विभावयेत् ।
आर्द्रकस्वरसेनैव गुडूच्याः स्वरसेन च ॥ ६१ ॥
गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा भक्षयेन्मधुना सह ।
नानारोगप्रशमनो यकृद्गुल्मोदराणि च ॥ ६२ ॥
अग्रमांसं तथा प्लीहामग्निमान्द्यमरोचकम् ।
एतान् सर्वान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ।
महामृत्युञ्जयो नाम महेशेन प्रकाशितः ॥ ६३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक एक २ तोला ले दोनों की कज्जली करे। फिर लोहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध मनसिल, शुद्ध नीलाथोथा, ताम्रभस्म, सेंधानमक, कौड़ीभस्म, कालीजीरी, विडनमक, शंखभस्म, चीता, हींग, कुटकी, यवक्षार, सज्जी, कायफल, रसौंत, जयन्तीमूल, शुद्ध सुहागा; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला ले। सब को मिला अदरक के स्वरस और गिलोय के स्वरस से एक २ दिन भावना देवे और एक रत्ती प्रमाण की गोली बनावे। इसे शहद से खावे। इस से नाना प्रकार के रोग दूर होते हैं। यकृत्, गुल्म, उदर, अग्रमांस, प्लीहा, अग्निमांद्य, अरुचि; इन सब को यह महामृत्युञ्जय रस ऐसे दूर करता है जैसे सूर्य अन्धकार को। यह रस महेश ने प्रकाशित किया था॥ ५९—६३॥

बृहद्गुडपिप्पली—

विडङ्गं त्र्यूषणं हिङ्गु कुष्ठं लवणपञ्चकम्।
त्रिक्षारं फेनकं चव्यं श्रेयसी कृष्णजीरकम्॥ ६४॥
तालपुष्पोद्भवं क्षारं नाड्याः कूष्माण्डकस्य च।
अपामार्गोद्भवं क्षारं चिञ्चायाः चित्रकं तथा॥ ६५॥
एतानि समभागानि पुराणो द्विगुणो गुडः।
गुडतुल्यं प्रदातव्यं चूर्णञ्चैव कणोद्भवम्॥ ६६॥
मर्दयित्वा दृढे पात्रे मोदकानुपकल्पयेत्।
भक्षयेद् वर्द्धयेन्नित्यं प्लीहानं हन्ति दुस्तरम्॥ ६७॥
प्रमेहं पाण्डुरोगञ्च कमालां वह्निमान्द्यकम्।
यकृतं पञ्चगुल्मञ्च तूदरं सर्वरूपकम्॥ ६८॥
जीर्णज्वरं तथा शोथं कासं पञ्चविधं तथा।
अश्विभ्यां निर्मिता ह्येषा सुबृहद्गुडपिप्पली॥ ६९॥

वायविडंग, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हींग, कूठ, पांचों नमक, यवक्षार, सुहागा, सज्जीक्षार, समुद्रफेन, चव्य, गजपीपल, काला जीरा, ताड़ के फूलों

का क्षार, पेठे की बेल की डण्डी का क्षार, अपामार्ग क्षार, इमली का क्षार, चीता; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग ले। सारे चूर्ण से दुगुना गुड और गुड के समान पिप्पली का चूर्ण ले। इन सब को घोट कर छोटे२ लड्डू वा वटक बनायें। इसे उचित मात्रा में प्रारम्भ कर क्रमशः नित्य बढ़ाकर खायें तो अत्यन्त बढ़ी हुई तिल्ली नष्ट होती है। प्रमेह, पाण्डु, कामला, अग्निमान्द्य, यकृत्, पांचों गुल्म, सब प्रकार के उदररोग, जीर्णज्वर, शोथ, पांच प्रकार की खांसी दूर होती है। यह बृहद्गुडपिप्पली अश्विनीकुमारों ने बनाई थी।

विशेषवचन—प्रारम्भिक मात्रा–२ रत्ती। यह योग यदि तिल्ली वा जिगर बढ़कर कठोर हो गया हो तो उसे भी नरम करके क्रमशः घटा देता है। यदि यकृत् में शूल हो तो उसे भी यह रस शान्त करेगा।

इस योग को प्रायः बालकों में प्रयुक्त नहीं कराते। बालकों में प्रयोग के लिये इससे कुछ भिन्न अन्य गुडपिप्पली है। उसमें चव्य का चूर्ण नहीं है और विडङ्ग आदि चित्रक पर्यन्त चूर्णों के समभाग पिप्पली ली जाती है और इस मिलित चूर्ण से दुगुना गुड डाला जाता है। इसप्रकार तीक्ष्णवीर्य पिप्पली की मात्रा कम हो जाती है—

'विडङ्गं त्र्यूषणं कुष्ठं हिङ्गु लवणपञ्चकम्।
त्रिक्षारं फेनकं वह्निः श्रेयसी चोपकुञ्चिका॥
तालपुष्पोद्भवं क्षारं नाड्याः कूष्माण्डकस्य च।
अपामार्गस्य चिञ्चायाश्चूर्णानि चिक्कणानि च॥
सर्वचूर्णसमं देयं चूर्णमत्र कणोद्भवम्।
एतस्माद् द्विगुणाच्चूर्णात्पुराणो द्विगुणो गुडः॥
मर्दयित्वा दृढे पात्रे मोदकानुपकल्पयेत्।
भक्षयेदुष्णतोयेन प्लीहानं हन्ति दुस्तरम्॥
यकृतं पञ्चगुल्मञ्च उदरं सर्वरूपकम्।
जीर्णज्वरं तथा शोथं कासं पञ्चविधं तथा॥
अश्विभ्यां निर्मिता श्रेष्ठा बालानां गुडपिप्पली॥' ६४-६६॥

ताम्रकल्पम्—

अक्षपारदगन्धञ्च कर्षद्वयमितं पृथक् ।
सर्वैः समं भवेत् ताम्रं जम्बीराम्लेन मर्दयेत् ॥ ७० ॥
सूर्यावर्त्तरसैः पश्चात् कणामोचरसेन च ।
योजयेत् तीव्रघर्मे तु यावत् सर्वन्तु जीर्यति ॥ ७१ ॥
जम्बीरस्य रसैर्भूयो रसं दण्डेन चालयेत् ।
दृढे शिलामये पात्रे चूर्णयेदतिशोभनम् ॥ ७२ ॥
रक्तिद्वयक्रमेणैव योज्यं माषद्वयावधि ।
ह्रासयेच्च क्रमेणैव तथा चैव विवर्द्धयेत् ॥ ७३ ॥
जीर्णे भुञ्जीत शाल्यन्नं क्षीरं घृतसमन्वितम् ।
हन्त्यम्लपित्तं विविधां ग्रहणीं विषमज्वरम् ॥ ७४ ॥
चिरज्वरं प्लीहगदं यकृद्रोगं सुदुस्तरम् ।
अग्रमांसं तथा शोथं कांस्यक्रोडं सुदुर्जयम् ॥ ७५ ॥
कमठञ्च तथा शोथमौदरञ्च सुदारुणम् ।
धातुवृद्धिकरं वृष्यं बलवर्णकरं शुभम् ॥ ७६ ॥
सद्यो वह्निकरश्चैव सर्वरोगहरं परम्
मुखशुद्धिर्विधातव्या पर्णैश्चूर्णसमन्वितैः ।
ताम्रकल्पमिदं नाम्ना सर्वरोगप्रशान्तये ॥ ७७ ॥

बहेड़ा का चूर्ण (या सोंचल लवण), शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक दो २ कर्ष, ताम्रभस्म छः कर्ष लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिला जम्बीरी के रस से घोटकर सुखावें। इसे सूर्यमुखी के रस से घोटे, पश्चात् पिप्पली और मोचरस के क्वाथ से पृथक् मर्दन करे और पुनः तीव्र धूप में

१ 'अक्षः सौवर्चललवणम्' इत्येके ।

रख दे। जब सब जल उड़ जाय तो पुनः जम्बीरी नीबू का रस डालकर उत्तम पत्थर के खरल में दण्ड से घोटे और बारीक चूर्ण कर ले। इसे दो रत्ति से आरम्भ कर क्रमशः दो माषा तक बढ़ाकर खावे। पुनः इसी क्रम से घटावे और बढ़ावे। औषध के पच जाने पर शाली चावल, घी दूध मिलाकर खावे। इस से अम्लपित्त, विविध प्रकार की ग्रहणी, विषमज्वर, चिरकाल का ज्वर, तिल्ली, भयंकर यकृद्रोग, अग्रमांस, शोथ, कांस्यक्रोड, कमठ (अति प्रवृद्ध तिल्ली), पेट का भयंकर शोथ आदि नष्ट होते हैं। यह धातुवर्धक, वृष्य, बल्य, वर्णवर्धक तथा शीघ्र अग्निवर्धक और सर्वरोगहर है। इसे खाने के पीछे मुखशुद्धि के लिये चूना लगा पान का पत्ता चबावे। यह ताम्रकल्प सब रोगों को शान्त करता है।

विशेषवचन—सामान्य मात्रा—½ रत्ती से १ रत्ती पर्यन्त। इस योगपाठ के वास्तविक अभिप्राय को जानना कुछ कठिन है। 'यावत्सर्वन्तु जीर्यति' इस पाठ से प्रतीत होता है कि ताम्र को गलाने के लिये ही यह क्रम है और अतः ताम्रभस्म नहीं डालनी चाहिये। ताम्र के सूक्ष्म पत्र डाले जाते हैं। एक ऐसा ही योग जिसका नाम उदयमार्तण्ड है, रसरत्नसमुच्चय में है। जिसमें ताम्रपत्र को जम्बीररस के योग से गलाया जाता है। योग का पाठ यह है—

'पलोन्मितस्य शुल्बस्य सूक्ष्मपत्राणि कारयेत्।
तत्समं गन्धकं दत्त्वा खल्वे सर्वं विनिक्षिपेत् ॥
जम्बीररससंयुक्तं दिनं घर्मे निधापयेत्।
ततः शुल्बे द्रवीभूते रसकर्षं नियोजयेत् ॥
तत्सिद्धमुदरे योज्यं शोफे चैव भगन्दरे।
नाम्ना तूदरमार्तण्डरस एष प्रकीर्तितः ॥'

अर्थात् १ पल ताम्र के सूक्ष्मपत्र ले (कैंची से उन्हें कुतर लेना चाहिये)। इसमें १ पल गन्धक डाल खरल में प्रचुर जम्बीर का रस डाल दे और दिन में धूप में रखे। जब ताम्र गल जाय तब १ कर्ष शुद्ध पारद डालकर खूब घोटे। इसे उदररोग, शोथ और भगन्दर में प्रयोग करावे।

इस योग को दृष्टि में रखते हुए 'अक्षपारदगन्धञ्च' के स्थान पर

'अक्षो रसो गन्धकश्च' ऐसा पाठ भी हो सकता है। अर्थात् शुद्ध पारद १ कर्ष ले और २ कर्ष शुद्ध गन्धक ले। इनकी अभी कज्जली नहीं करनी। और सम्पूर्ण भागों के समान अर्थात् तीन कर्ष विशुद्ध ताम्र के सूक्ष्मपत्र ले। ताम्रपत्र और गन्धक को मिला जम्बीर-रस से मर्दन करे। फिर सूरजमुखी के रस से मर्दन करे। पश्चात् पिप्पली क्वाथ और (मोचारसेन पाठ होने पर) केले के रस से मर्दन कर के धूप में सुखा ले। पुनः दृढ़ (जम्बीर की खटाई से खराब न होने वाले) पत्थर के खरल में डाल जम्बीर का रस प्रचुर प्रमाण में डाल दे और तेज़ धूप में रखे। जब सारा ताम्र द्रवीभूत हो जाय तो पारद डालकर दण्ड से घोटे और खूब बारीक चूर्ण (कज्जली) कर ले।

परन्तु इसप्रकार प्रस्तुत रस को सावधानी से अत्यल्प ($\frac{1}{4}$ रत्ती) मात्रा में प्रयोग कराना चाहिये। इसके विदाहक गुण से बचने के लिये ही पथ्य में घी और दूध आवश्यक बताया है। इसीप्रकार मुख में भी धात्वीय स्वाद के प्रभाव से होने वाले हृल्लास वमन आदि से बचने के लिये चूने लगे पान को चबाने का विधान है।

'अक्षपारदगन्धश्च' ऐसा ही पाठ रहने पर 'अक्ष' से सौंचल नमक लिया जायगा। नमक के योग से ताम्र शीघ्र द्रवीभूत होता है। तब सौंचरनमक पारा और गन्धक प्रत्येक २कर्ष लिया जायगा और पूर्व सौंचरनमक और गन्धक के साथ जम्बीर रस के योग से ताम्र को मर्दन करना होगा॥ ७०—७७॥

दारुभस्म—

दारुसैन्धवगन्धश्च भस्मीकृत्य प्रयत्नतः।
प्लीहानमग्रमांसञ्च यकृतञ्च विनाशयेत्॥ ७८॥

शुद्ध दारुमुजविष (संखिया), सेंधानमक, शुद्ध गन्धक; तीनों समभाग ले मर्दन कर सम्पुट में रख यत्नपूर्वक भस्म करे। इसे सेवन करने से प्लीहा, अग्रमांस और यकृत्; ये रोग नाश होते हैं॥ ७८॥

वज्रक्षारम्—

सामुद्रं सैन्धवं काचं यवक्षारं सुवर्चलम्।

टङ्कणं सर्जिकाक्षारं तुल्यं सर्वं विचूर्णयेत् ॥ ७९ ॥
अर्कक्षीरैः स्नुहीक्षीरैरातपे भावयेत् त्र्यहम् ।
तेन लिप्त्वाऽर्कपत्रञ्च रुद्ध्वा चान्तः पुटे पचेत् ॥ ८० ॥
तत्क्षारं चूर्णयेत् पश्चात् त्र्यूषणं त्रिफलारजः ।
[1]जीरकं रजनीवह्निर्नवभागं समं समम् ॥ ८१ ॥
[2]क्षारार्द्धमेव सर्वञ्च एकीकृत्य प्रयोजयेत् ।
वज्रक्षारमिदं सिद्धं स्वयं प्रोक्तं पिनाकिना ॥ ८२ ॥
सर्वोदरेषु गुल्मेषु [3]शूलदोषेषु योजयेत् ।
अग्निमान्द्येऽप्यजीर्णे ऽपि भक्ष्यं निष्कद्वयं द्वयम् ॥ ८३ ॥
वाताधिके जलं कोष्णं घृतं वा पैत्तिके हितम् ।
कफे गोमूत्रसंयुक्तमारनालं त्रिदोषजे ॥ ८४ ॥

सामुद्र लवण, सेंधानमक, काचनमक, यवक्षार, सौंचल नमक, सुहागा, सज्जीक्षार; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। इसे आक के दूध और थोहर के दूध की तीन २ दिन धूप में भावनायें दे। इस से स्वच्छ मदार (आक) के पत्तों को लीपकर सम्पुट में बन्दकर पुट देवे। स्वांगशीतल होने पर निकाल कर चूर्ण करे। फिर यह क्षार जितना हो उस से आधा आगे लिखे नौ द्रव्यों का मिलित चूर्ण ले। नौ द्रव्य ये हैं—सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, जीरा, हल्दी, चीता। इन के चूर्ण परस्पर समभाग होने चाहियें। अब सब को उस क्षार में मिला लें। यह वज्रक्षार कहाता है। इसे स्वयं शिव जी ने कहा है। यह सब उदररोग, गुल्मरोग, शूलरोग, अग्निमान्द्य तथा अजीर्ण में प्रयोग कराया जाता है। इसे रोगी दो दो निष्कभर खावे।

---

१ 'जीरकं रजनीं वह्निर्नवकं (चव्यकं पा०) स्यात्समं समम्' र. र. स. पाठः।

२ 'क्षारार्द्धमेतदर्धं च' र. र. स. पाठः।

३ 'शोफशूलेषु' र. र. स. पाठः।

वातदोष में गरम जल से, पित्तदोष में घी से, कफदोष में गोमूत्र से, त्रिदोष की अधिकता में कांजी से प्रयोग कराना चाहिये।

विशेषवचन—मात्रा—१ मासा। योग का पाठ रसेन्द्रचिन्तामणि के अनुसार है। रसरत्नसमुच्चय के कहीं-कहीं पाठान्तर में सोंठ आदि चूर्णों में चव्य का चूर्ण अधिक है। पाठान्तर टिप्पणी में दे दिया है।

भैषज्यरत्नावली के पाठ में पाक भाण्डपुट में करने को कहा है और सोंठ आदि का मिलित चूर्ण क्षार के समान लेने का उपदेश है--

'सामुद्रं सैन्धवं काचं यवक्षारं सुवर्चलम्।
टङ्कणं सर्जिकाक्षारं तुल्यं चूर्णं प्रकल्पयेत्॥
अर्कक्षीरैः स्नुहीक्षीरैर्भावयेदातपे त्र्यहम्।
वेष्टयेदर्कपत्रेण रुद्ध्वा भाण्डपुटे पचेत्॥
तं क्षारं चूर्णयित्वाथ त्र्यूषणं त्रिफला तथा।
यमानी जीरको वह्निश्चूर्णमेषां च कारयेत्॥
सर्वचूर्णसमं क्षारं सर्वमेकत्र कारयेत्।
तच्चूर्णं माषयुगलं सलिलेन प्रयोजयेत्॥
गुल्मे शूले तथाजीर्णे शोथे सर्वोदरेषु च।
मन्दे वह्नावुदावर्ते प्लीह्नि चापि परं हितम्॥
वातेऽधिके जलैः कोष्णैर्हितं पित्ताधिके घृतैः।
गोमूत्रेण कफाधिक्ये काञ्जिकेन त्रिदोषजे।
वज्रक्षार इति ख्यातः प्रोक्तः पूर्वं पिनाकिना।
सेवितो हरतेऽजीर्णं तथाऽजीर्णभवान् गदान्॥'

एक बड़े मृत्पात्र में चावलों के तुष डालकर बीच में सम्पुट रख आग लगादें। यह भाण्डपुट कहाता है। यहां पर हल्दी के स्थान पर अजवाइन है।

अथवा एक मिट्टी के पात्र में नीचे आक (मदार) का पत्ता रख उस पर समुद्र-नमक आदि का भावित चूर्ण अल्प बिछा देते हैं। उस पर आक का दूसरा पत्ता रख पुनः चूर्ण बिछा दिया जाता है। इस प्रकार कई तहें होजाती हैं। पश्चात् पात्र के मुख पर शराव देकर सन्धिलेप कर देते हैं और नीचे से मन्द २ आंच देते हैं। ठीक पाक होजाने पर उतार कर चूर्ण कर लेते हैं।

और सोंठ आदि का चूर्ण मिला लेते हैं। योगरत्नाकर में जो वज्रक्षार है, उस में सोंठ आदि के चूर्ण में कुछ भिन्नता है--

'सौवर्चलं यवक्षारं सामुद्रं काचसैन्धवम्।
टङ्कणं सर्जिकाक्षारं तुल्यमेकत्र चूर्णयेत्॥
अर्कदुग्धैः स्नुहीदुग्धैर्भावयेदातपे त्र्यहम्।
ऊर्ध्वाधःस्थैः क्रमात्तस्य तत्तुल्यैरर्कपल्लवैः॥
भाण्डे संस्थाप्य मृल्लिप्ते रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्।
स्वाङ्गशीतं तु सञ्चूर्ण्य चूर्णमेषां तु मेलयेत्॥
त्र्यूषणं च विडङ्गं च राजिकां त्रिफलामपि।
चव्यं च हिङ्गु सम्भृष्टं तक्रेणाद्याद्यथाबलम्॥
वज्रक्षाराभिधं चूर्णमुदराणि विनाशयेत्।
शोथं गुल्मं तथाष्ठीलां मन्दाग्निमरुचिं तथा॥
प्लीहानं च यकृद्दाल्याख्यमुदरं च विशेषतः॥'

यहां वायविडङ्ग, राई, चव्य और भुनी हींग का चूर्ण विशेष है। हल्दी और चित्रक नहीं है। यहां यह भी स्पष्ट बता दिया है कि आक के पत्ते सामुद्र नमक से लेकर सर्जिक्षार पर्यन्त के चूर्ण के समान लेने चाहियें।

वज्रक्षार प्लीहा और यकृद् की वृद्धि में अतीव हितकर है। वायु का अनुलोमक होने से गुल्म तथा उदर आदि रोगों में विशेष लाभ करता है। अग्नि को अत्यन्त तीव्र करता है। पित्त को पित्ताशय से निकाल कर पाचन शक्ति को बढ़ाता है। शूल तथा परिणामशूल को भी शीघ्र नष्ट करता है।

कई अर्कपत्र से ताम्रपत्र लेना चाहते हैं परन्तु यह अत्यन्त अविचार-पूर्ण है। न तो ताम्र की इसप्रकार ठीक भस्म हो सकती है और ना ही औषध प्रयोग-योग्य होगी। वज्रक्षार नाम पर विचार से भी यही स्पष्ट है कि औषध को क्षार-प्रधान होना चाहिये न कि ताम्र-प्रधान। ताम्रप्रधान औषध कांजी वा तक्र आदि अम्ल द्रव्यों के साथ प्रयुक्त भी नहीं हो सकती और ताम्र से प्रस्तुत इस औषध की मात्रा भी जो मूल में बताई गई है (१ निष्क) अत्यन्त हानिकर होगी।

यदि मदार के पत्ते न लें और ताम्र ही अभीष्ट हो तो ताम्रपत्र के स्थान

पर ताम्रभस्म मिला दें तो औषध प्रयोग-योग्य हो जायगी और शूल उदर-रोग तिल्ली आदि में दी जा सकेगी। परन्तु उसकी मात्रा—१ रत्ती होनी चाहिये ॥ ७९—८४ ॥

उदरामयकुम्भिकेशरीरसः—

रसगन्धकभस्मशुल्वकं कटुकक्षारयुगं सटङ्कणम् ।
कणमूलकचव्यचित्रकं लवणान्येव यमानिरामठम् ॥ ८५ ॥
समभागमिदं विभावयेत् खरतापे त्वथ जम्भवारिणा[1] ।
उदरामयकुम्भिकेशरी–रस एष प्रथितोऽस्य माषकः ॥८६॥
सुरवार्य्यनुदापयेद् भिषक् प्रसभं हन्ति च सव्रणं[2] गदम् ।
यकृतं क्रिमिमग्रमांसकं कमठं प्लीहजलोदराह्वयम् ।
जठरामयपञ्चगुल्मकं पवनं[3] साममथाम्लपित्तकम् ॥ ८७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, सोंठ, मिरच, पिप्पली, यवक्षार, सज्जी, शुद्ध सुहागा, पिप्पलामूल, चव्य, चीता, पांचों नमक, अजवायन, हींग; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर जम्बीरी नीबू के रस से घोटकर धूप में सुखावें। यह उदरामयकुम्भिकेशरी रस है। इस की एक माषा भर की मात्रा सुरा अथवा जल से प्रयोग करने से व्रण, यकृद्रोग, कृमि, अग्रमांस, कमठ, प्लीहा, जलोदर, उदररोग, पांचों गुल्म, आमवात, अम्लपित्त, आदि रोग दूर होते हैं।

विशेषवचन—मात्रा—दो रत्ती ॥ ८५—८७ ॥

वारिशोषणो रसः—

चतुर्विंशतिभागाः स्युर्गन्धाद्वङ्गं तदर्द्धकम् ।
वङ्गभागाद्भवेदर्द्धः पारदः कृष्णमभ्रकम् ॥ ८८ ॥
चतुर्दशविभागं स्यान्मृतं तद्दीयते पुनः ।

१ 'जम्बुवारिणा' पा०। २ 'व्रणं गदं भुवि' पा०। ३ 'परमं' पा०

मृतलौहमष्टभागं मृतताम्रं नवात्र तत् ॥ ८९ ॥
मृतहेम द्वयं तत्र मृतरूप्यञ्च सप्तकम् ।
अतिशुद्धमतिस्थूलं मृतं हीरं त्रयोदश ॥ ९० ॥
भागा ग्राह्या माक्षिकस्य विशुद्धस्यात्र षोडश ।
अष्टादशमितं ग्राह्यं नवकाशीशकं पुनः ॥ ९१ ॥
तुत्थकञ्च षडेवात्र नवीनं ग्राह्यमेव च ।
तालकञ्च चतुर्भागं शिला योज्यास्त्रयो बुधैः ॥ ९२ ॥
शैलेयं पञ्च दातव्यं सर्वमेकत्र नूतनम् ।
मृतमौक्तिकभागैकं सौभाग्यं द्वयमेव च ॥ ९३ ॥
कुट्टयित्वा विचूर्ण्याथ जम्बीरस्य रसेन वै ।
भावयेत् सप्तधा गाढं गुडिकां तस्य कारयेत् ॥ ९४ ॥
पानकद्वितये कृत्वा मुद्रयेत् पानकद्वयम् ।
घटमध्ये निवेश्याथ दत्त्वा पूर्वञ्च वालुकाम् ॥ ९५ ॥
ऊर्द्ध्वञ्च तां पुनर्दत्त्वा वालुकां मुद्रयेन्मुखम् ।
अहोरात्रं दहेदग्नौ स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ९६ ॥
वकुलस्य च बीजेन कण्टकारीद्वयेन च ।
गुडूचीत्रिफलावारा भावयेत् सप्तसप्ततः ॥ ९७ ॥
वृद्धदाररसेनापि तथा देयास्तु भावनाः ।
गिरिकर्ण्या रसेनापि रोहीतमत्स्यपित्ततः ॥ ९८ ॥
एवं सिद्धो भवेत् सम्यक् रसोऽसौ वारिशोषणः ।
देवान् गुरून् समभ्यर्च्य यतिनो ब्राह्मणांस्तथा ॥ ९९ ॥
रक्तिकाद्वितयं देयं सन्निपाते समुच्छ्रये ।
मारिचेन समं देयं तेन जागर्त्ति मानवः ॥१००॥

श्लैष्मिके च गदे देयं ग्रहण्यामग्निमान्द्यके ।
प्लीह्नि पाण्डौ प्रयोक्तव्यं त्रिकटुत्रिफलाम्भसा ॥१०१॥
शूलरोगे प्रयोक्तव्यमुदावर्त्ते विशेषतः ।
कुष्ठे सुदुष्टे देयोऽयं काकोडुम्बरिकाऽम्भसा ॥१०२॥
अतिवह्निकरः श्रीदो वलवर्णाग्निवर्द्धनः ।
धन्वन्तरिकृतः सद्यो रसः परमदुर्लभः ।
सर्वरोगे प्रयोक्तव्यो निस्सन्देहं भिषग्वरैः ॥१०३॥

शुद्ध गन्धक २४ भाग, वंगभस्म १२ भाग, शुद्ध पारा ६ भाग, अभ्रकभस्म १४ भाग, लौहभस्म ८ भाग, ताम्रभस्म ६ भाग, स्वर्णभस्म २ भाग, चांदीभस्म ७ भाग, अतिशुद्ध और अति स्थूल हीरे की भस्म १३ भाग, स्वर्णमाक्षिकभस्म १६ भाग, नया शुद्ध काशीश १८ भाग, नया शुद्ध नीलाथोथा ६ भाग, शुद्ध हड़ताल ४ भाग, शुद्ध मनशिल ३ भाग, शुद्ध शिलाजीत ५ भाग, मोतीभस्म १ भाग, सुहागा शुद्ध २ भाग। सब से प्रथम पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण करे और जम्बीरी नीबू के रस से सातवार भावना देवे। पश्चात् इसका गोला बनाकर दो शरावों में बन्द करदे। एक हांडी के नीचे ऊपर बालू भरके मध्य में इस शरावसम्पुट को रख दे और हांडी का मुंह बंद करदे। इसके नीचे एक दिन रात (२४ घण्टे) आग जलावे। स्वांगशीतल होने पर इसे निकाल लेवे। फिर मौलसरी के बीज, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, गिलोय, त्रिफला, विधारा तथा अपराजिता; इन के यथायोग्य रसों वा क्वाथों से सात-सात भावनायें देवे। अन्त में रोहू मछली के पित्त से सात भावना देवे। इस प्रकार यह वारिशोषण रस सिद्ध होता है। देव, गुरु, यति और ब्राह्मणों की विधिवत् पूजा करके इसे दो रत्ति मात्रा में सेवन करावे। मिरचों के चूर्ण के साथ प्रयोग से घोर सन्निपात से मूर्च्छित हुआ मनुष्य भी जाग जाता है। इसे श्लेष्मा के रोगों में, ग्रहणी, अग्निमान्द्य तथा तिल्ली रोग में दे। पाण्डुरोग में त्रिकटु चूर्ण और त्रिफला के क्वाथ से दे। शूलरोग और विशेष कर

के उदावर्त्त रोग में भी इसका प्रयोग होता है। अत्यन्त दुष्ट कुष्ठ रोग में काकोदुम्बरिका (कठगुलरिया, कठूमर) के रस से दें। यह अग्नि को अत्यन्त बढ़ाता है, कान्ति देता है, बल, वर्ण तथा तेज को शीघ्र बढ़ाता है। यह धन्वन्तरि जी का बनाया हुआ परम दुर्लभ रस सर्व रोगों में सन्देहरहित हो वैद्यों को प्रयुक्त कराना चाहिये।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—½ रत्ती से १ रत्ती तक ॥९४—१०३॥

सर्वतोभद्रः—

सूतं गन्धं तपनगगनं कान्तलौहस्य चूर्णं
कृत्वैकध्यं दृशदि मथितं शृङ्गवेरस्य वारा।
युञ्ज्याद्रोगे यकृति गुदजे प्लीह्नि सर्वज्वरेषु
शोथे पाण्डौ क्रिमिकृतगदे सर्वतः कामलायाम् ॥१०४॥
कासे श्वासे च मेहे जलजठरगदे सर्वदोषप्रभूते।
ख्यातो योगः सुरमणिकृतः सर्वतोभद्रनामा ॥१०५॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, कान्तलौहभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर अदरक का रस डालकर पत्थर के खरल में घोटे। पश्चात् सुखाकर चूर्ण कर रखे। इस सर्वतोभद्र रस को उचित मात्रा में प्रयोग करने से यकृत्, बवासीर, तिल्ली, सब ज्वर, शोथ, पाण्डु, क्रिमिजन्य रोग, कामला तथा सब दोषों से उत्पन्न कास, श्वास, प्रमेह, जलोदर आदि रोग नष्ट होते हैं। यह सर्वतोभद्र नाम का योग सुरमणि ने बनाया है।

विशेषवचन—मात्रा—एक रत्ती ॥ १०४—१०५ ॥

इति प्लीहरोग-चिकित्सा।

अथ शोथरोग-चिकित्सा

त्रिकट्वाद्यं लौहम्—

त्रिकटुत्रिफलादन्तीमार्गत्रिमदशुण्ठकैः ।
पुनर्नवा[1]समायुक्तं शोथं हन्ति सुदुस्तरम् ।
लौहं शोथोदरस्थौल्यजलोदरनिवारणम् ॥ १ ॥

सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, दन्तीमूल, अपामार्ग (ओंगा, चिरचिटा, पुठकण्डा), चीता, मोथा, वायविडंग, सूखी मूली, पुनर्नवा; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग ले। सब के समान लौहभस्म मिला घोटकर रखे। इस की उचित मात्रा खाने से भयंकर शोथ नष्ट होता है। यह उदररोग, स्थूलता तथा जलोदर को भी हटाता है।

विशेषवचन—मात्रा—२ रत्ती। इसमें लौह की प्रधानता है। लौहभस्म को यदि उचित मात्रा में प्रयोग कराया जाय तो भूख को भी बढ़ाता है। विपाक होने पर यह पक्काशय की श्लैष्मिक कला में से गुज़र कर रक्त में मिल जाता है और वहां रक्त के बनाने वाले प्लीहा यकृत् लसीका ग्रन्थि आदियों में जाकर उन्हें उत्तेजित करता है। परिणाम यह होता है कि जहां वह रक्त के रक्ताणुओं में वृद्धि करके देह को पुष्ट करता है वहां पाण्डु कामला आदि रोगों को भी दूर कर देता है और तिल्ली जिगर आदि की विकृति के कारण रक्त की कमी हो जाने से जो शोथ हो जाता है उसे भी शीघ्र दूर करता है। यह वृक्क रोग और हृद्रोगों में होने वाले शोथों में भी लाभकर सिद्ध होता है। देह में ओषजनीकरण के प्रबल हो जाने से मेदोधातु भी जल जाती है और परिणाम यह होता है कि देह की स्थूलता भी क्रमशः कम होती जाती है। इस में अन्य त्रिकटु आदि अन्य द्रव्य भी कुछ एक आमाशय और पक्काशय के उत्तेजक होने के कारण और कुछ एक के मूत्रल होने से अत्यन्त लाभ करते हैं। यह योग कोष्ठबद्धता को भी दूर करता है और कब्ज़ नहीं होने देता ॥ १ ॥

१ 'पुनर्नवासमायुक्तैर्युक्तो हन्ति सुदुर्जयम्। लोहः शोथोदरं स्थौल्यं मेदोगदमसंशयम्' र. चि., र. र. पाठः।

कटुकाद्यं लौहम्—

कटुकी त्र्यूषणं दन्ती विडङ्गं त्रिफला तथा ।
चित्रको देवकाष्ठञ्च त्रिवृद्वारणापिप्पली ॥ २ ॥
तुल्यान्येतानि चूर्णानि द्विगुणं स्यादयोरजः ।
क्षीरेण पीतमेतत्तु श्रेष्ठं श्वयथुनाशनम् ॥ ३ ॥

कुटकी, सोंठ, मिरच, पिप्पली, दन्तीमूल, विडंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चीता, देवदारु, त्रिवी, गजपीपल; इन सब द्रव्यों का चूर्ण समभाग लेकर इन सब से दुगुनी लौहभस्म मिलाकर रखे। इस कटुकाद्यलौह को दूध से सेवन करे। यह सूजन नाश करने में उत्तम योग है।

विशेषवचन—१ रत्ती से २ रत्ती तक। यह योग भी त्रिकट्वादि लौह के सदृश ही लाभकर है, विशेषतः प्लीहा यकृत् आदि के विकार से होने वाले शोथों में। मूत्रसंस्थान की विकृति से होने वाले शोथ में त्रिकट्वादि लौह अधिक हितकर है।

भैषज्यरत्नावली में 'त्रिकटु त्रिफला दन्ती विडङ्गं कटुका तथा' ऐसा पाठ होने से इस योग का नाम 'त्रिकट्वाद्य लौह' रखा है ॥ २—३ ॥

त्र्यूषणाद्यं लौहम्—

अयोरजस्त्र्यूषणयावशूकचूर्णञ्च पीतं त्रिफलारसेन ।
शोथं निहन्यात् सहसा नरस्य यथाऽशनिर्वृक्षमुदीर्णवेगः ॥ ४ ॥

सोंठ, मिरच, पिप्पली, यवक्षार; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग लें। सब के तुल्य अर्थात् चार भाग लोहभस्म मिला लें। इस त्र्यूषणाद्य लौह को त्रिफला के क्वाथ से सेवन करें तो शीघ्र ही सूजन को ऐसे नाश करता है जैसे प्रबल बिजली वृक्ष को नाश करती है।

विशेषवचन—मात्रा—२ रत्ती। चरकसंहिता में यह योग त्रिदोषज-शोथ-प्रकरण में प्रयोगार्थ कहा है। आजकल इसे विशेषतः वातशोथ में प्रयोग कराते हैं ॥ ४ ॥

---

१ 'पीतं शीतेन' भै. र. पाठः ।

सुवर्चलाद्यं लौहम्—

सुवर्चला[1] व्याघ्रनखं चित्रकं कटुरोहिणी ।
चव्यश्च देवकाष्ठश्च दीप्यकं लौहमेव च ।
शोथं पाण्डुं तथा कासमुदराणि निहन्ति च ॥ ५ ॥

सूर्यमुखी, व्याघ्रनखी, चीता, कुटकी, चव्य, देवदारु, अजवायन; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। सब के समान लौहभस्म मिला कर रखें। इसके सेवन से शोथ, पाण्डु, कासरोग तथा उदररोग नष्ट होते हैं।

विशेषवचन—मात्रा—२ रत्ती।

सुवर्चला से कई सज्जी लेते हैं। यह भी पाचक भेदक तथा मूत्रल होने से शोथ में लाभकर है। यह योग वातज कफज वा वातकफज शोथ में लाभ करता है ॥ ५ ॥

क्षारगुडिका—

क्षारद्वयं स्यात् लवणानि पञ्च चत्वार्ययो[2] व्योषफलत्रिकञ्च ।
सपिप्पलीमूलविडङ्गसारं मुस्ताऽजमोदाऽमरदारुबिल्वम् ॥ ६ ॥
कलिङ्गकश्चित्रकमूलपाठे यष्ट्याह्वयं सातिविषं पलांशम् ।
सहिङ्गुकर्षं त्वतिसूक्ष्मचूर्णं द्रोणं तथा मूलकशुण्ठकानाम् ॥ ७ ॥
स्याद्भसनस्तत् सलिलेन साध्यमालोड्य यावद् घनमप्यदग्धम् ।
स्त्यानं ततः कोलसमाश्च मात्रां कृत्वा तु शुष्कां विधिना प्रयुञ्ज्यात्
प्लीहोदरं श्वित्रहलीमकार्शः—पाण्ड्वामयारोचकशोथशोषान् ।
विसूचिकागुल्मगराश्मरीश्च सश्वासकासान् प्रणुदेच्च कुष्ठान् ॥ ८ ॥
सौवर्चलं सैन्धवञ्च विडमौद्भिदमेव च ।
सामुद्रलवणञ्चात्र जलमष्टगुणं भवेत् ॥ १० ॥

१ 'सुवर्चलं' पा० ।
२ 'अयश्चतुष्कं त्रिफला च व्योषम्' पा० ।

यवक्षार, सज्जी, पांचों नमक तथा चारों (वज्र, पाण्ड्य, तीक्ष्ण, और कांत) प्रकार के लोहों की भस्में, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पिप्पलीमूल, निस्तुष वायविडंग, मोथा, अजमोदा (अजवायन), देवदार, बिल की छाल (वा बेलगिरी), इन्द्रजौ, चीतामूल, पाठा, मुलहठी, अतीस; प्रत्येक का चूर्ण १पल, हींग एक कर्ष लें। सूखी मूली की भस्म १ द्रोण (२५६ पल) ले। उस भस्म से क्षारजल प्रस्तुत करे। यह क्षारजल चूर्ण से आठ गुना होना चाहिये। इस आठ गुणा क्षारजल में पूर्वोक्त यवक्षारादि द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर आलोडित करे और आग पर चढ़ादे। जब पकते २ घना हो जाय—जले नहीं, नीचे उतार लें और एक कोल भर की वटी बना लें। सूख जाने पर इसे विधिपूर्वक खाने से प्लीहोदर, श्वित्र, हलीमक, बवासीर, पाण्डुरोग, अरुचि, शोथरोग, शोष, विसूचिका, गुल्म, संयोगज विष, पथरी, श्वास, कास, कुष्ठ; ये सब रोग नष्ट होते हैं।

सौंचल, सेंधा, विड, औद्भिद (रेह का नमक), सामुद्र; ये पांच नमक ले। तथा जल (क्षारजल) को चूर्ण से आठ गुणा ले। यह इस योग के निर्माण में परिभाषा कही है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ मासा।

प्रस्तुत ग्रन्थ का पाठ रसेन्द्रचिन्तामणि का है। यह योग वास्तव में चरकसंहिता का है। वहां 'क्षारद्वयं स्याल्लवणानि चत्वार्ययोरजो व्योषफलत्रिके च' यह पाठ है। इसके अनुसार पांचनमक नहीं लिये जाते। चार नमक लिये जाते हैं। सामुद्रनमक नहीं डाला जाता। चार प्रकार के लोहों की भस्म (मिलित ४ पल) के स्थान पर सामान्य तीक्ष्णलोहभस्म (१ पल) ही ली जाती है। व्यवहार भी चरकसंहिता के पाठ के अनुसार ही है। चरकसंहिता का यह योग चक्रदत्त में भी वैसा का वैसा ही उद्धृत है। वहां जो परिभाषा कही है, उसका पाठ निम्न है—

'सौवर्चलं सैन्धवञ्च विडमौद्भिदमेव च।
चतुर्लवणमत्र स्याज्जलमष्टगुणं भवेत्॥'

इसप्रकार चार नमक ही बताये हैं।

'पलांशम्' के स्थान पर इस ग्रन्थ में 'पलाशम्' पाठ प्रचलित है और उसी के अनुसार ढाक की छाल वा बीज लेने को टीकाकारों ने कहा है और उसी पाठ के अनुसार यवक्षार आदि हिंगु पर्यन्त द्रव्य एक-एक कर्ष लेते हैं। परन्तु 'पलाशम्' पाठ के प्रमादयुक्त होने से हमने 'पलांशम्' ही मूल में कर दिया है। चरक में 'पलांशम्' ही पाठ है।

क्षार-जल प्रस्तुत करने के लिये मूली की १ द्रोण भस्म में ६ गुना जल डालकर कुछ काल बाद छान लेते हैं। पश्चात् आग पर पकाते हैं। जब आधा वा तृतीयांश जल रह जाता है तब नीचे उतार लेते हैं॥ ६—१०॥

इति शोथचिकित्सा।

अथार्बुदरोग-चिकित्सा।

रौद्ररसः—

शुद्धसूतं समं गन्धं मर्द्यं यामचतुष्टयम्।
नागवल्लीरसैर्युक्तं[1] मेघनादपुनर्नवैः॥ १॥
गोमूत्रपिप्पलीयुक्तं मर्द्यं रुद्ध्वा पुटेल्लघु।
लिह्यात् क्षौद्रैः रसो रौद्रो गुञ्जामात्रोऽर्बुदं जयेत्।

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; दोनों समभाग ले चार पहर तक घोट कज्जली करें। फिर उसे पानका रस, चौलाई का रस, पुनर्नवा का रस, गोमूत्र तथा पिप्पली का क्वाथ; इनसे मर्दन करें। पश्चात् सुखाकर सम्पुट कर लघुपुट दें। स्वाङ्ग-शीतल होने पर निकाल कर पीस लें। यह रौद्ररस एक रत्ति मात्रा में ले शहद से मिलाकर सेवन करने से अर्बुद को जीतता है।

विशेषवचन—रसरत्नसमुच्चय में भी इससे मिलता जुलता अर्बुदहर रस कहा है—

'तण्डुलीयकवर्षाभूनागकन्याबलारसैः।
गोमूत्रे च रसः पिष्टः पुटपक्वोऽर्बुदादिजित्॥'

---

१ 'नागवल्लीदलयुतं' भै. र. पाठः।

अर्थात् पारद को (इसके समान ही गन्धक भी डालकर कज्जली की जायगी) चौलाई, पुनर्नवा, पान, घीक्वार, बला; इनके रसों से तथा गोमूत्र से पीसकर पुटपाक करें । यह अर्बुद आदि रोगों को जीतता है ।

कज्जली को कपड़मिट्टी की हुई आतसी शीशी में डाल मुख बन्द कर बालुकायन्त्र में रख लघुपुट देना चाहिये । अथवा भूधरपुट दे सकते हैं ॥१॥

रामबाणादिकान् योग-वाहिनोऽत्र प्रयोजयेत् ॥ २ ॥

अर्बुद रोग में रामबाण आदि अन्य योगवाही रस भी दिये जा सकते हैं ॥ २ ॥

इति अर्बुदरोगचिकित्सा ।

अथ श्लीपदरोग-चिकित्सा ।

नित्यानन्दो रसः—

हिङ्गूलसम्भवं सूतं गन्धको मृतताम्रकम् ।
वङ्गं[1] तालश्च तुत्थश्च शङ्ख कांस्यं वराटकम्[2] ॥ १ ॥
त्रिकटुत्रिफलालौहं विडङ्गं पटुपञ्चकम् ।
चविकापिप्पलीमूलं हवुषा च वचा तथा ॥ २ ॥
शठी पाठा देवदारु एला च वृद्धदारकम्[3] ।
एतानि समभागानि सञ्चूर्ण्य[4] वटिकां[5] कुरु[6] ॥ ३ ॥

१ ' कांस्यं बङ्गं हरीतालं तुत्थं शङ्खं वराटकम् ' र. र. पाठः ।

२ ' वराटिका ' पा० । ' विदारिका ' भै. र. पाठः ।

३ अस्यानन्तरं 'त्रिवृता चित्रकं दन्ती गृहीत्वा तु पृथक् पृथक् ' भै. र. पाठः ।

४ 'वटिकां कुरु यत्नतः' पा० । ५ 'गुडकीकृतम्' भै. र. पाठः ।

६ ' अस्यानन्तरं रसरत्नाकरे 'त्रिवृच्चित्रकदन्तीनां भावयित्वा रसैः पृथक् ' इत्यधिकः पाठः ।

हरीतकीरसं दत्त्वा पञ्चगुञ्जामितां[1] शुभाम् ।
एकैकां भक्षयेन्नित्यं[2] शीतं वारि पिबेदनु ॥ ४ ॥
श्लीपदं कफवातोत्थं रक्तमांसगतञ्च[3] यत् ।
मेदोगतं धातुगतं हन्त्यवश्यं न संशयः[4] ॥ ५ ॥
श्रीमद्गहननाथेन निर्मितो विश्वसम्पदे ।
नित्यानन्दरसश्चायं[5] यततः श्लीपदे गदे ॥ ६ ॥

हिंगुल से निकाला हुआ पारा और शुद्ध गन्धक समभाग ले कज्जली करें। उसमें ताम्रभस्म, वंगभस्म, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध नीलाथोथा, शंखभस्म, कांस्यभस्म, कौड़ीभस्म, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, लौहभस्म, विडंग, पांचों लवण, चव्य, पिप्पलीमूल, हाऊबेर, वच, कचूर, पाठा, देवदार, छोटी इलायची, विधारा; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण पारे के समान लेकर सबको एकत्र मिलाये और हरड़ के क्काथ से सबको पीसकर पांच रत्ति

---

१ 'पञ्चगुञ्जानिभां' पा० । 'दशगुञ्जोन्मितं' भै. र. पाठः ।

२ 'भक्षयेद्रोगी शीतञ्चानु पयः पिबेत्' र. र. पाठः ।

३ 'रक्तमांसाश्रितः' र. र. पाठः ।

४ अस्यानन्तरं 'अर्बुदं गरण्डमालाञ्च वातरक्तं सुदारुणम् । कफवातोद्भवं रोगमन्त्रवृद्धिं चिरन्तनीम् । वातरक्ते वातकफे गुदरोगे क्रिमौ तथा । अग्निवृद्धिं करोत्येष बलं वर्णं च सुस्थताम्' इत्यधिकः पाठः भैषज्यरत्नावल्याम् । 'अर्बुदं गरण्डमालाञ्च अन्त्रवृद्धिं चिरन्तनीम् । वातपित्ते श्लेष्मवाते गुदरोगे क्रिमौ तथा । अग्निवृद्धिं करोत्येव बलवर्णञ्च सुस्थताम् । इत्यधिकः रसरत्नाकरे ।

५ 'नित्यानन्दकरश्चायं' पा० । 'नित्यानन्दरसश्चायं महाश्लीपदनाशनः' भै. र. पाठः । 'नित्यानन्दरसो नाम्ना श्लीपदव्याधिनाशकः' र. र. पाठः । अस्यानन्तरं च तत्रैव 'आनन्दयति लोकेशः शिवो बाणासुरं यथा । तथैव रोगिणां नित्यं ब्रध्नवृद्धौ च सर्वजे । रक्तजे पित्तजे चापि पथ्यं योज्यं सदा बुधैः । अभावे वृद्धदारस्य त्रिवृताञ्च नियोजयेत्' इत्यधिकः पाठः । 'रक्तजे पित्तजे चापि श्लीपदे योजयेदमुम् । नातः परतरं किञ्चिद्विद्यते श्लीपदामये' इत्यधिकः भैषज्यरत्नावल्याम् ।

भर की गोली बनावे। इसकी एक गोली को शीतल जल से सेवन करे। इससे कफवात से उत्पन्न हुआ श्लीपदरोग नष्ट होता है। रक्तगत और मांसाश्रित, मेदोगत और धातुगत कैसा भी श्लीपद हो उसे यह रस अवश्य नाश कर देता है—इस में सन्देह नहीं। यह नित्यानन्द रस श्रीमान् गहननाथ ने संसार की रक्षा के लिये बनाया है। श्लीपदरोग में यह परमोत्तम है।

विशेषवचन—रसरत्नाकर में निसोत क्वाथ, चित्रकक्वाथ तथा दन्तीमूलक्वाथ से भी भावनायें (सात-सात) देने को कहा है। भैषज्यरत्नावली में इन्हीं तीनों द्रव्यों का चूर्ण एक-एक भाग मिलाने का विधान है ॥ १—६ ॥

कणादिवटी—

कणा-वचा-दारु-पुनर्नवानां चूर्णं सबिल्वं समवृद्धदारम् ।
सम्मर्द्य चैतस्य निहन्ति वल्लः सकाञ्जिकः श्लीपदमुग्रवेगम् ॥ ७ ॥

पिप्पली, वच, देवदार, पुनर्नवा, बिल की छाल, विधारा; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। इसे यत्न से मर्दन करे और डेढ़ रत्ति भर लेकर कांजी से खाये तो यह उग्र वेग वाले श्लीपद को दूर करता है।

विशेषवचन—यहां 'चूर्णं' के स्थान में 'सूतम्' पाठ भी है। वहां 'रससिन्दूर' भी डालना चाहिये।

वस्तुतः केवल रसौषध के विना प्रकृत ग्रन्थ में योग का पाठ अनुपान रूप में प्रयोगार्थ ही जानना चाहिये। रससिन्दूर आदि योगवाही औषध को इस वटी के साथ मिलाकर दिया जा सकता है। इससे श्लीपद में शीघ्र लाभ की आशा है। रसेन्द्रचिन्तामणि में कहा भी है—

'प्रख्यातं सर्वरोगेषु सूतभस्म च केवलम् ।
योजयेद्योगवाहं वा श्लीपदस्य निवृत्तये ॥'

कणादि वटी की सहपान सम्बन्धी मात्रा तीन रत्ति होने में कोई हानि नहीं। अतः यहां 'वल्ल' से अभिप्राय तीन रत्ति भी लिया जा सकता है।

वस्तुतस्तु यहां 'समवृद्धदारम्' कहने से अभिप्राय विधारा के चूर्ण को पिप्पली आदि द्रव्यों के मिलित चूर्ण के समान लेने से है।

इसप्रकार के अन्य योग भी तन्त्रान्तर में मिलते हैं, जहां विधारा का

चूर्ण अन्य घटक द्रव्यों के मिलित चूर्ण के समान है—चक्रदत्त में दो योग ऐसे दिये हैं। प्रथम योग निम्न है—

'त्रिकटु त्रिफला चव्यं दार्वी वरुणगोक्षुरम्।
अलम्बुषां गुडूचीञ्च समभागानि चूर्णयेत्॥
सर्वेषां चूर्णमाहृत्य वृद्धदारस्य तत्समम्॥
काञ्जिकेन च तत्पेयमक्षमात्रं प्रमाणतः।
जीर्णे चापरिहारं स्यात् भोजनं सार्वकामिकम्॥
नाशयेच्छ्लीपदं स्थौल्यमामवातञ्च दारुणम्।
कुष्ठगुल्मानिलहरं वातश्लेष्मज्वरापहम्॥'

यहां त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, दारुहल्दी, वरुणछाल, गोखरू, मुण्डी, गिलोय; इन बारह द्रव्यों के मिलित चूर्ण के समान विधारा का चूर्ण है। इसे भी कांजी से ही पीना है। दूसरा योग इसप्रकार है—

'पिप्पली त्रिफला दारु नागरं सपुनर्नवम्।
भागैर्द्विपलिकैरेषां तत्समं वृद्धदारकम्॥
काञ्जिकेन पिबेच्चूर्णं कर्षमात्रं प्रमाणतः।
जीर्णे चापरिहारं स्याद्भोजनं सार्वकामिकम्॥
श्लीपदं वातरोगांश्च हन्यात्प्लीहानमेव च।
अग्निञ्च कुरुते घोरं भस्मकञ्च नियच्छति॥'

यहां पर भी पिप्पली, त्रिफला, देवदारु, सोंठ, पुनर्नवा; इन सात द्रव्यों के मिलित चूर्ण के समान विधारा का चूर्ण है। इसे भी कांजी से ही पीना है।

विधाराचूर्ण श्लीपद की मुख्य औषध है। इसे अकेला ही कांजी वा गोमूत्र से भी आचार्यों ने सेवन कराने को कहा है—

'काञ्जिकेन पिबेच्चूर्णं मूत्रैर्वा वृद्धदारुजम्।'

इसे श्लीपद की व्याधिविपरीत औषध कह सकते हैं। अतः कणादिवटी में भी पिप्पली आदि के मिलित चूर्ण के समान ही विधारा का चूर्ण लेना चाहिये और यही बात उसके पाठ पर सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर स्पष्ट है।

श्लीपद रोग में वात कफ मेद तथा रक्तदोष को नष्ट करने वाली औषधें दी जाती हैं॥ ७॥ इति श्लीपदचिकित्सा।

अथ भगन्दररोगाचिकित्सा।

रवितारडवो रसः—

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं कुमारीरसमर्दितम्।
त्र्यहान्ते गोलकं कृत्वा ततस्तेन प्रलेपयेत्॥ १॥
तयोः समं ताम्रपत्रं हण्डिकान्तर्निवेशयेत्।
तद्भाण्डं भस्मनाऽऽपूर्य्य चुल्ल्यां तीव्राग्निना पचेत्॥ २॥
द्वियामान्ते[1] समुद्धृत्य चूर्णयेत् स्वाङ्गशीतलम्।
जम्बीरस्य रसैः पिष्ट्वा रुद्ध्वा सप्तपुटे पचेत्॥ ३॥
गुञ्जैकं मधुनाऽऽज्येन लिह्याद्धन्ति भगन्दरम्।
मूषलीलवणं[2]श्चानु ह्यारनालयुतं पिबेत्॥ ४॥
भुञ्जीत मधुराहारं दिवास्वापञ्च मैथुनम्।
वर्जयेच्छीतलाहारं रसेऽस्मिन् रवितारडवे॥ ५॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक दो भाग; दोनों की कज्जली कर घीकुमार के रस से तीन दिन तक घोटे। फिर गोला बना ले। कज्जली के समभाग ताम्र के सूक्ष्म शुद्ध पत्रों पर उस गोले से लेप कर दे। अब उन्हें एक हांडी के अन्दर रख कर उस पर एक शराव औंधा मुंह रख सन्धिबन्धन कर दे और ऊपर से हांडी को राख से भर दे। नीचे से तीव्र आग देवे। दो पहर के पीछे उतार लें। स्वांग शीतल होने पर औषध को निकाल चूर्ण कर जम्बीरी नींबू के रस से खरल कर सम्पुट में बन्द कर पुट दे। इसी प्रकार जम्बीरी के रस से खरल कर सात वार पुट देनी चाहिये। फिर इसे चूर्ण कर शीशी में रखे। इस रस की एक रत्ति की मात्रा घी और शहद से मिलाकर सेवन करे तो भगन्दर का नाश होता है। ऊपर से मूसली चूर्ण और लवण को कांजी में डालकर पीवे। भोजन में मधुर आहार खावे। दिन में न सोवे। मैथुन छोड़ दे। तथा शीतल आहार भी न करे। इसे रवितारडव रस कहते हैं।

---

१ 'त्रियामान्ते' र. र. पाठः। २ 'मूषलीलशुनं र. र., भै. र. पाठः।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—चौथाई रत्ती से आधी रत्ती तक।

यहां 'ततस्तेन प्रलेपयेत्। तयोः समं ताम्रपत्रं हरिडकान्तर्निवेशयेत्।' यह पाठ ठीक नहीं। यह पाठ प्रकृत ग्रन्थ में रसेन्द्रचिन्तामणि से उद्धृत है। रसरत्नसमुच्चय का पाठ 'हरिडकान्ते निरोधयेत्। शुद्धेन ताम्रपात्रेण तयोस्तुल्येन यत्नतः।' शुद्ध है। अर्थात् घीक्वार के रस से कज्जली का गोलक बनाकर हांडी में रखे और गोलक पर कज्जली के तुल्य शुद्ध सूक्ष्म ताम्रपत्र से निर्मित पात्र को औंधा मुंह रख दे। पश्चात् शराव देकर सन्धिबन्धन करके हांडी को उपलों की भस्म से भर दे। नीचे से आग दे। यदि ताम्रपात्र न हो तो कण्टकवेधी ताम्रपत्रों को कज्जली के गोलक पर ढीला ढीला लपेट सकते हैं।

प्रकृत ग्रन्थ के प्रचलित पाठ के अनुसार औषध तो बन जायगी परन्तु ताम्रपत्र पर कज्जली के लेप के लिये गोलक बनाना निरर्थक है। लेप तो पङ्कवत् गीले का ही अच्छा हो सकता है, अतः वह पाठ त्याज्य है। 'त्र्यहं पङ्कोपमं कृत्वा' यह पाठ कर सकते हैं। परन्तु जब रसरत्नसमुच्चय का ठीक पाठ उपलब्ध है तो उसे वैसा ही कर लेना चाहिये।

कई वैद्य तो कज्जलीयोग से की गयी ताम्रभस्म को ही उक्त कज्जली से मिला घीक्वार के रस से घोट कर उक्तप्रकार से पाक कर लेते हैं और पीछे पूर्ववत् पुटें दे लेते हैं।

पाक हो जाने के पश्चात् जो जम्बीर रस से मर्दन कर सात पुटें देने को कहा है वहां भी उक्त १ भाग पारद और २ भाग गन्धक से की गई कज्जली समभाग के साथ प्रतिवार घोटना उत्तम है।

इस योग का नाम कहीं कहीं 'वारिताण्डव' लिखा है। भैषज्यरत्नावली में 'चित्रविभाण्डक' नाम से यह योग है।

अनुपान में लवण के स्थान पर रसरत्नाकर और भैषज्यरत्नावली में लशुन (लहसन) पाठ है ॥ १—५ ॥

भगन्दरहो रसः—

सूतस्य द्विगुणेन शुद्धबलिना कन्यापयोभिस्त्र्यहम् ।
शुद्धं ताम्रमयः समस्ततुलितं पात्रं निधायोपरि ॥ ६ ॥

स्वेद्यं यामयुगञ्च भस्म-पिठरे निम्बूजलैः सप्तधा।
साकं तत् पुटयेद् भगन्दरहरो गुञ्जोन्मितः स्यादिति॥ ७॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक दो भाग, दोनों की कज्जली करे। फिर कज्जली के बराबर अर्थात् ३ भाग ताम्रभस्म तथा ३ भाग लौहभस्म मिलावे। इन सब को घोट गोला बना एक हाण्डी में रख ऊपर शराव दे सन्धिलेप करे। फिर हांडी को उपलों की राख से भर, दो पहर तक स्वेदन करे। पश्चात् नींबू के रस से प्रति बार घोट २ कर सात पुट दे। इसे पीसकर शीशी में रखे। इस भगन्दरहर रस को एक रत्ति देने से भगन्दर नष्ट होता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—½ रत्ती से १ रत्ती तक। यदि 'ताम्रमयः' के स्थान पर 'ताम्रमयं' पाठ हो तो यह पूर्वोक्त रविताण्डव रस ही हो जाता है॥ ६—७॥

इति भगन्दर-चिकित्सा।

अथोपदंशचिकित्सा।

उपदंशे साधारणविधिः—

स्निग्धस्विन्नशरीरस्य ध्वजमध्ये शिराव्यधः।
जलौकःपातनं वा स्यादूर्ध्वाधः शोधनं तथा॥ १॥
सद्यो निर्जितदोषस्य रुक्शोथावुपशाम्यतः।
पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि सः॥ २॥

उपदंश के रोगी को पहले स्नेहन तथा स्वेदन करा लें फिर दुष्ट रक्त निकालने के लिये लिङ्ग के मध्य की शिरा बींधनी चाहिये। अथवा जोंक लगाकर दुष्ट रक्त निकलवा देना चाहिये। तथा वमन और विरचन से देह का शोधन कर लेना चाहिये। इसप्रकार दोषों को जीत लेने से उपदंश-रोगी की पीड़ा और सूजन शीघ्र कम हो जाती है। लिंग पर उत्पन्न हुए २

व्रणों को पकने से बचाना चाहिये। क्योंकि उससे लिंग का क्षय हो जाता है ॥ १—२ ॥

धावनकषायः—

त्रिफलायाः कषायेण भृङ्गराजरसेन वा ।
व्रणप्रक्षालनं कुर्य्यादुपदंशप्रशान्तये ॥ ३ ॥

उपदंश की शान्ति के लिये व्रणों को त्रिफला के क्वाथ से अथवा भांगरे के स्वरस से धोना चाहिये ॥ ३ ॥

लेपः—

दहेत् कटाहे त्रिफलां समांशां मधुसंयुताम् ।
उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ ४ ॥

लोहे की कड़ाही में हरड़,बहेड़ा,आंवला;समभाग लेकर जलावे। कोयला बन जाने पर पीस ले। इसे शहद में मिलाकर उपदंश के व्रणों पर लेप करे। तो शीघ्र ही व्रण भर जाते हैं ॥ ४ ॥

भैरवरसः—

शुद्धसूतं ग्रहीतव्यं रक्तिकाशतमात्रकम् ।
त्रिगुणां शर्करां लौहे निम्बदण्डेन मर्दयेत् ॥ ५ ॥
याममात्रं ततो दद्यात् श्वेतं खदिरचूर्णकम् ।
सूततुल्यं ततः कुर्य्यान्मर्दनात् कज्जलोपमम् ॥ ६ ॥
विंशतिर्वटिकाः कार्य्याः स्थाप्या गोधूमचूर्णके ।
निःशेषनिःसृता ज्ञात्वा पिडकास्ताः कलेवरे ॥ ७ ॥
भैरवं देवमभ्यर्च्य बलिं तस्मै प्रदाय च ।
विधाय योगिनीपूजां दुर्गामभ्यर्च्य यत्नतः ॥ ८ ॥
वटिकास्ताः प्रयोक्तव्या भिषजा जानता क्रियाम् ।
दिवसत्रितयं दद्यात् तिस्रस्तिस्रो विजानता ॥ ९ ॥

चतुर्थाच्च समारभ्य एकामेकां प्रयोजयेत् ।
एवं चतुर्दशादिने नीरोगो जायते नरः ॥ १० ॥
पथ्यं शर्करया सार्द्धमुष्णान्नं घृतगन्धि च ।
कुर्य्यात्साकाङ्क्षमुत्थानं सकृद्भोजनमिष्यते ॥ ११ ॥
जलपानं जलस्पर्शं न कदाचन कारयेत् ।
दुःसहायान्तु तृष्णायामिक्षुदाडिमकादिकम् ॥ १२ ॥
शौचकार्य्येऽप्युष्णवारि वाससा प्रोञ्छनं द्रुतम् ।
वातातपाग्निसम्पर्कं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ १३ ॥
मेघागमे वा शीते वा कार्य्यमेतद्विजानता ।
मुखरोगे तु सञ्जाते मुखरोगहरी क्रिया ॥ १४ ॥
श्रमाध्वभाराध्ययनस्वप्नालस्यानि वर्जयेत् ।
ताम्बूलं भक्षयेन्नित्यं कर्पूरादिसुवासितम् ॥ १५ ॥
क्रिया श्लेष्महरी युक्ता वातपित्ताविरोधिनी ।
लवणं वर्जयेदम्लं दिवानिद्रां तथैव च ॥ १६ ॥
रात्रौ जागरणञ्चैव स्त्रीमुखालोकनं तथा ।
सप्ताहद्वयमुत्क्रम्य स्नानमुष्णाम्बुना चरेत् ॥ १७ ॥
पथ्यं कुर्य्याद्धितमितं जाङ्गलानां रसादिभिः ।
व्यायामाद्यं वर्जनीयं यावन्न प्रकृतिर्भवेत् ॥ १८ ॥
एवं कृतविधानस्तु यः करोत्येतदौषधम् ।
स एव पापरोगस्य पारं याति जितेन्द्रियः ॥ १९ ॥
पिडका विलयं यान्ति बलं तेजश्च वर्द्धते ।
रुजा च प्रशमं याति ग्रन्थिशोथश्च शाम्यति ॥ २० ॥

अस्थ्नां भवति दार्ढ्यश्च आमवातश्च शाम्यति ।
भैरवेन समाख्यातो रसोऽयं भैरवाख्यकः ॥ २१ ॥

विशुद्ध पारा एक सौ रत्ति ले, तीन सौ रत्ति गन्ने की बनी शुद्ध देसी खांड ले । दोनों को लोहे की कड़ाही में या लोहे के खरल में डालकर नीम के डण्डे से घोटे । एक पहर तक घोटने के पीछे जब पारे के कण दिखाई न दें तब उसमें सफेद कत्थे का चूर्ण एक सौ रत्ति मिलावे । इसे फिर घोट २ कर काजल के समान करले । अब इसकी बीस गोलियां बना ले और उन्हें गेहूं के आटे में रख दे । जब उपदंश रोगी के देह पर सम्पूर्ण फुंसियां निकल आई हों तब उसे प्रयोग करावें । भैरव की पूजा करके और बलि देकर तथा योगिनी एवं दुर्गा की पूजा करके क्रियाकुशल वैद्य इन गोलियों को प्रयुक्त करावें । तीन दिन तक तीन-तीन गोली प्रतिदिन देनी चाहियें अर्थात् प्रातः, दोपहर और सायंकाल प्रतिदिन एक२ गोली पहले तीन दिन तक दे। चौथे दिन से लेकर चौदहवें दिन तक एक२ गोली ही प्रतिदिन खावे । इसप्रकार चौदह दिन में मनुष्य रोगरहित हो जाता है । पथ्य में गरम २ अन्न अल्प घी मिला हुआ खांड के साथ खावे। भोजन इतना करे जो अभी खाने की इच्छा (भूख) रह जाये अर्थात् पेट भर के न करे । ऐसा भोजन भी दिन में एक बार ही करना चाहिये । जल पीना तथा जल को छूना तक भी सर्वथा त्याग देवे । यदि प्यास न सही जाय तो अनार या गन्ने आदि का रस पीवे। शौच-कार्य में भी गरम जल से ही हाथ गुदा आदि धोवे और तुरन्त ही कपड़े से पोंछ लेवे । वायु, धूप, तथा अग्नि का सेवन न करे अर्थात् रोगी सुरक्षित कमरे में रहे और पर्याप्त वस्त्र पहिरे। विद्वान् वैद्य को चाहिये कि इस का प्रयोग तब ही करावे जब मेघ छाये रहें (वर्षा ऋतु में) या शीत ऋतु हो । यदि इस के सेवन से मुख में मसूड़े आदि सूज जांय तो मुखरोगनाशक उपाय करे । परिश्रम, मार्ग चलना, भार उठाना, पढ़ना, सोना, आलस्य; इन सब को छोड़ देवे । कर्पूर आदि सुगन्धि द्रव्यों से सुगन्धित पान नित्य चबावे । वात-पित्त के जो विरुद्ध न हो (वात पित्त को न बढ़ाने वाली) ऐसी श्लेष्मनाशक क्रिया करनी चाहिये । इसमें नमक, खटाई, दिन में सोना, रात को जागना, स्त्री के मुख को देखना अर्थात् मैथुन आदि

छोड़ देवे। इसीप्रकार पथ्य से रहते हुए जब दो सप्ताह बीत जांय तब गरम जल से स्नान करे। जांगल जीवों के मांस के रस आदि से हितकर और मात्रा में पथ्यभोजन करे। व्यायाम आदि तबतक न करे जबतक पूर्व के समान पूर्ण स्वस्थ न होजाय। इसप्रकार विधि से जो औषध का सेवन करता है, वह ही जितेन्द्रिय पुरुष इस पापरोग से पार होता है। उसकी सब उपदंशपिड़कायें नष्ट हो जाती हैं, बल और तेज बढ़ता है, पीड़ा शान्त हो जाती हैं, ग्रन्थिशोथ नाश होता है, हड्डियें दृढ़ हो जाती हैं, आमवातरोग शान्त होता है। यह रस भैरव ने कहा है, इसीकारण इस का नाम भैरव रस है।

विशेषवचन—इस रस को इतनी बड़ी मात्रा में आजकल प्रयुक्त कराने का साहस न करना चाहिये। इसकी आधुनिक मात्रा—१ रत्ती से २½ रत्ती तक है। गोलियां इसी मात्रा में बनानी चाहियें। साधारणतः अच्छा तो यह है कि जब दिन में तीन वार देनी हो तो गोली का मान एक रत्ती हो और जब दिन में एक वार ही देनी हो तो २½ रत्ती पर्यन्त की मात्रा देसकते हैं। यदि प्रधान मात्रा (२½ रत्ती) में ही औषध का सेवन आवश्यक हो तो सौ के स्थान पर दस रत्ती और तीन सौ के स्थान पर तीस रत्ती लेकर इस योग को बनावें। इस प्रकार औषध ४० रत्ती होगी और इसकी अढाई-अढाई रत्ती की २० गोलियां बन जांयगी। ज्यों ही मुंह आने लगे अर्थात् मसूड़े आदि में शोथ हो तभी औषध को बन्द करा देना चाहिये। यदि आवश्यकता अनुभव हो तो कुछ दिन ठहर कर पुनः इसका प्रयोग करा सकते हैं। सहज उपदंश में भी यह औषध अतीव लाभकर है। बच्चे की उम्र के अनुसार इस औषध की मात्रा निर्धारण करके प्रयोग करायें। ६ महीने वा एक वर्ष के बच्चे को पूर्व तीन दिन तक ⅛ रत्ती मात्रा में दिन में तीन वार दे सकते हैं और उसके बाद रात को सोते समय दिन में एक वार देना चाहिये।

पारद उपदंश की व्याधिविपरीत औषध है और इसके कीटाणुओं को नष्ट करने में अप्रतिम है।

उपदंशाधिकार के योगों में शुद्ध पारद कहने से शुद्ध पारा ही लिया

जाता है। अनुक्त गन्धक नहीं डाली जाती। इसे उस नियम का अपवाद समझें। वैसे तो कज्जली और रससिन्दूर आदि भी उपदंश के नाशक हैं परन्तु इसप्रकार के गन्धकयुक्त वा गन्धकघटित योग की अपेक्षा कच्चा शुद्ध पारा वा सुधानिधि (रसपुष्प) और रसकर्पूर आदि शीघ्र लाभ करते हैं। अतः पारद कहने से केवल पारा ही लेना अभीष्ट है। जहां रसपुष्प का विधान हो वहां रसपुष्प लें। रसकपूर (Mercuric Chloride) तीव्र विष है। इसे सावधानी से अत्यल्प मात्रा में $\frac{१}{६४}$ से $\frac{१}{३२}$ रत्ती तक प्रयोग करावें ॥ ५—२१ ॥

रसशेखरः—

पारदश्चाहिफेनश्च द्विर्द्वादशकरक्तिकम् ।
मर्दयेन्निम्बकाष्ठेनायःपात्रे तुलसीद्रवैः ॥ २२ ॥
तस्मिन् सम्मूर्च्छिते दद्याद् दरदं रससम्मितम् ।
मर्दयेच्च तुलस्यैव ततश्चैतानि दापयेत् ॥ २३ ॥
जातीकोषफले चैव पारसीययमानिकाम् ।
आकारकरभश्चैव द्वात्रिंशद्रक्तिकाम्प्रति ॥ २४ ॥
मर्दयेत् तुलसीतोयैरेतेषां द्विगुणं शुभम् ।
दद्यात् खादिरसत्त्वञ्च वटिका चणकप्रभा ॥ २५ ॥
सायं द्वे द्वे प्रयोज्ये च लवणाम्लञ्च वर्जयेत् ।
गलत्कुष्ठं तथा स्फोटान् दुष्टान् गर्दभिकामपि ॥ २६ ॥
ये स्युर्व्रणा नृणामन्ये उपदंशपुरःसराः ।
तान् सर्वान् नाशयत्याशु सिद्धोऽयं रसशेखरः ॥ २७ ॥

शुद्ध पारा चौबीस रत्ति, शुद्ध अफ़ीम चौबीस रत्ति; दोनों को लोहे के खरल में डाल, तुलसी का रस देकर नीम के डंडे से घोटे। जब घुटते २ संमूर्च्छित हो जाये अर्थात् पारद के कण दिखाई न दें तब शुद्ध शिंगरफ़ चौबीस रत्ति डाले और पुनः तुलसी का रस डाल कर घोटे। अच्छीप्रकार मिल जाने पर

जावित्री का चूर्ण बत्तीस रत्ति, जायफल का चूर्ण बत्तीस रत्ति, खुरासानी अजवायन का चूर्ण बत्तीस रत्ति तथा अकरकरा का चूर्ण बत्तीस रत्ति और सब चूर्ण से दुगुना श्वेत कत्थे का चूर्ण मिलाकर तुलसी का रस डालकर घोटे और चने के समान (२ रत्ती की) गोली बना ले। इसे रसशेखर कहते हैं। इस की दो गोलियां प्रतिदिन सायंकाल सेवन करें। नमक, खटाई खाना सर्वथा छोड़ देवे। इसके सेवन से गलत्कुष्ठ, दुष्ट फोड़े, गर्दभिका और उपदंश से होने वाले अन्य व्रण सब नष्ट हो जाते हैं।

विशेषवचन—अफीम के योग से पारा शीघ्र ही सारे देह में क्रामण करता है—व्याप्त होजाता है। अत एव शीघ्र लाभ होता है।

पारे के सेवन काल में ककाराष्टक आदि का त्याग अत्यावश्यक है। अन्यथा कोई लाभ न होगा।

कहीं कहीं 'द्विद्वादशकरक्तिकम्' ऐसा पाठ है। तब पारा २ रत्ती, अफ़ीम १२ रत्ती, शुद्ध शिंगरफ़ २ रत्ती और शेष द्रव्य बत्तीस-बत्तीस रत्ती लेकर योग बनाया जाता है॥ २२—२७॥

प्रक्रियान्तरम्—

योगवाहिरसान् सर्वान् सर्वरोगोदितानपि।
उपदंशे प्रयुञ्जीत तथा शोणितशोधनम्॥ २८॥

सब रोगों में प्रयोग के लिये कहे गये रामवाण रस वारिशोषणरस आदि सब ही योगवाही रसों को उपदंश रोग में प्रयुक्त करा सकते हैं। इसमें रक्तशोधक क्वाथ चूर्ण आदियों का उपयोग आवश्यक है॥ २८॥

इति उपदंश-चिकित्सा॥

अथ कुष्ठरोगचिकित्सा ।

कन्याकोटिप्रदानेन गङ्गायां पितृतर्पणे ।
विश्वेश्वरपुरीवासे तत्फलं कुष्ठनाशने ॥ १ ॥
गवां कोटिप्रदानेन चाश्वमेधशतेन च ।
वृषोत्सर्गे च यत्पुण्यं तत्पुण्यं कुष्ठनाशने ॥ २ ॥

करोड़ कन्यादान करने और गङ्गा में पितृतर्पण करने से तथा विश्वेश्वर-पुरी अर्थात् काशी के निवास से जो फल होता है। वही फल कुष्ठरोग को नाश करने से वैद्य को होता है।

विशेषवचन—शास्त्रों में कन्यादान का फल निम्न कहा है—

'कन्यां ये तु प्रयच्छन्ति यथाशक्त्या स्वलङ्कृताम् ।
ब्रह्मदेयां द्विजश्रेष्ठ ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥
कन्यादानन्तु सर्वेषां दानानामुत्तमं स्मृतम् ॥'

तथा—'कन्यां ये तु प्रयच्छन्ति यथाशक्त्या स्वलङ्कृताम् ।
विवाहकाले सम्प्राप्ते यथोक्ते सदृशे वरे ॥
क्रमात् क्रमं क्रतुशतमनुपूर्वं लभन्ति ते ॥
श्रुत्वा कन्याप्रदानन्तु पितरः प्रपितामहाः ।
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥'

अर्थात् योग्य वर को कन्यादान करने वाले माता पिता आदि ब्रह्मलोक को जाते हैं और सौ यज्ञ के फल को पाते हैं। कन्यादान सर्वोत्तम दान है। विशेष विस्तार अग्निपुराण में देखें।

गङ्गा में पितृतर्पण के विषय में कहा है—

'यज्ञो दानं तपो जप्यं श्राद्धञ्च सुरपूजनम् ।
गङ्गायां यत्कृतं सर्वं कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥' स्कन्दपुराण ।
'सुलभं सकलं पुण्यं यज्ञदानादिजं फलम् ।
गङ्गातोयैश्च सतिलैर्दुर्लभं पितृतर्पणम् ॥

गयाश्राद्धं कृतं तेन उत्सृष्टस्तु वृषस्तथा।
येन तद्वीचिसंसिक्ते तीरे श्राद्धमकारि च॥' भविष्यपुराण

अभिप्राय यह है कि अन्यत्र किये गये श्राद्ध वा पितृतर्पण का जो पुण्य है उससे करोड़ों गुणा अधिक गङ्गा के किनारे श्राद्ध का पुण्य है।

विश्वेश्वरपुरी काशी का नाम है। वहां विश्वेश्वरमहादेव का मन्दिर है। विश्वेश्वर के दर्शन का फल काशीखण्ड में कहा है—

'सर्वतीर्थेषु सस्नौ सः सर्वयात्रां व्यधात्स च।
मणिकर्ण्यान्तु यः स्नातो यो विश्वेशं निरैक्षत॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं पुनः पुनः।
द्रष्टव्यो विश्वेश्वरो नित्यं स्नातव्या मणिकर्णिका॥'

अर्थात् सब तीर्थों के स्नान का जो पुण्य है वह शिवपुरी-काशी में रहते हुए विश्वेश्वर के दर्शन से है।

यदि वैद्य रोगी के कुष्ठ रोग को हटा दे तो उसे भी ये सब पुण्य स्वतः प्राप्त होते हैं॥ १॥

करोड़ गौदान करने से, सैंकड़ों अश्वमेध करने से, गोवंश की वृद्धि के लिये सांड को छोड़ने से जो पुण्य होता है वही पुण्य कुष्ठरोग को नाश करने से होता है।

विशेषवचन—श्राद्ध के समय वृषोत्सर्ग का विधान शास्त्रों में है॥ २॥

गलत्कुष्ठारि रसः—

रसो बलिस्ताम्रमयः पुरोऽग्निः शिलाजतु स्याद्विषतिन्दुकश्च[1]।
[2]वरा च तुल्यं गगनञ्च सर्वैः करञ्जबीजं सचतुष्टयञ्च॥ ३॥
सम्मर्द्य [3]सर्वं मधुना घृतेन घृतस्य पात्रे निहितं प्रयत्नात्।

---

१ 'विषतिन्दुकोग्रे' पा०।

२ 'सर्वं च तुल्यं गगनं करञ्जबीजं तथा भागचतुष्टयञ्च' पा०।

३ 'गाढं मधुना घृतेन वल्लद्वयं चास्य निहन्त्यवश्यम्। कुष्ठं किलासमपि वातरक्तं जलोदरं वाथ विवृद्धमूलम्। विशीर्णकर्णाङ्गुलिनासिकोऽपि भवेत्प्रसादात्स्मरतुल्य-मूर्त्तिः॥' पा०।

कर्षं भजेत् प्रत्यहमस्य पथ्यं शाल्योदनं दुग्धमधुत्रयञ्च ॥ ४ ॥
विशीर्णकर्णाङ्गुलिनासिकोऽपि भवेदनेन स्मरतुल्यमूर्त्तिः ।
दारापरित्याग इह प्रदिष्टो जलौदनं तत्र निबद्धमूले ॥ ५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक १ तोला, ताम्रभस्म, लौहभस्म, शुद्ध गुग्गुल, चीता, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध कुचला, हरड़, बहेड़ा, आंवला; प्रत्येक का चूर्ण एक २ तोला, अभ्रकभस्म ग्यारह तोले, करञ्ज के बीज का चूर्ण चार तोले लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर घी और शहद से खरल कर घी से चिकने हुऐ पात्र में रखें। प्रतिदिन एक कर्ष भर सेवन करे। पथ्य में शाली का भात दूध और मधुत्रय (घी शहद और खांड) खावे। इसके सेवन से जिस कुष्ठरोगी के कान अंगुलियें तथा नाक भी झड़ गई हो वह भी कामदेव के समान सुन्दर शरीर वाला होजाता है। इस के सेवन के समय स्त्रीभोग त्याग देवे। यदि कुष्ठ बद्धमूल अर्थात् बहुत ही गहरी जड़ पकड़ चुका हो तो जलौदन (ओदन पका कर तत्काल में जल में डाल दें और कुछ काल बाद ओदन पृथक् करलें यह जलौदन वा वारिभक्त कहता है) ही खावे।

विशेषवचन—मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक।

रसेन्द्रचिन्तामणि भैषज्यरत्नावली प्रभृति में इसका पाठ भिन्न है। वह पाठ टिप्पणी में दे दिया गया है। उसके अनुसार योग इस प्रकार होता है—

पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, लोहभस्म, गुग्गुल, चीता, शिलाजीत, कुचला, वच; प्रत्येक १ तोला, अभ्रकभस्म, करञ्जबीज; प्रत्येक ४ तोला; इन्हें मधु और घी से एकत्र मर्दन कर ले। व्यवहार भी इसी योग का है ॥३-५॥

उदयभास्करः—

गन्धकेन मृतं ताम्रं दशभागं समुद्धरेत् ।
ऊषणं पञ्चभागं स्यादमृतञ्च द्विभागिकम् ॥ ६ ॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वं रक्तिकैकप्रमाणतः ।
दातव्यं कुष्ठिने सम्यगनुपानस्य योगतः ॥ ७ ॥

गलिते स्फुटिते चैव विपुले[1] मण्डले तथा।
विचर्चिकादद्रुपामा-कुष्ठरोग[2]प्रशान्तये ॥ ८ ॥

गन्धक से मारा हुआ ताम्र (ताम्रभस्म) दश भाग, काली मिरचों का चूर्ण पांच भाग, शुद्ध विष दो भाग लें। इन सब को महीन चूर्ण करलें। इस चूर्ण की एक रत्ति की मात्रा उचित अनुपान से कुष्ठरोगी को दे। इससे गला और फूटा हुआ कुष्ठ, बहुत स्थान पर व्याप्त मण्डल कुष्ठ, विचर्चिका, दाद, पामा; ये सब कुष्ठ नष्ट होते हैं।

विशेषवचन—निर्बल व्यक्ति को आधी रत्ती मात्रा में देना ही पर्याप्त है ॥ ६—८ ॥

तालकेश्वरो रसः—

धात्रीटङ्कणतालानां दशभागं समुद्धरेत्।
धात्र्या रसैर्मर्दयित्वा शिखरीमूलवारिणा।
सर्वकुष्ठहरः सेव्यः सर्वदा भोजनप्रियः ॥ ९ ॥

आंवले का चूर्ण, सुहागे की खील, शुद्ध हड़ताल; प्रत्येक द्रव्य दश २ तोले लेकर आंवले के रस वा क्वाथ से तथा अपामार्ग की जड़ के क्वाथ से घोट कर गोली बना रखे। यह रस सब प्रकार के कुष्ठों को दूर करता है और भूख बढ़ाता है।

विशेषवचन—मात्रा—१ रत्ती ॥ ९ ॥

ब्रह्मरसः—

भागैकं मूर्च्छितं सूतं गन्धकं त्वग्निवागुजी।
चूर्णन्तु ब्रह्मबीजानां प्रतिद्वादशभागिकम् ॥ १० ॥
त्रिंशद्भागं गुडस्यापि क्षौद्रेण गुडिका कृता।
अयं ब्रह्मरसो नाम्ना ब्रह्महत्याविनाशनः ॥ ११ ॥

---

१ 'विपूच्यां' पा०। २ 'सर्वकुष्ठ०' पा०।

द्विनिष्कं भक्षणाद्धन्ति प्रसुप्तिकुष्ठमण्डलम् ।
पातालगरुडीमूलं जलैः पिष्ट्वा पिबेदनु ॥ १२ ॥

शुद्ध मूर्च्छित पारा (रससिन्दूर) एक तोला, शुद्ध गन्धक, चीता, काली जीरी, ढाक के बीज; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण बारह २ तोले, गुड तीस तोले ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिला कर शहद से घोट कर गोली बना ले। यह ब्रह्महत्या अर्थात् ब्रह्महत्याजन्य कुष्ठरोग को नाश करता है। इसे दो निष्क भर खाने से प्रसुप्ति कुष्ठ तथा मण्डल नाश होते हैं। इसे खाने के पीछे पातालगरुड़ी की जड़ को जल से पीस कर पीवे।

विशेषवचन—"ब्रह्मबीज" का अर्थ कई टीकाकारों ने ब्रह्मयष्टि के बीज भी किया है। परन्तु ढाक के बीज ही कुष्ठरोग को नाश करने में अनुभूत तथा अव्यर्थ हैं। पातालगरुड़ी एक लता है जो पहाड़ों में प्रायः मिलती है। कई टीकाकारों ने इस का अर्थ कड़वी तुम्बी की जड़ किया है। दोनों ही कुष्ठ नाश करती हैं।

आधुनिक मात्रा–४ रत्ती से १६ रत्ती तक। पातालगरुड़ी लता जहां रक्त-दोष को हटाती है वहां औषध से उत्पन्न तीव्र दाह को भी शान्त करती है॥ १०—१२ ॥

चन्द्राननो रसः—

सूतव्योमाग्नयस्तुल्यास्त्रिभागाः[1] गन्धकस्य च ।
काकोडुम्बरिकाक्षीरैः सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ १३ ॥
माषमात्रां गुटीं कृत्वा कुष्ठरोगे प्रयोजयेत् ।
देहशुद्धिं पुरा कृत्वा सर्वकुष्ठानि नाशयेत् ।
एष चन्द्राननो नाम साक्षात् श्रीभैरवोदितः[2] ॥ १४ ॥

---

१ 'सूतव्योषाग्नयस्तुल्याः' पा० ।

२ 'अस्यानन्तरं हन्ति कुष्ठं क्षयं श्वासं पाण्डुरोगं हलीमकम् । अर्शांस्यजीर्ण-शूलानि सन्निपातं सुदारुणम् ।' इत्यधिकः पाठः रसेन्द्रचिन्तामणौ ।

शुद्ध पारा, अभ्रकभस्म, चीता चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला और शुद्ध गन्धक तीन तोला लेवें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर काकोदुम्बरिका (कटूमर) के दूध से घोटें। इस की एक माषा (६ रत्ती) भर की गोली बनावें। पहले वमन विरेचन आदि द्वारा देहशुद्धि करके फिर इसे कुष्ठरोग में प्रयोग करावें। यह सब कुष्ठों को दूर करता है। यह चन्द्रानन रस साक्षात् भैरव जी ने कहा है।

विशेषवचन—काकोदुम्बरिका का पहाड़ी नाम 'कैम्बरी' और 'फीगु' भी है। इस के पेड़ के फल पत्ते तने तथा शाखा तोड़ने से दूध निकलता है। उसी दूध से दवाई घोटना चाहिये। यह कुष्ठ-नाश करने में उत्तम माना है।

इस रस को आजकल पहिले ३रत्ती मात्रा में प्रयुक्त कराते हैं ॥१३—१४॥

कुष्ठकालानलो रसः—

रसं बलिष्टङ्कणताम्रलौहं भस्मीकृतं मागधिकासमेतम्।
पञ्चाङ्गनिम्बेन फलत्रिकेण विभावितं राजतरोस्तथैव।
नियोजयेद्वल्लकयुग्ममानं कुष्ठेषु सर्वेषु च रोगसङ्घे॥ १५॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, ताम्रभस्म, लौहभस्म, पिप्पली का चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर नीम के पंचाङ्ग (अर्थात् पत्ता फूल फल छाल और जड़) के क्वाथ से, त्रिफला के क्वाथ से तथा अमलतास के क्वाथ से भावना (सात-सात) देकर रखें। इसे तीन रत्ती मात्रा में प्रयोग करावें। इससे सब कुष्ठ तथा अन्य रोगसमूह नष्ट होते हैं॥ १५॥

वज्रवटी—

शुद्धसूताग्निमरिचं सूताद् द्विगुणगन्धकम्।
काकोडुम्बरिकाक्षीरैर्दिनं मर्द्यं प्रयत्नतः॥ १६॥
वराव्योपकषायेण वटीश्चास्य समाचरेत्।
लिह्याद् वज्रवटी ह्येषा पामारोगविनाशिनी॥ १७॥

शुद्ध पारा, चीता का चूर्ण, मिरच का चूर्ण; प्रत्येक एक २ तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला लें। पहले पारा गन्धक को घोट कर कज्जली बनायें फिर अन्य सब द्रव्यों को मिला खरल कर काकोदुम्बरिका (कठूमर) के दूध से एक दिन घोटें। फिर त्रिकुटा और त्रिफला के काढ़े से घोटकर इसकी वटी बना लें। इस वज्रवटी को चाटने से पामारोग नष्ट होता है।

विशेषवचन—मात्रा--२ रत्ती से ४ रत्ती तक। एक गोली को पीसकर शहद से चाटना चाहिये। बहुधा वैद्य कठूमर के दूध से ही गोली बना लेते हैं और त्रिकटु और त्रिफला का क्वाथ अनुपानार्थ देते हैं ॥ १६--१७ ॥

चन्द्रकान्ति रसः--

पलत्रयं मृतं ताम्रं सूतमेकं द्विगन्धकम् ।
त्रिकटुत्रिफलाचूर्णं प्रत्येकञ्च पलं पलम् ॥ १८ ॥
निर्गुण्ड्याश्चार्द्रकद्रावैर्वह्निद्रावैर्विमर्दयेत् ।
दिनैकं तद्विशोष्याथ तुषाग्नौ स्वेदयेद्दिनम् ॥ १९ ॥
समुद्धृत्य विचूर्ण्याथ वागुजीतैलमर्दितम् ।
त्रिदिनं भावयेत् तेन निष्कैकं भक्षयेत् सदा ॥ २० ॥
चन्द्रकान्तिरसो नाम्ना कुष्ठं हन्ति न संशयः ।
तैलं करञ्जबीजोत्थं वह्निगन्धकसैन्धवैः ।
अनुपानं प्रकर्त्तव्यं कल्कं वा वागुजीभवम् ॥ २१ ॥

ताम्रभस्म तीन पल, शुद्ध पारा एक पल, शुद्ध गन्धक दो पल, त्रिकटु त्रिफला; इन का प्रत्येक द्रव्य एक २ पल ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिला दे। इसे संभालू का स्वरस, अदरक का रस, चीते का क्वाथ; इन से एक २ दिन घोटकर धूप में सुखा ले और एक दिन तुष की आग में स्वेदन करे। इसे निकाल चूर्ण कर वाकुची के तेल से तीन दिन मर्दन करे और भावना देवे। इस चन्द्रकान्ति रस को एक निष्क मात्रा में खावे तो कुष्ठ को नाश करता है-इस में संशय नहीं। करञ्ज के बीजों का

तेल, चीता, सेन्धानमक और शुद्ध गन्धक; इन सब को समभाग में ले उचित मात्रा (आधुनिकमात्रा ४ रत्ती से ८ रत्ती तक) में अनुपान करना चाहिये। अथवा केवल वाकुची (अन्तःप्रयोग में कालीजीरी) के कल्क का (वर्तमानकालोपयोगी १ मासा मात्रा में) ही अनुपान करे।

विशेषवचन—चन्द्रकान्ति रस की आधुनिक मात्रा ½ रत्ती से १ रत्ती तक है॥ १८—२१॥

सङ्कोचरसः—

मृतताम्राभ्रकं तुल्यं तयोः सूतं चतुर्गुणम्।
शुद्धं तन्मर्दयेत् खल्वे गोलकं कारयेत् ततः॥ २२॥
त्रिभिस्तुल्यं शुद्धगन्धं लौहपात्रे क्षणं पचेत्।
तन्मध्ये गोलकं पाच्यं यावज्जीर्णन्तु गन्धकम्॥ २३॥
एतन्मृद्वग्निना तावत् समुद्धृत्य विचूर्णयेत्।
गुग्गुलुः निम्बपञ्चाङ्गं त्रिफला चामृता विषम्॥ २४॥
पटोलं खादिरं सारं व्याधिघातं समं समम्।
चूर्णितं मधुना लेह्यं निष्कमौडुम्बरापहम्।
रसः सङ्कोचनामाऽयं कुष्ठे[1] परमदुर्लभः॥ २५॥

ताम्रभस्म एक तोला, अभ्रकभस्म एक तोला, शुद्ध पारा आठ तोला; इन्हें एकत्र घोटकर गोला बनावे। फिर एक लोहे की कड़ाही में शुद्ध गन्धक दस तोला डाले और क्षण भर गरम करे। जब पिघल जाय तब उस में पूर्वोक्त गोले को डालकर अत्यन्त मन्द २ अग्नि से तबतक पकावे जब तक सारी गन्धक जीर्ण हो जाय। पश्चात् निकाल कर पीसे। और उस में शुद्ध गुग्गुल, नीम का पंचाङ्ग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, गिलोय, शुद्ध विष, पटोलपत्र, कत्था, अमलतास का गूदा; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला डाल कर घोट ले। इस में से एक निष्क भर मात्रा में लेकर मधु के साथ चाटे तो उडुम्बर नामक कुष्ठ दूर होता है। यह सङ्कोचरस कुष्ठ के लिये परम दुर्लभ है।

---

१ 'श्रेष्ठः' पा०।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक।

इसप्रकार के सङ्कोचरसों में पारे की गन्धक के साथ कज्जली नहीं की जाती। अन्य उक्त द्रव्यों के साथ पारे को घोट कर उस में पारे के मिलजाने पर दबा कर गोलक बना लिया जाता है। पश्चात् उसे गन्धक वा स्नेहयुक्त गन्धक में अति मन्द अग्नि पर पका लिया जाता है। जब गन्धक सम्पूर्ण जीर्ण होती है नीचे उतार लेते हैं ॥ २२—२५ ॥

अमृताङ्कुरलौहम्—

हुताशमुखसंशुद्धं पलमेकं रसस्य वै।
पलं लौहस्य ताम्रस्य पलं भल्लातकस्य च ॥ २६ ॥
अभ्रकस्य पलश्चैकं[1] गन्धकस्य चतुःपलम्।
हरीतकीविभीतक्योश्चूर्णं कर्षद्वयं द्वयोः ॥ २७ ॥
अष्टमाषाधिकं तत्र धात्र्याः पाणितलानि षट्।
घृतश्चाष्टगुणं[2] लौहाद् द्वात्रिंशत् त्रिफलाजलम् ॥ २८ ॥
एकीकृत्य पचेत् पात्रे[3] लौहे च विधिपूर्वकम्।
पाकमेतस्य जानीयात् शास्त्रज्ञो लौहपाकवत् ॥ २९ ॥
भक्षयेत्[4] प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकः।
रक्तिकादिक्रमेणैव घृतभ्रामरमर्दितम् ॥ ३० ॥
लौहे च लौहदण्डेन कुर्य्यादेतद् रसायनम्।
अनुपानञ्च कुर्वीत नारिकेलजलं पयः[5] ॥ ३१ ॥

---

१ 'गन्धकस्य पलश्चैकमभ्रकस्य च गुग्गुलोः' र.र., भै. र. पाठः।
२ 'घृतं द्व्यष्टगुणं' भै. र. पाठः।
३ 'ताम्रे लौहे वा' र. र. पाठः।
४ 'विबुद्धः' पा०।
५ 'परम्' पा०।

सर्वकुष्ठहरं श्रेष्ठं वलीपलितनाशनम्[1] ।
अग्निदीप्तिकरं हृद्यं कान्त्यायुर्बलवर्द्धनम् ॥ ३२ ॥
वर्ज्यं हि शाकाम्लमपि स्त्रियश्च सेव्यो रसो जाङ्गललावकानाम्[2] ।
शाल्योदनं षष्टिकमाज्यमुद्गं क्षौद्रं गुडं क्षीरमिह[3] क्रियायाम् ॥ ३३ ॥

रससिन्दूर एक पल, लौहभस्म एक पल, ताम्रभस्म एक पल, शुद्ध भिलावा एक पल, अभ्रकभस्म एक पल, शुद्ध गन्धक चार पल, हरड़ का चूर्ण दो कर्ष, बहेड़े का चूर्ण दो कर्ष, आंवले का चूर्ण छः कर्ष एक कोल प्रमाण ले। त्रिफला का क्वाथ चार शराव (मिला हुआ त्रिफला सोलह पल ले, उस में सोलह शराव जल डालकर पकावे, चार शराव शेष रहने पर उतार ले) तथा घी आठ पल ले। सब द्रव्यों को एकत्र लोहे की कड़ाही में यथाविधि पकावे। शास्त्रज्ञ पुरुष लौहपाक के सदृश ही इसका पाक करे। ठीक पाक हो जाने पर नीचे उतार ले। फिर गुरु, विद्वान ब्राह्मण और देवताओं की पूजा करके प्रातःकाल इसे खावे। पहले दिन एक रत्ति, दूसरे दिन दो रत्ति इसी प्रकार से प्रतिदिन बढ़ा कर खाना चाहिये। एक मात्रा लोहे के छोटे खरल में डाल घी और शहद मिलाकर लोहे के डण्डे से मर्दन कर खावे तो यह रसायन का गुण करता है। इस का अनुपान नारियल का जल या दूध है। यह योग सब प्रकार के कुष्ठों का नाशक है, वली तथा पलितरोग को हटाता है। अग्नि को दीप्त करता है, हृदय के लिये हितकारी है, कान्ति आयु तथा बल को बढ़ाने वाला है। इस के साथ पथ्य में जांगल जीवों के मांस का रस तथा लवा बटेर आदि पक्षियों का मांसरस खाना चाहिये। शाली चावल, साठी के चावल घी, मूंग, शहद, गुड और दूध; ये पथ्य हैं। शाक तथा खटाई का खाना

---

१ 'अस्यानन्तरं' पाण्डुमेहामवातघ्नं वातरक्तरुजापहम्। क्रिमिशोथाश्मरीशूलदुर्नामव्रातकोपनुत्। क्षयं हन्ति महाश्वासमत्यर्थं शुक्रवर्द्धनम्।' इत्यधिकः पाठः रसरत्नाकरे।

२ 'सेव्यो रसो जाङ्गललावकानां वर्ज्यं हि शाकाम्लमपि स्त्रियश्च' प्रचलितः पाठः।

३ 'शुभक्षीरं' र. र. पाठः।

और स्त्रीभोग को छोड़ देवे।

विशेषवचन—यहां पर कई 'हुताशमुखसंशुद्धं' इस पाठ से पारद का तीनों पातनाओं (ऊर्ध्वपातन तिर्यक्पातन अधःपातन) से शुद्ध किया जाना बताते हैं। कई हिंगुलोत्थ पारद ऊर्ध्वपातन द्वारा प्राप्त लेते हैं। और कई हुताशमुख (अग्निमुख) चित्रक का नाम होने से चित्रक से शोधित पारद लेते हैं। यदि शुद्ध पारद ही लेना अभीष्ट हो तो उसकी गन्धक के साथ कज्जली कर लेनी चाहिये।

प्रकृत ग्रन्थ का पाठ रसेन्द्रचिन्तामणि से उद्धृत है। अन्यत्र रसरत्नाकर भैषज्यरत्नावली आदि में गन्धक का प्रमाण चार पल नहीं। वहां गन्धक १ पल है। अभ्रकभस्म १ पल अधिक है।

भैषज्यरत्नावली में घी का प्रमाण भी ८ पल के स्थान पर १६ पल है।

लौहपाक का लक्षण निम्न है—

'वस्त्रे निष्पीडितं सूक्ष्मे स्थूलतन्तौ घने दृढे।
समुद्रं जायते व्यक्तं न निःसरति सन्धिभिः॥
न च शब्दायते वह्नौ तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत्॥'

अर्थात् पाक ठीक हुआ है या नहीं इसकी पहिचान यह है कि एक मोटे घने और दृढ़ कपड़े के टुकड़े में औषध को डालकर पोटली सी बना हाथ से दबाकर पिण्डाकार करें। उस पर कपड़े के तन्तुओं की छाप पड़जाय और यदि वह सूक्ष्म वस्त्र में से बाहिर न निकले तो ठीक पाक हुआ जाने। इसके साथ ही उसका कुछ अंश लेकर आग में डालें यदि चिड़चिड़ आदि कोई शब्द न हो तो वह भी ठीक पाक होने का लक्षण है।

गुग्गुलुयुक्त इस योग का पाक निम्नप्रकार से वैद्य करते हैं--

पूर्व त्रिफलाक्वाथ घी और गुग्गुल डालकर पकाते हैं। इसप्रकार गुग्गुल नरम होकर एक सा मिल जाता है। पकते पकते जब गाढ़ा हो जाय तब पाकशेष काल में रससिन्दूर आदि के सूक्ष्म चूर्ण को उस में डालकर आलोडित कर नीचे उतार लेते हैं।

गुग्गुलुरहित प्रकृत ग्रन्थ के योग के पाक की विधि संस्कृत टीका में जीवानन्द ने इसप्रकार कही है--त्रिफलाक्वाथ में घी और रससिन्दूर से

गन्धक पर्यन्त द्रव्यों को डालकर पूर्व पकायें और पाकशेषकाल में त्रिफला चूर्ण डालकर नीचे उतार लें।

आजकल इस रस को चटाने के बाद अनुपानार्थ नीम की छाल का काढ़ा देते हैं॥ २६—३३॥

माणिक्यो रसः—

पलं तालं पलं गन्धः शिलायाश्च पलार्द्धकम्।
चपलः शुद्धसीसश्च ताम्रमभ्रमयो रजः॥ ३४॥
एतेषां कोलभागश्च वटक्षीरेण मर्दयेत्।
ततो दिनत्रयं घर्मे निम्बक्वाथेन भावयेत्॥ ३५॥
गुडूचीबालहिन्ताल—वानरीनीलझिण्टिकाः।
शोभाञ्जनमुराऽजाजी निर्गुण्डीहयमारकम्॥ ३६॥
एषां शाणमितं चूर्णमेकीकृत्य सरित्तटे।
मृत्पात्रे कठिने कृत्वा मृदम्बरयुते दृढे॥ ३७॥
एकाकी पाकविद्वैद्यो नग्नः शिथिलकुन्तलः।
पचेदवहितो रात्रौ यत्नात् संयतमानसः॥ ३८॥
[1]शनैर्मध्यमवेगेन वह्निना प्रहरद्वयम्।
प्रातः सम्पूज्य मार्त्तण्डं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्॥ ३९॥
यदि भाग्यवशादेतत् माणिक्याभं शुभं भवेत्।
तद्विजानीहि भैषज्यं सर्वकुष्ठविनाशनम्।
सर्पिषा मधुना लौहपात्रे तद्दण्डमर्दितम्॥ ४०॥
द्विगुञ्जं सर्वकुष्ठानां नाशनं बलवर्द्धनम्।
शीतलं सारसं तोयं दुग्धं वा पाकशीतलम्॥ ४१॥

---

१ शनैरित्यारभ्य शुभं भवेदिति पर्यन्तं पाठो नोपलभ्यते तन्त्रान्तरेषु।

आनीतं तत्क्षणादाजमनुपानं सुखावहम् ।
वातरक्तं शीतपित्तं हिक्काश्च दारुणां जयेत् ॥ ४२ ॥
ज्वरान् सर्वान् वातरोगान् पाण्डुं कण्डूश्च कामलाम् ।
श्रीमद्गहननाथेन निर्मितो बहुयत्नतः ॥ ४३ ॥

शुद्ध हड़ताल एक पल, शुद्ध गन्धक एक पल, शुद्ध मनसिल आधा पल, शुद्ध पारा, शुद्ध सीसा, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, लौहभस्म ; प्रत्येक १ कोल। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य सभी द्रव्य मिलाकर बड़ के दूध से घोटें। फिर तीन दिन तक नीम के काढ़े से धूप में भावना दें। इसके सूखने पर गिलोय, सुगन्धबाला, हिन्ताल, कौंच, नीलझिण्टी, सुहांजना, मुरामांसी, जीरा, निर्गुण्डी (सम्भालू), कनेर की जड़; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ शाण लेकर मिला दे। फिर एक दृढ़ मिट्टी की हांडी पर कपड़मिट्टी कर उस में इस दवाई को बन्द करके नीचे आग देनी चाहिये। नदी किनारे, अकेला, पाक विद्या में कुशल वैद्य नग्न होकर, बाल खोलकर मन को वश में करके, ध्यानपूर्वक, बड़े यत्न से रात को इस औषध को पकावे। धीरे २ दो पहरों तक मध्यम आंच देवे। प्रातःकाल सूर्यदेव की पूजा करके स्वांगशीतल होने पर औषध को निकाल लेवे। यदि भाग्य-वश यह माणिक्य के समान शुभ तथा चमकदार हो जाये तो समझो कि यह औषध सब प्रकार के कुष्ठरोगों को दूर करती है। इसे लौहपात्र में डालकर शहद और घी मिलाकर लोहे के डण्डे से घोटकर दो रत्ति भर की मात्रा में प्रतिदिन सेवन करावें। यह सब प्रकार के कुष्ठरोगों को नाश करता है तथा बल को बढ़ाता है। शीतल सरोवर का जल, पकाकर ठण्डा किया हुआ दूध अथवा तुरन्त का दुहा हुआ बकरी का दूध पीना उत्तम है। यह वातरक्त शीतपित्त तथा दारुण हिचकी को जीतता है। सब प्रकार के ज्वर वातरोग पाण्डुरोग कण्डू तथा कामलारोग को यह नाश करता है। इसे श्रीमान गहननाथ ने बहुत यत्न से बनाया था।

विशेषवचन—उक्त प्रकार से तो यह रस ठीक नहीं बनता। हमारी समझ में तो पूर्व हड़ताल आदि से लौहभस्म पर्यन्त द्रव्यों को बड़ के दूध से मर्दन

और नीम के क्वाथ से भावना देकर सुखा लें। इसे एक कपड़मिट्टी की हुई आतसी शीशी में डाल बालुकायन्त्र में पाक करें। जो औषध शीशी के गलभाग और स्कन्धदेश पर लगेगी वह लाल होगी।

स्वाङ्गशीतल होने पर उसे फोड़ कर निकाल लें और पीसकर गिलोय आदि का चूर्ण मिला लें।

हड़ताल यदि ८ तोला हो तो इस औषध के पाक में लगभग ४८ घण्टे चाहियें। पश्चात् स्वाङ्गशीतल होने पर निकाला जायगा।

इसकी कज्जली तय्यार करने में सबसे पूर्व सीसे को पिघला कर पारद के साथ पिष्टी करनी चाहिये। पश्चात् गन्धक को मिला कर घोटें। अन्य द्रव्य पीछे से मिलाकर अच्छीप्रकार मर्दन करें।

इसप्रकार प्रस्तुत योग की सामान्य मात्रा—१/८ रत्ती से १/२ रत्ती तक जानें ॥ ३४—४३ ॥

कुष्ठकुठारो रसः—

भस्मसूतसमो गन्धो मृतायस्ताम्रगुग्गुलु ।
त्रिफला च महानिम्बश्चित्रकश्च शिलाजतु ॥ ४४ ॥
इत्येतच्चूर्णितं कुर्य्यात् प्रत्येकं शाणषोडशम्[1] ।
चतुःषष्टि करञ्जस्य बीजचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ४५ ॥
चतुःषष्टि मृतश्चाभ्रं मध्वाज्याभ्यां विलोडयेत् ।
स्निग्धभाण्डे स्थितं खादेद् द्विनिष्कं सर्वकुष्ठनुत् ।
रसः कुष्ठकुठारोऽयं गलत्कुष्ठविनाशनः ॥ ४६ ॥

रससिन्दूर, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध गुग्गुल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, बकायन की छाल, चीता, शुद्ध शिलाजीत ; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण सोलह २ शाण, करञ्ज के बीजों का चूर्ण चौंसठ शाण, अभ्रकभस्म चौंसठ शाण लें। सब द्रव्यों को एकत्र पीसें। इसे घी

१ 'भागषोडश' पा० ।

और शहद से मिलाकर दो निष्क भर खावे तो सब प्रकार के कुष्ठरोग दूर होते हैं। यह कुष्ठकुठार रस गलितकुष्ठ को नाश करता है। इसे घी से स्निग्ध हुए २ पात्र में रखना चाहिये।

विशेषवचन—मात्रा—४ रत्ती से ८ रत्ती तक।

रसरत्नसमुच्चय में 'महानिम्ब' के स्थान पर "विषमुष्टि" पाठ है। 'विषमुष्टि' महानिम्ब का वाचक भी है। धन्वन्तरिनिघण्टु में कहा भी है—

'महानिम्बः स्मृतो द्रेक्का कार्मुको विषमुष्टिकः।
केशमुष्टिर्निम्बवरो रम्यकोऽक्षीर एव च॥
महानिम्बो रसे तिक्तः शीतपित्तकफापहः।
कुष्ठरक्तविनाशी च विषूचीं हन्ति शीतलः॥'

अतः रसरत्नसमुच्चय में भी महानिम्ब (बकायन) ही लेना चाहिये।

रसरत्नसमुच्चय में पथ्य में मधुरत्रय (घी, खांड, मधु) और गुडौदन (गुडयुक्त भात) बताया है। रसजनित ताप की शान्ति के लिये वहां पातालगरुड़ी की जड़, पुत्रञ्जीवक (जीयापोता) की मज्जा तथा धानियां; इनके चूर्ण में खांड मिला सेवन करने को कहा है। अथवा नागबला (गंगेरन) की जड़ के चूर्ण को घी और मधु के साथ कै और दाह की शान्ति के लिये चटाना चाहिये।

रसप्रकाशसुधाकर में महानिम्ब (बकायन) के स्थान पर निम्ब (नीम) है और सोंठ १ भाग (१६ शाण) अधिक है॥ ४४—४६॥

तालेश्वररसः—

गुञ्जाशङ्खकरञ्जचूर्णरजनीभल्लातकाग्निः[1] शिखा-
कन्यासूर्यपयः पुनर्नवरजो गन्धस्तथा सूतकम्।
गोमूत्रे पचितं विडङ्गमरिचैः क्षौद्रश्च तत्तुल्यकं
हन्यादाशु विचर्चिकारुजमिदं कण्डूं तथा कैटिमम्॥ ४७॥

शुद्ध रत्तियां, शङ्खभस्म, करञ्ज के बीज, हल्दी, शुद्ध भिलावा,

१ 'भल्लातकाग्निशिखा' पा०।

चीता, लाङ्गली (कलिहारी), घीकुमारी, आक का दूध, पुनर्नवा का चूर्ण, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, विडङ्ग, मरिच; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर अन्य द्रव्य मिला लें। फिर गोमूत्र सब द्रव्यों से आठ गुणा अर्थात् ११२ तोला लें। उस में सब चूर्ण डाल पकावें। ठीक पक चुकने पर उतार लें। शीतल होने पर सारे चूर्ण के समान अर्थात् १४ तोले शहद डालकर उचित मात्रा में खावें तो शीघ्र ही विचर्चिका कण्डू तथा किटिम कुष्ठ का नाश होता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ मासा।

वस्तुतः यह योग अन्तःप्रयोगार्थ नहीं है, उद्वर्तन (उबटना) के लिये है। रसतालेश्वर नाम से यह रसेन्द्रचिन्तामणि में है। इसका यह नाम कैसे पड़ गया इसका कोई उत्तर नहीं। इस योग में हड़ताल तो है ही नहीं जो तालेश्वर रस या रसतालेश्वर नाम रखा जासके। प्रमाद से नाम लिखा जाने के कारण और उसी कारण कुछ पाठान्तर होजाने से इसे अन्तःप्रयोगार्थ समझा जाने लगा और टीकाकारों ने वैसे ही टीका भी कर दी। यह योग कुछ पाठान्तर से रसरत्नसमुच्चय में है और वहां इसे स्पष्ट उद्वर्तन के लिये ही बताया है—

'गुञ्जाचित्रकशङ्खचूर्णरजनीभल्लातकं लाङ्गली-
स्नुक्क्षीरोत्तमकन्यकाघनरवाधूमोद्गमः सूतकः।[1]
गोमूत्रैडगजं विडङ्गमरिचं सक्षौद्रखारीजलं
पामादद्रुविचर्चिकाकिटिभजित्कण्डूघ्नमुद्वर्त्तनात्॥'

रत्ती, चित्रक, शङ्खचूर्ण, हल्दी, भिलावा, लाङ्गली (कलिहारी), सेहुण्ड का दूध, मनसिल, घीक्वार, घनरवा (चौलाई), धूमोद्गम (गन्धक?), पारद, पंवाड़ के बीज, वायविडङ्ग, कालीमिर्च, खारी (महापारेवत, बड़ा अमरूद) की छाल, जल (सुगन्धबाला); इन्हें समभाग में ले गोमूत्र में घोट कर देह पर उबटना मलने से पामा, दाद, विचर्चिका, किटिभ कुष्ठ, कण्डू (खुजली) दूर होती है॥ ४७॥

---

१ 'वाकुची' पा०।

राजतालेश्वरः—

नागस्य भस्म शाणैकं तोलकं गन्धकस्य च ।
द्विनिष्कं शुद्धतालस्य सर्वमेतद्[1] गवां जलैः ॥ ४८ ॥
विपचेत् षोडशगुणैः पात्रे ताम्रमये शनैः ।
घर्मे द्विघस्रं जम्बीर-कुमारीवज्रकन्दजैः ॥ ४९ ॥
रसैर्भृङ्गस्य चाम्भोभिर्युतं वल्लद्वयं भजेत् ।
कुष्ठे चास्थिगते चापि शाखानासाविसुस्रके ।
स्वरभङ्गे क्षतक्षीणे मण्डलेषु महत्स्वपि ॥ ५० ॥
औडुम्बरं हन्ति शिवामधुभ्यां कृच्छ्रश्च कुष्ठं त्रिफलाजलेन ।
गुडार्द्रकाभ्यां गजचर्मसिध्मविचर्चिकास्फोटविसर्पकण्डूम् ॥ ५१ ॥
निहन्ति पाण्डुं विविधां विपादीं सरक्तपित्तां कटुकासिताभ्याम् ।
खादेद् द्विजीरं त्वमृतायुतश्च समुद्रयूषं सघृतश्च दद्यात् ॥ ५२ ॥
रोहीतकजटाक्काथमनुपानं प्रयच्छति ।
चतुर्दशदिनस्यान्ते कुष्ठं शुष्यति यत्नतः ॥ ५३ ॥
क्षुद्बोधो जायते ऽत्यर्थमत्यर्थं सुभगं वपुः ।
अत्यर्थं पच्यते भुक्तमत्यर्थं सुखमाप्नुयात् ॥ ५४ ॥
अरुणौडुम्बरं कुष्ठमृष्यजिह्वां कपालिकाम् ।
पुण्डरीकं काकणश्च दद्रुकुष्ठं सुदुस्तरम् ॥ ५५ ॥
स्फुटरूपं सर्वकुष्ठं महाकुष्ठं सुदारुणम् ।
तथा चर्मदलं हन्याद् विसर्पं परिसर्पकम् ॥ ५६ ॥
सिध्मं विचर्चिकां गाढां किटिमश्च विशेषतः ।

---

१ 'समुद्भूतं' पा० ।

पामाश्चालसकश्चैव किलासञ्च विनाशयेत्।
वर्जयेत् सततं कुष्ठी मत्स्यमांसादि भोजनम् ॥ ५७ ॥

नागभस्म एक शाण, गन्धक शुद्ध एक तोला, शुद्ध हड़ताल दो शाणभर लें। इन सब को एकत्र पीस इन से सोलह गुना गोमूत्र डाल एक तांबे के पात्र में अति मन्द अग्नि से धीरे२ पकावें। गोमूत्र के सूख जाने पर नीचे उतार लें और जम्बीरी नीबू, घीकुमार, वज्रकन्द, भांगरा; इनके रस से क्रमशः दो २ दिन धूप में भावित करें। इसे तीन रत्ती मात्रा में जल से सेवन करें तो हड्डियों में पहुंचे हुए कोढ़ को, शाखा (हाथ पैर) तथा नाक के टेढा होने को, स्वरभंग को, क्षतक्षीण को, बहुत देश में व्याप्त मण्डल नामक कोढ़ को भी यह राजतालेश्वर रस नाश करता है। इस राजतालेश्वर रस को हरड़ और शहद से खावे तो उडुम्बर कुष्ठ दूर होता है। त्रिफला के जल से सेवन करे तो कष्टसाध्य कुष्ठ नष्ट होता है। गुड और अदरक से खावें तो यह गजचर्म, सिध्म, विचर्चिका, विस्फोटकुष्ठ, विसर्प और कण्डू को नाश करता है। इसे कुटकी और मिश्री से खावें तो पाण्डुरोग विविध प्रकार की विपादिका तथा रक्तपित्त शान्त होता है। श्वेतजीरा, कालाजीरा, अमृता (गिलोय वा आंवला), मूंग का यूष और घी इसमें पथ्य है। इस रस के साथ रोहड़े की जड़का क्वाथ अनुपान में पीवे तो चौदह दिन के पीछे कुष्ठ सूख जाता है। यह रस अत्यन्त भूख लगाता है। देह को अति सुन्दर कर देता है। इसके सेवन से खाया हुआ अन्न शीघ्र पच जाता है। रोगी सर्वथा नीरोग हो जाता है। अरुण (रक्तवर्ण का श्वित्रभेद), उडुम्बर कुष्ठ, ऋष्यजिह्व, कापाल, पुण्डरीक, काकण, भयङ्कर दद्रु, फूटा हुआ कुष्ठ, दारुण महाकुष्ठ, चर्मदल, विसर्प, परिसर्प (जो विसर्प चारों ओर फैलता है), सिध्म, प्रबल विचर्चिका, विशेष करके किटिम, पामा, अलसक, किलास; इन सब प्रकार के कुष्ठों को यह दूर करता है। कुष्ठी मनुष्य को मछली, मांस आदि कभी न खाने चाहियें।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ रत्ती। रसेन्द्रचिन्तामणि में इसका नाम तालकेश्वर है। रसरत्नसमुच्चय में भी इससे मिलता जुलता ही तालकेश्वर है—

'वीर्यं पुरारेरिह नागतुल्यं भागद्वयं चाप्यथ तालकस्य ।
शुद्धेन नागेन रसो विशुद्धो विमर्दनीयो हरितालकञ्च ॥
मूत्रं गवां षोडशभागमानं निधाय भाण्डेऽथ पिधाय तस्मिन् ।
दीपाग्निना तत्परिशोष्य सर्वं मूत्रं ततस्तालकशुद्धता स्यात् ॥
ततस्तु जम्बीररसेन सर्वं विमर्दनीयं त्रिदिनं त्रिवारम् ।
भाव्यं कुमार्याः सलिलेन भृङ्गवज्राह्वकन्देन च वारयुग्मम् ॥
कुष्ठे ददीतास्य रसस्य वल्लत्रयं रसैरार्द्रकजैर्विजेतुम् ।
शाखासु पक्वत्वमथो सुषुप्तिं स्तम्भं च मन्यास्वथ मण्डलानि ॥
गवां पयः शर्करया समेतं स्तम्भातिरेके सति सन्नियोज्यम् ।
औदुम्बरं हन्ति सितामधुभ्यां कृष्णञ्च कुष्ठं त्रिफलारसेन ॥
गुडार्द्रकाभ्यां गजचर्मसिध्मविचर्चिकास्फोटविसर्पदद्रून् ।
निहन्ति पाण्डुं विविधां विपादीं सरक्तपित्तं कटुकीसिताभ्याम् ॥
रोगेषु सर्वेष्वपि वासराणि त्रिसप्तसंख्यानि रसः प्रदेयः ।
रसप्रयोगावसितौ सुषुप्त्यां क्वाथं पिबेच्छिन्नरुहासनोत्थम् ॥
मासद्वयं मुद्गघृतान्वितान्नं पथ्यं त्वथोदुम्बरभेषजान्ते ।
अङ्गानि पञ्चापि पलोन्मितानि दद्यादरिष्टस्य तथाढकीनाम् ॥
क्वाथेन युक्तं सघृतौदनञ्च पथ्याय कृष्णेऽप्यथ कृष्णवर्णे ।
रसावसाने सितया समेतां पादोन्मितां (पलोन्मितां) त्वामलकीं प्रदद्यात्॥
अन्नं समुद्गं सघृतं नियोज्यं मासद्वयं स्यादथवा विचिह्नम् ।
रसप्रयोगावसितौ प्रयुञ्ज्यादङ्गानि पञ्च स्रवनिःसृतानि ॥
पादो(पलो)न्मितानीह च मासयुग्मं पथ्याय दुग्धौदनमाददीत ।
स्यात्तालकेशाख्यरसप्रयोगे तक्रं च मांसं च विवर्जनीयम् ॥'

इसके अनुसार शुद्ध पारद (पारद होने से गन्धक भी) १ भाग, नागभस्म १ भाग, शुद्ध हड़ताल २ भाग ले। हड़ताल का शोधन सोलहगुने गोमूत्र से करे। एक हांडी में हड़ताल और उससे सोलहगुना गोमूत्र डालकर मुंह बन्द कर दें। दीपाग्नि से पकायें। जब गोमूत्र सूखजाय तब उसे निकाल लें। पारा गन्धक की कज्जली कर नागभस्म मिला हड़ताल डालकर

घोटें। पश्चात् जम्बीर के रस से तीनवार मर्दन करें। प्रति वार तीन दिन मर्दन करना चाहिये। सूखजाने पर घीक्वार, भांगरा और वज्रकन्द; इनके रसों से दो दो वार मर्दन कर सुखालें। इसे उचित मात्रा में कुष्ठ में प्रयोग करावें। यह हाथ पैर में फैले और पके हुए, शून्य पड़े हुए तथा मण्डल कुष्ठ और मन्यास्तम्भ को हटाता है। यदि स्तम्भ (जकड़ाव) अत्यधिक हो तो गौ के दूध में खांड डाल रोगी को पथ्य में दें। औदुम्बर कुष्ठ में इस तालकेश्वर रस को खांड और मधु से दें (प्रकृतग्रन्थ में 'सिता' के स्थान पर 'शिवा' पाठ है)। कृष्ण कुष्ठ में त्रिफलाक्वाथ से देना चाहिये (प्रकृत ग्रन्थ में 'कृष्णं' के स्थान पर 'कृच्छ्रं' है)। गुड और अदरक से यह गजचर्म, सिध्म, विचर्चिका, विस्फोट, विसर्प तथा दाद को हटाता है। कटुकी और खांड के साथ पाण्डु और विपादिका को दूर करता है।

सब रोगों में इसे २१ दिन सेवन कराना चाहिये। रसप्रयोग की समाप्ति पर सुषुप्ति (शून्यता) में गिलोय और असन की छाल का क्वाथ पीने को देना चाहिये। और २ मास तक मूंग और घी युक्त ओदन खाने को दे। औदुम्बर कुष्ठ में रसप्रयोग की समाप्ति पर नीम के पञ्चाङ्ग का प्रयोग करावे। अथवा अरहर की जड़ का क्वाथ पीने को दे और पथ्य घृतयुक्त भात होना चाहिये। कृष्णवर्ण के कृष्ण कुष्ठ (वातिक श्वित्र) में रसप्रयोग के अनन्तर आंवले के चूर्ण में खांड मिलाकर दे। और पथ्य में २ मास तक घृत युक्त वही मूंग का यूष और भात देना हितकर है। अथवा जब तक कुष्ठ के लक्षण हट न जांय तब तक स्रुववृक्ष (विकङ्कत) के पञ्चाङ्ग का प्रयोग करावे। पथ्य में दो मास तक दूध भात दे।

इस रस के प्रयोग के समय तक्र (प्रकृत ग्रन्थ में मत्स्य है) और मांस का त्याग करना चाहिये॥ ४८—५७॥

कुष्ठहरितालेश्वरः—

हरितालं भवेद्भागं द्वादशात्र विशुद्धिमत्।
गन्धकोऽपि तथा ग्राह्यो रसः सप्ताऽत्र दीयते॥ ५८॥
कृष्णाभ्रकमपि श्लक्ष्णं खल्ले कृत्वा विमर्दयेत्।

अङ्कोठमूलनीरेण सेहुण्डीपयसा ऽथवा ॥ ५६ ॥
अर्कदुग्धेन सम्पिष्य करवीरजलेन च ।
काकोडुम्बरनीरेण पेषणीयो रसो भृशम् ॥ ६० ॥
शुद्धताम्रकटोरायां [1]लेपणीयो रसेश्वरः ।
विधिवत् पच्यते याम-षट्कश्चायं रसेश्वरः ॥ ६१ ॥
पञ्चगुञ्जाप्रमाणेन काकोडुम्बरवारिणा ।
कुष्ठाष्टादशसंख्येषु देय एष भिषग्वरैः ॥ ६२ ॥
अचिरेणैव कालेन विनाशं यान्ति निश्चयः ।
पथ्यसेवा विधातव्या प्रणतिः सूर्यपादयोः ॥ ६३ ॥
साधकेन तथा सेव्यो रसो रोगौघनाशनः ।
पिप्पलीभिः समं दद्यात् कुष्ठरोगे रसेश्वरम् ॥ ६४ ॥

शुद्ध हड़ताल बारह भाग, शुद्ध गन्धक बारह भाग, शुद्ध पारा सात भाग, कृष्णाभ्रकभस्म सात भाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिलावे और अंकोल की जड़ के रस से, थोहर के दूध से, आक के दूध से, कनेर की जड़ के रस से तथा काकोदुम्बरिका (कठूमर) के रस से इसे अच्छीप्रकार मर्दन करे। फिर इसे शुद्ध कण्टकवेध्य ताम्बे के पत्र के दो प्यालों में बन्द करके छः पहरों तक (वालुकायन्त्र वा भस्मयन्त्र द्वारा) आंच देकर पकावे। इसे पांच रत्ति भर लेकर काकोदुम्बरिका के रस से खिलावें तो अति शीघ्र ही अठारह प्रकार के कुष्ठ दूर होते हैं। इस में कुष्ठोक्त पथ्य का पालन करना चाहिये और साधक सूर्य भगवान को नमस्कार करे। इसप्रकार विधि पूर्वक इस रस का सेवन रोगसमूह का नाशक होता है। कुष्ठरोग में इसे पिप्पली के चूर्ण के साथ दे।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—आधी रत्ती से एक रत्ती तक।

पाक करने के पश्चात् शीतल होने पर ताम्रसहित ही औषध को चूर्ण

---

[1] 'शुद्धताम्रकोठरे च' प्रचालितः पाठः। 'विशुद्धताम्रकोष्टे च' पा०।

किया जाता है। ताम्रपात्र का मान अन्य द्रव्यों के मिलित प्रमाण के समान होना चाहिये ॥ ५८—६४ ॥

राजराजेश्वरो रसः—

आतपे मर्दयेत् सूतं गन्धकं मृतताम्रकम्।
सुहस्तमर्दितं तालं यावत् तत्र विलीयते ॥ ६५ ॥
भृङ्गराजद्रवं दत्त्वा दिनमात्रं विमर्दयेत्।
त्रिफला खादिरं सारममृता वागुजीफलम् ॥ ६६ ॥
प्रत्येकं सूततुल्यं स्यात् चूर्णीकृत्य विमर्दयेत्।
मध्वाज्याभ्यां लौहपात्रे कर्षाभ्यां भक्षयेत् ततः ॥ ६७ ॥
दद्रुकिटिमकुष्ठानि मण्डलानि विनाशयेत्।
द्विगुञ्जेन[2] निहन्त्याशु राजराजेश्वरो रसः ॥ ६८ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, शुद्ध हड़ताल; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारे गन्धक की कज्जली धूप में करे, फिर अन्य द्रव्य मिलाकर घोटे। जब एक प्राण हो जाय तब भांगरे का रस डालकर दिन भर घोटे। फिर इस में त्रिफला, कत्था, गिलोय, बाकुची (अन्तःप्रयोग में कालीजीरी); प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण पारे के समान लेकर पुनः घोट ले। इस राजराजेश्वर रस की दो रत्ति की मात्रा लेकर विषमभाग में मिले शहद और घी २ कर्ष के साथ लोहे के पात्र में मर्दन कर रोगी खावे। यह दद्रु, किटिम आदि कुष्ठ, तथा मण्डल को शीघ्र नाश करता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक। विषम प्रमाण में मिले मधु और घी, सहपान में प्रायः आजकल २ मासे से ४ मासे तक देते हैं ॥ ६५—६८ ॥

पारिभद्ररसः—

मूर्च्छितं सूतकं धात्री फलं निम्बस्य चाहरेत्।

---

१ 'सूतं' पा०। २ 'द्विगुञ्जं विनिहन्त्याशु' पा०।

तुल्यांशं खादिरैः क्वाथैर्दिनं मर्द्यञ्च भक्षयेत् ।
निष्कैकं दद्रुकुष्ठघ्नः पारिभद्राह्वयो रसः ॥ ६९ ॥

रससिन्दूर, आंवला, नीम की निम्बौली; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग ले खैर की लकड़ी के क्वाथ से एक दिन मर्दन करके सुखा ले । इसे एक निष्क भर खाने से दद्रु तथा कुष्ठ नाश होते हैं । इस का नाम पारिभद्र रस है ।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा--१ रत्ती से २ रत्ती तक ॥ ६९ ॥

प्रलेपाः—

गन्धकं मूलकक्षारमार्द्रकस्य रसैर्दिनम् ।
मर्दितं हन्ति लेपेन सिध्मन्तु दिनमेकतः ॥ ७० ॥

गन्धक और सूली का क्षार; दोनों समभाग लेकर एक दिन अदरक के रस से घोटकर सिध्म पर लेप करे तो एक दिन में ही सिध्मरोग नष्ट होता है ॥ ७० ॥

कृष्णधुस्तूरजं मूलं गन्धतुल्यं विचूर्णयेत् ।
मर्द्य जम्बीरनीरेण लेपनं सिध्मनाशनम् ॥ ७१ ॥

काले धतूरे की जड़ और गन्धक दोनों को समभाग चूर्ण करें और जम्बीरी के रस से मर्दन करके लेप करें तो सिध्मरोग नाश होता है ॥ ७१ ॥

अपामार्गस्य पञ्चाङ्गं कदलीद्रवसंयुतम् ।
पुटदग्धञ्च गोमूत्रैर्लेपनं दद्रुनाशनम् ॥ ७२ ॥

अपामार्ग का पञ्चांग (पत्र, पुष्प, फल, तना, जड़) लेकर चूर्ण करे और केले के रस से मर्दन करके सुखावे । फिर सम्पुट में रख दग्ध कर लेवे । इस अपामार्ग के क्षार को गोमूत्र से मिलाकर लेप करे । दाद का नाश होता है ॥ ७२ ॥

चक्रमर्दस्य बीजञ्च दुग्धे पिष्ट्वा विमर्दयेत् ।
गन्धर्वतैलसंयुक्तं मर्दनात् सर्वकुष्ठजित् ॥ ७३ ॥

पनवाड़ के बीजों को दूध में पीस कर मर्दन करने से दाद नष्ट होती है। अथवा एरण्ड के तेल से मिलाकर रुग्ण स्थान पर मर्दन करें। सब प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ७३ ॥

लङ्केश्वरो रसः—

भस्मसूताभ्रशुल्वानि गन्धं तालं शिलाजतु।
अम्लवेतसतुल्यांशं त्र्यहं[1] दत्त्वा विमर्दयेत् ॥ ७४ ॥
मध्वाज्याभ्यां वटीं कुर्य्याद् द्विगुञ्जां भक्षयेत् सदा।
कुष्ठं हन्ति गजं[2] सिंहो रसो लङ्केश्वरो महान् ॥ ७५ ॥
त्रिफलानिम्बमाञ्जिष्ठा-वचापाटलमूलकम्[3]।
कटुकारजनीक्वाथं[4] चानुपानं प्रयोजयेत् ॥ ७६ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हड़ताल, शिलाजीत, अम्लवेत; इन सब को एक २ भाग लेकर मिलाकर तीन दिन तक घोटे। फिर शहद और घी से दो रत्ति भर की गोली बनावे। यह निरन्तर प्रयोग से कुष्ठ को ऐसे नष्ट करता है जैसे शेर हाथी को मार देता है। इस को लङ्केश्वर रस कहते हैं। त्रिफला, नीम, मजीठ, बच, पाटल (पाढ़ल) की जड़ की छाल, कुटकी, हल्दी; इन सब का क्वाथ बनाकर अनुपान करे।

विशेषवचन—शहद और घी उसी प्रमाण में डालें जितने से वटी बन जाय।

रसरत्नाकर में सूखा ही तीन दिन मर्दन के स्थान पर अम्ल से मर्दन करने का पाठ है। अम्ल से जम्बीर वा नीबू आदि का रस लिया जा सकता है। 'पाटलमूलकम्' के स्थान पर वहां 'पटोलमूलकम्' पाठ है। पटोल भी कुष्ठ और रक्तदोष का नाशक है—

---

१ 'चाम्लेन मर्दयेत्ततः' र. र. पाठः
२ 'न सन्देहो रसो लङ्काधिपेश्वरः' र.र. पाठः।
३ 'वचापटोलमूलकम्' र. र. पाठः।
४ 'कटुकी रजनी तुल्यं क्वाथोऽयमनुपानतः' र. र. पाठः।

'पटोलः कटुतिक्तोष्णो रक्तपित्तबलासजित् ।
कफकण्डूतिकुष्ठासृग्ज्वरदाहार्तिनाशनः ॥'

परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि पटोलमूल तीव्र विरेचक है। कहीं कहीं पटोलमूल न लेकर पटोलपत्र और सूखी मूली लेते हैं ॥ ७४—७६ ॥

भूतभैरवो रसः—

शुद्धाः पञ्चदशात्र तालकमिताः शुद्धाश्च षड्गन्धकाः
सप्ताष्टौ नवतिन्तिंडीयकफलात्[1] काठिल्लकानां दश ।
सेहुण्ड्यर्कपयोभिरेवं[2] सततं सञ्चूर्ण्य तद् भाव्यते
रोहीतस्य जटारसेन मृदितं श्लक्ष्णं ततः खल्लितम् ॥७७॥
एकीकृत्य समस्तमेतदपि[3] तत् टङ्कैकमेतद्भजेत्[4]
पश्चाद्वासविशुद्धवारि सहितं किञ्चिच्च तत् पीयते ।
ताम्बूलं शशिखण्डमण्डितवटी–मिश्रं ततः स्वापयेत्[5]
शय्यायां मृगलोचनापरिभृतौ[6] कर्माणि सम्पादयेत्[7] ॥७८॥
देहं वीक्ष्य सुखं मुखं न विरसं विज्ञाय सम्यक् सुधीः
छागीदुग्धमिहापि तं ननु दिनं तक्रञ्च तत् पाययेत् ।
नित्यं शान्तमिदं करोति नियतं सर्वौषधैर्वर्जितम्
सामग्रामसमग्रमग्रिमतरं नीलञ्च पीतारुणम् ॥ ७९ ॥
श्वेतं स्फीतमनल्पकं भृशमति प्रायः क्रिमिव्याकुलं
गन्धालिप्रतिमं खटीकसदृशं कुष्ठञ्च चोत्सादयेत्[9] ।

१ 'तिन्तिडीकफलकात्' पा० । २ 'पयोभिरेभिरभितः' पा० ।
३ 'समस्तमेतदमृतं' पा० । ४ 'जयेत्' पा० ।
५ 'स्थापयेत्' पा० ।
६ 'मृगलोचनानिगदितं' पा० । 'मृगलोचनापरिवृतं' इति वा पाठः साधुः ।
७ 'निर्वापयेत्' पा० । ८ 'सूतं च' पा० । ९ 'चोत्साधनम्' पा० ।

कुष्ठाष्टादशभूतभैरव इति ख्यातः क्षितौ हन्ति च
वातव्याधिनिकृन्तनः कफकृतान् कुष्ठान् विशेषानयम् ॥८०॥
हन्तीति ज्वरमुग्ररूपमधिकं दाहादिकञ्चामयम्।
कुर्य्याद्रूपमनङ्गरङ्गगुणभृद्भृङ्गास्पदं विग्रहम् ॥ ८१ ॥
एवं स मासात् कुरुते समासात् पथ्यञ्च तथ्यं सकलं करोति।
भुञ्जीत भक्तं सततं प्रयुक्तं घृतं शृतं वा विकृतं तदेव ॥८२॥
स्वच्छन्ददुग्धेन सुखेन जग्धं पथ्यान्नमेतत् प्रवदन्ति सन्तः।
कुष्ठस्य दुष्टस्य निराकरोति गात्रञ्च कुर्यात् शुभगन्धयुक्तम् ॥८३॥

शुद्ध हड़ताल पन्द्रह तोले, शुद्ध गन्धक छह तोला, इमली अथवा विषांबिल का नया फल पन्द्रह तोला,करेला दस तोला; सब को पीसकर थोहर तथा आक के दूध से भावना दे। फिर रोहड़े की जड़ के रस से मर्दन करे। इसप्रकार सब को एकत्र खूब बारीक खरल करके सुखा ले। इसे एक टङ्क मात्रा में सेवन कर रोगी कपड़े से छना अथवा सुगन्धित जल पीवे और मुख को सुगन्धित करने वाली कपूरयुक्त वटी को पान में रख चबावे। फिर रमणियों से घिरी हुई बढ़िया शय्या पर उसे सुलावें। इसप्रकार कर्म करे। उठने पर जब रोगी का शरीर सुखी और मुख विरस न हो तब उस दिन बकरी का दूध या तक्र पीने को दे। अन्य सब औषधों के सेवन से जो कुष्ठ अच्छे न हुए हों उन्हें भी यह शान्त करता है। सब सामकुष्ठ, महाकुष्ठ, नील, पीत, लाल, श्वेत, सूजन वाले, बहुत देश में फैले हुए, कीड़ों से व्याप्त, गन्धप्रसारणी के सदृश दुर्गन्ध युक्त और खड़िया मिट्टी के समान श्वेत कुष्ठरोग नष्ट होते हैं। अठारह प्रकार के कुष्ठों को, वातव्याधि को, विशेष करके कफजन्य कुष्ठों को यह भूतभैरव रस अच्छा करता है। उग्ररूप वाला तीव्रज्वर तथा दाह आदि रोग भी इसके सेवन से नष्ट होते हैं। कामदेव के से सुन्दर रूप और कमल समान कोमल शरीर को करता है अथवा श्वेतकुष्ठ को नाश कर वहां भौंरे के सदृश कृष्णवर्ण कर देता है।

१ 'दाहाभिधानामयम्' पा०। १ 'समानं' पा०।

संक्षेप में इसप्रकार से एक मास में दुष्ट कुष्ठ को नाश करके यह देह को शुभ गन्ध युक्त करता है। इस के प्रयोगकाल में पथ्य में चावल, घी, दूध शीघ्र पचने वाले अन्न खाने को देवें।

विशेषवचन—'समासात्' के स्थान पर 'समानं' पाठ होने पर एक मास में भौंरे के सदृश का वह कृष्णवर्ण देह के समान वर्ण का हो जाता है यह अभिप्राय जानना चाहिये। इस योग का पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है। अतएव इसका ठीक अभिप्राय बताना कठिन है। तिन्तिडीफल के भाग १५ भी हो सकते हैं और २४ भी क्योंकि इमली तो पुरानी ही उत्तम समझी जाती है। 'काठिल्लक' से हमारी समझ में करेला के स्थान पर लाल पुनर्नवा लेनी उत्तम है। आधुनिक मात्रा—१ रत्ती ॥ ७७—८३ ॥

अर्केश्वरो रसः—

पलानीशस्य चत्वारि बलेर्द्वादश तावती।
ताम्रस्य चक्रिका देया रसस्योदूर्ध्वं शरावकम् ॥ ८४ ॥
दत्त्वा विबद्धं भाण्डस्थं पूरयेद् भस्मना दृढम्।
अग्निं प्रज्वालयेद् यामद्वयं शीतं विचूर्णयेत् ॥ ८५ ॥
पुटेद् द्वादशधा सूर्य-दुग्धेनालोडितं पुनः।
वरापावकभृङ्गाणां त्रिभिर्द्रावैर्विभावयेत्।
अयमर्केश्वरो नाम्ना रक्तमण्डलकुष्ठजित् ॥ ८६ ॥

शुद्ध पारा चार पल, शुद्ध गन्धक बारह पल; दोनों की कज्जली करे। इसे एक हांडी में रखे और उसे कज्जली के समपरिमाण शुद्ध तांबे की पतली चक्री (वा ताम्रपात्र) से ढक दे और इसके ऊपर मिट्टी का शराव देकर सन्धिबन्धन कर दे। हांडी के शेष भाग में उपलों की राख भर दे और नीचे दो पहर तक आग जलावे। स्वांगशीतल होने पर निकाल कर चूर्ण करे और आक के दूध से इसे घोट २ कर बारह वार पुट दे। फिर त्रिफला, चीता और भांगरा; इन तीनों के रसों से भावना देवें। यह

१ 'वातरक्तमण्डल०' पा०।

अर्केश्वर रस रक्त मण्डलकुष्ठ को जीतता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—चौथाई रत्ती से आधी रत्ती तक।

रसरत्नसमुच्चय में जो अर्केश्वर रस है वहां गन्धक पारे से दुगुनी है और पीछे से जो भावनायें हैं उनमें भृङ्गराज की भावना नहीं है। इसे सुप्तिवात वा सुप्तिकुष्ठ में प्रयोगार्थ वहां कहा है—

'रसेन गन्धं द्विगुणं प्रमर्द्य
ताम्रस्य चक्रेण सुतापितेन।
आच्छाद्य भूत्या तु ततः प्रयत्ना-
च्चक्रीं विलग्नं च रसं प्रगृह्य॥
विचूर्ण्य तद्द्वादशधार्कदुग्धैः
पुटेत वह्नित्रिफलाजलैश्च।
सम्भावितोऽर्केश्वर एष सूतो
गुञ्जाद्वयं चास्य फलत्रयेण॥
ददीत मासत्रितयेन सुप्ति-
वाताद्विमुक्तो हि भवेद्धिताशी'॥ ८४—८६॥

महाताल़ेश्वरो रसः—

तालताप्यशिलासूतं शुद्धं टङ्कणसैन्धवम्।
समं सञ्चूर्णयेत् खल्वे सूताद् द्विगुणगन्धकम्।
गन्धाद् द्विगुणलौहञ्च जम्बीराम्लेन मर्दयेत्॥ ८७॥
ततो लघुपुटे पाच्यं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्।

---

१ 'अस्यानन्तरं 'गन्धतुल्यं मृतं ताम्रं लौहभस्म चतुःपलम्। जम्बीराम्लेन तत्सर्वं दिनं मर्द्यं पुटेल्लघु। त्रिंशदंशं विषं चास्य' पा०। 'गन्धतुल्यं मृतं ताम्रं जम्बीरैर्दिनपञ्चकम्। मर्द्यं षड्भिः पुटैः पाच्यं भूधरे सम्पुटोदरे। पुटे पुटे द्रवैर्मर्द्यं सर्वमेतच्च षट्पलम्। द्विपलं मारितं ताम्रं लोहभस्म चतुःपलम्। जम्बीराम्लेन तत्सर्वं दिनं मर्द्यं पुटेल्लघु। त्रिंशदंशं विषं चास्य' र. र., शा० पाठः। अत्र 'विषं' इत्यत्र 'पुरं' इति रसरत्नसमुच्चये पाठः।

त्रिंशदंशं विषञ्चात्र क्षिप्त्वा सर्वं विचूर्णयेत् ।
माहिषाज्येन संमिश्रं निष्कार्द्धं भक्षयेत् सदा ॥ ८८ ॥
मध्वाज्यैर्वागुजीचूर्णं[1] कर्षं[2] लिह्यात् ततः परम् ।
सर्वान् कुष्ठान् निहन्त्याशु महातालेश्वरो रसः ॥ ८६ ॥

शुद्ध हड़ताल, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध मनसिल, शुद्ध पारा, शुद्ध सुहागा, सेंधालवण; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला और शुद्ध गन्धक दो तोला लें। लौहभस्म चार तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर खरल करें और जम्बीरी के रस से मर्दन करें। फिर लघुपुट में पकावें। स्वांगशीतल होने पर निकाल पीसलें। जितना यह चूर्ण हो उसका तीसवां भाग शुद्ध विष मिलाकर फिर चूर्ण करें। इस चूर्ण को भैंस के घी से मिलाकर आधा निष्क खावें। इसके पीछे घी और शहद मिलाकर बाकुची का चूर्ण एक कर्ष खावें तो यह महातालेश्वर रस सब कुष्ठरोगों को जीतता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ रत्ती। शार्ङ्गधर तथा रसरत्नाकर में जो महातालेश्वर रस का पाठ है उस के अनुसार योग इसप्रकार होता है—

हड़ताल, स्वर्णमाक्षिकभस्म, मनसिल, पारा, सेन्धानमक, सुहागा; प्रत्येक १ भाग, गन्धक २ भाग, ताम्रभस्म २ भाग, ले। पारा गन्धक की कज्जली करें और उसमें अन्य द्रव्य मिलाकर खूब खरल करे। इसे जम्बीर के रस से ४ दिन मर्दन करे। सूख जाने पर सम्पुट में बन्द कर भूधर पुट दे। इस प्रकार प्रतिवार जम्बीर के रस से मर्दन करके छह वार पुटें देनी चाहियें। यह औषध ६ पल, ताम्रभस्म २ पल, लोहभस्म ४ पल; इन्हें एकत्र मिला जम्बीर के रस से दिन भर मर्दन करके सूखजाने पर लघुपुट दे। पश्चात् निकालकर पीस ले और इस औषध का तीसवां भाग शुद्ध विष मिलाकर घोट ले। इसे भैंस के घी के साथ मिला मात्रा में दे और पीछे से बाकुची के चूर्ण को शहद और घी से चाटे। रसरत्नाकर में इसे पुण्डरीक कुष्ठ में प्रयो-

---

१ 'पुण्डरीकनुत्' र. र. पाठः।

२ 'कर्षमात्रं लिहेदनु' पा०।

कराने को कहा है।

यहां रसरत्नसमुच्चय में 'विष' के स्थान पर 'गुग्गुल' लेने का पाठ है। रसप्रकाशसुधाकर में इसी योग को थोड़ी भिन्नता से कहा है—

'तालमाक्षिकमनःशिलाः समाः शुद्धसूतमथ टङ्कणं तथा।
चूर्णयेच्च रसतो द्विगन्धकं गन्धतुल्यमथ ताम्रभस्मकम्॥
लोहभस्म पलतुर्यकं तथा मर्दयेच्च पलपञ्चकैः रसैः।
चुक्रजैश्च विनिवेश्य सम्पुटे दापयेच्च पुटमत्र कौक्कुटम्।
मर्दयेच्च पुनरेव तद्रसैर्निक्षिपेच्च मृतलोहशुल्बकम्॥
वेदयुग्मपलमात्रकं क्रमात् त्रिंशदंशविषमत्र योजयेत्।
महिषाज्यमधुमिश्रितं सदा सेवयेच्च किल वल्लपञ्चकम्॥
सोमराजिफलचूर्णकर्षकं सर्पिषा मधुयुतं लिहेदनु।
तालकेश्वररसः सदा बुधैः कथ्यते सकलकुष्ठहा खलु॥'

अर्थात् हड़ताल, स्वर्णमाक्षिकभस्म, मनसिल, पारा, सुहागा; प्रत्येक १ पल, गन्धक २ पल, ताम्रभस्म २ पल, लोहभस्म चौथाई पल; इन्हें यथाविधि मिला चुक्र (अम्लवेत) के ५ पल रस से मर्दन करें। पश्चात् सम्पुट में बन्द कर कुक्कुट पुट दें। स्वांगशीतल होने पर निकाल पीस कर उसमें लोहभस्म ४ पल, ताम्रभस्म २ पल और सम्पूर्ण का तीसवां भाग बछनाग मिला अम्लवेत के ही रस से घोटें। इसे भी भैंस के घी से ही सेवन का विधान है। अनुपान भी वही बाकुचीचूर्ण मधु और घी है।

रसरत्नसमुच्चय में एक और भी महातालेश्वर रस का योग है—

'तालताप्यशिलाटङ्कं रसेन्द्रलवणं समम्।
तालकाद् द्विगुणं ताम्रं मृतं तद्वच्च गन्धकम्॥
अम्लेन पञ्चशः पिष्टं जम्बीरस्य पुटे पचेत्।
लोहचूर्णस्य चत्वारो भागाः सिद्धरसस्य षट्॥
अष्टौ नेपालताम्रस्य गन्धकेन हतस्य च।
जम्बीराम्लेन तत्सर्वं मर्दितं पुटपाचितम्॥
एकत्रिंशांशगरलं माषद्वितयसम्मितम्।
मदनेन वमिं कुर्याद्विरेकं पथ्ययापि च॥

शुद्धः संशोधनं कुर्वन्मध्ये मध्ये च भक्षयेत् ।
सन्निपाते मधूकेन व्योषेण पवने हितः ॥
ग्रहणीकामलापाण्डुगुल्मार्शांसि हलीमकम् ।
क्षयं च शमयत्येष महातालेश्वरो रसः ॥'

अर्थात् हड़ताल, स्वर्णमाक्षिकभस्म, मनसिल, सुहागा, पारा, सेन्धानमक; प्रत्येक १ भाग, ताम्रभस्म २ भाग, गन्धक २ भाग; इन्हें यथाविधि मिला जम्बीर के रस से पांचवार पीसकर पुटपाक करे। पश्चात् निकालकर इसे ६ भाग ले, इस में लोहभस्म ४ भाग और उत्तम ताम्रभस्म ८ भाग मिलाकर जम्बीर के रस से मर्दन कर पुनः पुट दे। स्वाङ्गशीतल होने पर निकालकर पीस ले और उसमें इकतीसवां भाग वत्सनाभ मिला ले। इसे दो उड़द भर लेकर प्रयोग करावे। मैनफल के साथ देने से यह कै लाता है। हरड़ के चूर्ण के साथ विरेचन है। कुष्ठ में जब देहसंशोधन कराया जारहा हो तब संशोधन के बाद बीच बीच में इस रस का प्रयोग कराना चाहिये। सन्निपात में महुए वा मुलहठी के साथ और वायु में त्रिकटुचूर्ण के साथ देते हैं। यह संग्रहणी, कामला, पाण्डु, गुल्म, बवासीर, हलीमक और क्षय को भी शान्त करता है ॥ ८७—८९ ॥

विजयभैरवो रसः—

सप्तकञ्चुकनिर्मुक्तमूर्द्ध्वशुद्धं रसेन्द्रकम् ।
मृत्कटाहान्तरे तत्तु स्थापयेच्च समन्त्रकम् ॥ ९० ॥
सूताद् द्विगुणितं तालं कूष्माण्डद्रवशोधितम् ।
दोलायन्त्रेण तैलादौ सप्तधा परिशोधितम् ॥ ९१ ॥
दत्त्वाऽऽप्लाव्य द्रवैर्झिण्ट्याः किञ्चिदाप्लाव्य युक्तितः ।
तयोर्द्विगुणितं भस्म पलाशस्य परिक्षिपेत् ॥ ९२ ॥
पुनर्झिण्टीद्रवेणैव सर्वमाप्लाव्य यत्नतः ।

१ 'ऊर्ध्वलग्नं' पा० ।

खाखसार्करसैर्भूयः परिस्राव्य च पाकवित् ॥ ९३ ॥
पचेदवहितो वैद्यः शालाङ्गारेण यत्नतः ।
चतुर्विंशतियामन्तु पक्त्वा शीतलतां नयेत् ॥ ९४ ॥
अवतार्य्य काचपात्रे पिधाय तदनन्तरम् ।
प्रयत्नेन कृतप्रायाश्चित्तः शोधितदेहकः ॥ ९५ ॥
सिताहरीतकीयुक्तं खादेद् रक्तिचतुष्टयम् ।
रक्तिकैकक्रमेणैव वर्द्धयेद् दिनसप्तकम् ॥ ९६ ॥
मधूदकं पिबेच्चानु नारिकेलजलञ्च वा ।
जिङ्गिनीसम्भवं क्वाथमथवा क्षौद्रनागरम् ॥ ९७ ॥
अभ्यङ्गं सुरभितैलैः कुर्य्यात् ताम्बूलचर्वणम् ।
पवनानलसूर्यांशु-मत्स्यमांसदधीनि च ॥ ९८ ॥
शाकं ककारपूर्वञ्च वर्जयेत् मतिमान् नरः ।
वातरक्तमाममिश्रमामञ्चापि सुदारुणम् ॥ ९९ ॥
सर्वकुष्ठञ्चाम्लपित्तं विस्फोटञ्च मसूरिकाम् ।
विजयाख्यो रसो नाम्ना हन्ति दोषानसृग्दरान् ॥ १०० ॥

सातों कञ्चुकों से रहित और ऊर्ध्वपातन से ऊपर लगा हुआ (हिङ्गुलोत्थ) शुद्ध पारा एक तोला लें, इसे मन्त्रजप-पूर्वक विचार से एक मिट्टी की कड़ाही में डालें। उस पर पेठे के रस से शुद्ध की गई तथा तैल आदि में सात वार दोलायन्त्र से शुद्ध की हुई हड़ताल दो तोला, जो नीलझिण्टी (कटसरैया) के रस से भीगी हो रखें। उस के ऊपर ढाक की भस्म ६ तोले जो नीलझिण्टी के ही रस से कुछ गीली हो ढक दे। (फिर इस पर एक शराव औंधेमुँह देकर सन्धि को जलमृत्स्ना से लीप दे) अब झिण्टी का ही रस डाल कर शराव के ऊपर तक भर दे। उस रस में शराव डूब जाना चाहिये। शाल की लकड़ी के

अङ्गारों पर इसे पकायें । जब यह रस सूख जाय तब पोस्त के रस और आक के रस से क्रमशः पूर्ववत् अंगारों पर आग से पकावे । इसप्रकार चौबीस पहर तक विधिपूर्वक पकाना चाहिये । फिर शीतल होने दे । शीतल होने पर उतार ले और औषध को निकाल कर शीशी में डाल ले । इस को खाने से पूर्व रोगी शास्त्रोक्त विधि से प्रायश्चित्त और देहशुद्धि कर ले । फिर मिश्री और हरड़ के चूर्ण के साथ चार रत्ति भर इस रस को खावे । सात दिन तक मात्रा को एक २ रत्ति क्रमशः बढ़ाते जांय । अनुपान में शहद में जल मिलाकर या नारियल का जल पीवे । अथवा मंजीठ के क्वाथ को पीवे । अथवा सोंठ चूर्ण को शहद के साथ चाटे । सुगन्धियुक्त तेल शरीर पर मले । पान चबावे । इस के सेवन करने वाला वायु, अग्नि, सूर्य की धूप, मछली, मांस, दही, पत्तों के साग तथा ककाराष्टक अर्थात् करेला कूष्माण्ड आदि आठों द्रव्य ; इन्हें अपथ्य समझकर सेवन न करे । आमयुक्त वातरक्त, सुदारुण आमदोष, सब प्रकार के कुष्ठ, अम्लपित्त, विस्फोट, मसूरिका, रक्तप्रदर; इन सब रोगों को यह विजयरस दूर करता है ।

विशेषवचन—आधुनिक सामान्य मात्रा—आधी रत्ती । रत्ती का चतुर्थांश वा अष्टमांश भाग क्रमशः बढ़ावें ।

यहां पर भी गन्धक नहीं डाली जाती । हड़तालस्थित गन्धक से ही वह कार्य पूरा हो जाता है ॥ ९०—१०० ॥

कुष्ठारिरसः—

काकोडुम्बरिकाचूर्णं ब्रह्मदण्डी बलात्रयम् ।
प्रत्यहं मधुना लीढं वातरक्तापहं[1] नृणाम् ॥ १०१ ॥
चरद्रक्तं चलन्मांसं[2] माससमात्रेण सर्वथा ।
गलत्पूयं पतत्कीटं त्रिटङ्कं सेव्यमीरितम् ॥ १०२ ॥

काकोदुम्बरिका (कठूमर) का चूर्ण, ब्रह्मदण्डी, बला, अतिबला, नागबला; इन सब द्रव्यों का चूर्ण समभाग लें । इस चूर्ण को तीन टङ्क भर ले शहद

१ 'वातरक्तं निहन्ति च' पा० । २ 'चरन्मांसं' पा० ।

से खावे। यह जिस में से खून बहता हो, मांस गिरता हो, पीप बहती हो, कीड़ों से भरा हुआ हो-ऐसे कुष्ठ रोग को भी एक मास में आराम करता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—२ मासे से ४ मासे तक।

इस में कोई रस वा उपरस न होने से कुष्ठारि रस नाम न होना चाहिये। परन्तु यह नाम देने का अभिप्राय यही है कि इसमें प्रयोग के समय रससिन्दूर वा पारदभस्म की मात्रा मिला ली जाया करे तो शीघ्र लाभ होगा॥ १०१—१०२॥

षडाननगुडिका—

विषोषणं टङ्कणपारदञ्च सगन्धचूर्णञ्च समांशयुक्तम्।
जैपालचूर्णं द्विगुणं गुडाक्तं[1] संमर्द्य सर्वं गुडिका विधेया॥ १०३॥
विरेचनी सर्वविकारहन्त्री[2] लघ्वी हिता दीपनपाचनीयम्।
कुष्ठे हिता तीव्रतरे हि शूले चामाशये चाश्मगते विकारे।
संशोधनी शीतजलेन सम्यक् संग्राहिणी चोष्णजलेन युक्ता १०४

शुद्ध विष, मिरचों का चूर्ण, शुद्ध सुहागा, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य १ भाग, शुद्ध जमालगोटा २ भाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर शेष द्रव्यों का चूर्ण मिला लें। इसमें सब से दुगुना गुड़ मिला कर (दो रत्ति भर की) गोली बनावें। यह गोली विरेचन लाती है। सब विकारों को नाश करती है। लघु तथा दीपन पाचन है। कुष्ठ में हितकर है। तीव्र शूल को शीघ्र दूर करने वाली है। यह आमाशय के विकार तथा पथरी में भी हितकर है। इसे शीतल जल से खावें तो संशोधन (विरेचन) करती है और गरम जल से पी लें तो मल को संग्रह कर देती है अर्थात् दस्त बन्द हो जाते हैं।

विशेषवचन—इच्छाभेदी के सदृश ही इसे शीतल जल से देते हैं-जब संशोधन हो जाय और दस्तों को बन्द करना हो तो गरम जल पिलाना चाहिये।

---

१ 'गुडान्वितं' पा०।
२ 'सर्वविकारनाशिनी' पा०।

यहां पर कई जमालगोटा को विष आदि द्रव्यों के मिलित चूर्ण से दुगुना लेते हैं ॥ १०३—१०४ ॥

कुष्ठनाशनः—

चिरिविल्वपत्रं पथ्या शिरीषञ्च बिभीतकम् ।
काकोडुम्बरिकामूलं मूत्रैरालोड्य फेनितम् ॥ १०५ ॥
कर्षमात्रं पिबेद्रोगी गोस्तन्या सह टङ्कणम् ।
सप्तसप्तकपर्य्यन्तं सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥ १०६ ॥

करञ्ज के पत्ते, हरड़ का चूर्ण, शिरीष की छाल का चूर्ण, बहेड़ा का चूर्ण, काकोदुम्बरिका (कठूमर) की जड़ का चूर्ण; इन सब को पीसे । इस के एक कर्ष चूर्ण को गोमूत्र में घोल झागयुक्त होने पर पीजावे और इसके साथ सुहागा भुना हुआ और मुनक्का भी खावे । इसप्रकार सात सप्ताह तक करने से सभी कुष्ठ नाश हो जाते हैं ।

विशेषवचन—इस योग को भी यहां अनुपान रूप में ही जानें । पूर्व रससिन्दूर की एक मात्रा शहद के साथ चाट कर ऊपर इस का अनुपान करे । चूर्ण की आधुनिक मात्रा २ मासे है और गोमूत्र २ तोला ले । शुद्ध सुहागा २ रत्ती और मुनक्का पीते समय इसी झाग युक्त द्रव में डालकर पी सकते हैं ॥ १०५—१०६ ॥

अथ श्वित्रचिकित्सा—

अथ श्वित्रस्य वक्ष्यामि नाशनोपायमुत्तमम् ॥ १०७ ॥

आगे श्वित्र अर्थात् श्वेत कोढ़ को नाश करने के उत्तम उपाय लिखते हैं ॥ १०७ ॥

विजयानन्दो रसः—

शुद्धसूतस्य भागैकं द्विभागं शुद्धतालकम् ।
मृत्कटाहान्तरे पूर्वं स्थापयेच्च समन्त्रकम् ॥ १०८ ॥
द्वयोः समं पलाशस्य भस्म तस्योपरि क्षिपेत् ।
वक्त्रं मृत्कर्पटैर्लिप्त्वा शोषयेच्च खरातपे ॥ १०९ ॥

चतुर्विंशतियामन्तु पक्त्वा शीतलतां नयेत्।
अवतार्य काचपात्रे स्थापयेदतियत्नतः॥ ११०॥
विधिवत्सेवितश्चासौ हन्ति श्वित्रं चिरन्तनम्।
सर्वकुष्ठं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥ १११॥
रसोऽयं श्वित्रनाशाय ब्रह्मणा निर्मितः पुरा।
विजयानन्दनामाऽयं प्रसिद्धः[1] क्षितिमण्डले॥ ११२॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध हड़ताल दो भाग; दोनों को मंत्रपूर्वक एक मिट्टी की कड़ाही में डाले और इसके ऊपर तीन भाग पलाश की भस्म डाले और उसका मुख बन्द कर सन्धि को कपड़मिट्टी से लीप कर तेज़ धूप में सुखा लेवे। फिर आग पर चौबीस पहर तक पकावे। स्वांगशीतल होने पर उतार कर अन्दर के द्रव्य को निकाल पीस कर शीशी में सुरक्षित रखे। इसे विधिपूर्वक सेवन करने से पुराना श्वित्र भी दूर होता है। यह सब प्रकार के कुष्ठों को ऐसे दूर करता है जैसे सूर्य अन्धकार को। इस रस को श्वित्र-नाश के लिये पहले ब्रह्माजी ने बनाया था। इसका नाम विजयानन्द जगत में प्रसिद्ध है।

विशेषवचन—मात्रा—$\frac{1}{4}$ रत्ती से $\frac{1}{2}$ रत्ती तक। वस्तुतः यह विजयभैरव रस नाम से कहे योग का त्रुटित रूप है। उसीप्रकार ही पाक होसकता है। यहां पर कहे प्रकार से औषध का प्राप्त होना कठिन है। अतएव 'प्रसिद्धः क्षितिमण्डले' के स्थान पर रसेन्द्रचिन्तमणि आदि में 'निगूढः क्षितिमण्डले' यह पाठ है। अर्थात् यह रस बनाना रहस्यपूर्ण है १०८—११२॥

श्वित्रदद्रुपाटलालेपः—

अश्वहा रजनी हेम प्रत्यक्पुष्पी प्रदाह्य च।
चूर्णञ्च स्वर्जिकाक्षारं नीरं दत्त्वा प्रपेषयेत्॥ ११३॥
प्रच्छयित्वा ततः स्थानं मण्डलाग्रेण लिम्पति।

१ 'निगूढः' पा०।

पाटला निपतन्त्यङ्गे विस्फोटाश्चातिदारुणाः ॥ ११४ ॥
सम्भवन्ति तिला रक्ताः कृष्णवर्णा भवन्ति ते ।
मिलन्ति स्वशरीरे च दिव्यरूपो भवेन्नरः ॥ ११५ ॥

कनेर की जड़, हल्दी, धतूरा, अपामार्ग; इन सब का क्षार और सज्जी; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें और जल डाल कर पीसें। फिर श्वित्रस्थान को मण्डलाग्र शस्त्र से पछ कर इसका लेप कर दें तो अत्यन्त भयङ्कर पाटल (गुलाबी) वर्ण के स्फोट (छाले) पड़ जाते हैं। पीछे से उस स्थान पर लालरंग के तिल पैदा होते हैं। ये लाल तिल कुछ समय बाद काले तिलों में बदल जाते हैं और पीछे से कुछ काल गुज़रने पर शरीर के वर्ण के साथ मिल जाते हैं और मनुष्य दिव्य रूप होजाता है

विशेषवचन—कई केवल अपामार्ग की ही भस्म करते हैं और कनेर की जड़, हल्दी और धतूरा को वैसे ही मिलाते हैं ॥ ११३—११५ ॥

श्वित्रहरो लेपः—

सैन्धवं रविदुग्धेन पेषयित्वाऽथ मण्डलम् ।
प्रच्छायित्वा प्रलेपोऽयं श्वित्रकुष्ठविनाशनः ॥ ११६ ॥

सेंधानमक और आक का दूध दोनों को पीस कर श्वित्र मण्डल को पछ कर इस का लेप करे तो श्वित्र (श्वेत कुष्ठ) नष्ट होता है ॥ ११६ ॥

मुखश्वित्रहरो लेपः—

मुखे श्वेते च सञ्जाते कुर्याच्चेमां प्रतिक्रियाम् ।
गन्धकं चित्रकाशीशं हरितालं फलत्रयम् ॥
मुखे लिम्पेद्दिनैकेन वर्णनाशो भविष्यति ॥ ११७ ॥

मुख सफेद होगया हो तो इस चिकित्सा वा उपाय को करे—शुद्ध गन्धक, लाल चीते की जड़, हीराकसीस, हड़ताल, हरड़, बहेड़ा, आंवला; इन सब के चूर्ण को समभाग लेकर पानी मिला पीसे और मुख पर लेप करे तो श्वित्र के श्वेत रंग का एक दिन में नाश हो जाता है।

विशेषवचन--लेप आदि बाह्य प्रयोगों में वैद्य लाल चीते का ही प्रयोग करते हैं। उक्त लेप से होठों पर हुआ श्वित्र शीघ्र नष्ट होता है। इसे लगातार कुछ दिनों तक प्रतिदिन लगाना चाहिये ॥ ११७ ॥

गुञ्जाफलाग्निचूर्णस्य लेपनं श्वेतकुष्ठजित् ।
शिलाऽपामार्गभस्मापि लिप्त्वा श्वित्रं विनाशयेत् ॥११८॥

रत्तियें और लाल चीते की जड़ दोनों को समभाग पीस कर लेप करें तो श्वित्र का नाश होता है। अथवा शुद्ध मनसिल और अपामार्ग की भस्म दोनों को पीस कर लेप करें तो श्वेतकुष्ठ नष्ट होता है

विशेषवचन—लेप लगाने से पूर्व श्वित्रदेश को किसी खुरदरे पत्ते आदि से थोड़ा घिस लेना चाहिये। तभी शीघ्र लाभ होगा। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि इसप्रकार पीड़ा अधिक होती है ॥ ११८ ॥

रसमाणिक्यम्—

तालकं वंशपत्राख्यं कूष्माण्डसलिले क्षिपेत् ।
सप्तधा च त्रिधा वापि दध्नाम्लेन तथैव च ॥ ११९ ॥
शोधयित्वा पुनः शुष्कं चूर्णयेत् तण्डुलाकृति ।
ततः शरावके पात्रे स्थापयेत् कुशलो भिषक् ॥ १२० ॥
बदरीपत्रकल्केन सन्धिलेपश्च कारयेत् ।
अरुणाभं ह्यधः पात्रं तावज्ज्वाला प्रदीयते ॥ १२१ ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य माणिक्याभं हरेद्रसम् ।
तद्रक्तिद्वितयं खादेद् घृतभ्रामरमर्दितम् ॥ १२२ ॥
सम्पूज्य देवदेवेशं कुष्ठरोगाद्विमुच्यते ।
स्फुटितं गलितं कुष्ठं[1] वातरक्तं भगन्दरम् ॥ १२३ ॥
नाडीव्रणं व्रणं दुष्टमुपदंशं विचर्चिकाम् ।

१ 'यच' पा०

नासाऽस्यसम्भवान् रोगान् क्षतान् हन्ति सुदारुणान् ।
पुण्डरीकं चर्मदलं विस्फोटं मण्डलं तथा ॥ १२४ ॥

वंशपत्र हड़ताल को पेठे के रस में सात बार वा तीन बार घोट कर शोधन करे। फिर खट्टे दही के पानी में इसीप्रकार शुद्ध करे। सुखाकर चावलों के समान मोटा २ चूर्ण करे। फिर इस चूर्ण को चौड़े २ अभ्रक के पत्तों के बीच में भरकर उन पत्तों को चारों ओर से पिन आदि से बन्द करके शराव में रखे। दूसरा शराव मुंह पर देकर बेर के पत्तों को पीसकर उस से शरावों की सन्धि पर लेप कर दे। फिर इसे आग पर रख तब तक ज्वाला देवे जब तक नीचे के शराव के नीचे का भाग लाल न हो जाये। लाल हो जाने पर और आग देना बन्द कर दें। स्वांगशीतल होने पर शराव में से अभ्रक के पत्तों को निकाल खोलकर माणिक्य के समान चमकदार रस को निकाल लें। इस रस की दो रत्ति भर की मात्रा लेकर घी और शहद से मिला कर सेवन करावें। शिव का पूजन कर इसे रोगी खावे तो कुष्ठरोग से छूट जाता है। फूटा गला हुआ कुष्ठ, वातरक्त, भगन्दर, नासूर, व्रण, दुष्ट उपदंश, विचर्चिका, नाक मुख में होने वाले रोग (कुष्ठ उपदंश आदि में रक्तविकृति से होने वाले), सुदारुण क्षत (घाव), पुण्डरीक, चर्मदल, विस्फोट तथा मण्डल इन सब को यह दूर करता है।

विशेषवचन—इसका पाक वालुकायन्त्र में उत्तम होगा। ४तोला हड़ताल के लिये लगभग ३ घण्टे चाहियें। अग्नि मध्यम होनी चाहिये।

यह योग पूर्व तालकप्रकरण में (५५ पृष्ठ पर) भी कहा जा चुका है। रसमाणिक्य को निर्बल व्यक्तियों में आधी रत्ती मात्रा से प्रारम्भ करा सकते हैं। इस का प्रयोग त्वचा की बीमारियों पर अत्युत्तम होता है। विशेष कर उन कुष्ठ वा त्वग्रोगों में जिन में छिलके से उतरते हों वा स्फोट हों। पुरानी विचर्चिका में भी इसका प्रयोग होता है। श्वित्र में भी यह लाभ करता है। गलत्कुष्ठ की प्रारम्भिक अवस्था में इसका प्रयोग उसकी बढ़ती को शीघ्र ही नष्ट कर रोगी को रोगमुक्त कर देता है ॥ ११९—१२४ ॥

इति कुष्ठचिकित्सा।

१ 'च चर्माख्यं' पा०।

अथ शीतपित्तोदर्दकोठरोग-चिकित्सा ।

छुद्रयोगाः—

यमानीगुडसंमिश्रः सूतभस्मद्विवल्लकः ।
शीतपित्तं निहन्त्याशु कटुतैलविलेपनम्[1] ॥ १ ॥

रससिन्दूर तीन रत्ति को अजवायन चूर्ण और गुड से मिलाकर खावे तथा शरीर पर सरसों के तेल की मालिश करे तो शीतपित्त नष्ट होता है ।

विशेषवचन—केवल अजवाइन और गुड़ को मिलाकर भी खाने से शीतपित्त और उदर्द नष्ट होता है ।

कहा भी है--

'सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत्पथ्यान्नभुङ्नरः ।
तस्य नश्यति सप्ताहदुदर्दः सर्वदेहजः ॥'

परन्तु उस कार्य को शीघ्रता से करने के लिये योगवाही रससिन्दूर का मिश्रण कर लिया जाता है । आजकल रससिन्दूर को १ रत्ती मात्रा तक मिलाते हैं ॥ १ ॥

सिद्धार्थरजनीकल्कं प्रपुन्नाडतिलैः सह ।
कटुतैलेन सम्मिश्रमेतदुद्वर्त्तनं हितम् ॥ २ ॥

श्वेत सरसों, हल्दी, पनवाड़ के बीज और तिल; इन सब का कल्क सरसों के तेल में मिलाकर उबटना करें तो शीतपित्त उदर्द और कोठ दूर होता है ।

विशेषवचन--'कल्कं' के स्थान पर तन्त्रान्तर में 'कुष्ठ' पाठ है । तत्र लेप में एक भाग कूठ भी मिलाते हैं ॥ २ ॥

दूर्वानिशायुतो लेपः कण्डूपामाविनाशनः[2] ।
क्रिमिदद्रुहरश्चैव शीतपित्तहरः परः ॥ ३ ॥

दूब घास और हल्दी को पीसकर लेप करे तो कण्डू, पामा, क्रिमि, दाद

---

१ 'दद्रुघ्नं च प्रलेपनम्' शा. पाठः ।

२ 'कच्छुपामाविनाशनः' र. र. च. द. पाठः ।

और शीतपित्त नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

कुष्ठोक्ताश्च क्रियां कुर्यात् सर्वा युक्त्या चिकित्सकः ।
शीतपित्ते तथोदर्दे कोठे चैव समासतः ॥ ४ ॥

संक्षेप में कुष्ठरोग में कही हुई चिकित्सा को शीतपित्त उदर्द तथा कोठ रोगों में चिकित्सक युक्तिपूर्वक करे ।

विशेषवचन—इसका अभिप्राय यह है कि शीतपित्त उदर्द तथा कोठ रोग में वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण, रक्तशोधन कुष्ठ के सदृश ही हितकर है। परन्तु इन क्रियाओं को करते हुए तथा कुष्ठोक्त औषधों का सेवन कराते हुए इन में प्रवृद्ध दोषों का विचार अत्यावश्यक है ॥ ४ ॥

इति शीतपित्तोदर्दकोठ-चिकित्सा ।

अथाम्लपित्तचिकित्सा ।

अम्लपित्तान्तको-रसः--

मृतसूताभ्रलौहानां[1] तुल्यां पथ्यां विमर्दयेत् ।
माषमात्रं लिहेत् क्षौद्रैरम्लपित्तप्रशान्तये ॥ १ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, लौहभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला, हरड़ का चूर्ण तीन तोला। सब को मिला लें और पीसकर रखें। इसे एक माषा भर (६ रत्ती) ले शहद से खावें तो अम्लपित्त नष्ट होता है।

विशेषवचन—आजकल प्रायः २ रत्ती से ४ रत्ती तक प्रयोग कराते हैं। अनुपान में आंवले का जल उत्तम है।

भैषज्यरत्नावली में अभ्रकभस्म के स्थान पर ताम्रभस्म है ॥ १ ॥

लीलाविलासो रसः—

रसो बलिर्व्योम रविश्च लौहं धात्र्यक्षनीरैस्त्रिदिनं विमर्द्य ।

---

१ 'मृतसूतार्कलौहाना' भै. र. पाठः ।

तदल्पघृष्टं मृदुमार्कवेण सम्मर्दयेदस्य च वल्लयुग्मम् ॥ २ ॥
हन्त्यम्लपित्तं मधुनावलीढं लीलाविलासो रसराज एषः ।
छर्दिं सशूलं हृदयस्य दाहं निवारयेदेष न संशयोऽस्ति ॥ ३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लौहभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर आंवले और बहेड़े के क्काथ से तीन दिन तक घोटें फिर कोमल भांगरे के पत्तों के रस से थोड़ा घोटकर रखें। इस की तीन रत्ति की मात्रा को शहद के साथ घोट कर चाटें। अम्लपित्त, वमन, शूल, हृदय का दाह; इन सब को यह लीलाविलास रस दूर करता है—इस में संशय नहीं।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक। इसे चाटकर ऊपर से दूध, या पेठे का रस पीवे अथवा आंवले के चूर्ण में मिश्री मिला खावे।

यह अम्लपित्त में अत्यन्त प्रसिद्ध योग है और इससे अति प्रवृद्ध अम्लपित्त में भी शीघ्र लाभ होते देखा गया है।

रसरत्नसमुच्चय में जो लीलाविलास रस है उसमें लौहभस्म के स्थान पर रौप्यभस्म है और उन सब द्रव्यों को मिश्रित कर लघुपुट देना है। पश्चात् त्रिफला के क्काथ से २५ भावना और भांगरे के रस से २५ भावना देकर सुखा लेना है। इसे मात्रा में मधु के साथ सेवन कराने का आदेश है—

'शुद्धसूतं शुद्धगन्धं मृतं ताम्राभ्ररौप्यकम्।
तुल्यांशं मर्दयेद्यामं रुद्ध्वा लघुपुटे पचेत् ॥
अक्षधात्रीहरीतक्या क्रमवृद्ध्या विपाचयेत्।
जलेनाष्टगुणेनैव ग्राह्यमष्टावशेषितम् ॥
अनेन भावयत्सर्वं पूर्वसूतं[3] पुनः पुनः।

---

१ अस्यानन्तरं रसेन्द्रचिन्तामणौ तु 'दुग्धं सकूष्माण्डरसं सधात्रीफलं शनैस्तत्सासितं भजेद्वा' इति पाठान्तरमुपलभ्यते।

२ 'रोचनम्' इति योगरत्नाकरे प्रमादकृतः पाठः।

३ 'पक्वसूतं' यो. र. पाठः।

पञ्चविंशतिवारञ्च तावता भृङ्गजैर्द्रवैः ॥
शुष्कं तच्चूर्णितं खादेत्पञ्चगुञ्जं मधुप्लुतम् ।
रसो लीलाविलासोऽयमम्लपित्तं नियच्छति ॥ '

यहां पर भावनार्थ त्रिफला में बहेड़ा १ भाग, आंवला २ भाग और हरड़ ३ भाग लेने को कहा है। आठ गुने जल में पका अष्टमांश रहने पर उतार लेना है ॥ २—३ ॥

पानीयभक्तवटिका—

त्रिवृता[1] मुस्तकञ्चैव त्रिफला त्र्यूषणं तथा ।
प्रत्येकन्तु पलं भागं तदर्द्धौ रसगन्धकौ ॥ ४ ॥
लौहाभ्रकविडङ्गानां प्रत्येकञ्च पलद्वयम् ।
एतत्सकलमादाय चूर्णयित्वा विचक्षणः ॥ ५ ॥
त्रिफलायाः कषायेण वटिकां कारयेद् भिषक् ।
एकैकां भक्षयेत् प्रातस्तक्रञ्चापि[2] पिबेदनु ॥ ६ ॥
हन्ति शूलं पार्श्वशूलं[3] कुक्षिबस्तिगुदे रुजम् ।
श्वासं कासं तथा कुष्ठं ग्रहणीदोषनाशिनी ॥ ७ ॥

त्रिवी, मोथा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक२ पल, शुद्ध पारा आधा पल, शुद्ध गन्धक आधा पल, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, वायविडंग; प्रत्येक द्रव्य दो २ पल लें। प्रथम पारा गन्धक की कज्जली करें फिर शेष सब द्रव्यों के चूर्णों को मिला मर्दन करें। इसे त्रिफला के क्वाथ से घोटकर गोलियां बनावें। प्रातःकाल एक गोली खाकर ऊपर से तक्र

---

१ 'त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं त्रिवृता चित्रकं तथा। प्रत्येकं कार्षिकं दद्यात् सूतगन्धौ तदर्धकौ। लौहाभ्रकविडङ्गानां दद्यात्कर्षद्वयं तथा' भै. र. पाठः ।

२ 'प्रातर्भक्तवारि' भै. र. पाठः ।

३ हन्ति शूलं त्रिदोषोत्थमम्लपित्तं विशेषतः । हृच्छूलं पार्श्वशूलं च कुक्षिबस्तिगुदे रुजम्' भै. र. पाठः ।

पीवें। यह शूल, पार्श्वशूल, पेट का शूल, बास्तिशूल, गुदा का शूल, श्वास, कास, कुष्ट और ग्रहणीदोष को नष्ट करती ह।

विशेषवचन—मात्रा—२ रत्ती।

भैषज्यरत्नावली के पाठ में चित्रक चूर्ण १ भाग अधिक है। अनुपान में वहां तक्र के स्थान पर भक्तवारि (कांजी) है॥ ४—७॥

अथ क्षुधावतीगुटिका—

तत्र अभ्रकशुद्धिः—

आशुभक्तोदकैः पिष्टमभ्रकं तत्र संस्थितम्।
कन्दमाणास्थिसंहार-खण्डकर्णरसैरथ॥ ८॥
तण्डुलीयकशालिञ्च-कालमारिषजेन च।
वृश्चीरबृहतीभृङ्ग-लक्ष्मणाकेशराजकैः॥ ९॥
पेषणं भावनं कुर्य्यात् पुटञ्चानेकशो भिषक्।
यावन्निश्चन्द्रकं तत् स्याच्छुद्धिरेवं विहायसः॥ १०॥

क्षुधावती गुटिका को तय्यार करने के लिये निम्नप्रकार से द्रव्यों का शोधन वा मारण आवश्यक है—काले वज्राभ्रक के चूर्ण को आशुनामक धान्यों के चावलों के भात से बनाई हुई कांजी में एक दिन रात डुबा रखे। फिर उसी से पीस लेवे। अनन्तर ज़मीकन्द, माणकन्द, हड़जोड़ी, खारकोन (वज्रकन्द), चौलाई, शालिञ्चशाक, बड़े पत्तों की चौलाई, श्वेत पुनर्नवा, बड़ी कटेली, भांगरा, लक्ष्मणा, केशराज; इन के पृथक् २ अथवा मिलित रसों से अनेक वार पीसे, भावना देवे और पुट देवे। यह क्रिया तब तक करता जाय जब तक अभ्रक की निश्चन्द्र भस्म न हो जाय। इसप्रकार से अभ्रक की शुद्धि तथा भस्म होती है॥ ८—१०॥

तत्र लौहशुद्धिः—

स्वर्णमाक्षिकशालिञ्च-ध्मातं निर्वापितं जले।
त्रैफलेऽथ विचूर्ण्यैवं लौहं कान्तादिकं पुनः॥ ११॥

बृहत्पत्र-करीकर्ण-त्रिफलावृद्धदारजैः ।
माणकन्दास्थिसंहार-शृङ्गवेरभवै रसैः ॥ १२ ॥
दशमूलीमुण्डितिका-तालमूलीसमुद्भवैः ।
पुटितं साधु यत्नेन शुद्धिमेवमयो व्रजेत् ॥ १३ ॥

कान्तलौह आदि उत्तम लौह के चूर्ण को स्वर्णमाक्षिक (लौह से $\frac{1}{16}$ भाग) तथा शालिञ्च शाक से पीसकर आग पर लाल करे फिर त्रिफला के क्वाथ में बुझावे। (अथवा लोहे के पतले पत्र पर इस लेप को करके धौंकनी से धौंक लाल करके त्रिफला क्वाथ में बुझा सकते हैं) फिर उस लौहचूर्ण को, बृहत्पत्र (लोध विशेष), हस्तिकर्ण पलाश, त्रिफला, विधारा, माणकन्द, ज़मींकन्द, हड़जोड़ी, अदरक, दशमूल, मुण्डी, मूसली, इन ग्यारह पुटन द्रव्यों के पृथक् २ वा मिलित स्वरस से अथवा क्वाथ से घोट २ कर पुटें देता जाय जब तक ठीक भस्म न होजाय। इसप्रकार से लौहशुद्धि तथा लौहभस्म होता है।

विशेषवचन-बुझाने के लिये त्रिफला (मिलित) शोधनीय लोहे के समान ली जाती है। आठगुना जल में क्वाथ करते हैं। चतुर्थांश शेष रह जाय तब उतारकर छान लेते हैं। यह विधान लौहशोधन प्रकरण में (६३ पृष्ठ पर) कहा जा चुका है। अथवा कई चक्रदत्त में कही अमृतसार लौह की विधि से त्रिफलाक्वाथ बना उसमें बुझाते हैं। उसके बहुत विस्तृत होने से हम यहां नहीं लिखते। और नाही आजकल उसका प्रचार है। उसे वहीं देख सकते हैं। इसप्रकार लौह को बुझाने के पश्चात् भानुपाक तथा स्थालीपाक करके बृहत्पत्र (लोध्रविशेष) आदि के यथालाभ रस वा क्वाथ से घोट घोट कर पुटें देते जाते हैं जबतक कि उसकी ठीक भस्म नहीं हो जाती। यदि स्वरस न प्राप्त हो सके तो उस द्रव्य का क्वाथ लिया लाता है। लौह को पुटें देने के लिये पुटन द्रव्य लोह के समान लेकर उस द्रव्य के मृदु मध्य वा कठोर गुण के अनुसार चौगुना आठ गुना वा सोलह गुना जल देकर उबालते हैं। जब क्वाथ लोहे के समपरिमाण रह जाता है अर्थात् क्रमशः चौथाई, आठवां भाग और सोलहवां भाग जल रह जाता है तब उतार कर छान लिया जाता है। उससे लोहे को घोट कर टिकिया बना पुट देते हैं। अथवा सा-

मान्यतः लोहे के समान पुटन द्रव्य को लेकर आठ गुना जल डालकर अष्ट-मांश रहने पर उतार कर छान लिया जाता है।

उक्त पुटनद्रव्यों को पृथक् २ और मिलाकर भी स्वरस वा क्वाथ ले सकते हैं ॥ ११—१३ ॥

तत्र मण्डूरशुद्धिः—

वशिरं श्वेतवाट्यालं मधुपर्णी मयूरकम् ।
तण्डुलीयञ्च वर्षाह्वं दत्त्वाधश्चोर्द्ध्वमेव च ॥ १४ ॥
पाक्यं सुजीर्णमण्डूरं गोमूत्रेण दिनत्रयम् ।
यथान्तर्बाष्पदग्धं[1] स्यात् तथा स्थाप्यं दिनत्रयम् ।
एवं विशोधितं लौहकिट्टं ग्राह्यं विचूर्णितम्[2] ॥ १५ ॥

एक हांडी में हुलहुल, श्वेत बला, गिलोय, अपामार्ग, चौलाई, पुनर्नवा; इन की जड़ पत्ते और छाल आदि नीचे ऊपर रख बीच में पुराना मण्डूर (कम से कम ६० वर्ष से कम का न होना चाहिये) रखें और ऊपर से गो मूत्र भरकर तीन दिन तक पकावें। पश्चात् हांडी के मुख पर शराव देकर सन्धिबन्धन करदें और नीचे से तीव्र आग दें। इसप्रकार तीन दिन तक अन्तर्धूम पाक करें। इसप्रकार मण्डूर का शोधन और उसकी भस्म हो जाती है। इसे निकाल कर चूर्ण कर लें।

विशेषवचन—इसे सबसे अन्त में पानी से धो लिया जाता है और धूप में सुखा लिया जाता है ॥ १४—१५ ॥

तत्र रसशुद्धिः—

जयन्त्या वर्द्धमानस्य आर्द्रकस्य रसेन च[3] ।
वायस्याश्चानुपूर्व्यैवं मर्दनं रसशोधनम् ॥ १६ ॥

जयन्ती, एरण्ड, अदरक और मकोय के स्वरस से क्रमशः घोटने से पारा शुद्ध हो जाता है।

---

१ 'अन्तर्बाष्पमदग्धं च' पा० । २ 'विचूर्णितं शुद्धिरियं लौहकिट्टस्य दर्शिता' पा० । ३ 'तु' पा०

विशेषवचन—यह पारदशोधन की विधि पूर्व भी पारदविषय में कह आये हैं। वहां यह भी बताया है कि इन रसों से तबतक घोटते जांय जब तक वह रस सूख जाय। ऐसा प्रत्येक रस से सात वार करना चाहिये। पश्चात् गरम कांजी से धो डालें ॥ १६ ॥

तत्र गन्धकशुद्धिः—

गन्धकं नवनीताख्यं क्षुद्रितं लौहभाजने।
त्रिधा चण्डातपे शुष्कं भृङ्गराजरसाप्लुतम् ॥ १७ ॥
ततो वह्नौ द्रवीभूतं त्वरितं वस्त्रगालितम्।
यत्नाद् भृङ्गरसे क्षिप्तं पुनः शुष्कं विशुद्ध्यति ॥ १८ ॥

आंवलासार गन्धक को लोहे के पात्र में कूट कर चावलों के कण के सदृश कर ले और भांगरे का रस उस में डालकर तीव्र धूप में सुखावे। इसप्रकार तीन वार रस डालकर सुखावे। अब एक हांडी में भांगरे का रस डाल मुख पर घी से तर पतला कपड़ा बांध दे। फिर गन्धक को लोहे की कड़छी में आग पर रख पिघलावे और पिघलते ही हांडी के मुख पर बांधे कपड़े पर डाल दे। गन्धक छन कर भांगरे के रस में जा गिरेगी। उसे निकाल कर सुखा लें। इस प्रकार गन्धक शुद्ध हो जाती है।

विशेषवचन–भांगरे का रस तीन दिन सुखाने के पश्चात् वैद्य शुद्ध जल से धो लेते हैं। इसीप्रकार अन्त में भी भांगरे के रस से गन्धक को निकाल कर जल से धो डालते हैं और फिर सुखा कर चूर्ण कर लेते हैं।

गन्धक को आप्लुत करने में भांगरे का रस उतना ही दिया जाता है जिसमें वह डूब जाय ॥ १७—१८ ॥

अथ क्षुधावतीप्रस्तुतीकरणम्—

गगनाद् द्विपलं चूर्णं लौहस्य पलमात्रकम्।
लौहकिट्टपलार्द्धञ्च सर्वमेकत्र संस्थितम् ॥ १९ ॥
मण्डूकपर्णीवशिर-तालमूलीरसैः पुनः।

वरीभृङ्गकेशराजकाल[1]मारिषजैरथ ॥ २० ॥
त्रिफलाभद्रमुस्ताभिः स्थालीपाकाद्विचूर्णितम् ।
रसगन्धकयोः कर्ष[2] प्रत्येकं ग्राह्यमेकतः[3] ।
तन्मसृणे[4] शिलाखल्ले यत्नतः कज्जलीकृतम् ॥ २१ ॥
वचा चव्यं यमानी च जीरके शतपुष्पिका ।
व्योषं मुस्तं विडङ्गञ्च ग्रन्थिकं खरमञ्जरी ॥ २२ ॥
त्रिवृता चित्रको दन्ती सूर्यावर्त्तः सितस्तथा ।
भृङ्गमाण[5]कन्दाश्च खण्डकर्णक एव च ॥ २३ ॥
दण्डोत्पला केशराजं काला[6] कर्कटकोऽपि च ।
एषामर्द्धपलं ग्राह्यं पटघृष्टं सुचूर्णितम् ॥ २४ ॥
प्रत्येकं त्रिफलायाश्च पलार्द्धं पलमेव च[7] ।
एतत्सर्वं[8] समालोड्य लौहपात्रे तु भावयेत् ॥ २५ ॥
आतपे दण्डसङ्घृष्टमार्द्रकस्य रसैस्त्रिधा ।
तद्रसेन शिलापिष्टं गुडिकां कारयेद् भिषक् ॥ २६ ॥
बदरास्थिनिभां शुष्कां सुगुप्ताञ्च निधापयेत् ।
तत्प्रातर्भोजनादौ तु सेवितं गुडिकात्रयम् ॥ २७॥
अम्लोदकानुपानञ्च हितं मधुरवर्जितम् ।
दुग्धञ्च नारिकेलञ्च वर्जनीयं विशेषतः ॥ २८ ॥
भोज्यं यथेष्टमिष्टञ्च वारिभ[9]क्ताम्लकाञ्जिकम् ।

---

१ 'कणामारिषजैरथ ' पा० ।
२ ' कर्षौ ' पा० । ३ 'ग्राह्यमेव च' पा० । ४ 'तन्मर्दितं' 'तन्मनाक् च' पा० ।
५ ' भृङ्गमाणककन्दौ ' पा० । ६ 'कालकंकडकोऽपि ' 'कालावकरकोऽपि' पा० ।
७ ' वा ' पा० । ८ ' सतसे ' पा० । ९ ' वारितक्राम्लकांजिकम् ' पा० ।

हन्त्यम्लपित्तं विविधं शूलञ्च परिणामजम् ॥ २९ ॥
पाण्डुरोगञ्च गुल्मञ्च[1] शोथोदरगुदामयान् ।
यक्ष्माणं पञ्चकासांश्च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ ३० ॥
प्लीहानं श्वासमानाहमामवातं सुदारुणम्[2] ।
गुडी क्षुधावती सेयं विख्याता रोगनाशिनी[3] ॥ ३१ ॥

पूर्व लिखित प्रकार से प्रस्तुत अभ्रकभस्म दो पल, लौहभस्म एक पल, मण्डूरभस्म आधा पल; इन सब को एकत्र पीसकर मण्डूकपर्णी, श्वेत हुलहुल तथा मूसली; इन के स्वरसों को एकत्र मिला मिलित चूर्ण के समभाग अर्थात् ३॥ पल डाल प्रथम वार स्थालीपाक करे। फिर शतावर, भांगरा, केशराज, बड़ी चौलाई; इन का स्वरस (चूर्ण के समभाग ही) डालकर दूसरी वार स्थालीपाक करे। फिर त्रिफला तथा मोथा के मिलित क्वाथ को डालकर तीसरी वार स्थालीपाक करे। पश्चात् उस का चूर्ण करले। इस में पूर्वोक्त विधि से शुद्ध पारा एक कर्ष, तथा पूर्वोक्त विधि से ही शुद्ध गन्धक एक कर्ष की कज्जली तथा वच, चव्य, अजवायन, काला जीरा, श्वेत जीरा, सोये, सोंठ, मिरच, पिप्पली, मोथा, वायविडंग, पिप्पलामूल, अपामार्गमूल, त्रिवी (निसोत), चीता, दन्तीमूल, श्वेत हुलहुल, भांगरा, मानकन्द, ज़मींकन्द, खण्डकर्ण या खारकोन, दण्डोत्पला की जड़, केशराज, कालियाकड़ा, काकड़ासिंगी; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण आधा २ पल, हरड़, बहेड़ा, आंवला; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण डेढ़ २ पल मिला ले। अब इन्हें लोहे के पात्र में धूप में अदरक के रस से तीन वार घोट कर भावना देवे। फिर पत्थर के खरल में इस औषध को डालकर अदरक के रस से घोटकर बेर की गुठली के बराबर गोली बना लें और सुरक्षित रखें। प्रातःकाल भोजन के आदि में तीन गोली खावे और ऊपर से कांजी आदि अम्ल द्रव रोगी पीवे। इस में मधुर रस विशेषतः दूध तथा नारियल वर्जित हैं। अन्य यथेष्ट भोजन करें। वारिभक्त (पकाने के बाद ही शीतल जल में डाला गया भात), खटाई, कांजी खावे।

१ 'सर्वञ्च' पा० । २ '[illegible]' पा० । ३ 'रोगहारिणी' पा० ।

अम्लपित्त, विविध शूल, परिणामशूल, पाण्डुरोग, गुल्म, शोथ, उदररोग, गुदारोग (बवासीर आदि), राजयक्ष्मा, पांच प्रकार की खांसी, मन्दाग्नि, अरुचि, प्लीहा, श्वास, आनाह, दारुण आमवात; इन सब रोगों को यह गुटिका नष्ट करती है। यह क्षुधावती गुडिका रोगनाशक प्रसिद्ध है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक। स्थालीपाक के लिये द्रव लौहप्रकरण में कही स्थालीपाक की विधि के अनुसार लेना चाहिये। चक्रदत्त में पारद और गन्धक प्रत्येक दो २ कर्ष लेने का पाठ है। वहां ज़मीकन्द नहीं है ॥ १९—३१ ॥

अविपत्तिकरं चूर्णम्—

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडञ्चैव[1] विडङ्गकम्।
एल पत्रञ्च सर्वञ्च समभागं विचूर्णयेत् ॥ ३२ ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि लवङ्गं तत्समं भवेत्।
सर्वचूर्णाद् द्विगुणितं त्रिवृच्चूर्णं प्रदापयेत् ॥ ३३ ॥
सर्वमेकीकृतं यावत् तावच्छर्करया ऽन्वितम्।
सर्वमेकीकृतं तत्तु स्निग्धभाण्डे[2] निधापयेत् ॥ ३४ ॥
भोजनादौ ततो ऽन्ते च मध्वाज्याभ्यामिदं शुभम्।
शीततोयानुपानञ्च नारिकेलोदकं तथा ॥ ३५ ॥
ततो यथेष्टमाहारं कुर्य्यात् क्षीररसाशनः।
अम्लपित्तं निहन्त्याशु विबद्धमलमूत्रकम् ॥ ३६ ॥
अग्निमान्द्यभवान् रोगान् नाशयेच्चाविकल्पतः।
बलपुष्टिकरञ्चैव शूलदुर्नामनाशनम् ॥ ३७ ॥
प्रमेहान् विंशतिञ्चैव मूत्राघातांस्तथाऽश्मरीम्।

---

१ 'बीजञ्चैव' पा०।
२ 'पात्रे' पा०।

अविपत्तिकरं चूर्णमगस्त्यमुनिभषितम् [1] ॥ ३८ ॥

सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, मोथा, विड्लवण, विडंग, छोटी इलायची, तेजपात; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला। लौंग का चूर्ण ग्यारह तोला। त्रिवी का चूर्ण चवालीस तोला। खांड छियासठ तोला। सब को मिला पीसकर घी से चिकने पात्र में रखे। इसे भोजन के आदि तथा तथा अन्त में घी और शहद मिलाकर खावे। ऊपर से ठण्डा पानी या नारियल का जल पीवे। इस में दूध, मांसरस तथा अन्य यथेष्ट आहार करे। यह कब्ज़ तथा मूत्र की रुकावट से युक्त अम्लपित्त को शीघ्र नष्ट करता है। अग्निमांद्य से होने वाले रोगों को निश्चित नाश करता है। बल और पुष्टि देता है। शूल तथा बवासीर का नाशक है। बीस प्रकार के प्रमेह, मूत्राघात तथा पथरी; इन सब को यह अगस्त्य मुनि का कहा हुआ अविपत्तिकर चूर्ण नाश करता है।

विशेषवचन—मात्रा—१ मासे से ४ मासे तक। यह अम्लपित्त में प्रसिद्ध योग है। यदि रोगी को कब्ज़ हो तो इसका प्रयोग अत्यन्त हितकर होता है। बवासीर शूल आदि में भी यह योग विशेष लाभ करता है। आजकल इसे ताज़े पानी वा शृत-शीतल जल के साथ देते हैं ॥३२-३८॥

इति अम्लपित्त-चिकित्सा।

अथ विसर्प-विस्फोट-तन्तुकरोग-चिकित्सा।

कालाग्निरुद्रो रसः--

सूताभ्रकान्तलौहानां भस्म गन्धकमाक्षिकम्।
वन्यकर्कोटकद्रावैस्[2]तुल्यं मर्द्यं दिनावधि ॥ १ ॥
वन्यकर्कोटिकाकन्दे[3] क्षिप्त्वा लिप्त्वा मृदा बहिः।

---

१ 'चूर्णमगस्त्यऋषिणोदितम्' 'चूर्णमगस्त्यविहितं शुभम्।' पा०।
२ 'वन्ध्यकर्कोटकद्रावैः' पा०।
३ 'वन्ध्याकर्कोटिकां पिष्ट्वा स्थाप्यं लेप्यं मृदा बहिः।' र. र. पाठः।

भूधराख्ये पुटे पश्चाद्दिनैकं तद्विपाचयेत्[1] ॥ २ ॥
दशांशं विषं योज्यं माषमात्रन्तु भक्षयेत्[2] ।
रसः कालाग्निरुद्रोऽयं दशाहेन विसर्पनुत् ।
पिप्पलीमधुसंयुक्तमनुपानं प्रकल्पयेत् ॥ ३ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, कान्तलोहभस्म, शुद्ध गन्धक, स्वर्णमाक्षिकभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर जंगली ककोड़े के रस से एक दिन मर्दन करे। फिर जंगली ककोड़े के कन्द में इस चूर्ण को भरकर बाहर से मिट्टी लीपकर सुखाकर भूधरयन्त्र में एक दिन पकावे। पश्चात् निकाल कर पीसकर इस में दसवां भाग शुद्ध विष मिलाकर रखे। इसे एक माषा (६ रत्ती) भर लेकर पिप्पली के चूर्ण और शहद से रोगी खावे तो दस दिन में विसर्परोग नाश हो जाता है। इस का नाम कालाग्निरुद्र रस है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक।

बन्यकर्कोटक के स्थान पर बन्ध्याकर्कोटक पाठ है, वही उचित भी है। वन्ध्याकर्कोटक बांझककोड़े को कहते हैं।

पूर्व रससिन्दूर आदि को बांझककोड़े के रस में मर्दन करके सुखालें फिर बांझककोड़े के कन्द को बीच में से खोखला कर औषध को भर दें और उसके मुँह को उसी निकले कल्क से बन्द करके ऊपर मिट्टी लीप दें। यदि कन्द छोटे हों तो उन्हें पीस कर लुगदी बनालें और औषध के गोलक पर उसे चढ़ा कर कपड़मिट्टी कर दें। सूख जाने पर भूधरपुट दें। इसीसे मिलता 'विसर्पजिद्रस' नामक योग रसरत्नसमुच्चय में है—

'कान्तगन्धकतीक्ष्णाभ्रविषताप्यसमन्वितः ।
वन्ध्याकर्कोटकीकन्दे पक्वः सूतो विसर्पजित् ॥'

अर्थात् कान्तलौहभस्म, गन्धक, तीक्ष्णलोहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध विष, स्वर्णमाक्षिकभस्म, पारद; इन्हें यथाविधि मिश्रित कर बांझककोड़े के कन्द में पकावें। यह योग विसर्प को जीतता है।

इसके अनुसार प्रकृत ग्रन्थ के 'सूताभ्रकान्तलौहानां' पाठ में 'लौह'

---

१ 'तं विचूर्णयेत्' र. र. पाठः। २ 'रसरत्नाकरे श्लोकपङ्क्तिरियं नास्ति।

से तीक्ष्णलौहभस्म भी ली जासकती है ॥ १—३ ॥

प्रक्रियान्तरम्—

पित्तनाशकभैषज्यं योगवाहि रसं सुधीः ।
कुष्ठोद्दिष्टक्रियां सर्वामपि कुर्य्याद्भिषग्वरः ॥ ४ ॥

पित्तनाशक औषध तथा योगवाही रस का प्रयोग और कुष्ठरोग में कही हुई सभी क्रियायें विसर्परोग में विद्वान् वैद्य करे ॥ ४ ॥

विस्फोटकारिरसः—

गुडूचीनिम्बजैः क्वाथैः खदिरेन्द्रयवाम्बुना ।
कर्पूरत्रिसुगन्धिभ्यां युक्तं सूतं द्विवल्लकम् ।
विस्फोटं त्वरितं हन्याद्वायुर्जलधरानिव ॥ ५ ॥

रससिन्दूर तीन रत्ति ले उस में कर्पूर, इलायची, तेजपात का चूर्ण मिलाकर गिलोय, नीम के क्वाथ तथा खैर की लकड़ी और इन्द्रजौ के क्वाथ से सेवन करें तो विस्फोट को इतना शीघ्र दूर करता है जितना शीघ्र वायु बादलों को।

विशेषवचन—रससिन्दूर की आधुनिक मात्रा—आधी रत्ती से एक रत्ती पर्यन्त।

आधी रत्ती रससिन्दूर में आधी रत्ती कपूर तथा इलायची दालचीनी और तेजपत्र; प्रत्येक का चूर्ण आधी रत्ती मिलाकर गिलोय आदि के क्वाथ से दें। इससे पित्त का नाश भी होता है, रक्तशोधन होता है, कर्पूर आदि के कीटाणुनाशक होने से उसके कीटाणु भी नष्ट होते हैं। ये द्रव्य कफ को बाहिर भी निकालते हैं जिससे इसमें उत्पन्न होने वाले कास में भी लाभ होता है। कर्पूर पसीने के साथ बाहिर निकल कर जहां विस्फोट के कीटाणुओं को नष्ट करता है वहां कण्डू और वेदना को भी हटाता है। कर्पूर हृदय को भी उत्तेजित करता है। रससिन्दूर में कीटाणुनाशन आदि गुण है वह यकृत् का उत्तेजक भी है और कास में विशेष हितकर है। योगवाही होने से अन्य द्रव्यों की शक्ति को भी बढ़ा देता है। विस्फोट और मसूरिका आदि में भी पारद उनका प्रतिबन्धक माना गया है ॥ ५ ॥

स्नायुकारियोगः—

गव्यं सर्पिस्त्र्यहं पीत्वा निर्गुण्डीस्वरसं त्र्यहम् ।
विविधं[1] स्नायुकश्चोग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ ६ ॥

पूर्व गौ का घी तीन दिन पीकर संभालू का स्वरस तीन दिन पीवे तो विविध प्रकार का नारुआ रोग अवश्य नष्ट होता है ॥ ६ ॥

तन्तुकारियोगः—

सप्तपर्णशिफाकल्क-[2]पानाद्वा लेपनात् तथा ।
मुषलीमूलपानात्तु तन्तुकाख्यो विनश्यति ॥ ७ ॥

अथवा सतौना की जड़ की छाल के कल्क को खाने और लेप करने से अथवा मूसली की जड़ का रस वा क्वाथ पीने से नारुआ रोग नष्ट होता है ॥७॥

इति विसर्प-विस्फोट-तन्तुकरोग-चिकित्सा।

अथ मसूरिकारोगचिकित्सा ।

दुर्लभो रसः—

अथ शुद्धस्य सूतस्य मूर्च्छितस्य मृतस्य च ।
द्वि[3]बलापिप्पलीधात्रीरुद्राक्षघृतमाक्षिकैः ।
पापरोगान्तको योगः पृथिव्यामेव दुर्लभः ॥ १ ॥

शुद्ध पारे की भस्म अथवा रससिन्दूर, बला, श्वेत पुष्प की बला, पिप्पली, आंवला, रुद्राक्ष; इन सब द्रव्यों का चूर्ण समभाग ले एकत्र करे। फिर उचित मात्रा में ले, घी और शहद मिला कर चाटें। ऐसा पापरोगान्तक योग पृथिवी

---

१ 'पिबेत्स्नायुकमत्युग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः' र. र. पाठः ।

२ 'कल्कः पानालेपप्रयोगतः । त्र्यहात्स्नायुकमत्युग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः' र. र. पाठः । ३ 'धवला' र. चि., र. र. पाठः ।

४ 'अस्यानन्तरं 'मर्दनं कारयेत्खल्ले गुञ्जामानां वटीं चरेत् ।' इत्यधिकः पाठः भैषज्यरत्नावल्याम् ।

भर में दुर्लभ है। अर्थात् यह अवश्य ही मसूरिका को नाश करता है।

विशेषवचन—"द्विबला" की जगह "धवला" पाठान्तर भी है। पर "द्विबला" पाठ व्यवहार में प्रचलित हो गया है। 'धवला' से अनन्तमूल अथवा श्वेत अपराजिता ले सकते हैं। मात्रा १ रत्ति पर्याप्त है।

'पापरोग' मसूरिका (Small Pox) का नाम है। रोमान्तिका (खसरा) में भी इसे दे सकते हैं। इस योग का नाम 'पापरोगान्तक' वा 'मसूरिकान्तक' भी है॥ १॥

इति मसूरिकारोग-चिकित्सा।

अथ क्षुद्ररोगचिकित्सा।

क्षुद्ररोगेषु मतिमांस्तत्तदौषधयोगतः।
भस्मसूतं प्रयुञ्जीत तथाऽत्र योगवाहिकम्॥ १॥

क्षुद्र रोगों में विद्वान् वैद्य रससिन्दूर को उस २ रोग के नाश करने वाली औषधों से मिला कर दे। अथवा योगवाही रसों को प्रयुक्त करे॥ १॥

इति क्षुद्ररोग-चिकित्सा।

अथ मुखरोगचिकित्सा।

चतुर्मुखो रसः—

मृतं सूतं मृतं स्वर्णं द्वाभ्यां तुल्यां मनःशिलाम्।
विमर्दयेच्च तैलेन चातसीसम्भवेन च॥ १॥
तद्गोलं वस्त्रतो बद्ध्वा लेपयेच्च समन्ततः।
अतसीफलकल्केन दोलायन्त्रे त्र्यहं पचेत्।
उद्धृत्य धारयेद्वक्त्रे जिह्वादन्तास्यरोगनुत्॥ २॥

रससिन्दूर, स्वर्णभस्म; प्रत्येक एक २ तोला, शुद्ध मनसिल दो तोला; सब को एकत्र पीस कर अलसी के तेल से मर्दन करे और गोला बनालें। फिर इस गोले को वस्त्र में बांध कर चारों ओर से अलसी के बीजों के कल्क से लेपन करें और दोलायन्त्र में (अलसी के क्वाथ में) तीन दिन पकावें। फिर निकाल कर मुंह में रखें तो जीभ दांत और मुख के रोग नाश होते हैं।

विशेषवचन—मुख में रखने के लिये $\frac{1}{2}$ रत्ती $\frac{1}{4}$ रत्ती तक की गोली बनायी जाती है ॥ १--२ ॥

पार्वतीरसः—

पार्वतीकाशिसम्भूतौ दरदो मधुपुष्पकम्।
गुडूची शाल्मली द्राक्षा धान्यभूनिम्बमार्कवम् ॥ ३ ॥
तिलमुद्गपटोलञ्च कूष्माण्डं लवणद्वयम्।
यष्टिका धान्यकं भस्म चान्तर्दग्धं समं समम् ॥ ४ ॥
मुखरोगं निहन्त्याशु पार्वतीरस उत्तमः।
पित्तज्वरं चिरं हन्ति तिमिरञ्च तृषामपि ॥ ५ ॥

शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, शुद्ध हिंगुल, महुए के फूल, गिलोय, सेमल की जड़, दाख, धनियां, चिरायता, भांगरा, तिल, मूंग, पटोलपत्र, पेठा, सेंधानमक, सोंचललवण, मुलहठी, धनियां; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिला कर खरल करे। इसे शरावसम्पुट में बन्द कर हलकी सी पुट दे। पश्चात् निकाल कर पीस ले। इस पार्वती रस से शीघ्र ही मुखरोग दूर होता है। पुराने पित्तज्वर को, तिमिर नामक नेत्ररोग को तथा तृषा (प्यास) को यह शान्त करता है।

विशेषवचन—इसे दो या तीन रत्ति लेकर मुख में रख रोगी चूसे ॥३-५॥

मुखरोगहरी—

रसगन्धौ समौ ताभ्यां द्विगुणञ्च शिलाजतु।
गोमूत्रेण विमर्द्याथ सप्तधाऽऽर्द्रद्रवेण च ॥ ६ ॥

---

१ 'सप्तधार्कद्रवेण च' भै. र. पाठः।

जातीनिम्बमहाराष्ट्री-रसैः सिध्यति पाकहा ।
कणामधुयुता हन्ति मुखरोगं सुदारुणम् ॥ ७ ॥
गुञ्जाष्टकमिता[1] तालु-गलौष्ठदन्तरोगनुत् ।
महाराष्ट्र्यश्वगन्धाभ्यां[2] मुखञ्च प्रतिसारयेत् ॥ ८ ॥
धारणात् सेवनाच्चैव हन्ति[3] सर्वान् मुखामयान् ।

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक एक तोला; दोनों को मिलाकर कज़्ज़ली करे। शुद्ध शिलाजीत दो तोला मिलावे। सब को गोमूत्र से सात वार मर्दन करे। फिर अदरक,चमेली,नीम,जलपिप्पली;इन के रसों से सात-सात वार मर्दन करे। इससे मुखपाक नष्ट होता है। इसे आठ रत्ति मात्रा में लेकर पिप्पली के चूर्ण और शहद से खावे तो दारुण मुखरोग दूर होता है। यह तालु, गले, होठ तथा दांतों के रोगों का नाशक है। जलपिप्पली और असगन्ध इन दोनों के कल्क से मुख का प्रतिसारण करे। उक्त औषध को मुख में धारण करने तथा सेवन करने से सब मुख के रोग दूर होते हैं।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—४ रत्ती।

जीभ, दांत तथा मुख के अन्दर के अन्य भागों को कल्क से अंगुली द्वारा हलका हलका मलना प्रतिसारण कहाता है—

'दन्तजिह्वामुखानां यच्चूर्णकल्कावलेहकैः ।
शनैर्घर्षणमङ्गुल्या तदुक्तं प्रतिसारणम् ॥' ६—८ ॥

सर्वास्यामयजित् सेव्यो मधुना पर्पटीरसः ॥ ६ ॥

सब मुख के रोगों को दूर करने के लिए रसपर्पटी को शहद से खाना चाहिये।

विशेषवचन—रसपर्पटी की मात्रा पूर्व कही जा चुकी है। रसरत्नसमुच्चय में भी मुखपाक-नाशार्थ पर्पटीरस का मधु के साथ प्रयोग कहा है—

---

१ 'अष्टगुञ्जा धृता वक्त्रे सद्यो हन्ति वटी गदान्' भै. र. पाठः।

२ 'महाराष्ट्र्याश्च कल्केन' भै. र. पाठः।

३ 'वटी हन्ति मुखामयान्' पा०।

मुखपाकापनुत्त्यर्थं मधुना पर्पटीरसम्।
खादयेत्.........................॥' ९ ॥

पथ्यावटी—

पथ्या बालककुष्ठञ्च गोमूत्रेण प्रसाधयेत्।
एषा च वटिका हन्ति मुखदौर्गन्ध्यसन्ततिम् ॥ १० ॥

हरड़, सुगन्धबाला, कुष्ठ; सब द्रव्यों का चूर्ण समभाग ले। सारे चूर्ण से आठ गुणा गौमूत्र लेकर एकत्र करके पकावे। पकते २ जब गाढ़ा हो जावे तब गोली बांधे। इस गोली को मुख में रखकर चूसने और खाने से मुख की अनेक प्रकार की दुर्गन्ध नाश हो जाती है।

विशेषवचन—गोली २ रत्ती की बनानी चाहिये। यह योग रसरत्नसमुच्चय में भी है—

'गोमूत्रैः क्राथयेत्कुष्ठं बालकं सहरीतकम्।
पिष्ट्वा सर्वं वटीं कुर्यान्मुखदौर्गन्ध्यनाशिनीम् ॥' १० ॥

इति मुखरोग-चिकित्सा।

अथ कर्णरोगचिकित्सा।

कफकेतुरसः—

व्योषमिज्जलबीजञ्च शङ्खभस्म विषान्वितम्।
मरीचसदृशं खादेत् कफकेतुं महारसम् ॥ १ ॥

सोंठ, मिरच, पिप्पली, समुद्रफल, शंखभस्म, शुद्ध विष; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग लेकर पीसकर पानी से गोल मिरच के समान गोली बना ले। इस कफकेतु महारस के खाने से कर्णरोग शान्त होते हैं।

विशेषवचन—इसे कर्णशूल में वा कान की अन्दर की शोथ में प्रयोग कराते हैं। विशेषतः जब शूल रात को अधिक हो, कर्णनाद हो, प्यास लगे, ज्वर हो, वेदना स्पर्शासह हो, रोगी बेचैन हो। या बाह्यकर्ण से दुर्गन्धित पूय बहता हो, कान में अर्श सदृश मांसाङ्कुर हो गये हों, कान में तरह तरह

की आवाज़ें हों। अन्तःकर्ण में शूल हो जो अधिक गर्मी वा सर्दी से बढ़ जाती हो, बधिरता हो अथवा अन्दर कोई नाडीव्रण हो। इनके अतिरिक्त कफ के लक्षणों की प्रबलता में इसे दिया जाता है ॥ १ ॥

भैरवो रसः—

सूतं गन्धो विषश्चैव टङ्कणं सकपर्दकम् ।
मरिचेन समायुक्तश्चार्द्रतोयेन भावितम् ॥ २ ॥
वह्निमान्द्यं चामरोगं श्लेष्माणं ग्रहणीगदम् ।
सन्निपातं तथा शोथं हन्ति श्रोत्रोद्भवं गदम् ॥ ३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, शुद्ध सुहागा, कौड़ीभस्म, मिरच चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर अदरक के रस से भावित करे। इसे एक रत्ति प्रमाण खावे तो अग्निमान्द्य, आम, कफ, ग्रहणीरोग, सान्निपात तथा शोथ और कान के सब प्रकार के रोग शान्त होते हैं।

विशेषवचन—मात्रा—आधी रत्ती से एक रत्ती तक ॥ २—३ ॥

विधानान्तरम्—

योगवाहिरसाः सर्वे प्रयोक्तव्या भिषग्वरैः ।
कर्णरोगेषु सर्वेषु पीनसादिषु नित्यशः ॥ ४ ॥

योग्य वैद्यों को उचित है कि सभी योगवाही रसों को कर्णरोगों में और पीनस आदि नाक के रोगों में नित्य प्रयोग करने को दे ॥ ४ ॥

इति कर्णरोग-चिकित्सा ।

अथ नासारोगचिकित्सा ।

पञ्चामृतो रसः—

शुद्धसूतं समादाय गन्धं भागद्वयं ततः ।
त्रिभागं टङ्कणञ्चापि विषं भागचतुष्टयम् ॥ १ ॥

पञ्चभागं तथा देयं मरिचस्य प्रयत्नतः।
शृङ्गवेररसैः पिष्ट्वा गुडिका पञ्चरक्तिका ॥ २ ॥
अनुपानं हितं योज्यं सर्वरोगप्रशान्तये।
जलदोषोद्भवे रोगे महत्युग्रे जलोदरे ॥ ३ ॥
सन्निपातेषु रोगेषु नासाव्याधौ सपीनसे।
व्रणशोथे व्रणे चैव उपदंशे भगन्दरे ॥ ४ ॥
नाडीव्रणे ज्वरे चैव नखदन्तविषातुरे।
पञ्चामृतरसो योज्यः सर्वरोगप्रशान्तये ॥ ५ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला, दोनों की कज्जली करे। शुद्ध सुहागा तीन तोला, शुद्ध विष चार तोला, मिरच चूर्ण पांच तोला; इन्हें उस में मिला अदरक के रस से घोटकर पांच रत्ति प्रमाण की गोली बना ले। इसे रोगानुसार अनुपानों से दे तो सब रोग शान्त होते हैं। जलदोष से होने वाले रोग, महान उग्र जलोदर, सन्निपातज रोग, पीनस और अन्य नासारोग, व्रणशोथ, व्रण, उपदंश, भगन्दर, नाडीव्रण, नख और दांत के विष से रोगी हुए २ को उन २ रोगों की शान्ति के लिये पञ्चामृत रस का प्रयोग करावें।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—आधी रत्ती ॥ १—५ ॥

इति नासारोग-चिकित्सा।

अथ नेत्ररोगचिकित्सा।

नेत्राशनिरसः—

अभ्रं ताम्रं तथा लौहं माक्षिकञ्च रसाञ्जनम्।
पातनायन्त्रसंशुद्धं गन्धकं नवनीतकम् ॥ १ ॥
पलप्रमाणं प्रत्येकं गृह्णीयाच्च विधानवित्।

सर्वमेकीकृतं चूर्णं वैद्यैः कुशलकर्मभिः ॥ २ ॥
ततस्तु भावना कार्या त्रिफलाभृङ्गराजकैः ।
ततः प्रक्षिप्य चूर्णञ्च पिप्पलीमूलयष्टिका ॥ ३ ॥
एला पुनर्नवा दारु पाठा भृङ्गं शठी वचा ।
उत्पलं चन्दनञ्चैषां श्लक्ष्णचूर्णं प्रदापयेत् ॥ ४ ॥
माषमेकं प्रदातव्यं घृतश्रीमधुमर्दितम् ।
मर्दनं लौहदण्डेन पात्रे लौहमये दृढे ॥ ५ ॥
उष्णोदकञ्चानुपानं प्रयोक्तव्यं सुखावहम् ।
यावतो नेत्ररोगांश्च पानादेव विनाशयेत् ॥ ६ ॥
सरक्ते रक्तपित्ते च रक्ते चक्षुःस्रुतेऽपि च ।
नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे ॥ ७ ॥
अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पिष्टे चैव चिरन्तने ।
नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च ।
युञ्जीत तान् निहन्त्येव वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ८ ॥

अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लौहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, रसौंत, पातनायन्त्र द्वारा शोधित आंवलासार गन्धक; प्रत्येक द्रव्य एक २ पल ले। सब को एकत्र पीसकर त्रिफला के काथ और भांगरे के स्वरस की भावना (सात वार) देवे । फिर सुखाकर पिप्पलामूल, मुलहठी, छोटी इलायची, पुनर्नवा, देवदारु, पाठा, दारचीनी, कचूर, बच, नीलोत्पल, लालचन्दन; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ माषा डाले। फिर सब द्रव्यों को एकत्र कर लोहे के खरल में लोहे के दण्ड से घी और कमलों का शहद मिलाकर मर्दन करे और गोली बना रखे। इसे खाकर गर्म पानी पीवे। इससे सब प्रकार के नेत्ररोग दूर हो जाते हैं। आंख की लालिमा, रक्तपित्त, रक्तस्राव, आंख का

१ 'प्रक्षिप्यचूर्णञ्च' भै. र. पाठः ।

बहना, अन्धराता, तिमिर, काच, नीलिका, पटल, अर्बुद, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, पुराना पिष्टरोग, तथा वात पित्त कफ से उत्पन्न होने वाले. सभी नेत्र रोगों में इसका प्रयोग करावे। यह इन नेत्ररोगों को ऐसे नाश करता है जैसे बिजली वृक्ष को।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक।

यहां पर वस्तुतः पिप्पलीमूल आदि का प्रमाण भी एक-एक पल ही होना चाहिये। 'माषमेकं प्रदातव्यं' से प्रस्तुत योग की सेवनार्थ मात्रा बताई है। अर्थात् प्रयोग के समय औषधको १ मासा (६ रत्ती) मात्रा में लेकर गौ का घी और पद्ममधु मिला लोहे के छोटे खरल में लोहदण्ड से ही मर्दन कर रोगी को दे।

परन्तु व्यवहार पूर्वोक्त विधि से ही प्रचलित है। कई टीकाकार 'दारु' से दारुहल्दी और 'भृङ्ग' से भंगरा लेना चाहते हैं।

पूर्वोक्त विधि से औषध बनाने में यदि पल से ४ तोला लें तो एक मासे से ६ रत्ती लेना चाहिये। यदि ८ तोला लें तो मासा १२ रत्ती का होगा॥ १—८॥

नयनामृतलौहम्—

त्रिकटु त्रिफला भृङ्गी शटी रास्ना महौषधम्।
द्राक्षा नीलोत्पलं चैव काकोली मधुयष्टिकम्॥ ९॥
वाट्यालं[1] केशराजश्च कण्टकारीद्वयं पलम्[2]।
लौहाभ्रयोः पलं दत्त्वा वक्ष्यमाणेन[3] भावयेत्॥ १०॥
त्रिफलायाश्च[4] तोयेन भृङ्गराजरसेन वा।
भावयित्वा वटी कार्य्या बदरास्थिनिभा शुभा।
यावतो नेत्ररोगांश्च निहन्यान्नात्र संशयः॥ ११॥

सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, काकड़ासिंगी, कचूर,

---

१ 'वाट्यालकं केशरश्च' भै. र. पाठः। २ 'तथा' भै. र. पाठः।
३ 'भावयेदौषधैरिमैः' भै. र. पाठः। ४ 'त्रिफलाक्काथतैलेन' भै. र. पाठः।

रास्ना, सोंठ, मुनक्का, नीलोत्पल, काकोली, मुलहठी, श्वेतबला, केशराज, छोटी कटेली, बड़ी कटेली; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ पल लें। लौह-भस्म एक पल, अभ्रकभस्म एक पल लें। सब को मिला मर्दन कर त्रिफला के क्वाथ से तथा भांगरे के रस से भावना (सात) देकर बेर की गुठली के समान गोली बनावें। इसे खाने से सब प्रकार के नेत्ररोग दूर होते हैं।

विशेषवचन—मात्रा-४ रत्ती। भैषज्यरत्नावली के पाठ में 'कण्टकारी-द्वयं पलम्' के स्थान पर 'कण्टकारीद्वयं तथा' पाठ है। तब भी यही अर्थ होता है। परन्तु किसी ने वहां यह टिप्पणी की है 'अत्र सर्वचूर्णसमं लौहाभ्रम्' अर्थात् लौहभस्म और अभ्रकभस्म दोनों मिलाकर अन्य सारे चूर्ण के मिलित प्रमाण के समान होने चाहियें। तब सोंठ से लेकर बड़ी कटेली पर्यन्त द्रव्यों के चूर्ण मिलाकर २ पल लेंगे और लौहभस्म १ पल, अभ्रकभस्म १ पल लेंगे। इस विधि से प्रस्तुत औषध को २ रत्ती मात्रा में प्रयुक्त कराते हैं।

भैषज्यरत्नावली में केशराज के स्थान पर नागकेसर है। वहां तिलतैल की भावना का पाठ भी है। नाम 'नयनचन्द्रलौह' है ॥९--११॥

व्रतशुक्रहरो गुग्गुलुः--

अयःसयष्टीत्रिफलाकणानां चूर्णानि तुल्यानि पुरेण नित्यम्।
सर्पिर्मधुभ्यां सह भक्षितानि शुक्लानि[1] काचानि निहन्ति शीघ्रम्॥

लौहभस्म, मुलहठी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पिप्पली; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला, शुद्ध गुग्गुल छः तोला ले। सब को एकत्र पीस घी और शहद मिलाकर खावें तो शुक्लरोग तथा काचरोग शीघ्र दूर होता है।

विशेषवचन—मात्रा-४ रत्ती से ८ रत्ती तक ॥१२॥

तिमिरहरलौहम्—

त्रिफलापद्मयष्ट्याह्व-युक्तं[2] सायं निषेवितम्।
लौहं तिमिरकं हन्ति सुधांशुस्तिमिरं यथा॥ १३॥

---

१ 'सर्वाणि शुक्राणि' ... २ 'लोहं' पा०।

हरड़, बहेड़ा, आंवला, कमल, मुलहठी; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक-एक तोला, लौहभस्म पांच तोला। सब को एकत्र पीस कर प्रतिदिन सायंकाल सेवन करे तो तिमिर रोग को इसप्रकार नाश करता है जैसे चांद अन्धकार को।

विशेषवचन—मात्रा--१ रत्ती से २ रत्ती तक ॥१३॥

इति नेत्ररोग-चिकित्सा।

अथ शिरोरोगचिकित्सा।

रसचन्द्रिका वटी—

त्रैलोक्यविजयाबीजं बीजमुन्मत्तकस्य च।
कण्टकारीबीजकञ्च ऐञ्जलं बीजमेव च ॥ १ ॥
बीजञ्च वृद्धदारस्य समौ गन्धकपारदौ।
आर्द्रकैर्वटिका कार्य्या कलायपरिमाणतः ॥ २ ॥
एषा तोयानुपानेन प्रातः खाद्या हिताशिना।
चिरजं सर्वजञ्चैव शिरोरोगं सुदारुणम् ॥ ३ ॥
आमवातं श्लेष्मरोगं मन्यास्तम्भं गलग्रहम्।
ग्रहणीं श्लीपदं हन्ति ह्यन्त्रवृद्धिं भगन्दरम् ॥ ४ ॥
कामलां शोथपाण्डुत्वं पीनसार्शोगुदामयान्।
वासुदेवेन कथिता वटिका रसचन्द्रिका ॥ ५ ॥

शुद्ध भांग के बीज, शोधित धतूरे के बीज, छोटी कटेली के बीज, समुद्रफल, शुद्ध विधारे के बीज, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिला खरल करे और अदरक के रस से घोट कर मटर के समान गोली बनाले। इसे पथ्यसेवी पुरुष प्रातःकाल जल से खावे तो पुराना और त्रिदो-

षज भयंकर शिरोरोग नष्ट होता है। आमवात, कफरोग, ग्रहणी, श्लीपद, अन्त्रवृद्धि, भगन्दर, कामला, शोथ, पाण्डु, पीनस, बवासीर, गुदा के रोग; इन सब को यह वटी दूर करती है। यह रसचन्द्रिका वटी वासुदेव ने कही थी ॥ १—५ ॥

शिरोवज्र रसः—

पलं सूतं पलं गन्धः पलं लौहं पलं रवेः ।
गुग्गुलोः पलचत्वारि तदर्द्धं त्रिफलारजः ॥ ६ ॥
यष्टीमधु कणा शुण्ठी गोक्षुरं क्रिमिनाशनम् ।
तोलकं दशमूलञ्च प्रत्येकं परिकल्पयेत् ॥ ७ ॥
क्काथेन दशमूल्याश्च यथास्वं परिभावयेत् ।
घृतयोगेन कर्त्तव्या माषैकप्रमिता वटी ॥ ८ ॥
छागीदुग्धेन वा सेव्या मधुना पयसाऽथवा ।
वातिकीं पैत्तिकीञ्चैव श्लैष्मिकीं सान्निपातिकीम् ॥ ९ ॥
शिरोऽर्तिं नाशयत्याशु वज्रं मुक्तमिवासुरम् ।
शिरोवज्ररसो नाम चन्द्रनाथेन भाषितः ॥ १० ॥

शुद्ध पारा एक पल (४ तोला) शुद्ध गन्धक एक पल; दोनों की कज्जली करे। फिर लौहभस्म एक पल, ताम्रभस्म एक पल, शुद्ध गुग्गुल चार पल, मुलहठी, पिप्पली, सोंठ, गोखरू, विडंग, दशमूल के द्रव्य; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला लेकर उसमें डालकर पीसे। और दशमूल के क्वाथ से भावना (सात) देवे। फिर घृत से मिलाकर एक२ माषा (६ रत्ती) भर की गोली बना ले। इस गोली को बकरी के दूध से, शहद से या गौ के दूध (वा जल) से खावें। यह वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक तथा सान्निपातिक शिर की पीड़ा को ऐसे ही शीघ्र नष्ट करता है जैसे असुरों को वज्र। यह शिरोवज्र नामक रस चन्द्रनाथ ने कहा है।

१ 'शिरःशूलाद्रिवज्रोऽयं चण्डनाथेन भाषितः। एकजं द्वन्द्वजं चैव त्रिदोषजनितं तथा। वातिकं पैत्तिकं पूर्वं शिरोरोगं विनाशयेत्' भै. र. पाठः।

विशेषवचन—आजकल ४ रत्ती की मात्रा में यह रस प्रयुक्त कराया जाता है। विशेषतः वातिक वा वातप्रधान शिरोरोग में अत्यन्त हितकर है।

'अन्यत्र इसका नाम 'शिरःशूलाद्रिवज्र' है ॥ ६--१० ॥

चन्द्रकान्तरसः—

मृतसूताभ्रकं तीक्ष्णं ताम्रं गन्धं समं समम्।
स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं ततस्तु माषमात्रकम् ॥ ११ ॥
मधुना मर्दितं सेव्यं लौहपात्रे दिने दिने।
सूर्य्यावर्तादिकान् तूर्णं शिरोरोगान् विनाशयेत् ॥ १२ ॥

रसासिन्दूर, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर एकत्र थोहर के दूध से दिन भर मर्दन कर लें। इसे उड़द भर लेकर शहद के साथ लोहपात्र में मर्दन करके रोगी नित्य खावे तो सूर्यावर्त्त आदि शिरोरोग शीघ्र नाश होते हैं।

विशेषवचन--इसे १ रत्ती तक दिया जा सकता है। रसरत्नाकर में इस योग का नाम 'सूर्योदय रस' है। रसरत्नसमुच्चय में एक योग शिरोरोगारि रस नाम से कहा है--

मृतसूताभ्रकं तीक्ष्णं कान्तं ताम्रं मृतं समम्।
स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं पिण्डं तन्माषमात्रकम् ॥
सप्ताहात्सूर्यवर्तादीन् शिरोरोगान्विनाशयेत् ॥'

यहां पर गन्धक के स्थान पर कान्तलोहभस्म है ॥ ११—१२ ॥

महालक्ष्मीविलासः—

लौहमभ्रं विषं मुस्तं फलत्रयकटुत्रयम्।
धुस्तूरं वृद्धदारञ्च बीजमिन्द्राशनस्य च ॥ १३ ॥
द्वयं गोक्षुरकञ्चैव पिप्पलीमूलमेव च।
एतत् सर्वं समं ग्राह्यं रसे धुस्तूरकस्य च ॥ १४ ॥

---

१ अस्यानन्तरं 'सूर्योदयरसो नाम्ना सर्वमूर्धगदापहः' र. र. पाठः।

भावयित्वा वटी कार्य्या द्विगुञ्जाफलमानतः[1] ।
महालक्ष्मीविलासोऽयं सन्निपातनिवारकः[2] ॥ १५ ॥

लौहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध विष, मोथा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, शुद्ध धतूरे के बीज, शुद्ध विधारे के बीज, शुद्ध भांग के बीज, गोखरू, बड़ा गोखरू, पिप्पलीमूल; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग लेकर धतूरे के रस से भावना देकर दो रत्ति प्रमाण की गोली बना लें। यह महालक्ष्मीविलास सान्निपात को तथा सान्निपातज शिरोरोग को दूर करता है।

विशेषवचन—यह कफज वा वातकफप्रधान शिरोरोग में विशेषतः प्रयुक्त होता है ॥ १३—१५ ॥

इति शिरोरोग-चिकित्सा ।

अथ प्रदररोगचिकित्सा ।

प्रदरान्तकलौहम्—

हरितालं लौहताम्रे वङ्गमभ्रं वराटिका ।
त्रिकटु त्रिफला चित्रं विडङ्गं पटुपञ्चकम् ॥ १ ॥
चविका पिप्पली शङ्खं वचा हवुषपाकलम् ।
शठी पाठा देवदारु एला च वृद्धदारकम् ॥ २ ॥
एतानि समभागानि सञ्चूर्ण्य वटिकां कुरु ।
शर्करामधुसंयुक्तां घृतेन भक्षयेत्[3] पुनः ॥ ३ ॥
रक्तं श्वेतं[4] हन्ति पीतं नीलं प्रदरदुस्तरम् ।
कुक्षिशूलं कटीशूलं योनिशूलञ्च सर्वजम्[5] ॥ ४ ॥

---

१ 'बदरास्थिप्रमाणतः । अनुपानं प्रयोक्तव्यं शुण्ठीचूर्णं द्विमाषकम् । आर्द्रकस्य रसञ्चैव तोलकद्वयमेव च । इत्यधिकः' पाठः रसरत्नाकरे ।

२ 'शिरोरोगविनाशकः' पा० ।

३ 'भावयेत्' पा० । ४ 'शीतं' पा० । ५ 'सर्वगम्' पा० । 'संहरेत्' भै. र. पाठः ।

मन्दाग्निमरुचिं पाण्डुं कृच्छ्रश्वासञ्च कासनुत्[1]।
आयुःपुष्टिकरं बल्यं रजोवर्णप्रसादनम्[2] ॥ ५ ॥

शुद्ध हड़ताल, लौहभस्म, ताम्रभस्म, बंगभस्म, अभ्रकभस्म, कौड़ीभस्म, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चीता, वायविडंग, पांचों नमक, चव्य, पिप्पली, शंखभस्म, बच, हवुषा (हाऊबेर), कूठ, कचूर, पाठा, देवदार, छोटी इलायची, विधारा; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग लें। सब को मिला (जल से) पीसकर गोली बना लें। इसे खांड, शहद और घी मिलाकर सेवन करावें। यह भयंकर रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, पीतप्रदर तथा नीलप्रदर को दूर करता है। कुक्षिशूल, कटीशूल, सब प्रकार का योनिशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पाण्डु, कृच्छ्रश्वास तथा कास को नष्ट करता है। आयु को बढ़ाता है, पुष्टि देता है, बलकारक है। रज के रंग को विमल करता है।

विशेषवचन—इसे आजकल २ रत्ती से ४ रत्ती तक की मात्रा में प्रयुक्त कराते हैं। इस योग को श्वेतप्रदर में जब स्राव पतला दूध की लस्सी के सदृश हो, दाह हो अथवा पीले रंग का स्राव हो अथवा हरापन लिये पीला स्राव हो, योनि में शूल हो जो जंघा तक जाती हो, कृच्छ्रश्वास हो, देह शिथिल हो, श्लैष्मिक स्राव हो, हृदय धड़कता हो, कण्डू हो, देह शीतल हो, योनिभ्रंश हो, कमर में दर्द हो तब दिया जाता है ॥ १—५ ॥

प्रदरान्तको रसः—

शुद्धसूतं तथा गन्धः गन्धतुल्यश्च रूप्यकम्[3]।
खर्परश्च वराटश्च शाणमानं पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥
तोलकत्रियतश्चैव लौहचूर्णं क्षिपेत् सुधीः।
दिनैकं कन्यकानीरैः मर्दयेच्च भिषग्वरः।
असाध्यं प्रदरं हन्ति भक्षणात् नात्र संशयः ॥ ७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, चांदीभस्म, खपरियाभस्म, कौड़ीभस्म; प्रत्येक

---

१ 'कृच्छ्रश्च श्वासकासनुत्' पा०। २ 'बलवर्णप्रसादनम्' पा०।
३ 'शुद्धवङ्गकरूप्यकम्' र. र., भै. र. पाठः।

द्रव्य एक २ शाण और लौहभस्म तीन तोला ले। पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य इस में मिला दे। सब को खरल कर एक दिन घीकुमार के रस से घोटे। इस के सेवन से असाध्य प्रदर भी दूर होता है—इस में संशय नहीं।

विशेषवचन—मात्रा १ रत्ती से २ रत्ती तक।

उक्त योगपाठ रसेन्द्रचिन्तामणि से उद्धृत प्रतीत होता है। यहां 'गन्ध-तुल्यञ्च रूप्यकम्' पाठ उत्तम नहीं। इस पाठ के अनुसार तो वास्तव में अर्थ यह होता है पारा, गन्धक और चांदीभस्म; प्रत्येक एक २ तोला, खर्परभस्म और कौड़ीभस्म; एक-एक शाण और लोहभस्म ३ तोले ले। उक्त पाठ के स्थान पर रसरत्नाकर और भैषज्यरत्नावली में 'शुद्धवङ्गकरूप्यकम्' यह पाठ है और यही उत्तम है। इसके अनुसार वङ्गभस्म १ शाण अधिक है। पारा से कौड़ीभस्म पर्यन्त द्रव्यों का मान भी एक-एक शाण ही होगा। और लौहभस्म ३ तोला। वङ्गभस्म के योग से यह प्रदर में शीघ्र लाभ करता है। व्यवहार भी इसी का है।

शाण को आधा तोला (४८ रत्ती) के बराबर मानकर इस योग को बनाने का व्यवहार है। यद्यपि प्राचीन रसशास्त्रों में कही मानपरिभाषा के अनुसार 'शाण' चौथाई तोला (२४ रत्ती) का होता है।

इसे श्वेत प्रदर में मधु के साथ चटाते हैं और ऊपर से तण्डुलोदक भी पीने को देते हैं॥ ६—७॥

मधुकादिचूर्णम्—

यष्टीमधुनिशाचूर्णतोलकेन समन्वितम्।
वङ्गभस्मार्कपत्रस्य रसेनाप्लाव्य पीयते॥
प्रातः प्रातः प्रतिदिनं प्रदरं हन्ति दुस्तरम्॥ ८॥

मुलहठी, हल्दी; दोनों के चूर्णों को समभाग में मिलाकर एक तोला ले। उस में बंगभस्म की एक मात्रा को मिला आक (मदार) के पत्तों के रस में घोल प्रतिदिन प्रातःकाल पीने तो भयंकर प्रदर भी नाश होता है।

विशेषवचन—आजकल मुलहठी ४ रत्ती, हल्दी ४ रत्ती, वङ्गभस्म १ रत्ती, आक के पत्तों का रस ४ बूंद मिलाकर मधु से चटा सकते हैं। यह क्षत दाह और कण्डूयुक्त प्रदर में दिया जा सकता है ॥ ८ ॥

पुष्करलेहः—

रसाञ्जनं शुभा शृङ्गी चित्रकं मधुयष्टिकम् ।
धान्यतालीशगायत्री-द्विजीरं त्रिवृता बला ॥ ९ ॥
दन्ती त्र्यूषणकश्चापि पलार्द्धश्च शिलाजतु ।
चतुःपलं माक्षिकस्यामलस्य च क्षिपेत् ततः ॥ १० ॥
जातीकोषलवङ्गश्च कक्कोलं मृद्विका ऽपि च ।
चातुर्जातकखर्जूरं कर्षमेकं पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥
प्रक्षिप्य मर्दयित्वा च स्निग्धभाण्डे निधापयेत् ।
एष लेहवरः श्रीदः सर्वरोगकुलान्तकः ।
यत्र यत्र प्रयोज्यः स्यात् तत्तदामयनाशनः ॥ १२ ।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं देशकालानुसारतः ।
सर्वोपद्रवसंयुक्तं प्रदरं सर्वसम्भवम् ॥ १३ ॥
द्वन्द्वजं चिरजश्चैव रक्तपित्तं विनाशयेत् ।
कासश्वासाम्लपित्तश्च क्षयरोगमथापि वा ॥ १४ ॥
सर्वरोगप्रशमनो बलवर्णाग्निवर्द्धनः ।
पुष्कराख्यो लेहवरः सर्वत्रैवोपयुज्येत । १५ ॥

शुद्ध रसौंत, वंशलोचन, काकड़ासिंगी, चीता, मुलहठी, धनियां तालीशपत्र कत्था, श्वेत जीरा, काला जीरा, त्रिवी, बलामूल, दन्तीमूल, सोंठ, मिरच, पिप्पली, शुद्ध शिलाजीत; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण आधा २ पल, निर्मल शहद चार पल, जावित्री, लौंग, कङ्कोल, मुनक्का, छोटी इलायची, दारचीनी, तेजपात, नागकेशर, पिण्ड-खजूर; प्रत्येक का चूर्ण एक २ कर्ष ले। सब कूट पीस कर पूर्वोक्त शहद

मिला चिकने पात्र में रखे। यह पुष्करलेह कान्तिदायक तथा सर्वरोग-नाशक है। जहां २ इसे देंगे उस २ रोग को नष्ट करेगा। देशकालानुसार अनुपान देना चाहिये। सब उपद्रवों से युक्त सब दोषों से उत्पन्न प्रदर, द्वन्द्वज तथा पुराने रक्तपित्त रोग को भी दूर करता है। सभी रोगों को शान्त करता है। बल, वर्ण और अग्नि को बढ़ाने वाला है। यह उत्तम पुष्करलेह सर्वत्र ही उपयुक्त किया जा सकता है।

विशेषवचन—मात्रा—२ मासा।

'पलार्द्धञ्च शिलाजतु' की जगह 'पलार्द्धं च पृथक् पृथक्' ऐसा पाठ भी है। वहां शिलाजीत नहीं डाली जाती॥ ९—१५॥

धात्र्यादिचूर्णम्—

धात्री च पथ्या च रसाञ्जनञ्च विचूर्ण्य सर्वं सजलं निपीतम्।
अनन्तरक्तस्रवमुग्रवेगं निवारयेत् सेतुरिवाम्बुवेगम्॥ १६॥

आंवला, हरड़, रसौंत, तीनों का चूर्ण समभाग ले मात्रा में जल से पीवे तो निरन्तर बहुत परिमाण में भी रक्त जाता हो (रक्तप्रदर) तो उसे भी रोक देता है। जैसे पानी के वेग को बांध रोक देता है॥ १६॥

रक्तपित्तहरं सर्वं प्रदरे नूतने तथा।
रक्तातीसारकथितं सर्वमत्र प्रयोजयेत्॥ १७॥

नये प्रदर को शान्त करने के लिये रक्तपित्त को नाश करने वाले सब उपाय किये जाते हैं। रक्तातीसार में कही चिकित्सा भी रक्तप्रदर में करनी चाहिये॥ १७॥

इति प्रदररोगचिकित्सा।

अथ योनिव्यापच्चिकित्सा।

समस्तं वातजित् कर्म योनिव्यापत्सु शस्यते।
चालनस्वेदलेपांश्च वरानीरेण कारयेत्॥ १॥

योनिव्यापत् रोग में समस्त कर्म वात को जीतने वाले करने चाहियें। त्रिफला के जल से योनि को धोना, स्वेदन तथा लेपन करना चाहिये ॥ १ ॥

प्रक्षालयेद्भगं नित्यं पथ्यामलकवल्कलैः।
वृद्धाऽपि कामिनी नित्यं बालावत् कुरुते रतिम् ॥ २ ॥

हरड़ तथा आंवले के क्वाथ से भग को नित्य धोने से बूढ़ी स्त्री भी बाला के समान रति कर सकती है ॥ २ ॥

इति योनिव्यापचिकित्सा।

अथ सूतिकारोग-चिकित्सा।

सूतिकारिरसः—

रसगन्धककृष्णाभ्रं[१] तदर्द्धं मृतताम्रकम्।
चूर्णितं मर्दयेद् यत्नाद्भेकपर्णीरसेन च ॥ १ ॥
छायाशुष्का वटी कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः।
क्षीरत्रिकटुना[२] युक्ता सूतिकाऽऽतङ्कनाशिनी।
ज्वरं[३] तृष्णारुचिश्वासं शोथं हन्ति न संशयः ॥ २ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, कृष्णाभ्रक की भस्म, प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला, ताम्रभस्म आधा तोला लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर मण्डूकपर्णी के रस से घोटकर छाया में सुखाकर दो रत्ति भर की गोली बनावें। इस गोली को त्रिकटु के चूर्ण से मिलाकर रुग्णा खावे और ऊपर से दूध पीवे तो सूतिकारोग नष्ट होता है। यह ज्वर, तृष्णा, अरुचि, श्वास, शोथ; इन सब को निःसन्देह हटाती है।

विशेषवचन—मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक।

---

१ 'रसं गन्धं मृताभ्रञ्च मृतताम्रञ्च तुल्यकम्' भै. र. पाठः।
२ 'मात्रया कटुना देया' भै. र. पाठः।
३ 'ज्वरतृष्णारुचिहरी शोथघ्नी वह्निदीपनी' भै. र. पाठः।

भैषज्यरत्नावली के पाठ में ताम्रभस्म भी एक भाग अर्थात् एक तोला ही है। जिस सूतिकारोग में ज्वर आदि उक्त लक्षण होंगे वहां ही इसे प्रयोग कराया जाता है ॥ १—२ ॥

सूतिकाविनोदरसः—

रसगन्धकतुत्थञ्च त्र्यहं जम्बीरमर्दितम् ।
त्रिर्भावितं त्रिकटुना देयं गुञ्जाचतुष्टयम् ।
गर्भिण्याः शूलविष्टम्भज्वराजीर्णेषु योजयेत् ॥ ३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध नीलाथोथा; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिला जम्बीरी नीबू के रस से तीन दिन घोटे। तथा त्रिकुटे के क्वाथ से तीन वार भावना देकर चार रत्ति प्रमाण की गोली बनावे। इसके सेवन से गर्भिणी के शूल, कब्ज़, ज्वर तथा अजीर्ण रोग नष्ट होते हैं।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—¼ रत्ती से ½ रत्ती तक।

इसका नाम तन्त्रान्तरों में ' गर्भविलास रस ' है। रसेन्द्रचिन्तामणि में यही योग 'सूतिकाविनोद' तथा 'गर्भविलास' नाम से दो वार कहा है। यद्यपि गुणपाठ में सूतिकारोग का नाम नहीं। परन्तु 'सूतिकाविनोद' नाम देकर यह बता दिया है कि सूतिकारोग में भी उक्त लक्षणों के होने पर इस योग को प्रयोग करा सकते हैं। उक्त लक्षणों के अतिरिक्त यह अतिसार को भी शीघ्र रोकता है और बल्य एवं पुष्टिकर है। इसका प्रयोग नवीन सूतिकारोग में किया जाता है ॥ ३ ॥

गर्भचिन्तामणिरसः—

चिन्तामणिरसे देयं तुत्थस्थाने सुवर्णकम् ॥ ४ ॥

यदि उक्त रस में नीले थोथे (तूतिया) के स्थान पर स्वर्णभस्म डाली जाय तो वही गर्भचिन्तामणि कहाता है।

विशेषवचन—गर्भचिन्तामणि की मात्रा भी वही है जो ऊपर के योग की है। गर्भिणी को ज्वर आदि लक्षणों के होने पर इस रस का प्रयोग अधिक सुरक्षित है और गर्भ एवं गर्भिणी दोनों के लिये विशेष उत्तम है।

सूतिकारोग में भी इसे देसकते हैं विशेषतः तब जब सूतिकारोग पुराना हो गया हो, हलका हलका ज्वर रहता हो, अजीर्ण हो, आध्मान हो और यक्ष्मा के सदृश अन्य लक्षण भी प्रादुर्भूत हो रहे हों ॥ ४ ॥

बृहत्सूतिकाविनोदरसः—

शुण्ठ्याः भागो भवेदेको द्वौ भागौ मरिचस्य च।
पिप्पल्याश्च त्रिभागं स्यादर्द्धभागश्च व्योमकम्[1] ॥ ५ ॥
जातीकोषस्य भागौ द्वौ द्वौ भागौ तुत्थकस्य च।
सिन्धुवारजलेनैव मर्दयेदेकयामतः।
मधुना सह भोक्तव्यः सूतिकाऽऽतङ्कनाशनः ॥ ६ ॥

सोंठ का चूर्ण एक भाग, मिरच चूर्ण दो भाग, पिप्पली चूर्ण तीन भाग, अभ्रकभस्म आधा भाग, जावित्री चूर्ण दो भाग, शुद्ध नीलाथोथा दो भाग। सब को पीस संभालू के पत्तों के रस से एक पहर खरल करे। इसे मात्रा में मधु के साथ खावे तो सूतिकारोग नाश होता है।

विशेषवचन—मात्रा—१ रत्ती।

यह रस ज्वर, अतिसार तथा अन्य कम्प आक्षेप आदि वातिक लक्षणों के प्रबल होने पर दिया जाना चाहिये। रसरत्नाकर और भैषज्यरत्नावली में अभ्रकभस्म के स्थान पर रोमकलवण (सांभर नमक) का पाठ है ॥५-६॥

अपरसूतिकारि रसः—

टङ्कणं मूर्च्छितं सूतं गन्धको हेम तारकम्।
जातीफलं तथा कोषं लवङ्गैले च धातकी ॥ ७ ॥
वत्सकेन्द्रयवं पाठा शृङ्गीविश्वाऽजमोदिकाः।
गुडी प्रसारणीनीरैश्चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः ॥ ८ ॥
भक्षयेत्तद्रसैः प्रातः सूतिका ऽऽतङ्कशान्तये।
जीर्णज्वरं हन्ति शोथं ग्रहणीप्लीहकासनुत् ॥ ९ ॥

---

१ 'रोमकम्' र. र., भै. र. पाठः।

शुद्ध सुहागा, रससिन्दूर, शुद्ध गन्धक, स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, जायफल, जावित्री, लौंग, छोटी इलायची, धाय के फूल, कुटज की छाल, इन्द्रजौ, पाठा, काकड़ासिंगी, सोंठ, अजवायन; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर खरल करे। इसे प्रसारणी के रस से घोट कर चार रत्ति भर की गोली बना ले। प्रसारणी के रस से ही प्रातःकाल इसे खावे तो सूतिकारोग नाश होता है। जीर्णज्वर, शोथ, ग्रहणी, तिल्ली तथा खांसी भी इस से दूर होती है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक ॥ ७—९ ॥

सूतिकाघ्नो रसः—

रसगन्धकलौहाभ्रं जातीकोषं सुवर्णकम्[1]।
समांशं मर्दयेत् खल्ले छागीदुग्धेन पेषयेत् ॥ १० ॥
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन वटिकां कुरु यत्नतः।
ज्वरातीसाररोगघ्नः सूतिकाऽऽतङ्कनाशनः॥
सूतिकाघ्नो रसो नाम ब्रह्मणा परिकीर्त्तितः ॥ ११ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, जावित्री का चूर्ण, स्वर्णभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। पारा गन्धक की कज्जली करके अन्य द्रव्य उस में मिला देवे और बकरी के दूध से पीसकर दो रत्ति प्रमाण की गोली बनावे। इस के सेवन से ज्वरातिसार और सूतिकारोग नाश होते हैं। यह सूतिकाघ्न रस ब्रह्मा जी ने प्रकाश किया था।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ रत्ती।

भैषज्यरत्नावली में 'सुवर्णभस्म' के स्थान पर सौंचलनमक का पाठ है। सुवर्ण ही अधिक उपयुक्त है ॥ १०—११ ॥

सूतिकान्तको रसः—

रसाभ्रगन्धकव्योषं सुवर्णमाक्षिकं विषम्।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं खादेद्रक्तिचतुष्टयम् ॥ १२ ॥

---

१ 'सुवर्चलम्' भै. र. पाठः।

सूतिकाग्रहणीरोगं वह्निमान्द्यञ्च नाशयेत् ।
अतिसारञ्च शमयेदपि वैद्यविवर्जितम् ॥
कासश्वासातिसारघ्नो वाजीकरण उत्तमः ॥ १३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, सोंठ, मिरच, पिप्पली, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध विष; सब द्रव्यों को समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर खरल कर चार रत्ति प्रमाण की गोली बनावे। इसे सेवन करने से सूतिकारोग, ग्रहणीरोग, अग्निमान्द्य नाश होता है। सब वैद्यों द्वारा असाध्य कहे अतिसार को भी ठीक कर देता है। यह कास श्वास तथा अतिसार को हटाता है और उत्तम वाजीकरण है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—आधी रत्ती से एक रत्ती तक।

इसे जब सूतिकारोग में ज्वर प्रबल हो, अतिसार हो, अनिद्रा हो अत्यधिक बेचैनी हो, योनि वा गर्भाशय में शोथ हो देना चाहिये ॥१२-१३॥

गर्भचिन्तामणि रसः—

जातीफलं टङ्कणञ्च व्योषं दैत्येन्द्ररक्तकम् ।
तच्चूर्णं समभागेन मर्दितं प्रहरद्वयम् ॥ १४ ॥
जम्बीररसयोगेन वटीं कुर्य्याद्विचक्षणः ।
गुञ्जाद्वयप्रमाणान्तु खलु वैद्यः प्रयत्नतः ॥ १५ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव भक्षयेदुष्णवारिणा ।
निहन्ति सर्वरोगञ्च भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १६ ॥

जायफल, सुहागा, सोंठ, मिरच, पिप्पली, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल; प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर दो पहरों तक मर्दन करके जम्बीर के रस से घोटकर वैद्य दो रत्ति भर की गोली बनावे। इसे अदरक के रस से रोगी को दे। अथवा गरम पानी से दे सकते हैं। यह रस सब रोगों को ऐसे नाश करता है जैसे सूर्य अन्धकार को।

विशेषवचन—इसे गर्भिणी के ज्वर अतिसार तथा कास रोग में दे सकते हैं ॥ १४—१६ ॥

अपरगर्भचिन्तामणिरसः—

रसं तारं[1] तथा लौहं प्रत्येकं कर्षमानतः।
कर्षत्रयं[2] तथा चाभ्रं कर्पूरं वङ्गताम्रकम् ॥ १७ ॥
जातीफलं तथा कोषं गोक्षुरश्च शतावरी।
बलाऽतिबलयोर्मूलं प्रत्येकं तोलकं शुभम् ॥ १८ ॥
वारिणा वटिका कार्य्या द्विगुञ्जाफलमानतः।
सन्निपातं निहन्त्याशु स्त्रीणाञ्चैव विशेषतः।
गर्भिण्या ज्वरदाहञ्च प्रदरं सूतिकाऽऽमयम् ॥ १९ ॥

रससिन्दूर, चांदीभस्म, लौहभस्म, प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष, अभ्रकभस्म तीन कर्ष, कपूर, बंगभस्म, ताम्रभस्म, जायफल, जावित्री, गोखरू, शतावर, बला (खरैटी) की जड़, अतिबला (ककही, कंघी) की जड़; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला लें। सब को एकत्र पीसकर जल से घोटकर दो रत्ती भर की गोली बनावें। यह सन्निपात को, विशेष करके स्त्रियों के सन्निपात को दूर करता है। गर्भिणी स्त्री के ज्वर, दाह, प्रदररोग तथा सूतिका-रोग को हटाता है।

विशेषवचन—रसरत्नाकर में चांदीभस्म के स्थान पर हड़ताल का पाठ है। भैषज्यरत्नावली के पाठ में अभ्रकभस्म का मान दो कर्ष कहा है।

प्राचीन रसग्रन्थों की मानपरिभाषा के अनुसार कर्ष=एक तोले का होता है। परन्तु बङ्गाल के वैद्य कर्ष=दो तोला मानकर योग को बनाते हैं। व्यवहार भी इसी का अधिक होगया है ॥ १७—१९ ॥

बृहद्गर्भचिन्तामणि रसः—

सूतं गन्धः तथा स्वर्णं लौहं रजतमाक्षिके[3]।
हरितालं वङ्गभस्माप्यभ्रकं समभागिकम् ॥ २० ॥

१ 'तालं' र. र. पाठः। २ 'कर्षद्वयं' भै. र. पाठः।
३ 'रजतमाक्षिकम्' पा०।

भावना खलु दातव्या रसैरेषां पृथक् पृथक् ।
ब्रह्मीवासाभृङ्गराज-पर्पटीदशमूलकैः ॥ २१ ॥
सप्तधा भावयेद्वैद्यो गुञ्जामानां वटीं चरेत् ।
गर्भचिन्तामणिरयं पूर्ववद्गुणकारकः ॥ २२ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, स्वर्णभस्म, लौहभस्म, चांदीभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध हड़ताल, बंगभस्म, अभ्रकभस्म; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिला कर पीस लें। इसे ब्राह्मी, बांसा (अडूसा), भांगरा, पित्तपापड़ा; इन के रस तथा दशमूल; के क्वाथ से पृथक् सात २ भावना देकर एक रत्ति प्रमाण की गोली बनावें। यह गर्भचिन्तामणि रस पूर्वोक्त गुण करता है ॥ २०--२२ ॥

गर्भविनोदरसः—

देयं त्रिभागं त्रिकटु चतुर्भागञ्च हिङ्गुलम् ।
जातीकोषं लवङ्गञ्च प्रत्येकञ्च त्रिकार्षिकम् ॥ २३ ॥
सुवर्णमाक्षिकस्यापि पलार्द्धं प्रक्षिपेद् बुधः ।
जलेन मर्दयित्वाऽथ चणमात्रा वटी कृता ।
निहन्ति गर्भिणीरोगं भास्करस्तिमिरं यथा ॥ २४ ॥

सोंठ, मिरच, पिप्पली; मिलित ३ कर्ष, हिंगुल शुद्ध ४ कर्ष, जावित्री ३ कर्ष, लौंग ३ कर्ष, स्वर्णमाक्षिकभस्म आधा पल (२ कर्ष); सब को पीस जल से चने के समान (२ रत्ती की) गोली बनावे। यह गर्भिणी के रोग को ऐसे दूर करता है जैसे सूर्य अन्धकार को ॥ २३—२४ ॥

सूतिकाहररसः--

लवङ्गं रसगन्धौ च यवक्षारं तथा ऽभ्रकम्[1] ।
लौहं ताम्रं सीसकञ्च पलमानं समाहरेत् ॥ २५ ॥

---

१ 'यवाभ्रकम्' पा० ।

जातीफलं केशराजं भृङ्गैलामुस्तकं वरा ।
धातकीन्द्रयवं पाठा शृङ्गी बिल्वञ्च बालकम् ॥ २६ ॥
कर्षमानञ्च सञ्चूर्ण्य सर्वमेकत्र कारयेत् ।
बदरास्थिप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ २७ ॥
गन्धालिकापत्ररसैरनुपानं प्रदापयेत् ।
सर्वातीसारशमनः सर्वशूलनिवारणः ॥ २८ ॥
सूतिकाशोथपाण्डुत्व-सर्वज्वरविनाशनः ।
सूतिकाहरनामऽयं रसः परमदुर्लभः ॥ २९ ॥

लौंग, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, यवक्षार, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, ताम्र-भस्म, सीसकभस्म; प्रत्येक द्रव्य एक २ पल लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर खरल करें। फिर जायफल, केशराज, भांगरा (अथवा दालचीनी), छोटी इलायची, मोथा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, धाय के फूल, इन्द्रजौ, पाठा,काकड़ासिंगी, बेलगिरी, सुगन्धबाला;प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ कर्ष लेकर उस में मिलावें। जल से घोटकर बेर की गुठली के बराबर गोली बनावें। इसे गन्धप्रसारणी के रस के अनुपान से देना चाहिये। यह सब प्रकार के अतीसार तथा सब प्रकार के शूल को नष्ट करता है। सूतिका (जच्चा) के शोथ, पाण्डु तथा सब ज्वर इस से नष्ट होते हैं यह सूतिकाहर नामक रस परम दुर्लभ है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक ॥ २५—२९ ॥

महाऽभ्रवटी—

अभ्रकं पुटितं ताम्रं लौहं गन्धकपारदम् ।
कु[illegible]नटी टङ्कणं क्षारं त्रिफला च पलं पलम् ॥ ३० ॥

२ '[illegible]ग्राभृङ्गैलमुस्तकम्' पा० ।
१ 'स[illegible]तिकी नाशयेद् ध्रुवम्' [illegible]

गरलञ्च तथा माष-चतुष्कञ्चैव चूर्णितम् ।
तत्सर्वं भावयेदेषां रसैः प्रत्येकशः पलैः ॥ ३१ ॥
ग्रीष्मसुन्दरकस्याटरूपकस्य क्रमेण तु ।
रसैस्ताम्बूलवल्ल्याश्च दलोत्थैर्भावितं पृथक् ॥ ३२ ॥
द्रवे किञ्चित्स्थिते चूर्णं मरिचस्य पलं क्षिपेत् ।
सर्वातीसारशमनं सर्वशूलनिवारणम् ॥ ३३ ॥
सूतिकाशोथपाण्डुत्व–सर्वज्वरविनाशनम् ।
नाशयेत् सूतिकाऽऽतङ्कं वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ३४ ॥

अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लौहभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, शुद्ध मनसिल, शुद्ध सुहागा, यवक्षार, हरड़, बहेड़ा, आंवला; प्रत्येक द्रव्य एक २ पल (४ तोला) लें। तथा शुद्ध विष चार माशे (२४ रत्ती) लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर ग्रीष्मसुन्दरक (गीमा), बांसा, पान; इनके एक२ पल रसों से क्रमशः भावना (सात-सात) दें। जब अन्तिम भावना में कुछ जलीयांश शेष हो तब उस में मरिच का चूर्ण एक पल डालें और घोटकर सुखालें। इसके सेवन से सब प्रकार के अती-सार, सब शूल, सूतिका के शोथ पाण्डुरोग तथा सब ज्वर नाश होते हैं। यह सूतिकारोग को ऐसे नाश करता है जैसे वृक्ष को बिजली।

विशेषवचन—मात्रा—१ रत्ती ॥ ३०—३४ ॥

अपरमहाऽभ्रवटी—

मृतमभ्रञ्च लौहञ्च कुनटी ताम्रकं तथा ।
रसगन्धकटङ्कञ्च यवक्षारफलत्रिकम् ॥ ३५ ॥
प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यमूषणं पञ्चतोलकम् ।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं प्रत्येकेन विभावयेत् ॥ ३६ ॥
ग्रीष्मसुन्दरसिंहास्य–नागवल्ल्या रसेन च ।

चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥
योजयेत् सर्वथा वैद्यः सूतिकारोगशान्तये ॥ ३७ ॥

अभ्रकभस्म, लौहभस्म, शुद्ध मनसिल, ताम्रभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, यवक्षार, हरड़, बहेड़ा, आंवला; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला, मिरच चूर्ण पांच तोला ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर ग्रीष्मसुन्दरक (गीमा), बांसा, पान; इन सब के रस से पृथक् २ भावना (सात) दे और चार रत्ति प्रमाण की गोली बनावे। इसे सेवन करने से सूतिकारोग शान्त होता है।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ रत्ती।

यह रस सूतिकारोग में जब शीत लगता हो, ज्वर हो, शोथ हो, कास हो, पाण्डुता हो तब दिया जाता है ॥ ३५—३७ ॥

रसशार्दूलः—

अभ्रं ताम्रं तथा लौहं राजपट्टं रसं तथा।
गन्धटङ्कमरीचञ्च यवक्षारं समांशकम् ॥ ३८ ॥
तथाऽत्र तालकञ्चैव त्रिफलायाश्च तोलकम्।
तोलकञ्चामृतञ्चैव षड्गुञ्जाप्रमिता वटी ॥ ३९ ॥
ग्रीष्मसुन्दरकस्यापि नागवल्लीरसेन च।
भावयेत् सप्तधा हन्ति ज्वरं कासाङ्गसंग्रहम्।
सूतिकाऽऽतङ्कशोथादि स्त्रीरोगञ्च विनाशयेत् ॥ ४० ॥

अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, लौहभस्म, कान्तपाषाणभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, मिरच, यवक्षार, शुद्ध हड़ताल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, शुद्ध विष; प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिलावे और ग्रीष्मसुन्दरक तथा पान के रस से सातवार भावित करके छः रत्ति प्रमाण की गोली बनावे। इससे ज्वर, खांसी, अङ्गसंग्रह (अंगों का सिकुड़ जाना या जकड़ा जाना), सूतिकारोग, शोथ, तथा अन्य स्त्रीरोग नष्ट होते हैं।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक।

यहां 'त्रिफलायाश्च तोलकम्' में सामान्य नियम के अनुसार मान की प्रधानता होने से त्रिफला मिलित १ तोला लेना चाहिये था। परन्तु योग की ६ रत्ती मात्रा को देखते हुए त्रिफला के तीनों द्रव्य पृथक् ही एक-एक तोला लेना योग के आविष्कर्ता को अभीष्ट प्रतीत होता है। अतएव ऊपर भी पृथक् पृथक् ही लेने को कहे हैं ॥ ३८—४० ॥

महारसशार्दूलः—

अभ्रकं पुटितं ताम्रं स्वर्णं गन्धश्च पारदः।
शिला टङ्कं यवक्षारः त्रिफलायाः पलं पलम् ॥ ४१ ॥
गरलस्य तथा ग्राह्यमर्द्धतोलकसम्मितम्।
त्वगेला पत्रकश्चैव जातीकोषलवङ्गकम् ॥ ४२ ॥
मांसी तालीशपत्रञ्च माक्षिकञ्च रसाञ्जनम्।
एषां द्विकार्षिकं भागं देयश्चापि विचक्षणैः ॥ ४३ ॥
द्रवे किंचित्स्थिते चूर्णं मरिचस्य पलं क्षिपेत्।
भावना च प्रदातव्या पूर्वोक्तेन रसेन च ॥ ४४ ॥
निहन्ति विविधान् रोगान् ज्वरान् दाहान् वमिं भ्रमिम्।
तथाऽतिसारकश्चैव वह्निमान्द्यमरोचकम्।
विशेषाद् गर्भिणीरोगं नाशयेदचिरेण च ॥ ४५ ॥

अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, स्वर्णभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, शुद्ध मनसिल, शुद्ध सुहागा, यवक्षार; प्रत्येक द्रव्य १ पल, हरड़, बहेड़ा, आंवला; मिलित एक पल, शुद्ध विष आधा तोला, छोटी इलायची, दारचीनी, तेजपात, जावित्री, लौंग, जटामांसी, तालीशपत्र, स्वर्णमाक्षिकभस्म, रसौंत; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण दो २ कर्ष लें। पहले पारा गन्धक की कज्जली करें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर पीस लें। फिर पूर्वोक्त ग्रीष्मसुन्दरक तथा पान के रस के साथ सात २ वार भावना देवे। जब अन्तिम भावना में द्रव कुछ शेष रह

जावे तब मिरच का चूर्ण एक पल डाल देवे। फिर घोट कर गोली बनाकर रखे। यह विविधरोगों को यथा ज्वर, दाह, वमन, भ्रम, अतिसार, अग्निमांद्य, अरुचि और विशेष करके गार्भिणी के रोगों को शीघ्र नाश करता है।

विशेषवचन—मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक।

रसशास्त्र की परिभाषा के अनुसार 'पल' ४ तोले के बराबर होता है और कर्ष १ तोले के। इसी के अनुसार योग को बनाना चाहिये।

परन्तु बङ्गाल में 'पल' को आठ तोला और कर्ष को दो तोला मानकर योग को बनाते हैं और व्यवहार भी आजकल इसीप्रकार हो रहा है ॥ ४१—४५॥

बृहद्रसशार्दूलः—

रसस्य द्विगुणं गन्धं शुद्धं सम्मर्दयेद् दिनम्।
प्रतिलौहं सूततुल्यमष्टलौहं मृतं क्षिपेत् ॥ ४६ ॥
ब्रह्मी जयन्ती निर्गुण्डी यष्टीमधु पुनर्नवा।
नलिका गिरिकर्ण्यर्क-कृष्णधूर्त्तदुरालभाः ॥ ४७ ॥
आटरूषः काकमाची द्रवैरेषां विमर्दयेत्।
गुञ्जात्रयं चतुर्गुञ्जं सर्वरोगेषु योजयेत्।
रोगोक्तमनुपानं वा कवोष्णं वा जलं पिबेत् ॥ ४८ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला लेकर एक दिन मर्दन करके कज्जली बनावे। फिर उसमें आठों लौह अर्थात् स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, ताम्रभस्म, कांस्यभस्म, पित्तलभस्म, नागभस्म, बंगभस्म, लौहभस्म; प्रत्येक को एक २ तोला मिलावे। सब को घोट कर ब्राह्मी, जयन्ती, निर्गुण्डी (सम्भालू), मुलहठी, पुनर्नवा, नलिका (सुगन्धिद्रव्य विशेष), अद्रिकर्णी अर्थात् अपराजिता या कोयल, आक (मदार), काला धतूरा, दुरालभा, बांसा, मकोय; इनके रसों से क्रमशः मर्दन करके तीन या चार रत्ति की गोली बना सब रोगों में प्रयुक्त करे। इसके साथ रोगानुसार अनुपान दे या गरम जल ही से सेवन करावे।

विशेषवचन—आधुनिक मात्रा—२ रत्ती । इसे सब प्रकार के सूतिकारोग में दे सकते हैं । यदि किसी अन्य औषध से लाभ होता न दीखे तो इसके प्रयोग से सफलता की आशा की जा सकती है ॥ ४६—४८ ॥

तत्र अष्टौ लौहानि—

सुवर्णं रजतं ताम्रं कांस्यं पित्तलमेव च ।
नागं वङ्गं तथा लौहं धातवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥ ४९ ॥

स्वर्ण, चांदी, तांबा, कांस्य, पित्तल, नाग, वंग, लौह; ये आठ धातु अष्टलौह वा अष्टधातु कहाती हैं । इन आठ धातुओं की भस्में ही ऊपर के योग में डाली जाती हैं ॥ ४९ ॥

इति सूतिकारोगचिकित्सा ।

अथ बालरोगचिकित्सा ।

बालरसः—

पलं शुद्धस्य सूतस्य गन्धकस्य पलं तथा ।
सुवर्णमाक्षिकस्यापि भागार्द्धं संप्रकल्पयेत् ॥ १ ॥
ततः कज्जलिकां कृत्वा पात्रे लौहमये दृढे ।
केशराजस्य भृङ्गस्य निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च ॥ २ ॥
शुभे शिलामये पात्रे लौहदण्डेन मर्दयेत् ।
राजिकासदृशीश्चैव वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ३ ॥
एकैकां वटिकां खादेन्नागवल्लीदलद्रवैः ।
हन्ति त्रिदोषसम्भूतं ज्वरञ्चैव सुदारुणम् ॥ ४ ॥
चिरज्वरञ्च कासञ्च शूलं सर्वभवं तथा ।
शिशूनां रोगनाशाय शिवेन परिकीर्त्तितः ॥ ५ ॥

शुद्ध पारा एक पल, शुद्ध गन्धक एक पल; इन दोनों को लोहे के खरल में घोट यथाविधि कज्जली बनावें। स्वर्णमाक्षिकभस्म आधा पल इस कज्जली में मिलावें। फिर पत्थर के खरल में डालकर केशराज भांगरा और सम्भालू प्रत्येक के रस से पृथक् २ लोहे के डण्डे से मर्दन करके राई के समान गोली बना ले। एक गोली को पान के रस के साथ देवें तो त्रिदोषज भयंकर ज्वर दूर होता है। पुराना ज्वर खांसी तथा सब दोषों से उत्पन्न शूल को यह गोली दूर करती है। बालकों के रोगों को नाश करने के लिये यह रस शिव जी ने बनाया था ॥ १—५ ॥

बालरोगान्तकरसः—

पलं शुद्धस्य सूतस्य गन्धकस्य च तत्समम्।
सुवर्णमाक्षिकस्यापि चार्द्धभागं नियोजयेत् ॥ ६ ॥
ततः कज्जलिकां कृत्वा पात्रे लौहमये दृढे।
केशराजस्य भृङ्गस्य निर्गुण्ड्याः पर्णसम्भवम् ॥ ७ ॥
स्वरसं काकमाच्याश्च ग्रीष्मसुन्दरकस्य च।
सूर्यावर्त्तकवर्षाभू-भेकपर्णीरसैस्तथा ॥ ८ ॥
श्वेतापराजितायाश्च रसं दद्याद्विचक्षणः।
देयं रसार्द्धभागेन चूर्णं मरिचसम्भवम् ॥ ९ ॥
शुभे शिलामये पात्रे यामं दण्डेन मर्दयेत्।
शुष्कमातपसंयोगाद् गुडिकां कारयेद् भिषक् ॥ १० ॥
प्रमाणं सर्षपाकारं बालानाञ्च प्रयोजयेत्।
हन्ति त्रिदोषसम्भूतं ज्वरञ्चैव सुदारुणम् ॥ ११ ॥
कासं पञ्चविधञ्चापि सर्वरोगं निहन्ति च।
शिशूनां रोगनाशाय निर्मितोऽयं महारसः ॥ १२ ॥

१ 'लौहदण्डेन' पा०।

शुद्ध पारा एक पल, शुद्ध गन्धक एक पल, स्वर्णमाक्षिकभस्म आधा पल। लोहे के खरल में पहले पारा गन्धक की कज्जली करें। फिर उसमें स्वर्णमाक्षिकभस्म मिला खरल करें। इसे अब पत्थर के खरल में डालकर केशराज, भांगरा, निर्गुण्डी (सम्भालू), मकोय, ग्रीष्मसुन्दरक, हुलहुल, पुनर्नवा, मण्डूकपर्णी, श्वेत अपराजिता; प्रत्येक का स्वरस डाल २ कर घोटें। अन्त में कुछ स्वरस के रहते मिरच का चूर्ण आधा पल डालें और एक पहर घोटकर सरसों के समान गोली बनाकर धूप में सुखाकर रख लें। यह बच्चों के त्रिदोष जन्य भयंकर ज्वर, पांच प्रकार की खांसी तथा अन्य सभी रोगों को दूर करता है। बच्चों के रोग नाश करने के लिये यह महारस उत्तम है।

विशेषवचन—इससे मिलता जुलता ही रामेश्वर रस भी तन्त्रों में है। भेद केवल यही है कि वहां स्वर्णमाक्षिकभस्म पारद के समान ही है। श्वेत अपराजिता का रस न डालकर मरिचचूर्ण के प्रक्षेप के समय उसी के समान इसकी जड़ का चूर्ण डाला जाता है। भावनाद्रवों में पुनर्नवा के स्थान पर शालिञ्च शाक है ॥ ६—१२ ॥

इति बालरोग-चिकित्सा।

अथ विषचिकित्सा।

विषवज्रपातो रसः—

निशां सटङ्कञ्च सजातिकोषं तुत्थं समांशं कुरु देवदाल्याः।
रसेन पिष्ट्वा विषवज्रपातो रसो भवेत् सर्वविषापहन्ता ॥ १ ॥

---

१ 'शाणं सूतस्य गन्धस्य सुवर्णमाक्षिकस्य च। यत्नतः कज्जलीं कृत्वा लौहपात्रे विमर्दयेत् ॥ केशराजस्य भृङ्गस्य निर्गुण्ड्याः पर्णसम्भवैः। स्वरसैः काकमाच्याश्च ग्रीष्मसुन्दरकस्य च ॥ सूर्यावर्तकशालिञ्चभेकपर्णीरसैस्तथा। देयं रसार्द्धभागेन चूर्णं मरिचसम्भवम् ॥ श्वेतापराजितायाश्च मूलं दद्याद्विचक्षणः। शुष्कमातपसंयोगाद्गुडिकां कारयेद्भिषक् ॥ प्रमाणं सर्षपाकारं बालानाञ्चैव योजयेत्। हन्ति त्रिदोषसम्भूतं ज्वरं घोरं सुदारुणम्। शिशूनां रोगनाशाय विश्वबोधेन निर्मितम् ॥' इति रामेश्वरो रसः।

निष्कोऽस्य संजीवयति प्रयुक्तो नृमूत्रयोगेण च कालदष्टम् ।
जटाविषेणाकुलितं तथाऽन्यैर्विषैर्नरश्चाशु तथाऽऽतुरञ्च ॥ २ ॥

हल्दी, सुहागा, जावित्री, शुद्ध नीलाथोथा; सब द्रव्यों का चूर्ण समभाग लेकर एकत्र देवदाली या बन्दालडोडे के रस से घोटकर सुखाकर शीशी में रखें। यह विषवज्रपात रस सब विषों को नाश करने वाला है। इस रस को एक निष्क भर लेकर मनुष्य के मूत्र के साथ दें तो जिसे काले नाग ने काटा हो वा विषप्रभाव से जो मरणासन्न हो उसे भी जीवन देता है। मूलविष वा अन्य विषों से व्याप्त प्राणी को भी यह रस दिया जाये तो उस की प्राणरक्षा हो जाती है और विष शीघ्र नष्ट हो जाता है।

विशेषवचन--आधुनिक मात्रा--६ रत्ती से १६ रत्ती तक।

उक्त मात्रा में इस योग को देने से विषाकुल प्राणी को कै होती है। और कै से विष बाहिर निकल जाता है। मादक विषों को बाहिर निकालने के लिये इसे दे सकते हैं। फॉस्फोरस (प्रस्फुरक) के खाये जाने पर इस का प्रयोग करा सकते हैं। फॉस्फोरस पर ताम्र की तह बैठ जायगी जिस से वह निष्क्रिय हो जाता है। वमनार्थ उक्त मात्रा में प्रयोग कराये जाने पर यदि कै न हो तो तुत्थ के दुष्प्रभाव विदाह से बचने के लिये Stomach Pump आदि से आमाशय को धो डालना चाहिये अथवा पिच्छिल द्रव (ईसबगोल का लुआब आदि), अण्डे का श्वेत द्रव दूध घी मक्खन आदि देना चाहिये।

सर्पदष्ट व्यक्ति को भी इस रस का प्रयोग कराया जाता है। योगरत्नाकर में 'कालवज्राशनि रस' है। वहां 'जावित्री' के स्थान पर 'गन्धक' की भिन्नता है—

'पारदं गन्धकं तुत्थं टङ्कणं रजनी समम् ।
देवदाल्या द्रवैर्मर्द्यं दिनं शुष्कं तु भक्षयेत् ॥
कालवज्राशनिर्नाम रसः सर्वविषापहः ।
नरमूत्रं पिबेच्चानु कालदष्टोऽपि जीवति ॥'

भीमरुद्रो रसः—

सूतराजस्य तोलैकं गन्धकस्य तथैव च ।

प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात् कुडवोऽर्द्धशरावकः ॥ १० ॥
अष्टमानश्च स ज्ञेयः कुडवाभ्याञ्च माणिका ।
शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥ ११ ॥
शरावाभ्यां भवेत् प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाढकम् ।
भाजनं कंसपात्रे च चतुःषष्टिपलश्च तत् ॥ १२ ॥
चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलसो नल्वणोऽर्म्मणः ।
उन्मानश्च घटो राशिर्द्रोणपर्य्यायसंज्ञितः ॥ १३ ॥
द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकः ।
शूर्पाभ्याञ्च भवेद्द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता ॥ १४ ॥
गोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः ।
चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा ॥ १५ ॥
पलानां द्विसहस्रञ्च भार एक प्रकीर्त्तितः ।
तुला पलशतं ज्ञेयं सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ १६ ॥

परिमाण (तोल)—

६ सर्षप (सरसों)	का	१ यव (जौ)
३ यव [४ धान्य]	की	१ गुञ्जा वा रत्ति ।
५, ६, ७, ८, १० वा १२ रत्ति	का	१ माषा ।
४ माषा	का	१ शाण, धरण वा टङ्क ।
२ शाण	का	१ कोल, क्षुद्रक, वटक वा द्रङ्क्षण ।
२ कोल	का	१ कर्ष, पाणिमानिका, अक्ष, पिचु, पाणितल, किञ्चित्, पाणि, तिन्दुक, बिडालपदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपद, सुवर्ण, कवलग्रह वा उडुम्बर ।
२ कर्ष	की	१ शुक्ति, अर्धपल वा अष्टमिका ।

२ शुक्ति	का	१ पल, मुष्टि, आम्र, चतुर्थिका, प्रकुञ्च, षोडशी वा बिल्व ।
२ पल	की	१ प्रसृति वा प्रसृत ।
२ प्रसृति	का	१ कुडव, अञ्जलि, अर्धशराव वा अष्टमान ।
२ कुडव	का	१ शराव, माणिका वा अष्टपल (८ पल) ।
२ शराव	का	१ प्रस्थ ।
४ प्रस्थ	का	१ आढक, भाजन, कंस, पात्र वा चतुःषष्टिपल (६४ पल) ।
४ आढक	का	१ द्रोण, कलस, नल्वण, अर्मण, उन्मान, घट वा राशि ।
२ द्रोण	का	१ कुम्भ, शूर्प वा चतुःषष्टिशरावक (६४ शराव)
२ कुम्भ	की	१ गोणी, द्रोणी वा वाह ।
४ गोणी	की	१ खारी वा ४०९६ पल ।
१०० पल	की	१ तुला ।
२००० पल	का	१ भार ।

विशेषवचन—५ रत्ती से १२ रत्ती तक का एक माषा माना जाता है । सुश्रुत ५ रत्ती का माषा और चरक १० रत्ती मानता है। अतएव चरक का मान सुश्रुत के मान से दुगुना माना जाता है ।

परन्तु रसशास्त्र में कही मानपरिभाषाओं में ६रत्ती का माषा प्रचलित है । उसके अनुसार आजकल के प्रचलित मान के साथ समता इसप्रकार है— शाण=चौथाई तोला, कोल=आधा तोला, कर्ष=१ तोला, शुक्ति=२ तोला, पल =४तोला, प्रसृति =८तोला, कुडव=१६ तोला, शराव=३२ तोला, प्रस्थ=६४ तोला, आढक=२५६ तोला (३ सेर ३ छटांक १ तोला), द्रोण=१०२४ तोला (१२ सेर १२ छटांक ४ तोला), कुम्भ=२०४८ तोला (२५ सेर ९ छटांक ३ तोला), गोणी=४०९६ तोला (१ मन ११ सेर ३ छटांक १ तोला), खारी=१६३८४ तोला (५ मन ४ सेर १२ छटांक ४ तोला), तुला=४०० तोला (५ सेर), भार=८००० तोला (२ मन २० सेर)। तोले को ९६ रत्ती का मानकर ही यह स्पष्टीकरण है । जहां योग के द्रव्यों

के मूल में कहे प्रमाण में "तोलक" मान नहीं कहा वहां वर्त्तमान देशी तोल से मिलाने के लिये १२ रत्ती का माषा मान कर भी काम चल जाता है। इसप्रकार एक कोल अर्थात् एक तोले में पूरी ९६ रत्ती आजकल के अनुसार निकल आती हैं और पल ८ तोले का होजाता है। तब योग के बनाने में कोई ग़लती नहीं होती। परन्तु यदि अन्य प्रमाणों के साथ 'तोलक' शब्द से योग में किसी द्रव्य का प्रमाण निर्दिष्ट हो तो ग़लती की सम्भावना है। क्योंकि 'तोलक' को ९६ रत्ती ही समझा जाता है। जो पल से ४ तोला लेते हैं वे भी तोलक से ९६ रत्ती लेते हैं और जो पल से ८ तोला लेते हैं वे भी तोलक से ९६ ही रत्ती लेते हैं ॥ १६ ॥

अथ भावनाविधिः ।

दिवा दिवातपे शुष्कं रात्रौ रात्रौ निवासयेत् ।
शुष्कं चूर्णीकृतं द्रव्यं सप्ताहं भावनाविधिः ॥ १ ॥

सूखे हुए चूर्ण आदि द्रव्यों में कोई द्रव (स्वरस या क्वाथ) डालकर दिन को धूप में और रात को खुली छत पर रखकर सुखा देना भावना कहाती है। यदि समय का निर्देश न किया हो तो वहां सात दिन-रात भावना देवे ॥ १ ॥

द्रवेण यावता द्रव्यमेकीभूयार्द्रतां व्रजेत् ।
द्रवप्रमाणं निर्दिष्टं भिषग्भिर्भावनाविधौ ॥ २ ॥

जितने द्रव (स्वरस या क्वाथ) से चूर्णद्रव्य गीला हो जावे उतना ही द्रव भावना में डाला जाता है ॥ २ ॥

भाव्यद्रव्यसमं क्वाथ्यं क्वाथ्यादष्टगुणं जलम् ।
अष्टांशशेषितः क्वाथो भाव्यानां तेन भावना ॥ ३ ॥

जब किसी क्वाथ से भावना देने का विधान हो तब भावित करने योग्य चूर्ण के समान क्वाथ्य द्रव्य (जिस द्रव्य का क्वाथ बनाना है वह द्रव्य) लेवे। उस में आठ गुणा जल डाल कर पकावे। जब आठवां भाग जल शेष रह जाये तो उतार कर छान ले। इसे भावित करने योग्य चूर्णद्रव्य में डाल भावना दे ॥ ३॥

अथ पुटप्रकरणम् ।

रसादिद्रव्यपाकानां प्रमाणज्ञापनं पुटम् ।
नेष्टो न्यूनाधिकः पाकः सुपाकं हितमौषधम् ॥ १ ॥

पारद आदि द्रव्यों के पाकों के प्रमाण को बताने वाला पुट है। अधिक वा न्यून पाक से द्रव्यों के गुण नष्ट हो जाते हैं अतः ठीक२ आंच की मात्रा और उसकी अवधि को जानकर यथाविधि रसों का पाक करना उचित है। ठीक पकी औषध ही हितकर होती है ॥ १ ॥

लौहादेरपुनर्भावो गुणाधिक्यं ततोग्रता ।
अनप्सु मज्जनं रेखापूर्णता पुटतो भवेत् ॥ २ ॥

पुट देने से लौह आदि धातु फिर जीवित नहीं होते, वे अधिक गुणदायक और शीघ्र लाभकर होते हैं। जल पर तैर जाते हैं। हाथ की रेखाओं तक में सूक्ष्म होने से प्रविष्ट हो जाते हैं।

विशेषवचन—यहां यह समझ लेना चाहिये कि 'अपुनर्भव' वा पुनः जीवित न होना से अभिप्राय मित्रपञ्चक द्वारा स्वरूप में न आने से है। अन्य रासायनिक विधियों से तो कथञ्चित् पुनर्भव हो सकता है। जल पर तैरना मृत धातु का पूर्ण लक्षण नहीं ॥ २ ॥

पुटाद् ग्राव्णो लघुत्वं च शीघ्रव्याप्तिश्च दीपनम् ।
जारितादपि सूतेन्द्राल्लोहानामधिको गुणः ॥ ३ ॥

पुट देने से दृढ गुरु पदार्थ भी हलका वा महीन हो जाता है। पुट देने से औषध देह में शीघ्र व्याप्त होती है। पुट देने से औषध में अग्निदीपन वा उत्तेजना आदि गुण आजाते हैं। पुट देने से धातुओं में पारे की भस्म से भी अधिक गुण उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

यथाश्मनि विशेद्वह्निर्बहिःस्थपुटयोगतः ।
चूर्णत्वाद्धि गुणाऽऽवाप्तिस्तथा लोहेषु निश्चितम् ॥ ४ ॥

जैसे पत्थर को पुट देने अर्थात् आग में रखने से पत्थर के अन्दर तक

आग पहुंच जाती है और वह उसे चूर्ण (चूना) कर गुणकारक कर देती है। वैसे ही धातुओं को पुटें देने से वे अग्निप्रवेश से चूर्णरूप होकर देह के लिये गुणकारक हो जाते हैं।

विशेषवचन—लोह (धातु) कहना उपलक्षणमात्र है, इससे रस महारस उपरस सभी का ग्रहण है ॥ ४ ॥

महापुटम्—

निम्ने विस्तरतः कुण्डे द्विहस्ते चतुरस्रके।
वनोत्पलसहस्रेण पूरिते पुटनौषधम् ॥ ५ ॥
क्रौञ्च्यां रुद्धं प्रयत्नेन पिष्टकोपरि विन्यसेत्।
वनोत्पलसहस्रार्द्धं क्रौञ्चिकोपरि निक्षिपेत्।
वह्निं प्रज्वालयेत्तत्र महापुटमिदं स्मृतम् ॥ ६ ॥

दो हाथ लम्बा, दो हाथ चौड़ा, दो हाथ गहरा चौकोन गढ़ा खोदे। उस में एक हज़ार जंगली उपले भर कर उसपर पुट दी जाने वाली औषध को मूषा में बन्द कर रख दें। अब उस पर पांच सौ उपले ऊपर से चुनकर आग लगा दे, इसे महापुट कहते हैं ॥ ५—६ ॥

गजपुटम्—

राजहस्तप्रमाणेन चतुरस्रं च निम्नकम्।
पूर्णं चोपलसाठीभिः कण्ठावध्यथ विन्यसेत् ॥ ७ ॥
विन्यसेत्कुमुदीं तत्र पुटनद्रव्यपूरिताम्।
पूर्वाच्छगणतोऽर्धानि गिरिण्डानि विनिःक्षिपेत् ॥
एतद्गजपुटं प्रोक्तं महागुणविधायकम् ॥ ८ ॥

सवा हाथ गहरा, सवा हाथ चौड़ा, सवा हाथ लम्बा चौकोन गढा खोद कर जंगली उपलों से कण्ठ तक भर दे। अब पुटन द्रव्य से युक्त मूषा वा शरावसम्पुट को रख पूर्व डाले गये उपलों से आधे उपले ऊपर डाल दें। इस अति गुणकारक पुट का नाम गजपुट है।

विशेषवचन—साधारण हाथ २४ अङ्गुल का होता है। राजहस्त

३० अङ्गुल वा सवा हाथ का माना जाता है। गजपुट नाम होने से कई इससे बड़ा गर्त्त भी बनाने को कहते हैं। कोषग्रन्थों में गज प्रमाण दो हाथ और पौने दो हाथ दो प्रकार का बताया है। दो हाथ या ४८ अंगुल चौड़ा लम्बा गहरा जो गढा बना कर पुट दी जाती है उसे यहां महापुट ही कहा है। पौने दो हाथ से ४२ अंगुल लम्बा चौड़ा गहरा गढ़ा बनता है परन्तु यह व्यवहारसिद्ध नहीं है ॥ ७—८ ॥

वाराहपुटम्—

इत्थं चारत्निके कुण्डे पुटं वाराहमुच्यते ॥ ९ ॥

एक अरत्नि लम्बा, एक अरत्नि चौड़ा, एक अरत्नि गहरा गढ़ा खोदे उस में जंगली उपलों से पुट देने को वाराहपुट कहते हैं।

विशेषवचन—मुट्ठी बन्द कर कनिष्ठिका (सबसे छोटी) अंगुली को खोल दें। इस अंगुलि के अग्रभाग से कूर्परपर्यन्त प्रकोष्ठ के भाग का माप 'अरत्नि' से लिया जाता है। यह लगभग २० या २१ अंगुल होता है ॥ ९ ॥

कुक्कुटपुटम्—

पुटं भूमितले यत्तद्वितस्तिद्वितयोच्छ्रयम् ।
तावच्च तलविस्तीर्णं तत्स्यात्कुक्कुटकं पुटम् ॥ १० ॥

भूमितल पर दो बालिश्त ऊँचा और दो बालिश्त लम्बा चौड़ा जङ्गली उपलों से जो पुट दिया जाता है उसे कुक्कुटपुट कहते हैं।

विशेषवचन—वितस्ति वा बालिश्त बारह अंगुल की होती है। कई बारह अंगुल लम्बा चौड़ा गहरा गढ़ा बनाकर भी कुक्कुटपुट देते हैं ॥ १० ॥

कपोतपुटम्—

यत्पुटं दीयते भूमावष्टसंख्यैर्वनोपलैः ।
बद्ध्वा[1] सूतकभस्मार्थं कपोतपुटमुच्यते ॥ ११ ॥

पारद आदि को भस्म करने के लिये धरती पर आठ जंगली

---

१ 'रुद्ध्वा सूतार्कभस्मार्थं' इति केचित्पठन्ति ।

उपलों से मूषा को ऊपर नीचे और चारों ओर से वेष्टन कर जो पुट दी जाती है, उसे कपोतपुट कहते हैं।

विशेषवचन—मूषा को सब ओर से वेष्टन करने के लिये उपलों के टुकड़े कर सकते हैं ॥ ११ ॥

गोवरलक्षणम्—

गोष्ठान्तर्गोखुरक्षुण्णं शुष्कं चूर्णितगोमयम् ।
गोवरं तत्समाख्यातं वरिष्ठं रससाधने ॥ १२ ॥

गौशाला में गौओं के खुरों से चूर्ण हुआ गोमय सूखने पर गोवर कहाता है। यह रससिद्धि में उत्तम माना गया है ॥ १२ ॥

गोवरपुटम्—

गोवरैर्वा तुषैर्वापि पुटं यत्र प्रदीयते ।
तद्गोवरपुटं प्रोक्तं सिद्धये रसभस्मनः ॥ १३ ॥

शरावसम्पुट को गोवर वा तुष के ढेर में रख आग लगा दे। इसे गोवर पुट कहते हैं। यह पुट पारदभस्म बनाने में दी जाती है।

विशेषवचन—यह पुट ऐसे ही धरती पर अथवा गढ़ा खोद कर भी दी जा सकती है ॥ १३ ॥

भाण्डपुटम्—

स्थूलभाण्डे तुषापूर्णे मध्ये मूषासमन्विते ।
वह्निना विहिते पाके तद्भाण्डपुटमुच्यते ॥ १४ ॥

एक मज़बूत मोटे मिट्टी के पात्र में तुष ऊपर नीचे भर कर मध्य में शरावसम्पुट रख दें। इसे आग लगा दें। यह भाण्डपुट कहाती है ॥ १४ ॥

वालुकापुटम्—

अधस्तादुपरिष्टाच्च क्रौञ्चिकाऽऽच्छाद्यते खलु ।
वालुकाभिः प्रतप्ताभिर्यत्र तद्वालुकापुटम् ॥ १५ ॥

पुटनद्रव्य युक्त मूषा को ऊपर नीचे गरम गरम रेत से आच्छादित कर देना वालुकापुट कहाती है। अथवा एक पात्र में आधा रेता डाल कर उस

पर शरावसम्पुट रख ऊपर रेता भर दें, शराव से मुख बन्द कर दें। चारों ओर जंगली उपले रख आग लगा दें इसे भी वालुकापुट कहते हैं ॥ १५ ॥

भूधरपुटम्—

वह्निमित्रां क्षितौ सम्यङ् निखन्याद् द्व्यङ्गुलादधः।
उपरिष्टात्पुटं यत्र पुटं तद् भूधराह्वयम् ॥ १६ ॥

भूमि में एक गढ़ा खोदे। उसमें मूषा को रखदे। मूषा का मुखाग्र दो अंगुल भूमितल से नीचा होना चाहिये। गर्त में मूषा के चारों ओर भी दो २ अंगुल खाली जगह होनी चाहिये। अब इस खाली जगह में वालू वा रेत भर दें। मूषा के मुख पर भी दो अंगुल रेत आजानी चाहिये। अब इस पर उपलों को रख आग लगा दे। इसे भूधरपुट कहते हैं ॥ १६ ॥

लावकपुटम्—

ऊर्ध्वं षोडशिकामात्रैस्तुषैर्वा गोवरैः पुटम्।
यत्र तल्लावकाख्यं स्यात् सुमृदुद्रव्यसाधने ॥ १७ ॥

पृथ्वी पर धान के तुष वा गोबर की १ पल की ढेरी में जो पुट देते हैं उसे लावकपुट कहते हैं। अत्यन्त मृदु द्रव्य के साधन के लिये लावकपुट दी जाती है।

विशेषवचन—कइयों ने इसप्रकार लक्षण किया है—धरती पर एक बालिश्त भर ऊंची और चौड़ी गोबर वा तुषों की ढेरी में जो पुट दी जाती है उसे लावकपुट कहते हैं ॥ १७ ॥

अनुक्तपुटमाने तु साध्यद्रव्यबलाबलम्।
पुटं विज्ञाय दातव्यमूहापोहविचक्षणैः ॥ १८ ॥

जहां पुट का प्रमाण न दिया हो वहां साध्य द्रव्य के बलाबल (मृदुता, कठोरता आदि) को देख कर ऊहापोह द्वारा पुट का विचार स्वयं ही कर लेना चाहिये ॥ १८ ॥

उपलपर्य्यायाः—

पिष्टकं छगणं छाणमुत्पलं चोपलं तथा।

गिरिण्डोपलसाठी च वराटी छगणाह्वयम् ॥ १९ ॥

पिष्टक, छगण, छाण, उत्पल, उपल, गिरिण्ड, उपलसाठी, वराटी; ये नाम उपले के हैं ॥ १९ ॥

इति पुटाप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ रसाः ।

जीर्णज्वरे वसन्तमालती रसः—

स्वर्णं मुक्ता दरदमरिचं भागवृद्ध्या प्रदिष्टं
खर्परस्याष्टौ प्रथममखिलं मर्दयेन् मृज्जणेन ।
यावत् स्नेहो व्रजति विलयं निम्बुनीरेण तावत्
गुञ्जाद्वन्द्वं मधुचपलया मालतीप्राग्वसन्तः ॥ १ ॥
सेवितोऽयं हरेत्तूर्णं जीर्णश्च विषमज्वरम् ।
व्याधीनन्यांश्च कासादीन् प्रदीप्तं कुरुतेऽनलम् ॥ २ ॥

स्वर्णभस्म एक तोला, मोतीभस्म दो तोले, शुद्ध हिंगुल तीन तोला, मिरच का चूर्ण ४ तोला, खपरियाभस्म ८ तोला ले । सब को पीस कर मक्खन से खरल करे । फिर जम्बीरी नीबू के रस से तब तक खरल करे जब तक मक्खन की चिकनाई दूर न हो जाये । फिर इसे दो रत्ती भर लेकर शहद और पिप्पली के चूर्ण से मिलाकर खावे । इसके सेवन से जीर्णज्वर, विषमज्वर तथा खांसी आदि अन्य रोग शीघ्र ही नष्ट होते हैं । यह अग्नि-दीपक है ।

विशेषवचन—इसे प्रमेह, सूज़ाक, शुक्रदोष में भी देते हैं । क्षयरोग में इसका अधिक व्यवहार है । कोई २ इसमें चांदी की भस्म आठ तोला भी मिलाते हैं ।

क्षय तथा जीर्णज्वर में जब रोगी का तापांश ९९° वा १००° तक रहता हो, हलकी हलकी खांसी हो, दम फूलता हो, पाण्डुता हो तब इसे दिया

जाता है। उक्त अवस्था में यह शीघ्र लाभ करता है। फेफड़ों को शक्ति देता है। यदि किसी प्रकार का वहां शोथ वा विदाह हो तो उसे भी हटाता है। पार्श्वशूल आदि में भी शोथ को हटाकर शूल को नष्ट करता है ॥ १—२॥

श्री जयमङ्गलरसः—

हिङ्गुलसम्भवं सूतं गन्धकं टङ्कणं तथा।
ताम्रं वङ्गं माक्षिकञ्च सैन्धवं मरिचं तथा ॥ ३ ॥
समं सर्वं समाहृत्य द्विगुणं स्वर्णभस्मकम्।
तदर्द्धं कान्तलौहञ्च रूप्यभस्मापि तत्समम् ॥ ४ ॥
एतत्सर्वं विचूर्ण्याथ भावयेत् कनकद्रवैः।
शेफालिदलजैश्चापि दशमूलरसेन च ॥ ५ ॥
किराततिक्तकक्काथैस्त्रिवारं साधयेत् सुधीः।
भावयित्वा ततः कार्य्या गुञ्जाद्वयमिता वटी ॥ ६ ॥
अनुपानं प्रयोक्तव्यं जीरकं मधुसंयुतम्।
जीर्णज्वरं महाघोरं चिरकालसमुद्भवम् ॥ ७ ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा।
पृथग्दोषांश्च विविधान् समस्तान् विषमज्वरान् ॥ ८ ॥
मेदोगतं मांसगतमस्थिमज्जगतं तथा।
अन्तर्गतं महाघोरं बहिःस्थञ्च विशेषतः ॥ ९ ॥
नानादोषोद्भवञ्चैव ज्वरं शुक्रगतं तथा।
निखिलं ज्वरनामानं हन्ति श्रीशिवनिर्म्मितः।
बलपुष्टिकरश्चैव सर्वरोगनिवर्हणः ॥ १० ॥

हिंगुल से निकाला हुआ पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, ताम्रभस्म, वंगभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, सेंधानमक, मिरच का चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य एक-एक तोला, स्वर्णभस्म दो तोला, कान्तलोहभस्म एक तोला, चांदीभस्म एक

तोला ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर अन्य द्रव्य मिलाकर खरल करे और धतूरे के पत्तों के स्वरस से, शेफाली (हारसिंगार) के पत्तों के रस से, दशमूल के क्वाथ से, चिरायते के क्वाथ से तीन २ वार भावना देकर दो रत्ती भर की गोली बना ले। इसे जीरा चूर्ण तथा शहद के अनुपान से खाये तो महाघोर चिरकालिक जीर्णज्वर भी दूर होता है। आठों प्रकार का साध्य वा असाध्य ज्वर नष्ट होता है। भिन्न २ दोषों से उत्पन्न विविध प्रकार के सारे विषमज्वर, मेदोगत मांसगत अस्थिगत वा मज्जगत ज्वर, अन्तर्वेग महाघोर ज्वर, बहिर्वेग ज्वर, नानादोषों से उत्पन्न ज्वर, शुक्रगत ज्वर तथा सभी नामों वाले ज्वर इस से दूर होते हैं। यह बलपुष्टिकारक सर्वरोगनाशक श्रीजयमंगलरस शिव जी ने पहले बनाया था।

विशेषवचन—इसे प्रारम्भ में वा निर्बल व्यक्ति को आधी रत्ती मात्रा में देना ही पर्याप्त है। यह पुराने विषमज्वर में विशेषतः वात की प्रबलता होने पर चाहे रोगी का तापांश १०४° वा १०५° तक ऊँचा भी होजाता हो विशेष लाभ करता है ॥३—१०॥

विषमज्वरे अञ्जनम्—

निम्बबीजं शिलाजाजीधूम्रसारं समांशकम् ।
कारवेल्लरसैर्भाव्यमेकविंशतिवारकम् ॥ ११ ॥
यत्पार्श्वतोऽञ्जिते नेत्रे तत्पार्श्वं च ज्वरं जयेत् ।
अर्द्धनारीश्वरो नाम रसकौतुककारकम् ॥ १२ ॥

नीम के बीज, मनसिल शुद्ध, श्वेत जीरा, रसोई घर का धुंआ; प्रत्येक द्रव्य समभाग ले। सब को चूर्ण कर करेले के रस में २१ वार भावना देवे। सूखने पर शीशी में रखे। जिस आंख में इसे लगावे उसी ओर के आधे शरीर का ज्वर उतर जायेगा। दोनों ओर क्रमशः लगायें तो दोनों ओर का ज्वर दूर हो जाता है। इसे अर्धनारीश्वर कहते हैं।

विशेषवचन—यह ज्वर दूर करने की रीति केवल विषमज्वरों के लिये है ॥ ११—१२ ॥

कौतुकमञ्जनम्—

रसगन्धं शिलातुत्थं तालकं मृतटङ्कणम् ।
नवसादरकर्षैकमर्कदुग्धेन मर्दयेत् ॥ १३ ॥
चुल्लिकायामथारोप्य पचेद्यामांश्चतुर्दश ।
स्वाङ्गशीतलमादाय खल्ले तं कज्जलीकृतम् ॥ १४ ॥
अञ्जनं वामनेत्रस्य दक्षिणे कौतुकं भवेत् ।
दक्षिणे चाञ्जनं चैव आरोग्यं भवति क्षणात् ॥ १५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मनसिल, शुद्ध नीलाथोथा, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध सुहागा, नवसादर; प्रत्येक को कर्ष प्रमाण में ले। प्रथम पारे गन्धक की कज्जली करे फिर अन्य द्रव्य मिला आक के दूध में घोटे। फिर शरावसम्पुट में रख बालुकायन्त्र से १४ पहर तक पाक करे। स्वांगशीतल होने पर औषध को निकाल लें और पीस कर शीशी में रखें। इसे बांई आंख में आंजें तो दाहिने भाग का ज्वर छूट जाता है। दाहिनी आंख में इस का अंजन लगायें तो बायें भाग का ज्वर छूट जाता है ॥ १३—१५ ॥

स्वर्णघटितमकरध्वजः

षड्गुणबलिजारितमकरध्वजश्च—

पलमेकं सुवर्णस्य रसेन्द्रस्य पलाष्टकम् ।
रसस्य द्विगुणं गन्धं कज्जलीकृत्य यत्नतः ॥ १६ ॥
कुमारिकारसैर्भाव्यं काचपात्रे निधापयेत् ।
वालुयन्त्रे च संस्थाप्य क्रमशस्त्रिदिनं पचेत् ॥ १७ ॥
स्वाङ्गशीतं समादाय पुष्पारुणरजःसमम् ।
यवमात्रं प्रदातव्यमहिवल्लीदलैः सह ॥ १८ ॥
रसस्य षड्गुणैर्गन्धैः पूर्ववत् कज्जलीकृते ।
भाविते पाचिते सम्यक् षड्गुणबलिजारितः ॥ १९ ॥

विधिवत् सेवितो ह्येष मुमूर्षुमपि जीवयेत् ।
एतदभ्यासतश्चैव जरामरणनाशनम् ॥ २० ॥
अनुपानविशेषेण करोति विविधान् गुणान् ।
ज्वरं त्रिदोषजं घोरं मन्दाग्नित्वमरोचकम् ।
अन्यांश्च विविधान् रोगान् नाशयेन्नात्र संशयः ॥ २१ ॥
करोत्यग्निं बलं पुंसां वलीपलितनाशनः ।
मेधायुःकान्तिजननः कामोद्दीपनकृन्महान् ॥ २२ ॥
भास्वज्ज्योतिर्यथा भाति काचे नीलादिके शुभे ।
तथानुपानभेदेन क्रियावान् मकरध्वजः ॥ २३ ॥

शुद्ध सूक्ष्म सोने के पत्र १ पल, शुद्ध पारा ८ पल लेकर एकत्र खूब घोटे। जब उत्तम पिष्टी बन जाय तब १६ पल गन्धक मिला पीस कज्जली करे। इस कज्जली को घीकुमारी के रस से भावित कर ले। फिर सात कपरौटी की हुई एक आग को सहने वाली काचकूपी में इस कज्जली को डाल बालुकायन्त्र में तीन दिन तक क्रमशः मन्द मध्यम तीव्र आंच देकर पकावे। स्वांगशीतल होने पर शीशी को तोड़ कर इसे संभालकर निकाल ले। (शीशी के गले वा स्कन्ध पर लगा हुआ मकरध्वज होगा, स्वर्णभस्म शीशी के नीचे पड़ी होगी। जितने दिन सोने और पारे को खरल करेंगे उतना ही कम स्वर्ण शीशी में नीचे बचेगा) मकरध्वज लाल रंग का होगा। इस मकरध्वज को एक यव (जौ भर) लेकर पान में रखकर खाना चाहिये।

इस मकरध्वज में (शीशी में बचा स्वर्णभस्म भी मिला कर) फिर १६ पल शुद्ध गन्धक डाल कर घोट ले और उसी प्रकार बालुकायन्त्र में तीन दिन पाक करे तो यह चतुर्गुण-गन्धक-जारित मकरध्वज हुआ।

इसप्रकार पुनः १६ पल शुद्ध गन्धक मिला घोट ले और पूर्ववत् ही बालुकायन्त्र से तीन दिन पकावे तो यह षड्गुण-गन्धक-जारित मकरध्वज कहाता है।

इस षड्गुणबलिजारित मकरध्वज को विधिपूर्वक सेवन करायें तो यह

मरणासन्न रोगी को भी जीवित कर देता है। इसे नित्य सेवन करने से बुढ़ापा और अकालमृत्यु भी दूर होती है। विविध अनुपानों से यह विविध गुण करता है। त्रिदोषज घोर ज्वर, मन्दाग्नि, अरुचि तथा अन्य विविध रोगों को निस्सन्देह नाश करता है। अग्नि और बल को बढ़ाता है। झुर्रियां पड़ना श्वेत बाल होना; इन्हें भी दूर करता है। मेधा, आयु तथा कान्ति को बढ़ाता है। यह अत्यन्त कामोद्दीपक है। जैसे श्वेत नीले लाल रंग के कांच में से गुज़रती हुई सूर्य की ज्योति भी श्वेत नीली और लाल हो जाती है, ऐसे ही प्रत्येक रोग पर अनुपानभेद से यह मकरध्वज अपना भिन्न भिन्न प्रभाव अवश्य दिखाता है।

विशेषवचन—बहिर्धूमपाक में जब मृदु मध्य और कुछ काल तीव्र आग देते हुए गन्धक का धूम निकलना बन्द हो जाय तो कूपी के मुख को खड़िया के डाट और गुड़ चूने से बन्द कर दें। और अवशिष्टकाल में तीव्र अग्नि से पाक कर लें। स्वांगशीतल होने पर मकरध्वज और नीचे अवशिष्ट स्वर्ण-भस्म को निकाल लेना चाहिये।

मुमूर्षु रोगी को कस्तूरी और कर्पूर मिलाकर मकरध्वज दिया जाता है। इससे नाड़ी बलवान और स्थिर हो जाती है। देहका तापांश भी कम नहीं होने पाता ॥ १६—२३ ॥

अंशुघाते रत्नेश्वरो रसः—

वज्रं वैक्रान्तमभ्रञ्च सिन्दूरं ताप्यमेव च।
रजतं मौक्तिकं हेम सर्वमिक्षुरसेन वै ॥ २४ ॥
शतावरीरसेनापि विदार्याः स्वरसेन च।
भावयित्वा वटीः कुर्याद् गुञ्जैकप्रमिताः शुभाः ॥ २५ ॥
त्रिफलाजलयोगेन रसो रत्नेश्वरो हरेत्।
मस्तिष्कस्नायुजान् व्याधीनंशुघातं विशेषतः ॥ २६ ॥

हीराभस्म, वैक्रान्तभस्म, अभ्रकभस्म, रससिन्दूर, स्वर्णमाक्षिकभस्म, चांदीभस्म, मोतीभस्म, सोनाभस्म; इन्हें समभाग में लेकर ईख के रस, सतावर के रस तथा विदारीकन्द के रस से पृथक् सात सात बार भावना

देकर एक रत्ती की गोली बनावें। इसे त्रिफला के जल के साथ प्रयोग कराते हैं। यह दिमाग़ तथा वातनाडियों के रोगों को विशेषकर अंशुघात (Sunstroke) को नष्ट करता है।

विशेषवचन—इसे चौथाई रत्ती मात्रा में देना पर्याप्त है ॥ २४—२६ ॥

मूर्च्छायां मूर्च्छान्तको रसः—

सिन्दूरं माक्षिकं हेम शिलाजत्वयसी तथा।
शतमूल्या विदार्याश्च स्वरसेन विभावयेत् ॥ २७ ॥
श्लक्ष्णं पिष्ट्वा ततः कुर्याद् वटिका वल्लसम्मिताः।
रसो मूर्च्छान्तको हन्यादसौ मूर्च्छाः शिवोदितः ॥ २८ ॥

रससिन्दूर, स्वर्णमाक्षिकभस्म, स्वर्णभस्म, शुद्ध शिलाजीत, लोहभस्म; इन्हें समभाग में एकत्र घोटकर शतावर और विदारीकन्द के रस से सात सात भावना दे और डेढ़ वा दो रत्ती की गोली बना मूर्च्छारोग में रोगी को दे। यह शिव जी का कहा मूर्च्छान्तक रस है ॥ २७—२८ ॥

सूतिकारोगे लक्ष्मीनारायणो रसः—

शुद्धगन्धकमेतच्च टङ्कणं विषहिङ्गुलम्।
रोहिण्यतिविषा कृष्णा वत्सकाभ्रकसैन्धवम् ॥ २९ ॥
एतानि समभागानि खल्वमध्ये विनिक्षिपेत्।
दन्तिद्रावैः फलद्रावैर्मर्दयेच्च दिनत्रयम् ॥ ३० ॥
गुञ्जामितां वटीं कृत्वा आर्द्रकस्य जलैर्ददेत्।
दोषज्वरे सन्निपाते विसूच्यां विषमज्वरे ॥ ३१ ॥
अतिसारे ग्रहण्यां च रक्तामे मेहशूलजित्।
सूतिकावातदोषघ्नो लङ्केशमिव राघवः ॥ ३२ ॥
इष्टान्नं भोजयेत्पथ्यमभ्यङ्गं स्नानमाचरेत्।
कर्पूरमिश्रताम्बूलं प्रसूनं हरिचन्दनम् ॥ ३३ ॥

नारिकेलोदकं पीत्वा नारीणां सङ्गमेव च ।
लक्ष्मीनारायणो नाम रसानामुत्तमो रसः ॥ ३४ ॥

शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, शुद्ध विष, शुद्ध हिङ्गुल, कुटकी, अतीस, पिप्पली, इन्द्रजौ, अभ्रकभस्म, सेन्धानमक; प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण समभाग लेकर खरल में डाले और दन्तीमूल के क्वाथ तथा मैनफल के क्वाथ से तीन २ दिन मर्दन करे। पश्चात् एक रत्ती की गोली बना ले। इसे अदरक के जल के साथ वात आदि दोषों से उत्पन्न ज्वर, सन्निपातज्वर, विसूचिका, विषमज्वर, अतिसार, संग्रहणी, रक्तातीसार, आमातीसार में दे। यह प्रमेह और शूल को हटाता है, यथेष्ट हितकर भोजन, अभ्यङ्ग, स्नान, कपूर युक्त पान का सेवन, पुष्पधारण, चन्दनानुलेपन, नारियल के जल का पान कर स्त्रीसङ्ग पथ्य है।

यह रस स्त्रियों में प्रसूत वात को ऐसे नष्ट करता है जैसे श्री रामचन्द्र ने रावण को मारा था। यह लक्ष्मीनारायण रसों में उत्तम रस है ॥२९-३४॥

फुप्फुसरोगे कल्याणसुन्दरो रसः—

सिन्दूरमभ्रं तारञ्च ताम्रं हेम च माक्षिकम् ।
सर्वं खल्लतले क्षिप्त्वा मर्दयेद्वह्निवारिणा ॥ ३५ ॥
हस्तिशुण्डयम्भसा पश्चाद् भावयित्वा च सप्तधा ।
गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा कोष्णतोयेन दापयेत् ॥ ३६ ॥
उरस्तोयञ्च हृद्रोगं वक्षोघातमुरोऽस्रकम् ।
फौप्फुसान् हन्ति रोगांश्च रसः कल्याणसुन्दरः ॥ ३७ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, चांदीभस्म, ताम्रभस्म, स्वर्णभस्म, स्वर्णमाक्षिक-भस्म; इन्हें समभाग में ले एकत्र पीसकर चित्रक के क्वाथ से मर्दन करे। पश्चात् हाथीसुंडी के रस से सात भावना देकर एक रत्ती की गोलियां बनावे। एक गोली को कोसे जल से दे। उरस्तोय (Pleurisy), हृद्रोग, उरोघात वा फुप्फुस में रक्तसञ्चय होना तथा अन्य फेफड़े के रोगों को यह कल्याण-सुन्दर रस नष्ट करता है ॥ ३५-३७ ॥

वृक्करोगे सर्वतोभद्रवटी—

हेमरौप्याभ्रलौहानि जतु गन्धश्च माक्षिकम्।
वटीं रक्तिमितां कुर्य्याद्विमर्द्य वरुणाम्भसा॥ ३८॥
वटीयं सर्वतोभद्रा निखिलान् वृक्कजान् गदान्।
हरेद्बस्तिभवांश्चापि बलं वीर्यञ्च वर्द्धयेत्॥ ३९॥

स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध गन्धक, स्वर्णमाक्षिकभस्म; इन को वरणे की छाल के क्वाथ से पीस कर एक रत्ती की गोली बनावें। यह सभी वृक्कसम्बन्धी रोगों तथा बस्तिसम्बन्धी रोगों को नष्ट करती है। बल और वीर्य बढ़ाने वाली है। इसका नाम सर्वतोभद्रवटी है।

विशेषवचन—इसके प्रयोग से वृक्क का शोथ तथा उसके कारण होने वाला ओजोविस्रंस शीघ्र नष्ट होता है॥ ३८—३९॥

यन्मूत्रलं शोणितशोधनञ्च यत् पोषणं वह्निविवर्द्धनञ्च।
वृक्कस्य रोगे परियोजयेत् तद् व्याधेर्बलं वीक्ष्य भिषग् विधिज्ञः॥४०॥

जो औषध मूत्र लाने वाली हों, रक्त-शोधक हों, पुष्टिकारक तथा अग्नि-वर्धक हों उन्हें वृक्करोग में रोग के बलाबल को देख कर उचित मात्रा में विधि को जानने वाला वैद्य प्रयोग करे॥ ४०॥

रसो विर्द्धयेद् व्याधिमतस्तं नेह योजयेत्॥ ४१॥

वृक्करोग (विशेषतः Bright's Disease) में पारा (रसपुष्प रससिन्दूर आदि सभी रूपों में) न दें क्योंकि इससे रोग बढ़ता है॥ ४१॥

प्रमेहे स्वर्णवङ्गम्—

प्रक्षिपेद्भाजने वङ्गमायसे वापि मृण्मये।
विद्रुते वह्नितापेन तस्मिंस्तन्मानकं रसम्॥ ४२॥
क्षिप्त्वा सञ्चूर्णयेत्तत्र नरसारञ्च गन्धकम्।
तनुवासोमृदालिप्तकाचकूप्यां निधाय च॥ ४३॥

तत्सर्वं सिकतायन्त्रे पचेद् यामचतुष्टयम् ।
पाकात् सञ्जायते चित्रं कीर्णं हेमकणैरिव ॥ ४४ ॥
रमणीयतरं स्वर्णवङ्गं नाम रसायनम् ।
बल्यं मेहहरं कान्तिमेधावीर्य्याग्निवर्द्धनम् ॥ ४५ ॥

एक लोहे के पात्र में या मिट्टी के कटोरे में शुद्ध वंग को डाल आग पर पिघलावें। पिघलते ही उस में समभाग शुद्ध पारा डालकर खरल करें। फिर शुद्ध गन्धक को पारे के समभाग डालकर कज्जली कर लें। पश्चात् नवसादर को भी पारे के समान मिला घोट कर कपड़मिट्टी की हुई एक काचकूपी में डाल बालुकायन्त्र में रखकर (खुले मुंह) बारह घण्टे पकावें। यह पक कर सोने के चूर्ण के समान सुन्दर रंग की चमकदार हो जाती है। इसे स्वर्णवंग कहते हैं। यह रसायन है, बलवर्धक है। प्रमेह (और सूज़ाक) को नाश करती है। कान्ति, मेधा, वीर्य और अग्नि को बढ़ाती है।

विशेषवचन—मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक। सूज़ाक में इसे शीतलचीनी के चूर्ण के साथ मिलाकर मधु से चटाते हैं। रससिन्दूर के साथ यह प्रमेह में उत्तम है। वातप्रधान दमे में जिसमें सांस बहुत फूलता हो कफ विशेष न हो यह लाभ करती है।

इसको प्रस्तुत करने में वङ्ग और पारे की पिष्टी को सेन्धानमक के साथ तब तक घोट कर धोते जाना चाहिये जब तक काला मैला जल निकलना बन्द न हो जाय। पश्चात् स्वच्छ जल से अच्छी प्रकार धोकर लवणांश-हीन कर लें। सूखजाने पर गन्धक के साथ कज्जली करें। गन्धक भी स्नेहांश से रहित होनी चाहिये। ऊर्ध्वपातन से शोधित गन्धक लीजाय तो सर्वोत्तम है।

बारह घण्टे पाक का काल प्रत्येक द्रव्य को ६ तोला लेने से ठीक रहेगा। काचकूपी के मुख को अन्त तक बन्द नहीं किया जाता। यदि मुख नौशादर आदि के धूम से बन्द हो तो उसे खोल दिया जाता है। धूम के कम होने पर लोहशलाका से जिसका एक सिरा पालिकाकृति हो डालकर परीक्षा करते रहना चाहिये। औषध का ठीक वर्ण होने पर नीचे से आग को हटा लें ॥ ४३—४५ ॥

वङ्गाष्टकम्—

रसं गन्धं मृतं लौहं मृतरूप्यञ्च खर्परम् ।
मृताभ्रकं मृतं ताम्रं सर्वतुल्यञ्च वङ्गकम् ॥ ४६ ॥
पुटेत् लघुपुटे विद्वान् स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
रक्तिद्वयप्रमाणेन मधुना लेहयेन्नरम् ॥ ४७ ॥
निशाचूर्णं चौद्रयुतं पिबेद्धात्रीरसं ह्यनु ।
वङ्गाष्टकमिदं ख्यातं महादेवप्रकाशितम् ॥ ४८ ॥
प्रमेहान् विंशतिं हन्ति आमदोषं विसूचिकाम् ।
विषमज्वरगुल्मार्शोमूत्रातीसारपित्तजित् ॥
वीर्यवृद्धिं करोत्याशु सोमरोगनिबर्हणम् ॥ ४९ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, चांदीभस्म, खर्परभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म; प्रत्येक द्रव्य १ तोला, वङ्गभस्म ७ तोला; इन्हें एकत्र घोटकर लघुपुट दें। स्वाङ्गशीतल होने पर निकाल लें और पीसकर शीशी में रख लें। दो रत्ती मात्रा में मधु के साथ चटायें। आंवले के रस में हल्दी का चूर्ण डाल अनुपानार्थ रोगी को दें। यह बीस प्रकार के प्रमेह, आमदोष, विसूचिका, विषमज्वर,गुल्म,अर्श (बवासीर), मूत्रातीसार, पित्तरोग तथा सोमरोग को नष्ट करता है। वीर्य को बढ़ाता है ॥४६—४९॥

औपसर्गिकमेहे कन्दर्प रसः—

रसं गन्धं विद्रुमञ्च स्वर्णं शुद्धञ्च गैरिकम् ।
वैक्रान्तं रजतं शङ्खं मौक्तिकञ्च समं समम् ॥५०॥
न्यग्रोधस्य कषायेण भावयित्वा च सप्तधा ।
वल्लोन्मानां वटीं कृत्वा त्रिफलाक्काथवारिणा ॥५१॥
सुरप्रियस्यार्जुनस्य क्काथेनाभाम्भसाऽपि वा ।
औपसर्गिकमेहस्य शान्त्यर्थं विनियोजयेत् ॥५२॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, मूंगाभस्म, स्वर्णभस्म, शुद्ध स्वर्णगैरिक, वैक्रान्तभस्म, चांदीभस्म, शंखभस्म, मोतीभस्म; प्रत्येक द्रव्य को समभाग ले। पहले पारा गन्धक की कज्जली करे। फिर उसमें शेष द्रव्य मिला पीपल की छाल के क्वाथ से सात वार भावना देकर डेढ़ वा दो रत्ती की गोली बनाले। सूज़ाक में त्रिफलाक्वाथ वा त्रिफलाजल अथवा सर्दचीनी के क्वाथ, अर्जुन की छाल के क्वाथ वा बबूल के क्वाथ से प्रयोग करावे।

विशेषवचन— यह रस पुराने सूज़ाक में विशेषतया प्रयुक्त कराया जाता है ॥५०—५२॥

व्रणमेही त्यजेद् यत्नाद् व्यवायं सोऽहितो यतः ।
स्त्रिया च परिभुक्ताया आमयं जनयेद्धि तत् ॥५३॥

सूज़ाक वाला रोगी, मैथुन छोड़ देवे। विशेष करके दुराचारिणी स्त्री से मैथुन करने से यह रोग उत्पन्न होता है ॥ ५३ ॥

भेषजं पानमन्नञ्च निषेवेतानुलोमनम् ।
व्रणघ्नं मूत्रजननं क्रियामुग्रां विवर्जयेत् ॥ ५४ ॥

औषध अन्न पान ऐसा करे जो वात आदि का अनुलोमन करने वाला व्रणनाशक और मूत्रजनक हो। रोगी कोई परिश्रम का काम न करे ॥ ५४ ॥

कोष्णे जात्या वराया वा क्वाथे शिश्नं निमज्जयेत् ।
वेदनोपशमस्तेन व्याधेश्च बलसंक्षयः ॥५५॥

चमेली के पत्तों के या त्रिफला के मन्दोष्ण क्वाथ में लिंग को रखे। इस से पीड़ा शान्त होती तथा राग घटता है ॥ ५५ ॥

एकं सुरप्रियफलं मेहमागन्तुकं हरेत् ॥५६॥

कबाबचीनी का चूर्ण ही (एक माषा भर) प्रातःकाल खाने से सूज़ाक नष्ट होता है ॥ ५६ ॥

वराभापिप्पलानाञ्च व्रणमेहनिवृत्तये ।
कुर्य्यादुत्तरबस्तिञ्च कषायेण प्रयत्नतः ॥५७॥

त्रिफला, बबूल की छाल, पीपल की छाल; ... पथरी तोड़ता है। और उत्तरबस्ति करने से व्रणमेह (सूज़ाक) नष्ट होता ... वे तो उसको पानी ... मलाकर पेशाब के साथ ... दार पत्थर है।

महाभ्रवटिका—

त्रिःसप्तकृत्वः सम्भाव्य भृङ्गराजाम्भ...
तेन गन्धं रसं लौहं हेम चाभ्रार्द्धसम्मि...
वराक्वाथेन सम्मर्द्य वटिकां रक्तिकोन्मि...
औपसर्गिकमेहस्य नाशाय दापयेद् भि...

भांगरे के रस में इक्कीसवार अभ्रकभस्म २ तोल... गन्धक, शुद्ध पारा; प्रत्येक को १ तोला लेकर कज्जली ... भस्म एक २ तोला ले। सब को एकत्र मिला त्रिफला के ... रत्ति की गोली बना ले। इस के सेवन से सूज़ाक नष्ट होता ...

विशेषवचन—कई केवल स्वर्णभस्म को अभ्रकभस्म से आधा मानते और शेष द्रव्यों को अभ्रकभस्म के समान ही ॥ ५८—५९ ॥ ... ग्राह्य ...

क्षुद्ररोगेषु अमृताङ्कुरवटी—

अमृतं पारदं गन्धं लौहमभ्रं शिलाजतु।
गुञ्जामात्रां वटीं कुर्यान्मर्दयित्वामृताम्भसा ॥ ६० ॥
एषामृताङ्कुरवटी पीता धात्र्यम्भसा सह।
क्षुद्ररोगानशेषांस्तु गदान् पित्तास्रकोपजान् ॥६१॥
ज्वरं जीर्णं प्रमेहञ्च कार्श्यमग्निक्षयं तथा। ...
नाशयेज्जनयेत्पुष्टिं कान्तिं मेधां शुभां मतिं ॥६२॥

शुद्ध विष, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, शिलाजीत; इन्हें समभाग में लेकर गिलोय के रस से घोट कर १ रत्ती गोली बनावें। इसे आंवला के जल के साथ देने से सम्पूर्ण क्षुद्ररोग पित्त और रक्त के कोप से होने वाले रोग नष्ट होते हैं। जीर्णज्वर, प्रमेह, कृशता, अग्निमान्द्य; इन्हें भी यह वटी हटाती है। कान्ति मेधा और मति को बढ़ाती है ॥६०—६२॥

कुमारकल्याणो रसः—

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक व्योमायो हेममाक्षिकम् ।

वैक्रान्तभस्म, चांदीभस्म, शंख

ले। पहले पारा गन्धक की कुर्यान्मुद्गमिता वटीः ॥ ६३ ॥

पीपल की छाल के क्वाथ से वा वयोऽवस्थां विविच्य च ।

गोली बनाले। सूज़ाक में र्धं बालेषु विनियोजयेत् ॥ ६४ ॥

के क्वाथ, अर्जुन की के क्

विशेषवचन— रस सं वमनं पारिगर्भिकम् ।

जाता है ॥५०—५२॥ लान् स्तन्यस्याग्रहणं तथा ॥ ६५ ॥

व्रणमेही जेद् रश्च कृशतां वह्निवैकृतम् ।

त्रिया च पारे कल्याणो नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ६६ ॥

वाला है मोतीभस्म, स्वर्णभस्म, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, स्वर्ण-

रने से इन्हें सम भाग में लेकर इकट्ठा मिला घीकुमार के रस से अच्छी-

भांति मूंगभर की गोली बनावें। बालक की उम्र तथा रोग की

अवस्था का विवेचना करके एक गोली वा आधी गोली जैसा उचित हो

मिले दूध के साथ दें। इससे बच्चों के ज्वर श्वास, कै, पारिगर्भिक रोग,

व्रण सम्पूर्ण ग्रहदोष, दूध न लेना, कामला, अतिसार, कृशता तथा अग्निमान्द्य नष्ट

होता है—इसमें संशय नहीं। इस का नाम कुमारकल्याण रस है ॥६३—६६॥

इति रसेन्द्रसारसंग्रहे परिशिष्टम् ।

चमेली के पत्तों से या

से पीड़ा शान्त

ए

कबा

नष्ट होता

गुण—पेशाब खूब लाता है गुर्दे और मसाने की पथरी तोड़ता है। और पथरी पैदा होने नहीं देता। बस्ति में यदि रक्त जम जावे तो उसको पानी और कड़वे बादाम के साथ पिलावें तो खून को पिघलाकर पेशाब के साथ बहा देता है।

विवरण—एक गोल किस्म का बेर के बराबर धारीदार पत्थर है।

६२—हुब्बे विलसां।

स्वाद—कड़वा।

हानिप्रद—बस्ति को।

हानिनि०—कतीरा।

अभाव—उद विलसां।

रंग—स्याह।

मात्रा—६ माशे।

गुण—आमाशय और पाचन शक्ति को मज़बूत बनाता है। मेदा वा आंतों की सर्दी या तरी को दूर करता है। और खुश्क करता है। जिगर का सुद्दा खोलता है। कानों के भनभनाने, जलोदर और फाटन को और अक्सर दिमाग़ी पित्तल और बलग़मी रोगों को लाभप्रद है।

विवरण—विलसां के बीज कालीमिर्च के बराबर होते हैं।

६३—मेंगास्तिन।

इसकी उत्पत्ति सिंगापुर में अधिक होती है। वहां से यह भारत को आता है। ब्रह्मा वा मद्रास प्रेसिडेन्सी में भी मेंगास्तिन पैदा होता है।

गुण—इसका फल आम वा रक्तातिसार के लिए उत्तम औषधि है।

मात्रा— [illegible] से २ माशे।

[illegible] वा ग्लीट की औषधि समझी जाकर व्यवहृत होती [illegible]न्द्रिय की उत्तेजना एवं धातु स्राव का ह्रास करती है।

६४—चाय camellia Theiferā.

Eng:—Tea Plant.

उत्पत्ति स्थान—इंगलैंड, भारतवर्ष, आसाम, चीन, जापान, वा अमेरिका

में सर्वत्र पैदा होती है।

भेद—काली वा हरी करके इसके दो भेद हैं। इसके बाजारों में कई सुपरिचित भेद प्राप्त होते हैं। कंगु, सुचङ्, पिको, एवं उलङ् यह काले की चार जातियां हैं। तथा, हाइसिन्, स्किन्, यंग हाइसिन, टॉनिक, इम्पीरियल, गनपाउडर यह सब्ज (हरी) चाय के भेद हैं। इसके अतिरिक्त नींबू, गुलाब, चमेली वा अन्यान्य पुष्पों के संयोग से भी चाय सुगंधित करके प्रस्तुत होती है। कई तो अत्यन्त उपादेय श्रेणी की चाय हैं जिनको चीन वा रूस के उच्च श्रेणी के भद्र पुरुष प्रयोग करते हैं (१ औंस ५० शिलिंग को) भारतवर्ष में न तो पैदा होती है और न उनका प्रयोग ही होता है। एक ही चाय के पत्तों से भिन्न भिन्न किस्म की चाय बनाई जाती हैं। वृक्ष से लेकर पत्तों को सूखने पर सब्ज चाय बनती है। इसी से उत्तम मध्यम करके ४ भेद बनाते हैं। शीघ्र सूखने पर रंग हरा वा देर में सूखने पर काला होता है। काली चाय इसी प्रकार बनती है। इन्हें भिन्न भिन्न क्रमों से तैयार भी करते हैं। आजकल बाज़ारों में हरी वा सब्ज बनाने के लिए हल्दी इत्यादि के रंग द्वारा भी रंग देकर कई अन्य पेड़ों की पत्तियां मिलाकर बेचा करते हैं।

गुण—परिमित चाय पीने पर वह श्रमहर, उष्ण, आनन्दप्रद वा पसीना लाने वाली है। अधिक सेवन से हृदय, मस्तिष्क, वातनाडी वा पाकस्थली की क्रिया में विघात पैदा करती हैं। अतः अरुचि, वमन, आध्मान, ग्रहणी, हस्तपद-कंप, मुखविवर्ण, क्षीण नाड़ी, भूपीडन, मत्तता (Hallueinetion) स्वप्नदोष इत्यादि भयंकर रोग पैदा होते हैं। चाय का पान शरीर का ह्रास करती है किन्तु आज उसे पोषक कहकर प्रयोग करते हैं। नाइट्रोजन वा हाइड्रो कार्बन युक्त खाद्य चाय से पच जाते हैं। चाय में टैनिन नामक पदार्थ रहता है। यह पीने पर आहार द्रव्य में मिलकर अ[illegible] है। अतः संग्रहणी वा कोष्ठबद्धता पैदा होती है। मू[illegible] के कोष्ठों की विकृति वा मस्तिष्क रोग वालों को चाय ब[illegible]

(आर. एन. [illegible]

डा० डिमक का कथन है कि चाय प्रायः आरामदायक वा श्रमहर एक पेय पदार्थ है। पहले यह विश्वास था कि चाय के अंदर थाइन (Theine) नामक एक वस्तु है, जो शरीर के क्षय का ह्रास करती है। अतएव चाय प्रका-

रान्तर में पोषक वस्तु समझी जाने लगी। डा० एडवर्थ स्मिथ ने इसके बाद बतलाया कि चाय का क्षय ह्रासक गुण तो अलग रहे यह श्वास की वृद्धि करती है तथा अन्य प्रकारों से शरीर के क्षय की वृद्धि करती है।

चाय में ग्लुटिन नामक वस्तु होने से कुछ लोग इसे बलदायक समझते हैं किन्तु जिस प्रणाली से चाय बनाते हैं, उनमें किसी भी विधि द्वारा ग्लूटिन नहीं निकल पाता।

डा० स्मिथ ने चाय पीने का गुण यों लिखा है। मांस उत्पादक वा भोजन पचाने के पक्ष में चाय प्रशस्त है। बहुत भोजन के अभाव होने पर ही चाय से शरीर का क्षय होता है। चाय बलवान, संकोचक है। अतः भोजन करने के बाद ही पान करना उचित नहीं है। हानिकर है। शिरदर्द, न्यूरल्जिया, तथा वात नाड़ी जन्य अन्य पीड़ा में चाय उत्तेजक औषधि स्वरूप ग्रहण करने पर फलद होती है।

समाप्त।

हमारे निज प्रकाशित अत्युत्तम कुछ वैद्यक ग्रन्थ

१. **चरकसंहिता**—श्री चक्रपाणिदत्त कृत आयुर्वेददीपिका तथा वाग्भट्टशिष्य श्रीजज्जटाचार्य कृत निरन्तरपद दो प्राचीन संस्कृत व्याख्याओं सहित तथा अखिलभारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ के मन्त्री आयुर्वेदाचार्य श्रीपण्डित हरिदत्त जी शास्त्री कृत छात्रोपयोगी अत्यन्त सरल टिप्पणी सहित। सम्पूर्ण ग्रन्थ का (२ जिल्दों) मूल्य केवल ८) रु०

२. **रसेन्द्रसारसंग्रह मूलमात्र**—सम्पूर्ण छोटा साइज आजकल की मात्राएं साथ दी हैं। मूल्य अत्यन्त सस्ता केवल ॥=)

३. **भैषज्यरत्नावली सटीक**—लाहौर के सुप्रसिद्ध कविराज श्रीनरेन्द्रनाथ जी मित्र द्वारा परिवर्द्धित तथा आयुर्वेदचक्रवर्ती पं० नरेन्द्रनाथ जी शास्त्री कृत अतिसरल संस्कृत व्याख्या सहित। १२०० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ७)

४. **चक्रदत्त सटीक**—शिवदाससेन कृत प्राचीन सं० व्या० समेत मू० ३)

५. **माधवनिदानम्**—महामहोपाध्याय-श्रीविजयरक्षित-श्रीकण्ठदत्ताभ्यां विरचितया मधुकोशाख्यया व्याख्यया समुल्लसितम्। मूल्यम् १॥।)

६. **अष्टाङ्गहृदय**—अरुणदत्त कृत सर्वाङ्गसुन्दर संस्कृत व्याख्या तथा मौद्गल्य टिप्पणी सहित। छपाई बढ़िया, सुनहरी जिल्द मूल्य ७)

७. **त्रिदोषविमर्शः**—गीर्वाणवाण्यात्मकस्त्रिदोषविषयको निबन्धश्चरक-सुश्रुतान्तर्गत-त्रिदोषवाक्यसंग्रहश्च। ले० पण्डितो धर्मदत्तः, गुरुकुलआयुर्वेद-महाविद्यालयाध्यक्षः, विद्यालङ्कारः,सिद्धान्तालङ्कार आयुर्वेदभूषणम्। मू० १॥)

८. **रसहृदयतन्त्रम्**—जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य जी के गुरु श्रीमद्भगवद् गोविन्दपादविरचित तथा मुग्धावबोधनीनामक प्राचीन सं०टी० सहित। मू०२)

संसार ... नीचे लिखे पते से मंगवाएं।

मोती ... **मोतीलाल बनारसीदास**

प्रकाशक ... संस्कृत-हिन्दी-पुस्तक-विक्रेता,

... सैदमिट्ठा बाजार, लाहौर।